ISSN : 0373–1200

जनवरी 2000

कौंसिल ऑफ साइंटेफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च,
नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 10
जनवरी 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक

अरुण राय
दी कम्प्यूटर कम्पोजर,7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001

विषय-सूची

पादप रोग विज्ञान में आनुवंशिक अभियांत्रिकी तकनीकों की महत्ता

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

ऊतक-संवर्धन (Tissue Culture) और आनुवंशिक (Genetic Engineering) अभियांत्रिकी जैसी नई तकनीकों ने पादप रोग विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति सी स्थिति का निर्माण किया है। पादप जैव-प्रौद्योगिकी न केवल पादप नाशीजीव और पादप रोगजनकों के प्रबंधन में सहायक सिद्ध हुई है वरन् इसी के साथ-साथ रोगरोधी कृष्य फ़सलों को विकसित करने और रोगोत्पादन तथा मेज़बान पादप में प्रतिरोधी क्षमता की वास्तविक प्रक्रिया को समझने में भी मददगार साबित हुई है।

ऊतक संवर्धन तकनीकें बड़े काम की हैं। इनके माध्यम से तीव्र क्लोनता प्रवर्धन (rapid clonal propagation) के फलस्वरूप, रोगमुक्त मूल पौध उत्पादन, कैलस (Callus) एवं रोगकारकों की प्रकृति को एककोशीय संवर्ध द्वारा समझ सकते हैं। पादप जीव द्रव्यक तकनीक (plant protoplast technology) के प्रयोग द्वारा मेज़बान कोशिका में कार्यिकी परिवर्तन और विषाणु की प्रतिकृति तैयार कर सकते हैं, रोगरोधी जीन (gene) प्रवेश करा सकते हैं, रोगरोधी जीवद्रव्यक का चुनाव कर सकते हैं, प्रतिसूक्ष्म-जीवीय रसायनों का मूल्यांकन कर सकते हैं और जीवद्रव्यक के संयोजन द्वारा रोधी जीनों को लैंगिक रूप से असंसर्गी मेज़बानों में पारगमन (Transduction) करा सकते हैं। इसके अतिरिक्त रीकम्बिनेन्ट डी एन ए (RDNA) तकनीक के माध्यम से उचित स्रोत के चुनाव के बाद उससे मनचाहे जीनों को प्राप्त कर उनका क्लोनन (cloning) करके उन्हें मेज़बान पादप में प्रविष्ट कराया जाता है। इस प्रकार पादपों की रोगमुक्त प्रजातियाँ विकसित की जा सकती हैं। किन्तु इस आलेख में पादप रोग विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण आनुवंशिक अभियांत्रिकी तकनीकों पर ही प्रकाश डाला जायेगा।

पौधों के रोगों के विकास और रोगों की रोकथाम की संबंध में आनुवंशिक अभियांत्रिकी तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इसके लिए पौधों और रोगोत्पादकों-दोनों की आण्विक जैविकी का ज्ञान आवश्यक है। **एग्रोबैक्टीरियम टुमेफेसिएन्स** (*Agrobacterium tumefaciens*) और गोभी मोज़ेक विषाणु (Cauliflower mosaic virus) में वैज्ञानिकों की विशेष रुचि का कारण यह है कि ये विजातीय आनुवंशिक पदार्थों को पादप जीनोम और फिर वहाँ से आनुवंशिक रूप से पौधों में सुधार के लिए वाहक का कार्य करते हैं। तब रुचि और बढ़ी जब ऐसा महसूस हुआ कि रोगकारकों का आनुवंशिक तंत्र और उसके प्रतिरोधियों में इस तरह से सुधार किया जा सकता है कि उनका उपयोग रोगकारकों के जैविकीय नियंत्रण में किया जा सके।

जीन-क्लोनिंग की तकनीक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। क्लोनिंग में जीन या जीनों के क्रम का पृथक्कीकरण और गुणन करने के लिए किसी जीवाणु अथवा यीस्ट (खमीर) कोशिका में प्रविष्ट कराते हैं जहाँ वे अपनी प्रतिकृतियाँ बना सकें। यह प्रक्रिया जीवों की आनुवंशिक अभियांत्रिकी का निचोड़ है।

जीन-क्लोनिंग निम्न चरणों में पूर्ण होती है–

(1) एम आर एन ए (m RNA) के जुड़वाँ (काम्प्लीमेंट्री) डी एन ए की क्लोनिंग,

(2) जीनोम डी एन ए के जीनों की क्लोनिंग और

(3) क्लोनिंग किए हुए जीनों की अभिव्यक्ति।

पादपों/पौधों में जीन-क्लोनिंग के लिए प्रयुक्त रोगवाहक

रोगवाहक ऐसे जीव या कारक हैं जो एक जीव (दाता) के आनुवंशिक पदार्थ को एक दूसरे जीव (प्रापक) में स्थानांतरित कर सकते हैं, और वह भी इस प्रकार से कि आनुवंशिक पदार्थ जीवंत रहकर प्रापक कोशिका में प्रकट हो सकता है। पादपों को संक्रमित करने वाले जीवाणु **एग्रोबैक्टीरियम टुमेफेसियन्स** (*Agrobacterium tumefaciens*) के प्लास्टिड और "**कालीफ्लावर मोज़ेक वायरस**" के दोहरी लड़ी वाले सर्पिल सीढ़ीनुमा डी एन ए को पौधों में आनुवंशिक पदार्थ के रोगवाहक के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

एग्रोबैक्टीरियम टुमेफेसियन्स का Ti- प्लास्मिड (Ti-plasmid) एक गोल दोहरी लड़ी वाला सर्पिल सीढ़ीनुमा डी एन ए अणु है, जिसमें 200,000 तक क्षार जोड़े अनेक जीनों के रूप में संगठित रहते हैं। जब जीवाणु चोटिल या क्षतिग्रस्त पादप कोशिका के सम्पर्क में आता है तब जीवाणु का Ti-प्लास्मिड पादप कोशिका में स्थानांतरित हो जाता है। प्लास्मिड का विशेष भाग, Ti-डी एन ए प्लास्मिड से पादप कोशिका के केन्द्रक में स्थानांतरित हो जाता है, पादप कोशिका केन्द्रक के जीनोम से सम्बद्ध हो जाता है और अंततः उसकी प्रतिकृति हो जाता है। Ti-प्लास्मिड में अनेकानेक प्रकार के जीन होते हैं। इनमें से कुछ जीनों को पहचान भी लिया गया है।

अब गुणसूत्र से अर्बुद (ट्यूमर) उत्पन्न करने वाले स्थल विशेष को काट-छाँटकर हटा देना भी संभव हो गया है। गुण-सूत्र के इसी स्थल में आक्सिन (auxin) और साइटोकाइनिन (cytokinin), 'जैव-संश्लेषण करने वाले जीन, विद्यमान होते हैं। ये Ti-प्लास्मिड के T-डी एन ए से , और वह भी बिना बार्डर क्रमों को हटाये हुए, T-डी एन ए के स्थानांतरण की अनुमति देते हैं। इस प्रकार के प्लास्मिडों द्वारा बदली जाने वाली पादप कोशिकायें नए आनुवंशिक पदार्थ के कारण ट्यूमर कोशिकायें नहीं रह जातीं और इन्हें सम्पूर्ण पादप में पुनर्जीवित किया जा सकता है। Ti-प्लास्मिड के बड़े आकार की समस्या भी सुलझा ली गई है। इसके लिए अर्बुदविहीन Ti-प्लास्मिड प्रयुक्त करते हैं, जिसमें टी-डी एन ए का क्रम बरकरार रहता है, किन्तु बार्डर के जीनों को **ई. कोलाई** (*E. coli*) प्लास्मिड से बदल दिया जाता है। वैसे यह सारी प्रक्रिया अत्यधिक जटिल है, फिर भी वैज्ञानिकों ने इसे संभव तो बना ही दिया है।

भली भाँति जाँचा-परखा हुआ **ई. कोलाई** जीवाणु जिसे पी बी आर 322 (pBR 322) प्लास्मिड कहते हैं , इस काम के लिए उपयोग में लाया गया है। वांछित विजातीय जीन डी एन ए भी एक अन्य pBR 322 प्लास्मिड के साथ क्लोनित किया जाता है। आनुवंशिक अभियांत्रिकी की इस विधि की सहायता से विजातीय जीन को पादप कोशिका में प्रविष्ट कराकर उसके माध्यम से सामान्य, प्रजननशील नये पौधे सफलतापूर्वक तैयार किए जा सकते हैं। मनचाहे जीनों का स्थानान्तरण वास्तव में कोशिका विभाजन के दौरान अर्धसूत्रण (Meiosis-मियासिस) के द्वारा हो जाता है।

किन्तु यहाँ एक समस्या आड़े आती है और वह यह कि **एग्रोबैक्टीरियम** और Ti-प्लास्मिड केवल द्विदलीय पादपों को संक्रमित करते हैं, जबकि अधिकतर खाद्यान्न पादप एकदलीय होते हैं। इस प्रकार की समस्याओं के समाधान ढूँढने में वैज्ञानिक प्रयासरत हैं और आशा है कि इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में ही ऐसी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर ली जायेगी और आनुवंशिक आभियांत्रिकी की मदद से अनेक पादप रोगों पर निश्चित रूप से काबू कर लिया जायेगा। मानव कल्याण की दिशा में यह शुभ संकेत है।

—पूर्व संपादक "विज्ञान"

विज्ञान परिषद् प्रयाग

भूकम्प से सम्बन्धित प्राचीन भारतीय भूवैज्ञानिक सिद्धान्त

(अद्भुत सागर के आधार पर)

डॉ० प्रकाश पाण्डेय

भूकम्प चिरकालिक प्राकृतिक घटना है जिसके विनाशक प्रभाव से विश्व के अनेक भाग क्षतिग्रस्त होते रहते हैं। 1880 ई० से आधुनिक विश्व में इसके वैज्ञानिक अध्ययन का प्रारम्भ माना जाता है जब जॉन मिल्ने के नेतृत्व में 'सीज़्मोलॉजिकल सोसाइटी' की स्थापना जापान में हुई। 8 अक्टूबर 1909 से आन्द्रेइजा मोहोरोविखिक द्वारा आविष्कृत पृथ्वी के आन्तरिक एवं बाह्य परतों के असातत्य का सिद्धान्त जुड़ा। 1950 ई० से परमाणु विस्फोटों के कारण होने वाली प्रतिक्रियाओं को भी भूकम्प के अध्ययन में जोड़ा गया। अनेक उपकरण बने जो पृथ्वी की संरचना से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा तरंगों को भली भाँति मापते हैं तथा भूकम्प के विषय में पूर्वज्ञान कराने में सहायक होते हैं। किन्तु अभी तक प्राप्त वैज्ञानिक उपलब्धियाँ भूकम्प का समय, स्थान एवं प्रबलता की पूर्वघोषणा करने के विषय में पूर्ण सक्षम नहीं हैं जो कि इन अनुसन्धानों का वास्तविक हेतु है।

प्राचीन भारत के भूवैज्ञानिकों ने भी इस प्राकृतिक घटना के स्वरूप के विषय दीर्घकाल तक अनुसन्धान किया था जिस पर आधुनिक वैज्ञानिकों का ध्यान कम ही गया है। वैसे तो इस सम्बन्ध में प्राचीन समय में पर्याप्त साहित्य की रचना हुई थी किन्तु इस लघु लेख में हम 12वीं शती ईस्वी में बिहार में लिखे गए ग्रंथ **अद्भुत सागर** के साक्ष्यों को आधार बना कर उन सिद्धान्तों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। ये सूचनाएँ आधुनिक भूविज्ञान के लिए उपयोगी हो सकती हैं यदि इन्हें वैज्ञानिक परीक्षणों से जोड़ कर अध्ययन किया जाय।

(क) कारण सम्बन्धी सिद्धान्त

भूकम्प के कारण से सम्बन्धित अनेक मत विभिन्न ऋषियों द्वारा प्रवर्तित हुए थे जिन्हें हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं– 1. प्राथमिक सिद्धान्त तथा 2. परिष्कृत सिद्धान्त

1. प्राथमिक सिद्धान्त

इसके प्रवर्तकों में काश्यप, गर्ग, वसिष्ठ एवं वृद्ध गर्ग प्रमुख थे तथा वराहमिहिर के समय तक ये मत उल्लिखित होते रहे।[1] इन चारों मतों का संक्षिप्त रूप इस प्रकार समझ सकते हैं :

काश्यप मत–पृथ्वी एवं समुद्र दोनों के नीचे अन्तस्तल में ऐसी शक्तियाँ (सत्त्व) कार्यरत हैं जिनकी ऊर्जा के संक्षोभ या हलचल से पृथ्वी का बाह्य तल चलायमान हो जाता है जिसे भूकम्प कहते हैं।[2]

गर्ग मत–पृथ्वी की दिशाओं को यथावत् रखने के लिए (उसकी दैनिक गति एवं झुकाव पर किसी अन्य गुरुत्व बल का प्रभाव न पड़ने देने के लिए) उसके रचयिता ब्रह्मा ने 4 शक्तियों को पृथ्वी के जलीय आवरण में स्थित किया है। इन्हें रूपकात्मक भाषा में दिग्गज कहते हैं तथा इनके नाम क्रमशः पूर्व में वर्धमान, पश्चिम में अतिवृद्ध, उत्तर में, पृथु श्रवस तथा दक्षिण में सुवृद्ध हैं। इनके श्वास के रूप में छोड़े गए वायु से भूमि कम्पित होती रहती है।[3]

वशिष्ठ मत–जब धरती के वायुमण्डल की अति बलवान् वायु अन्तरिक्ष की वायु से टकरा कर नीचे गिरती है तब 'निर्घात' नामक भूकम्प होता है।[4]

वृद्ध गर्ग मत–प्रकृति के आन्तरिक स्वभाव के कारण भूकम्प होता है जो प्रकृति विरुद्ध कार्य करने वाले समाज के लिए अशुभ एवं प्रकृति के अनुकूल कार्य करने वाले समाज के लिए अनुकूल परिणाम देता है।[5]

विष्णु पुराण का मत–पृथ्वी जिस अनन्त में स्थित है उसकी 'जृम्भा' मुख विस्तार के प्रभाव से भूरेखा चलायमान होती है।[6]

2. परिष्कृत मत

इस मत के प्रवर्तक पराशर एवं सम्पोषक उशना थे। पराशर ने उस समय भूकम्प से सम्बन्धित प्रचलित सिद्धान्तों की गहन समीक्षा करते हुए भूकम्प के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टि अपनाई। उन्होंने न केवल पृथ्वी की आन्तरिक हलचल, निर्माण प्रक्रिया, पर्वतों के निर्माण, रूप परिवर्तन या स्थानान्तरण, अनन्त या ब्रह्माण्ड के विस्तार के प्रभावों का विवेचन किया अपितु भूकम्पन की परिभाषा को एक नया आयाम देते हुए उसमें विद्युताघात, पर्थिव आग्नेय प्रभावों (ज्वालामुख विस्फोट), वायुओं के टकराव, महासागरीय या जलावरणीय प्रतिक्रियाओं से होने वाले भूचलन एवं विध्वंसक तथा लाभकारी परिणामों से सम्बद्ध सिद्धान्त का प्रवर्तन किया।[7] इस सिद्धान्त की घोषणा उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में आयोजित संवाद गोष्ठी में की थी।[8] इस सिद्धान्त के अनुसार पर्वतों के प्रचलन-प्रतिचलन से जो बड़े पैमाने पर भूकम्प होते थे वे पृथ्वी निर्माण की आदिम अवस्था में अधिक प्रभावकारी थे जो अब इन्द्र (अन्तरिक्ष स्थानीय शक्ति) के कारण उतने विध्वंसक नहीं हैं। इसी प्रकार अनन्त की विचेष्टा अथवा अदृष्ट (स्वभाव) की कारकता का सिद्धान्त भी प्रासंगिक नहीं रह गया है अपितु वायु से टकराव, आग्नेय क्रियाएँ, जलावरणीय संक्रियाएँ तथा अन्तरिक्ष से पृथ्वी को प्रभावित करने वाली शक्ति (इन्द्र) विभिन्न प्रकार के भूकम्पों-निर्घातों के कारण हैं। इनके द्वारा उत्पन्न भूकम्प के परिणामों का यथावसर विवेचन सम्बद्ध विषय के विद्वान करते रहेंगे।[9]

पराशर के सिद्धान्त ने प्रतिष्ठा पाई। गर्ग, वसिष्ठ, उशना, से लेकर वराह मिहिर तक सभी भूविज्ञान के विचारकों ने इसे स्वीकार एवं पल्लवित किया।[10] पराशर ने इन कारकों का सूक्ष्म विवेचन करते हुए बताया कि पृथिवी पर इन चारों कारकों के प्रभाव का समय निर्धारित किया जा सकता है। यथा– दिन एवं रात के चारों प्रहरों में क्रमशः वायु, अग्नि, अन्तरिक्ष की शक्ति (इन्द्र) एवं जलावरणीय शक्ति का प्रभाव रहता है।[11] अतः जिस समय भूकम्प हो उसके आधार पर उसके कारक का ज्ञान हो सकता है। पराशर एवं उशना आदि ने इन कारकों के विस्तृत अध्ययन के लिए **वायव्य, आग्नेय, ऐन्द्र** एवं **वारुण** मण्डलों का सिद्धान्त विकसित किया[12] जिसे पहचानने के लिए उस काल में प्रभावी नक्षत्रों की परिगणना की।[13] इससे प्रभावित होने वाले स्थानों का उल्लेख किया[14] तथा इसके हिताहित परिणामों की चर्चा की।[15] इस 'मण्डल' सिद्धान्त के अनुसन्धानार्थ स्वीकृत हो जाने के कारण अन्य ऋषियों ने अपने प्रयोगों एवं अनुसन्धानों के आधार पर इसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किया।[16] वृहस्पति ने इस चतुर्मण्डलों के सिद्धान्त में 'वेलामण्डल' के सिद्धान्त को प्रस्तावित किया था। उनके अनुसार दिन के प्रहरों के प्रथम याम (शुरू के 2 घंटे) एवं रात्रि के यामों के अन्तिम याम (अन्तिम 2 घंटे) वायव्य-आग्नेय-ऐन्द्र एवं वारुण मण्डलों के 'वेला मण्डल' कहे जाते हैं।[17] उशना ने इसकी व्याख्या करते हुए समझाया कि दिन के चार याम आदि क्रम से वायु, वरुण, अग्नि एवं इन्द्र के वेला मण्डल हैं। तथा रात्रि के चार याम दिन के विपरीत क्रम से इन्द्र, अग्नि, वरुण एवं वायु के बेला मण्डल हैं।[18] किन्तु उशना के इस वेला मण्डल के सिद्धान्त को प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों में प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई।

भूकम्प के सम्बन्ध में पराशर का यह 'मण्डल' सिद्धान्त अत्यन्त प्रतिष्ठित था। अद्भुत सागर इस सम्बन्ध में गर्ग कश्यप, मत्स्य पुराण, विष्णु पुराण, आथर्वणाद्भुत एवं वराह- मिहिर के मयूर चित्र के अनेक उद्धरण देता है जिसमें इन मण्डलों के नक्षत्र सिद्धान्त एवं शान्ति आदि का वर्णन है।

(ख) माण्डलिक प्रभाव के क्षेत्र

प्रत्येक मण्डल के प्रभाव क्षेत्र का निर्धारण प्राचीन वैज्ञानिकों ने किया है साथ ही इनके प्रभाव से होने वाले उपद्रवों के लक्षण भी बताए हैं। उदाहरण के लिए वायव्य मण्डल का प्रभाव हस्त, चित्रा, अश्विनी, स्वाती, मृगशीर्ष, पुनर्वसु एवं उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रों में विशेष होता है। इस मण्डल से प्रभावित होने वाले देश – मद्रक, यवन, काम्बोज वाह्लीक (बल्ख), गान्धार हैं।[19] मयूर चित्र इसमें वारुण (पश्चिमी देश), मत्स्य, हूण एवं पारसिक देशों की भी गणना करता है।[20] वायव्य मण्डल के प्रभाव से उन क्षेत्रों में वायुजन्य भूकम्प की ही नहीं परस्पर विरोध एवं युद्ध की भी सम्भावना प्रबल होती है।[21] वृहस्पति का कथन है कि इन क्षेत्रों में भूकम्प आने के एक सप्ताह के अन्दर अत्यन्त तीव्र वेग से चक्रवात उत्पन्न होता है एवं बालू की बजरी की वृष्टि

होती है जो इस बात का लक्षण है कि भूकम्प वयवीय प्रतिक्रिया का परिणाम था।[22] आग्नेय मण्डल के लक्षक नक्षत्र हैं विशाखा, कृत्तिका, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, भरणी, एवं पूर्वा भाद्रपदा तथा इसका प्रभाव क्षेत्र अश्मक, बंग, वाह्लीक तङ्गण, कलिङ्ग, बङ्ग, द्रविड़ एवं शबर देश हैं।[23] बृहस्पति कहते हैं कि आग्नेय मण्डल के भूकम्प का लक्षण यह है कि कम्प के एक सप्ताह के अभ्यन्तर यम जिह्वा के समान भयानक देदीप्यमान उल्का (ज्वाला) भूमि से निकलती है, सारी दिशाएँ सूर्योदय के समान अरुण वर्ग की हो जाती हैं। चन्द्रमा एवं सूर्य ताम्रवर्ण के दिखाई देते हैं। पशु एवं पक्षी आदि जलने लगते हैं। इन लक्षणों से भूकम्प में अग्नि की कारकता का ज्ञान होता है।[24] इसी प्रकार अन्य मण्डलों का भी विस्तृत वर्णन है।[25]

(ग) भूकम्प का पूर्व ज्ञान–

ऋषियों ने भूकम्प के पूर्व ज्ञान के विषय में अनेक विधियाँ विकसित की थीं जिसमें मण्डल सिद्धान्त में विभिन्न मण्डल जन्य भूकम्प के ज्ञान के प्राकृतिक लक्षणों के अतिरिक्त अन्तरिक्ष में ग्रहों के चार परिपथ पर विशेष परिस्थिति का उत्पन्न होना भी सम्मिलित था। उदाहरण के लिए बृहस्पति के मार्ग में यदि मन्द किरण वाले बुध का संक्रमण हो एवं वह बृहस्पति के प्रभाव क्षेत्र में स्वयं निष्प्रभावी हो अर्थात् ज्योतिषीय भाषा में यदि बुध एवं वृहस्पति के ग्रह युद्ध में बुध पराजित हो तो धरती के जिस भाग में इस ग्रह युद्ध का सीधा वेध होगा या जो इसका प्रभाव क्षेत्र होगा वहाँ भूकम्प होगा।[26] इस प्रकार के अनेक प्रकरण हैं जिनके विस्तार से अध्ययन की आवश्यकता है।

भूकम्प से सम्बन्धित प्राचीन भारतीय सिद्धान्तों का यह संक्षिप्ततम परिचय इस तथ्य का संकेत करने के लिए पर्याप्त है कि प्राचीन भारतीय ऋषिगण की वैज्ञानिक सोच गम्भीर एवं सार्वभौमिक थी। साथ ही भूकम्प से सम्बद्ध प्राचीन भारतीय मान्यताओं का विस्तृत, व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन होने पर मौसम विज्ञान को भूकम्प के विषय में भविष्यवाणी करने के लिए पर्याप्त सामग्री मिल सकती है।

लेख का स्रोत

(अद्भुत सागर, काशी से सन् 1905 में प्रकाशित)

उद्धरण

1. तत्र यथा क्रमम् काश्यप गर्ग वसिष्ठ वृद्ध गर्गाणां मतं वराह संहितायां
   क्षितिकम्पमाहुरेके मह्यन्तर्जल निवासि सत्त्व कृतम्।
   भूभार खिन्न दिग्गजनिः श्वाससमुद्रवं चान्ये।।
   अनिलोऽनिलेन निहतः क्षितौ पतन् सस्वनं करोत्यन्ये।
   केचित्वदृष्ट कारित मिदमन्ये प्राहुराचार्याः।।
   –अद्भुत सागर, पृष्ठ 383
2. तथाच काश्यपः
   अर्णवस्योपरि पृथिवीं सशैलवन कानना।
   स्थिता तन्मध्यगा सत्त्वाः संक्षोभाच्चालयन्ति ताम्।।
   –वही 383
3. चत्वारः पृथिवीं नागा धारयन्ति चतुर्दिशम्।
   वर्धमानः सुवृद्धश्च अतिवृद्धः पृथुश्रवाः।।
   ....
   ते वसन्ति सदाश्रान्ताः स वायुं श्वसते महान्।
   वेगान्यहीं चालयते भावाभाव निदर्शकः।।
   –वही 383
4. यदातिबलवान् वायुरन्तरीक्षानिलाहतः।
   पतत्याशु स निर्घातो भवते वायुसम्भवः।।
   तस्य योगान्निपततश्चलत्यद्भयो हता क्षितिः।
   सोऽभिघात समुत्थः स्यात् सनिर्घात महीचलः।।
   – वही 384
5. वही 384
6. तत्रादावेव भूकम्पोत्पत्तिकारणमुच्यते विष्णुपुराणे–
   यदा विजृम्भतेऽनन्तो मुदा घूर्णित लोचनः।
   तदा चलति भू रेखा साद्रिद्वीपा सकानना।।
   – वही 383

7-9. प्राक्खलु, भगवन्तममर वरगुरुं गुरुं समुपसृत्य गौरवावनत शिरसः पराशर मुत्तरे हिमवतः पार्श्वेऽभितप्य मानतपसं प्रतपन्तमिवोदय गिरि शिखराधिरूढमर्कमृषि

गण मध्यस्थं जगन्नमध्यस्थमन्तेवासिन उचुः। नह्यवनिचलनमल्पकारणं नः प्रतिभाति। तत् किन्नु खलु भगवन्नकस्मात् किमधर्मगौरवादवनिधरस्कन्ध प्रचलन प्रतिचलनमिति तद्वाञ्छन्ति तत्किमदृष्टकारितमुतार्णेशय विचेष्टितमिति शिष्यवचनमथ निशम्य नेत्युवाच भगवान्। पुरातिवीर्य प्रवृद्ध प्रभवाः पक्षिणः पवन पथचारिणाऽचलाः पतन्त श्शतशाऽवनिमसकदतिकम्पयाम्बभूवुः। तदाखिलजगदहितमवनि चलनमभिसमीक्ष्य सुरपति विहतगतिमुपरि कुलिशमुत्क्षिप्य क्षितिधर पक्षान् क्षणान्निपात्यावनिमवाचाद्रिजमतः परं भयमपनयाम्यनिलानलबलभिदम्बपत्यभिविसृष्टाःकम्पाः कदाचिज्जगतो हिताहितवादिनो भविष्यन्ति।।

– **वही 384**

10. देखें वही 384-387

11. पराशरः–
तत्र चतुर्षु चतुर्षुभागेषु दिवानक्तनिलानलेन्द्रवरुणजं कम्पक्रमं विधात्-इति।।

– **वही 385**

12-16. देखें वही 385-409

17. बृहस्पतिः –
अह्नो यामद्वये पूर्वे शेषे चैव निशि क्रमात्।
वायव्यादिषु विज्ञेया वेलामण्डल संज्ञकाः।।

– **वही 386**

18. तदुक्तमाथर्वणाद्भुते–
आद्यद्वित्रि चतुर्थे दिनयामे तद्विलोमतो रात्रौ।
अनिलवरुणाग्नी न्द्रजमण्डलचक्रं वदत्युशना।।

– **वही 386**

19. हस्त चित्राश्विनीस्वाति मृगशीर्षपुनर्वसु।
उत्तराश्चैव फल्गुन्य एतद्वायव्य मण्डलम्।।
मद्रकाः यवनाश्चैव काम्बोजावाह्लिकास्तथा।
गान्धाराश्च विरुध्यन्ते विनश्यन्ति पुराणि च।।

– **वही 389। विशेष देखें 387-390**

20. मयूरचित्रे तु –
वारुणा वाह्लिका मत्स्या हूणाः पारसिकास्तथा।

– **वही 389**

21. देखें वही 389

22. तथा च बार्हस्पत्ये
प्रकम्पितायां भूमौ चेत् सप्ताहाभ्यन्तरेण तु।
अतिप्रचण्डो विपुलो वायुर्वहति दारुणः।।
शर्करोत्कर्षणं चापि दिक्षु चैव विदिक्षु च।
तदैतल्लक्षणोपेते विद्याद्वायु प्रकम्पितम्।।

– **वही 390**

23. विशाखाकृत्तिका पुष्याः पूर्वा प्रौष्ठपदा तथा।
भरणी पूर्व फाल्गुन्यावेतदाग्नेयमण्डलम्।।
'----------- पीड्यन्ते चाश्मकाङ्गवाह्लीकाः।
तङ्गणकलिङ्ग बङ्ग द्रविडाः शबराश्च नैकविधाः।।

– **वही 392-392**

24. बार्हस्पत्ये।
प्रकम्पितायां भूमौ चेत् सप्ताहाभ्यन्तरेण तु।
यमजिह्वोपमा भीमा उल्का भवति भासुरा।।
ताम्रः सूर्यश्च चन्द्रश्च दीप्ताश्च मृगपक्षिणः।
दिशः सर्वाभवेयुश्च सूर्योदय समप्रभाः।
तदैतल्लक्षणोयेतं विद्यादग्निप्रकम्पितम्।।

– **वही 394**

25. यथा 12-16

26. वृद्धगर्गः।
गुरुणा निहते सौम्ये जयमृच्छन्ति यायिनः।
गर्भाः स्रवन्ति चाह्नाय कम्पते च वसुन्धरा।।

– **वही 215**

–गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ,
चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क, इलाहाबाद-2

विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण : एक आधुनिकतम तकनीक

राजीव सिंह, नरेन्द्र कुमार सिंह, नरेन्द्र कुमार

खाद्य पदार्थ मानव की प्रमुख आवश्यकताओं में से एक है। राष्ट्र की खाद्य पदार्थों में आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करने हेतु समुचित रख-रखाव एवं संरक्षण परम आवश्यक है। खाद्य पदार्थों के संरक्षण की आवश्यकता आदि काल से ही महसूस की गई है। मौसम पर आधारित खाद्य पदार्थों का उत्पादन तथा उनके छोटे जीवनकाल को ध्यान में रखते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान तक शीघ्रातिशीघ्र ले जाने की समस्या ने "खाद्य संरक्षण" को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। हमारे देश की गरम तर जलवायु अनेक तरह के कीड़ों-मकोड़ों एवं सूक्ष्मजीवों को जन्म देती है जिससे खाद्य पदार्थों को भारी क्षति होती है और बाज़ार में उनका मूल्य घट जाता है।

दुनिया के अन्य देशों की तरह हमारे यहाँ भी खाद्य पदार्थो के संरक्षण के अनेक तरीके अपनाये जाते हैं– जैसे धूप में सुखाकर, आगार बनाकर अथवा धूम्रीकरण करके इत्यादि। चूँकि इन विधियों द्वारा खाद्य पदार्थो को लम्बे समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता, अतः इनके स्थान पर अधिक ऊर्जा की खपत वाले तरीकों को अपनाया जाने लगा। इनमें प्रमुख रूप से शीतलीकरण, हिमीकरण एवं डिब्बा- बन्द विधियाँ सम्मिलित हैं। इन विधियों के अलावा विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण आज़ की आधुनिकतम एवं श्रेष्ठ तकनीक साबित हुई है। इस तकनीक में खाद्य पदार्थों को कम तरंगदैर्घ्य वाली किरणों के समक्ष अल्प अवधि के लिये लाया जाता है जिससे इनमें छिपे कीड़े-मकोड़े एवं परजीवी मर जाते हैं और खाद्य पदार्थों को लम्बे समय तक भण्डारित किया जा सकता है। ऊष्मा एवं रासायनिक उपचार की विधियों के मुकाबले यह तकनीक अधिक कारगर सिद्ध हुई है क्योंकि इस विधि से उपचारित खाद्य पदार्थों के रंग, गंध एवं स्वाद में कोई परिवर्तन नहीं होता है और न ही ये किसी प्रकार की हानि पहुँचाते हैं। इतना ही नहीं, खाद्य संरक्षण की यह विधि आणविक ऊर्जा का शान्तिपूर्ण कार्यों में प्रयोग का अनुपम उदाहरण है। संसार के सुप्रसिद्ध संस्थानों जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन, खाद्य एवं कृषि संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय आणविक ऊर्जा अभिकरण द्वारा 40 वर्षों तक किये गये गहन शोध से यह पता चला है कि विकिरण की अधिकतम 10 किलो ग्रे की मात्रा खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने में पूर्णतया सुरक्षित है।

हमारे देश में भी खाद्यान्नों को विकिरण संरक्षित करने का पर्याप्त अनुभव, क्षमता एवं तकनीक उपलब्ध है। रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन एवं भाभा आणविक अनुसंधान केन्द्र की संयुक्त रिपोर्ट में जो भारत सरकार को 1989 में प्रस्तुत की गयी थी, साफ तौर पर यह कहा गया है कि विकिरण द्वारा संरक्षित खाद्य पदार्थ न केवल आम जनता के लिये उपयोगी हैं बल्कि दूर-दराज़ में तैनात हमारे रक्षा सैनिकों को शुद्ध एवं ताज़े खाद्य पदार्थ जैसे- सब्ज़ियां, फल, फूल, उपलब्ध कराने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

उपरोक्त उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार ने सन् 1994 में एक विशेष शासनादेश प्रकाशित कर भारतीय खाद्य मिलावट कानून में संशोधन कर दिया और विकिरण द्वारा प्याज, आलू एवं मसालों को संरक्षित करने तथा उन्हें बाज़ार में बेचने की अनुमति प्रदान कर दी। रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन में भी ''रवी'' नामक एक विकिरण संयंत्र रक्षा प्रयोगशाला, जोधपुर में स्थापित किया है। यह संयंत्र विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों के गामा विकिरण द्वारा तत्काल संरक्षित करने की क्षमता रखता है।

आज संसार के 38 देश, विकिरण द्वारा संरक्षित 100 से अधिक पदार्थों को अपने यहाँ बेचने और उपयोग में लाने की अनुमति प्रदान कर चुके हैं। इनमें से 30 देश तो ऐसे हैं जिन्होंने इस तकनीक का उपयोग व्यावसायिक रूप में शुरू कर दिया है। इस तकनीक की तमाम खूबियों के बाबजूद दुर्भाग्यवश हमारे देश में इस विधा को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जा रहा है। हमारे देश का उपभोक्ता न ही केवल खाद्य संरक्षण की समस्याओं से अनभिज्ञ है बल्कि विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण की खूबियों से भी अनजान है।

तालिका—1

वांछित परिणाम	विकिरण की मात्रा (किलोग्रे)	खाद्य पदार्थ
निम्न मात्रा (1.0 किलोग्रे तक)		
अ–अंकुरण की रोकथाम	0.05 – 0.15	आलू, प्याज, लहसुन और अदरक
ब–खाद्य पदार्थों को कीड़ों एवं परजीवियों से रहित करना	0.15 – 0.50	अनाज, दालें, सूखे मेवे, मछली, मांस
स–खाद्य पदार्थों में जैविक क्रियाओं का नियन्त्रण	0.5 – 1.0	सब्जियां और फल
मध्यम मात्रा (1.0–10.0 किलोग्रे)		
अ–दीर्घकालीन भण्डारण हेतु	1.0 – 3.0	स्ट्राबेरी तथा ताजी मछलियां
ब–हानिकारक परजीवियों को नष्ट करने हेतु	1.0 – 7.0	ताजे अथवा हिमीकृत समुद्री खाद्य पदार्थ
स–गुणवत्ता में बृद्धि हेतु	2.0 – 7.0	अंगूर के जूस में बृद्धि एवं सब्जियों के पकने के समय में कमी
अधिक मात्रा (10.0–50.0 किलोग्रे)		
अ–व्यवसायिक आधार पर खाद्य पदार्थों को जीवाणु रहित करना	3.0 – 50.0	मांस, समुद्री खाद्य पदार्थ
ब–कुछ खाद्य अवयवों को जीवाणुरहित बनाना	10.0 – 50.0	मसाले, प्राकृतिक गोंद तथा एन्जाइम

स्रोत :- डब्लू एच ओ (विश्व स्वास्थ्य संगठन)

क्या है विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण ?

विकिरण द्वारा खाद्यान्नों का संरक्षण, आणुविक ऊर्जा का नियंत्रित प्रयोग कर किया जाता है। इस तकनीक को उपयोग में लाये जाते समय, कम तरंगदैर्घ्य वाली गामा किरणों एवं एक्स-किरणों का प्रयोग किया जाता है। गामा किरणें, रेडियो आइसोटोप जैसे-कोबाल्ट-60 और सीजियम-137 द्वारा उत्पन्न की जाती हैं जब कि एक्स-किरणें विद्युत चालित यन्त्रों द्वारा निर्मित होती हैं। ये किरणें खाद्य पदार्थों के अन्दर गहरे प्रविष्ट होकर वहां उपस्थित कीड़ों-मकोड़ों, सूक्ष्मजीवों एवं परजीवियों के डी. एन. ए. में परिवर्तन कर उन्हें नष्ट कर देती हैं जिससे इनको लम्बे समय तक भंडारित किया जा सकता है।

विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण की विधि

विकिरण द्वारा खाद्य पदार्थों को संरक्षित करने वाला संयत्र 1.5 से 1.8 मीटर मोटी सीमेन्ट एवं कांक्रीट की दीवालों से बने कक्ष के अन्दर स्थापित होता है। खाद्य पदार्थों को इस कक्ष में भेजने से पहले उनको उचित तरह के बाक्सों में ठीक बन्द किया जाता है। तत्पश्चात् इन बाक्सों को स्वचालित पट्टिका के ऊपर रखकर विकिरण कक्ष में भेजा जाता है। विकिरण स्रोत जैसे -कोबाल्ट-60 इत्यादि जिससे खाद्य पदार्थों को विकरित किया जाना है, 6 मीटर गहरे पानी के अन्दर रखा जाता है तथा संयंत्र को उपयोग में लाते समय उसे स्वचालित यन्त्रों द्वारा विकिरण कक्ष में ले जाया जाता है। खाद्य पदार्थों से भरे बाक्सों को विकिरण स्रोत के चारों तरफ घुमा-घुमा कर अच्छी तरह उपचारित किया जाता है जिससे इसमें बन्द खाद्य सामाग्री आवश्यक विकिरण ऊर्जा को अवशोषित कर सके। इस उपचार के उपरान्त खाद्य पदार्थों की सुरक्षा जांच ''डोसीमीटर'' का प्रयोग कर किया जाता है। इससे उपचारित खाद्य पदार्थों द्वारा अवशोषित विकिरण का पता चल जाता है।

विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण के लाभ

- खाद्य पदार्थों की भंडारण-क्षमता में वृद्धि।
- खाद्य पदार्थों की सूक्ष्मजीवियों, परजीवियों तथा कीड़ों द्वारा किये जाने वाली बरबादी में कमी।
- खाद्य पदार्थों का पैकटों एवं पेटियों के अन्दर ही उपचार सम्भव।
- विकिरत खाद्य पदार्थों के रंग, गन्ध एवं स्वाद में कोई परिवर्तन नहीं होता है और न ही विषाक्तता का भय रहता है।
- इस विधि में धूम्रीकरण में प्रयुक्त ''इथिलीन आक्साइड'' जैसे विषैले रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता है।
- उपचारित खाद्य पदार्थों पर विकिरण के कोई अवशेष नहीं पाये जाते हैं अतः ये वस्तुयें उपभोग हेतु पूर्णतया सुरक्षित हैं।
- यह तकनीक आर्थिक दृष्टि से उपयोगी और प्रकृति के अनुकूल है।
- इस विधि द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं की पूरे वर्ष उपलब्धता सुनिश्चित करके इनके बाजार मूल्यों में स्थिरता लाई जा सकती है।

खाद्य पदार्थों के संरक्षण में प्रयुक्त विकिरण की मात्रा

विकिरण की दर संरक्षण हेतु लाये गये खाद्य पदार्थों के प्रकार एवं वांछित परिणामों पर निर्भर करती है। इसको तालिका 1 में दर्शाया गया है।

भारत सरकार ने विशेष शासनादेश भाग (2) सेक्सन (3) एवं सब सेक्सन (1) प्रकाशित कर 9 अगस्त 1994 को निम्न खाद्य पदार्थों को विकिरण द्वारा उपचारित कर उपभोग करने की अनुमति प्रदान की है।

तालिका –2

खाद्य पदार्थ	विकिरण की मात्रा (किलोग्रे)		
	न्यूनतम	अधिकतम	औसत
प्याज	0.03	0.09	0.06
आलू	0.06	0.15	0.10
मसाले	6.00	14.00	10.00

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य खाद्य पदार्थों जैसे–चावल, गेहूं, अदरक, लहसुन, सूखे मेवे, मांस एवं सैलोट इत्यादि को इस तकनीक द्वारा उपचारित कर उपयोग में लाने की निकट भविष्य में सरकारी अनुमति मिलने की सम्भावना है।

इस तकनीक का खाद्य पदार्थों के मूल्यों पर प्रभाव

खाद्य पदार्थों के संरक्षण की कोई भी विधि इनके मूल्यों में थोड़ी बहुत वृद्धि तो करेगी ही, लेकिन हर बार ऐसा ही हो यह आवश्यक नहीं है। विकिरण द्वारा संरक्षित खाद्य पदार्थों की कीमत लगभग 25 से 50 पैसे प्रति किलोग्राम की दर से बढ़ जाती है। परन्तु मोटे अनाजों एवं दालों को उपचारित करने की कीमत लगभग 1.0 रुपये से 3.0 रुपये प्रति किलो

ग्राम तक होती है। यद्यपि इन कीमतों को विभिन्न तरह के विकिरण क्षमता वाले व्यवसायिक संयंत्र लगाकर काफी कम किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस तकनीक द्वारा खाद्य संरक्षण करने से खाद्य पदार्थों के मूल्यों में मामूली वृद्धि हो जाती है, तथापि इसके अनेक फायदों को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता– जैसे खाद्य पदार्थों के भण्डारण काल में वृद्धि होती है एवं इन्हें लम्बे समय तक शुद्ध एवं खाने योग्य बनाये रखा जा सकता है।

विकसित खाद्य पदार्थों का आज के युग में प्रचलन

कुछ वर्षों के अन्दर देखते-देखते विकिरित खाद्य पदार्थों का बाजार में प्रवेश बड़े स्तर पर हुआ है। विश्व में विशेषकर चीन, बेल्जियम, फ्रान्स, नीदरलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में इनका प्रचलन बहुत अधिक हुआ है। ये सभी देश कुल मिलाकर लगभग एक लाख टन खाद्य पदार्थों का संरक्षण इस विधि द्वारा करते हैं।

इस समय आणविक उर्जा विभाग ने मुम्बई में दवाओं को विकिरण द्वारा उपचारित करने का एक संयंत्र लगाया है जिसका उपयोग खाद्य पदार्थों के संरक्षण हेतु भी किया जा सकता है। इसके अलावा एक छोटा सा संयत्र भाभा आणविक अनुसंधान केन्द्र के खाद्य तकनीकी विभाग में भी स्थापित किया गया है। इसकी क्षमता 500 किलोग्राम प्रति घण्टा प्याज एवं आलू विकसित करने की है।

रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन का खाद्य संरक्षण में योगदान

उपरोक्त सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन के अध्ययन दल ने भविष्य में भारतीय सेनाओं द्वारा विकिरित खाद्य पदार्थों के उपयोग की सम्भावनाओं का पता लगाया है। इसके लिये एक मार्गदर्शक समिति गठित की गई थी जिसमें भाभा आणविक अनुसंधान संस्थान मुम्बई के वैज्ञानिक, क्यू० एम० जी०, डी० जी० ए० एफ० एम० एस० के प्रतिनिधि एवं निदेशक रक्षा खाद्य प्रयोगशाला मैसूर, निदेशक रक्षा प्रयोगशाला जोधपुर के सदस्य थे। इस समिति ने अपनी आयोजित बैठकों में यह निर्णय लिया कि विकिरित खाद्य पदार्थो के रक्षा सेनाओं में प्रयोग की अपार सम्भावनायें हैं अतः इन्हें सेना में प्रचलन में लाने हुते "आहार उत्सवों" का आयोजन किया जाये। तत्पश्चात् ऐसे आहार उत्सवों का आयोजन कई प्रयोगशालाओं में किया गया और इसमें सेना के तीनों अंगों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को निमंत्रित कर उन्हें विकिरित खाद्य पदार्थों से बने पकवानों को खाने के लिये दिया गया। ऐसे आयोजनों के अन्त में उनसे उक्त पकवानों की गुणवत्ता के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये गये जिनका संक्षिप्त विवरण तालिका 3 में दिया जा रहा है।

तालिका–3

क्र० सं०	पूछे गये प्रश्न	उत्तर हाँ	उत्तर नहीं	उत्तर पता नहीं
1.	विकिरित खाद्य पदार्थों के बारे में क्या आपको जानकारी है ?	96	4	–
2.	क्या आपने आहार उत्सव में विकिरित खाद्य पदार्थ खाये ?	100	–	–
3.	क्या आपको इनका स्वाद अच्छा लगा ?	100	–	–
4.	विकिरित खाद्य पदार्थ देखने में क्या भिन्न लगते हैं ?	11	89	–
5.	क्या आप इन्हें दुबारा खाना पसन्द करेंगे ?	86	–	14
6.	क्या आप बाजार से विकिरित खाद्य पदार्थ खरीदेंगे ?	83	4	13
7.	क्या आप इन खाद्य पदार्थों को अपने खाने में वरीयता देंगे ?	76	6	18

शेषांश पृष्ठ 12 पर

कब शुरू होगी 21वीं शताब्दी ?

गुणाकर मुले

आजकल पत्र-पत्रिकाओं में 'नई शताब्दी' और 'नई सहस्राब्दी' की खूब चर्चा है। इक्कीसवीं सदी के लिए बहुत-सारी योजनाएँ बन रही हैं, बहुत-सारे वादे किया जा रहे हैं। साथ ही, विविध क्षेत्रों में बीसवीं सदी की उपलब्धियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने के प्रयास भी आरंभ हो गए हैं।

अच्छी बात है। मगर बुनियादी प्रश्न है–कब से शुरू हो रही है नई 21 वीं सदी या नई तीसरी सहस्राब्दी ?

यह सवाल सिर्फ भारत से ही नहीं, पूरी दुनिया से संबंधित है। मामला ईसाई संवत् और ग्रेगोरी कैलेंडर से सरोकार रखता है, और आज सारे संसार में इस कैलेंडर का प्रचलन है। कई देशों में, अब सार्वभौमिक बने इस कैलेंडर के अलावा, अपने परंपरागत पंचांग भी प्रचलित हैं। परंतु प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें इस ग्रेगोरी कैलेंडर पर ही विचार करना होगा।

वैसे, यदि भ्रांतियां फैलाई नहीं जातीं, फतवे जारी नहीं किए जाते, तो 21 वीं सदी की या तीसरी सहस्राब्दी की शुरुआत का मामला सुस्पष्ट था। क्योंकि, इस कैलेंडर की स्थापित परंपरा को स्वीकार करें, तो मौजूदा 20 वीं सदी (और दूसरी सहस्राब्दी) का अंत 31 दिसंबर, 2000 की मध्यरात्रि को होगा और 21वीं सदी (और तीसरी सहस्राब्दी) का आरंभ 1 जनवरी, 2001 से होगा।

इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई कठिनाई भी नहीं होनी चाहिए। वजह यह है कि ईसाई संवत् की शुरुआत 1 जनवरी 1 ईसवी (A. D.) से मानी जाती है। और, उसके पहले का वर्ष है : 1 ईसा पूर्व (B.C.) अर्थात्, 31 दिसंबर 1 ई. पू. के बाद अगला दिन 1 जनवरी 1 ई. ही माना गया है। इस संवत् में 'शून्य (0) वर्ष' के लिए कोई स्थान नहीं है, हालांकि गणितीय दृष्टि से यह व्यवस्था गलत है। अब उसका इलाज यही है कि ईसा पूर्व और ईसवी के बीच की कालावधि के वर्षो को जानने के लिए ईसा पूर्व के वर्षों से एक वर्ष घटा दिया जाए।

एक उदाहरण लीजिए : गणितज्ञ-ज्योतिषि आर्यभट (प्रथम) अपने आर्यभटीय ग्रंथ में जानकारी देते हैं कि "कलियुग के 3600 वर्ष व्यतीत होने पर वे 23 वर्ष के हो चुके थे।" खगोलीय गणनाओं के लिए हमारे प्राचीन ज्योतिषियों द्वारा स्थापित इस कलि संवत् का आरंभ ईसा पूर्व 3102 (18 फरवरी) से माना जाता है। इसलिए 3600 - (3102 - 1) = 499 ई, में आर्यभट 23 साल के थे। अतः आर्यभट का जन्म 476 ई. में हुआ।

आरंभ में इस कैलेंडर के निर्माण में जिनका हाथ रहा है उन्हें शून्य (0) की धारणा और चिह्न का अता-पता ही नहीं था। गणना में शून्य का प्रयोग भारत की खोज है, संसार को भारत की एक महान देन है। यूरोप को शून्य की जानकारी लगभग 1000 ई. के बाद मिली।

ईसाई संवत् के इस कैलेंडर में 'शून्य वर्ष' का अभाव है, इसका आरंभ 1 जनवरी 1 ई. से माना जाता है, शताब्दी का अर्थ है पूरे सौ वर्ष, और सहस्राब्दी का अर्थ है पूरे 1000 वर्ष, इसलिए–

1 जन. 1 ई. से 31 दिस. 10 ई. तक–प्रथम दशक

1 जन. 1 ई. से 31 दिस. 100 ई. तक–प्रथम दशक

1 जन. 101 ई. से 31 दिस. 200 ई. तक–दूसरी शताब्दी

1 जन. 1901 ई. से 31 दिस. 2000 ई. तक–बीसवीं शताब्दी

1 जन. 2001 ई. से 31 दि. 2100 ई. तक–इक्कीसवीं शताब्दी

इस तरह, सब कुछ होने के बावजूद, अमेरिका के कुछ प्रभावशाली अखबार (जैसे, द न्यूयार्क टाइम्स और द वाशिंग्टन पोस्ट) प्रचारित कर रहे हैं कि इसी साल के अंत (31 दिसंवर 1999) के साथ 20वीं शताब्दी और दूसरी सहस्राब्दी का अंत हो जाएगा, नई शताब्दी और नई सहस्राब्दी की शुरुआत 1 जनवरी 2000 से होगी।

इस मान्यता को प्रचारित करने में कम्प्यूटरों से संबंधित Y2K (अर्थात्, वर्ष 2000) की समस्या का भी बड़ा योगदान रहा है। समझा जा रहा है कि 31 दिसंबर 1999 की मध्यरात्रि के तुरंत बाद 1 जनवरी 2000 की शुरुआत हो जाएगी, तो पुराने अधिकांश कम्प्यूटर 'बहक' जाएँगे और समाज-जीवन के बहुत-से क्षेत्रों में भयंकर अव्यवस्था फैल जाएगी। प्रचार-माध्यमों ने इस समस्या को बहुत उछाला है, इसलिए भी बहुतों की, हमारे देश में भी यह समझ बनी है कि 31 दिसंबर 1999 की मध्यरात्रि को ही वर्तमान सदी (दूसरी सहस्राब्दी) का अंत और नई सदी (तीसरी सहस्राब्दी) का आरंभ होने जा रहा है ! मगर वस्तुस्थित यह नहीं है।

भ्रांति फैलाने में ईसाई धर्म भी योग दे रहा है। रोम से 'आदेश' जारी हुआ है कि 1 जनवरी 2000 को ही तीसरी सहस्राब्दी का प्रथम दिन माना जाए।

मगर रोम के इस आदेश में कोई सार नहीं है। यह आदेश वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित नहीं है। ईसाई धर्माचार्यों ने कैलेंडर को लेकर ऐसे मनमाने आदेश या फतवे पहले भी कई बार जारी किए हैं। उन आदेशों ने समस्या को सुलझाने की बजाए भ्रांतियां फैलाने में ही अधिक योग दिया है।

[ड्रीम 2047 से अंशतःउद्धृत]

पृष्ठ 10 का शेष

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विकिरण द्वारा संरक्षित खाद्य पदार्थों को बिना उनके रंग, गंध एवं स्वाद में परिवर्तन लाये लम्बे समय तक भंडारित किया जा सकता है। इससे न केवल कीड़ों-मकोड़ों एवं सूक्ष्मजीवियों द्वारा की जाने वाली क्षति को रोका जा सकता है बल्कि बाजार में इन खाद्य पदार्थों के मूल्यों में भी नियंत्रण लाया जा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण करने वाले संस्थानों को आणविक ऊर्जा नियमन बोर्ड द्वारा विधिवत् मान्यता प्रदान की जाये जिससे संस्थान उत्तरोत्तर प्रगति कर अधिकृत रूप से विकिरण द्वारा खाद्य संरक्षण का कार्य कर सकें जिससे इस सुविधा का लाभ जन सामान्य तक पहुँचाया जा सके।

—रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला
पिथौरागढ़, उत्तर प्रदेश

हम कौन थे ? क्या हो गये ? और क्या होंगे अभी ?
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।
—मैथिलीशरण गुप्त

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को सूल।।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

रंगों से व्यक्तित्व की पहचान

डॉ अमल कुमार दत्ता

विचारकों के मतानुसार यह समग्र सृष्टि विभिन्न रंगों का समुच्चय है और ये रंग जीवन को गतिशील रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सभी जड़ और चेतन पदार्थों में प्रकट चेतना की अभिव्यक्ति रंगों के समीकरण में बँधी होती है। सूर्य की किरणें जीवन का आधार हैं ही, वैज्ञानिकों ने यह भी माना है कि सारी मानवी काया रंगों का एक पिण्ड है। मनुष्य की हर कोशिश से रंगीन ऊर्जा तरंगें फूटती रहती हैं। काया में रक्त लाल है तो हड्डियाँ मटमैली सफेद। त्वचा काले, गोरे या गेहुँआ रंग की हो सकती है। इसी तरह मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, यकृत, आँतें, गुर्दे, मांस-मज्जा आदि सबके अपने-अपने रंग हैं। इसी आधार पर चिकित्सकों ने कलर इमेजिंग नामक एक नई तकनीक की खोज की है, जिसमें विभिन्न रंगों की तरंगदैर्घ्य से शारीरिक-मानसिक रोगों का इलाज किया जाता है।

भौतिक विज्ञान के अनुसार रंगों की यह विविधता इलेक्ट्रॉनों और विकिरणों की तरंगों की तरंगदैर्घ्य में अन्तर के कारण पैदा होती है। सूर्य किरणों और प्रकृति में पाये जाने वाले रंगों पर शोध करने वाले वैज्ञानिकों के अनुसार भिन्न-भिन्न रंग व्यक्ति विशेष की मनःस्थिति के आधार पर अनुकूल और प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। रंगों को अवसर या मौसम विशेष के अनुरूप कैसे चुना जाय यह उनसे उत्पन्न संवेदन प्रतिक्रिया पर ही निर्भर करता है।

हमारी अपनी प्रकृति के अनुरूप ही रंग हमें आकर्षित या विकर्षित करते हैं। किसी को लाल रंग के कपड़े पहनने पर चक्कर आने लगते हैं तो किसी को काले कपड़े पहनते ही डिप्रेशन की शिकायत हो जाती है। इन प्रतिक्रियाओं के मनोवैज्ञानिक आधार को जानना हमारे व्यक्तित्व को संतुलित बनाये रखने के लिए बेहद ज़रूरी है। प्रख्यात मनोरोग चिकित्सक डॉ. गोल्ड स्फेन ने विभिन्न रोगों से या कठिनाइयों से ग्रसित लोगों पर रंगों का प्रयोग किया और समाधान करने में सफलता प्राप्त की। प्रयोगों के दौरान घटी एक घटना पैन अमेरिकन एयरवेज द्वारा प्रकाश में आयी जिसमें यात्रियों को आकाशीय बीमारी मितली की शिकायत बढ़ गई। डॉ. स्फेन ने वायुयान के अंदर पुते चाकलेटी रंग को इसका प्रमुख कारण पाया और जब उसके स्थान पर हरा रंग पुतवाया गया तो उभरी हुई शिकायतें भी दूर हो गयीं।

इसी प्रकार एक कारखाने के श्रमिकों को अधिक प्यास लगने और बार-बार पेशाब जाने की शिकायत बढ़ गयी। इसकी वजह से बीच-बीच में काम छूटने लगा और उत्पादन प्रभावित होने लगा। अंत में सब ओर से हताश होकर मनोचिकित्सकीय सहायता के लिए श्री स्फेन को बुलाया गया। अपनी गणना के आधार पर जब उन्होंने कमरों के काले रंग को हटाकर हरा रंग पुतवाया तो उस व्यथा से सहज ही छुटकारा मिल गया।

लंदन की टेम्स नदी के पुल पर से कूद कर आत्महत्या करने वालों की संख्या जिन दिनों असाधारण तेज़ी से बढ़ी थी उन दिनों विशेषज्ञों ने पुल पर लगाये गये काले रंग को बदलने की सलाह दी। वैसा करने पर आत्महत्याओं की संख्या में आश्चर्यजनक रूप से कमी पायी गयी।

फोर्ड रिसर्च सेन्टर के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. अलबर्ट काहन के अनुसार कई मनोविकारग्रस्त, तनावपीड़ित, बेचैन व्यक्तियों का इलाज केवल उनके आसपास के रंगों को बदलकर किया जा सकता है। इनके कथनानुसार यदि मनोविश्लेषण करके सही रंग पहले से ही सुझा दिये जायें तो अनेक मनोरोगों को टाला जा सकता है।

पश्चिम जर्मनी के ख्यातिप्राप्त मनःचिकित्सक डॉ.

मैक्सल्यूसर ने रंगों के आधार पर व्यक्तित्व विश्लेषण की एक पद्धति विकसित की है जिसमें कुल आठ रंगों में से व्यक्ति को अपनी पसंदगी-नापसंदगी के अनुसार रंग चुनने होते हैं। ये आठ रंग हैं–जामुनी, नीला, हरा, लाल, पीला, कत्थई, भूरा और काला। डॉ. ल्यूसर के मतानुसार नीला रंग शान्त, सौम्य, सतोगुणी व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है। हरा रंग सक्रियता काम के प्रति गहरी आसक्ति और गतिशीलता को प्रकट करता है। लाल रंग स्फूर्ति और आवेश को दर्शाता है, ऐसे व्यक्ति उत्साही तो होते ही हैं किन्तु बहुत जल्दी आवेशग्रस्त हो जाते हैं। पीला रंग आंतरिक उल्लास, हलकी-फुलकी मस्ती भरी जिंदगी का प्रतिनिधि है। ऐसे व्यक्ति कार्य को मनोयोग से करने वाले, व्यर्थ की चिंता न करने वाले और अलमस्त प्रकृति के होते हैं।

कत्थई रंग इंद्रियलिप्सा, भोगों में रुचि तथा असंयम का प्रतीक है, जबकि जामुनी रंग व्यक्ति की मानसिक अपरिपक्वता, कच्चेपन और बचकानेपन की ओर संकेत करता है। भूरा रंग तटस्थता और निरपेक्ष भाव का परिचय देता है तथा काले रंग को पसंद करने वाले अधिकांश लोग नकारात्मक चिंतन के होते हैं। जैसे ही उन्हें काले रंग की वस्तुओं से दूर किया जाता है वे अपनी हीनता, छोटेपन, विरोध की वृत्ति को छोड़कर आशावादी और सकारात्मक सृजन का चिंतन करने लगते हैं।

डॉ० ल्यूसर सबसे पहले सामान्य व्यक्तियों या मनो-रोगियों से अपनी पसंद के रंग चुनने को कहते हैं। पहले चुने गये रंग से उसकी संवेदनशीलता का परिचय मिलता है। उसके द्वारा चुना गया दूसरा सबसे प्रिय रंग उसकी पसंद को दिखाता है। इसी क्रम में रखे गये रंगों का चयन क्रमशः उसकी मनोवृत्तियों को दर्शाता है।

पश्चिम में रंग विज्ञान के मनोवैज्ञानिक पक्ष के प्रति रुचि तो पैदा हुई है, पर वह वास्तव में मनुष्य शरीर के आंतरिक स्रावों पर आधारित है। कार्ल गुस्ताव जुंग, एडलर और मैस्लो जैसे प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों ने जाँच की इस पद्धति की पहुँच मस्तिष्क की उथली परतों द्वारा लिये गये निर्णयों पर आधारित बतायी है। खासकर कार्ल युंग ने पंच तत्त्वों के प्रतीकों-सूर्य और अग्नि की उपासना को वर्ण उपासना पर आधारित बताया है। मनुष्य मूलतः श्रेष्ठ वृत्तियों वाला है और वह उन्हीं को पोषण देने वाले तरीकों को बाहरी जगत् में ढूँढ़ता है। आज की आधुनिक तड़क-भड़क में श्रेष्ठता को बढ़ावा देने वाले पक्ष तो खो चुके हैं और दृष्टि के प्रदूषण को पैदा करने वाले चटकीले उत्तेजक रंग बड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। इन्हीं के कारण हमारे चिंतन को पतन के अंधियारे निगले जा रहे हैं। लगातार इस नकारात्मक पोषण ने मानवता को दूषित ही किया है।

रंगों के इस प्रदूषित पर्यावरण ने आज पश्चिम में लोगों को कृत्रिम और आधारहीन जीवन पद्धति अपनाने पर मज़बूर कर रखा है। लोग चंचल वृत्तियों, मानसिक अस्थिरता, डिप्रेशन, स्नायुओं की कमजोरी, उत्तेजित विचारधारा और तनावों से पीड़ित हो रहे हैं। इस मनोभूमि को पाकर वे पुनः दूषित प्रवृत्ति के रंगों का चयन करते हैं जिसका प्रभाव अमर्यादित और वहशी वृत्तियों के रूप में उभरता है।

हमारे अपने जीवन में भी इस अंतहीन उत्तेजना का दौर प्रवेश पा चुका है। इसे यहीं रोक देना ही बुद्धिमानी है। तड़क-भड़क चकाचौंध करते रंगों का यह सैलाब प्रौढ़ता पाते मानसिक प्रदूषण का ही प्रतीक है। हीन मानसिक वृत्तियाँ अधिकतर इनके प्रकाश में अपनी पहचान को ढूँढ़ती हैं। रंगों की शालीनता, सौम्यता और गंभीरता से फिर दुनिया सजायें, यह ज़रूरी भी है और अनिवार्य भी। विशेषकर नयी पीढ़ी को एक शांत, प्रेमपूर्ण समाज की धरोहर देना तो आज की सबसे बड़ी आवश्यकता ही कही जायेगी।

विज्ञान व प्रौद्योगिकी का नियोजन

एन. एस. सिद्धार्थन

प्रौद्योगिकी में जो क्रांति का दौर वर्तमान में चल रहा है वह सूचना, ज्ञान और हुनर पर आधारित है जबकि इससे पूर्व की क्रांति मूलतः पदार्थों व भौतिक संसाधनों पर आधारित थी। अतः वर्तमान क्रांति ने औद्योगिक ढांचे को पूरी तरह से बदल डाला है। अनुसंधान व विकास संस्थानों की प्रकृति व उनकी भूमिका भी तेज़ी से बदली है। अतः नियोजन की जो रणनीतियाँ अतीत में कारगर थीं, शायद मौजूदा प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत कारगर साबित न हों। अतः विज्ञान व प्रौद्योगिकी सम्बंधी दृष्टिकोण को बदलना अनिवार्य है।

वर्तमान प्रौद्योगिकी क्रांति में दो परस्पर विरोधी तत्व मौजूद हैं। एक तत्व जगतीकरण का है तो दूसरा विकेन्द्रीकरण का। किसी भी व्यक्ति या प्रतिष्ठान को विश्व से जुड़ने के लिए आज मात्र एक निजी कम्प्यूटर, एक मोडेम, एक टेलीफोन और इलेक्ट्रॉनिक डाक (ई-मेल) की सुविधा चाहिए। इन सुविधाओं से लैस व्यक्ति दुनिया भर के कम्प्यूटरों से सम्पर्क बना सकता है। ई-मेल और इन्टरनेट के जरिए वह विभिन्न विषयों की विविध जानकारी प्राप्त कर सकता है। और जानकारी के इस विश्वव्यापी बहाव से जुड़ने के लिए उसे किसी विशाल संगठन से सम्बद्ध होने की ज़रूरत भी नहीं है। आप अपने घर के एकान्त में भी अपने कम्प्यूटर के द्वारा दुनिया से जुड़ सकते हैं। इस मायने में सूचना-प्रौद्योगिकी विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा देती है। इस विशिष्ट गुण के चलते कई छोटी व मझोली कम्पनियों ने कम्प्यूटर व ई-मेल सुविधा का लाभ अपने जगतीकरण के लिए उठाया है। यानी वे अन्य कम्पनियों से जुड़ी हैं, संयुक्त रूप से डिज़ाइन विकसित करने या हासिल करने का काम किया है, कम्प्यूटर की सहायता से डिज़ाइन व उत्पादन का काम शुरू किया है। इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय होड़ में उनकी स्थिति सुदृढ़ हुई है।

एक अन्य बात यह है कि वर्तमान प्रौद्योगिकी क्रांति का सम्बंध किसी एक क्षेत्र या एक उत्पाद या एक प्रक्रिया से नहीं है। यह क्रांति तो ऐसी सारी सीमाओं से परे हैं। इसका प्रभाव क्षेत्र सूखी खेती करने वाले छोटे किसानों और बुनकरों से लेकर विशाल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा आधुनिक विमान बनाने वाली कम्पनियों तक फैला हुआ है। जैव-प्रौद्योगिकी में यह संभावना मौजूद है कि राजस्थान के सूखाग्रस्त इलाकों को हरे-भरे चरागाहों में बदला जा सके। जैव-प्रौद्योगिकी जेनेटिक फेरबदल के जरिए ऐसे पेड़-पौधे मुहैया करा सकती है जो प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जी सकें। साथ ही साथ यह प्रौद्योगिकी कीटनाशकों व उर्वरकों का व्यापार करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर भी असर डालने में सक्षम है। जैव-प्रौद्योगिकी ऐसे पेड़-पौधे तैयार करने में भी समर्थ है जो रसायनों पर कम निर्भर हों। इसी प्रकार से कम्प्यूटर की मदद से करघों व सूत निर्माण की ऐसी डिज़ाइनें बनाई जा सकती हैं कि ये विश्व स्तर की प्रतिस्पर्धा के अनुकूल हो जाएँ। लचीली उत्पादन प्रक्रियाओं और रोबोट के जरिए किसी भी किस्म के उद्योग की शक्ल बदली जा सकती है। ऐसे किसी क्षेत्र की कल्पना लगभग असम्भव ही है जो ताज़ा प्रौद्योगिकी क्रांति के असर से बच पाए।

वर्तमान प्रौद्योगिकी का एक और असर यह भी है कि उत्पादन के कई क्षेत्रों मे बड़े पैमाने पर मिलने वाले लाभ समाप्त हो जाएंगे यानी 'विशालता की बचत' वाली बात पुरानी पड़ जाएगी। अतीत की प्रौद्योगिकी एक ही डिज़ाइन की वस्तु के 'मास प्रोडक्शन' (बड़ी संख्या में उत्पादन) को बढ़ावा देती थी। इस वजह से बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा बड़ी-बड़ी कम्पनियों को प्रोत्साहन मिलता था।

नई प्रौद्योगिकी लचीली उत्पादन व्यवस्था उपलब्ध

कराती है। इसके अन्तर्गत वस्तुओं की डिज़ाइन में बार-बार बदलाव किए जा सकते हैं। इसमें छोटी व मझोली कम्पनियों को लाभ मिलता है। इंजीनियरिंग ऑटो पार्ट्स व इलेक्ट्रॉनिक्स में छोटी-मझोली कम्पनियों की बहुतायत हो जाने की वजह से इन क्षेत्रों का औद्योगिक संगठन बदल गया है। विकासशील देशों में भी उत्पादन व रोज़गार में छोटी कम्पनियों का अनुपात बढ़ा है।

इसके अलावा नई प्रौद्योगिकी ने संभव कर दिया है कि छोटी कम्पनियां भी अनुसंधान व विकास में योगदान दे सकें। पेटेन्ट के क्षेत्र में उनका दखल बढ़ा है। ये छोटी-छोटी अनुसंधान व विकास कम्पनियां प्रौद्योगिकीविदों द्वारा ही चलाई जाती हैं। इनको उद्यमी पूंजीपतियों का समर्थन इक्विटी के रूप में मिल जाता है। अभी हाल तक भारत में कार्पोरेट क्षेत्र को गैर-कार्पोरेट साझेदारी कम्पनियों में इक्विटी की अनुमति नहीं थी। इसकी वजह से वास्तविक उद्यमी पूंजी के विकास में रुकावट आती थी। अब तक भारतीय नीति छोटे पैमाने की हाई-टेक इकाइयों को सावधि कर्ज प्रोजेक्ट हेतु वित्तीय सहायता तथा सब्सिडी दे रही है। परन्तु अध्ययनों से पता चलता है कि ऐसी छोटी पैमाने की हाई-टेक कम्पनियों के विकास में सबसे अहम भूमिका वेन्चर कैपिटल ने निभाई है।

नई प्रौद्योगिकी और पुरानी प्रौद्योगिकी में एक और अन्तर है। नई प्रौद्योगिकी के संदर्भ में किसी भी उत्पाद या वस्तु का जीवनकाल बहुत कम होता है। पुरानी प्रौद्योगिकी में किसी भी उत्पाद का जीवनकाल 30-40 वर्ष होता था। दूसरी ओर सूक्ष्म-इलेक्ट्रॉनिक्स में किसी उत्पाद का जीवनकाल एक साल से भी कम हो सकता है। इस तरह के अत्यन्त लघु जीवनकाल का असर प्रौद्योगिकी टेक्नॉलॉजी ट्रांसफर पर पड़े बिना नहीं रहेगा। इसके अलावा नवाचार के क्रियाकलापों तथा नए-नए उत्पाद विकसित करने के मामले में भी यह बात असर डालेगी।

प्रौद्योगिकी व उत्पादों के लक्षणों से सम्बंधित उपरोक्त अन्तरों के अलावा एक तथ्य यह भी है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक व कानूनी दृश्य भी सर्वथा अलग हैं। नया गैट समझौता अस्तित्व में आ चुका है। बौद्धिक सम्पत्ति की सुरक्षा, पेटेन्ट तथा प्रौद्योगिकी का व्यापार आज सर्वोपरि है। विज्ञान व प्रौद्योगिकी की किसी भी योजना में इस बदलते व्यापार व कानूनी पक्ष का भी ध्यान रखना होगा।

नीतिगत अनिवार्यताएं

अतीत की प्रौद्योगिकी मूलतः पदार्थ-आधारित थी। खास तौर से इसका आधार कोयला, लोहा व पेट्रोलियम था। वर्तमान प्रौद्योगिकी सूचना जानकारी व हुनर पर आधारित है। इस प्रौद्योगिकी की प्रगति में प्रमुख योगदान मानव संसाधन का होगा तथा प्रगति इस बात पर निर्भर करेगी कि किसी आबादी के पास हुनर का भंडार कैसा है। इस तथ्य के मद्देनजर जरूरी हो जाता है कि मानव संसाधन विकास कार्यक्रम को आपस में जोड़ कर देखा जाये। इस संदर्भ में स्पष्ट लक्ष्य तय किये जाने चाहिए कि आबादी में विभिन्न स्तर के शिक्षितों का एक निश्चित अनुपात हो। वर्तमान प्रौद्योगिकी क्रांति में भागीदारी की पहली शर्त यह है कि हम मानव संसाधन विकास में सफलता हासिल कर चुके हों।

उपलब्ध प्रमाणों से पता चलता है कि भारतीय नीतिकारों, प्रौद्योगिकीविदों तथा वैज्ञानिकों ने बौद्धिक संपत्ति की सुरक्षा के संदर्भ में पेटेंट तथा अन्य मुद्दों पर खास ध्यान नहीं दिया है। बौद्धिक संपत्ति की सुरक्षा संबंधी दार्शनिक बहस तो चलती रह सकती है परंतु विश्व व्यापार व्यवस्था में भागीदारी करने तथा उससे लाभ उठाने के लिए कुछ क़दम तत्काल उठाय जाने ज़रूरी हैं। ये कदम इसलिए भी ज़रूरी हो जाते हैं क्योंकि विश्व व्यापार संगठन का गठन हो चुका है। इस संदर्भ में चीन के कई उपाय किये हैं जिनकी बदौलत वह अपने अधिकांश आविष्कारों को पेटेंट करवाने में सफल रहा है। चीन ने 1991 में 45,395 देशी पेटेंट पंजीकृत किये जबकि भारत मात्र 551 पेटेंट ही मंजूर करा सका। हालांकि चीन गैट अथवा विश्व व्यापार संगठन का सदस्य नहीं है मगर फिर भी उसने ऐसे असरदार उपाय किये हैं कि वह व्यापार के बदलते माहौल का सामना बखूबी कर पायेगा।

पेटेंटिंग के क्षेत्र में चीन की इस सफलता की कुछ वजहें हैं। चीन ने बौद्धिक संपत्ति के विषय को अपनी इंजीनियरिंग व तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल किया। स्नातकोत्तर विज्ञान शिक्षा में भी इस विषय को जोड़ा गया। इसके अलावा, चीन में एम. बी. ए. के साथ-साथ विज्ञान व व्यापार प्रशासन का पठ्यक्रम भी शुरू किया गया। इन कार्यक्रमों में भी बौद्धिक संपत्ति बतौर एक विषय के पढ़ाया जाता है। भारत में आज भी प्रौद्योगिकी व विज्ञान के पाठ्यक्रमों में यह विषय नहीं है।

चीन के सारे अनुसांधान व विकास प्रतिष्ठानों व कारखानों में बौद्धिक सम्पत्ति प्रकोष्ठ स्थापित किये गये हैं। सारे शोध पर्चे और निष्कर्ष पहले इस प्रकोष्ठ में भेजे जाते हैं ताकि प्रकाशन से पूर्व यह पता लगाया जा सके कि इनमें पेटेंट की कोई संभावना है या नहीं। इसके अलावा त्वरित पेटेंटिंग के लिए चीन ई-मेल का उपयोग करता है। भारत ने तो इस मामले में शुरुआती क़दम भी नहीं उठाये हैं। भारतीय बिजनेस स्कूल्स तो विज्ञान प्रबंधन का कोर्स तक नहीं चलाते हैं। प्रौद्योगिकी, विज्ञान व तकनीकी संस्थानों में विज्ञान प्रबंधन का कोर्स होना चाहिए तथा बौद्धिक संपत्ति इसका एक विषय होना चाहिए। सारे प्रमुख अनुसंधान संस्थानों में बौद्धिक संपत्ति प्रकोष्ठ स्थापित किये जाने चाहिए, पेटेंट संबंधी प्रक्रियाओं को सुगम बनाया जाना चाहिए तथा ई-मेल का उपयोग किया जाना चाहिए।

भारत की प्रौद्योगिकी मूलतः राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं एवं बड़े-बड़े संस्थानों पर केन्द्रित रही है। ऐसी नीति तभी सार्थक थी जब बड़े-बड़े संस्थानों का महत्व था। परंतु सूचना के वर्तमान युग में छोटे आकार की संस्थाएं प्रमुख पात्र बन कर उभरी हैं। प्रौद्योगिकी संबंधी भावी नीतियों में छोटे संस्थानों पर ध्यान दिया जाये। इनकी सामर्थ्य वेंचर पूंजी, बैंक जैसी संस्थाओं पर निर्भर करेगी। इनका कामकाज इस बात से भी प्रभावित होगा कि ये कैसा परस्पर-नेटवर्क बना पाती हैं। इस संबंध में पहली बार 1995-96 के बजट में वेंचर पूंजी का महत्त्व पहचाना गया। अभी कई क़दम उठाये जाने की ज़रूरत है।

उत्पादों के छोटे जीवनकाल व प्रौद्योगिकी निर्माण में लगे संस्थानों की संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप आज हमें ज़रूरत महसूस हुई कि ये सब आपस में नेटवर्क बनायें। इसके अलावा इन संस्थानों को उत्पादन इकाइयों के साथ भी निकट सहयोग करना होगा। वर्तमान स्थिति यह है कि राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला जैसे इक्का-दुक्का संस्थानों को छोड़ कर अन्य किसी भी संस्थान ने अन्य भारतीय या अंतर्राष्ट्रीय संस्था से टिकाऊ संपर्क स्थापित नहीं किया है। विज्ञान व प्रौद्योगिकी की किसी भी योजना में यह ज़रूरी होगा कि संस्थानों के बीच परस्पर नेट-वर्क स्थापित किया जाये। इन संस्थानों को सूचना प्रौद्योगिकी के उपकरण देने के अलावा सरकार को चाहिए कि इन संस्थानों की कानूनी व प्रशासनिक व्यवस्था को बदलें। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की वर्तमान बनावट नेटवर्क के लिए उपयुक्त नहीं है।

वर्तमान प्रौद्योगिकी क्रांति में भागीदारी हेतु एक ऐसी कार्ययोजना बनानी होगी जिसमें नयी प्रौद्योगिकी के खास लक्षणों का भी ख्याल रखा जाये। साथ ही विश्व के मौजूदा माहौल का भी ख्याल रखा जाये जो बौद्धिक संपत्ति की सुरक्षा एवं वस्तुओं व सेवाओं के मुक्त व्यापार पर आश्रित है। आने वाले वर्षों में ज्यादातर प्रौद्योगिकी निजी क्षेत्र द्वारा विकसित किये जाने की संभावना है। फलतः विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास में सरकार की प्रत्यक्ष भूमिका घटेगी। परंतु रक्षा, अंतरिक्ष तथा राष्ट्रीय महत्व के अन्य क्षेत्रों में व प्रौद्योगिकी निर्माण में सरकार की भूमिका अहम रहेगी। सरकार को अन्य क्षेत्रों में एक माहौल उपलब्ध कराने के साथ-साथ सृजनात्मकता के लिए अनुकूल आधारभूत ढाँचा भी निर्मित करना चाहिए। इससे छोटी-छोटी प्रौद्योगिकी कम्पनियों को फलने-फूलने का मौका मिलेगा। प्रौद्योगिकीविदों द्वारा चलायी जाने वाली ये कम्पनियाँ एक विकेन्द्रित होती क्रांति में भारत की भागीदारी सुनिश्चित करेंगी।

परिषद् कार्यालय प्रभारी को पितृ शोक

विज्ञान परिषद् के कार्यालय प्रभारी श्री चंद्रभान सिंह के पूज्य पिता श्री सत्य नारायण सिंह जी का 26 दिसम्बर 1999 को निधन हो गया। विज्ञान परिषद् प्रयाग परिवार स्वर्गीय श्री सिंह को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

जैव-प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्द

संकलित

पिछले तीन अंकों से पाठकों के लाभार्थ जैव-प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या शुरू की गई थी। उसी क्रम में यह चौथी किश्त है।

ईंधन प्रौद्योगिकी (Fuel technology) : जैविक कारकों अथवा उनके अवयवों के उपयोग से ऊर्जा-विरल स्रोतों को ऊर्जा-बहुल ईंधन में रूपान्तरित करना।

ऊर्जा फ़सलें (Energy crops) : जो फसलें सूर्य के प्रकाश का उपयोग कार्बनडाइआक्साइड के जीवभार में रूपांतरण के लिए दक्षतापूर्वक करती हैं और जिनके जीवभार का उपयोग ऊर्जा के स्रोत के रूप में किया जाता है।

इन फसलों से जीवभार लकड़ी, शर्करा, स्टार्च तथा हाइड्रोकार्बन के रूप में प्राप्त होता है।

एन्ज़ाइम (प्रकिण्व) (Enzyme) : रासायनिक अभि-क्रियाओं को उत्प्रेरित करने वाले प्रोटीन।

एंज़ाइम शब्द का प्रथम उपयोग 1878 में कुहने ने किया।

मुख्यतः सूक्ष्मजीव और फिर पौधे तथा जंतु एंज़ाइमों के स्रोत हैं।

पशुओं से प्राप्त रेनेट एक एंजाइम है जो गाय के दूध पीते बच्चों के पेट से प्राप्त होता है। रेनेट को काइमोसिन भी कहा जाता है।

एन्ज़ाइम इंजीनियरी (Enzyme engineering) : किसी एंज़ाइम के ऐमीनो अम्ल क्रम में परिवर्तन द्वारा उसके गुणधर्म में उपयोगी परिवर्तन लाना। ये परिवर्तन पुनर्योगज डी एन ए (recombinant DNA) प्रौद्योगिकी द्वारा किये जाते हैं।

एंज़ाइम इंजीनियरी का एकमात्र उद्देश्य औद्योगिक अथवा अन्य उपयोगों के लिए अधिक क्रियाशील, स्थिर एवं उपयोगी एंज़ाइमों को प्राप्त करना है।

अभी तक एंज़ाइम इंजीनियरी के व्यापारिक अनुप्रयोग नहीं हुए हैं किन्तु इस तकनीक के उपयोग से विभिन्न एंजाइमों के ऐमीनो अम्ल क्रमों, उनकी विभिन्न संरचनाओं एवं प्रकार्यों के आपसी संबंधों पर महत्वपूर्ण सूचनाएं एकत्र की जा सकती हैं।

एंज़ाइम निश्चलन (Enzyme immobilization) : जिस प्रावस्था में किसी एंज़ाइम के क्रियाधार तथा उत्पाद उपस्थित हों, उस एंजाइम को इससे भिन्न प्रावस्था में परिरुद्ध करना। निश्चलन के लिए प्रयुक्त होने वाले पदार्थों को वाहक मैट्रिक्स (Carrier matrix) कहते हैं। ये साधारणतया अकार्बनिक पदार्थ या अक्रिय बहुलक होते हैं।

एंज़ाइम निश्चलन की अनेक विधियाँ हैं–अधिशोषण, विपाशन, सहसंयोजी बन्धन तथा झिल्ली परिरुद्धन।

एंज़ाइम रिऐक्टर (Enzyme reactor) : एंज़ाइम अभिक्रिया के लिए उपयोग किया जाने वाला पात्र।

रिऐक्टरों का उपयोग बैच अथवा संतत प्रणाली में किया जा सकता है। एंज़ाइम रिऐक्टर कई प्रकार के होते हैं–

विलेडित टैंक, झिल्ली, तथा संतत प्रवाह।

एलर्जी (Allergy) : सभी एंज़ाइम एलर्जी उत्पन्न करने वाले होते हैं क्योंकि प्रोटीन होते हैं। लेकिन सामान्यतया उनसे एलर्जी तभी पैदा होती है जब वे सांस लेते समय धूल के रूप में प्रवेश करें। इन्हें एलर्जन कहा जाता है।

ऐब्ज़ाइम (Abzyme) : वे ऐंटीबाडी या प्रतिरक्षी जो विशिष्ट रासायनिक अभिक्रियाओं का उत्प्रेरण एंजाइम की ही तरह करते हैं।

ऐब्ज़ाइम प्राकृतिक रूप में उत्पन्न नहीं होते। ये संबंधित क्रियाधार के अणुओं की प्रत्याश्रित संक्रमण अवस्था की संरचना जैसी संरचना वाले अणुओं द्वारा प्रेरित किये जाते है।

चरम एन्ज़ाइम (Extremozymes) : जो एन्ज़ाइम ताप मान, पी. एच. आदि की चरम दशाओं में इष्टतम कार्य करें। उदाहरणार्थ उच्च तापमान एंज़ाइमों में प्रोटिएस, एमाइलेस, जी एन ए पालीमरेस मुख्य हैं।

जीवभार (Biomass) : किसी जीव द्वारा उत्पादित समस्त कोशिकीय शुष्क भार या कार्बनिक पदार्थ। ईंधन के रूप में प्रयुक्त जीवभार कार्बनडाइऑक्साइड एवं सूर्य के प्रकाश के उपयोग से बनता है।

जैविक कारकों द्वारा उत्पादित ईंधन जैव ईंधन (Biofuel) कहलाता है।

जैव गैस (Biogas) : कार्बनिक पदार्थों के कई बैक्टीरिया द्वारा अवायुजीवी पाचन से उत्पादित गैसों का मिश्रण जिसमें मुख्य रूप से मीथेन (60%) तथा कार्बन डाइऑक्साइड (40%) के अलावा लेशमात्र में अन्य गैसें भी होती हैं।

जैव गैस को बायोगैस या बायोमीथेन भी कहा जाता है।

जैवसंवदेक (Biosensors) : किसी जैव पदार्थ की सहायता से किसी विलयन में दिए गये विश्लेष्य विशेष की मात्रा ज्ञात करने वाली वैश्लेषिक युक्तियाँ। विश्लेष्य का अर्थ है वह पदार्थ जिसकी मात्रा ज्ञात करनी हो।

जैव संवेदकों के रूप में एंज़ाइमों का ही उपयोग किया जाता है।

इन्हें सस्ता, टिकाऊ तथा उच्च विशिष्टता वाला होना चाहिए।

ये उत्प्रेरकी तथा बंधता–इन दो प्रकार के होते है।

जैव संवेदकों में दो अवयव होते हैं–जैविक तथा भौतिक अवयव।

राइबोज़ाइम (Ribozyme) : रासायनिक अभिक्रियाओं का उत्प्रेरण करने वाले आर. एन. ए. (RNA) अणु। ये अभिक्रिया की दर को बढ़ाते हैं किन्तु स्वयं अभिक्रिया से अप्रभावित रहते हैं। प्रत्येक राइबोज़ाइम की त्रिविम संरचना में एक बंधन स्थल होता है जो विशिष्ट रूप से क्रियाधार को बाँधता है।

राइबोज़ाइम पादप एवं जन्तु बीमारियों की रोकथाम में काम आते हैं।

विलायक इंजीनियरी (Solvent engineering) : जब किसी एंज़ाइम को अभिक्रिया के लिए ऐसे विलायक (साधारण तथा कार्बनिक विलायक) में उपयोग करते हैं जिससे एंज़ाइम के गुणधर्म में वांछित परिवर्तन होता हो तो उसे विलायक इंजीनियरी कहते हैं। इसमें ऐमीनों अम्लों को क्रम अपरिवर्तित रहता है। इसमें पुनर्योगज डी एन ए प्रौद्योगिकी का कोई उपयोग नहीं होता।

संपाचित्र (Digester) : जिस बन्द पात्र में जैव गैस उत्पन्न की जाती है।

सिन्ज़ाइम (Synzyme) : वे संश्लेषित बहुलक जो एंजाइमी क्रियाशीलता प्रदर्शित करते हैं।

प्रत्येक सिंज़ाइम में दो क्रान्तिक स्थल होते हैं–बंधन स्थल तथा उत्प्रेरकी स्थल।

सिंज़ाइम दो प्रकार के होते हैं–

व्युत्पन्न प्रोटीन तथा अप्रोटीन बहलुक/अप्रोटीन सिंज़ाइम का उत्तम उदाहरण है साइक्लोडेक्स्ट्रिन।

(क्रमशः)

हेपेटाइटिस बी : समाज के लिए ख़तरा

राकेश पाठक

आधुनिक युग में नई-नई बीमारियों की खोज उनके कारण और उपचार में गति आयी है; इसका श्रेय जाता है, मेडिकल टेक्नोलॉजी में हुई महत्वपूर्ण प्रगति को।

पीलिया (जॉन्डिस) सदियों से चलता आ रहा रोग है जिसके विभिन्न कारणों का वर्णन इस सदी में ही हुआ है। मेडिकल भाषा में पीलिया का आम नाम **वाइरल हेपेटाइटिस** (वाइरल यानी इस रोग का कारण वाइरस है तथा हेपेटाइटिस यानी यकृत में सूजन है) है।

आम लोगों की धारणा है कि यकृत की बीमारियाँ ज़्यादा शराब पीने से ही होती हैं लेकिन 80 % हेपेटाइटिस का कारण वाइरल संक्रमण होता है।

हेपेटाइटिस उत्पन्न करने वाले छः वाइरस हैं– ए, बी, सी, डी, ई, तथा जी। चिकित्सकों के अनुसार वाइरसों के व्यवहार, इनके कारण, रोग की समस्याओं और यकृत पर इनके प्रभाव में काफी अन्तर देखने को मिलता है।

हेपेटाइटिस बी विश्व में यकृत का सबसे घातक संक्रमण माना जाता है, जो कि हेपेटाइटिस बी नामक वाइरस के कारण होता है। यह वाइरस मुख्य रूप से यकृत को प्रभावित करता है, जिसके फलस्वरूप यकृत में सूजन आ जाती है और कोशिकाओं की मृत्यु हो जाती है।

दरअसल, हेपेटाइटिस का खतरा एड्स के एच० आई० वी० के खतरे से कहीं अधिक है, क्योंकि हेपेटाइटिस बी एड्स से 100 गुना अधिक संक्रामक है। जितने लोग एड्स के कारण एक वर्ष में मरते हैं उससे भी अधिक लोग हेपेटाइटिस बी के कारण एक दिन में ही मर जाते हैं।

विश्व भर में 40 करोड़ से भी अधिक लोग हेपेटाइटिस बी के दीर्घकालिक वाहक हैं। भारत को हेपेटाइटिस बी के 5 करोड़ वाहक संख्या के साथ विश्व का दूसरा सबसे बड़ा वाहक कुण्ड होने का अनचाहा सम्मान मिल गया है। यह आशंका है कि आने वाली सदी में भारत, विश्व में हेपेटाइटिस बी वाहक में सबसे अग्रणी हो जाएगा। एक रिपोर्ट के अनुसार लगभग 30% हेपेटाइटिस बी वाहक, अन्ततः इस संक्रमण से उत्पन्न समस्याओं के कारण काल के गाल में समा जाते हैं।

विविध अनुमानों के अनुसार, हर वर्ष 1 लाख 50 हज़ार से 4 लाख 50 हज़ार नवजात शिशु संक्रमित होते हैं जो आगे चलकर इसके दीर्घकालिक वाहक बन जायेंगे।

इस वाइरस का प्रसरण निम्नलिखित चार मुख्य मार्गों से होता है :

1. रक्ताधान के समय तथा दूषित सुइयों के जरिए।
2. व्यक्ति से व्यक्ति को।
3. जन्म से समय माता से नवजात को।
4. यौन संपर्कियों के बीच।

यह वाइरस शिशुओं एवं बच्चों में दूषित रक्त तथा शरीर के तरलों के माध्यम से दो तरह से फैल सकता है। पहला– संदूषित माता से शिशु को। साधारणतः शिशु को संक्रमण जन्म के समय ही हो सकता है। दूसरा बच्चे से बच्चे को– खेलते समय खरोंच या छोटी-मोटी चोट के द्वारा बच्चा हेपेटाइटिस बी वाइरस के चपेट में आ जाता है।

वाहकों के खून से सम्पर्क वाली दूषित सिरिंजों, सुइयों और अन्य उपकरणों से भी यह संक्रमण फैलता है। कान गोदने वाली सुइयों को बिना उबाले इस्तेमाल करने से भी संक्रमण फैल जाता है।

जब बच्चे हेपेटाइटिस बी से ग्रस्त हो जाते है तो 90% में निम्नस्तरीय लक्षणहीन संक्रमण होता है जो वर्षों तक टिका रहता है। कभी-कभी तो यह आजीवन बना रहता है। ऐसे व्यक्ति प्रत्यक्षतः स्वस्थ होते हैं पर इन्हें **लिवर सिरोसिस** एवं **लिवर कैन्सर** जैसे घातक रोग होने का खतरा रहता है। ये रोग युवावस्था में होते हैं फलस्वरूप मानव शक्ति के नुकसान के साथ चिकित्सा खर्च की दृष्टि से यह समाज को महँगा पड़ता है।

एक रिपोर्ट के अनुसार बचपन में हेपेटाइटिस बी संक्रमण के चार मामले में से एक को लिवर कैन्सर होता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

हेपेटाइटिस बी का अभी तक कोई भी प्रभावशाली इलाज ईज़ाद नहीं हुआ है। विशेषज्ञों के अनुसार हेपेटाइटिस बी के टीके से ही इस संक्रमण का निवारण हो सकता है।

हेपेटाइटिस बी का टीकाकरण

इस घातक संक्रमण के निवारण के लिए अब **दो प्रकार** के टीके उपलब्ध हैं। पहला– **प्लाज्मा डिराइव्ड वैक्सीन**, दूसरा– **जेनेटिकली इंजीनियर्ड वैक्सीन।** इनमें से प्रथम वैक्सीन का विस्तृत रूप से उपयोग हुआ है। प्रेक्षणों के आधार पर यह सुरक्षित तथा प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। परन्तु इसके साथ वाइरस के प्रसरण का सिद्ध न होने का भय जुड़ा है क्योंकि यह वैक्सीन हेपेटाइटिस बी से ग्रस्त व्यक्ति के रक्त से तैयार किया जाता है। दूसरे वैक्सीन में शुद्धिकृत एन्टीजन है, जो विस्तृत क्लिनिकल जाँचों से गुजरा है। इससे प्राप्त परिणामों से यह ज्ञात हुआ है कि यह एक अत्यन्त सुरक्षित और प्रतिरोधक क्षमता युक्त है क्योंकि इसमें किसी प्रकार का रक्त उत्पाद शामिल नहीं है। इस वैक्सीन ने प्रथम वैक्सीन का स्थान ले लिया है।

बच्चों का टीकाकरण

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सिफारिश की है कि सभी नवजातों को जन्म के समय हेपेटाइटिस बी का टीका लगवाया जाय। इसका कार्यान्वयन 80 से भी अधिक देशों में हो चुका है। 'इंडियन एकेडमी ऑव पीडियाट्रिक्स' तथा 'इंडियन एसोशिएशन फॉर स्टडी ऑव द लिवर' ने इसका समर्थन किया है और ज़ोरदार सिफारिश की है कि भारत में भी नवजातों का हेपेटाइटिस बी के प्रति टीकाकरण नियमित रूप से हो।

हेपेटाइटिस बी **तीन टीकों का कोर्स है** और ये टीके 0, 1 तथा 6 माह के निश्चित अन्तराल पर लगवाने चाहिए अर्थात् पहले टीके के एक माह बाद दूसरा टीका तथा पहले टीके के 6 माह बाद तीसरा टीका लगवाना चाहिए।

यदि बच्चे को जन्म के समय टीका नहीं लगा है तो उसे यथाशीघ्र यह टीका लगवाया जाना चाहिए। यह टीका किसी भी आयु में लगवाया जा सकता है।

(स्रोत : स्मिथ क्लाइन बीचेम फार्मास्युटिकल)

ई–416 हुडको कॉलोनी, कमला नेहरू नगर,
जोधपुर-342009

नववर्ष 2000

विज्ञान परिषद् परिवार की ओर से आजीवन सभ्यों, सदस्यों, ग्राहकों एवं लेखकों को नये वर्ष की मंगलकामनाएं।

कृषि विज्ञान में हिन्दी लेखन

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

हमारा देश शुरू से कृषि-प्रधान देश रहा है। इस देश के किसान जिस तरह से खेती करते रहे हैं उसकी एक लोक झाँकी घाघ और भड्डरी की वर्षा, खाद, पशु सम्बन्धी कहावतों से मिल जाती है। यों तो कृषि पाराशर में जो कि संस्कृत ग्रन्थ है और आठवी-नौवीं सदी में लिखा प्रतीत होता है कृषिशास्त्र का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है किन्तु कालान्तर में संस्कृत के अप्रचलित होने पर यह साहित्य धीरे- धीरे अपभ्रंश में स्थानान्तरित हो गया। स्वर्गीय अगरचन्द नाहटा ने पुष्ट प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि घाघ-भड्डरी ही डाक-भड्डरी थे। ये पति-पत्नी थे। डाक पति और भड्डरी पत्नी। डाक (घाघ) का पुराना अपभ्रंश नाम डक था। वह ब्राह्मण था और उसने अपनी पत्नी से ज्योतिष सम्बन्धी पद्य कहे थे। डाक निश्चित रूप से 14वीं सदी में हुए थे।

हिन्दी में कृषि विषयक पुस्तकों का लेखन उन्नीसवीं सदी के मध्य काल से शुरू हुआ। ऐसा माना जाता है कि सरसैयद अहमद खाँ ने 30 दिसम्बर 1865 को भारतीय कृषि पर मौलिक ग्रन्थ लिखने का प्रस्ताव अलीगढ के कलक्टर के पास भेजा था जिसमें जिलेवार पैदा होने वाली फ़सलों, उनके फ़सलचक्रों, उनके प्रभावों और खेती करने के तरीकों पर पुस्तकें लिखने का संकेत था और शासकवर्ग द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर 1866 में मौसम की कहानी, खेती की यूरोपीय पद्धति, यूरोपीय खेती के औज़ार जैसी पुस्तकें प्रकाश में आईं। किन्तु उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर बम्बई से 1856 में ही लाल प्रताप सिंह द्वारा 'कृषि कौमुदी' पुस्तक छप चुकी थी। उसके बाद कृषि विषयक पुस्तकों का सिलसिला शुरू हो गया और 1900 ई० तक 22 पुस्तकें प्रकाश में आ गई। यह उस समय को देखते हुए बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है।

अगले पृष्ठ पर इन ग्रन्थों की सूची दी जा रही है। इन पुस्तकों में से 1870 में चौधरी हरी सिंह वर्मा द्वारा लिखित 'कृषिकोश' का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। यह शब्दकोश न होकर कृषि-ज्ञानकोश है जिसमें 21 अध्यायों में धरती की उत्पत्ति और उसके गुण, जुताई, मिट्टी के भेद, खेतों की बुवाई, खाद, पाँस, धरती के रसायन अंश और धरती की उपजाऊ शक्ति, बीजों के उगने, पौधों के विभिन्न भाग, पौधों की भीतरी बनावट, निकाई, खेत में पानी के ठहराव का पौधों पर प्रभाव, ठहरे पानी को निकाले के उपाय, उर्द, मूँग और लोबिया के पौधों का अन्तर, फ़सलों को अदल-बदल कर बोने से लाभ, धान की बोवाई, कटाई मँडाई, रबी की जिन्स, रबी की कटाई और मँडाई, फूल से कैसे फल बनता है, पशु पालन, पशु चिकित्सा आदि शीर्षकों पर शिक्षक और छात्र के संवाद के रूप में विषय का प्रतिपादन किया गया है।

इसी तरह 1880 में सीतापुर के श्री प्रताप रुद्र लिखित 223 पृष्ठ की भारी भरकम पुस्तक 'क्षेत्र संहिता' में 20 अध्याय हैं जिनमें कृषि अन्न उत्पादन करने की प्रणाली, राज्याधिकारी के कार्यों का वर्णन हैं और पुस्तक के अन्त में हिन्दी शब्दों के अंग्रेजी पर्याय दिये गयें हैं।

1896 में बलराम दास बी. ए. द्वारा लिखित 'किसान विद्या' वाराणसी से प्रकाशित हुई जिसमें पहले जुताई, बुवाई, खाद डालने, निकाई, सिंचाई आदि कृषि क्रियाओं के साथ फसलों के रोगों और कीड़ों का वर्णन हुआ है। इसमें अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य है।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में (1899) 'कृषि कौमुदी' नामक अन्य ग्रन्थ प्राप्त होता है जो रीवाँ राज्य के दीवान लाल प्रताप सिंह द्वारा लिखित है। 1900 में कलकत्ता से 'कृषि शिक्षा' का प्रकाशन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें कुछ

विदेशी फ़सलों का भारत में प्रवेश, उनके नामों आदि का वर्णन हुआ है।

सूची : 1900 के पूर्व प्रकाशित कृषि पुस्तकें

1856	कृषि कौमुदी	लाल प्रताप सिंह	बम्बई
1867	वन विनोद	—	अमृतसर
1870	किसानोपदेश	वंशीधर	
1870	कृषिकोश	चौधरी हरी सिंह वर्मा	कानपुर
1880	खेतीबारी	राधारमण	इटावा
1880	क्षेत्रसंहिता	श्रीप्रताप रुद्र सिंह	सीतापुर
1882	खेतीसार	राधारमण	इटावा
1883	खेती की विधा के मुख्य सिद्धान्त	हेनरीटेनर (अनुवादक काशीनाथ खत्री)	इलाहाबाद
1884	वैज्ञानिक खेती	हेमन्तकुमारी देवी	लखनऊ
1885	भूतत्व प्रकाश	राम प्रकाश	पटना
1889	खेतीबारी	उमानाथ मिश्र	बाँकीपुर
1896	पशुचिकित्सा	शिवचन्द्रमौलि	फर्रूखाबाद
1896	किसान विद्या	बलरामदास बी ए	बनारस
1896	पशुचिकित्सा	केशवसिंह	बम्बई
1897	विटपविलास (बागवानी)	प्यारेलाल	अलीगढ़
1899	कृषि कौमुदी	लाल प्रताप सिहं जी देव	रीवाँ
1900	खेतीबारी	गंगा शंकर नागर पंचोली	बम्बई
	कृषि शिक्षा	—	—
	ढोरों का इलाज	लक्ष्मण सिंह	आगरा
	वृक्षारोपण प्रणाली	हेमचन्द्र मिश्र	कलकत्ता
	कृषि शिक्षा	—	—
	कृषि विद्या	यमुनाशंकर नागर	

स्पष्ट है कि कृषि से सम्बद्ध सारे विषयों की जानकारी सरल भाषा में प्रस्तुत की जा चुकी थी। इसमें हिन्दी के साथ उर्दू-फारसी के शब्द भी प्रयुक्त होते थे। पुस्तकों के साथ-साथ पत्रिकाएँ भी निकल रही थीं। इनमें कृषि हितकारक (हिन्दी अनुवाद) अमरावती से 1890 से, गौरक्षा नागपुर से 1891 से और गौ सेवक, काशी से 1894 से प्रकाशित हो रही थीं। कृषि विषयक असली पत्रिकाएँ 1900 के बाद में शुरू हुई– किसान मित्र 1911, कृषि सुधार 1914 कृषि 1918।

1900 ई० से पहले लिखी गई कृषि विषयक पुस्तकें हो सकता है कि विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध हों। यदि पाठकों को ऐसी कोई पुस्तक मिले तो वे विज्ञान परिषद् प्रयाग को सूचित करें।

—प्रधानमन्त्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

श्री दिलीप साल्वी की चार पुस्तकें

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

श्री दिलीप एम. साल्वी अंग्रेजी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं। वे काफी समय तक 'साइंस रिपोर्टर' का सम्पादन करते रहे। उन्होंने अभी तक विज्ञान की तीन दर्जन पुस्तकें लिखी हैं जिनमें विज्ञान कथाएँ भी सम्मिलित हैं। उन्होंने बच्चों के लिए विज्ञान विषयों पर नाटक भी लिखे हैं। अपने इस विविध लेखन के लिए वे पुरस्कृत भी होते रहे हैं।

जब से "विज्ञान प्रगति" में उनकी विज्ञान कथाएं छपने लगीं और फिर बाल विज्ञान वाली पुस्तकें भी हिन्दी में आई तो मुझे लगा कि श्री साल्वी ने हिन्दी सीख ली होगी। सचमुच मेरे लिए सुखद आश्चर्य बना रहता यदि एक वर्ष पूर्व साल्वी ने बातचीत में मुझे यह न बता दिया होता कि अब उनकी पुस्तकें हिन्दी में अनूदित होकर आने लगी हैं। मैंने 3 वर्ष पूर्व उनकी 4 बालोपयोगी पुस्तकों (सूरज ने छुट्टी मनाई, पानी की खोज, हवा रानी को चाहिए बदलाव तथा मिट्टी परी से मुलाकात) को हिन्दी की मौलिक कृतियाँ समझ कर उनकी प्रशंसा की थी (शायद मेरी अल्पज्ञता ही थी)।

यहाँ पर मैं जिन चार सद्यः प्रकाशित पुस्तकों की चर्चा करने जा रहा हूँ वे उपर्यक्त बाल विज्ञान पुस्तकों से भिन्न हैं और ये चारों पुस्तकें हैं "1000 खगोल विज्ञान प्रश्नोत्तरी" "1000 पर्यावरण प्रश्नोत्तरी", "1000 विज्ञान प्रश्नोत्तरी" तथा "1000 गणित प्रश्नोत्तरी"। ये पुस्तकें अंग्रेजी से हिन्दी में अनूदित होकर गतवर्ष सत्ताहित्य प्रकाशन, 205 बी चावड़ी बाज़ार दिल्ली-6 से प्रकाशित हुई हैं। चारों पुस्तकें 175 से लेकर 200 पृष्ठों की हैं और प्रत्येक का मूल्य 150.00 रु० है। पुस्तकों के आवरण पृष्ठ आकर्षक हैं-हार्डबाउण्ड। काग़ज़ बढ़िया है। पुस्तकें चित्रों से युक्त हैं।

जैसा कि नाम से प्रकट है इन पुस्तकों में खगोल विज्ञान, पर्यावरण, विज्ञान तथा गणित में से चुन कर प्रत्येक के चुनिन्दा 1000 प्रश्न दिये गये हैं और पुस्तक के अन्त में उनके उत्तर भी। लेखक ने प्रत्येक प्रश्न में चार विकल्प दिये हैं जिनमें से सही उत्तर देना है। आजकल वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रश्नों का जमाना है। अपने बुद्धि परीक्षण या अपने ज्ञान की थाह लगाने की दृष्टि से यह शैली अत्युत्तम है। किन्तु इसका क्या भरोसा कि पाठक ने किसी विषय को पूरी तरह हृदयंगम कर रखा है ? यह तो प्रश्नों को पढ़ने से पता चलेगा। लेखक ने काफी परिश्रम करके प्रत्येक पुस्तक को अनेक शीर्षकों में विभाजित करके हर शीर्षक के अन्तर्गत 30-40 प्रश्न दिये हैं। ये प्रश्न झकझोरने वाले हैं। इनमें संस्थापक, प्रणेता तथा आविष्कारक, औजार मशीनों, समाज पर पड़ने वाले प्रभावों, लेखकों और पुस्तकों तथा इतिहास, साहित्य जैसे शीर्षक भी सम्मिलित किये गये हैं। हिन्दी पुस्तकों से पढ़ाई करने वाले छात्रों को दिये गये प्रश्न लीक से हटकर लग सकते हैं क्योंकि इनकी सामग्री अंग्रेजी पुस्तकों से ग्रहण की गई है। प्रायः ऐसे उद्धरण दिये गये हैं जो विदेशी लेखकों के द्वारा लिखित हैं और जिनको हिन्दी माध्यम से पढ़ने वाले हिन्दी के छात्रों ने पढ़ा ही नहीं।

किन्तु गम्भीरता से विचार किया जाय तो ऐसे प्रश्न प्रेरित करते हैं कि कक्षा की पाठ्य पुस्तकों से हटकर अंग्रेज़ी पुस्तकों का भी अध्ययन किया जाय।

पहली बार ऐसी छात्रोपयोगी पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाश में आये हैं जो लेखक के व्यापक अनुभव एवं छात्रों की जिज्ञासा की सही पहचान के परिचायक हैं। ये पुस्तकें प्रतियोगिता में बैठने वाले अभ्यर्थियों के लिए भी उतनी ही लाभदायक हैं। ऐसे अनुवादों का स्वागत है किन्तु विज्ञान लेखकों से आशा की जाती है कि वे ऐसे ही मानदण्ड हिन्दी में मौलिक लेखन करते समय अपनायें।

—प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्
इलाहाबाद 211002

फ्लोराइड के स्रोत-गुटखा पान मसाला

डॉ० हेम चन्द्र जोशी

आवर्त सारणी की प्रथम पंक्ति में सातवें स्थान पर स्थित फ्लोरीन यूँ तो निष्क्रिय निओन से केवल एक स्थान पहले है पर बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि यह तत्व लोगों का स्वास्थ्य बिगाड़ने में बहुत सक्षम व सक्रिय है, विशेषतः पान गुटखा खाने वालों का जिन्हें यह तो पता होगा कि पान या गुटखे के साथ लिया गया तम्बाकू कैंसर का एक बड़ा कारण है पर शायद ही किसी को यह पता होगा कि साधारण या तम्बाकू युक्त गुटखे में इतना फ्लोराइड होता है कि यह रोज गुटखा खाने वालों को नुकसान पहुँचा सकता है। यह तथ्य भारतीय उपमहाद्वीप के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि पान या गुटखा खाना विश्व के किसी भी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। वैसे इस क्षेत्र के लोग फ्लोराइड के मानव शरीर पर पड़ने वाले कुप्रभावों से भी ठीक से परिचित्र नहीं होंगे परंतु पश्चिमी तथा कथित विकसित जाग्रत जगत में फ्लोराइड एक जीवंत चर्चा का विषय है। यहाँ तक कि पेय जल में फ्लोराइड की स्वाभाविक मात्रा को लेकर असमंजस बनी हुई है। यूँ तो विश्व स्वास्थ्य संगठन पेय जल में फ्लोराइड की मात्रा को 0.5-1.5 पी पी एम (मि० ग्रा/लीटर) तक उचित व आवश्यक मानता है पर अब फ्लोराइड के ऊपर हुए अनुसंधानों के अनुसार यह समझा जा रहा है कि फ्लोराइड की ऊपरी सीमा 1.5 पी पी एम अधिक है। साथ ही अमेरिका में एक विशेषज्ञ समुदाय अभी तक यह समझता रहा है कि शरीर के लिए फ्लोराइड इतना ज़रूरी है कि जहाँ जल में स्वाभाविक फ्लोराइड की मात्रा कम हो वहाँ लोगों को पेय जल में अतिरिक्त फ्लोराइड मिला कर पहुँचाया जाय। इसके विपरीत मानव शरीर में फ्लोराइड की अधिकता से हुए नुकसान की रिपोर्ट निरन्तर बढ़ती जा रही है तथा यह भी कहा जाने लगा है कि दाँतों की सुरक्षा के बहाने फ्लोराइड ती वकालत करना एक भ्रांति है तथा संदेहास्पद है। खैर जो भी हो, भारतीय उपमहाद्वीप के लोगों के लिए यह तथ्य जानना अत्यंत ज़रूरी है कि जो साधारण या तम्बाकू युक्त गुटखा यहाँ के लोग नित्य सेवन करते हैं उसमें कितना फ्लोराइड है।

उत्तर प्रदेश के पर्यावरण मंत्रालय के तत्वाधान में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार यह पाया गया है कि उत्तरी भारत में प्रचलित तम्बाकू में 3.8-19.20 पी पी एम घुलनशील फ्लोराइड है तथा कुल फ्लोराइड 110-290 पी पी एम तक पाया जाता है। इसी प्रकार बिना तम्बाकू वाले गुटखा/पान मसाला में घुलनशील फ्लोराइड 6-13 पी पी एम (औसत 8 पी पी एम) तथा कुल फ्लोराइड 176-264 पी पी एम (औसत 207 पी पी एम) है। तम्बाकू युक्त पान मसाला में घुलनशील फ्लोराइड 6.58-11.2 पी पी एम (औसत 8.7 पी पी एम) तथा कुल फ्लोराइड 143-280 पी पी एम (औसत 197 पी पी एम) तक पाया जाता है।

इसी सर्वेक्षण के अंतर्गत विभिन्न दंत मंजनों की भी जाँच की गयी। फ्लोराइड युक्त दंत मंजनों (पेस्ट) में घुलनशील फ्लोराइड 288-465 पी पी एम तथा कुल फ्लो-राइड 1177-5000 पी पी एम तक पाया गया। बिना फ्लोराइड युक्त दंत मंजनों में यह मात्रा क्रमशः 0.63-46 पी पी एम तथा 262-1456 पी पी एम पाई गई। दंत मंजन (चूर्ण) में घुलनशील फ्लोराइड 1.07-16 पी पी एम तथा कुल फ्लोराइड 306-1615 पी पी एम पाया गया।

शरीर में अवशोषण के लिए साधारणतया जल में घुलनशील फ्लोराइड ही महत्वपूर्ण होता है। पान मसाला/ गुटखा खाने वाले लोगों में यदि चर्वण के दौरान निगलने की भी आदत हो तो अघुलनशील फ्लोराइड भी पाचक अम्लों के साथ प्रक्रिया कर शारीरिक उपापचय प्रणाली में प्रवेश कर सकता है। इस प्रकार अघुलनशील फ्लोराइड का भी 20 प्रतिशत से अधिक भाग शरीर में अवशोषित हो सकता है। एक दिन में एक गुटखा (5 ग्राम) खाने वाले व्यक्ति के शरीर में 0.2 मि० ग्रा० फ्लोराइड केवल गुटखे के माध्यम से पहुँचता है। सामान्यतया लती व्यक्ति जो कि दिन भर में 4 से 5 पैकेट खा जाते हैं उनके शरीर में प्रतिदिन 1 मि० ग्राम० फ्लोराइड केवल इस माध्यम से पहुँच सकता है। चूँकि अन्य भोजन सामग्रियों तथा पेय जल में भी फ्लोराइड विद्यमान होता है अतः पान गुटखा इत्यादि की बुरी आदत के साथ पहुँची फ्लोराइड की अतिरिक्त मात्रा शरीर के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

देश के कई भागों में लोग पेय जल में स्वाभाविक फ्लोराइड की अधिकता के कारण फ्लोराइड जैसी खतरनाक

बीमारियों से पीड़ित हैं। उनके पाँव इस तरह मुड़ जाते हैं कि चलना-फिरना भी मुश्किल होता है और जीवनपर्यंत उन्हें लाचारी का जीवन जीना पड़ता है। फ्लोराइड की खानपान में अधिकता हड्डियों के कैंसर जैसी अनेक अन्य बीमारियों को जन्म देती हैं अतः पान/गुटखा इत्यादि का अत्यधिक सेवन इन बीमारियों को न्योता देता है। पान गुटखा खाने वालों को इन संभावनाओं के खतरों को समझ कर अपनी आदत को खत्म कर या नियंत्रित कर अपने भावी जीवन को सुखमय बनाना चाहिये।

– पर्यावरण विज्ञान संभाग

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-12

जी. एल. पी. यानी गुड लैबोरेटरी प्रैक्टिस

प्रोफेसर रमेश सोमवंशी

जी० एल० पी० अमेरिका के फेडरल ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन का एक रेग्युलेशन है जिसका यह प्रयास एवं आश्वासन है कि अनैदानिक (नान-क्लीनिकल) अध्ययन, जो कि रसायनों की सुरक्षा के सम्बंध में किये जाते हैं, उनकी विधियों को सुलभता से निरीक्षण किया जा सके तथा परिणामों की वैधता को परखा जा सके। इस प्रकार से देखने पर कहा जा सकता है कि जी० एल० पी० प्रयोगों, विशेषकर विष-विज्ञानी परीक्षणों को सम्पन्न करने की नियमावलियाँ हैं जिनका पालन करना नितांत आवश्यक है। अमेरिकी सरकार की संस्थायें इसके बिना प्रयोगों के परिणाम स्वीकार नहीं करती हैं फलतः किसी निरीक्षित पदार्थ को ही यू एस ए में प्रयुक्त किया जा सकता है। इससे ओषधियों, रासायनिक तथा कृषि रसायन फर्मों आदि उद्योगों का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र प्रभावित होता है। अतएव अन्य रेग्युलेटरी अधिकारियों ने भी यह निर्णय किया कि 'जी० एल० पी० का सिद्धान्त' अन्य देशों पर भी लागू किया जाय। वर्तमान में 'जी० एल० पी०' भारत में भी लागू किया गया है तथा सी० एस० आई० आर० की प्रयोगशालायें इसका विधिवत् पालन कर रही हैं।

जी० एल० पी० के अनुपालन में पैथोलोजी प्रयोगशाला का महत्वपूर्ण योगदान होता है। विकृति विज्ञानी (पैथोलोजिस्ट) समस्त उपलब्ध आँकड़ों, वैज्ञानिक तथा अन्य आंकड़ों यथा जैविक द्रवों, शव परीक्षण एवं ऊतक विकृति विज्ञानी (हिस्टोपैथोलोजिस्ट) परिणामों पर पुनर्विचार करता है तथा वह प्रयोग के समस्त आँकड़ों का मूल्यांकन करके अंतिम प्रतिवेदन तैयार करता है। हालाँकि एक विष वैज्ञा- निक परीक्षण की योजना बनाता है जो कि कई प्रकार की वैज्ञानिक परिकल्पनाओं तथा कानूनी माँगों पर निर्भर करते हैं किंतु प्रयोगात्मक परिणामों के मूल्यांकन वैज्ञानिक आधार, कानूनों तथा रेग्यूलेटरी नियमों के अनुसार किये जाते हैं।

जी० एल० पी० का आवश्यक आधार प्रयोग के प्रत्येक चरण का सत्यापन है जिसे सर्वदा लिखित विधियों द्वारा पूर्ण रूप से सम्पन्न किया गया हो। इसे स्टैंडर्ड ऑपरेशनल प्रोसीजर्स या एस० ओ० पी० नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत प्रामाणिक कार्यकर्ताओं द्वारा निरीक्षण किये गये संयंत्रों का भलीभांति उपयोग किया गया, उनपर गुणवत्ता चेक की गयी, प्रयुक्त समस्त पशु पूर्व-निर्धारित कठोर मानक के अनुसार है। सभी मूल आलेख एवं नमूने लम्बे समय तक पुनः परख हेतु रखे गये हैं- सामान्यतः जांचकर्ता या लेखा निरीक्षक वैज्ञानिक को किसी 'बैलेंस शीट' की भांति प्रत्येक वस्तु का पूरा हिसाब मिलना चाहिये।

जी० एल० पी० के कार्य की प्रगति पर 'क्वालिटी एस्योरेंस यूनिट' पैनी दृष्टि रखती है। यह इकाई देखती है कि समस्त प्रयोगात्मक कार्य निर्धारित मानक के अनुसार ही सम्पन्न हुये हैं। यह इकाई (क्यू० ए० एस०) अपना प्रतिवेदन वरिष्ठ प्रबन्धक को देती है जिसके प्रति विकृतिविज्ञानी उत्तरदायी होता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो बाज़ार में विक्रय हेतु परीक्षण किया पदार्थ अस्वीकृत हो जायेगा। यहाँ तक की उक्त प्रयोगशाला की मान्यता रद्द कर दी जाती है।

पूर्व में विषैली या हानिकारक पार्श्वप्रभाव वाली औषधियों के बाज़ार में आने और बिकने से रोकने के लिये अमेरिका तथा अन्य विकसित देशों ने विश्व के समक्ष जी० एल० पी० का जो सिद्धान्त/कानून प्रतिपादित किया है वह मानव कल्याण के उद्देश्य से बनाया और लागू किया गया है। यद्यपि यह भारत में अभी कुछ प्रयोगशालाओं में ही लागू है किंतु इस सिद्धान्त को समझना तथा अन्य प्रयोगशालाओं में लागू किया जाना चाहिये। जी० एल० पी० पर कई पुस्तकें उपलब्ध हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इसे भली भाँति समझा और अपनाया जाये। सरकार को इसे कानूनी जामा पहनाना चाहिये तथा औषध एवं विषैले पदार्थ परीक्षण करने वाली प्रयोगशालाओं पर लागू करवाना चाहिये।

–नेशनल, पैथोलोजी प्रभाग, भारतीय पशु चिकित्सा, अनुसंधान संस्थान, इज्ज़तनगर, बरेली (उ० प्र०)

एक अद्भुत प्रदर्शनी

राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी भारत, जिसका मुख्य कार्यालय इलाहाबाद में स्थित है, विगत कई वर्षों से विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से छात्रों के लाभार्थ अनेक रुचिकर कार्यक्रमों का आयोजन करती रही है। उसने गत वर्ष 26 से 30 नवम्बर तक विक्रम साराभाई सामुदायिक विकास केन्द्र अहमदाबाद के वैज्ञानिकों की टीम के सहयोग से एक अद्भुत प्रदर्शनी का आयोजन किया। इस प्रदर्शनी में विक्रम साराभाई सामुदायिक विकास केन्द्र के निदेशक प्रो. बी. आर. सीताराम के महत्वपूर्ण व्याख्यानों का भी आयोजन था।

यह प्रदर्शनी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के पार्श्व में स्थित शीलाधर मृदा शोध संस्थान के प्रागंण में लगाई गई। इसमें ऐसे मॉडलों का प्रदर्शन था जो भौतिकी के विभिन्न सिद्धान्तों पर आधारित थे। इसमें गणित विषयक प्रदर्शन भी आयोजित किये गये। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन मेहता गणितीय एवं भौतिक शोध संस्थान के निदेशक प्रोफेसर एच. एस. मनी ने किया। इस अवसर पर गण्यमान विद्वानों के अतिरिक्त नगर के प्रमुख कॉलेजों के छात्र तथा छात्राएं एवं अध्यापक उपस्थित थे।

इस प्रदर्शनी से स्पष्ट हो गया कि दुरूह लगने वाले सिद्धान्तों को मॉडलों के सहारे किस तरह समझा जा सकता है। डॉ० सीताराम ने अपने व्याख्यान में यह स्पष्ट किया कि विज्ञान शिक्षण की विधियों में सुधार तथा पाठ्य पुस्तकों के पुनरीक्षण की आवश्यकता है। छात्रों को किताबों पर ज्यादा निर्भर न रहकर स्वतः प्रयोगों द्वारा विषय को समझने की सलाह दी गई। डॉ० सीताराम ने ''वैज्ञानिकों एवं विश्व-विद्यालय शिक्षकों को विद्यालय शिक्षा में क्यों रुचि लेनी चाहिए'' विषय पर व्याख्यान दिया। उन्होंने बल दिया कि विज्ञान शिक्षण को गैर वैज्ञानिकों पर नहीं छोड़ा जा सकता।

राकेटों के विषय में जानकारी देने के बाद उनका सफल प्रक्षेपण करके उत्सुक छात्रों को तुष्ट किया गया।

इस प्रदर्शनी में जो मॉडेल रखे गये थे उनमें से कुछ हैं--

पेरिस्कोप, विशाल भालू, गुरुत्वाकर्षण मीनार, सोमा-वर्ग, ध्वनिनलिका, कैलिडोस्कोप, भ्रमजनक बल्ब।

राष्ट्रीय संगोष्ठी

इक्कीसवीं सदी में जैव–प्रौद्योगिकी के नये आयाम
संस्तुतियाँ

1. संगोष्ठी में प्रस्तुत आलेखों/शोध निबन्धों के आकलन से यह स्पष्ट रूप से इंगित होता है कि विविध विशिष्टीकृत तकनीकी शब्दों का एक कार्यशाला का आयोजन निकट भविष्य में करते हुए इस संगोष्ठी से चयनित शब्दों पर व्यापक विचार-विमर्श के उपरान्त उन्हें अन्तिम रूप दे दिया जाय और पुनः इसे शब्दों के व्यापक अनुप्रयोग व्यवहार हेतु जारी किया जाय।
2. तकनीकी शब्दों को व्यापक व्यवहार में लाने एवं लोकप्रिय बनाने हेतु राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान लोकप्रियकरण में सम्बद्ध विज्ञान लेखकों से उनकी सहमति, परामर्श, अनुमोदन प्राप्त करने हेतु एक समयबद्ध कार्यक्रम की रूपरेखा विकसित की जाय।
3. शासकीय एवं गैर शासकीय संस्थानों, पाठ्यक्रम निर्धारण से संबंधित विभिन्न इकाइयों को तकनीकी शब्दावली आयोग से जारी शब्दों को ही व्यवहार में लाये जाने हेतु लाभकारी निर्देश भारत सरकार के स्तर से जारी कराया जाय।
4. अत्याधुनिक अतिविशिष्ट विषयों जैसे जैव-अभियान्त्रिकी, क्लोनिंग, ट्रांसजेनेसिस से सम्बन्धित शब्दों के हिन्दी मानकों के निर्धारण हेतु अलग-अलग कार्यशालायें आयोजित की जायं।
5. तकनीकी शब्दावलियों को लोकप्रिय बनाने हेतु विभिन्न संचार माध्यमों के लिए, निबन्धात्मक शैली में लेखों के प्रणयन-प्रकाशन पर विशेष बल दिया जाय। इस कार्य में विज्ञान परिषद् प्रयाग की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।
6. जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली और वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली से निवेदन किया जाय कि उत्तर प्रदेश में जैव-प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार के लिए 'विज्ञान परिषद् प्रयाग' (इलाहाबाद) में एक ऐसा केन्द्र स्थापित हो, जिसके माध्यम से जैव-प्रौद्योगिकी की आधुनिकतम जानकारी जन सामान्य तक पहुँच सके।

विज्ञान परिषद् में जैव-प्रौद्योगिकी संगोष्ठी सम्पन्न

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

विज्ञान परिषद् में विगत् 4-5 दिसम्बर, 1999 को जैव-प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली; वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली; विज्ञान परिषद् प्रयाग और इफको, लखनऊ के तत्वावधान में "इक्कीसवीं सदी में जैव-प्रौद्योगिकी के नये आयाम" विषयक दो दिवसीय संगोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गई। जैव-प्रौद्योगिकी संगोष्ठी को संबोधित करते हुए भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान के विशेष कार्यप्रभारी डॉ० एम० डी० तिवारी ने कहा कि जनवरी दो हज़ार में जो पेटेंट पर नया कानून लाये जाने की योजना है, उसमें पेटेंट की नहीं, नये पेड़-पौधों की सुरक्षा की महती आवश्यकता है। इसके लिए पौधों की नयी प्रजातियों की खोज की ज़रूरत होगी, जिससे शोधकर्ताओं एवं किसानों को इसके दायरे से अलग रखा जा सके। उन्होंने बताया कि इस समझौते पर भारत ने हस्ताक्षर नहीं किया है।

उन्होंने कहा कि बैक्टीरिया, फंगस तथा अलगी ही इसके दायरे के अंतर्गत आ सकते हैं। इससे थोड़ी बृहत परिभाषा में जींस आदि भी लाये जा सकते हैं। इस हेतु यह भी आवश्यकता है कि पेटेंट कराये जाने हेतु खोज नयी हो, गहरी छानबीन के बाद आई हो और वह समाज के लिए उपयोगी हो।

प्रारंभ में डॉ० गंगानाथ झा संस्कृत शोध संस्थान के प्राचार्य डॉ० गयाचरण त्रिपाठी ने वेदमंत्र पाठ प्रस्तुत किया। स्थानीय कुलभास्कर आश्रम डिग्री कॉलेज के दुग्ध विज्ञान के पूर्व विभागाध्यक्ष डॉ० प्रभाकर द्विवेदी जी ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। संगोष्ठी के संयोजक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने संगोष्ठी में स्थानीय प्रतिभागियों के अतिरिक्त दिल्ली, वाराणसी, लखनऊ, बरेली, बिलासपुर, जबलपुर, जोधपुर, कानपुर इत्यादि स्थानों से आये वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों का स्वागत करते हुए संयोजक का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।

सभाध्यक्ष डॉ० डी० डी० पंत, पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रसिद्ध वनस्पतिविज्ञानी लीनियस के हवाले से बताया कि विशुद्ध विज्ञान और तकनीकी में विशुद्ध वनस्पति विज्ञान का अध्ययन करने वाले वनस्पतिविज्ञानी तकनीकी वनस्पतिविज्ञानियों को स्यूडो वनस्पतिविज्ञानी कहते हैं, किन्तु अब तकनीकी वालों का वर्चस्व है। उन्होंने जैव- तकनीकी में हो रहे विभिन्न प्रकार के शोधों का भी उल्लेख किया।

डॉ० डी० डी० पंत, डॉ० एम० डी० तिवारी और डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव का स्वागत माल्यार्पण द्वारा संयुक्त मंत्री डॉ० राजकुमार दुबे, संयुक्त मंत्री डॉ० सुनील कुमार पांडेय और श्री देवव्रत द्विवेदी ने किया।

इसी के साथ विज्ञान परिषद् के उपसभापति डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी, पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूविज्ञानी डॉ० महाराज नारायण मेहरोत्रा को अभिनंदन पत्र, शाल और 'विज्ञान भास्कर' उपाधि से विभूषित किया।

इसी क्रम में डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव, अध्यक्ष, शब्दावली आयोग दिल्ली को भी मानपत्र, शाल और 'विज्ञान भास्कर' उपाधि प्रदान की। श्री दर्शनान्द, अव-काशप्राप्त उपनिदेशक, उद्यान को 'विज्ञान वाचस्पति' उपाधि प्रदान की। अभिनन्दन पत्र और मानपत्र प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने पढ़ा।

इस अवसर पर परिषद् द्वारा शेध-निबंधों के सारांश का प्रकाशन भी किया गया। इसमें महामहिम राष्ट्रपति जी सहित अनेक गण्यमान व्यक्तियों के शुभकामना-संदेश और परिषद् की गतिविधियों की जानकारी के अतिरिक्त 64 सारांश संकलित हैं। कुछ सारांश हमें बाद में मिले। उत्तर प्रदेश की विधान सभा के अध्यक्ष माननीय श्री केशरी नाथ त्रिपाठी जी का शुभकामना संदेश भी बाद में प्राप्त हुआ इसलिए प्रकाशित न हो सका।

इस संगोष्ठी में पहले दिन देश के विभिन्न स्थानों से आये 12 वैज्ञानिकों के व्याख्यान हुए। दूसरे दिन भी 12 वैज्ञानिकों ने और 12 शोध छात्रों ने व्याख्यान/शोधपत्र प्रस्तुत किए। समयाभाव के कारण शेष प्रतिभागियों के व्याख्यान/शोध-निबंधों का प्रस्तुतिकरण संभव नहीं हो सका। इस

संगोष्ठी में लगभग 60% प्रतिशत व्याख्यान/शोध- निबंध/शोध-पत्र नील-हरित शैवाल/जैव उर्वरक से संबंधित थे और शेष 40 प्रतिशत में जैव-प्रौद्योगिकी के अन्य क्षेत्र शामिल थे।

व्याख्यानदाताओं में डॉ० उमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ० ब्रह्मदत्त कौशिक, डॉ० रामस्वरूप सिंह चौहान, डॉ० रमेश सोमवंशी, डॉ० एम० एम० अग्रवाल, डॉ० रमेश चन्द्र तिवारी, डॉ० अरविन्द मिश्र, डॉ० हेमचन्द्र जोशी, डॉ० एम० एस० ठाकुर, डॉ० जी० एल० तिवारी, डॉ० वंदना बंसल, श्री दर्शनानन्द, डॉ० एस० सी० चटर्जी, डॉ० वी० के० ललोरिया, डॉ० राजेश्वर प्रसाद, डॉ० दीपा श्रीवास्तव, डॉ० प्रभाकर द्विवेदी, डॉ० अमिता पाण्डेय, डॉ० डी० डी० ओझा आदि प्रमुख थे।

शोध-पत्र प्रस्तुत करने वालों में सुश्री कीर्ति राजे सिंह, डॉ० विनीता शुक्ला, डॉ० अमिता पाण्डेय, रेणु अग्रवाल, गायत्री दीक्षित, स्नेहलता त्रिपाठी, विभा शुक्ला, गीता वातल, सर्वश्री अरविन्द मिश्र, राजकिशोर गुप्त, यशवीर सिंह, योगेन्द्र प्रताप सिंह, अभय प्रताप राय, संजय कुमार सिंह आदि प्रमुख थे।

दोनों दिन श्री देवव्रत द्विवेदी ने स्लाइडों को प्रोजेक्ट करने का उत्तरदायित्व निभाया।

समापन समारोह में अध्यक्षपदीय उद्‌बोधन देते हुए शब्दावली आयोग के अध्यक्ष डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव जी ने संगोष्ठी की सफलता के लिए परिषद् की प्रशंसा करते हुए शोध-निबंधों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने का आश्वासन भी दिया। संयोजक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने प्रतिभागियों द्वारा सुझाई गई संस्तुतियों को प्रस्तुत किया और उसकी एक प्रति डॉ० राय अवधेश जी को दी। सभा को परिषद् के उपसभापति डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी और परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने भी संबोधित किया और सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

—संयोजक संगोष्ठी,
विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद-211002

डॉ० रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यान संपन्न —राजीव रंजन उपाध्याय

परिषद की फैजाबाद शाखा के नवीन सत्र की गतिविधियाँ अध्यक्ष के निर्वाचन से प्रारम्भ हुयीं। प्रो० डॉ० गिरीश पाण्डे, अपर प्रसार निदेशक, नरेन्द्र देव कृषि यंत्र प्राद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, फैजाबाद, सर्वसम्मति से इस सत्र के अध्यक्ष चुने गये। उन्हीं की अध्यक्षता में परिषद् के कार्यक्रम प्रारम्भ हुये। डॉ० रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यान का आयोजन स्थानीय शाने अवध होटल के सभागार में 30 मई 1999 को किया गया। इस व्याख्यान का संचालन कर रहे डॉ० गिरीश पाण्डेय ने परिषद् के सदस्यों का एवं डॉ० (श्रीमती) निरुपमा श्रीवास्तव का, जो इस व्याख्यान माला की वार्ताकार थीं, परिचय दिया।

आयोजन के मुख्य अतिथि प्रो० डॉ० राकेश यमदग्नि, कुलपति नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, फैजाबाद थे। अध्यक्षता के दायित्व का निर्वाह डॉ० गिरीश चन्द्र सक्सेना, कुलपति रा० म० लोहिया अवध विश्वविद्यालय, ने अतीव सौम्यता एवं प्रभावी रूप में किया। उन्होंने डॉ० (श्रीमती) निरुपमा श्रीवास्तव के प्रस्तुतीकरण "मानव क्लोनिंग हेतु आपाधापी क्यों ?" की सराहना ही नहीं की, वरन् डॉ० (श्रीमती) निरुपमा जी के आलेख में एवं उठाये गये प्रश्नों एवं उसके आध्यात्म से संबद्धता की आवश्यकता की महत्ता की भी प्रशंसा की। इस वार्ता में दोनों विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों ने तथा स्थानीय का. सा. साकेत महाविद्यालय के शिक्षकों एवं नगर के बुद्धिजीवियों ने सम्मिलित होकर व्याख्यान को गरिमा प्रदान की।

प्रो० डॉ० राकेश यमदग्नि ने अपने संबोधन में क्लोनिंग के परिणामों तथा इससे संबद्ध परिणामों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली समस्याओं की ओर जन साधारण के ध्यानाकर्षण की महत्ता की चर्चा की।

व्याख्यान की समाप्ति पर परिषद् के अध्यक्ष प्रो० डॉ० गिरीश पाण्डेय ने उपस्थित लोगों को धन्यवाद देकर कार्यक्रम के समाप्ति की घोषणा की।

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् शाखा,
फैज़ाबाद—224001

संगोष्ठी संयोजक का प्रतिवेदन

विशेषज्ञों की इस संगोष्ठी में जैव-प्रौद्योगिकी क्या है, इसके क्या उपयोग हैं आदि के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं जैव-प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित कुछेक सूचनाओं की ओर आप सभी का ध्यान अवश्य आकर्षित करना चाहूँगा।

लगभग तीन वर्ष पूर्व दैनिक समाचार पत्र, "टेलीग्राफ" में प्रकाशित एक सूचना के अनुसार नाटिंघम यूनिवर्सिटी के डॉ० गियर्सन ने, जो पादप कार्यिकी के प्रोफेसर हैं, अपने दल के वैज्ञानिकों के साथ 25 ऐसे "जीनों" (genes) को खोज निकाला है, जो फलों के पकने, रूप-रंग आदि से संबंधित हैं। इन फलों में पादप रोगों से लड़ने की क्षमता होगी। इनमें विटामिनों की मात्रा अधिक होगी। एक फल के विटामिन को दूसरे फल में प्रवेश कराया जा सकेगा। इनकी खेती में कम उर्वरक प्रयुक्त होंगे और फ़सल शीघ्र तैयार होगी। इस प्रकार यदि आपको बाज़ारों में लाल केले, नीले सेब, पीले टमाटर मिलने लगें तो आश्चर्य क्या ? फल और सब्ज़ियों की गुणवत्ता में वृद्धि तो ठीक है, किन्तु मात्र रंग बदलने वाली खोजों के लिए वैज्ञानिकों का श्रम और जनता का धन व्यय करना क्या उचित होगा ?

3 दिसम्बर, 1999 के "द टाइम्स ऑव इण्डिया" में प्रकाशित सूचना के अनुसार "नेचर" नामक विश्वविख्यात पत्रिका के हवाले से बताया गया है कि अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों के एक दल ने पहली बार मानव गुणसूत्र (क्रोमोसोम) के आनुवंशिक कूट (genetic code) को खोज निकाला है। इस खोज से विभिन्न रोगों जैसे खण्डित मनस्कता (शीजोफ्रेनिया) और हृदय रोगों के इलाज के लिए नये तरीकों का विकास सम्भव होगा।

ब्रिटेन के सेंगर सेंटर, जापान के टोकियो विश्वविद्यालय और अमेरिका के वाशिंगटन और ओक्लोहोमा विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ताओं के दल ने मानव गुणसूत्र के 23 जोड़ों में सबसे छोटे 22वें जोड़े के जीन-क्रम का पता लगाने में सफलता प्राप्त की है। इस गुणसूत्र में 545 जीन हैं जिनमें से 298 अज्ञात थे। यह जानकारी देते हुये वेलकम ट्रस्ट (अनुसंधान के लिए धन उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं में से एक) के डॉ० माइकेल डेक्सटर का कहना है कि यह खोज अद्भुत् है और जीन अनुसंधान में मील का पत्थर साबित होगी, क्योंकि इसकी मदद से अन्य 22जोड़े गुणसूत्रों के जीनों का क्रम ज्ञात करने में सहायता मिलेगी।

गुणसूत्र डी एन ए से बने होते हैं जो कि एक 'डबल हेलिक्स' आकार में विभिन्न चार रसायनों का संग्रह है। ये चार रसायन एडीनीन (ए), थायमीन (टी), गुआनीन (जी) और सायटोसीन (सी) लाखों की संख्या में विभिन्न क्रमों में व्यवस्थित रहते हैं। इन रसायनों की विशिष्ट व्यवस्था ही जीन-क्रम निर्धारित करती है और गुणसूत्रों को विभिन्न और विशिष्ट बनाती है। अनुसंधानकर्ता दल के नेता सेंगर सेंटर के डॉ० इयान डनहम ने बताया है कि इन चारों केन्द्रों के बीच समन्वय से यह अनुसंधान सफल हुआ। उन्होंने बताया कि 22 वें गुणसूत्र के 33 मिलियन डी एन ए बेस जोड़ों में से 42 प्रतिशत डी एन ए प्रोटीन-संश्लेषण नहीं करते और निष्क्रिय होते हैं। उनके अनुसार इन 545 जीनों के अतिरिक्त 100-200 जीन और मिल सकते हैं।

गुणसूत्रों का जीन-क्रम, जीनों का आपस में सम्बन्ध और समन्वय पर पहली बार इतनी अधिक जानकारी मिली है। यह खोज मानव जीनोम चित्रण (genome mapping) अनुसंधान का हिस्सा है। सम्भावना है कि सन् 2003 तक सभी 23 जोड़े गुणसूत्र के एक लाख जीनों के क्रम का पता लगा लिया जायेगा। लन्दन के शिशु स्वास्थ्य केन्द्र के डॉ० पीटर स्कैम्बलर ने बताया कि इस खोज से 22वें गुणसूत्र से जुड़ी बीमारियों–हृदय रोग, मानसिक रोग जैसे खण्डित मनस्कता (शीजोफ्रेनिया), बधिरता, और कुछ कैन्सर, जिनमें जीनों का प्रभाव होता है जैसी 35 बीमारियों को समझने, बचाव, निदान और उपचार के साथ ही पार्श्व प्रभावों (side effects) को जानने में भी मदद मिलेगी।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इस संगोष्ठी में मानव क्लोन संबंधी विवादास्पद मुद्दों पर भी विचार अवश्य प्रकाश में आयेंगे। विशेषज्ञों द्वारा अगली शताब्दी में जैव-प्रौद्योगिकी से संबंधित खोज किन क्षेत्रों में किए जायें, कैसी खोजें मानवता के हित में होंगी आदि को निश्चित रूप से सही दिशा मिलेगी।

केशरी नाथ त्रिपाठी

संख्या : 838 /अ वि स/99

विधान भवन

लखनऊ

दिनांक : 25 नवम्बर, 1999

संदेश

=====

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि प्रयाग में राजभाषा हिन्दी के माध्यम से विज्ञान का प्रचार-प्रसार करने वाले "विज्ञान परिषद प्रयाग" द्वारा आज के ज्वलंत विषय जैव-प्रौद्योगिकी पर 4और 5 दिसम्बर, 1999 को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है।

यह भी ज्ञात हुआ है कि इस राष्ट्रीय संगोष्ठी का विषय 21सवीं सदी में जैव-प्रौद्योगिकी के नये आयाम रखा गया है।

मैं समारोह एवं संगोष्ठी की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

केशरी नाथ त्रिपाठी

। केशरी नाथ त्रिपाठी ।

श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
संयोजक, संगोष्ठी
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद- 211002 .

सी. एफ. टी. आर. आई. का स्वर्ण जयंती वर्ष में प्रवेश

केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिक अनुसंधान संस्थान (सी एफ टी आर आई), मैसूर, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, की एक संघटक प्रयोगशाला की स्थापना 21 अक्टूबर, 1950 को हुई और 21 अक्टूबर 2000 को देश की सेवा में 50 साल पूरा कर रहा है। संस्थापकों के परिदृश्य और खाद्य विज्ञान, खाद्य प्रौद्योगिकी एवं खाद्य अभियांत्रिकी के क्षेत्र के प्रति समर्पित कर्मचारियों के अथक एवं नवीन अनुसंधान के सहारे, सी. एफ. टी. आर. आई. शिखर की ओर अग्रसर होते हुए विश्वस्तरीय पहचान बनाकर अपने आपको अनुसंधान के आदर्श के रूप में प्रस्तुत करने के साथ-साथ दक्षिण एशिया में एक आदर्श अनुसंधान एवं प्रशिक्षण केन्द्र बनकर विश्व मंच पर उभर रहा है।

सी. एफ. टी. आर. आई. ने अपना परिदृश्य, मिशन और गुणवत्ता नीति निर्धारित करने के बाद प्राकृतिक खाद्य स्रोतों का अधिकतम संरक्षण और उपयुक्त उपयोग करने के लिए, खाद्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उपलब्ध वैज्ञानिक ज्ञान सृजन और व्यवहार; निरंतर विकास और खाद्य सुरक्षा के लिए, कृषि उत्पादों का मूल्य संवर्धन और उनका उचित उपयोग, नवीन और उच्च स्तरीय तकनीकी सेवाओं द्वारा खाद्य उद्योग के विकास और विस्तार में सहायता करने के लिए अपने आप को तैयार किया है। 320 प्रविधियों/उत्पादों, सामाजिक हित के कई मिशन, उद्योग, शिक्षा क्षेत्र और विकास एजेंसियों के अर्थपूर्ण सहयोग इत्यादि कई उपलब्धियों से लैस होकर 'टीम सी. एफ. टी. आर. आई.' की भावना के साथ यह संस्थान अपने स्वर्णजयंती वर्ष एवं नई सहस्राब्दी में पदार्पण कर रहा है। संस्थान के परिदृश्य परिकल्पना के केंद्र बिंदु में, अपने ज्ञान भंडार, नवीनतम प्रौद्योगिकियों एवं अभियांत्रिकी निपुणताओं के सहारे उपभोक्ता को स्वस्थ एवं सुरक्षित आहार उपलब्ध कराना शामिल है।

श्री पी. एस. भटनागर, आई ए एस, सचिव, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार ने ज्योति जलाकर, सी. एस. आई. आर. के स्थापना दिवस 26 सितंबर 1999 पर इन समारोहों का विधिवत शुभारंभ किया।

वर्ष भर मनाये जाने वाले इस समारोह के अंतर्गत विशेष रूप से 'नोबेल पुरस्कार' विजेताओं सहित कई गण्यमान्य व्यक्तियों द्वारा स्वर्ण जयंती व्याख्यान माला "सी. एफ. टी. आर आई. - उद्योग" सी. एफ. टी. आर. आई. पर सी डी रोम, इंटरनेट पर सी. एफ. टी. आर. आई. स्वर्ण जयंती वेब पेज, कर्मचारियों के लिए स्वर्ण जयंती क्रीड़ा स्पर्धा, मैसूर और आस-पास के विद्यार्थियों के लिए विज्ञान पर वादविवाद, निबंध और प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएं इत्यादि आयोजित की जायेंगी। आम जनता के लिए सी. एफ. टी. आर. आई. खुला दिवस, 'सी. एफ. टी. आर. आई. के पचास वर्ष' का प्रकाशन, कर्मचारियों को निष्पादन आधारित पुरस्कार, सामाजिक हित के लिए मिशन परियोजनाओं सहित कई स्वर्ण जयंती की वृहत परियोजनाएं, समुदाय आधारित खाद्य प्रसंस्करण द्वारा गरीबों का पोषण सुधार, विभिन्न विषयों पर स्वर्ण जयंती संगोष्ठियां तथा लघु, मध्यम और दीर्घ स्तर के उद्योगों के साथ-साथ लघुतर और सूक्ष्म उद्योगों तथा दूर दराज़ के उपभोक्ताओं के लिए कई अन्य कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं।

इस प्रेस विज्ञप्ति में सी. एफ. टी. आर. आई. के निदेशक डॉ० वि० प्रकाश ने विश्वास व्यक्त किया— "विश्व के विज्ञान, प्रौद्योगिकी और सूचना के इस बदलते परिवेश में, सी. एफ. टी. आर. आई. आज के विज्ञान की चुनौती को स्वीकारते हुए, 'टीम सी. एफ. टी. आर. आई.' की भावना के साथ, राष्ट्र के प्रति पूर्ण रूप से वचनबद्ध है। हम स्वर्ण जयंती वर्ष में प्रवेश करते हुए खाद्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपने अनुभव और ज्ञान भंडार के बल पर से अतुलनीय उच्चस्तरीय कार्य संपादन द्वारा विश्व को अपनी शक्ति और क्षमता सिद्ध करेंगे। यह न केवल मेरे सह-कर्मचारियों एवं सी. एस. आई. आर. बल्कि भारत के प्रत्येक नागरिक, विशेष रूप से मैसूर निवासी, के लिए गौरव का क्षण है।"

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 2000

हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तको पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता हैं।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1999 से दिसम्बर 1999 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1999 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 2000 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें :

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 11

फरवरी 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक

अरुण राय

दी कम्प्यूटर कम्पोजर, 7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

फोन : 460001

विषय-सूची

सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन और रामन प्रभाव

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

रामन का जन्म 7 नवम्बर 1988 को त्रिचिनापल्ली, तमिलनाडु में हुआ था। रामन उन गिने-चुने वैज्ञानिकों में प्रमुख स्थान रखते हैं जो थे तो मूलतः भौतिक विज्ञानी, किन्तु उनके अनुसंधानों का प्रभाव समूचे भारतीय विज्ञान-फलक पर पड़ा है। उनकी ख्याति भारतीय सीमाओं से आगे, सारे संसार में फैली। उन्हें 1930 में भौतिक विज्ञान का 'नोबेल पुरस्कार' मिला था। यह पुरस्कार उन्हें प्रकाश से संबंधित एक ऐसे अनुसंधान पर प्रदान किया गया जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि जब प्रकाश किसी पारदर्शी पदार्थ से होकर गुजरता है अथवा आर-पार जाता है तो प्रकाश के कुछ अंश का तरंग दैर्ध्य (Wave length) परिवर्तित हो जाता है।

उपरोक्त खोज उस समय की है जब रामन अनेक पदार्थों में प्रकाश के प्रकीर्णन या बिखराव का अध्ययन कर रहे थे। 1928 में उन्होंने यह ज्ञात कर लिया कि जब एक आवृत्ति के प्रकाश किरणपुंज से किसी पदार्थ को प्रकाशित करते हैं तो किरणपुंज पदार्थ से बाहर आने पर अपनी मूल दिशा से 90 अंश के कोण पर मुड़ जाता है। इस प्रकाशपुंज में अन्य आवृत्तियाँ भी विद्यमान होती हैं, जो उस पदार्थ का अभिलक्षण है। ये तथाकथित 'रामन आवृत्तियाँ' (Raman frequencies) उस पदार्थ के लिए अवरक्त आवृत्तियों (infrared frequencies) के बराबर होती हैं। इसका कारण है प्रकाश और उस पदार्थ के बीच ऊर्जा (energy) की अदला-बदली। इस युगान्तरकारी खोज के पूर्व 1917 में ही रामन कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनाये जा चुके थे।

1929 में रामन को लन्दन की 'नाइट' की उपाधि से विभूषित किया गया। इस समय तक रामन की गणना भारत के शीर्ष वैज्ञानिकों में तो की ही जाने लगी थी, उनकी ख्याति का डंका सारे विश्व में बजने लगा था। 1933 में रामन बैंगलूर के 'इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑव साइंस' में भौतिक विज्ञान के विभागाध्यक्ष होकर आ गए। उन्हें यह संस्थान और जगह भा गई और वे जीवनपर्यंत यहीं रहे।

1947 में वे यहीं 'रामन इंस्टीट्यूट' के निदेशक और 1961 में पोंटिफिकल एकेडेमी ऑव साइंस के सदस्य नामित किए गए। इसके बाद तो भारत में शायद ही किसी अनुसंधान संस्थान की स्थापना हुई हो, जिसके निर्माण में उनकी सूझ-बूझ और अनुभव का लाभ न उठाया गया हो। रामन ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से 'इण्डियन एकेडेमी ऑव साइंसेस' और एक शोध पत्रिका – 'इण्डियन जर्नल ऑव फ़िज़िक्स' की भी संस्थापना की। उनके द्वारा निर्देशन और प्रशिक्षण प्राप्त सैकड़ों की संख्या में विद्यार्थियों ने विश्व- विद्यालयों के अतिरिक्त भारत और बर्मा सरकारों में अनेक उच्च पदों को सुशोभित किया।

रामन प्रभाव

प्रकाश के तरंग दैर्घ्य में उस समय परिवर्तन होता है, जब एक प्रकाश किरणपुंज का पथ अणुओं द्वारा बदल दिया जाता है। इस अद्भुत घटना को सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन के सम्मान में 'रामन प्रभाव' (Raman effect) का नाम दिया गया। जब प्रकाश किरणपुंज धूलिरहित, पारदर्शी रासा-यनिक पदार्थ के नमूने से होकर गुजरता है तो जिस मार्ग से किरणपुंज आ रहा था, प्रकाश के कुछ अंश का मार्ग बदल जाता है। वैसे इस प्रकीर्णित प्रकाश का अधिकांश अपरि-

वर्तित तरंगदैर्घ्य वाला होता है। एक छोटा अंश आपतित प्रकाश से अलग तरंग दैर्घ्य वाला होता है। बस इसी अंश की उपस्थिति 'रामन प्रभाव' का परिणाम है।

यदि आपतित प्रकाश को कणों या 'फोटॉनों' (Photons) से बना हुआ मान लिया जाये तो रामन प्रकीर्णन को आसानी से समझा जा सकता है। फोटॉन की ऊर्जा आवृत्ति की समानुपाती होती है। ये फोटॉन परीक्षण के लिए लिए गये नमूने के अणुओं पर प्रहार करते हैं। इस 'लड़ाई' में अधिकतर फोटॉन अपरिवर्तित ऊर्जा और आवृत्ति सहित बिखर जाते हैं। कुछेक अवसरों पर अणु या तो फोटॉन से कुछ ऊर्जा ले लेते हैं अथवा फोटॉन को कुछ ऊर्जा दे देते हैं। इसलिए बिखरे हुए फोटॉन या तो कम आवृत्ति वाले होते हैं अथवा अधिक आवृत्ति वाले। आवृत्ति में बदलाव ऊर्जा की उस मात्रा का माप होता है, जो प्रकीर्णित अणुओं की प्रारंभिक और अंतिम दशाओं के परिवर्तन में सम्मिलित होता है।

गैसों में 'रामन प्रभाव' अत्यंत मंद होता है। इसलिए प्रायः ठोस और द्रव नमूनों में ही 'रामन प्रभाव' का परीक्षण किया जाता है।

प्रकीर्णित प्रकाश का 'स्पेक्ट्रोमीटर' (Spectro meter) से परीक्षण करने पर एक वर्णक्रम (spectrum) प्राप्त होता है, जिसे 'रामन स्पेक्ट्रम' कहते हैं। इस वर्णक्रम में आपतित किरण के दोनों ओर अलग रेखायें दिखाई देती हैं। इनमें कम आवृत्ति वाली रेखाओं को स्टोक्स रेखायें (Stokes lines) और उच्च आवृत्ति की ओर की रेखाओं को प्रति-स्टोक्स रेखायें (antistokes lines) कहते हैं। आवृत्ति के परिवर्तन की इस घटना को 'प्रकाश और अणुओं का अप्रत्यास्थ टक्कर सिद्धांत' के नाम से जाना जाता है।

आज 'रामन प्रभाव' का उपयोग रसायन विज्ञान के अतिरिक्त भी अनेक क्षेत्रों में हो रहा है। इसके प्रयोग से पदार्थ की मूलभूत प्रकृति तथा संरचना आसानी से मालूम की जा सकती है। लेसर (Laser) की खोज के बाद तो 'रामन प्रभाव' का उपयोग व्यापक हो गया है।

बहुआयामी व्यक्तित्व

रामन का व्यक्तित्व बहु आयामी था। वे प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों की परंपरा के पोषक थे। उनकी देशभक्ति और विज्ञान के प्रति समर्पण अनुकरणीय है। वे खान-पान, रहन-सहन और वेश-भूषा में सादगी पसंद करते थे। शोध के क्षेत्र में तो वे शीर्ष पर थे ही, वे बहुत अच्छे वक्ता भी थे। व्याख्यानों के माध्यम से मंत्रमुग्ध कर देते थे। उन्हें प्रकृति से प्रेम था। फूलों के रंगों पर भी उन्होंने अनुसंधान किया था। प्रकाश तो उनका प्रिय विषय था ही, वे संगीतप्रेमी भी थे।

विज्ञान की चर्चा हो तो वे सारी रात भी बातें कर सकते थे। यहाँ एक घटना का उल्लेख करना चाहूँगा। एक बार प्रसिद्ध भारतीय वनस्पतिविज्ञानी बीरबल साहनी उनके साथ ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। साहनी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि ट्रेन में रामन रात भर लिखते-पढ़ते रहे, किन्तु सुबह उनकी आँखों में नींद का लेशमात्र भी लक्षण नहीं था। उनकी स्वाभाविक चमक बनी हुई थी। साहनी ने रामन का रेखा चित्र भी बनाया था, जिसमें बार-बार रामन की आँखों पर निगाहें टिक जाती हैं। साहनी के अनुसार रामन की आँखों में एक विशेष प्रकार की चमक, एक विशेष प्रकार का आकर्षण था। रामन के सहज, सरल, चुम्बकीय व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जा सकता था।

एक और घटना का उल्लेख करने के बाद मैं अपनी बात समाप्त करना चाहूँगा।

एक बार रामन, रामन संस्थान में, शोध सहायक के पद के लिए उम्मीदवारों का साक्षात्कार ले रहे थे। अंत में जिसे चुना उसे बता दिया और जो नहीं चुने गए, उन्हें भी बता दिया। किन्तु यात्रा व्यय लेने के लिए सभी को संस्थान के लेखाकार के पास भेज दिया। बाद में जब कार्यालय बंद हो चुका था, एक उम्मीदवार उनके कमरे में गया। उसे देखते ही रामन ने कहा, "मैंने तो तुम्हें तभी बता दिया था कि तुम चुने नहीं गए हो। अब कुछ नहीं हो सकता। तुम क्यों आये हो ?" "सर ! आपके लेखाकार ने भूल से मुझे अधिक रुपये दे दिए हैं। रुपयों को गिनने के बाद मैं कार्यालय गया, किन्तु कार्यालय बंद हो चुका है। कृपया अतिरिक्त रुपये आप रख लें।" अभ्यर्थी ने कहा।

रामन उसकी ईमानदारी से इतने अधिक प्रभावित हुए कि पद के लिए अयोग्य पाने के बावज़ूद भी उसे भी चुन लिया। रामन ने कहा, "तुम्हें फ़िज़िक्स कुछ कम आती है तो क्या हुआ। तुम ईमानदार हो इसलिए मैं तुम्हें भी शोध सहायक के लिए चुन रहा हूँ। कल से काम शुरू कर सकते

(शेषांश पृष्ठ 8 पर)

जल, थल तथा मौसम की बातें

स्व० सर सी० वी० रामन

डॉ० रामन की पुण्य स्मृति में उनके एक अंग्रेजी लेख का अनुवाद प्रस्तुत है। अनुवादक हैं डॉ० शिवगोपाल मिश्र.

यह पृथ्वी कृषि तथा मानव सभ्यता की मूलाधार है। इसीलिए इसे हम माता मानते आये हैं– "माता पृथिवी पुत्रोऽहं पृथिव्यां"। मिट्टी का वैज्ञानिक अध्ययन डेढ़ सौ वर्षों से चालू हुआ है। इस मिट्टी की प्रकृति एवं इसके गुणों का वैज्ञानिक अध्ययन अत्यन्त रोचक है।

भौतिक तथा रासायनिक दृष्टियों से भी मिट्टी का स्वभाव अत्यन्त जटिल एवं परिवर्तनशील है। जिस मिट्टी में हम खेती-बाड़ी करते हैं (कृष्य भूमि) उसका अधिकांश विविध आकार वाले छोटे-छोटे कणों से बना है। एक ग्राम मिट्टी में इन कणों की संख्या अनगिनत होती है और इन्हीं कणों के आकार पर मिट्टी का स्वभाव निर्भर करता है। यही कारण है कि मिट्टी का अध्ययन करते समय कणों को पृथक करके इन्हें विविध समूहों में व्यवस्थित किया जाता है। इस विधि को यान्त्रिक विश्लेषण (Mechanical analysis) कहा जाता है। इस विधि से मिट्टी में बालू (महीन, स्थूल), गाद (सिल्ट) तथा मृत्तिका– ये तीन समूह पाये जाते हैं। बालू, गाद तथा मृत्तिका के आकार में उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है अर्थात् मृत्तिका सबसे छोटे कणों वाला समूह है।

मिट्टी में पानी ग्रहण करने की शक्ति होती है और जो मिट्टी पानी धारण नहीं कर सकती, वह बेकार होती है। अतएव मिट्टी में पानी की मात्रा एवं पानी के वितरण का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पहले यह सोचा जाता था कि मिट्टी में जल का आचरण (रवैया) वैसा ही होता है जैसा कि केशिका नली में जल का ऊपर चढ़ना। अतएव यह नली जितनी ही पतली या सँकरी होगी उतनी ही अधिक ऊँचाई तक पानी ऊपर चढ़ सकता है। इस तरह इस भौतिक सिद्धान्त से सूखाग्रस्त होने वाली बलुही मिट्टियों एवं सूखा सहन करने वाली चिकनी मिट्टियों का अन्तर समझाया जा सकता है। किन्तु बाद में यह पता चला कि इस प्रकार के केशिका सिद्धान्त से मिट्टी के आचरण को समझ पाना कठिन है। वास्तव में कणों के बीच में जो शून्य या रिक्त स्थान रहता है उसमें जल प्रवाह कर सकता है, किन्तु कहीं ये रिक्त स्थान इतने सँकरे हो जाते हैं कि उनमें से होकर जल गति नहीं कर पाता। साथ ही इन सँकरे स्थानों से चौड़े खुले स्थानों की ओर जल का प्रवाह हो सकता है, किन्तु विपरीत दिशा में ऐसा नहीं होता।

केशिका सिद्धान्त बतलाता है कि पौधों की जड़ों के द्वारा जल शोषित हो जाने पर उस स्थान की पूर्ति के लिए अधिक नम स्थानों से जड़ों तक पानी नहीं पहुँचता है, किन्तु तथ्य इसके सर्वथा विपरीत है। जल को नहीं अपितु पौधों को अपनी जड़ें जल की खोज करने के लिए दूर दूर तक फैलानी पड़ती हैं। इसीलिए पौधों में जड़ों की इतनी वृद्धि पाई जाती है।

मिट्टी के जल का सही-सही ज्ञान हो जाने पर मिट्टी पर पड़ने वाले वर्षा जल के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। मिट्टी सामान्यतया भुरभुरी अर्थात् यौगिक कणों से युक्त होती है। मिट्टी में जो समुच्चयन पाये जाते हैं वे मृत्तिका अंश के कारण होते हैं। यदि मिट्टी सूखी हो और उस पर वर्षा होवे तो ऊपरी सतह में पाये जाने वाले सूक्ष्म ढोकों (Crumbs) के रंध्रों में यह जल प्रवेश कर जाता है और जो जल अधिक होता है वह ढोकों (ढेलों) के बीच पाये जाने वाले अपेक्षतया बड़े-बड़े रंध्रों से नीचे की परतों में चला जाता है। यह भी सम्भव है कि वर्षा जल की समूची मात्रा मिट्टी की ऊपरी सतह द्वारा अवशोषित हो जाय अथवा पहले से उपस्थित जल को आगे ठेलता हुआ जल-स्तर तक पहुँच जाय। इस तरह मृदा का हर ढोका जल का एक क्षुद्र कोषागार है।

कृषि कार्य तो मिट्टी को तरह-तरह के औज़ारों के द्वारा उलट-पुलट कर इसकी तैयारी करना है। मिट्टी के कणाकार से ही कृषि कार्य में लगने वाले धन का अनुमान भी लगाया जा सकता है। हल जोतते समय मिट्टी जो प्रतिरोध उत्पन्न करती है वह परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। जो मिट्टी जितनी सूखी रहती है उसका जोतना उतना ही कठिन बनता जाता है फलतः वर्षा के आने पर ही जुताई की जा सकती है। यदि मशीन से जुताई होनी है तो इसकी परवाह नहीं करनी पड़ती, किन्तु यदि हलों को पशुओं के द्वारा खींचा जाना है तो स्थिति भिन्न होगी।

यह स्वतः स्पष्ट है कि रंध्रों में गैस भरी रहती है। इस बन्दी गैस की संरचना पर पौधों तथा सूक्ष्म-जीवों द्वारा ऑक्सीजन अवशोषण एवं कार्बन डाइऑक्साइड निकालने का प्रभाव पड़ता है। अतएव CO_2 जितनी ही तेज़ी से निःसृत होगी उतनी ही तेज़ी से पर्यावरण में ऑक्सीजन उसका स्थान ले लेगी। मिट्टी में बन्दी वायु का घटना-बढ़ना मिट्टी के ताप पर निर्भर करेगा, इसलिए मिट्टी में वर्षा के कारण रंध्रों में परिवर्तन, सिंचाई, वाष्पीकरण, हवा की क्रिया– इन सबों का अध्ययन होना चाहिए। पौधों की समुचित वृद्धि के लिए मिट्टी में वातन अत्यावश्यक है। ताप का असर विशेषतया पौधों की वृद्धि पर पड़ता है।

जल की प्रकृति

जिस जल की ऊपर चर्चा की गई है, वह अमृततुल्य है। कहा जाता है कि नील घाटी की सारी मिट्टी नदी के द्वारा निर्मित है। नील नदी अपने साथ बाढ़ के समय काफी गाद लेती चलती है और अन्त में समुद्र में जा गिरती है। मिस्र देश इसी नदी के द्वारा निर्मित हुआ और प्राचीन सभ्यता इसके जल पर ही आश्रित थी।

यही नहीं, जल से देहातों की छटा निराली बन जाती है। चाहे पहाड़ी सोता हो, या सड़क के किनारे का छोटा सा तालाब। इन तालाबों ने दक्षिण भारत की कृषि में महत्वपूर्ण हाथ बँटाया है। पानी से भरे ताल मानो मनुष्य के मुखमण्डल की आँखें हैं। सूर्य के चमकने पर इनमें भरा पानी चटक रंग का रहता है, किन्तु बादल छाने पर धुँधला हो जाता है।

जल में सिल्ट या मिट्टी के सूक्ष्म कणों को वहन करने की प्रभूत शक्ति है। ये सूक्ष्मकण ही इन तालों के जल को विशिष्ट रंग प्रदान करते हैं। ये कण नदी के साथ दूर दूर तक यात्रा करते हैं। जब ये कण समुद्र के नमकीन जल से जा मिलते हैं तो जल का गँदलापन बैठने लगता है। यही कारण है कि समुद्र की यात्रा करते समय ज्यों-ज्यों जहाज़ किनारे से दूर होता जाता है त्यों त्यों पानी का रंग बदलता जाता है। गँदला जल लाल दिखेगा, उसके बाद पीले, हरे रंग दिखेंगे और फिर गम्भीर सागर का नीला रंग। ऐसी मिट्टी जिसमें सूक्ष्मतः विभाजित पदार्थ की प्रचुर मात्रा रहती है सामान्यतया काफी उर्वर होती है।

सतह पर जल के प्रवाह से न जाने कितनी बड़ी-बड़ी शिलाएँ टूट-टूट कर मिट्टी को जन्म देती हैं, किन्तु यही जल अन्य परिस्थितियों में छोटे कणों को बहा कर कृषि की आधारशिला को हिला देता है। मृदा अपरदन की समस्या भारत के अनेक भागों के लिए आँखें खोलने वाली है। यह अपरदन धीरे-धीरे प्रकट होता है– पहले तो पता नहीं चलता किन्तु थोड़े काल के बाद नाले, खड्ड बन जाते हैं जिससे खेती कर पाना कठिन हो जाता है। इस अपरदन के सहायक कारक हैं– मिट्टी का ढाल, मिट्टी के ऊपर से आच्छादक वानस्पतिक तह का न होना और मेड़ों की बंधियों का अभाव। इस अपरदन को दूर करने के लिए खेतों को सीढ़ीदार बनाया जाना चाहिए, समुचित वनस्पतियाँ उगाना चाहिए और कंटूर खेती की जानी चाहिए। इस तरह जल के प्रवाह को प्रारम्भिक अवस्था में रोकने का प्रयास किया जाना चाहिए।

जल को जीवन का आधार माना गया है। हर पशु तथा हर पौधे में कुछ जल रहता है। मिट्टी का जल पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक है अतएव इस जल को बचाकर रखना चाहिए। भारतीय कृषि तो जल पर ही निर्भर है। जल की पूर्ति डगमगाने से वास्तविक उपज नहीं मिल पाती। नदियों का काफी जल समुद्र में जा मिलता है इसलिए इस जल का संग्रह और इसका उपयोग करना आवश्यक है। पानी की समस्या से ही वनीकरण की समस्या जुड़ी है। उपयुक्त वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिए। क्या ही अच्छा हो यदि यातायात तथा परिवहन जलमार्ग से चालू किया जाय। जल से जल विद्युत् बनाई जा सकती है। इससे देहातों के स्तर को उठाने में मदद मिल सकती है। इससे गहराई पर स्थित भौम जल को सतह पर लाया जा सकता है जिससे न्यून वर्षा या अवर्षण वाले स्थानों की समस्याएँ हल की जा सकती हैं।

यद्यपि जल बहुतायत से प्राप्त द्रवों में से है किन्तु पशु

तथा पादप-जीवन का पालक होने से यह असाधारण द्रव है। इसीलिए जल की प्रकृति एवं उसके गुणों के विषय में अधिकाधिक शोध की आवश्यकता है।

मौसम

गँवई-गाँव के निवासी के लिए मौसम का जो अभिप्राय है वह शहराती लोगों के लिए नहीं। उसके लिए तो छड़ी न लेकर छाता लेकर चलने जैसा है। शहराती व्यक्ति के सामने कहाँ दिखती है सूर्य के उदय और अस्त होने की भव्यता। उसकी आँखों के सामने उच्च अट्टालिकाएँ दिखती हैं और विस्तीर्ण आकाश के नाम पर केवल थोड़ा सा भाग। रात्रि के समय तारों के बजाय उसे सिनेमा के पर्दे पर सितारे दिखते हैं। सूर्य, चन्द्र रहें या न रहें, उसकी बला से।

मौसम देहाती जीवन पर अपनी अमिट छाप छोड़ता है। जो लोग जीवन भर खुले आकाश के नीचे रहते हैं वे सदैव उसको निहारते हैं और आकाश पर ही उनका कामकाज होता है तथा उसी पर उनकी सम्पन्नता निर्भर रहती है। कालिदास ने 'ऋतु संहार' में ऋतुओं के जिस चक्र का वर्णन किया है वही भारत के ग्रामीण जनों का जीवन-चक्र है। भारत के विशाल भूखंड कृषि के लिए वर्षा पर आश्रित हैं। आकाश के कपाटों के खुलने-बन्द होने के अनुसार ही मनुष्य पृथ्वी को जोतता है। भारत की कृषि 'मानसूनी जुआ' है। मौसम तथा अर्थतंत्र के बीच जो सम्बन्ध है, उसी को देखते हुए भारत सरकार ने मौसम विभाग खोला। मौसम सम्बन्धी सूचना, विशेषतया सम्भावित तूफानों के आने और उनसे समुद्री तट की जहाज़ों की क्षति तथा विनाशकारी बाढ़ों की सूचना जनता के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार मानसून के विषय में दीर्घकालीन जानकारी आवश्यक है। बाद में हवाई उड़ानों के लिए भी मौसम-ज्ञान आवश्यक बन गया। युद्ध के दिनों में मौसम की विस्तृत जानकारी चाहिए किन्तु इसको प्रकट नहीं होने दिया जाता। कृषि की सहायता के लिए कृषीय मौसम विज्ञान का अनुभाग स्थापित हुआ जिससे प्रतीत होता है कि मौसम विज्ञान विभाग ने मिट्टी के जोतने वालों को भुलाया नहीं। उन्हें भी अत्यन्त प्राचीन काल से मौसम की जानकारी रही है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए मौसम विज्ञान पर जितना बल दिया जाय वह थोड़ा ही है किन्तु खेद की बात है कि अभी तक किसी विश्वविद्यालय ने इस विषय को पढ़ाने या इसके विषय में शोध करने की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। भारत में मौसम संबंधी ज्ञान के प्रचार-प्रसार की नितान्त आवश्यकता है और विश्वविद्यालयों में विशेष योग्यता प्राप्त करने की आवश्यकता है।

भारतीय मौसम विज्ञान साभिप्राय है। इस देश की उत्तरी सीमा पर हिमालय की ऊँची श्रृंखलाएँ हैं। दक्षिण में दकन प्रायद्वीप एक ओर से अरब सागर से और दूसरी ओर बंगाल की खाड़ी से घिरा है। इसके फलस्वरूप भारत का मौसम विज्ञान प्रभावित हुआ है। किन्तु भारतीय मौसम विज्ञान विश्व विज्ञान का अंग स्वरूप है अतएव उससे सम्बद्ध करके ही इसका अध्ययन करना होगा।

मौसमविज्ञानी के लिए पृथ्वी के वायुमण्डल के दाब, ताप तथा आर्द्रता– ये तीनों महत्वपूर्ण कारक हैं। यदि पृथ्वी की सतह पर दाब के वितरण में अन्तर आता है तो हवाओं की क्षैतिज गति होने लगती है। यदि एक ही दिशा से लगातार हवाएँ चलें तो पृथ्वी की सतह के किसी एक अंश में हवाएँ पट (समुचित हो) जायँ और जहाँ से हवाएँ चल रही हैं वह शून्य बन जाय। किन्तु ऐसा संभव नहीं, अतएव विपरीत गति को भी होना चाहिए। ऐसी गति पृथ्वी के वायुमण्डल के ऊपरी भागों में होती है। यह जानने के लिए कि पृथ्वी की सतह पर क्या घटित हो रहा है, यह जानना आवश्यक है कि पृथ्वी से काफी ऊपर क्या हो रहा है। इसीलिए मौसम विज्ञान में ऊपरी वायु का अध्ययन गुब्बारों को छोड़कर किया जाता है। जिन्हें हम दक्षिणी-पश्चिमी मानसून या उत्तरी-पूर्वी मानसून कहते हैं, वे मौसम सम्बन्धी आवर्तन हैं जिनसे वर्षा की मात्रा निश्चित होती है। मानसून की वर्षा सतत न होकर अन्तराल देकर होती है। इसका निर्धारण उन अवनमनों (depressions) से होता है जो समुद्र के ऊपर बनते हैं और फिर स्थल की ओर बढ़ते हैं, तभी अपने साथ प्रचुर नमी भी लेते आते हैं। ऐसे अवनमनों के बनने-बिगड़ने से ही कृषि प्रभावित होती है अतएव भारतीय मौसम विज्ञान में इनकी प्रकृति एवं इनकी गति पर बल दिया जाता है।

भारत के विभिन्न भागों में मौसम की भिन्नता देखी जाती है। इस तरह से मौसम सम्बन्धी जितने प्रकार के आचरण हो सकते हैं वे सब के सब भारत में प्रदर्शित होते हैं। उदाहरणार्थ, हम वर्षा को ही लें। चेरापूँजी में अत्यधिक वर्षा होती है और रेगिस्तानों में सबसे कम।

नई सहस्राब्दि में नया क्या ?

निमिष कपूर

देश भर में नई सहस्राब्दि का सामाजीकरण, आर्थिकीकरण, राजनीतिकरण और शोर-शराबाकरण हो रहा है .....। एक बड़े उत्सव के रूप में नई-नई उमंगें सँजोयी जा रही हैं.......। पर यह विचार का विषय है कि हम बीसवीं शताब्दी से 21वीं शताब्दी में क्या नया ले जा रहे हैं, जिस पर हम खुश हो रहे हैं या उत्सव मना रहे हैं ?

हमारे वही आचार-विचार, कर्म-अकर्म, राग-द्वेष, सुख-दुख व समस्त मानवीय व्यवहार नई शताब्दी में जा रहे हैं। सभी कुछ पहले जैसा है। छल-कपट, भ्रष्टाचार, हमारे दानवीय कर्म....., सब कुछ ज्यों का त्यों 21वीं सदी में प्रवेश कर रहा है, फिर हम क्यों उत्साहित व प्रफुल्लित हो रहे हैं ? आज यह सोचना होगा।

हज़ारों-लाखों भूखों-नंगों के देश में नई सहस्राब्दि के उत्सव वास्तव में हास्यास्पद लगते हैं। हमारा धीमा जीवन स्तर, आरामपरस्त मानसिकता व आसान अवैज्ञानिक विचार हमें नई सहस्राब्दि में क्या नया दे पायेंगे, यह भी चिन्तन का विषय है। हमारा भूत व वर्तमान हमें कैसा भविष्य देगा आज इस बात पर निदिध्यासन की आवश्यकता है।

यह ठीक है कि नई सहस्राब्दि के आगमन पर इतिहास पुरुष के तौर पर हमारा मानव समुदाय खुशियों की मधुशालाओं में लीन है। एक सहस्राब्दि से दूसरी सहस्राब्दि में क़दम रखना हम भारतीयों के लिये गर्व की बात हो सकती है पर आज समय आ गया है प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा नवीनीकृत किये गये नारे पर सामाजिक शोध करने का, जिसमें जय जवान, जय किसान के साथ जय विज्ञान को शामिल किया गया है। वास्तव में आज भारतीय जन मानस के अवैज्ञानिक मानस पटल पर "जय विज्ञान" शब्द नारा मात्र इंगित हुआ है। आज हम मानव अपनी जीवन शैली, अपने विचार, क्रियाकलाप और मस्तिष्क मशीनरी को विज्ञान से दूर कर नई सहस्राब्दि के स्वाद चखना चाहते हैं।

वास्तव में आज भी भारतीयता का आधार-स्तम्भ विज्ञान ही है जो हमारे पुराणों और वेदों का अलंकार भी है पर क्षोभ का विषय है कि हमारे भारतीय नागरिक विज्ञान से हमेशा हाथ झाड़ते आये हैं। यहाँ विज्ञान का अर्थ कल-कारखानों, विमान-मिसाइलों, परमाणुबम या रसायन, भौतिकी से न होकर जीवन जीने की कला के विज्ञान से है। जीवन का विज्ञान वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी स्वाभाविकता से व समस्त मानवीय श्रेष्ठताओं से तादात्म्य स्थापित कर सकता है। जीवन का विज्ञान जीवन जीने की कला सिखाता है, समाज को, देश को, विश्व को अपनी उपादेयता से परिचित कराता है और अन्ततोगत्वा हमारे मस्तिष्क को एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा के लायक बनाता है। जीवन विज्ञान की मान्यताओं के बगैर नई सहस्राब्दि में कुछ नया पाने की तमन्ना रखने के हम हक़दार नहीं हैं।

विज्ञान का अर्थ किसी वस्तु के सन्तुलित व व्यवस्थित ज्ञान से है, जिसमें पूर्ण ज्ञान का अनुभव हो। आज भारतीय विज्ञान ने हवाई जहाज़ से लेकर परमाणु बम और अन्तरिक्ष

उपग्रह-प्रक्षेपणयान बना लिये हैं। यह काबिले तारीफ है, पर किसी भी विकासशील देश के विकास के लिये वहाँ के नागरिकों की विज्ञान के नवीनीकरण में सहभागिता आवश्यक है। यहाँ प्रौद्योगिकी को समझना भी आवश्यक है। वास्तव में विज्ञान व प्रौद्योगिकी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विज्ञान की प्रयोगशालाओं में विज्ञान के प्रयोगों व समीकरणों को पूरा किया जाता है। जनता के उपयोग के लिये उस विज्ञान प्रयोग को मॉडल के रूप में बाज़ार में उतारा जाता है जो प्रौद्योगिकी कहलाता है। जैसे वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में भिन्न प्रयोग करके कोई उन्नतिशील किस्म का बीज तैयार किया। जब यह बीज बाज़ार में आयेगा तो इसका प्रचार नई प्रौद्योगिकी के बीज के रूप में होगा, अर्थात् विज्ञान और प्रौद्योगिकी एक दूसरे की पूरक भी हैं।

किसी भी देश की प्रौद्योगिकी तब तक सफल या लाभप्रद नहीं हो सकती जब तक उस प्रौद्योगिकी को देश की जनता के बीच तन-मन-धन से न अपनाया जाये। किसी भी वैज्ञानिक का किसी नई प्रौद्योगिकी को विकसित करने के पीछे जो उद्देश्य निहित होता है उसमें देश के विकास के साथ उपभोक्ता की आवश्यकता व सामाजिक दृष्टिकोण भी शामिल रहता है। किन्तु भाग्यवादियों व अशिक्षितों के जिस देश में गरीबी की सीमा के नीचे भी नागरिक रहते हैं, वहाँ प्रौद्योगिकी संचार का प्रश्न सन्देहास्पद है। पढ़े-लिखे वर्ग का भी मात्र 35-40 % वर्ग ऐसा है जो प्रौद्योगिकी को समझने या उससे जुड़ने का प्रयास करता है, शेष के लिए प्रौद्योगिकी मात्र पुस्तकों/पत्रों में प्रकाशित समाचार हैं। ऐसे में जब हमारे ग़रीब व ग़रीबी की रेखा से नीचे बसे बदनसीब जिन्हें कि विज्ञान तो दूर जीवन जीने की कला से सरोकार नहीं है, तो हम नई सहस्राब्दि में कुछ नये की कैसे सोच सकते हैं ... !

ग़रीबी की रेखा के नीचे रहने वालों का अंग्रेज़ी तात्पर्य ''अन्डरडॉग्स'' प्रो० अमर्त्य सेन ने अपनी लेखनी में प्रयोग किया है। ग़रीबी का स्वरूप सुधारने के आर्थिक पहलुओं पर भी प्रो० सेन ने जोर दिया है, पर ''इण्डिया दैट इज़ भारत'' प्रो० सेन के विचारों से कम अपितु उनके 'नोबेल पुरस्कार' से अधिक गौरवान्वित हुआ। प्रो० सेन को देश में सम्मान/पुरस्कारों से नवाज़ा गया, उनके विचारों आदि का प्रकाशन हुआ पर उस पर भविष्य के चिन्तन के लिये सभी दर किनार हो गये और बेचारे ''अन्डरडॉग्स'' (ग़रीबी की रेखा के नीचे रहने वाले) का सुधार प्रो० सेन के साहित्य में ही बसा रह गया।

यदि आज देश में वैज्ञानिक तेवर को सर्वसुलभ न किया गया तो स्थिति में सुधार सम्भव नहीं। आज जो जानकार हैं, ज्ञानी-विज्ञानी हैं, उन्हें अज्ञानी की मदद करनी होगी। आज जो कम जानकार हैं वे ज्ञानियों की मदद को सदैव तत्पर हैं फिर ज्ञानी उसकी मदद क्यों नहीं कर सकते ? सब्ज़ी वाला हमारे दरवाज़े तक हमें सब्ज़ी बेचने आता है तो क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं कि उसे हम कुछ विचार या उसके जीवन के किसी भी पहलू को प्रभावित करने वाली जानकारी दे सकें ? हम हज़ारों रुपये अपने आराम में उड़ा देंगे पर रिक्शेवाले को चार आना अधिक देने में दिक्कत अनुभव करते हैं... ऐसा क्यों ? यह हम ज्ञानी-विज्ञानियों की अवैज्ञानिकता/अज्ञानता का ही प्रदर्शन है ..., यही वह स्थितियाँ हैं जहाँ हमारे ज्ञान-विज्ञान का संचार/सम्प्रेषण बाधित होता है। यही हमारे जीवन के असंतुलित व अप्रबन्धित स्तर को दर्शाता है जिसके चलते हम नई सहस्राब्दि में कुछ नया कैसे कर सकते हैं ?

भारत की संसद ने 1958 में विज्ञान नीति प्रस्ताव भी पारित किया जिसमें जन सामान्य में विज्ञान के प्रचार-प्रसार पर बल देने की बात कही गयी थी। इस नीति के सन्दर्भ में सुविख्यात शिक्षाविद प्रो० भूमित्र देव कहते हैं कि आज़ादी के 11 वर्ष बाद सन् 1958 में पं० जवाहर लाल नेहरू के प्रयास से विज्ञान नीति प्रस्ताव (साइंस पॉलिसी रिजोल्यूशन) संसद में पारित हुआ, जो कि देश के लिये गर्व की बात थी। इस प्रस्ताव के प्रमुख उद्देश्यों में आम व्यक्ति में वैज्ञानिक तेवर उत्पन्न करना शामिल था। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों व अन्य तकनीकी केन्द्रों को बढ़ाने में नेहरू जी ने मदद की, जिससे कि प्रौद्योगिकी की एक फौज़ तैयार हो सके जो यह स्पष्ट कर सके कि आम व्यक्ति को विज्ञान से क्या लाभ हो सकता है। यहाँ अर्थशास्त्र का ''पर्कोलेशन सिद्धान्त'' लागू किया गया, जिसमें यह प्रयास किये गये कि सम्पन्नता रिस कर आम व्यक्ति के पास पहुँचेगी जिससे उसके दिन फिर जॉयें। दुर्भाग्यवश यह भारत में नहीं हुआ। भारत में सूचना का प्रवाह अनियमित है, सूचना कैसे प्रवाहित होती है इसका

अनुभव लोगों के पास नहीं है। सूचना का प्रसार गरीबी हटाने के लिये होता है पर जनसाधारण उससे समान रूप से लाभान्वित नहीं हो पाता। वास्तव में लाभदायक सूचना का प्रवाह जितना तीव्र होगा, ग़रीबी उतनी ही तेज़ रफ़तार से कम होगी।

सूचना के विज्ञान का रिसाव कैसे हो ? इस तथ्य/प्रश्न का उदाहरण देते हुए प्रो० देव कहते हैं कि यूरोपीय देशों में एक ट्रेवेल एजेन्सी से कुछ कार मालिक या अन्य लोग जिनके पास कार/गाड़ी है, सम्पर्क रखते हैं। जब वे कार से किसी दूसरे शहर की यात्रा करते हैं तो ट्रेवेल एजेण्ट को सूचना दे देते हैं कि उनकी कार में दो या तीन (परिस्थिति अनुसार) सीटें खाली हैं, यदि कोई यात्री हो तो उसे सूचना दे दें। इस प्रकार यात्री ट्रेवल एजेन्सी से कार मालिक का पता प्राप्त कर कम समय में सुविधा से अपने गन्तव्य तक पहुँच जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में बीमा कम्पनी भी संलग्न रहती है जो कि यात्रा के दौरान किसी भी तरह की दुर्घटना की भरपायी को तत्पर रहती है। इस प्रकार पूर्ण प्रक्रिया में ट्रेवल एजेण्ट सहित चार लोग (कार मालिक, यात्री व बीमा कम्पनी) एक साथ लाभान्वित होते हैं। यह है सूचना का प्रसार और वैज्ञानिक तेवर का रिसना, जिसकी भारत को प्रबल आवश्यकता है। प्रो० देव कहते हैं कि आज जो उपयोगी सूचना जहाँ तक पहुँचनी चाहिए वहाँ तक नहीं पहुँच पा रही है। ग़रीब रिक्शे-वाला हमें ढोता है, पसीना बहाता है। यदि उसके रिक्शे में गियर की सुविधा, जो भारत में ज्ञात है, लग जाय तो उन्हें कुछ आसानी हो सकती है, पर यह उपयोगी सूचना उन तक नहीं पहुँच पा रही है।

वास्तव में पिछले कुछ दशकों में भारत ने सॉफ्टवेयर (कम्प्यूटर) से लेकर उपग्रह प्रक्षेपणयान के निर्माण तक अपना विज्ञान परचम विश्व में लहराया है। परन्तु मानव की मूलभूत समस्याओं, उसके जीवन की कठिनाइयों और ग़रीबी से भीगी पलकों की फिक्र का अभी तक कोई नीतिकरण नहीं हो पाया है यद्यपि नई सहस्राब्दि के आगमन पर प्रधानमंत्री ने सूचना का समान अधिकार सभी को दिलाने की बात कही है, जो कि भारतीय जीवन के विज्ञान वैविध्य में आशा की नई किरण है। सम्भवतः सूचना के सबल सम्प्रेषण से हमारा निर्बल वर्ग जाग सके या मलिन बस्तियाँ आबाद हो सकें। अब देखना यह है कि हमारा लोकतंत्र नई सहस्राब्दि में क्या कुछ नया कर गुरजने की क्षमता अर्जित कर पायेगा और विज्ञान सम्प्रेषण से 'अन्डरडॉग्स' का कितना तादात्म्य हो पायेगा।

–35, चाँदगंज गार्डन, लखनऊ

पृष्ठ 2 का शेष

हो। थोड़ी अधिक मेहनत करना।'' ऐसे सहृदय महामानव थे सर चन्द्रशेखर वेंकट रामन। फिर कृतज्ञ राष्ट्र ने यदि 'रामन प्रभाव' की खोज के दिन 28 फरवरी को रामन के सम्मान में 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' घोषित कर दिया तो इसमें आश्चर्य क्या ?

21 नवम्बर 1970 को बेंगलूर में रामन का पार्थिव शरीर अनन्त में विलीन हो गया, किन्तु उनकी कीर्ति अक्षुण्ण है। वे आने वाली पीढ़ियों के लिए सदैव प्रेरणा के स्रोत बने रहेंगे। इन शब्दों के साथ इस पावन 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' पर मैं सर रामन की स्मृति को नमन करता हूँ।

–विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

भावी कृषि प्रौद्योगिकी के विकास और प्रसार में कृषकों की सहभागिता

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह

लगभग 6 लाख गांवों में बसा भारत एक विशाल कृषि-प्रधान देश है। इसकी अर्थव्यवस्था, प्रगति और खुशहाली मुख्यतः कृषि पर ही आधारित है। सर्वाधिक महत्व की बात यह है कि कृषि हमारे जीवन का आधार है। इसी से हमें खाद्य मिलता है जो हमारे जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता है। अतः किसी भी अवस्था में कृषि की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यही कारण है कि हमारी सरकार इसके विकास की दिशा में सतत् जागरूक रही है। यह इस बात से स्पष्ट है कि अब तक की हमारी सभी पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि के विकास पर सर्वाधिक बल दिया गया है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यह प्रक्रिया भविष्य में भी बनी रहेगी।

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। लोकतंत्र में मतदान के आधार पर सरकारें बनती हैं जिन पर देश का भविष्य निर्भर करता है। हमारे देश के मतदाताओं में सबसे बड़ा तबका कृषकों का है। अतः यह उचित और तर्कसंगत ही नहीं बल्कि आवश्यक है कि सभी स्तरों पर और विकास के सभी क्षेत्रों में नीति निर्धारण तथा कार्यक्रमों के नियोजन, कार्यान्वयन और मूल्यांकन में उनकी भरपूर सहभागिता हो।

जहाँ तक कृषि विकास का प्रश्न है, कृषक ही इसके वास्तविक सूत्रधार हैं क्योंकि वे ही तो चिलचिलाती धूप, कड़कड़ाती ठंड और घनघोर वृष्टि में भी उत्पादन बढ़ाने के मोर्चे पर अपना खून और पसीना बहाते हैं। उन्हें कृषि विकास कार्यक्रमों का भरपूर और अपेक्षित लाभ तभी मिल सकता है जब वे इनका अहम हिस्सा बनें, सक्रिय भागीदार बनें। कृषि विकास की प्रक्रिया में आशातीत तीव्रता लाने के लिए तो उनकी सहभागिता अनिवार्य है ही।

कृषि प्रौद्योगिकी के विकास में कृषकों की भूमिका

हाल के वर्षो में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने इस विषय पर काफी चिन्तन किया है और पहल भी। इसी क्रम में 'संस्थान ग्राम सम्पर्क कार्यक्रम' के अन्तर्गत कृषि प्रौद्योगिकी का आकलन और परिमार्जन परिषद् द्वारा एक सही और सराहनीय प्रयास है।

कृषि प्रौद्योगिकी की विकास प्रक्रिया में कृषकों की सहभागिता के अनेक लाभ हैं जिनमें कुछ इस प्रकार हैं :—

(1) कृषि प्रौद्योगिकियों का सही मूल्यांकन एवं परिष्करण,

(2) बदलती परिस्थितियों के अनुरूप भावी प्रौद्योगिकियों के स्वरूप का निर्धारण, और

(3) आधुनिक प्रौद्योगिकियों से उत्पन्न समस्याओं की पृष्ठभूमि में पारंपरिक तकनीकों का अभिज्ञान।

प्रायः यह कहा जाता है कि लगभग 70 प्रतिशत अनुशंसित प्रौद्योगिकियों को कृषकों ने अपनाया ही नहीं है और शेष 30 प्रतिशत प्रौद्योगिकियों को साधन-सम्पन्न कृषकों ने भी आंशिक रूप से ही अपनाया है। इन आंकड़ों का कोई ठोस आधार हो या न हो, यह वास्तविकता है कि कृषि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों को देश के सभी भागों में और कृषक समुदाय के सभी वर्गों द्वारा समान रूप से नहीं अपनाया गया है जिसके फलस्वरूप उपलब्ध और कृषकों द्वारा अंगीकृत प्रौद्योगिकियों के बीच बहुत बड़ा अन्तर है। प्रश्न उठता है कि सिफारिश की गई प्रौद्योगिकियों को बड़े पैमाने पर किसानों द्वारा न अपनाये जाने के कारण क्या हैं ? साधारणतया हम इस प्रश्न का उत्तर कभी कृषकों की रूढ़िवादिता, अंधविश्वास और अज्ञानता में ढूंढते हैं तो कभी कृषि प्रसार कार्यकर्त्ताओं की अकुशलता, अक्षमता और अनिष्ठा में और फिर कभी कृषकों के हित में सरकार की नीतियों के उदार न होने में। किसानों द्वारा प्रौद्योगिकियों के न अपनाए जाने के ये कारण हो सकते हैं, बल्कि हैं, पर हम

इस सच्चाई के लिए बिल्कुल अनदेखी करते हैं कि आज शायद सबसे बड़ा कारण प्रौद्योगिकियों की अनुपयुक्तता है। कृषकों के लिये किसी भी प्रौद्योगिकी की उपयुक्तता का मापदंड उस प्रौद्योगिकी के विषय में उनके व्यावहारिक अनुभव से अच्छा और क्या हो सकता है। ऐसी प्रौद्योगिकियों के अनगिनत उदाहरण है जिन्हें कृषकों ने अनुपयुक्त होने के कारण बहिष्कृत किया है या आंशिक रूप से अपनाया है। इसके विपरीत ऐसी भी प्रौद्योगिकियां है जिनके प्रचार-प्रसार के लिए वस्तुतः कोई प्रयास नहीं किया गया, फिर भी वे आज कृषकों में बेहद लोकप्रिय हैं। मिसाल के तौर पर, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आज शायद ही कोई ऐसा किसान मिलेगा जिसके पास गहाई मशीन या चारा काटने की मशीन न हो। आज पूरे देश में नलकूपों का जाल-सा बिछा हुआ है। यह भी उन प्रौद्योगिकियों में है जिनके प्रसार के लिए प्रयास की कोई आवश्यकता नहीं हुई।

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि किसी भी प्रौद्योगिकी की उपयोगिता और सार्थकता इस बात पर निर्भर करती है कि वह स्थान विशेष की कृषि जलवायु और कृषकों की परिस्थितियों, समस्याओं, आवश्यकताओं और संसाधनों के कितना अनुरूप है। इस तरह की प्रौद्योगिकियों के विकास के लिए कृषकों की सहभागिता आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। अनावश्यक, अव्यावहारिक और अहितकर प्रौद्योगिकियों का विकास न हो, इसके लिए भी किसानों की साझेदारी जरूरी है। इस संदर्भ में संप्रति बहुचर्चित 'टर्मिनेटर' बीज की यहाँ चर्चा करना शायद अप्रासंगिक न होगा।

दो वर्ष पूर्व अमेरिका के वैज्ञानिकों ने 'टर्मिनेटर' बीज बनाने की जो नई प्रौद्योगिकी विकसित की है उस पर आज सारे विश्व में प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की गई। इस चमत्कारिक प्रौद्योगिकी का विकास अमेरिका के कृषि विभाग और मिसिसीपी की एक विश्वविख्यात कपास बीज कम्पनी (डेल्टा और पाइन लैंड कम्पनी) ने संयुक्त रूप से आनुवंशिक अभियंत्रण द्वारा किया है और इसका एकस्व अधिकार भी प्राप्त कर लिया है। इस प्रौद्योगिकी द्वारा तैयार किये गये बीज के पौधों से प्राप्त बीज में अंकुरण क्षमता नहीं होती, भले ही उनमें अन्य गुण या अवयव यथावत बने रहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि किसानों को बोने के लिए यह बीज हर मौसम में और एक ही कम्पनी से प्राप्त करना होगा। हम सोच सकते हैं कि हमारे कृषकों के लिए ऐसे बीज के कितने भयंकर परिणाम होंगे और उनका कितना शोषण होगा। हमारे किसान तो फ़सल काटने के बाद अगली बोआई के लिए अपना ही बीज रखते हैं और वे ऐसा पीढ़ियों से करते आ रहे हैं। आमतौर पर वे चार-पांच वर्षों में एक बार बाहर से बीज खरीदते हैं - किसी भी विश्वसनीय स्रोत से। प्रौद्योगिकी के विकास और प्रसार में उनकी प्रभावी सहभागिता रहने पर शायद कभी भी इस देश में न तो 'टर्मिनेटर' बीज बनाने जैसी प्रौद्योगिकी का विकास होगा और न ऐसे बीज़ का आयात और प्रसार।

यह संतोष की बात है कि हमारे वैज्ञानिक कृषकों के हित को ध्यान में रखते हुए सामूहिक और सार्वजनिक रूप से 'टर्मिनेटर' प्रौद्योगिकी और इससे तैयार होने वाले बीज का विरोध करते आ रहे हैं। पर भय है कि कहीं ऐसा न हो कि कल उच्च पदों पर आसीन कुछ प्रभावी और सशक्त वैज्ञानिक कृषकों के हित की उपेक्षा कर 'टर्मिनेटर' बीज के हिमायती बन जाएं और कृषकों के साथ-साथ केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक के भूतपूर्व निदेशक डॉ. आर. एच रिछारिया जैसे अग्रणी और लब्धप्रतिष्ठ पौध प्रजनक की बलि चढ़ाने पर उतारू हो जाएं। डॉ. रिछारिया का यदि कोई दोष था तो बस इतना कि उन्होंने देश के कानून की अवहेलना कर बिन क्वारंटाइन प्रमाण पत्र के विदेशों से धान के बीज आयात करने के निर्णय का विरोध किया जिसके कारण उन्हें अन्तराष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान, मनीला (फिलिपीन्स) के तत्कालीन महानिदेशक डॉ. रोबर्ट चांडलर तथा देश और विदेश के ऐसे कुछ अन्य प्रभावशाली वैज्ञानिकों का कोपभाजन बनना बड़ा।

परिस्थितियां सदैव समान नहीं रहतीं। नई परिस्थितियों में नई समस्याएं और संभावनाएं उत्पन्न होती हैं, लोगों की आवश्यकताएं और उनकी प्राथमिकताएं बदलती हैं और इन सबों के अनुरूप शोध और विकास को नई दिशा देने की आवश्यकता होती है। यदि हम कृषि विकास के वर्तमान स्तर को स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरंत बाद की स्थिति की पृष्ठभूमि में देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विगत पांच दशकों में परिस्थितियां बड़ी तेज़ी से बदलीं हैं। जब हम स्वतंत्र हुए उस समय हमारे देश में मात्र पांच करोड़ टन खाद्यान्न का उत्पादन होता था, जबकि आज लगभग बीस करोड़ टन खाद्यान्न का उत्पादन होता है।

स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद हमारे देश के समक्ष जटिल समस्या थी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जनसंख्या को भरपेट

भोजन्न उपलब्ध कराना। चूंकि उस समय हमारे देश में खाद्यान्न का इतना उत्पादन नहीं होता था कि हम अपनी आवश्यकता पूरी कर सकें, हमारे सामने इसके सिवा और कोई चारा नहीं था कि हम दूसरे देशों के सामने अपनी झोली फैलायें। यह विषम स्थिति लगभग ढाई दशकों तक बनी रही।

हमें इस बात का गर्व है कि आज हम खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर ही नहीं बल्कि निर्यात करने की स्थिति में हैं। इतना ही नहीं, हमारे गोदामों में खाद्यान्न के भंडारण की ऐसी व्यवस्था है कि हम आये दिन बाढ़-सूखे आदि के कारण उत्पन्न आपात्‌कालीन स्थिति का सहज ही सामना कर सकते हैं।

यह विवाद का विषय नहीं कि आधुनिक प्रौद्योगिकियों विशेषकर अधिक उपज की क्षमता वाली विभिन्न फ़सलों की किस्में, रासायनिक उर्वरक, पेस्टनाशी दवाएं और सिंचाई के साधनों के कारण हमने कृषि के क्षेत्र में अत्यन्त सराहनीय प्रगति की है। प्रश्न है किस कीमत पर ? इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आधुनिकीकरण के पागल और अंधेरे दौर में हमने पर्यावरण और मूल प्राकृतिक सम्पदाओं जैसे मृदा, जल और जैविक तथा आनुवंशिक विविधताओं पर सांघातिक प्रहार किया है। आज हमारे देश की शायद सबसे गंभीर समस्या कृषि उत्पादन में स्थायित्व बनाए रखने की है, टिकाऊपन लाने की है और इस समस्या का सीधा संबंध पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के सरंक्षण से है। वस्तुतः ये समस्याएं आज भारत ही नहीं बल्कि समस्त विश्व के लिए गंभीर चिन्ता का कारण बन गई हैं। कृषि विकास के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकियों का विवेकसम्मत प्रयोग उपयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है, पर बिना अतीत में गए इन प्रौद्योगिकियों के कारण उत्पन्न समस्याओं का निदान संभव नहीं। सुरक्षित भविष्य के लिए वर्तमान स्थिति और समय का तकाज़ा है कि हम पर्यावरण की सुरक्षा और टिकाऊ खेती के लिए कालान्तर में कृषकों द्वारा विकसित ठोस विधियों और तकनीकों के महत्व और योगदान को न केवल अच्छी तरह जानें और समझें बल्कि उन्हें कार्यरूप दें। कृषि वैज्ञानिकों का शोध तो विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में स्थित प्रयोगशालाओं और सांस्थानिक फार्मों तक ही सीमित होता है जबकि कृषक अपने खेतों पर ही अनुसंधान करते हैं और अपनी विशेष परिस्थितियों, समस्याओं और आवश्यकताओं के अनुसार कृषि विधियों और तकनीकों का विकास करते हैं। परीक्षण के आधार पर एक क्षेत्र के कृषक दूसरे क्षेत्रों के कृषकों द्वारा अपनाई जा रही विधियों का भी लाभ उठा सकते हैं और उठाते हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की स्वर्ण जयंती संगोष्ठी के अवसर पर हमारे देश के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी ने अपने उद्घाटन भाषण में कृषि वैज्ञानिकों को सम्बोधित करते हुए कुछ इस तरह कहा :

"आप कृषकों के साथ निकट का सम्बन्ध स्थापित कर उनके अपार व्यावहारिक ज्ञान से बहुत कुछ सीख सकते हैं। आप नियंत्रित स्थितियों में विधिवत शोध करते हैं, जबकि कृषक प्रकृति रूपी प्रयोगशाला में अनौपचारिक ढंग से अनुसंधान करते हैं।"

राष्ट्रपति ने वैज्ञानिकों और कृषकों द्वारा किए जा रहे अनुसंधानों के सम्मिश्रण और वैज्ञानिकों द्वारा कृषकों के खेतों पर अनुसंधान करने की आवश्यकता बताई।

कृषि वैज्ञानिकों की यह मानसिकता दूर होनी चाहिए कि पारंपरिक कृषि विधियों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। उनसे यह तो अपेक्षित है कि वे इन विधियों की त्रुटियों को दूरकर इन्हें परिष्कृत करने का प्रयास करेंगे। पर उन विधियों को जो समय की कसौटी पर प्रभावी सिद्ध हुई हैं, उन्हें महज इसलिए अस्वीकार करना या मान्यता न देना कि उन्होंने इन पर या इनसे सम्बद्ध समस्याओं पर कोई शोध नहीं किया है, न तो उचित है और न तर्क संगत। ये विधियां कितनी प्रमाणिक या अप्रमाणिक तथा प्रभावी या अप्रभावी हैं, यह इनके परीक्षण के आधार पर तय किया जाना चाहिए, अटकलबाजी या बेबुनियाद कल्पना के आधार पर नहीं। जहाँ तक तर्क संगत का प्रश्न हैं, हालाँकि यह कहना वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध लगता है, सदैव तर्क के आधार पर न तो हर समस्या का प्रभावी निदान ढूँढा जा सकता है और न किसी समस्या के अनुभव जनित प्रभावी निदान को नाकारा करार दिया जा सकता है। एलोपैथी में आज भी ऐसे बहुत से औषध हैं जो रोग विशेष के विरुद्ध प्रभावी तो हैं पर उनके प्रभावी होने के कारणों का पता नहीं। आवश्यकता है विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में अपनाई जा रही पारंपरिक कृषि विधियों के संकलन, प्रलेखन और परीक्षण की।

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि वैज्ञानिकों को विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों की समस्याओं और उनके निदान के लिए

कृषकों द्वारा अपनाई जा रही आधुनिक एवं पारंपरिक कृषि विधियों के विषय में अपने ज्ञान के क्षितिज को बढ़ाना चाहिए ताकि वे अपने शोध कार्यों को सही दिशा दे सकें। उन्हें आधुनिक और पारंपरिक कृषि विधियों की गहराई में जाकर गुण-दोष के आधार पर विवेचनात्मक समीक्षा करनी चाहिए। सामान्यतः आज भी कृषि वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि कृषकों से वे क्या सीखेंगे। उन्हें इस पूर्वाग्रह और प्रवृत्ति से मुक्त होकर पर्यावरण के बढ़ते प्रदूषण और कृषि के स्थायित्व पर इसके प्रतिकूल प्रभाव जैसी गंभीर समस्याओं के सन्दर्भ में कृषि की पारंपरिक विधियों की प्रासंगिकता पर गंभीर रूप से विचार करना चाहिए और कृषकों के व्यावहारिक अनुभव का लाभ उठाने के लिए तत्पर रहना चाहिए। उन्हें अपने मस्तिष्क से यह विचार निकाल देना चाहिए कि कृषकों से कुछ सीखना उनकी गरिमा के विरुद्ध होगा। ज्ञान पर, चाहे वह अनुभव जनित हो या सैद्धान्तिक, किसी का एकाधिकार नहीं हो सकता। यह किसी को भी सिखायें पर उससे सीखने की भी प्रवृत्ति रखें।

कृषि वैज्ञानिकों के ज्ञान में वह व्यावहारिकता नहीं होती जो कृषकों की सूझबूझ और अनुभव जनित ज्ञान में होती है। अतः उन्हें अपने सैद्धान्तिक ज्ञान के उच्च सिंहासन से नीचे उतरकर आम किसानों के व्यावहारिक ज्ञान को समझने और परखने की कोशिश करनी चाहिए। उन्हें कृषकों द्वारा अपनाई जा रही कृषि विधियों का विवेचनात्मक विश्लेषण तो करना ही चाहिए, आवश्यकतानुसार परीक्षण के आधार पर उनकी उपयोगिता सुनिश्चित करनी चाहिए। कृषकों से तटस्थ, उनकी मूल समस्याओं से अनभिज्ञ और उनके अनुभव के जनित ज्ञान से अनजान रहकर वांछित और अपेक्षित प्रौद्योगिकियों का विकास करना कठिन है।

भारतवर्ष विश्व के उन देशों में है जहाँ आज से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व कृषि की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। यह हमारे पूर्वजों की बुद्धिमत्ता, अनुभवजनित व्यावहारिक एवं 'पर्यावरण मित्र' ज्ञान, आनेवाली पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना और प्रकृति के साथ भावात्मक सम्बन्ध का द्योतक है कि कृषि की प्रक्रिया प्रारंभ होने के हज़ारों वर्ष बाद भी उन्होंने पर्यावरण प्राकृतिक सम्पदाओं को लगभग अक्षुण्ण रखा। माना कि उनके समक्ष आज जैसी जनसंख्या और जीवन शैली की समस्याएं नहीं थीं, पर इन समस्याओं के आधार पर आधुनिक प्रौद्योगिकियों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण आज हो रहे पर्यावरण के विनाश को उचित नहीं ठहराया जा सकता। आवश्यकता है अतीत में झांककर देखने की क्योंकि आधुनिक विज्ञान अपने ही द्वारा उत्पन्न समस्याओं से मुक्ति दिला पायेगा ऐसा नहीं लगता।

सामान्यतः कोई भी विकास प्रक्रिया पर्यावरण को विकृत करती है, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना कोई विकास संभव ही नहीं। बहरहाल, किसी भी विकास कार्यक्रम का पर्यावरण पर कम से कम कुप्रभाव पड़े, इस दिशा में तो हर संभव प्रयास किया ही जाना चाहिए।

रासायनिक उर्वरकों, पेस्टनाशक दवाओं तथा अन्य आधुनिक प्रौद्योगिकियों के अन्धाधुंध इस्तेमाल में मृदा, जल और जैविक तथा आनुवंशिक विविधताओं जैसी मूल प्राकृतिक सम्पदाओं का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है। मिट्टी की उर्वरता कम हो रही है; जल का स्तर कहीं नीचे जा रहा है तो कहीं ऊपर; बाढ़ और सूखे की समस्या जटिल होती जा रही है; पशुओं और 'पर्यावरण मित्र' कीट-कीड़ों की बहुत सी प्रजातियां लुप्त हो चुकी हैं और बहुत सी लुप्त होने के कगार पर हैं।

जहाँ तक नाशीजीवनाशक दवाओं के इस्तेमाल का सवाल है, आज यह धीमा ज़हर हमारे आहार का स्थायी हिस्सा बन गया है जिसके कारण हर वर्ष लाखों लोग विभिन्न बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। हमारे देश में जिन विषैले नाशीजीवनाशकों का धड़ल्ले से इस्तेमाल हो रहा है उनमें बहुत से ऐसे हैं जिन पर विकसित देशों ने अपने यहाँ तो रोक लगा रखी है, पर अपने व्यावसायिक हित में इस ज़हर को भारत जैसे देशों में उड़ेल रहे हैं। हमारे देश में भी बहुत से नाशीजीवनाशक रसायन प्रतिबन्धित तो हैं पर सिर्फ कागज़ों पर।

ऐसा लगता है कि आधुनिकीकरण के नशे में हमने कृषकों द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी पुंजित पारंपरिक ज्ञान भंडार को गिरवी रख दिया है, उन्हें तिलांजलि दे दी है। आज की गंभीर और विनाशकारी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए ऐसी कृषि प्रौद्योगिकियों और विधियों के विकास की आवश्यकता है जिनसे कृषि विकास और पर्यावरण में संतुलन बना रहे।

यह संतोष की बात है कि देर सबेर यह अनुभव किया जाने लगा है कि कृषि संबधी पारंपरिक ज्ञान की अनदेखी नहीं की जा सकती, उसे नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता।

कृषि की पारंपरिक विधियां जो इतिहास बनती जा रही थीं और संग्रहालयों में सिमटी जा रही थीं, अब एक क्रांति का रूप ले रही हैं। विकसित देशों में भी ये विधियां आम चर्चा का विषय बन गई हैं।

कृषि की आत्मा मुख्यतः धरती और जल में बसती है। कृषि को आधुनिक बनाने की होड़ में परंपरागत कृषि को बिल्कुल दर किनार करने कि प्रवृत्ति सम्पूर्ण मानव समाज के लिए विध्वंसक सिद्ध हो सकती है। धरती माँ की पुकार है कि परंपरागत कृषि को नया रूप तो दिया जाए पर उसके मूलभूत सिद्धान्तों की उपेक्षा न की जाए। यही एक उपाय है कृषि विकास और प्रकृति में संतुलन बनाये रखने का।

कृषि प्रौद्योगिकी के प्रसार में कृषकों की सहभागिता

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे कृषक अत्यन्त जागरूक, परिश्रमी और प्रगतिशील हैं। वे उन तकनीकों को जिन्हें वे समझते हैं कि उनके लिए उपयोगी सिद्ध होंगी, बड़ी तत्परता से अपनाते हैं। पर यह चिन्ता का विषय है कि ऐसी नई तकनीकों को देश के सभी भागों में और कृषक समुदाय के सभी वर्गों द्वारा समान रूप से नहीं अपनाया गया है जिसके अनेक कारण हैं। फलस्वरूप जहाँ देश के कुछ भागों में कृषि के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, वहाँ दूसरे भागों में स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है। इसी तरह कृषक समुदाय के साधन सम्पन्न कुछ वर्गों को ही और वह भी आंशिक रूप से कृषि की नयी तकनीकों का लाभ मिल पाया है। यथा सम्भव इन विषमताओं को शीघ्रता से दूर किया जाना चाहिए और इसके लिए आवश्यक है देश के पिछड़े भागों में और कृषकों के कमज़ोर वर्ग के लोगों में बड़े पैमाने पर कृषि की उपयुक्त तकनीकों को अपनाने के लिए अनुकूल वातावरण पैदा करना। इसके लिए सर्वप्रथम कृषकों को कृषि की आधुनिक और पारंपरिक उपलब्धियों से पूर्णतः अवगत कराना होगा और उनमें यह आस्था पैदा करनी होगी कि इन उपलब्धियों को कार्यरूप देकर वे अपनी आय में पर्याप्त वृद्धि कर सकते हैं और अपने जीवन का स्तर सुधार सकते हैं। कृषि प्रसार की प्रक्रिया को नई दिशा देने तथा उसमें वांछित तीव्रता लाने के लिए कृषकों की प्रभावी सहभागिता आवश्यक है। इसके बिना उपलब्ध और कृषकों द्वारा अपनाई गयी तकनीकों के बीच की खाई को नहीं पाटा जा सकता।

कृषकों के वृहत् समुदाय को देखते हुए केवल सरकारी और गैर सरकारी तंत्रों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि कृषि के क्षेत्र में उपलब्ध तकनीकों को शीघ्र और प्रभावी ढंग से सभी किसानों तक पहुँचाया जा सकेगा। कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं के रूप में जो जनशक्ति कृषि प्रसार कार्य में लगी है या लग सकती है वह निकट भविष्य में तो पर्याप्त ही नहीं हो सकती। ऐसी स्थिति में कृषकों की सहभागिता से ही हम उपलब्ध और अंगीकृत तकनीकों के बीच की खाई को पाट सकते हैं।

कृषकों की सहभागिता से उनमें सामूहिक सक्रियता बढ़ेगी, आत्मविश्वास बढ़ेगा, आत्मनिर्भरता बढ़ेगी और उत्तरदायित्व की भावना बढ़ेगी। इसका एक लाभ यह होगा कि कृषकों और कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं में परस्पर सौहार्द्र और विश्वास की भावना उत्पन्न होगी जो किसी भी कृषि प्रसार कार्यक्रम की सफलता के लिए आवश्यक है। कृषक प्रायः कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं के परामर्शों को महत्व नहीं देते यह सोचकर कि यह तो उनकी नौकरी का मामला है, उन्हें मेरे हित से कोई लेना देना नहीं। जिस कार्यक्रम के नियोजन और कार्यान्वियन में कृषक सहभागी होते हैं उस कार्यक्रम की सफलता केवल कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं का ही नहीं बल्कि उनका भी दायित्व बन जाता है और वे भरसक इसे निभाने का प्रयास करते हैं। कार्यक्रम के सफल होने पर उन्हे एक उपलब्धि की अनुभूति होती है क्योंकि इसकी सफलता में उनका भी योगदान रहता है। इससे उन्हें सहभागी के रूप में किसी भी कार्यक्रम की सफलता में और अधिक योगदान देने की प्रेरणा मिलती है। इसके विपरीत जिस कार्यक्रम के नियोजन और कार्यान्वियन में उनकी सहभागिता नहीं होती उसके प्रति वे उदासीन रहते हैं और कभी-कभी तो उसके कार्यान्वियन में सहयोग देने के बजाय उसमें रोड़े अटकाते हैं।

अन्त में सिर्फ इतना कहना उचित होगा कि कृषि प्रौद्योगिकी के विकास और प्रसार में कृषकों की सहभागिता पर चर्चा का कोई अर्थ नहीं यदि इसे प्रभावी कार्यरूप नहीं दिया जाता।

—साभार

ए-6 पूसा अपार्टमेंट, सेक्टर-15, रोहिणी,
दिल्ली-110085

कार्बनिक खेती

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

कार्बनिक खेती या कार्बनिक कृषि अंग्रेज़ी शब्दद्वय Organic farming का शब्दानुवाद है। हाल ही में इस पारिभाषिक शब्द का प्रचलन बढ़ा है अतः इसका वास्तविक अर्थ क्या है, इसके पीछे कौन सा वैज्ञानिक तथ्य निहित है, इसका विस्तार क्या है आदि की सही-सही जानकारी पाठकों तक पहुँचनी आवश्यक है।

''कार्बनिक खेती'' खेती करने की कोई नई विधा नहीं है। हमारे देश के किसान अति प्राचीन काल से कार्बनिक खेती का अभ्यास करते रहे हैं क्योंकि खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये कार्बनिक खादों के अलावा कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं था। गोबर की खाद तथा सड़ी-गली पत्तियों की कार्बनिक खाद खेतों में डाली जाती थी और जो उपज मिलती थी वह सभी प्रकार के संदूषणों या प्रदूषणों से मुक्त होती थी। फलतः फ़सलों से प्राप्त अन्नों का उपयोग करने वाले भारतवासी हृष्ट-पुष्ट रहते थे, उन्हें इन अन्नों के माध्यम से कोई रोग नहीं होते थे। परन्तु कृत्रिम उर्वरकों के प्रचलन के बाद, विशेषतया 1960 के बाद, जिस तरह उर्वरकों के प्रयोग में वृद्धि हुई है और अधिक उपज लेने के फेर में कीट-नियन्त्रण के लिए जिस तरह से कीटनाशियों का अनाप-शनाप उपयोग किया जाने लगा है, उसके कारण अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि खेती का वर्तमान स्वरूप, उसकी उर्वरण तथा कीट-नियन्त्रण की विधियाँ मानव-स्वास्थ्य के लिएं घातक हैं।

कृत्रिम उर्वरक कुछ हद तक आवश्यक एवं लाभप्रद हैं क्योंकि हमारे किसान उतनी कार्बनिक खाद नहीं जुटा पाते जितनी की आवश्यकता है। किन्तु खेतों में उर्वरकों की अधिक मात्रा डालने से भूमि-उर्वरता में वृद्धि होने के बजाय क्रमशः उसमें ह्रास आता जाता है। इसका कारण यह है कि मिट्टियों की भौतिक दशा खराब होती जाती है और अन्त में उनमें क्षारीयता अथवा अम्लता जैसी व्याधियाँ घर करती जाती हैं जिससे कालान्तर में ऐसे भूखण्डों को छोड़ देना पड़ता है। आज जबकि जनसंख्या में लगातार वृद्धि हो रही है, इस तरह अनेक भूखण्डों का अनुर्वर बनना उचित नहीं है। इसे रोकने के लिए कार्बनिक खादों का प्रयोग अनिवार्य है।

सौभाग्यवश आधुनिक अनुसंधानों से गोबर की खाद या परम्परागत कार्बनिक खादों के अतिरिक्त हरी खादें, वर्मीकम्पोस्ट, अवपंक, जैव-उर्वरक जैसे अन्य स्रोत जुटाये जा चुके हैं जिनके सामयिक तथा समुचित मात्रा में प्रयोग से मिट्टी में जैव अंश की पूर्ति की जा सकती है। हमारे किसान इन खादों को आसानी से अपना सकते हैं। इस तरह खेतों में कार्बनिक खादों को डालकर उत्तम फसलें उगाई जा सकती हैं।

विश्व के अनेक विकसित राष्ट्रों में कार्बनिक खेती को एक नया आयाम मिला है। पर्यावरण प्रदूषण से त्रस्त एवं भयभीत विकसित राष्ट्रों के नागरिक **ऐसे उत्पादों के ही उपयोग पर बल दे रहे हैं जो कार्बनिक खेती द्वारा उत्पन्न किये गये हैं।** ऐसे उत्पादों को वे ''कार्बनिक खाद्य'' (Organic food) कहते हैं। यह किसी अन्धविश्वास का सूचक नहीं है अपितु उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अत्यधिक प्रयोग से जिस तरह खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता में गिरावट आई है, जिसके कारण समाज में नाना प्रकार के रोगों का प्रसार हुआ है, उससे प्रबुद्ध नागरिक आतंकित हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं

है। वस्तुतः रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशियों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से फ़सलों में तमाम विषैले पदार्थ संचित हो रहे हैं अतः जब इनसे प्राप्त उत्पादों का उपयोग मनुष्यों द्वारा या पशुओं द्वारा होगा तो नये विषैले पदार्थ उनके शरीर में संचित होंगे और उनमें तरह तरह के रोग उत्पन्न होंगे। ये प्रबुद्ध नागरिक जानबूझ कर मक्खी निगलने वाले नहीं। "कार्बनिक खाद्य" के लिए उनका विशेष आग्रह है कि विकासशील राष्ट्र, **जहाँ से बहुत सी खाद्य सामग्री उन तक पहुँचती है, स्वीकृत** मानदण्ड की हो, उत्पन्न करें।

कार्बनिक खेती वस्तुतः **नये सिरे से नये मानदण्डों के अन्तर्गत कृषि की नवीन विधा को अपनाने का आह्वान है।** विशेषतया सब्ज़ी उत्पादों के बढ़ते निर्यात की दृष्टि से कार्बनिक खेती महत्वपूर्ण है। सब्ज़ियों के उत्पादन में न केवल अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग होता है अपितु अनेक प्रकार के कीटनाशियों का प्रयोग आवश्यक है। किन्तु अधिक कीटनाशियों के लगातार प्रयोग से कीटों में इन रसायनों के प्रति सहनशीलता या प्रतिरोधकता बढ़ती जा रही है। अधिक कीटनाशी कीटों को मारने में नहीं अपितु सब्ज़ियों पर अपना पर्याप्त अवशेष छोड़ने में योगदान करते हैं। ये अवशेष सब्ज़ियों के द्वारा मनुष्यों के शरीर में पहुँचकर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करने वाले हैं।

फलतः कार्बनिक खेती के द्वारा इन उर्वरकों के प्रयोग को घटाना होगा और जैविक नियन्त्रण द्वारा कीटों को नियन्त्रित करना होगा। उदाहरणार्थ, टमाटर और भिण्डी में छेद करने वाले कीटों का नियन्त्रण **ट्राइकोग्रेमा** द्वारा, भिंडी, मिर्च तथा लोबिया के माह कीट का नियन्त्रण **क्राइसोपेरला कोर्निया** द्वारा सम्भव है। टमाटर में छेद करने वाले कीट के नियन्त्रण हेतु एक विषाणु (**एच० ए० एन० पी० वी०**) बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस तरह कीटनाशियों का प्रयोग क्रमशः घटाया जा सकता है।

वैसे कार्बनिक खेती से अधिकांश खाद्यान्नों की गुणवत्ता में सुधार सम्भव है किन्तु सब्ज़ियों की गुणवत्ता सुधारने के लिए नये-नये आयाम ढूँढ़े जा रहे हैं। उदाहरणार्थ टमाटर, गाजर और काशीफल में बीटा और कैरोटीन (विटामिन ए का स्रोत) की मात्रा बढ़ाने वाले **जनन द्रव्य** की खोज की जा चुकी है। इसी तरह मिर्च, टमाटर में ऐस्कार्बिक अम्ल (विटामिन सी) की मात्रा बढ़ाने वाला जनन द्रव्य भी खोजा जा चुका है। सब्ज़ियों में प्रोटीन की मात्रा तथा गुणवत्ता के सुधार की भी आवश्यकता है। जनन द्रव्यों से पत्तीदार सब्ज़ियों में लोह की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। सब्ज़ियों में पाये जाने वाले कुछ विपरीत कारकों– यथा आलू में **सोलेनीन**, टमाटर में **टोमैटीन**, पत्तीदार सब्ज़ियों **ऑक्सैलेट** की मात्रा कम करने की आवश्यकता है।

पर्यावरण की सुरक्षा के साथ उच्च गुणवत्ता वाली उपज प्राप्त करना कार्बनिक खेती का चरम लक्ष्य है।

कार्बनिक खेती आन्दोलन

सर्वप्रथम 5 नवम्बर 1972 को फ्रांस में 'इंटरनेशनल फेडरेशन ऑव आर्गेनिक ऐग्रिकल्चर मूवमेंट' (FOAM) शुरू हुआ। सम्प्रति विश्व के 100 देशों में 650 ऐसे संगठन हैं। जर्मनी में कुल बाज़ारू खाद्य का 3-5 % कार्बनिक खेती से उत्पन्न किया जाता है, आस्ट्रेलिया में 10 % तथा संयुक्त राज्य अमरीका में केवल 1-2 %। एशिया में भी यह आन्दोलन जोर पकड़ रहा है। जापान में 1970 से ही "आर्गेनिक फार्मर्स" ने सहकारी समितियाँ बना ली थीं और 1991 तक ऐसी 1000 समितियाँ थीं। कोरिया में 1978 से कार्बनिक खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा है। चीन में 1990 में कृषि मन्त्रालय ने **हरित खाद्य** (Green food) की योजना चालू की। इस प्रकार सरकार ने इस खाद्य के लिए मानदण्ड निर्धारित कर दिये हैं जिसमें सीमित मात्रा में ही पेस्टीसाइडों का प्रयोग करना होता है।

हमारे देश में भी 1996 में कार्बनिक कृषि में मानदण्ड निर्धारित करके कार्य शुरू हुआ है जिसके अन्तर्गत प्रमाणीकरण तथा विपणन का कार्य चालू है।

कार्बनिक खेती का एक उद्देश्य जीवन्त तथा टिकाऊ खेती का विकास है। इसके अन्तर्गत फार्म प्रबन्धन की ऐसी प्रणाली अपनाई जाती है जिससे पारितन्त्र (ecosystem) सुरक्षित रहे, खरपतवार तथा नाशीजीवों पर नियन्त्रण हो, वानस्पतिक तथा जान्तव अवशेषों का पुनर्चक्रण हो, फ़सलचक्र अपनाया जाय, सिंचाई, जुताई आदि की सही व्यवस्था हो। कार्बनिक खेती में मृदा-उर्वरता को स्थिर रखने के लिए ऐसी प्रणाली अपनाई जाती है जिससे जैव-सक्रियता अधिकतम बनी रहे, मिट्टी की भौतिक दशा ठीक रहे और पौधों के लिए सन्तुलित पोषक की पूर्ति होती रहे।

कार्बनिक खेती में **जिन विधियों** को अपनाया जा सकता है वे हैं–

(1) दलहनी फसलें, हरी खाद, फ़सल-चक्र आदि अपना कर मृदा-उर्वरता को स्थिर रखना।

(2) कार्बनिक पदार्थ, फ़सलों के अवशेष, गोबर की खाद तथा कम्पोस्ट डालना।

(3) जैव-उर्वरकों, ऐजोला, नील-हरित शैवाल का प्रयोग।

(4) कीटों तथा रोगों पर नियन्त्रण के लिए उपयुक्त किस्मों की फ़सलें, फ़सल-चक्र, जैविक विधियाँ अपनाना।

(5) भूमि, जल, वनस्पति तथा जीवों का संरक्षण।

(6) बाल-मजदूरी को निरुत्साहित करना।

कार्बनिक खेती में प्रयोग के लिए अनुमत पदार्थ

गोबर की खाद, कुक्कुट खाद, वर्मीकम्पोस्ट, हरी खाद, पत्तियों की खाद, एज़ोला, फ़सलों के अवशेष, पुआल, रसोई से निकले पदार्थ, खलियाँ।

कार्बनिक खेती के लिए वर्जित पदार्थ

रासायनिक उर्वरक, अवमल, संश्लिष्ट कीटनाशी।

यह जानकर हैरानी हो सकती है कि आज की खेती में बहु प्रयुक्त तीन प्रकार के पदार्थों पर कार्बनिक खेती में रोक लगाने की संस्तुति की गई है। चूँकि इन पदार्थों में भारीतत्व रह सकते हैं, कुछ में रोगजनक जीव तथा कुछ के अधिक उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता है अतः ऐसे पदार्थ वर्जित हैं।

कार्बनिक खेती में जिन पदार्थों का प्रयोग विवेक के कम से कम मात्रा में किया जा सकता है वे हैं :

लकड़ी का बुरादा, उद्योगों से निकला कचरा, रक्त, मांस, अस्थि के अवशेष, मछली, गुआना, जिप्सम, चूना, बेसिक स्लैग, सूक्ष्ममात्रिक तत्व एवं कीटों के नियन्त्रण के लिए प्रयुक्त गंधक, कॉपर लवण, पोटैशियम परमैंगनेट आदि।

कार्बनिक प्रमाण-पत्र

कोई भी उत्पाद तभी कार्बनिक कहला सकता है जब वह प्रमाण-पत्र प्रदाता द्वारा स्वीकृत हो। इसलिए उत्पादक तथा उपभोक्ता के मध्य बिचौलिए का काम करने के लिए कुछ एजेन्सियाँ बनाई गई हैं। उदाहरणार्थ जर्मनी में 30-40 तथा अमेरिका में 10-20 ऐसी एजेन्सियाँ हैं। किसानों को ऐसी एजेन्सियों से सम्पर्क करके अपने द्वारा उत्पन्न की जाने वाली फसलों का निरीक्षण कराने और तत्पश्चात् निर्धारित मान-दण्डों का पालन करने का उनसे सर्टीफिकेट प्राप्त करना होता है। निर्धारित मानदंडों के अनुसार कार्बनिक खेती शुरू करने और सर्टीफिकेट प्राप्त करने में कुछ समय लग सकता है। किन्तु यदि पहले से इन मानदण्डों के आधार पर खेती की जा रही हो तो फिर सर्टीफिकेट प्राप्त करने में समय नहीं लगता।

भारतवर्ष में वर्षासिंचित प्रदेश (बारानी क्षेत्र) ऐसी कार्बनिक खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। फिर भी कार्बनिक खेती के विविध पक्षों पर शोधकार्य किये जाने की आवश्यकता है। कार्बनिक खेती न केवल निर्यात के लिए फ़सलें उगाने का आह्वान है अपितु देश के नागरिकों के स्वास्थ्य को ठीक रखने और प्राकृतिक जीवन बिताने के लिए अभूतपूर्व अवसर है।

–प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

वर्ष 1999 के डॉ० गोरख प्रसाद पुरस्कार

विज्ञान में प्रकाशित लेखों कें आधार पर जिन चार लेखकों को पुरस्कृत किया गया है उनके नाम हैं— श्रीरामचन्द्र मिश्र, डॉ० पी० सी० पन्त, श्री अजय कुमार तथा श्री देवव्रत द्विवेदी।

—प्रधानमन्त्री, विज्ञानपरिषद्, प्रयाग

बढ़ते जन-घटते वन : समस्याएँ एवं समाधान

डॉ० एन० के० बौहरा, चरण सिंह सोलंकी एवं देवेन्द्र सिसोदिया

वर्तमान में जनसंख्या-विस्फोट एवं दूषित होता पर्यावरण सम्पूर्ण विश्व की एक प्रमुख समस्या है। भारत में भी जनसंख्या वृद्धि बहुत तेज़ी से हो रही है। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष आस्ट्रेलिया की कुल जनसंख्या के बराबर जनसंख्या बढ़ रही है तथा औसतन प्रति $1\frac{1}{2}$ सेकेंड में एक बच्चा जन्म लेता है। देश की बढ़ती जनसंख्या की तीव्र गति को देखते हुए सन् 2000 तक भारत की जनसंख्या एक अरब से अधिक हो जायेगी जबकि दूसरी ओर वनों का प्रतिशत निरन्तर कम हो रहा है।

आँकड़ों की भाषा में देखें तो सन् 1901 में भारत की जनसंख्या 23.84 करोड़ थी जो 1951 में 36.1 करोड़ तथा 1991 में 84.63 करोड़ हो गई तथा इसके सन् 2001 में 100.62 करोड़ तक पहुँचने की संभावना है। दूसरी ओर आज़ादी के बाद 42 लाख हेक्टेयर क्षेत्र से अधिक क्षेत्र में वन नष्ट हो चुके हैं तथा 1980 के बाद की गणना के आधार पर प्रतिवर्ष 15 लाख हेक्टेयर वन नष्ट हो रहे हैं जबकि वन लगाने की दर प्रतिवर्ष मात्र 3 लाख 26 हज़ार हेक्टेयर है। इस प्रकार खपत दर निर्माण की 5 गुनी है। यदि यही दर जारी रही तो अगले 21 वर्षों में सभी वन समाप्त हो जायेंगे।

वृक्षारोपण का महत्व

वृक्षों का महत्व न केवल ईंधन, लकड़ी, काग़ज़ आदि की आपूर्ति के लिए वरन् वन जलवायु के नियंत्रण (जलचक्र तथा ताप-नियंत्रण) तथा मृदा संरक्षण के लिए भी आवश्यक है। प्रकाश-संशलेषण की क्रिया द्वारा वृक्ष अपने चारों ओर के वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड एवं ऑक्सीजन की मात्रा का संतुलन बनाये रखते हैं एवं प्रदूषण कम करते हैं।

जे० एस० कालिंस के अनुसार– "वृक्ष पर्वतों को थामे रखते हैं, वे तूफ़ानी वर्षा के प्रभाव को कम करते हैं, नदियों को अनुशासन में रखते हैं। वे झरनों को बनाये रखते हैं तथा पक्षियों का पोषण करते हैं।"

भारतीय पौराणिक साहित्यों में भी वृक्षों के महत्व का उल्लेख किया गया है। **महाभारत** में वृक्षों को काटना वर्जित माना गया है। पीपल को विष्णु का अवतार तथा नीम को ब्राह्मण माना गया है। नीम को ब्राह्मण धर्म, जाति के आधार पर न मानकर उसके ओषधीय गुणों एवं अपने चारों ओर का वातावरण शुद्ध रखने के कारण माना गया है। इसी प्रकार नीम सदैव दूसरों को सुखी भी रखता है। पीपल के लिये कहा गया है–

"अश्वत्थः सर्व वृक्षाणां"

अर्थात् सभी वृक्षों में पीपल सर्वश्रेष्ठ है। इसी प्रकार धन्वन्तरि ने हजारों वर्षों पूर्व ही ओषधीय रूप के उपयोगों के बारे में बताया था तथा सुश्रुत की **चरक संहिता** में भी वृक्षों के ओषधीय गुणों का उल्लेख मिलता है। **वेदों** एवं **उपनिषदों** में भी वृक्षों के महत्व की जानकारी मिलती है। वेदों में कहा गया है–

"यो देवोऽग्नो योऽक्सु योविश्व भुवनामाविराम

यो औषधियु यो वनस्पतियु तस्मै देवाय नमो नमः।"

अर्थात् जो अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी, वायु से

आच्छादित है तथा जो ओषधियों व वनस्पतियों में विद्यमान है उस पर्यावरणी देव को हम नमस्कार करते हैं।

प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो ने भी "Back to the Nature" का नारा दिया जिसका शाब्दिक अर्थ है– "प्रकृति की गोद में जाओ"। वर्ड्सवर्थ के अनुसार "प्रकृति देवी एक बार में ही मनुष्य को उसके सार्थक जीवन के लिए इतना उपदेश दे सकती है जितना पूर्व जीवनकाल में उसे संतों से भी उपलब्ध नहीं हो सकता है।" एक धर्म विशेष (विश्नोई सम्प्रदाय) के आध्यात्मिक गुरु जाम्भो जी ने अपने अनुयाइयों को वृक्षों के लिए बलिदान तक देने की प्रेरणा दी।

आधुनिक युग एवं पर्यावरण

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री माल्थस ने अपने जनसंख्या वृद्धि सिद्धान्त के अन्तर्गत कहा है कि जनसंख्या ज्यामिति दर से बढ़ती है, जबकि खाद्य सामग्री की वृद्धि गणितीय दर से। भारत में तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या ने कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं। जनसंख्या बढ़ने की दर के अनुरूप खाद्य सामग्री का उत्पादन न बढ़ने से माँग एवं पूर्ति में एक बड़ा अंतर पैदा हो गया है, जिससे कुपोषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं।

माँग एवं आपूर्ति में अंतर

प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से वे समाप्त हो रहे हैं। यह एक कटु सत्य है कि भारत में प्रति व्यक्ति 153 किलो खाद्य सामग्री उपलब्ध है जबकि विकसित देशों में प्रति व्यक्ति 800 किलो खाद्य सामग्री है। इस प्रकार हम विकसित देशों की तुलना में 20 प्रतिशत स्तर पर ही हैं। बचत दर के मामले में भारत का स्तर 8-9 प्रतिशत है जो विकसित देशों में 32-35 प्रतिशत है।

वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या द्वारा अनुमानतः 15 करोड़ टन लकड़ी प्रतिवर्ष भोजन पकाने हेतु काटी जा रही है जबकि इसका कुल भंडार 200 करोड़ टन है तथा वृद्धि दर 3 करोड़ टन प्रतिवर्ष है। इस प्रकार वृद्धि दर से 5 गुना लकड़ी प्रतिवर्ष नष्ट की जा रही है, जिससे 200 करोड़ टन का भंडार शनैः शनैः घटता जा रहा है। औद्योगिक क्षेत्र में लकड़ी की माँग 47 करोड़ घन मीटर है जबकि उत्पादन दर 12 करोड़ घन मीटर है। इसी प्रकार चारा एवं वन उत्पादनों की खपत तेज़ी से बढ़ती जा रही है जो हमारे प्राकृतिक संसाधनों को नष्ट करती जा रही है।

भारत सरकार द्वारा 1952 में वन नीति जारी की गई जिसके अन्तर्गत कम से कम एक तिहाई भू-भाग (33 प्रतिशत न्यूनतम) वनों से आच्छादित होना चाहिए तथा पर्वतीय प्रदेशों में 68 प्रतिशत वन होने आवश्यक हैं। वास्तव में आज़ादी के पचास वर्ष पश्चात् भी मात्र 19.5 प्रतिशत भू-भाग में ही वन हैं तथा पर्वतीय प्रदेशों में यह 37 प्रतिशत स्तर पर ही है एवं उसमें भी घने वन मात्र 21 प्रतिशत भाग में ही हैं।

वनों की निरन्तर कमी से वातावरण के शुद्धिकरण में निरन्तर कमी होती जा रही है तथा कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड जैसी गैसों की मात्रा निरन्तर बढ़ रही है। औद्योगिकीकरण के पूर्व वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा 280 पी पी एम स्तर पर थी जो 1980 में 340 पी पी एम हो गई तथा सन् 2001 तक 500 पी पी एम तक होने की आशंका है। इन गैसों की वृद्धि से हृदय रोगों तथा अन्य गम्भीर रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की दर में वृद्धि होगी तथा वातावरण का ताप भी बढ़ेगा। इसी प्रकार ओज़ोन परत की होने वाली हानि से सूर्य की पराबैंगनी किरणें मानव जीवन के लिए घातक कहर बरपा देंगी। एक वृक्ष 50 वर्षों में औसतन 50 हज़ार किलोग्राम ऑक्सीजन देता है तथा साथ ही कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग भी करता है।

वायुमंडल की ओज़ोन परत सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है, परन्तु तेज़ी से बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं ग्रीन हाउस प्रभाव से उत्पन्न गैसों से यह परत नष्ट होती जा रही है एवं इसमें कई छेद हो गये हैं। फोम, रबड़, रेफ्रिजरेशन, एयरोसोल, कीट-नाशक आदि उद्योगों से सी० एफ० सी० (क्लोरो फ्लोरो कार्बन) सरीखी गैस निकलती है, इसी प्रकार ग्रीन हाउस प्रभाव से कार्बन मोनोऑक्साइड जैसी विषैली गैस निकलती है जो ओज़ोन परत हेतु घातक है।

इसी प्रकार तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति पूरी करने हेतु अधिक से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में खाद्य एवं उर्वरकों का प्रयोग होने से मृदा के उपजाऊपन में कमी हुई है। साथ ही कारखानों से निकली दूषित गैसों से वायुमंडल भी प्रदूषित हुआ है।

जनसंख्या वृद्धि ने पर्यावरण संरचना के सारे समीकरण बदल दिये हैं तथा प्राकृतिक संतुलन गड़बड़ा गया है। आज का मानव आधुनिक युग में भौतिकवाद की दौड़ में वृक्षों की अंधाधुंध कटाई कर उसका अविवेकपूर्ण दोहन अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए कर रहा है, परन्तु उसे इस कार्य की कीमत भविष्य में कई गुना अधिक चुकानी पड़ सकती है।

समाधान के विकल्प

बढ़ती जनसंख्या एवं घटते वन क्षेत्र हेतु प्राथमिक समाधान है– **वनों के क्षेत्रफल में वृद्धि करना एवं जनसंख्या वृद्धि दर कम करना।** वनों के क्षेत्रफल में वृद्धि हेतु 1950 के पश्चात् वनों के महत्व को समझते हुए श्री के० एम० मुंशी ने "वन महोत्सव" प्रारम्भ किया, जो हर वर्ष मनाया जाता है। आज के युग की आवश्यकता है कि न केवल वन विभाग अथवा सरकारी स्तर पर वृक्षारोपण कार्यक्रम आयोजित किए जायें वरन् उनका पालन-पोषण भी करें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में पर्यावरणीय शिक्षा पर भी बल दिया गया है।

आस्ट्रेलिया में 1982 में वृक्ष दशक आरम्भ किया गया जिसमें एक पत्रक द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ ने भगवान बुद्ध के उपदेशों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवनकाल में पाँच वृक्ष लगाने एवं एक वृक्ष की सेवा 5 वर्ष तक करने का संकल्प लिया गया। यदि यही संकल्प भारत का जन सामान्य ले तो वनों का प्रतिशत निश्चित रूप से बढ़ जायेगा।

भारत में नवीनतम तकनीकों का उपयोग कर संकर पौधों द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुरूप वृक्षारोपण कर तथा जल एवं मृदा संरक्षण के लिए आवश्यक तकनीकों का उपयोग कर पर्यावरण संरक्षण किया जा सकता है। खाद्य के वैकल्पिक एवं प्राचीन स्रोतों का संरक्षण कर एवं उन्हें प्रचारित करके तथा कुछ नये खाद्य स्रोतों (शैवाल एवं अन्य प्रोटीन-युक्त खाद्यों) के उपयोगों को बढ़ावा देकर कुपोषण जैसी समस्याओं से निजात पाई जा सकती है। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई करने वालों को कठोर दंड देकर तथा संयुक्त वन प्रबंध (क्षेत्र विशेष के लोगों की सरकार के साथ सहभागिता द्वारा) को बढ़ावा देकर भी वनों को संरक्षित एवं संवर्धित किया जा सकता है। ईंधन हेतु गोबर गैस एवं गोबर जैसे प्राकृतिक स्रोतों का उपयोग कर तथा सौर ऊर्जा द्वारा ईंधन हेतु लकड़ी के दोहन में कमी लाई जा सकती है।

जनसंख्या वृद्धि का मुख्य कारण भारत में अशिक्षा है। अतः शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर तथा लोगों को जनसंख्या में कमी हेतु प्रेरित कर इसमें कमी लाई जा सकती है। प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा एवं प्रमुख रूप से महिला शिक्षा को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

पं० जवाहरलाल नेहरू का आदर्श वाक्य हमें याद रखना होगा कि "उगता हुआ वृक्ष प्रगतिशील राष्ट्र का प्रतीक है।" यदि हमें राष्ट्र की प्रगति चाहिए तो वृक्षारोपण को बढ़ावा देना होगा तथा साथ ही जनसंख्या में वृद्धि दर को कम करना होगा क्योंकि–

"एक वृक्ष दस पुत्र के समान होता है।"

–प्लॉट नं० 389, गली नं० 10,
मिल्कमैन कॉलोनी, पॉल रोड, जोधपुर (राजस्थान)

वर्ष 2000 का विज्ञान कांग्रेस

3 जनवरी को पुणे में विज्ञान कांग्रेस का उद्घाटन भारत के प्रधानमन्त्री माननीय अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा किया गया। इसकी अध्यक्षता वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली के डॉ० आर. ए. माशेलकर ने की। इस वर्ष के कांग्रेस का मुख्य विषय था 'नई सहस्राब्दी में विज्ञान और टेक्नालाजी'। डॉ० माशेलकर ने युवा वैज्ञानिकों का आह्वान किया कि ज्ञान के साथ ही नव्यशीलता पर ध्यान केन्द्रित करें।

प्रकृतिकोपः सर्व कोपेभ्यो गरीयन्

यह चाणक्य का सूत्र है जिसका अर्थ है प्रकृति कोप सब कोपों से बलवान होता है। यहाँ पर अर्थशास्त्र के चौथे अध्याय के प्रकरण 130-132 का कुछ अंश दिया जा रहा है जिसका हिन्दी अनुवाद श्री उदयवीर शास्त्री की पुस्तक से है।

दैवंपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरक इति। १।

राष्ट्र पर आने वाली दैवी आपत्ति पाँच प्रकार की होती हैं– अग्नि, जल, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा मरक (महामारी)।

अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च। २। शक्योपगमनं तार्याबाधमुदकपीडनमित्याचार्याः। ३।

इन सबसे में एक दूसरे की अपेक्षा कौन सी आपत्ति अधिक कष्ट देने वाली, तथा कौन सी कम कष्ट देने वाली है इस बात का अब क्रमशः निरूपण किया जायेगा। इस विषय में अनेक प्राचीन आचार्यों का मत है कि अग्नि और जल से उत्पन्न होने वाली आपत्तियों में अग्निजन्य आपत्ति ही अधिक कष्टकर होती है। क्योंकि आग लग जाने पर सरलता से उसका कोई भी प्रतिकार नहीं किया जा सकता तथा आग सभी वस्तुओं को जला कर भस्म कर डालती है। २।

परन्तु जल में यह बात नहीं है क्योंकि जल के शीतल होने से उसका स्पर्श सरल होने के कारण जल में रह कर भी उससे अपना बचाव किया जा सकता है तथा नौका आदि साधनों के द्वारा भी जल से बचाव हो सकता है। इसलिए जलजन्य आपत्तियों की अपेक्षा अग्निजन्य आपत्ति को ही अधिक भयावह समझना चाहिए।

नैति कौटिल्यः। ४। अग्निर्ग्राममर्धग्रामं वा दहति। ५। उदकवेगस्तु ग्राम शतप्रवाहीति। ६।

परन्तु कौटिल्य प्राचीन आचार्यों के इस सिद्धान्त को युक्ति संगत नहीं मानता। ४। क्योंकि अग्नि किसी एक ही गाँव को या आधे ही गाँव को जला सकती है। ५। परन्तु जल प्रवाह का वेग सैकड़ों गाँवों को एकसाथ ही बहा ले जाता है। ६।

व्याधिदुर्भिक्षयोव्याधिः प्रेतव्याधितोपसृष्टपरिचारकव्यायामोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति। ७। दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपघाति हिरण्य पशुकरदायि चेत्याचार्या। ८।

व्याधि और दुर्भिक्ष इन दोनों आपत्तियों में से व्याधि ही अधिक कष्ट देने वाली होती है, यह अनेक आचार्यों का सिद्धान्त है। क्योंकि व्याधि के कारण मरे हुए, व्याधिग्रस्त हुए तथा रोगी पुरुषों की परिचर्या में लगे हुए होने के कारण अन्य पुरुष भी कृषि आदि कार्यों को ठीक ठीक नहीं निभा सकते। ।७। परन्तु दुर्भिक्ष, आगे किये जाने वाले कार्य में कोई बाधा नहीं डालता। तथा दुर्भिक्ष के कारण धान्य के न होने पर भी हिरण्य या पशु के रूप में राजा को कर दिया जा सकता है। इसलिए दुर्भिक्ष की अपेक्षा व्याधि को ही अधिक समझना चाहिए। यही प्राचीन आचार्यों का मत है। ८।

नेति कौटिल्यः। ९। एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यतीकारश्च। १०। सर्वदेशपीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति। ११। तेने मरको व्याख्या तः। १२।

परन्तु कौटिल्य को यह सिद्धान्त युक्तिसंगत नहीं लगता। ९। वह कहता है कि व्यक्ति किसी एक ही प्रदेश में

पीड़ा पहुँचा सकता है तथा ओषधि आदि के द्वारा व्याधि का प्रतिकार भी अच्छी तरह किया जा सकता है। १०। परन्तु दुर्भिक्ष सम्पूर्ण देश को पीड़ा पहुँचाने वाला होता है और इसके कारण सभी प्राणियों के जीवन भी संकट में पड़ जाते हैं। ११। इसी से महामारी की भी लघुता-गुरुता को समझ लेना चाहिए। अर्थात् अत्यधिक प्राणियों के मरण का हेतु होने के कारण महामारी दुर्भिक्ष की भी अपेक्षा अधिक कष्टप्रद होती है।

क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रकक्षयः कर्मणामयोगक्षेमंकरोति ।१३। मुख्यक्षयः कर्मानुष्ठानोपरोधधर्मेत्याचार्याः ।१४।

छोटे कार्यकर्ताओं और मुख्य कार्यकर्ताओं में से छोटे कार्यकर्ताओं का क्षय होना अधिक हानिकर होता है क्योंकि काम करने वाले आदमियों के न करने पर कार्य का योगक्षेम नहीं चल सकता। १३। परन्तु मुख्य कार्यकर्ता का क्षय केवल काम की निगरानी में रुकावट डालता है। इसलिए मुख्य कार्यकर्ताओं की अपेक्षा छोटे कार्यकर्ताओं का नाश होना अधिक हानिकर होता है। यह अनेक प्राचीन आचार्यों का मत है।

नेति कौटिल्य।१५। शक्यः क्षुद्रक्षयः प्रतिसंधातुं बाहुल्यात्क्षुद्रकाणां न मुख्यक्षयः।१६। सहस्रेषु ही मुख्यो भवत्येको न वा सत्त्व प्रज्ञाधिक्यात्तदा श्रय-त्वात्क्षुद्रकाणामिति।१७।।

परन्तु कौटिल्य इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत नहीं मानता। १५। वह कहता है कि छोटे कर्मचारियों की कमी को उनके समान काम करने वालों की बहुत अधिक संख्या होने के कारण दूसरे पुरुषों की नियुक्ति के द्वारा पूरा किया जा सकता है। परन्तु मुख्य कार्यकर्ता के क्षय होने से यह बात नहीं हो सकती है। १६। क्योंकि ऐसा मुख्य पुरुष हज़ारों में एक ही मिलता है या कभी-कभी वह भी नहीं मिलता क्योंकि यह बल और बुद्धि के कारण सबसे अधिक या बड़ा होने से सभी छोटे कार्यकर्ताओं का आश्रयभूत होता है।

स्वचक्रपरक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पी-डयत्य शक्यं न वारयितुम।१८। चरचक्र तु शक्यं प्रतियोद्धुमपसारेण संधिना वा मोक्षयितुमित्याचा-र्याः।१९।

अब मानुषी आपत्तियों का निरूपण किया जावेगा।

स्वचक्र (अपने ही देश की राजशक्ति) और परचक्र (परदेश की राजशक्ति) इन दोनों में से स्वचक्र सीमातीत दण्ड (जुर्माना) और कर (टैक्स) के द्वारा प्रजा को पीड़ा पहुँचाता है तथा अपने ही देश की राजशक्ति होने के कारण निवारण भी नहीं किया जा सकता। अर्थात् जब अपना ही स्वामी इतना कष्ट पहुँचाने लगे तो उसका प्रतिकार कौन करे। १८। परन्तु परचक्र का प्रतीकार उसका देश छोड़ देने के द्वारा अथवा कुछ धन आदि देकर सन्धि कर लेने के द्वारा किया जा सकता है। इसलिए परचक्र की अपेक्षा स्वचक्र को अधिक कष्टकर समझना चाहिये। यह अनेक प्राचीन आचार्यों का मत है। १९।

नेति कौटिल्यः।२०। स्वचक्रपीडनं प्रकृति पुरुष-मुख्योपग्रहविघाताभ्यां शक्यते वारयितुमेकेदेशं वा पी-डयति।२१। सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं विलोपघात दाहविध्वंसनोपवाहनैः पीडयतीति।२२।

परन्तु कौटिल्य प्राचीन आचार्यों के इस सिद्धान्त को युक्तिसंगत नहीं समझता। २०। वह कहता है कि स्वचक्र से पहुँचाई हुई पीड़ा का अमात्य आदि मुख्य पुरुषों को अपने अनुकूल बनाने या उनका नाश कर देने के द्वारा अच्छी तरह प्रतिकार किया जा सकता है। तथा स्वचक्र धन धान्य आदि से सम्पन्न अपने किसी एक देश को ही पीड़ा पहुँचाता है। २१। परन्तु परचक्र धन आदि लूटने, मारने, काटने, आग लगाकर भस्म करने, अन्य प्रकारों से नाश करने तथा अपने देश से निकाल देने के द्वारा सम्पूर्ण देश को ही पीड़ा पहुँचाता है। इसलिए स्वचक्र की अपेक्षा परचक्र को ही अधिक कष्टकर समझना चाहिए। २२।

• •

मोती-संवर्धन

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

मोती के आभूषण सदैव से आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। नैसर्गिक रूप से पाये जाने वाले मोती आमतौर से छोटे, असममित और दुर्लभ होते हैं, क्योंकि ये कभी-कभार ही पाये जाते हैं। इसके विपरीत संवर्धित मोती बड़े, सुडौल और मनचाहे रूप-रंग वाले होते हैं। अब ऐसी वैज्ञानिक विधियाँ विकसित कर ली गई हैं, जिनकी सहायता से भारत सहित अनेक देशों में मोती की खेती सफलतापूर्वक की जा रही है।

तोकिशी निशिकावा ने बीसवीं शदी के प्रथम दशक (1907) में मोती-संवर्धन के लिए जिस वैज्ञानिक तरीके की खोज की वह 'पर्ल सैक थियरी' (pearl sack theory) के नाम से सम्पूर्ण विश्व में जानी जाती है। सार रूप में इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई विजातीय सूक्ष्मकण किसी विशेष परिस्थिति में सीप (Oyster) के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है तो सीप के शरीर के आवरण या बाह्यभित्ति की मोती बनाने वाली कोशिकायें सक्रिय हो उठती हैं और कोशिका-विभाजन के द्वारा विजातीय वस्तु के चारों ओर एक झिल्लीनुमा थैली बना लेती हैं। यह थैली मुक्तास्तर (nacre) स्रावित करती है, जिसका जमाव विजातीय वस्तु पर होने लगता है और अंततः नैसर्गिक मोती तैयार हो जाता है। किन्तु प्राकृतिक रूप से बनने वाला इस प्रकार का मोती निस्संदेह दुर्लभ होता है।

संवर्धित मोती मानव हस्तक्षेप का परिणाम है। सूक्ष्म कणिकीय वस्तु (Shell bead) को "केन्द्रक" (Nucleus) के रूप में सीप की बाह्यभित्ति (mantle) ऊतकों के छोटे टुकड़े के साथ सीप की जननग्रंथि में प्रविष्ट कराकर सीप को सागर में छोड़ देते हैं। इस प्रकार हम जिस आकार-प्रकार, रूप-रंग का मोती चाहें, तैयार कर सकते हैं। बस आवश्यक है सही आकार-प्रकार के "केन्द्रक" के चुनाव की।

भारतीय मोती-सीप (पिंक्टाडा फुकाटा-*Pinctada fucata*) मन्नार की खाड़ी में कड़े आधार, जिसे पार्स (paars) कहते हैं और कच्छ की खाड़ी में पाये जाने वाले प्रवालभित्ति या समुद्री चट्टान, जिसे खाद्यार (khaddar) कहते हैं, पर भली भाँति पलते बढ़ते हैं। इसी प्रकार मोती पैदा करने वाले काले मुँह वाले सीप (पिंक्टाडा मार्गेरिटिफेरा-*Pinctada margaritifera*) अण्डमान जल में 1-5 मीटर की गहराई में कम संख्या में पाये जाते हैं, जैसे कुछ सीप रास्ता भटक जाने से आ गए हों। किन्तु इन दोनों प्रकार की जगहों में मोती-संवर्धन उद्योग लगाना संभव नहीं क्योंकि दो सफल खेतियों के बीच असफल मौसम आते हैं। इस प्रकार की अनियमित खेती के कारण यह निर्णय लिया गया कि क्यों न वैज्ञानिक तरीके से मोती की विधिवत् खेती की जाये।

भारत में मोती-संवर्धन के लिए 1972 में टुटिकोरिन में एक शोध परियोजना का शुभारंभ हुआ। टुटिकोरिन से, 22 किलोमीटर की दूरी पर, उत्तर दिशा में एक प्रयोगशाला स्थापित की गई। इस कार्य में लगे वैज्ञानिकों का कठिन परिश्रम और लगन तब रंग लाई जब जुलाई 1973 में एक बिल्कुल गोल मोती तैयार कर लिया गया। सच पूछिए तो इस सफलता से भारत में मोती-संवर्धन का मार्ग प्रशस्त हो गया। भारतीय वैज्ञानिकों ने स्वदेशी तकनीक विकसित कर ली। धीरे-धीरे सागर में मोती की खेती के लिए "बेड़ा संवर्धन विधि" (Raft culture system) पूरी तरह से कारगर बना ली गई। इसी बीच "केन्द्रक" को सीप के शरीर में प्रविष्ट कराने के लिए शल्य-क्रिया उपकरणों (औज़ारों) में सुधार कर लिया गया, मोती किस प्रकार बनता है, इसका विधिवत् अध्ययन किया गया, वप्पालोदई फार्म के पर्यावरण का अध्ययन किया गया और कुछेक वैज्ञानिक (क्रियात्मक)

(शेष पृष्ट 29 पर)

ऐलीलोपैथी : क्रिया, पारिस्थितिक प्रभाव व उपयोग

डेजी रानी बातिश, एच० पी० सिंह व आर० के० कोहली

प्रायः देखा गया है कि यद्यपि पेड़-पौधे चल-फिर नहीं सकते हैं, लेकिन उनमें शत्रुओं से बचने की एक अद्भुत क्षमता होती है। इनके बहुत से कारणों में एक कारण है कि उनमें विभिन्न प्रकार के रसायन पाये जाते हैं जो पौधों को बहुत से गुण प्रदान करते हैं। इन रसायनों के कारण ही पौधे आपस में क्रिया करते हैं। ऐलीलोपैथी एक ऐसी ही रासायनिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक पौधा अपने आस-पास के वातावरण में रसायन छोड़ता है जो आस-पास के दूसरे पौधों पर नकारात्मक असर डालते हैं। स्पष्ट शब्दों में यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक पौधा अपने आपको शक्तिशाली सिद्ध करने के लिए दूसरे पौधों की वृद्धि को रोक देता है, व ऐसा करने के लिये वह अपने रसायनों को प्रयोग में लाता है। पौधों में रसायन गौण उपापचय के कारण बनते है। रसायन, जो कि ऐलीलोपैथी के कारण होते हैं, ऐलीलोरसायन के नाम से जाने जाते हैं।

यद्यदि ऐलीलोपैथी का इतिहास बहुत प्राचीन है या यूँ कहा जा सकता है कि इस प्रक्रिया की जानकारी हमें बहुत सी पुरातन किताबों व शोध पत्रों से मिलती है, फिर भी इस प्रक्रिया का उल्लेख सबसे पहले जर्मन जैववैज्ञानिक मोलिस (1937) ने किया था। उसके बाद तो मानों इस दिशा में शोधकार्य करने वालों की भीड़ सी लग गई व बहुत से वैज्ञानिकों ने इसका वर्णन बहुत ही विस्तृत तरीके से किया है। इनमें अमेरिकन वैज्ञानिक राइस (1984) प्रमुख हैं। उन्होंने इस क्रिया की विस्तृत जानकारी देते हुए बताया है कि पौधा अपने वातावरण में रसायन छोड़ता है जो कि दूसरे आस-पास के पौधों के लिये हानिकारक होते हैं व कभी कमार जब ये रसायन बहुत कम मात्रा में हों तो दूसरे पौधों के लिये लाभदायक भी सिद्ध हो जाते हैं। ऐलीलोपैथी न केवल विकसित पेड़-पौधों में पाई जाती है वरन् यह अति सूक्ष्मजीवों में भी पाई जाती है। इस प्रक्रिया को किसी भी परितंत्र में पाया जा सकता है यह पेड़, शाकों व क्षुपों में बहुत ही प्रमुख रूप से पाई जाती है। जिस भी पौधे द्वारा यह क्रिया सम्पन्न होती है उसे पारितंत्र में चुनिंदा लाभ मिलते हैं और वह पौधा अपने आपको बहुत ही अच्छी प्रकार से स्थापित कर लेता है। अब तो इसको जलीय पौधों में भी पाया गया है।

ऐलीलोपैथी अब एक अलग विज्ञान के रूप में स्थापित हो चुकी है। प्रकृति में यह ऐलीलोरसायनों द्वारा होती है जो पौधों में पाये जाते हैं। अब सवाल पैदा होता है कि ये ऐलीलोरसायन कैसे पौधे से बाहर आते हैं। राइस (1984) तथा कोहली और साथी (1984) के अनुसार ऐलीलोरसायन प्रमुखतः निम्न चार साधनों द्वारा बाहर के वातावरण में आते हैं–

1. प्राकृतिक जल साधनों में घुल कर निक्षालन द्वारा– प्राय इनमें वर्षा प्रमुख है लेकिन ओस की बूंदें, कोहरा व बर्फबारी भी इस प्रक्रिया में सहायता करते हैं।

2. वाष्पीकरण के द्वारा बहुत हल्के रसायन वातावरण में उड़ जाते हैं। इसमें टर्पीन्स प्रमुख हैं।

3. रसायन व ऐलीलोरसायन जड़ों के प्राकृतिक रिसाव मूल स्राव द्वारा भी छोड़े जा सकते हैं।

4. पौधों के प्रमुख भाग जो कि गल या सड़ जाते हैं जैसे कि प्रमुख रूप से पत्ते भी सड़ाव की क्रिया द्वारा ऐलीलोरसायन छोड़ देते हैं।

कोई भी पौधा ऊपर लिखित सभी या किसी भी साधन को प्रयोग में ला सकता है। ये रसायन भूमि में एकत्रित होते जाते हैं व उनमें रासायनिक बदलाव भी आ सकता है जिसके कारण उनका प्रभाव बढ़ भी सकता है।

ऐलीलोपैथी के पारिस्थितिक प्रभाव

1. कृषि क्षेत्र में : प्रायः उपयोगी फ़सलें व हानिकारक खरपतवार दोनों में ही पाये जाते हैं– इस कारण आगामी फसल की पैदावार बहुत कम होती है। फलस्वरूप इससे आर्थिक नुकसान होता है। यह प्रभाव इतना शक्तिशाली व गहरा होता है कि कई बार बहुत ही कम फ़सल उगती है व उसकी वृद्धि भी बहुत कम होती है।

खरपतवार भी जो कि वैसे ही फ़सलों के लिए हानिकारक होते हैं व जिनको खत्म करने के लिए किसान काफी पैसा लगा देते हैं, ऐलीलोपैथिक होते हैं। इसके परिणामस्वरूप फसलों को दोगुना नुकसान होता है। कांग्रेस घास, अमरैंथस, चौलाई, कई घासें व नीला फुलनू (*Parthenium hysterop- herus, Amaranthus, Grasses & Ageratum conyzoides)* कुछ उदाहरण हैं जो ऐलीलोपैथी द्वारा अपना प्रभाव छोड़ते हैं। गेहूँ, मक्का, गन्ना, चावल आदि सब सशक्त ऐलीलोपैथिक फ़सलों के उदाहरण हैं। अन्य फसलों में सूरजमुखी, जौ, बाजरा, राई, खीरा इत्यादि भी जाने-माने एलीलोपैथिक पादप हैं।

ऐलीलोपैथी का हमारे खेतों में एक और प्रभाव है जिसको मृदा की बीमारी कहा जाता है– जब भूमि व मिट्टी में इतने रसायन एकत्र हो जाते हैं कि अगली फ़सल बिल्कुल नहीं होती। यह आमतौर पर उन खेतों में प्रमुख है जहाँ एक ही फ़सल को बार-बार उगाया जाता है। फ़सल-चक्र इससे छुटकारा पाने का एकमात्र तरीका है।

आजकल कृषि में ऐलीलोपैथी का प्रभाव एक और रूप में भी देखा गया है। अक्सर पेड़ खेतों के चारों तरफ वायुरोधक व सुरक्षा-मेखला के रूप में लगाये जाते हैं जिनमें सफेदा व पोपलर आम हैं। शोध द्वारा पाया गया है कि इन पेड़ों के ऐलीलोरसायनों द्वारा गेहूँ की पैदावार पर बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

2. वन क्षेत्र में : वनों में भी ऐलीलोपैथी बहुत ही प्रमुख रूप से पाई जाती है। पेड़ों में ऐलीलोपैथी के अधिक प्रभावशाली होने का कारण उनका विशालकाय होना व दीर्घायु होना आदि है। घने शंकुधारी वनों में पेड़ों के बीज प्राकृतिक रूप से अंकुरित नहीं हो पाते व जिसके कारण उनके स्थापन में बाधा पड़ती है। कुछ जंगली खरपतवार जैसे लैन्टाना आदि में भी ऐलीलोपैथी की प्रक्रिया पाई जाती है जिसके फलस्वरूप बीजों के प्राकृतिक अंकुरण में बाधा पड़ती है। इससे पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इसके अलावा पेड़ों के ऐलीलोरसायन वनों के पोषक चक्र पर भी बुरा प्रभाव डालते हैं।

3. ऐलीलोपैथी द्वारा जैव विविधता पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। चूँकि ऐलीलोपैथिक पौधे एक अपना ही समुदाय बना लेते हैं व आसपास के पौधों को बिल्कुल ही आने नहीं देते इससे जैव विविधता न केवल कम होती है अपितु पर्यावरण पर दुष्प्रभाव भी डालती है। कुछ पौधे जो ऐलीलोपैथी द्वारा प्रभावित होते हैं, बहुत लाभदायक होते हैं जैसे कि ओषधियाँ, पौधे, चारा इत्यादि। इसके कारण चारे की कमी आ जाती है। क्रांग्रेस घास जो एक ऐलीलोपैथिक पौधा है कुछ ऐसा ही असर छोड़ती है। इससे चारे में एकदम कमी आ जाती है व हमारे लाभदायक पशुओं पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

ऐलीलोपैथी के कुछ उपयोग : हालाँकि ऐलीलोपैथी एक नकारात्मक प्रक्रिया है फिर भी अगर शोधकार्य किया जाये तथा इसको ठीक से समझा जाये तो इसे उपयोग में लाया जा सकता है। कुछ अध्ययनों के अनुसार ऐलीलोरसायनों को प्राकृतिक खरपतवार व कीटनाशक दवाइयों के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। कुछ ऐलीलोरसायन तो कमाल का प्रभाव दिखा रहे हैं।

अब सवाल पैदा होता है कि ज़ब बाज़ार में इतनी रासायनिक कीट व खरपतवार नाशक दवाइयाँ उपलब्ध हैं तो ऐलीलोरसानों का उपयोग क्यों किया जाये ? इसका कारण यह है कि जो रासायनिक पदार्थ कृषि कीटनाशक व खरपतवार नाशक दवाइयों के रूप में उपयोग में लाये जा रहे हैं वे पर्यावरण के लिये बहुत हानिकारक हैं। ये रसायन प्रदूषण फैलाते हैं व मानव सेहत के लिये भी हानिकारक हैं। ये सालों साल एक अवस्था में पड़े रहते हैं व खाद-शृंखला द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश पा जाते हैं व भयंकर बीमारियों

का कारण बनते हैं। इसके साथ-साथ ये महँगे भी होते हैं। यही कारण है कि आजकल पर्यावरण वैज्ञानिक ऐसे पदार्थों की खोज में हैं जो न केवल सस्ते हों वरन् प्रभावशाली भी हों। ऐलीलोरसायनों में ये गुण मौजूद हैं। कुछ ऐलीलो-रसायनों के प्रभाव तो इतने अनुकूल हैं कि उनकी पेटेंटिंग भी की गई है। ऐलीलोरसायनों में निम्न गुण पाये जाते हैं–

- ये सस्ते पड़ते हैं।
- ये प्राकृतिक रूप में स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं इसलिए भूमि में प्रदूषण नहीं फैलाते।
- इन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।
- इन्हें संग्रह करना भी निश्चित रूप से आसान है।

उदाहरण के तौर पर सिनमैथिलिन एक ऐसा कीट-नाशक है जो कि सिनियोल के आधार पर बनाया गया है। सिनियोल एक प्राकृतिक रसायन है जो कई पौधों में पाया जाता है जैसे कि चीड़, सफेदा, पोदीना, सावलिया इत्यादि। इसके अतिरिक्त और भी ऐलीलोरसायनों को खरपतवार-नाशकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है जैसे पार्थिनिन कांग्रेस घास से, ऐलैंथोन ऐलैंथस आल्टीसीमा से, आर्टीमिजिनिन को आर्टिमीजिया से।

आजकल कुछ ऐलीलोपैथी फ़सलों को सहयोगी फ़सलों के रूप में उगाया जा रहा है ताकि उनके द्वारा खरपतवारों की रोकथाम की जा सके। राई, खीरा, सूरज-मुखी इनमें प्रमुख हैं। ये भी कोशिश की जा रही है कि जो जीन ऐलीलोपैथी का नियन्त्रण करती हैं, किसी भी प्रकार से डी एन ए पुनर्योजन तकनीकी अथवा पारम्परिक प्रजनन विधियों द्वारा अलग किये जायें व फ़सलों में डाल दिये जायें ताकि ये ऐलीलोरसायन चुनिंदा रूप से खरपतवार नष्ट कर सकें।

ऐलीलोपैथी को एक और रूप में भी उपयोग में लाया जा सकता है। जैसे कि नाइट्रोजन संरक्षण के लिये कई ऐलीलोरसायन नाइट्रोजन यौगिकीकरण की प्रक्रिया को प्रभा-वित करते हैं जिसके द्वारा नाइट्रोजन के नाइट्रेट बनते हैं। जब ऐलीलोरसायन नाइट्रोजन यौगिकीकरण को रोक देते हैं तो नाइट्रोजन का संरक्षण हो जाता है। यह वहाँ पर लाभदायक है जहाँ पर नाइट्रोजन की कमी होती है।

इसके अतिरिक्त ऐलीलोरसायन बीजों के सड़ने से बचाते हैं। यदि ये बीज के अन्दर उपस्थित हों तो बीजों का जीवन-चक्र बढ़ जाता है। अतः ऐलीलोपैथी जो कि मुख्यतः एक हानिकारक प्रक्रिया के रूप में जानी जाती है लाभदायक कार्यों के लिये भी उपयोग में लायी जा सकती है।

–वनस्पति शास्त्र विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़ -160014

हिन्दी विश्वकोश अब इंटरनेट पर भी

प्राप्त जानकारी के अनुसार केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा हिन्दी विश्वकोश को इंटरनेट पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था कर रहा है। सम्भवतः यह पहला अवसर है जब भारत से प्रकाशित कोई विश्वकोश अन्तर्राष्ट्रीय सूचना तंत्र पर उपलब्ध हो रहा है। इससे विश्व भर में फैले हिन्दी भाषा-भाषी तथा शोधकर्ता भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य, कला के साथ-साथ विज्ञान के बारे में प्रामाणिक जानकारी तत्काल हासिल कर सकते हैं।

यह विश्वकोश 6000 पृष्ठों का है जिसमें ज्ञान-विज्ञान के 8000 विषयों पर प्रामाणिक जानकारी संकलित है। इस कोश का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा बारह खण्डों में 1970 में हुआ।

गतांक से आगे

जैव-प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्द

संकलित

पिछले अंकों से पाठकों के लाभार्थ जैव-प्रौद्योगिकी के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या शुरू की गई थी। उसी क्रम में यह पाँचवी किश्त है।

अपशिष्ट (Waste) : जब किसी उत्पाद, उपोत्पाद या अवशिष्ट का लाभदायक उपयोग सम्भव नहीं होता हो उसे अपशिष्ट कहा जाता है। इनमें से जो अपशिष्ट पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं वे प्रदूषक (Pollutant) कहलाते हैं। सभी प्रदूषक अपशिष्ट हैं लेकिन सभी अपशिष्ट प्रदूषक नहीं हैं।

अपशिष्ट तीन प्रकार के हो सकते हैं– जैविक, भौतिक तथा रासायनिक।

आपंक (Sludge) : सीवेज का ठोस अंश। सीवेज में उपस्थित बजरी, रेशे आदि ठोस पदार्थों के सादन या छानन से प्राप्त ठोस अंश।

उपचार के द्वारा आपंक को दुर्गंधरहित तथा रोग-जनकों से विहीन बनाना आवश्यक है।

एकलकोशी प्रोटीन (Single Cell Protein, SCP) : शैवाल, फफूँद, खमीर एवं बैक्टीरिया एकलकोशी सूक्ष्मजीव हैं जिनमें प्राप्य प्रोटीन का उपयोग मानव आहार तथा पशु आहार के रूप में किया जा सकता है। किन्तु इन सूक्ष्मजीवों को अविषैला होना आवश्यक है।

कास्मिड (Cosmid) : वे प्लाज्मिड हैं जिसमें लैम्डा डी. एन. ए. (λDNA) के निम्नांकित क्रम समाकलित होते हैं। (i) cos स्थल एवं (ii) टर्मिनेस बंधन एवं विचलन स्थल।

किण्वित खाद्य (Fermented food) : वे खाद्य पदार्थ जो किण्वन द्वारा तैयार किये जाते हैं। जापान में इस प्रणाली को कोजी (Koji) कहते हैं।

किण्वित खाद्यों में कई गुण पाये जाते हैं- सुधरा हुआ सुवास, सुधरा गठन, अवांछनीय गंधों का अभाव, पोषकता में वृद्धि, सुपाच्यता तथा कम समय में पकना।

क्लोनन (Cloning) : एक कोशिका के समसूत्रण (mitosis) से प्राप्त सभी कोशिकाएँ क्लोन (Clone) कहलाती हैं। क्लोन प्राप्त करने की प्रक्रिया क्लोनन कही जाती है।

छेने का पानी (Whey) : पनीर उत्पादन के समय दूध से कर्ड (curd) विलग करने पर शेष बचा द्रव। इसमें लैक्टोस, प्रोटीन तथा राख तत्व पाये जाते हैं।

जीवाणुभोजी (Bacteriophage) : बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले वाइरस। अधिकांश जीवाणुभोजी संक्रमित कोशिकाओं का लयन (lysis) करते हैं। कई जीवाणुभोजी वाहक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे लैम्डा तथा एम - 13 फाज।

जीवेतर यौगिक (Xenobiotic compounds) : मानव-निर्मित वे पदार्थ जो या तो प्रकृति में नहीं पाये जाते हैं (जैसे डी. डी. टी.) अथवा मानव द्वारा पर्यावरण में विसर्जित मात्रा की अपेक्षा बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं (फीनाल, हाइड्रोकार्बन आदि)।

जैव आवर्धन (Biomagnification) : वह दशा जब किसी यौगिक की सान्द्रता भोजन शृंखला के साथ बढ़ती जाती है। जैसे जल में उपस्थित डी. डी. टी. को जलीय पौधे शोषित करते हैं जिन्हें मछलियाँ खाती हैं, इन मछलियों को पक्षी खाते हैं। इस तरह जैव भोजन शृंखला में डी.डी. टी. की सान्द्रता बढ़ती जाती है।

जैव इथेनाल (Bioethanol) : जीव भार से सूक्ष्मजीवों द्वारा (सैकरोमाइसीज सेरेविसिई) द्वारा उत्पादित इथेनाल नामक एल्कोहल। इसका उपयोग परिवहन में - ब्राजील तथा अमरीका में पेट्रोल के स्थानापन्न के रूप में 1980 से किया जा रहा है। किन्तु अभी पेट्रोल की अपेक्षा महँगा पड़ता है।

इसे स्टार्च, सेल्युलोस के एन्जाइमी पाचन से प्राप्त करते हैं।

जैव ईंधन (Biofuel) : जैविक कारकों द्वारा उत्पादित ईंधन। जैव ईंधन फासिल ईंधनों का स्थान ले सकते हैं। जैव ईंधनों की विशेषता है इनका नवीकरणीय होना। किन्तु फासिल ईंधनों की अपेक्षा इनसे कम कार्बन डाइ आक्साइड निकलती है और पर्यावरण-प्रदूषण नहीं होता।

जैव डीजल (Biodiesel) : जैविक पदार्थों से प्राप्त डीजल जैसा द्रव। इसके दो जैविक स्रोत हैं– पौधों एवं शैवालों द्वारा उत्पन्न लिपिड तथा कुछ पौधों एवं शैवालों द्वारा उत्पन्न हाइड्रो-कार्बन। लिपिडों में पाये जाने वाले वसा अम्लों के एस्टरीकरण से जैव डीजल प्राप्त किया जाता है।

जैव फिल्टर (Biofilter) : वे यंत्र जो सूक्ष्मजीवों की सहायता से किसी घातक गैस का विघटन या रूपान्तरण करते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– ठोस आधार पद्धति तथा गैस-द्रव द्विप्रावस्था पद्धति।

जैव संवर्धन (Bioaugmentation) : उपचार तंत्र में जीवेतर यौगिकों के अपघटन में सूक्ष्मजीवों के कल्चर का इनाकुलेशन।

जैव हाइड्रोजन (Biohydrogen) : जैविक कारकों द्वारा उत्पन्न होने वाली हाइड्रोजन गैस। जल के प्रकाश-अपघटन तथा अवायवीय किण्वन के द्वारा हाइड्रोजन उत्पन्न होती है।

जैव हाइड्रोजन को ईंधन के रूप में प्रयुक्त करने से वायु प्रदूषण उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती क्योंकि जल बनता है।

नवीकरणीय कार्बन स्रोत (Renewable carbon sources) : कार्बन डाइआक्साइड, शीरा, छेने का पानी, सेल्युलोस, स्टार्च जल अपघटनी, औद्योगिक बहिःस्राव तथा सेल्युलोसी अवशिष्ट-इन्हें सूक्ष्मजीवों के जीव भार (bio-mass) उत्पादन के लिए विभिन्न सब्स्ट्रेटों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

प्रकाश स्वपोषित (Photoautotroph) : वे प्रकाश संश्लेषणी पौधे तथा कुछ सूक्ष्मजीव जो प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बन डाइआक्साइड का अपचयन करते हैं।

प्लाज्मिड (Plasmid) : ये बैक्टीरियाई क्रोमोसोम से भिन्न वलयाकार, स्वतन्त्र प्रतिकृति एवं प्रेषण में सक्षम डी. एन. ए. अणु हैं। ये बैक्टीरियाई क्रोमोसोम से अलग अथवा उसमें समाकलित हो सकते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं जिनमें तीन मुख्य हैं - एफ. प्लाज्मिड, आर. प्लाज्मिड तथा कोल प्लाज्मिड।

बायोगैस (Biogas) : बैक्टीरिया द्वारा कार्बनिक पदार्थों के अवायवीय पाचन से उत्पन्न गैसों का मिश्रण जिसमें 60% मीथेन तथा लगभग 40% कार्बन डाइआक्साइड तथा शेष अन्य गैसें रहती हैं।

इसे जैवगैस या जैवमीथेन भी कहते हैं। बायोगैस का उपयोग सीधे जलाने एवं बिजली उत्पन्न करने के लिए किया जाता है।

मीथेनजनी बैक्टीरिया (Methanogenic bacteria) : ये बैक्टीरिया नितान्त अनाक्सी सूक्ष्मजीव हैं। ये ऐसीटेट तथा कार्बन डाइआक्साइड एवं हाइड्रोजन को मीथेन में रूपान्तरित करते हैं।

इनके उदाहरण हैं - मिथेनोसर्सिना बार्केरी तथा मिथेनो-बेक्टीरियम ओमेलिएन्स्काई।

रसायन स्वपो षित (Chemo autotroph) : कु छ बैक्टीरिया सरल अकार्बनिक यौगिकों के आक्सीकरण से प्राप्त ऊर्जा से कार्बन डाइआक्साइड का अपचयन करते हैं। जैसे नाइट्रोबैक्टर।

सुपोषण (Eutrophication) : अपशिष्ट जल से नदियों, नालों, झीलों आदि के पानी में कार्बनिक पदार्थों तथा अकार्बनिक पोषकों की मात्रा में वृद्धि। सुपोषण के कारण सूक्ष्मजीवों एवं पौधों की अधिक वृद्धि होती है जिससे पानी में घुली आक्सीजन घटती जाती है। फलतः जलजीवों विशेषतः मछलियों की मृत्यु हो सकती है।

क्रमशः

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : **मानव को रोग सौंपते पशु**

लेखक : **डॉ. रामस्वरूप सिंह चौहान**

कपीश प्रकाशन, हिसार, प्रथम संस्करण, 1999, मूल्य 80=00 रु०, पृष्ठ संख्या 184

हमारे दैनंदिन जीवन में कहीं न कहीं किसी न किसी पशु से सीधा सम्पर्क या उसके उत्पाद जैसे कि दूध, मांस, ऊन, चमड़ा आदि से सम्पर्क होता रहता है। अतः पशुओं की कुछ बीमारियाँ मनुष्यों में स्थानान्तरित हो जाने की सम्भावना बनी रहती है। पश्चिमी देशों में रोगग्रस्त पशुओं का वध कर दिया जाता है किन्तु हमारे देश में ऐसा कर पाना सम्भव नहीं। हम प्राणिमात्र को अवध्य मानते हैं। अतः ऐसे रोगों से बचाव ही एक ही सरल उपाय है।

प्रस्तुत पुस्तक में पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग, उनके कारक और उनकी पहचान के विषय में सरल एवं संक्षिप्त वर्णन किया गया है। साथ ही उपचार एवं बचाव के उपाय भी सुझाये गये हैं। इस प्रकार के रोगों से बचने के लिए व्यक्तिगत स्तर से लेकर सामाजिक स्तर तक रोगों की भूमिका एवं उनके योगदान का वर्णन किया गया है।

प्रस्तावना समेत 40 छोटे-छोटे शीर्षकों में सारी सामग्री नियोजित की गई है। प्रस्तावना में पशुपक्षियों से मनुष्यों में होने वाले रोगों का नाम जूनोसिस दिया गया है। अभी तक लगभग 300 ऐसी बीमारियों का पता चल चुका है जो पशुओं से मनुष्यों में फैलती हैं। चूँकि लेखक कृषि विश्वविद्यालय, पन्त नगर के पशु चिकित्सा महाविद्यालय में नेशनल फैलो हैं और इस विषय के अनुभवी विद्वान हैं अतः उन्होंने सरल भाषा में सबों के उपयोग हेतु यह पुस्तक लिखकर बहुत बड़ा उपकार किया है। पशु पालकों को विशेषतया कुत्ते, बिल्ली, तोता, कबूतर पालने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

पुस्तक : **भारतीय कृषि का भावी स्वरूप**

सम्पादक : डॉ० पवन कुमार सिंह तथा अनिल कुमार दुबे

प्रकाशक : भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, जून, 1999, पृष्ठ संख्या 379

भारत की स्वतन्त्रता के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी (11-13 अगस्त 1998) आयोजित की गई थी। इस संगोष्ठी की विशेषता यह थी कि देश के ख्यातिप्राप्त कृषि वैज्ञानिकों ने अपने शोधपत्र हिन्दी में प्रस्तुत किये। उन्होंने कृषि विज्ञान की सभी विधाओं पर विद्वत्तापूर्वक चर्चा की। इस गोष्ठी से यह सिद्ध हो गया कि हिन्दी में गूढ़ से गूढ़ विषयों की अभिव्यक्ति हो सकती है।

इस पुस्तक में उक्तगोष्ठी में पठित 30 शोधपत्रों को संकलित किया गया है। इसके कुछ प्रमुख निबन्ध हैं— भारतीय कृषि की वर्तमान स्थिति और अपेक्षाएँ, आर्थिक उदारीकरण के सन्दर्भ में कृषि अनुसंधान एवं टिकाऊ खाद्य सुरक्षा, भारतीय कृषि के संदर्भ में बौद्धिक संपदा अधिकार, भारतीय कृषि में जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान की सीमाएँ एवं संभावनाएँ, विकासोन्मुख आर्थिक परिवेश में बागवानी फसलों से अपेक्षाएँ, शाकीय फसलोत्पादन, पुष्पोत्पादन के व्यावसायिक आयाम, समेकित जल प्रबन्ध के लिए भावी रणनीति, बदलते कृषि परिवेश में कृषि यन्त्रों की उपादेयता, कृषि रसायन जनित खाद्य एवं पर्यावरण प्रदूषण एवं निवारण नीति, कृषि में उच्च शिक्षा प्रणाली एवं विकास, भावी कृषि प्रौद्योगिकी के विकास और प्रसार में कृषकों की सहभागिता तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का कृषि साहित्य में योगदान।

इस पुस्तक में विभिन्न सत्रों में की गई अनुशंसाएँ भी हैं। अन्त में प्रतिभागियों की लम्बी सूची है।

इस पुस्तक के सारे निबन्ध अत्यन्त सूचनाप्रद हैं, भाषा अत्यन्त परिमार्जित है और छपाई शुद्ध है।

–डॉ० शिवगोपाल मिश्र

पुस्तक : **आधुनिक विज्ञान युग**

लेखक : कंवल नयन कपूर

प्रकाशक : हिमाचल पुस्तक भंडार, सरस्वती भंडार, गांधी नगर, दिल्ली-110031

प्रथम संस्करण : 1999, मूल्य : 80.00 रुपये, 192 पृष्ठ, सचित्र।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। मानव ने प्रत्येक युग में अपने जीवन को सरल, सुगम एवं सुखप्रद बनाने के लिये अनेक आविष्कार किये हैं। प्रकृति के रहस्यों तथा नियमों का अन्वेषण करके तथा प्रकृतिप्रदत्त संसाधनों की सहायता से विभिन्न जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण कर एवं उनको अपने ज्ञान व अनुभव से परिष्कृत और परिमार्जित करते हुए मानव ने विज्ञान के क्षेत्र में एक लम्बी दूरी तय की है। पाषाण युग का पत्थर मारने वाला मानव आज अंतर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र तैयार कर रहा है। पहिये के आविष्कार से लेकर अंतरिक्षयानों एवं उपग्रहों के आविष्कार के बीच विज्ञान ने अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त की हैं।

पिछली दो शताब्दियों, विशेषकर बीसवीं शताब्दी में विज्ञान के क्षेत्र में मानव ने जिस प्रकार तीव्र प्रगति की है उससे इस कालखण्ड को हम विज्ञान युग की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज विज्ञान का प्रभाव परिलक्षित होता है। कृषि, मनोरंजन, यातायात, भवन निर्माण, शिक्षा, चिकित्सा, दूर संचार, सुरक्षा, दैनिक जीवनोपयोगी वस्तुओं आदि क्षेत्रों में वैज्ञानिकों द्वारा नित नये आविष्कार किये जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने इसी प्रकार के अनेक आधुनिक आविष्कारों के बारे में विस्तार से वर्णन किया है। विभिन्न आविष्कारों की कहानी, उनकी कार्य प्रणाली एवं उपयोग के बारे में बताया गया है। लेखक ने चित्रों एवं रेखाचित्रों के माध्यम से भी विषयवस्तु को समझाने का प्रयास किया है। इस पुस्तक के माध्यम से आज की नयी पीढ़ी को विज्ञान के क्षेत्र में हुयी प्रगति की जानकारी मिलेगी तथा उन्हें भी कुछ नया प्रयास करने की प्रेरणा मिलेगी।

पुस्तक का आवरण आकर्षक एवं मुद्रण साफ़-सुथरा हैं।

–देवव्रत द्विवेदी

परियोजना सहायक, विज्ञान परिषद् प्रयाग

(पृष्ठ 22 का शेषांश)

प्रयोग किए गए। मोती-संवर्धन के क्षेत्र में अनुसंधानरत वैज्ञानिकों को 1981 में एक और बड़ी उपलब्धि हुई जब वैज्ञानिकों ने "अण्डज उत्पत्ति तकनीक" (hatechery technology) का विकास कर लिया।

मोती-संवर्धन में किसी सीप (दाता) की बाह्यभित्ति के ऊतक (इपीथिलियम epithelium) के एक छोटे से टुकड़े को एक दूसरी सीप (प्रापक) की जननग्रंथि (gonad) में शल्य-क्रिया द्वारा प्रविष्ट कराते हैं। इसके बाद सूक्ष्म "केन्द्रक" (Nucleus) को बाह्यभित्ति ऊतक के संपर्क में ले जाकर छोड़ देते हैं। बाह्य इपीथिलियम का प्रत्यारोपित ऊतक, "केन्द्रक" को चारों ओर से घेर लेता है (कोशिकाविभाजन द्वारा) और एक झिल्लीनुमा थैली का निर्माण कर देता है। अब इपीथिलियम कोशिकायें मुक्तास्तर स्रावित करने लगती हैं। यह स्राव "केन्द्रक' के ऊपर जमने लगता है और इस प्रकार मुक्तास्तर का निर्माण होता जाता है और अंततः मोती तैयार हो जाता है। "केन्द्रक' का रंग-रूप मोती के रंग-रूप को निर्धारित करता है।

इस प्रकार संवर्धन पद्धति से तैयार किए गए मोतियों में मूल्य निर्धारण की दृष्टि से 20 प्रतिशत उच्च गुणवत्ता वाले और 40 प्रतिशत कुछ कम गुणवत्ता वाले होते हैं, जिनको बाज़ारों में ले जाने के पूर्व विरंजन (bleaching) किया जाता है। शेष 40 प्रतिशत बाज़ारों में बिकने लायक नहीं होते हैं।

इस क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिकों में के. अलगरास्वामी, एस. धर्मराज, टी एस. वेलायुद्धन, ए. सी. सी. विक्टर, पी. एस. बी. आर जेम्स, नायर, के नागप्पन, के. एस. राव, एम. आई. राजापाण्डियन, सी. पी. गोपी-नाथन, ए. डी. गाँधी, एम. वेलु, एस. जेड. कासिम जैसे वैज्ञानिकों के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

भारत में मोती–संवर्धन का भविष्य निस्संदेह उज्ज्वल है।

–विज्ञान परिषद, प्रयाग

(1) दिनों का झगड़ा खत्म 29 दिन की ही होगी फरवरी

वर्ष 2000 में फरवरी माह कितने दिन का होगा, इस विवाद पर एम. पी. बिड़ला प्लेनेटेरियम ने हमेशा के लिए विराम लगा दिया। प्लेनेटेरियम के सहायक पीयूष पाण्डेय ने पुष्टि की है कि वर्ष 2000 में फरवरी माह 29 दिन का ही होगा।

संस्थान ने फरवरी माह के 29 दिन का होने के पीछे का आधार स्पष्ट करते हुए कहा कि पृथ्वी को सूर्य का एक चक्कर लगाने में 365.24219दिन का समय लगता है। लेकिन सुविधा के लिए वैज्ञानिक इसे 365.25 दिन मान लेते हैं। इस दोष को दूर करने के लिए हम सभी जानते हैं कि चार से कटने वाले प्रत्येक वर्ष के फरवरी माह में एक लीप दिन जोड़ दिया जाता है अर्थात् उसमें 28 की जगह 29 दिन होते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो हम प्रत्येक चार वर्ष में एक-एक दिन बढ़ाते जाते हैं।

फरवरी -2000						
रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29				

वास्तविकता में एक वर्ष 365 और एक चौथाई दिन से कम का होता है। इसलिए लीप पद्धति के द्वारा निवारण करते हुए भी थोड़ी त्रुटि रह जाती है और हम कुछ अधिक ही जोड़ जाते हैं। यह त्रुटि 400 वर्षों में 3.124 दिन के बराबर बैठती है। इस त्रुटि को दूर करने के लिए 400 से कटने वाले प्रत्येक शताब्दी वर्ष को लीप शताब्दी वर्ष मान लिया जाता है। इसे इस तरह समझा जा सकता है कि वर्ष 1700, 1800 और 1900 लीप शताब्दी वर्ष नहीं थे, इसलिए इनमें फरवरी माह 28 दिन का ही रहा। वर्ष 1600 के समान वर्ष 2000 लीप शताब्दी वर्ष है, इसलिए इसमें फरवरी माह 29 दिन का ही रहेगा।

श्री पाण्डेय के अनुसार इस पद्धति के बावजूद 400 वर्षों में 0.124 दिन की त्रुटि रह जाती है। इस तरह चार हज़ार वर्षों में एक दिन और बढ़ाने की नहीं बल्कि घटाने की आवश्यकता पड़ेगी। उन्होंने कहा कि यह अभी बहुत दूर का मामला है। बहरहाल, वर्ष 2000 की फरवरी में एक और दिन जोड़ने अर्थात् 30 दिन करने का कोई आधार नहीं हैं, क्योंकि हमने पहले से ही अधिक दिन जोड़ रखे हैं।

(2) पास आया पर अधिक चमका नहीं चाँद

"चाँद आज करीब तो आया पर वैसा नहीं चमका जैसी लोग आस लगाए बैठे थे। इसमें सिर्फ इतनी कसर रह गई कि पृथ्वी सूर्य से दूर थी। अगर यह दूरी 4 जनवरी 1912 की तरह रही होती तो आज चांद ज़रूर ज्यादा चमका होता।"

पिछले दिनों छपे एक समाचार के आधार पर कई लोगों ने यह आशा लगा रखी थी कि आज 22 दिसंबर 99 को चाँद पिछले 133 साल बाद अधिक चमकदार दिखेगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। सभी जानते हैं चंद्रमा एक अण्डाकार कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करता है और पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा भी एक अण्डाकार कक्षा में करती है। अतः इन दोनों आकाशीय पिण्डों की दूरी क्रमशः पृथ्वी व सूर्य से बदलती रहती है। इस घटना के संबंध में जवाहर तारामंडल के निदेशक प्रमोद पांडे ने बताया वास्तविकता यह है कि चंद्रमा आज उपभू बिंदु (पृथ्वी से निकटतम दूरी) पर था। पृथ्वी अपने दक्षिण अयनांश पर तथा चंद्रमा पर तथा चंद्रमा पूर्णिमा की कला में था। यह तीनों अलग-अलग घटनाएँ मात्र 10 घंटे के अंतराल में हुई। हाल ही में दो बार ऐसा हुआ है, 21 दिसंबर 1991 तथा 21 दिसंबर 1980 में, जब ये तीनों घटनाएं क्रमशः 24 तथा 23 घंटे के अंतराल पर हुई थीं। 133 वर्ष पहले सन् 1866 में यह अंतराल केवल 20 घंटे था जबकि आज यह अंतराल केवल 10 घंटे का रहा।

यूं तो पृथ्वी तथा सूर्य से दूरी के हिसाब से चंद्रमा की चमक में घटत-बढ़त होती है। पिछली सदी में ही 4 जनवरी 1912 पूर्णिमा के दिन जब चंद्रमा अपनी कक्षा में पृथ्वी के निकटतम बिंदु के काफी पास था तब अवश्य ही आज के

पूर्णिमा के चंद्रमा की तुलना में इसकी चमक कहीं अधिक दिखाई दी थी।

(3) विज्ञान के लिए गौरव का साल

सहस्राब्दी का आखिरी साल 1999, भारत के लिए वैज्ञानिक उपलब्धियों का वर्ष रहा। देश ने उपग्रह प्रक्षेपणों की सफल श्रृखंला के बाद अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष व्यवसाय में प्रवेश किया। साथ ही वैज्ञानिकों ने अगली सदी के उपहार के तौर पर देश को अत्याधुनिक मिसाइलें व पहला पूर्ण स्वदेशी क्रायोजेनिक इंजन भी दिया। अगर अंतरिक्ष विज्ञान की बात करें तो हम कह सकते हैं कि यह भारत का साल था।

ब्रह्माण्ड के रहस्यों की परतें खोलने के लिए पुणे के पास विश्व की सबसे बड़ी दूरबीनों में से एक जायंट मीटरवेव रेडियो टेलीस्कोप (जी एम आर टी) ने काम करना शुरू किया। अहमदाबाद के वैज्ञानिकों ने प्रदर्शित किया कि अरबों साल पहले सौरमंडल अपनी प्रारंभिक अवस्था में क्षुद्र ग्रहों (एस्टरॉयडों) की एक विशाल भट्टी की तरह रहा होगा।

विश्वविख्यात खगोलशास्त्री जयंत विष्णु नारलीकर ने ब्रह्माण्ड के बनने के बारे में अब तक मान्य 'महाविस्फोट के सिद्धान्त' (बिग बैंग थ्योरी) को चुनौती दी और कहा कि ब्रह्माण्ड मात्र एक महाविस्फोट से ही नहीं बल्कि, कई अपेक्षाकृत छोटे-छोटे विस्फोटों से बना। इस बारे में उनके तर्कों को दुनिया अब तक नहीं नकार सकी है।

देश के बायोमेडिकल वैज्ञानिकों को उस समय थोड़ा धक्का लगा जब सरकार ने हैदराबाद के राष्ट्रीय जंतु विज्ञान केंद्र को आदेश दिया कि वह अपने यहाँ रखे गए सभी प्रायोगिक जंतुओं को मुक्त कर दे। इस आदेश से चिकित्सा क्षेत्र के शोधकार्यों में ठहराव सा आ गया। अब जबकि, न्यायालय ने सरकार के आदेश पर रोक लगा दी है, आशा की जा रही है कि भारतीय चिकित्सा विज्ञान एक बार फिर से अपनी पुरानी गति पा लेगा।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिकों को अधिक उपज देने वाले बीजों के विकास में सफलता मिली, शोधकर्ताओं ने एक मानव गुणसूत्र की पूरी संरचना का रहस्योद्घाटन किया, प्रकाश की गति कम करने में सफलता पाई और दिखाया कि नाभिकीय संलयन अर्थात् हाइड्रोजन बम की सैद्धांतिक प्रक्रिया प्रयोगशाला की मेज पर कैसे घटित की जा सकती है। अंतरराष्ट्रीय खगोलशास्त्रियों ने ब्रह्माण्ड में एक और सौरमंडल खोज निकाला। साथ ही उन्होंने छह विशाल ग्रहों की भी खोज की जिनमें से पाँच अपने सूर्य के चारों ओर जिस दूरी पर भ्रमण कर रहे हैं वह पृथ्वी की अपने सूर्य दूरी के लगभग है और वहाँ जीवन के अनुकूल वातावरण होने की संभावना प्रकट की गई है।

वर्ष 1999 विश्व विज्ञान जगत् को कुछ कड़वी यादें भी दे गया। सितंबर माह में जापान के उत्तर-पश्चिम इलाके तोकिमूरा के एक परमाणु रिएक्टर में अब तक की सबसे भीषण दुर्घटना घटी। दुर्घटना के फलस्वरूप वातावरण में रेडियोधर्मिता फैल जाने से 55 से अधिक कर्मचारी घायल हो गए।

अप्रैल 1999 में भारत ने फ्रेंच गुयाना में काउरू से अपना पहला व्यापारिक दूरसंचार उपग्रह इंसेट-2ई सफलतापूर्वक प्रक्षेपित कर ग्लोबल टेलीकम्युनिकेशन सर्विसेज मार्केट में प्रवेश किया। इसके साथ ही इसरो ने उपग्रह निर्माण के क्षेत्र में एक नया रास्ता खोला। इंसेट-2ई की सेवाओं के लिए देश अब तक 10 करोड़ डॉलर के आर्डर पा चुका है। अगले महीने ही इसरो ने श्रीहरिकोटा से अपने पोलर सैटेलाइट लॉन्च वेहिकल (पी एस एल वी) की सहायता से अंतरिक्ष में तीन उपग्रह पहुँचा कर हैट्रिक जमाई।

(4) भूकंप से संबंधित विश्व मानचित्र प्रकाशित

वैज्ञानिकों का मानना है कि दुनिया की अधिकांश आबादी भूकंप आने की संभावना वाले क्षेत्रों में रह रही है। इस संबंध में वैज्ञानिकों ने पहली बार एक मानचित्र जारी किया है। इसमें विश्व के उन हिस्सों की जानकारी दी गई है जहाँ कि भविष्य मे शक्तिशाली भूकंप आने की संभावना है। उक्त संभावित क्षेत्रों में भारत-चीन सीमा का भी उल्लेख किया गया है।

इस मानचित्र को विश्व भर के लगभग 500 वैज्ञानिकों ने तैयार किया है। इसे बनाने में सात वर्ष का समय लगा। इस मानचित्र में भूकंप के संभावित क्षेत्रों की कुछ अद्यतन और चौंकाने वाली जानकारियाँ दी गई हैं। जिन क्षेत्रों में भूकंप आने की सर्वाधिक संभावना है, मानचित्र में उसे लाल रंग से चिन्हित किया गया है। इनमें दक्षिणी केलिफोर्निया, हवाई द्वीप का दक्षिण-पूर्व हिस्सा, तुर्की, ताइवान, आइसलैंड तथा भारत-चीन सीमा क्षेत्र शामिल हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि भूकंप की त्रासदी से निबटने की पूर्व तैयारी के संबंध में यह मानचित्र काफी लाभदायक सिद्ध हो सकता है। शक्तिशाली भूकंप से मकानों को बचाने के लिए ज़रूरी

तकनीकों की जानकारी मुहैया कराने के लिए वैज्ञानिकों ने इन देशों को प्रस्ताव भी किया है।

मानचित्र के साथ जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया की आधी आबादी ऐसे क्षेत्रों में रह रही है जहाँ कि भविष्य में शक्तिशाली भूकंप आने की संभावना है। इसमें विश्व के दस से पंद्रह प्रतिशत हिस्सों को अत्यधिक संवेदनशील क्षेत्रों की श्रेणी में रखा गया है।

(5) एक खगोलीय घटना

अयनांश (एक्विनोक्स) के अपने स्थान से लगातार विचलित होने की खगोलीय घटना ने अब नई सनसनी पैदा कर दी है। आधुनिक खगोलीय विशेषज्ञों ने इसे स्वीकार कर लिया है और अब इसको लेकर अध्ययन व शोध पर जोर दिया जा रहा है। अध्ययन के मुताबिक वह सृष्टि बिंदु जहाँ से सभी ग्रहों ने अपनी यात्रा आरंभ की, अपने स्थान से 23 डिग्री खिसक चुका है और इसी कारण ऋृतुओं में परिवर्तन हो रहा है। प्राचीन ऋतु विज्ञान व गणितीय गणना पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। अयनांश के 24 डिग्री पार कर जाने पर मौसम में भारी परिवर्तन की आशंका व्यक्त की जा रही है। ज्योतिष विद्वानों का कहना है कि दुनिया के एस्ट्रोफिजिशियनों के लिए यह चुनौती है जबकि प्राचीन भारतीय सिद्धांतों में इसका संकेत पहले ही दे दिया गया था।

नई सहस्राब्दी और फरवरी के कुल दिनों को लेकर अभी चर्चा थमी ही नहीं थी कि खगोल व ज्योतिष विद्वानों के सामने एक्विनोक्स को लेकर चर्चाएँ शुरू हो गई। हालांकि इस खगोलीय घटना का समय की भिन्नता से कोई लेना-देना नहीं है लेकिन घटना को नई सदी में शोध व अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा रहा है। अयनांश जिसे ब्रह्मांड में सृष्टि का वह बिंदु माना जाता है जहाँ से पृथ्वी सहित सभी ग्रहों ने अपनी यात्रा आरंभ की थी। दोलन के रूप में पृथ्वी के ठीक बीचों-बीच यह बिंदु आता है। हाल ही में हुए अध्ययन के बाद यह पाया गया कि यह बिंदु जो वेदकाल के समय शून्य डिग्री पर था अपने स्थान से 23 अंश 32 कला खिसक चुका है। इसकी स्पीड दशमलव 50 सेकेंड प्रति वर्ष आँकी गई है।

ज्योतिषियों का कहना है कि 24 अंश को पार करते ही दिन व समय की गणना और मौसम चक्र पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के ज्योतिष विभाग के डॉ. कामेश्वर उपाध्याय का कहना है कि दुनिया में आधुनिक खगोल वैज्ञानिकों ने इस पर तेज़ी से शोध शुरू कर दिया है। वैसे इस बात को लेकर मतांतर है कि सृष्टि बिंदु 24 अंश को पार कर जाएगा।

कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि अयनगति 24 अंश तक जाने के बाद वापस लौट आएगी जबकि कुछ लोगों का कहना है कि 24 का आँकड़ा पार हो जाएगा। यदि ऐसा होता तो ऋतु परिवर्तन व विपरीतीकरण होगा। वैसे इसका प्रभाव अभी से मिलना शुरू हो गया है। पहले कृत्तिका में वसंत ऋतु आती थी अब यह मेष राशि में चली गई है। इसी प्रकार वर्षा जो पहले आषाढ़ से शुरू होती थी अब श्रावण से होती है। आने वाले वर्षों में जैसे-जैसे अयनांश आगे बढ़ेगा, मौसम परिवर्तित होगा। हमारे यहां सूर्य सिद्धांत में इसकी जानकारी पहले से ही दी गई है।

(6) ब्रह्मांड तेजी से बढ़ रहा है

ब्रह्मांड तेज़ी से बढ़ रहा है। सौरमंडल, ग्लेशियर, कास्मिक अवयव और तारा पिंडों के विलयीकरण के रिक्त ब्रह्मांड दो प्रतिशत तक भर चुका है और इसके बढ़ने का क्रम तेज़ी से जारी है। खगोलशास्त्रियों में इसकी गति के मापन को लेकर चर्चा है क्योंकि अभी तक यह नहीं पता किया जा सका है कि ब्रह्मांड के भरने की रफ्तार क्या है ?

ज्योतिषशास्त्रियों के मुताबिक वर्षों से ग्रहों के बनने व तारा पिंडों के बनने की प्रक्रिया के चलते ब्रह्मांड की रिक्तता कम होती जा रही है। **भागवत पुराण** में इसके बढ़ने का वर्णन पहले ही कर दिया गया है। इसके मुताबिक ब्रह्मांड पूरा (सौ प्रतिशत) भरेगा और इसके बाद खाली होना शुरू होगा। ब्रह्मांड के भरने की तिथि महाप्रलय की होगी और जिस दिन से इसके खाली होने का क्रम शुरू होगा, नई सृष्टि बनने लगेगी।

(संकलित)

विज्ञान परिषद् प्रयाग

द्वारा आयोजित

अखिल भारतीय विज्ञान लेखन प्रतियोगिता 2000

हिटेकर पुरस्कार

सर्वश्रेष्ठ लेख अथवा पुस्तक को एक हजार रुपयों का पुरस्कार

- लेख अथवा पुस्तक केवल विज्ञान के इतिहास से सम्बन्धित या किसी वैज्ञानिक की जीवनी पर होना चाहिए।
- केवल प्रकाशित लेखों अथवा पुस्तको पर ही विचार किया जायेगा।
- लेख किसी भी हिन्दी पत्रिका में छपा हो सकता हैं।
- लेख अथवा पुस्तक के प्रकाशन की अवधि वर्ष के जनवरी और दिसम्बर माह के बीच कभी भी हो सकती है।
- इस वर्ष पुरस्कार के लिए लेख अथवा पुस्तक जनवरी 1999 से दिसम्बर 1999 माह के बीच प्रकाशित हो।
- लेखक को साथ में इस आशय का आश्वासन देना होगा कि लेख अथवा पुस्तक मौलिक है।
- विज्ञान परिषद् से सम्बन्धित अधिकारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकते।
- वर्ष 1999 के पुरस्कार के लिए लेख भेजने की अंतिम तिथि 31 मार्च 2000 है।
- पुरस्कार के लिए पक्ष प्रचार करने वाले प्रतिभागियों को इस प्रतियोगिता के लिए उपयुक्त नहीं समझा जायेगा।

लेख निम्न पते पर भेजें :

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

ISSN : 0373–1200

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

मार्च 2000

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

// विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 85 अंक 12
मार्च 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक

अरुण राय
दी कम्प्यूटर कम्पोजर, 7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001

विषय-सूची

नीली क्रान्ति की जननी 'जलीय खेती' यानि "एक्वाकल्चर"

डॉ० अरविन्द मिश्र

> भारत सरकार के जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से विज्ञान परिषद् द्वारा जैव-प्रौद्योगिकी पर करायी जाने वाली व्याख्यान माला का द्वितीय पुष्प। –सम्पादक

मानव की बेतहाशा बढ़ती आबादी समूचे विश्व के खाद्य वैज्ञानिकों के समक्ष एक बड़ी चुनौती बन गयी है। खाद्य समस्या के टिकाऊ हल के लिये वैकल्पिक खाद्य स्रोतों की तलाश जारी है। **हरित** और **श्वेत** क्रान्तियों के बाद बुभुक्षित मानवता के उद्धार के लिये पुराणोक्त "मत्स्यावतार" के ही एक नये संस्करण के रूप में **"नीली क्रान्ति"** अब हमारे सामने है। नीली क्रान्ति का अर्थ है **जल की नीलिमा से उभरती क्रान्ति,** जो मानव मात्र की बुभुक्षा को दूर कर देगी। महात्मा बुद्ध का एक अवतार मछली के स्वरूप में भी होना बताया गया है जिससे भूखे विपन्न लोगों का उदर-पोषण संभव हो पाया था। नीली क्रान्ति का मुख्य संबल भी मछली पालन ही है। वस्तुतः नीली क्रान्ति जल प्रसूता है, जलीय खेती (एक्वाकल्चर) से उपजी है। तकनीकी भाषा में कहें तो जलीय खेती का अर्थ है, नियन्त्रित परिस्थितियों में आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण जलीय जीवों और वनस्पतियों की खेती।

जलीय खेती (एक्वाकल्चर) के विविध रूप

1. भारतीय मेजरकार्प मछलियों का पालन

सम्पूर्ण भारत के मैदानी क्षेत्र में अन्तस्थलीय जलीय स्रोतों में पायी जाने वाली विभिन्न मत्स्य-प्रजातियों में **कतला, रोहू** और **नैन** मछलियों का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि कम समय में इनकी अधिक बढ़वार होती है और बाजार मूल्य भी अधिक होता है। इन मछलियों को **भारतीय मेजरकार्प** की संज्ञा दी गई है तथा व्यवसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के कारण इनका पालन तालाब में श्रेष्ठ माना गया है। ये प्रजातियाँ बिना एक दूसरे को क्षति पहुँचाये एक साथ सुगमतापूर्वक पाली जा सकती हैं। कतला पानी की ऊपरी सतह, रोहू मध्य सतह तथा नैन निचली सतह पर उपलब्ध जीवन-स्तरों का पूर्ण उपयोग करते हुये वृद्धि करती हैं। सामान्यतः यदि मात्र भारतीय मेजरकार्प मछलियों का पालन किया जाय तो कतला, रोहू और नैन की लगभग 50 मि० मी० आकार की 5000 अंगुलिकायें क्रमशः 40 प्रतिशत, 30 प्रतिशत व 30 प्रतिशत के अनुपात में संचित की जानी चाहिये। संचय के पूर्व तालाब की तैयारी, उर्वरकों का प्रयोग आदि सुनिश्चित किया जाना चाहिये ताकि संचित मत्स्य बीज के लिये तालाब में पर्याप्त प्राकृतिक प्लवक उपलब्ध होता रहे। उत्पादन में उच्चतम वृद्धि के आशय से संचित स्टाक के भार के न्यूनतम प्रतिशत की दर से प्रतिदिन पूरक आहार भी दिया जाना चाहिये। प्रत्येक माह मछलियों की वृद्धि का निरीक्षण भी जाल चलवाकर करते रहना चाहिये ताकि वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त होता रहे।

2. देशी व विदेशी कार्प मछलियों का मिश्रित पालन

भारतीय मेजरकार्प मछलियों के साथ-साथ यदि तालाब में कतिपय विदेशी कार्प मछलियों को, उदाहरणार्थ सिल्वर कार्प (**हाइपोफथैलमिक्थिस मोली ट्रिक्स**), ग्रासकार्प (**टोनोफैरिंगोडान आईडिला**) एवं कामनकार्प (**साईप्रिनस कार्पियो वेर, कम्युनिस**) का पालन किया जाए तो उत्पादन व आय के स्तर में और भी वृद्धि की जा सकती है तथा मत्स्यपालन स्वाभाविक रूप से अधिक लाभान्वित होगा। जहाँ तक देशी मछलियों के साथ विदेशी मछलियों की अंगुलिकाओं के संचय अनुपात का प्रश्न है, अधोलिखित अनुपात श्रेयस्कर माना गया है–

मिश्रित मत्स्य पालन में मछलियों का संचय अनुपात :
अंगुलिका का आकार लगभग 50 मि० मी०
अंगुलिका संचय दर 5000 प्रति हेक्टेयर

भारतीय मेजर कार्प	विदेशी मेजर कार्प	योग	अन्य विविरण
कतला 1500 (30 %)	सिल्वर कार्प 500 (10 %)	2000 (40 %)	सतह भोजी मीन
रोहू 1000 (20 %)	ग्रा कार्प 500 (10 %)	1500 (30 %)	मध्य जलस्तरीय
नैन 750 (15 %)	कामन कार्प 750 (1 %)	1500 (30 %)	तल स्तर मीन
योग 3250	1750	5000	

इस प्रकार एक सीमित जल क्षेत्र से एक सीमित समय में कम लागत से अधिक मत्स्य उत्पादन प्राप्त किया जाना सम्भव है। देशी व विदेशी मछलियों का मिश्रित पालन निश्चित ही विशेष लाभकारी होता है तथा उत्तर प्रदेश की स्थिति के अनुसार सारे मैदानी क्षेत्र में इस प्रकार के उत्पादन की अपार संभावनायें हैं। अनेक प्रगतिशील मत्स्य पालक इस विधि को अपना रहे हैं तथा भारत के मत्स्य उत्पादन स्तर में उल्लेखनीय योगदान दे रहे हैं।

3. मछली के साथ बत्तख पालन

मत्स्य पालन के साथ-साथ तालाब में बत्तखों का पालन भी विशेष लाभकारी सिद्ध हो रहा है, क्योंकि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत् मछली उत्पादन के साथ-साथ बत्तखों के अंडे व मांस का उत्पादन भी प्राप्त किया जा सकता है जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त किया जाना संभव है। इस प्रकार मत्स्य पालन कार्यक्रम को बहुआयामी बनाया जा सकता है। मत्स्य-सह-बत्तख पालन में एक प्रमुख विशेषता यह है कि तालाब को पृथक से उर्वरक देने की आवश्यकता नहीं रह जाती है एवं साथ ही बत्तखों के तैरने से पानी में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा उपयुक्त रहती है और जलीय पर्यावरण मछलियों की वृद्धि के लिये अनुकूल रहता है। एक हेक्टेयर तालाब में 450 कि० ग्रा० बत्तख का मांस प्रतिवर्ष प्राप्त किया जा सकता है जिससे और अधिक लाभान्वित हुआ जा सकता है। उत्तर प्रदेश में मत्स्य-सह-बत्तख पालन की अपार संभावनायें हैं तथा इस कार्यक्रम को व्यापक रूप से अपनाया जा सकता है। बत्तख की खाकी कैम्पवेल प्रजाति विशेष उपयोगी पायी गयी है। हेसरघट्ट (कर्नाटक) में इस प्रजाति के बत्तखों का प्रजनन केन्द्र है, जहाँ से चूजे और अंडे प्राप्त किये जा सकते हैं।

4. मछली के साथ मुर्गी पालन

मछली के साथ ही तालाब के बन्धों पर दरबे बनाते हैं जो 0.32 से 0.4 वर्ग मीटर प्रति मुर्गी के दर से बना होता है और मुर्गी पालते हैं। इस विधि से 5000 से 6000 मछली के बच्चे प्रति हेक्टेयर पालते हैं। तालाब के प्रति हेक्टेयर क्षेत्र में मुर्गियों के मल से उर्वरीकरण हेतु 500 से 600 मुर्गियों की आवश्यकता होती है। मुर्गियों को बन्धों पर बने हुये दरबों पर पाला जाता है तथा उन्हें बाहर नहीं निकलने दिया जाता है। मुर्गियों में प्रतिदिन प्रति मुर्गी अंडे देना शुरू कर देती हैं, जो 18 माह तक चलता है। इस प्रकार एक मुर्गी से प्रतिवर्ष 210 से 250 अंडे प्राप्त होते हैं। 18 माह बाद मुर्गियों को मांस हेतु बेच दिया जाता है। तालाब में मछलियों को किसी भी प्रकार का परिपूरक आहार नहीं दिया जाता है एवं किसी भी उर्वरक का प्रयोग नहीं दिया जाता है। मुर्गियों के दरबों में बिछावन के साथ मल एवं गिरे हुये मुर्गियों के आहार को तालाब में मछलियों के प्राकृतिक आहार प्लवक उत्पादन हेतु प्रयोग किया जाता है जो कि सीधे पूरक आहार की भी प्रतिपूर्ति करते हैं। इस पद्धति से प्रति हेक्टेयर तालाब से 4500 से 5000 किग्रा० मछली तथा 70000 हजार मुर्गियों के अंडे तथा लगभग 1250 किग्रा० मुर्गियों का मांस प्राप्त होता है।

इसी तरह सुअर पालन और पशु पालन भी किया जा सकता है।

5. धान के साथ मछली पालन

यह पद्धति ऐसे क्षेत्रों के लिये उपयुक्त है जहाँ पर वर्ष में लगभग 4 से 6 माह तक जल जमाव की स्थिति बनी रहती है। ऐसे क्षेत्रों में खेत के मेड़ों को ऊँचा बन्धा बनाकर खेत के चारों तरफ 2 मीटर चौड़ी तथा 1 मीटर गहरी खाई बना दी जाती है तथा जल निकास हेतु नाली बनाकर लोहे की महीन जाली लगा दी जाती है ताकि पाले जाने वाली मछलियाँ बाहर न जा सकें एवं अतिरिक्त जल बाहर आ सके। धान के साथ कम गहराई तथा कीचड़ युक्त पानी में पाली जा सकने वाली मांगुर, सौर तिलापिया एवं कामनकार्प मछलियों को पालने की विधि उपलब्ध है। इसके अलावा मांगुर, रोहू, नैन, सिल्वर कार्प एवं कामन कार्प मछलियों को मिश्रित मछली पालन की तरह बागबानी के साथ भी पालन की तकनीक शुरू हो गई है। इस पद्धति में धान की रोपाई के एक सप्ताह बाद मछलियों की 6000-10000 मत्स्य अंगुलिकाओं को पालने हेतु छोड़ दिया जाता है। धान की जलप्रिया एवं जल लहरी प्रजाति की रोपाई हेतु चयन किया जाता है। मछलियां धान के खेत के पानी में उपलब्ध प्लवक एवं कीटों के लार्वा को भोजन के रूप में खाती हैं तथा अलग से इन्हें पूरक आहार खिलाया जाता है। खरीफ धान की फसल लगभग 6 माह में काट ली जाती है। मछली के बढ़ते हुये बच्चे फ़सल कटाई के बाद बनाये गये खाइयों में चले जाते हैं, जिन्हें बाद में पानी सुखाकर पकड़ा जाता है। 6 माह में धान की लगभग 12 कुंतल मात्रा तथा मछली का उत्पादन लगभग 1000 किग्रा० प्रति हेक्टेयर की दर से प्राप्त होता है।

6. मछली व सादे पानी के झींगे का साथ-साथ पालन

जाइन्ट फ्रेश वाटर प्रान (**मेक्रोब्रेकियम रोजनबर्गाई**) संसार में सादे पानी के झींगे की सबसे बड़ी प्रजाति हैं तथा इसका आकार 31 सेमी० तक होने की जानकारी है। प्रारम्भिक तौर पर फ्रेश वाटर प्रान कल्चर का प्रायोगिक कार्य उत्तर प्रदेश में मत्स्य विभाग द्वारा चयनित स्थलों पर किया गया है तथा प्रयोगों में यह तथ्य प्रकाश में आया है कि आदर्श परिस्थितियों में उत्तर प्रदेश में जाइंट फ्रेश वाटर प्रान की अधिकतम वृद्धि 230 मि० मी०, अधिकतम भार 142.5 ग्राम तक हो सकती है। फ्रेश वाटर प्रान की विभिन्न प्रजातियों का प्रचलन मुख्यतः नदियों के मुहानें व समुद्र तटीय क्षेत्रों में होता है और इनके छोटे-छोटे बच्चे मीठे जल की ओर विस्थापित होते हैं। उत्तर प्रदेश में झींगा पालन में जो प्रयोग किये गये हैं उनके परिणामों के अनुसार झींगा बीज प्रदेश के बाहर से मंगाने के कारण बीज आयात पर आर्थिक व्यय स्वरूप इसका मोनो कल्चर आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं है किन्तु कार्प मछलियों के साथ-साथ इसका पालन उपयोगी हो सकता है। इस संबंध में अभी शोधकार्य की आवश्यकता है।

7. कैट फिश कल्चर की सम्भावनायें

देश के कतिपय अन्य प्रान्तों में कैट फिश, मांगुर, सिंधी आदि का कल्चर कार्य सुनिश्चित रूप से किया जा रहा है। किन्तु उत्तर प्रदेश में इस प्रकार के पालन को प्रोत्साहन किया जाना अभी शेष है।

8. रनिंग वाटर फिश कल्चर

अभी तक उत्तर प्रदेश में रनिंग वाटर फिश कल्चर तकनीकी का विकास नहीं हो पाया है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में जहाँ तालाबों के रूप में बहुत कम जल सम्पदा उपलब्ध है, रनिंग वाटर फिश कल्चर लाभकारी हो सकता है। पर्वतीय नदियों व जल धाराओं के ऐसे सपाट भागों में जहाँ तालाब निर्माण हेतु भूमि उपलब्ध है, तालाब बनाकर एक ओर से जल धारा का पानी लेकर दूसरी ओर से पुनः जल धारा में प्रवाहित किया जा सकता है। इस प्रकार तालाब में रनिंग वाटर कंडीशन उपलब्ध हो सकती है। पर्वतीय क्षेत्र के अतिरिक्त मैदानी भाग में बहते हुये पानी में मत्स्य पालन के पायलट प्रोजेक्ट चलाये जा सकते हैं तत्पश्चात् उपयोगिता के आधार पर इस प्रकार के कार्यक्रम को व्यापक आधार पर अपनाया जा सकता है।

एक्वाकल्चर में जैव-प्रौद्योगिकी की नयी उपलब्धियाँ

(1) व्यावसायिक मत्स्य प्रजातियों का नस्ल सुधार

मत्स्य प्रजातियों के आपसी संकरण से मनोवांछित गुणों वाली नयी मत्स्य प्रजाति के विकास को लेकर प्रयास जारी है। व्यावसायिक प्रजातियों जैसे मुख्य शफरों-कतला, रोहू, नैन तथा विदेशी मूल की सिल्वर, ग्रास तथा कामन कार्प (Common Carp) के अनेक संकरण-संयोगों को मूर्तरूप देकर उनकी संकर प्रजातियाँ उत्पन्न की जा चुकी हैं। कतला-रोहू की संकर प्रजाति उपयोगी पायी गयी है। इसी तरह अन्य संकर प्रजातियों का प्रायोगिक एवं मैदानी मूल्यांकन परीक्षण प्रगति पर है। हैचरी उत्पादित अन्तः

प्रजनित समूहों में आपसी संकरण से लेकर ओज (Hybrid Vigour) उत्पन्न कर उत्पादकता बढ़ाने की संभावनाओं का पता लगाया जा रहा है।

पालतू प्राणियों के बंश चुनाव (Selection) की आनुभूतिक विधि से श्रेष्ठ उत्पादन वाली नस्ल के विकास की अच्छी संभावनायें परिलक्षित हुई हैं। एक इण्डोनार्वेजियन परियोजना के अन्तर्गत सेन्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑव फ्रेश वाटर एक्वाकल्चर, भुवनेश्वर में रोहू की विभिन्न नस्लों (Varieties) को कई नदी प्रणालियों से एकत्र एवं संकरित कर एक श्रेष्ठ ब्रीड तैयार करने में सफलता मिली है। राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो और हिमाचल प्रदेश के मत्स्य विभाग द्वारा संचालित जैव-प्रौद्योगिकी विभाग (भारत सरकार) की एक परियोजना के अन्तर्गत कामनकार्प मछली के समूहों (Population) के आनुवंशकीय शक्तीकरण का कार्य प्रगति पर है।

(2) लैंगिक विपर्यय

भारत की कई व्यावसायिक मत्स्य प्रजातियों के कोशानुवंशिकीय अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि अधिकांश में उच्च पृष्ठ-वंशियों-सरीसृपों, पक्षियों व स्तनपोषियों सरीखा विषम आकारिक लैंगिक गुणसूत्र नहीं होता। अतः इनमें लैंगिक परिवर्तन अपेक्षाकृत आसानी से संभव है। ''सेक्स हार्मोन'' के अनुप्रयोग से मछलियों में लैंगिक विपर्यय के प्रयोग सफल हुये हैं।

मादा शिशुमीन समूहों को ''मैथिल टेस्टोस्टेरोन'' की नियमित व नियन्त्रित बाहरी खुराक से नर मछली समूह में परिवर्तित किया जाता है। यद्यपि ऐसी मछलियों का आनुवंशिकीय संघटन मादा का ही होता है। अतः ऐसी नर रूपी किन्तु मादा ''एक्स'' गुणसूत्र वाली मछलियों से सीमेन (नर युग्मक) प्राप्त कर सामान्य मछली के अंडों से निषेचन कराने पर मात्र मादा सन्तति प्राप्त की जाती है। भारत में, ग्रासकार्प कामनकार्प और सिल्वरकार्प मछलियों पर ऐसे प्रयोग सफल हुये हैं। कामनकार्प और टिलैपिया मछलियों में लैंगिक परिवर्तन के ऐसे प्रयोग सफल हुये हैं। एक्स लिंग (Monosex) मत्स्य पालन में मछलियों की प्राकृतिक वंशवृद्धि पर नियंत्रण रखा जा सकता है। कामनकार्प और टिलैपिया चूँकि संवर्धन प्रणालियों में अनियन्त्रित प्रजनन के लिए कुख्यात हैं अतः इनका एकल लिंग पालन ही उचित पाया गया है।

(3) आनुवंशिक अभियान्त्रिकी

मछलियों में आनुवंशिक अभियान्त्रिकी से प्रजाति सुधार की विपुल संभावनायें परिलक्षित हुई हैं। सबसे अच्छी बात तो यह है कि आनुवंशिक अभियान्त्रिकी की विधियाँ संकरण या वरण तकनीकों की भांति अधिक समय न लेकर तुरन्त परिणाम देने वाली होती हैं। इन विधियों में मछली के वंशाणु (जीन) या फिर समूचे गुणसूत्र के सेट में वांछित हेरफेर कर अभीष्ट उत्पादन प्राप्त किया जाता है। प्रचलित विधियाँ हैं –

1. गायनोजेनेसिस (मादा जनन) तथा एन्ड्रोजेनेसिस (पुंसवन या नर जनन)
2. पॉलीप्लायडी (बहुयूत्रीकरण)
3. ट्रांसजेनेसिस (वंशाणु अन्तरण/अन्तर्वेशन)

एकल-लिंगी मत्स्य उत्पादन की गायनोजेनेसिस विधि में मछलियों का उत्पादन मात्र मातृ गुणसूत्रों से किया जाता है। इसमें शुक्राणुओं के गुणसूत्रों को विकिरणों के जरिये निष्क्रिय बना दिया जाता है और फिर ऐसे शुक्राणुओं से अंडाणुओं का संयोग (निषेचन) कराया जाता है। अंडाणुओं को तदन्तर तापीय अथवा दाबीय ''शॉक'' दिया जाता है, जिससे कोशिका विभाजन के अन्तर्गत क्रोमोजोम सेट वाले दूसरे ध्रुवीय पिण्ड के निष्क्रमण को रोक लिया जाता है– फलतः द्विगुणित गुणसूत्रों के सेट वाली सन्तति उत्पादित होती है। भारत में कतला, रोहू, नैन मछलियों पर यह प्रयोग सफल हुआ है।

एन्ड्रोजेनेसिस यानी नर मछलियों के सन्तति प्रसार हेतु शुक्राणु के बजाय अण्डाणुओं को विकिरण से गुजारते हैं, जिससे उनके आनुवशकीय पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। शुक्राणुओं से संसर्ग के पश्चात निषेचित अंडों को यहाँ भी तापीय या दाबीय प्रघात से ध्रुवीय पिण्ड के बहिर्गमन को रोक कर नर लिंगी सन्तति का उत्पादन सुनिश्चित किया जाता है।

गायनोजेनेसिस की तकनीक शुद्धतम ''अन्तः प्रजनित पीढ़ियों/वंशजों'' के व्यावसायिक उत्पादन और पुनः समान अन्तःप्रजनित वंशजों से उनके पारस्परिक संकरण से ''संकर ओज'' (Hybrid Vigour) से उत्पादकता में वृद्धि हेतु अत्यन्त उपयोगी पायी गयी है।

ऐसी मान्यता है कि बहुगुणक (पालीप्लायड) यानी कई सेट गुणसूत्रों वाली मछलियों में द्विगुणित (2) यानी सामान्य गुणसूत्र वाली मछलियों से तीव्रता से बढ़ती है। मछलियों के सामान्य निषेचन की प्रक्रिया के पश्चात द्वितीय ध्रुवीय क्रोमोजोम सेट से युक्त मछलियाँ ताप और दाब के प्रघातों से प्राप्त की जाती हैं, जिनमें क्रोमोजोम का तीन-चार सेट होता है। त्रिगुणक मछलियों में तापीय/ दाबीय प्रघात से प्रथम सूत्री विभाजन को रोका जाता है। इसी तरह चतुर्गुणक मादाओं और समयुग्मक नरों को पुनः बंध्य त्रिगुणक मछली के उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है– त्रिगुणक मछलियों में लैंगिक विकास अवरुद्ध हो रहता है और इसलिये ऊर्जा का व्यय लैंगिक अंगों के विकास में न होने से मछलियों की वृद्धि दर तीव्र हो जाती है।

बहुसूत्री मछलियों को लाल रुधिर कणिकाओं के केन्द्रक के बढ़े आकार को डी एन ए आकलन या फिर कोशानुवंशकीय जांच से पहचाना ज़ा सकता है।

सूक्ष्म अन्तर्वेशन (Microinjection) तकनीक से वाँछित/अभीष्ट फल देने वाले वाह्य जीनों को मत्स्य अंडाणुओं में प्रविष्ट करना संभव हो गया है– इस तकनीक को वंशाणु अन्तर्वेशन (Transgensis) कहते हैं। बाह्य जीन अन्तर्वेशित मत्स्य समूह एक नयी मत्स्य वंश परम्परा (Cell line) को जन्म देती है। इन प्रयोगों के फलस्वरूप अतिकाय मछलियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं।

वृद्धि हार्मोन उत्पन्न करने वाले बाह्य वंशाणुओं के अन्तःप्रवेशन से प्रयोगशालाओं में भीमकाय मछलियों को ''जन्म'' देने में सफलता मिली है। दरअसल, मानव अथवा गोजातीय वृद्धि हार्मोन के अन्तःप्रवेशन से कायिक वृद्धि बढ़ायी जा सकती है– इन प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है। इसी तरह, फ्लाउण्डर मछलियों के शीतरोधी जीन को सामन में अन्तर्विष्ट कर शीतरोधी सामन की प्रजाति उत्पन्न कर ली गयी है। इससे सामन मछलियों का विश्वव्यापी फैलाव संभव हो चला है– यानि अब ये हिमांक पर भी अपने अस्तित्व रक्षा के लिये सक्षम हैं। ट्रांसजेनिक मछलियों के व्यावसायिक उत्पादन/प्राकृतिक जनन प्रणालियों में निवेशन आदि के प्रश्नों पर पारिस्थितिकीविदों व मत्स्यविज्ञानियों के बीच अभी विवाद है। ऐसी आशा है कि इनके निरापद एवं नियंत्रित इस्तेमाल के लिये शीघ्र ही आचार संहिता बना ली जायेगी।

युग्मकों का हिमानी संरक्षण

युग्मकों-शुक्राणुओं/अण्डाणुओं का हिमांक के नीचे परिरक्षण यानि ''क्रायोप्रिजर्वेशन'' की तकनीक का मानकीकरण राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ द्वारा किया जा चुका है। शुक्राणुओं का परिरक्षण ज्यादा सफल हुआ है।

युग्मों के परिरक्षण के कई लाभ हैं–

1. चयन/वरण हेतु आनुवंशकीय सम्पदा/धरोहर की स्थापना।
2. युग्मकों की हर माह (वर्ष भर) उपलब्धता।
3. श्रेष्ठ ''जनन द्रव्य'' का दूरस्थ परिवहन।
4. ''जीन बैंकिंग'' से दुर्लभ/लुप्तप्राय मत्स्य प्रजातियों का संरक्षण/पुनर्प्राप्ति की संभावना।
5. वांछनीय समूहों के आपसी संकरण की सुविधा।
6. जनन द्रव्य विविधता का बहुकालिक संरक्षण।
7. भारतीय प्रमुख शफर मछलियों के हैचरी उत्पादन में आनुवंशकीय वैविध्य की अक्षूणता।

लैंगिक परिपक्वता/प्रजनन का नियन्त्रण

मछलियों के सामयिक लैंगिक विकास से उनकी वृद्धि दर भी प्रभावित होती है। सेक्स हार्मोनों से मछलियों का बंध्याकरण भी संभव है। बंध्य (Sterile) मछलियों में लैंगिक विकास के होने से उनकी वृद्धि-दर तीव्र होती पायी गयी है।

यह भी देखा गया है कि मछलियों में प्रजनन की क्रिया समय, ऋतुकाल व तापक्रम सम्बन्धी कृत्रिम बदलावों से प्रभावित हो सकती है। प्रकाश की उपलब्धता/तापक्रम पर बाह्य नियंत्रण तथा कुछ हार्मोनों के अनुप्रयोग से मछलियों में युग्मकों के परिपक्व होने की अवधि बढ़ायी-घटायी जा सकती है। ट्राउट और कामनकार्प मछलियों की दो ऋतुकालों (बसन्त और शीत ऋतु) में प्रजनन की प्रजातियाँ उपलब्ध हैं– एक ही वर्ष में प्रजनन कालों के बीच इस लम्बे अन्तराल से यह धारणा बनती है कि इन प्रजातियों की वर्षभर प्रजनन-शीघ्र नस्ल निकसित हो सकती है। भारत में ऐसे प्रयोग परीक्षण प्रगति पर हैं।

(शेष पृष्ठ 8 पर देखें)

ब्रह्माण्ड विषयक सात विचार

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

सभी विज्ञानों में भौतिकी सर्वाधिक विकसित विज्ञान माना जाता है। इसमें भौतिक ब्रह्माण्ड के विषय में जिज्ञासाएँ की जाती हैं– यह ब्रह्माण्ड किस तरह विकसित हुआ ? भविष्य में इसका क्या होगा ? पदार्थ की इकाइयाँ क्या हैं ? प्रकृति की मूल शक्तियाँ क्या हैं ? आदि आदि।

विगत 2500-3000 वर्षों में ब्रह्माण्ड के विषय में मुख्यतः **सात विचार** प्रस्तुत हुए हैं जिन्हें भौतिकी विकास के **सात मानदण्डों** की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इन विचारों की विशेषता है इनके तिथिक्रम के साथ ही इन पदार्थों का घटता हुआ आकार जिनके विषय में ये विचार प्रस्तुत किये गये हैं। उदाहरणार्थ विराट नक्षत्रों तथा तारों से लेकर परमाणु, उपपरमाणुक तथा उपनाभिकीय कणों की खोज। आश्चर्य तो यह है कि पदार्थों के लघु से लघुतर और लघुतम होने के साथ जो शक्ति पहले गुरुत्वाकर्षण जैसी अत्यन्त क्षीण शक्ति थी वह प्रबल के प्रबलतर होती हुई क्वार्कों को बन्धित रखने वाली प्रबलतम शक्ति के रूप में अनुभव की जाने लगी है। आज भौतिकी के क्षेत्र में जो वैचारिक क्रान्ति परिलक्षित होती है वह पदार्थ तथा शक्ति के मूलभूत पक्ष से हटकर नितान्त अमूर्त बन चुकी है।

यह विदित तथ्य है कि जब वैचारिक क्रान्तियाँ राजनीतिक होती हैं तो वे आमचर्चा का विषय बनती हैं किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में जब क्रान्तियाँ होती हैं तो जनसामान्य भले ही आन्दोलित न होता हो किन्तु उनका दूरगामी परिणाम होता है जिनसे बौद्धिक विश्व दहलता है। किन्तु ऐसी क्रान्तियाँ रातों-रात नहीं आती, न ही कभी आई हैं। इनके होने में शताब्दियाँ नहीं तो कई दशाब्दियाँ अवश्य लग जाती हैं। इन क्रान्तियों से ब्रह्माण्ड के विषय में नवीन विचार एवं नवीन संकल्पनाएँ प्राप्त हुई हैं, जिनसे सोचने की शैली प्रभावित हुई हैं और ब्रह्माण्ड को समझने की दिशा में नवीनता आई है।

कोई भी नियम जो भौतिक नियमों की अवहेलना या उनका विरोध करता है उसे स्वीकृति नहीं मिल पाती। किसी भी विज्ञान के लिए आवश्यक है कि वह वर्णन किये जाने वाले पदार्थों का संकलन और वर्गीकरण करे तथा विभिन्न कारणों को समझाने की संकल्पना प्रस्तुत करे। इस समझने-समझाने को भौतिकी में सर्वाधिक महत्व प्रदान किया जाता रहा है। भौतिकी की प्रगतियात्रा में जितने मोड़ आये हैं उतनी ही विचार-सारणियाँ भी मिलेंगी। लेकिन इनकी पहचान करना कोई सरल कार्य नहीं है। नैथन स्पीलबर्ग तथा ब्रायन डी० ऐंडरसन ने अपनी पुस्तक ''सेवेन आइडियाज दैट शुक द युनिवर्स'' में बहुत पर्याप्त विचारमन्थन करने के बाद जिन सात विचारों को चुना है, वे सचमुच रोचक हैं। उन्हीं का आगे उल्लेख होगा।

भौतिकी में मुख्यतः पदार्थ तथा गति के विषय में विचार होता है। चरम सीमा में पदार्थ को निरन्तर गतिशील माना जाता है। यदि गति को शून्य मान लिया जाय तो पदार्थ 'शून्य बिन्दुगति' या 'शून्य बिन्दु ऊर्जा' की स्थिति में होगा। भौतिकी में कभी भी बुद्धि को पदार्थ तथा गति से ऊपर नहीं माना जाता। दार्शनिकों तथा भौतिकीविदों में यही अन्तर है।

यद्यपि भौतिकी को समझने के लिए गणित का ज्ञान परमावश्यक है किन्तु कुछ विज्ञान-लेखकों ने न्यूनतम गणित-ज्ञान के आधार पर विचारों को समझाने का प्रयास किया है। जिस तरह संगीत केवल वाद्ययन्त्रों को बजाने वाले तक ही सीमित नहीं रहता उसी तरह विज्ञान केवल गणितविदों तक ही पर सीमित नहीं हो सकता। कहते हैं कि फैराडे ने सीमित गणित के बल पर भौतिकी तथा रसायन विज्ञान में प्रभूत

योगदान दिया था। लेकिन इसके लिए गहन अध्ययन के साथ ही साथ मननशीलता भी आवश्यक है।

कुछ लोग विज्ञान की तुलना जादू से करते हैं। कुछ हद तक विज्ञान तथा जादू में आश्चर्यजनक समानताएँ हैं। किन्तु विज्ञान का ज्ञान तथा व्यवहार सभी के लिए सुलभ है जबकि जादू कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित है। परन्तु दोनों के पीछे एक सी जिज्ञासाएँ कार्य करती हैं। रसायन विज्ञान का जन्म ही जादू-कीमियागिरी से हुआ। कुछ जादूगरिनें पुतला बनाकर आज भी प्रयोग करती हैं और सम्प्रति विज्ञान या प्रौद्योगिकी में मॉडलों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। इसी तरह विज्ञान और धर्म में भी समानताएँ हैं। किन्तु विज्ञान जहाँ संशोधनों को स्वीकार करता है वहीं धर्म अपने नियमों पर अटल रहता है। इसीलिए धर्म को विज्ञान सम्मत बनाने में सफलता नहीं मिल पा रही है।

यदि कोई यह कहे कि विज्ञान चमत्कार है तो यह मिथ्या है। विज्ञान किसी दैवी प्रेरणा का प्रतिपल नहीं। इसकी परीक्षा की जा सकती है। इसकी अपनी विधि है जो ''वैज्ञानिक विधि'' के नाम से ज्ञात है। विज्ञान केवल उन्हीं तथ्यों को मानता है जिनकी परीक्षा की जा सकती है। फलतः विज्ञान कभी भी मानवीय आचरण, नैतिकता या इच्छा का मार्गदर्शन नहीं कर सकता। यही नहीं, विज्ञान इसका भी कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकता कि इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व क्यों हैं ?

विज्ञान का व्यवहृत रूप प्रौद्योगिकी है। मनुष्य की सुख सुविधा के सारे साधन प्रौद्योगिकी हैं। टेलीविजन, दवाएँ, जहाज, वस्त्र– ये सब प्रौद्योगिकी के घटक हैं किन्तु ये विज्ञान के घटक नहीं है। विज्ञान के घटक हैं– न्यूटन के गति नियम, प्रकाश-वैद्युत नियम, अर्धचालक भौतिकी आदि। संक्षेप में विज्ञान जानकारी है और प्रौद्योगिकी व्यवहार। इन दोनों का संमेल लाभप्रद बनता है। इसीलिए सभ्य समाजों में वैज्ञानिक शोधों पर प्रचुर व्यय किया जाता है। विज्ञान का अध्ययन इसलिए आवश्यक है क्योंकि इसमें वह शक्ति निहित है जो मनुष्य को विनाश से बचा कर मानव का कल्याण कर सकती है। यह प्रकृति के रहस्योद्घाटन में सहायक है। इसीलिए विगत 3000 वर्षों में वैज्ञानिकों ने जितने भी विचार प्रस्तुत किये हैं उनमें से सात को चुनकर उनका परिचय दिया जा रहा है।

1. **पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं है (कोपर्निकस की ज्योतिष)**

अरस्तू से लेकर कोलम्बस के काल तक यह विश्वास था कि हमारी पृथ्वी ब्रह्माण्ड के केन्द्र में स्थित है किन्तु जो पहली वैज्ञानिक क्रान्ति आई वह थी कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने वाले ग्रहों में से एक लघु ग्रह मात्र है। यही नहीं अब तो यह भी ज्ञात है कि सूर्य स्वयं आकाशगंगा जैसे तारा समूहों के केन्द्र से विलग एक तारा है। इसका श्रेय कोपर्निकस को जाता है। उसने प्राचीन ज्योतिष को पलट कर गति विषयक विचारों को मान्यता दी।

2. **ब्रह्माण्ड एक यन्त्र है जो निश्चित नियमों के अनुसार संचालित होता है (न्यूटन की भौतिकी)**

इस विश्व के समस्त पदार्थ भौतिकी के नियमों के अधीन हैं, न्यूटन ने गति के नियम तथा विश्वव्यापी गुरुत्वा-कर्षण का अध्ययन किया जिससे कोपर्निकस की ज्योतिष में निहित विचारों को ठोस आधार-भूमि प्राप्त हो सके। न्यूटन ने गति विषयक जो तीन नियम प्रस्तुत किये हैं उनमें से द्वितीय नियम **कार्य-कारण** नियम है। यह दो विरोधी विचार धाराओं–नियतिवाद तथा स्वेच्छा को भी निर्धारित करने वाला है।

3. **इस यन्त्र को चलाने वाली ऊर्जा है (ऊर्जा की संकल्पना)**

यद्यपि यान्त्रिकी (मैकेनिक्स) की संकल्पना न्यूटन ने दी किन्तु यह ब्रह्माण्ड को पूरी तरह समझाने में असमर्थ थी। प्रश्न था कि इस अद्भुत यन्त्र को कौन चालू रखता है ? प्राचीन लोग बुद्धि को या आदि गतिकर्ता को इसका श्रेय प्रदान करते थे किन्तु आधुनिक विचार के अनुसार इसका संचालन ऊर्जा द्वारा होता है। ऊर्जा कई रूपों में प्रकट होती है और ये विभिन्न रूप एक दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। ऊर्जा की तुलना धन से की जा सकती है। धन का अर्थ है विनिमय– मनुष्य के बीच आदान-प्रदान। जिस प्रकार प्राप्य धन की एक सीमा होती है उसी तरह प्राप्य ऊर्जा की सीमा है (ऊर्जा संरक्षण)।

4. **यह यन्त्र विशिष्ट दिशा में चलता है (एंट्रापी तथा संभाव्यता)**

यद्यपि ऊर्जा एक रूप से दूसरे में परिवर्तनीय है किन्तु

इस परिवर्तन की भी कुछ सीमाएँ हैं। परिवर्तनशीलता की सीमाएँ पासे की तरह "संयोग" पर निर्भर है। इससे ऐसा लगता है कि नियतिवाद का विरोधी चक्र हो सकता है। ऊष्मा को ऊर्जा का अवनत रूप मानना होगा।

5. तथ्य सापेक्ष हैं किन्तु नियम अखण्ड हैं (सापेक्षवाद)

यह विचार कोपर्निकस की ज्योतिष में भी था किन्तु सर्वप्रथम आइन्स्टीन ने इस पर ध्यान दिया। वह तो यह विचार कर रहा था कि कौन सी वस्तुएँ सभी प्रकार से सार्वदेशिक हैं। अतः उसने अचर (परम) वस्तुओं से (यथा प्रकाश वेग) से प्रारम्भ करके यह दिखा दिया कि दिक् तथा काल भी सापेक्ष हैं। उसने दिक् तथा काल का पुनरावलोकन किया। उसने सिद्ध कर दिया कि दार्शनिक तथा अधिभौतिक विचारों को ताक पर नहीं रखाव जा सकता।

6. न तो भविष्यवाणी की जा सकती है, न हर वस्तु जानी जा सकती हैं (क्वांटम सिद्धान्त)

परमाणु की सूक्ष्म संरचना ज्ञात करने के प्रयास से इस विचारधारा को बल मिला है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में वैज्ञानिक जानते थे कि परमाणुओं की रचना इलेक्ट्रॉनों तथा नाभिकों से हुई है। जब इलेक्ट्रानों की गति जानने के प्रयास हुए तो कोई स्पष्ट चित्र नहीं बन पाया फिर भी सही सही चित्रण तो प्राप्त ही है। अतः परमाणुओं तथा नाभिकों को नई विधि से वर्णित करना पड़ा। तन्त्रों का अस्तित्व कुछ "क्वांटम अवस्थाओं" में सम्भव था। मापे गये परिमाण "प्रायिकताओं" के रूप में व्यक्त हुए। इस अस्पष्ट चित्र से भी रसायन, ट्रांजिस्टर, लेसर, रेडार, एंटीबायोटिक आदि को समझा जा सकता है।

7. मूलतः वस्तुएँ कभी बदलती नहीं (सिद्धान्तों तथा समितियों का संरक्षण)

यद्यपि प्रचलित विश्वास यह है कि सभी वस्तुएँ बदलती हैं किन्तु इसकी विरोधी विचारधारा भी विद्यमान है। फिर भी इसका पूरा-पूरा उपयोग समझ में नहीं आ रहा। इसमें से कुछ परिमाणों को तो स्थिर, अपरिवर्तित माना जाता हैं तो भी भौतिकविद् निरन्तर खोज में है कि पदार्थ की वह संरचना क्या है जिसमें इतनी मात्रा में शक्ति लगी है (यथा क्वार्क) जिनसे प्रोटीन तथा न्यूट्रांन बने हैं। प्रश्न है कि क्या पदार्थ तथा ऊर्जा को दिक्-काल की सीमा से पृथक किया जा सकेगा ? भले ही हमें इसका अन्तिम उत्तर न मिल पाये किन्तु भौतिकविद् निरन्तर शोधकार्य कर रहे हैं।

–25, अशोक नगर, इलाहाबाद

पृष्ठ 5 का शेष

भारतीय मुख्य शफर मछलियों के नियन्त्रित प्रजनन की विधि के व्यावसायिक उपयोग से इन मछलियों के मत्स्य बीज उत्पादन के क्षेत्र में पहले ही क्रान्ति आ चुकी है। इस क्षेत्र में भारत में सराहनीय प्रगति हुई है।

मछलियाँ विविध जैव-प्रौद्योगिकी तकनीकों के अनुप्रयोग के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। एक तो इनमें गुणसूत्रीय लिंग निर्धारण बहुत लचीला है– बाह्य उद्दीपनों के प्रति काफी सहिष्णु है। मछलियाँ बहु प्रजननकारी-उत्पादनशील हैं– इनकी "एग लेइंग" (Egg laying) क्षमता बहुत है, अंडे भी काफी बड़े होते हैं इसलिये ट्रासजेनेसिस हेतु उपयुक्त हैं। इनके अंडाणु-शुक्राणुओं को लम्बे समय तक हिम-परिरक्षण पर रखा जा सकता है।

इस तरह जलीय खेती के विविध रूपों और अब जैव-प्रौद्योगिकी की नवीन तकनीकी उपलब्धियों के विविध संयोगों से खाद्य समस्या का टिकाऊ और भरोसेमन्द हल मिल गया लगता है। कई अन्य प्रविधियों– जैसे सादे पानी में मोती सीप का संवर्धन, भोजन योग्य सीपियों, घोघों का पालन तथा कई जलीय वनस्पतियों के व्यापारिक उत्पादन की संभावनाओं पर अनुसन्धान तथा प्रायोगिक परियोजनाएँ चल रही हैं, जिनसे आशानुकूल परिणामों की प्रतीक्षा है।

–मुख्य कार्यकारी अधिकारी

मत्स्य पालक विकास अभिकरण, काटन मिल
कम्पाउण्ड, चौकाघाट, वाराणसी (उ० प्र०)

सरस्वती नदी का इतिहास

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

भारतीय इतिहास में सरस्वती नदी का काफी महत्व रहा है। तीर्थराज प्रयाग में त्रिवेणी अर्थात् तीन नदियों के संगम में गंगा तथा यमुना के अलावा तीसरी नदी सरस्वती को ही माना जाता है। आजकल प्रयाग में त्रिवेणी के निकट गंगा तथा यमुना दो ही नदियाँ दिखाई पड़ती हैं परन्तु सरस्वती के दर्शन नहीं होते। लोगों की मान्यता है कि सरस्वती यहाँ गुप्त रूप से प्रवाहित होती हैं। परन्तु वास्त- विकता यह है कि सरस्वती नदी बहुत पहले ही सूख गयी।

सरस्वती नदी का उद्गम अम्बाला ज़िले की सीमा पर स्थित सिरमूर क्षेत्र की शिवालिक पहाड़ियों से होता है। इस स्थान से कुछ दूर पूरब में यमुना तथा पश्चिम में सजलज की पथरीली घाटियाँ हैं। सरस्वती नदी शिवालिक पहाड़ियों से निकल कर आद बदरी नामक स्थान पर मैदानी क्षेत्र में उतरती हैं। भवानीपुर तथा बलघापार से गुजरते समय यह नदी बालुका राशि में लुप्त हो जाती है। परन्तु कुछ ही दूर बाद कर्नाल के निकट पुनः प्रगट हो जाती है। घाघर नदी, जिसका उद्गम स्थल भी शिवालिक पहाड़ियों में ही है, पटियाला के निकट रसूला नामक स्थान पर सरस्वती नदी में मिल जाती है। यहाँ से इस नदी का नाम हाकरा या सौतार हो जाता है जिसकी सूखी घाटी विशाल आकार की है। यह नदी आगे बढ़ती हुई बीकानेर क्षेत्र में पहुँचती है तथा हनुमानगढ़ के निकट पुनः बालुका राशि में लुप्त हो जाती है। हनुमानगढ़ के निकट इसमें पूरब से आकर चित्रांग नदी मिलती है। चित्रांग भी एक सूखी नदी है। प्राचीन काल में चित्रांग शायद यमुना की एक शाखा थी जो बीकानेर के निकट सरस्वती नदी में मिलती थी। भटनायर (हनुमानगढ़) तथा सिरसा के बीच सरस्वती में सरहिन्द नामक नदी आकर मिलती है। सरहिन्द रूपड़ की ओर से आकर गिरती है। शायद सरहिन्द ही पहले सतलज की मुख्य शाखा थी। यह शाखा धीरे-धीरे सूख गयी।

हाकरा (अथवा सौतार) की पुरानी घाटी बीकानेर क्षेत्र में लगभग 160 किलोमीटर तक, 5 से 8 किलोमीटर तक चौड़ी है तथा काली एवं रेतीली मिट्टी से बनी है। इसके विपरीत दोनों किनारे बलुआही मिट्टी से भरे हैं। स्थानीय लोग आज भी इस शाखा को सरस्वती कहते हैं। इस नदी के दोनों किनारों पर अनगिनत टीले हैं जिनमें ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक नगरों एवं जनपदों के अनेक अवशेष मिले हैं। ये टीले हनुमानगढ़ के निकट आकार में छोटे हैं। परन्तु नदी के साथ-साथ ज्यों-ज्यों हम पश्चिम की ओर बढ़ते हैं त्यों-त्यों बड़े आकार के टीले दिखाई पड़ते हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा इन टीलों की खुदाई से प्रागैतिहासिक काल के घर, मंदिर तथा अन्य प्रकार के भवनों के अवशेष मिले हैं। ये अवशेष लगभग तीन हजार वर्ष ईसा पूर्व में निर्मित भवनों के बताये जाते हैं। यह नदी आगे की ओर बढ़ती हुई बहवलपुर में मीरगढ़ तथा दिलावर इत्यादि स्थानों से होती हुई सिंध में पूर्वी नारा की शाखा से मिल जाती है। नारा अन्ततः कच्छ के रन में मिल जाती है। सरस्वती नदी जब सजीव एवं सक्रिय थी तो लगभग 18 हजार वर्ग किलोमीटर भूमि को सिंचित करती थी जो इस नदी के सूखने के कारण मरुस्थल बन गयी।

जब वैदिक साहित्य की रचना हो रही थी (लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व) तो सरस्वती एक विशाल नदी थी। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि इस काल में वह सिन्धु नदी से भी बड़ी थी। महाभारत काल आते-आते इस नदी का ऊपरी भाग सूख चुका था। इस नदी के सूखने की वजह यह थी कि यमुना नदी का मार्ग पूरब की ओर खिसक रहा था जिससे सरस्वती को पानी की आपूर्ति होती थी। परन्तु सरस्वती नदी का निचला मार्ग जो बीकानेर, बहवलपुर तथा सिन्ध से गुजरता था, बहुत बाद तक जल से भरा रहता था। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व तक, जब सिकन्दर भारत आया था, कच्छ का रन एक गहरी खाड़ी के रूप में था जिसमें बड़े-बड़े जलयान चला करते थे, तथा सरस्वती नदी से होते हुए सिन्ध तक पहुँचते थे। टॉड द्वारा लिखित "ऐनल्स ऑव राजस्थान" में

बताया गया है कि बीकानेर क्षेत्र में सरस्वती नदी (अर्थात् हाकरा) सन् 1044 के आस-पास सूख गयी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सरस्वती (हाकरा, सौतार या वाहिन्द) में जल की आपूर्ति मुख्य रूप से सतलज से होती थी जो सरहिन्द के नाम से भटनायर तथा सिरसा के बीच सरस्वती नदी में मिलती थी। अरबों तथा यूनानियों द्वारा लिखे गये प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि ईसा बाद 12वीं शताब्दी के अन्त तक सतलज पंजाब की नदी नहीं थी। परन्तु 12वीं शताब्दी के बाद इसने अपना दक्षिणी मार्ग त्याग दिया तथा व्यास नदी में मिल गयी। इस संगम के नीचे अभी भी स्थानीय लोग इस संयुक्त नदी को व्यास कहते हैं जबकि सतलज एक बड़ी नदी है। सन् 1200 ई० के पूर्व व्यास एक पतली नदी थी। इसका मार्ग संयुक्त व्यास शतलज के मार्ग से ऊपर था जो आजकल सूखा हुआ है।

हाल ही में पी० एस० ठक्कर नामक एक दूर संवेदी वैज्ञानिक ने कृत्रिम उपग्रहों से लिये गये चित्रों तथा भारत के पौराणिक ग्रथों में दिये गये विवरणों के आधार पर लुप्त सरस्वती नदी के उद्गम स्थल तथा उसकी प्राचीन धाराओं की स्थिति के संबंध में कुछ रोचक तथ्य प्रस्तुत किये हैं। ठक्कर के मतानुसार सरस्वती नदी राजस्थान में प्रवेश करने तथा सांभर झील से आगे बढ़ने के बाद दक्षिण-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती हुई जोधपुर तथा पाली के बीच से गुजरती हुई भिन्नमल तक जाती थी। वर्तमान नदी 'गुहिया' जो इस क्षेत्र से प्रवाहित होती है, पुराने समय में 'गुह्य' नाम से विख्यात थी जिसका अर्थ है छिपी हुई। वस्तुतः यह सरस्वती नदी का ही अवशेष है। जब यह नदी गुजरात में प्रवेश करती थी तो यह पाँच शाखाओं में विभक्त हो जाती थी। ये पाँच शाखायें थीं- हारिणी, कपिला, सरस्वती, वज्रयानी तथा न्यांकू।

सरस्वती की उपर्युक्त पाँच शाखाओं में से पहली शाखा धनेरा, धन्तिवादा, पालनपुर, बाद नगर, खेड़ा, कनेवाल, घोलेरा, रोजादी, श्रीनाथगढ़ (हड़प्पा स्थल) तथा गिरनार के उत्तर से गुजरती हुई अन्त में अरब सागर में मिल जाती थी। सरस्वती की दूसरी शाखा धनेरा, पालनपुर, सिद्धपुर तथा रंगपुर से गुजरती हुई पहली शाखा में मिल जाती थी। तीसरी शाखा थराड़, वाव, धीमा कोरदा, वराही तथा अंतरनेस से होती हुई गुजरती थी। चौथी शाखा राजस्थान के बाड़मेर से गुजरती हुई नादाबेट, बेलाबेट, ब्रजवाणी, छोटी कच्छ के रन, ध्रुमठ तथा बावरा तक जाती थी। सरस्वती की पाँचवीं शाखा नगर-पाकड़ क्षेत्र में विरावव के उत्तर से गुजरती थी। यह क्षेत्र आजकल पाकिस्तान में पड़ता है तथा प्राचीन काल में यह एक प्रमुख नदी-बन्दरगाह था। नगरपाकड़ से गुजरने के बाद यह शाखा कच्छ के मरुस्थल, राजकोट ज़िले के पंचद्वारिका तथा सुरेन्द्रनगर जिले में चोटिल्य तक जाती थी। सरस्वती की ये सभी पाँच शाखायें वर्तमान बवारा (सौराष्ट्र क्षेत्र के अमरेली जिले में) के निकट पुनः आपस में मिल जाती थीं। तत्पश्चात् आगे प्रवाहित होती हुई वर्तमान प्रभाष, पाटन सोमनाथ के निकट समुद्र में मिल जाती थी।

के० के० शास्त्री ने लुप्त सरस्वती नदी के प्राचीन मार्गों के संबंध में काफी अध्ययन किये तथा वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि नाल 'सरोवर' लुप्त सरस्वती नदी का एक भाग है। कच्छ क्षेत्र में भारत-पाक सीमा तक स्थित सुइगाँव में नमकीन मिट्टी मौजूद है, न कि बालू। यह तथ्य संकेत देता है कि इस क्षेत्र में कभी नदी गुजरती थी। बगोदरा ऊँची सड़क (कौज वे) के निकट दलदली मौदान वस्तुतः सरस्वती नदी की घाटी में स्थित था जो इसी क्षेत्र से होती हुई गुजरती थी तथा अन्त में काम्बे की खाड़ी में गिरती थी। काम्बे की खाड़ी के अलावा इस नदी के दो और मुहाने थे- एक कोरी समुद्री कटान (क्रीक) के निकट तथा दूसरी छोटी कच्छ के रन में।

अध्ययनकर्त्ताओं का मानना है कि वेदों में वर्णित सरस्वती नगर कोई काल्पनिक नगर नहीं बल्कि वास्तविक नगर था जो हिमालय के उत्तराखंड में स्थित माना नामक गाँव से 23 किलोमीटर की दूरी पर स्थित था। यह प्राचीन नगर आज बर्फ के नीचे दबा पड़ा है। इसी प्रकार राजस्थान के घाना अभयारण्य, सांभर झील तथा नादबाई नगर एवं गुजरात में नालसरोवर वस्तुतः सरस्वती नदी के अवशेष हैं। पुराणों में वर्णित 'खादिर वन' कच्छ के रन में स्थित वर्तमान खादिरबेट नामक स्थान पर मौजूद रहा होगा। बनासकाँठा ज़िले के बाव, थराड तथा सांतलपुर तालुक वाले क्षेत्र आज भी 'सरसत काँठा' के नाम से परिचित हैं। यह इस बात का सूचक है कि प्राचीन काल में सरस्वती नदी से इस क्षेत्र का अवश्य ही ग़हरा संबंध रहा होगा।

–प्राध्यापक, भूगर्भ,
इंजीनियरिंग कॉलेज, भागलपुर-813210

नयी सदी में बच्चे और विज्ञान

डॉ० मनोज पटैरिया

इक्कीसवीं सदी अंततः आ ही गई। लोगों में इक्कीसवीं सदी के जीवन को लेकर तरह-तरह की आशाएँ, आशंकाएँ और जिज्ञासाएँ अपने उफान पर हैं। ज़्यादातर लोग किसी चमत्कार की प्रतीक्षा कर रहे हैं। भविष्य की दुनिया का स्वरूप बनना शुरू हो गया है। विज्ञान की एक नई शाखा है भविष्यिकी (फ्यूचरिस्टिक्स)। वर्तमान और संभावित प्रौद्योगिक विकास, हमारे समाज और हमारी सभ्यता को निकट और सुदूर भविष्य में क्या रूप देंगे, इसी पर यह विज्ञान केन्द्रित है। अनेक भविष्यविदों ने भविष्य की स्वचालित (ऑटोमैटिक) दुनिया के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं। स्वचालन (ऑटोमेशन) शब्द को 1952 में जॉन डाईबोल्ड ने गढ़ा था, उसके बाद वह श्री ऑटोमेशन के नाम से विश्व भर में जाने गए। उनका विचार था कि रेल, वायुयान और करघे से मानव समाज में जो अकल्पनीय परिवर्तन हुए हैं, उससे कई गुने परिवर्तन रोबोट और कम्प्यूटरों के प्रचलन में आने से होंगे। नया विज्ञान और नई प्रौद्योगिकी कल आपके और परसों आप के बच्चों के भविष्य को बदल देने वाली है।

रहन-सहन

जाने-अनजाने विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रवेश हमारे जीवन में बढ़ता जा रहा है। एक समय पहले जब ज़्यादातर गाँवों में बिजली नहीं थीं, बच्चे बिजली का बटन दबाना तक नहीं जानते थे, लेकिन आज तस्वीर बदल गई है। घर और बाहर इतने तरह के उपकरण और साज़ोसामान आ गए हैं कि कई मामलों में ऐसा लगता है कि बच्चे हमसे ज़्यादा जानते हैं। सुबह सोकर उठने से लेकर रात को सोने तक और सोने के बाद भी हम अनेक प्रकार के वैज्ञानिक उपकरणों, युक्तियों, मशीनों और तकनीकों के प्रयोग के आदी हो गए हैं। निस्संदेह इससे हमारे जीवन में सुख-सुविधाएं बढ़ी हैं, लेकिन दूसरी ओर अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा हो गयी हैं। इन तकनीकों पर अत्यधिक निर्भरता के कारण बच्चों के व्यवहार और सोच में व्यापक परिवर्तन आ रहे हैं। घरेलू रहन-सहन परिवहन, संचार, मनोरंजन आदि के लिए अत्याधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जिनमें उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है और अनायास ही हम इस मशीनी दौर में अपने बच्चों को समायोजित करते चल रहे हैं।

परिवेश

आमतौर पर विकास की दृष्टि से चार स्तर सामने आते हैं– ग्रामीण जीवन, कस्बाई जीवन, नगरीय जीवन और महानगरीय जीवन। संयोग से मुझे इन चारों परिवेशों का अनुभव है। प्रायः जब हम बच्चों की चर्चा कर रहे होते हैं तो ग्रामीण परिवेश के वे बच्चे छूट जाते हैं, जिनमें से कुछ अभी तक रेलगाड़ी में नहीं बैठे हैं, या टेलीफोन जिनके लिए किसी अलादीन के जिन्न के कम नहीं। फिर हम किन बच्चों की बात कर रहे हैं ? चंद शहरी बच्चे ! जिन्हें आँख खोलते ही मोबाइल की संगीतमय घंटी सुनाई देती है या इंटरनेट जिनके खिलौनों में शामिल हैं। इस पर हमें स्पष्ट रुख अपनाना होगा। ऐसी बात नहीं कि गाँव में विज्ञान और प्रौद्योगिकी नहीं पहुँची है या वहाँ के बच्चे इसके मायने नहीं जानते। समझ के स्तर में चाहे अन्तर न हो, लेकिन जानकारी के स्तर में बहुत फर्क है। और जानकारी के उपयोग या दुरुपयोग से प्राप्त सकारात्मक परिणामों से बच्चों के तौर-तरीकों व सोच में बदलाव आते हैं। ग्रामीण जीवन में जहाँ अधिकतर कामों के लिए खेत-खलिहानों की भागदौड़ करनी होती है, वहीं अधिकतर कामों के लिए शहरों पर निर्भर होना होता है। कस्बाई जीवन में ज़्यादातर काम जैसे, शिक्षा, संचार, चिकित्सा, बाज़ार आदि सुविधाएँ आसपास ही मिल जाती हैं, जबकि नगरों और महानगरों में विविधताएँ और दूरियाँ अधिक हैं तथा अति व्यस्तताओं के कारण काफी भागदौड़ और मशक्कत करनी पड़ती है। इन सबका भी सोच और व्यवहार पर असर पड़ता है। उसके बाद साधनसम्पन्न और गैर साधनसम्पन्न या कम साधनसम्पन्न बच्चों की स्थिति का विश्लेषण करना होगा। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से जुड़े तमाम

साधन दिए हैं, लेकिज उनका लाभ सिर्फ साधन सम्पन्न परिवारों के बच्चों को ही मिल सकता है। इस प्रकार साधन और गैर साधन वालों की खाई और बढ़ी है। यदि नई-नई युक्तियों, तकनीकों और मशीनों के आने से दिनचर्या में परिवर्तन आता है तो वह परिवर्तन साधनसम्पन्न परिवारों के लिए ही प्रासंगिक होगा। ऐसा लगता है, कि जब हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बच्चों पर प्रभाव की बात करते हैं, तो आमतौर पर हम शहरी और साधनसम्पन्न परिवारों के बच्चों को ही नज़र में रखकर चलते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रभाव अलग- अलग परिवेश के बच्चों पर अलग-अलग प्रकार से और अलग अनुपात में पड़ेगा। आमतौर पर यहाँ सामान्य बच्चों को लेकर चर्चा की जा रही है।

विज्ञान शिक्षा

'यशपाल समिति' की सिफारिशों के बाद बस्ते का बोझ कम करने के प्रयास किए जा रहे हैं। विज्ञान शिक्षा को अधिक रुचिकर तथा व्यावहारिक बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है। स्कूल की चारदीवारों से बाहर प्रकृति की खुली प्रयोगशाला में बच्चों को अपनी जिज्ञासाओं, कल्पनाओं और अभिलाषाओं को साकार करने हेतु प्रोत्साहन मिलना शुरू हुआ है। आशा है नई सदी में इन सभी बातों पर पूर्ण रूप से अमल हो सकेगा और फिर बच्चों के लिए विज्ञान और गणित की शिक्षा नीरस, कठिन और उबाऊ न रहकर रोचक, मज़ेदार और उपयोगी बन सकेगी। नियमित शिक्षा के साथ ही अनौपचारिक और पूरक शिक्षा पर भी ज़्यादा बल दिया जा सकेगा। बच्चों की रुचि को देखते हुए टेलीविज़न, रेडियो, सीडी रॉम, मॉडल तथा हाथ और दिमाग़ के प्रयोग से की जाने वाली गतिविधियों के माध्यम से विज्ञान शिक्षा को अधिक कारगर और रोचक बनाया जा सकेगा। विद्यालयों, शिक्षकों और विद्यार्थियों की दशा में सकारात्मक सुधार की अपेक्षा की जा सकती है। निस्संदेह बुनियादी शिक्षा में इन क्रांतिकारी परिवर्तनों के चलते बच्चों की मानसिकता में रचनात्मक बदलाव आयेंगे जिससे वे अधिक तर्कशील, सूक्ष्म दृष्टि वाले तथा विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति वाले नागरिक बन सकेंगे।

खान-पान

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही सामाजिक स्तर पर और घरेलू स्तर पर परिवर्तन आते हैं। आधुनिक रसोईघरों और डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ एवं पेयों, फास्टफूड आदि ने हमारे खानपान को ही नहीं, बल्कि हमारी ज़िंदगी को एक नया आयाम दिया था। जरा उससे पहले की कल्पना करें जब घर की महिलाएँ चूल्हा-चौका में लगी रहती थीं। समय के साथ नई सदी में तेज़ी से बदलती दुनिया में शायद बच्चों को फास्टफूड खाने की भी फ़ुरसत न मिले। इसके लिए वैज्ञानिकों ने इंतज़ाम कर लिए हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर, शौष्ठव और उम्र के अनुपात के अनुसार अपनी पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सिर्फ एक गोली या इंजेक्शन से गुजारा कर सकेगा। इस प्रकार जहाँ एक ओर ये उपाय किए जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर शैवाल (एलगी) और कवक से स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ भी बनाये जा रहे हैं, जिनमें प्रोटीन और कैलोरीज़ की प्रचुरता है। ऐसा भी हो सकता है, कि समय के साथ बच्चों की मनपसंद आइसक्रीम और चॉकलेट पुरानी पड़ जाए और उन्हें जीवाणुओं की मदद से तैयार नये जैव-प्रौद्योगिक खाद्य पदार्थ ज़्यादा पसंद आने लगें। स्वाभाविक रूप से खान-पान के इस परिवर्तन का भी असर बाल-मन पर सहज ही पड़ेगा।

खेल-खिलौने और मनोरंजन

सूक्ष्म-प्रौद्योगिकी के विकास ने नये रोमांचक खिलौनों को जन्म दिया है। रिमोट से चलने वाले, आवाज़ से चलने वाले और ताली बजाने से चलने वाले तरह-तरह के खिलौने आज बाज़ार में उपलब्ध हैं। अब तो खिलौनों में माइक्रोचिप लगाकर उन्हें समझदार भी बनाया जा रहा है। बीसवीं सदी का महान आविष्कार रोबोट यानी यंत्र-मानव भी लघु खिलौनों के रूप में उपलब्ध है। इसके अलावा, वीडियो गेम, कम्प्यूटर गेम, क्विज़, पज़ल्स, आदि भी उपलब्ध हैं, जिनके माध्यम से न केवल बच्चे आनंद ले सकते हैं बल्कि खेल-खेल में बहुत सारी बातें भी सीख सकते हैं। कम्प्यूटर ने वह सब दिया है जिसकी कल्पना कभी विज्ञान गल्प कथाओं में की गई थी। इंटरनेट के जरिए दुनिया भर के बच्चे आपस में संदेशों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। हैम रेडियो के जरिए विज्ञान, मौसम, आपदा प्रबंध और विकास कार्यों की जानकारी का आदान-प्रदान कर सकते हैं। सूचना-प्रौद्योगिकी के विकास ने संचार के क्षेत्र में क्रांति लाकर दूरियाँ समेट दीं और दुनिया को 'ग्लोबल विलेज' या भूमंडलीय गाँव में परिवर्तित कर दिया है, जहाँ दुनिया भर के बच्चे आपस में संपर्क कर विचारों

का आदान-प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार बच्चों के मनोरंजन और अभिरुचि के अनुसार अनेक प्रकार खेल-खिलौने आज उपलब्ध हैं। निकट भविष्य में अधिक जिज्ञासा, रोमांच और प्रफुल्लता का आनंद प्रदान कर सकेंगे।

स्वास्थ्य और पर्यावरण

अंधाधुंध विकास का एक उपउत्पाद है पर्यावरण-विनाश जिससे अनेक प्रकार की समस्याएं पैदा हो रही हैं। बढ़ते औद्योगिकीकरण और मोटर वाहनों से वायु प्रदूषण के स्तर में भारी वृद्धि हुई है जिसका सीधा प्रभाव बच्चों के शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है। मोटर वाहनों से निकलने वाले धुएँ में से सीसा निकलता है जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर याददाश्त को नुकसान पहुँचता है। वायु प्रदूषण के अन्य अनेक दुष्प्रभावों से आप तो परिचित हैं ही। टेली- विज़न और कम्प्यूटर से निकलने वाले विकिरण भी बच्चों को हानि पहुंचाते हैं। कम्प्यूटर और वीडियो ने हालांकि बच्चों की जानकारी और ज्ञान बढ़ाने में काफी मदद की है, मगर इससे बच्चे एकाकीपन के शिकार हो गए हैं और उनके शारीरिक, मानसिक विकास पर बुरा असर पड़ रहा है। आने वाले समय में यह स्थिति और भी गंभीर होने की आशंका है। जो बच्चे मैदान में बाहर निकल कर खेलते थे, वे अब घरों में इंटरनेट से चिपके पाए जाते हैं। भागने-दौड़ने से शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है लेकिन घर के एक कोने में कम्प्यूटर से खिलवाड़ करते रहने से बच्चों का बाहर निकलकर खेलने का यह अवसर अनायास ही छिनता जा रहा है। वे एकाकी होते जा रहे हैं, जिसका असर आने वाले समय में और स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आएगा। शारीरिक और मानसिक विकास पर्याप्त न होने के कारण अनेक प्रकार की अन्य विषमताएँ पैदा हो जायेंगी। इस पर हमें समय रहते कोई व्यावहारिक हल निकालने हेतु कारगर प्रयास करने होंगे।

जैव-प्रौद्योगिकी बनाम बच्चे

इससे पहले जो चर्चा की गई है वह बच्चों के आसपास हो रहे वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए की गई है। जैव-प्रौद्योगिकी नई सदी में तेज़ी से पनपता हुआ एक ऐसा विज्ञान है जो बच्चे के जन्म से पहले ही उसमें बुनियादी परिवर्तन करने की क्षमता रखता है। आनुवंशिक इंजीनियरी जीव-विज्ञान की वह शाखा है जिसके अंतर्गत् जीवधारियों की जनन कोशिकाओं के माध्यम से अगली पीढ़ी में जाने वाले गुणों को न केवल रोका जा सकता है, बदला जा सकता है, बल्कि मनचाहे जीन को फिट करके नये गुणों का समावेश भी किया जा सकता है। हालांकि विभिन्न देशों ने ऐसे प्रयोगों पर रोक लगा रखी है, तथापि देर-सबेर, चोरी-छिपे भी इन प्रयोगों को रोक पाना शायद संभव न हो सके। अनेक प्रतिबंधों के बावजूद पिछले दिनों मनुष्य के 'क्लोन' या प्रतिरूप तैयार करने की खबरें आई हैं। क्लोनिंग तकनीक के माध्यम से समान गुणों वाली संतानें पैदा की जा सकती हैं। इसी प्रकार परखनली शिशु तकनीक का प्रचलन भी बढ़ रहा है। यह हुई जैविक तकनीकों और परिवर्तनों की बात। अब तो वैज्ञानिक मनुष्य और चिम्पैंजी के संयोग से नया जंतु बनाने की कोशिशों में लगे हैं, जिसमें बुद्धि मनुष्य की हो और शक्ति चिम्पैंजी की। ऐसे बच्चे को आप क्या कहेंगे ? अगला कदम है, मनुष्य और मशीन का संयोग जिसे 'बायोनिक मानव' कहा जा रहा है। मनुष्य के दिमाग़ में माइक्रोचिप फिट कर देने से दिमाग की शक्ति कई गुना बढ़ जाएगी। इसी प्रकार श्रवणतंत्र में ध्वनिसंवेदी लगा देने से मनुष्य की सुनने की सीमा में काफी वृद्धि की जा सकेगी। ऐसे बायोनिक बच्चों की जमात का स्वागत करने के लिए नई सदी में आपको तैयार रहना चाहिए।

सिक्के का तीसरा पहलू

एक ओर जहाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के चलते नयी-नयी सुविधाओं का दायरा बढ़ता जा रहा है और नयी प्रौद्योगिकी की ओर लोगों की पहुँच और क्षमता भी बढ़ती जा रही है, वहीं दूसरी ओर लोगों के सोच, जीवनचर्या और तौर-तरीकों में आमूलचूल परिवर्तन हो रहे हैं, जिसका असर नयी पीढ़ी पर पड़ना स्वाभाविक है। नये जैव-प्रौद्योगिकी प्रयोगों से जुड़े नैतिक, कानूनी, और नये मनो-वैज्ञानिक सवाल अभी भी अनुत्तरित हैं। आने वाले समय में इन सवालों की प्रखरता और अधिक बलवती होकर सामने आएगी। जैसे, परखनली तकनीक से पैदा होने वाला बच्चा किसको माँ कहेगा, उस महिला को, जिसका अंडाणु लिगा गया है, या उसे जिसके गर्भ में वह पला है और जन्म लिया है अथवा उसे जिन्होंने संतानोत्पत्ति की क्षमता न होने की वजह से किराए का अंडाणु और किराए का गर्भाशय लेकर संतान प्राप्त की है। इस प्रकार के त्रिकोणीय मामलों में उलझे बच्चे का भविष्य क्या होगा, कानून इस पर कैसा रवैया अख्तियार

करेगा, ये सब बुनियादी प्रश्न हैं, जिनका जवाब विशिष्ट बौद्धिक मंचों पर हमें ढूंढ़ना होगा।

एक और पहलू आता है 'बायोइंजीनियरिंग' का। जन्म के पहले से ही जीनों में हेर-फेर करके वांछित गुणों वाली संतानें प्राप्त की जा सकेंगीं। इसके चलते माता-पिता को सबसे पहले यह तय करना होगा कि वे आने वाले बच्चे में किस प्रकार के गुण चाहते हैं। मनुष्य अपना भाग्य स्वयं गढ़ेगा। अपने विकास का निर्माता बन जाएगा। जीन ही जैविक संगठन के मूल घटक हैं, जो आनुवंशिकता का नियंत्रण करते हैं। लिंग, त्वचा का रंग, शरीर का आकार, बालों का रंग, शारीरिक शक्ति और प्रायः बुद्धि ही पहले से ही निश्चित हो जाती है। मनुष्य ने मनवांछित गुणों की संतानें प्राप्त करना सीख लिया है। इस प्रकार यहाँ बड़ी विकट आशंका जन्म लेती है। यदि किसी माता-पिता को महाकाय घटोत्कच जैसी संतान प्राप्त करने की इच्छा जाग उठी तो आने वाला घटोत्कच क्या गुल खिलाएगा ? यह तो एक उदाहरण है। आगे आप अनेक विविधतापूर्ण संतानों की कल्पना कर सकते हैं। आदमी का मस्तिष्क सभी प्राणियों में सबसे बड़ा और कार्यकुशल है। उसके मस्तिष्क और एक कम्प्यूटर स्मृति के बीच एक प्रतीकात्मक संबंध के द्वारा उसकी मानसिक क्षमता को और अधिक बढ़ाने के प्रयोग हो रहे हैं। इस प्रकार हम दिनोंदिन अति मानव या 'सुपरमैन' की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। ये कुछ ऐसे पहलू हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है। कुछ आशंकाएं इस बात को लेकर व्यक्त की जा रही हैं कि कहीं पूर्णतया वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक माहौल में बच्चों का मानसिक विकास अवरुद्ध न हो जाए। या वे संवेदनशील न हो जाएं और असमय ही बुढ़ापे की ओर अग्रसर न होने लगें। आमतौर पर विज्ञान के भौतिक पक्ष के देखते हुए ये सभी आशंकाएं स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। इसलिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी को मानवीय संवेदनाओं से जोड़ना होगा, ताकि आने वाले समय में एक संतुलित विज्ञानोन्मुखी मानवीय मूल्यों से युक्त समाज का विकास सुनिश्चित किया जा सके। यह स्थापित तथ्य है कि मनुष्य के मस्तिष्क का विकास लगातार होता रहा है, आगे भी होता रहेगा। एक ज़माने में बच्चों को जो बातें माध्यमिक और स्नातक स्तरों पर पता चलती थीं, वे बातें उन्हें कनिष्ठ कक्षाओं में पढ़ाई जा रही हैं। इसके अलावा चारों ओर से संचार माध्यमों, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविज़न, इंटरनेट आदि के माध्यम से कितनी ही जानकारी उन्हें प्राप्त हो रही है। अब बात आती है कि सूचना-क्रांति के इस दौर में बच्चों के लिए कौन सी जानकारियां उचित हैं और कौन सी अनुचित हैं ? इसका भेद कर पाना बड़ा मुश्किल हो गया है। एक ओर यदि बच्चों को कुछ विशेष प्रकार की जानकारियों से वंचित रखने के लिए उन पर दबाव डाला जाता है, तो दूसरी ओर कुछ उपयोगी जानकारियों से भी वे वंचित रह जाते हैं। इसलिए उचित जानकारी का चयन करने का द्वन्द्व भी कुछ कम नहीं है। जहाँ तक जानकारी के आधिक्य का प्रश्न है, विकास के साथ-साथ मानव-मस्तिष्क की क्षमता में भी वृद्धि होती है। यही कारण है कि आज का बच्चा पहले के बच्चों की तुलना में ज़्यादा सक्रिय और सजग होता है। अपने पर्यावरण और आसपास की चीज़ों को तेज़ी से ग्रहण करते हुए वह जल्दी ही बहुत सारी विज्ञान और तकनीकी जानकारियाँ सीखने का प्रयास करता है। इसलिए असमय बूढ़े होने या मानसिक विकास न होने की आशंकाएँ बहुत प्रभावशाली प्रतीत नहीं होतीं।

लेकिन दूसरी ओर जहाँ पहले बच्चे उंगलियों के पोरों को गिनकर साधारण गणित के प्रश्न हल कर लिया करते थे, वहीं आज कैलकुलेटर और कम्प्यूटर पर उनकी निर्भरता बढ़ गयी है। हाथ से चित्र और नक्शे बनाने की क्षमता रखने वाले बच्चे अब कम्प्यूटर आधारित चित्रकारी पर निर्भर हो गए हैं। सामान्य ज्ञान की बहुत सारी बातें याद करने की बजाए कम्प्यूटर, विश्व कोश और इंटरनेट उनकी स्मृति भंडार के केन्द्र बन गए हैं। इस प्रकार नयी सदी में यह आशंका अवश्य है, कि जैसे इस सदी में बिजली, संचार, परिवहन और अन्य सुविधाओं ने मनुष्य को काफी हद तक पंगु बना दिया है उससे कई गुना ज़्यादा मात्रा में आने वाले समय में बच्चे जानकारी के लिए इन तथाकथित स्रोतों पर ज़्यादा से ज़्यादा निर्भर होते जाएंगे और उनकी अपनी निजी जानकारी पर निर्भरता कम होती जाएगी।

कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग के जरिए बच्चों के पैदा होने से लेकर उनके विकास, खानपान, पढ़ाई, रहन-सहन, मित्रता, मनोरंजन, व्यवसाय आदि को पहले से ही निर्धारित किया जा सकेगा। निस्संदेह इन सभी के चलते संवेदनशीलता में कमी की आशंकाएँ अवश्य बढ़ जाती हैं। लेकिन इस प्रकार काफी हद तक सुनियोजित समाज के विकास की अनेक बाधाएँ दूर की जा सकेंगी और आदर्श मानव समाज की खोज में लगा मानव अंततः एक आदर्श समाज का सपना साकार कर सकेगा।

कोई चमत्कार नहीं

आमतौर पर इक्कीसवीं सदी को लेकर अब से कोई पच्चीस साल पहले से ही अनेक प्रकार से चमत्कार पूर्ण जीवन की परिकल्पनाएँ प्रस्तुत की जाने लगीं थीं और आज भी लोग नयी सदी के बारे में बहुत अधिक रोमांचक हैं। उनमें अनेक प्रकार के कौतूहल हैं और वे बेसब्री से नयी सदी में होने वाले चमत्कारों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कार्य करने का अपना एक तरीका होता है। क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित प्रयोगों और उनके परीक्षणों के जरिए कोई नयी ईज़ाद सामने आती है और तब उसे वास्तविक इस्तेमाल के स्तर तक पहुँचने में और भी समय लगता है। इसलिए इक्कीसवीं सदी को लेकर कोई बहुत चमत्कृत या बहुत ज़्यादा उत्साहित होने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। वास्तविकता तो यह है, कि जैसे हर बार नया साल आता है, वैसे ही नयी सदी और नयी सहस्राब्दि भी आ गई। हाँ, फर्क शायद इतना अवश्य है कि धूमधाम और उत्सव कुछ ज़्यादा ही हो रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इक्कीसवीं सदी आने से एकदम से विज्ञान और प्रौद्योगिकी कोई चमत्कार कर देने वाले हैं। इतना अवश्य है कि आने वाले समय में और अधिक विकसित तकनीकें और साधन उपलब्ध हो जायेगें, जीवन अधिक सुविधाजनक बन सकेगा; नयी-नयी तकनीकों के आने से बहुत सारे कार्य संभव और आसान हो सकेंगे। निश्चित रूप से इन सभी का बच्चों के मानसिक विकास, संवेदनशीलता, सोच और तौर-तरीकों पर असर पड़ेगा। यह असर नकारात्मक भी हो सकता है और सकारात्मक भी। हमें नकारात्मक प्रभावों को बेअसर करने के लिए प्रयास करने चाहिए और सकारात्मक प्रभावों को स्वीकार करने के लिए आशान्वित रहना चाहिए।

–वैज्ञानिक,
राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्
नया महरौली मार्ग, नई दिल्ली-110016

सर रामन से उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की भेंट

मैं दो चार वैज्ञानिकों से पहले भी मिल चुका हूँ। यह सम्प्रदाय बड़ा ही अनाकर्षक, गूढ़, शुष्क और अपनी धुन में मस्त होता है्र लेकिन वैज्ञानिकों के इस प्रिंस को देखकर मैं चकित हो गया। ऐसा प्रसन्नचित्त व्यक्ति, जिसका पोर-पोर बालकों के सरल उछाह से उबल पड़ता हो, मैंने दूसरा नहीं देखा। वह विज्ञान के आशिक हैं और वह इश्क उनकी आंखों में, उनके कपोलों पर, एक-एक अंग में रमा हुआ है। वह इस तरह दौड़-दौड़ कर एक-एक चीज दिखा रहे थे मानो कोई बाल अपने सखा को खिलौने और कनकौवे और नये कपड़े दिखाने के लिए अधीर हो रहा हो। सर रामन ने हमें एक मज़े का तमाशा दिखाया। तबले के चर्म भाग पर चुटकी भर बालू बिखेर दी और तबले पर थाप मारी। बालू कभी सीधी रेखा धारण कर लेती कभी वृत्त .... काश बड़े लोग अपने बड़प्पन को अपनी कब्र न बनाकर ज्योति बना सकते।

–क़लम का सिपाही, पृष्ठ 589 से साभार

21वीं शताब्दी में राजभाषांतरण परिषद् के समक्ष मुद्दे

अनिल कुमार दुबे

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक और अनुसंधान प्रौद्योगिकी के कार्यक्रम कार्यान्वित करने वाला शीर्ष संगठन है। इस समय इसकी अनुसंधान प्रणाली में 45 केंद्रीय संस्थान, 4 राष्ट्रीय ब्यूरो, 10 प्रायोजना निदेशालय, 30 राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र और 86 अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान प्रायोजनाएँ तथा नेटवर्क शामिल हैं। परिषद् के मुख्य लक्ष्य इस प्रकार हैं --

1. कृषि, कृषि वानिकी, पशुपालन, मछली पालन, गृह विज्ञान और संबंधित विज्ञानों में शिक्षा, अनुसंधान और उसके अनुप्रयोग के लिए योजना बनाना, क्रियान्वयन करना, सहायता देना, बढ़ावा देना और समन्वय करना;

2. कृषि, पशुपालन, मछली पालन, गृह विज्ञान और संबंधित विज्ञानों पर आधारित अपने प्रकाशनों और सूचना प्रणाली के द्वारा अनुसंधान और सामान्य सूचना का प्रचार-प्रसार कार्य करना तथा प्रौद्योगिकी हस्तांतरण कार्यक्रम तैयार करना और बढ़ावा देना;

3. कृषि, कृषि वानिकी, पशुपालन, मछली पालन, गृह विज्ञान और संबंधित विज्ञानों में शिक्षा, अनुसंधान, प्रशिक्षण और सूचनाओं के प्रचार-प्रसार के लिए परामर्श सेवाएँ देना, क्रियान्वयन करना और बढ़ावा देना;

4. कृषि, कटाई के बाद की प्रौद्योगिकी और ग्रामीण विकास के व्यापक क्षेत्रों की समस्याओं पर ध्यान देना और इसके लिए अन्य संस्थाओं जैसे भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद्, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र और विश्वविद्यालयों के साथ मिलकर साझा कार्यक्रम तैयार करना; और

5. परिषद् के लक्ष्यों को पाने के लिए अन्य ज़रूरी क़दम उठाना।

स्पष्ट है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का उद्देश्य न केवल देश की कृषि अनुसंधान शिक्षा व प्रसार गतिविधियों को 21वीं सदी में विश्व स्तर तक ले जाना है, बल्कि इसे देश के आम किसानों व जनसामान्य से भी जोड़े रखना है ताकि इस देश में हुई प्रगति का लाभ आम किसानों व जनसामान्य को मिले और साथ-साथ विश्व में कृषि अनुसंधान, शिक्षा व प्रसार में जो प्रगति हो रही है उससे भी देशवासी परिचित होते रहें। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान की भाँति भविष्य में जब हम 21वीं सदी में प्रवेश करें तो परिषद में इतनी क्षमता हो कि वह नई-नई प्रौद्योगिकियों को किसानों व आम-जनों तक पहुँचाने के लिए राजभाषा हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को अपना सके। परिषद के प्रशासनिक तथा वैज्ञानिक कार्यों में राजभाषा हिन्दी का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि परिषद् का विशाल तंत्र पूरे देश में फैला हुआ है और हिन्दी के माध्यम से विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को किसानों व आम-जनों में अधिक सक्षमतापूर्वक पहुँचाया जा सकता है। अपने प्रशासनिक, वैज्ञानिक व तकनीकी कार्यों में हिन्दी का उपयोग परिषद् को इसलिए दिन-ब-दिन बढ़ाना होगा क्योंकि विभिन्न विद्यालयों व विश्व-विद्यालयों में हिन्दी माध्यम से विज्ञान में शिक्षा का विकल्प उपलब्ध होता जा रहा है। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से संबंधित केंद्र स्तर की प्रवेश परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम का विकल्प

उपलब्ध करा दिया गया है और केंद्र सरकार के लगभग सभी कार्यालयों की भर्ती परीक्षाओं व साक्षात्कारों में हिन्दी माध्यम का विकल्प दिया जा रहा है।

इस दृष्टि से यदि हम देखें तो परिषद् के कामकाज के हर क्षेत्र में 21वीं सदी में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाना होगा और राजभाषा विभाग द्वारा प्रतिवर्ष निर्धारित किए जाने वाले वार्षिक लक्ष्यों की पूर्ति के साथ-साथ परिषद् के कामकाज की प्रकृति को देखते हुए राजभाषा हिन्दी का प्रयोग बढ़ाने के लिए समयानुकूल आवश्यक क़दम उठाने होंगे।

अनुसंधान के क्षेत्र में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करने के लिए हिन्दी भाषी वैज्ञानिकों को आगे आना होगा। उन्हें अपनी अनुसंधान-उपलब्धियाँ हिन्दी में भी प्रकाशित करनी होंगी, जिसके लिए उन्हें अभ्यास से पहले प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होगी। हिन्दी में विज्ञान लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए पुरस्कार योजनाएँ चलाने के साथ-साथ अन्य सुविधाएँ भी उपलब्ध करानी होंगी। परिषद् को अपना प्रकाशन तंत्र इतना विकसित करना होगा कि वैज्ञानिकों द्वारा हिन्दी में लिखी गई पुस्तकों को शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित किया जा सके। आज विश्व भर में सूचना विस्फोट की स्थिति है और कृषि अनुसंधान में कुछ महीनों का ही विलम्ब हो तो वे अप्रासंगिक हो जाते हैं। परिषद् को अंग्रेज़ी के साथ-साथ हिन्दी प्रकाशन प्रणाली को भी इतना सुदृढ़ बनाना होगा कि जो भी पांडुलिपि तैयार हो वह शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित हो सके।

विज्ञान विषय की हिन्दी भाषा में प्रस्तुति करते समय हमें केवल अपने देश की सीमाओं में ही बँधकर नहीं रह जाना है, बल्कि विश्व के विज्ञान साहित्य को भी हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराना है। विश्व के कई देश ऐसे हैं जहाँ अंग्रेज़ी से अधिक उनके देश की भाषा का उपयोग होता है। इनमें से अधिकांश देशों में ऐसी व्यवस्था है कि विश्व की किसी भी भाषा में प्रकाशित पुस्तक उनकी भाषा में अनूदित होकर अतिशीघ्र उपलब्ध हो जाती है। **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् यदि हिन्दी को विज्ञान की भाषा बनाना चाहती है तो यहाँ भी ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि विश्व की किसी भी भाषा में उपलब्ध विज्ञान पुस्तक का हिन्दी में तत्काल अनुवाद हो सके व उसे प्रकाशित किया जा सके।** ऐसा होने पर ही देश के हिन्दी जानने वाले आमजन, वैज्ञानिक व हिन्दी माध्यम से पढ़ने वाले छात्र तथा हिन्दी में शिक्षा देने वाले शिक्षक विश्व के नवीन कृषि अनुसंधानों व प्रौद्योगिकियों से परिचित हो सकेंगे।

कृषि प्रसार के क्षेत्र में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का महत्व और भी बढ़ जाता है। वैज्ञानिक अनुसंधान चाहे जिस भाषा में हों लेकिन उन्हें यदि प्रौद्योगिकी के रूप में प्रयोगशाला से खेत तक जस का तस पहुँचाना है तो राजभाषा हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में उन्हें त्वरित गति से तैयार करना अत्यंत आवश्यक है। इस समय प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लिए प्रसार बुलेटिनों का प्रयोग हो रहा है। अगली सदी में शिक्षा के प्रसार-प्रचार के साथ प्रसार साहित्य का महत्व भी बढ़ जाएगा। अतः यह आवश्यक होगा कि जो नये अनुसंधान हों, उन्हें प्रौद्योगिकी के रूप में परिवर्तित करके किसानों व कृषि से जुड़े अन्य वर्गों तक हिन्दी भाषा में पहुँचाया जाए। त्वरित मुद्रण और बड़े पैमाने पर छपाई के लिए जिन नई-नई विधाओं का विकास हो रहा है परिषद् द्वारा उन सभी को शीघ्रता से अपनाना होगा। अगली सदी कम्प्यूटर, डी. टी. पी., फैक्स, लेजर प्रिंटिंग आदि से कहीं आगे होगी। सूचना प्रसारण की जो भी नई विधाएँ हैं, चाहे वे उपग्रह से जुड़ी हों या अन्य प्रणाली से विकसित की गई हों, परिषद् द्वारा प्रौद्योगिकी प्रसार के लिए बहुत उपयोगी होंगी। परिषद् कृषि सूचना प्रणाली के मामले में विश्व में होने वाली प्रगति के साथ क़दम से क़दम मिलाकर चल रही है। कम्प्यूटरीकरण के साथ-साथ कृषि सूचना प्रणाली का तेज़ी से विस्तार हुआ है। इंटरनेट व ई-मेल जैसी सुविधाएँ परिषद् मुख्यालय व इसके संस्थानों में सुलभ होती जा रही हैं। हमें इस प्रगति को विश्व स्तर का बनाए रखना होगा और इसमें हिन्दी व अन्य भाषाओं का अधिक से अधिक प्रयोग करना होगा, क्योंकि कम्प्यूटर व उपग्रह संचार प्रणाली परिषद् के केवल बड़े-बड़े शहरों में मौजूद संस्थानों तक ही सीमित नहीं रहने जा रही है, बल्कि ये सुविधाएँ परिषद् के दूरदराज़ स्थित छोटे केंद्रों और कृषि विज्ञान केंद्रों में भी उपलब्ध होने जा रही हैं। प्रौद्योगिकी प्रसार की अन्य विधाओं जैसे दूरदर्शन, रेडियो, वीडियो फिल्मों व अन्य फिल्मों में अंग्रेज़ी के स्थान पर परिषद् के संस्थानों द्वारा हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं का प्रयोग दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। यदि हमें अगली सदी में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में होने वाली प्रगति को बढ़ाना है तो इन सभी क्षेत्रों में हिन्दी व भारतीय भाषाओं का अधिक से अधिक प्रयोग करना होगा, जिसके लिए छोटे से छोटे केंद्रों को भी इस प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न करना होगा।

भावी कृषि मानव संसाधन विकास में हिन्दी की भूमिका

भारतीय कृषि को 21वीं शताब्दी में ले जाने के लिए तेज़ी से बदलती ज़रूरतों और भावी चुनौतियों के अनुरूप कृषि कार्य में लगी जनशक्ति की गुणवत्ता, तकनीकी निपुणता और प्रबंधन में सुधार लाना अति आवश्यक है। अगर उन्हें दी जाने वाली शिक्षा वर्तमान और भावी वास्तविकताओं के अनुरूप नहीं है तो राष्ट्रीय अनुसंधान, विस्तार और कृषि व्यवसाय प्रणालियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

सभी गतिशील प्रणालियों में स्थिरता और बाहरी ताक़तों के साथ संतुलन बनाए रखने के लिए मानव संसाधन विकास के बिना संगठन प्रगति नहीं कर सकते। अनुसंधान और विकास पद्धति में कोई बदलाव लाने या उसे नया रूप प्रदान करने का प्रयास करने से पहले मानव संसाधन विकास के क्षेत्र में तदनुरूप पहल करनी आवश्यक है। प्रणाली और सेवाओं संबंधी सभी सुधारों में मानव संसाधन विकास की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि संगठन नेतृत्व करना चाहता है तो अपेक्षित उद्देश्यों के अनुरूप व्यापक मानव संसाधन विकास कार्यक्रम शुरू करने के अलावा उसके सामने और कोई विकल्प नहीं है।

नई चुनौतियों का सामना करने, उच्च टेक्नोलॉजी वाली कृषि के लिए उन्नत प्रौद्योगिकीय ज़रूरतों को पूरा करने और अग्रणी विषयों में चुनौतियों का सामना करने के लिए स्नातकों को तैयार करने हेतु हमें ऐसे कृषि स्नातकों की ज़रूरत होगी जो आधुनिक विज्ञान, कम्प्यूटर प्रयोग, सूचना प्रणाली, जैव-प्रौद्योगिकी, आण्विक जैविकी, समेकित नाशीकीट प्रबंध, समेकित पौध पोषक तत्व प्रबंध, कृषि व्यापार, खाद्य प्रौद्योगिकी और सक्षम फ़सल उत्पादन प्रौद्योगिकी की अच्छी जानकारी रखते हों। निजीकरण और विश्वव्यापीकरण से नये रास्ते खुले हैं, तो वहीं पारस्परिक प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। अधिकाधिक मशीनीकरण और उत्पादन तकनीकों को आधुनिक बनाने पर अधिक ज़ोर देने की बात पर हमारे प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में भी अधिक बल दिया जाना चाहिए।

भारत में कृषि शिक्षा विभिन्न स्तरों पर चल रही है जो सामान्य जानकारी से लेकर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्तर तक की है। विश्व और राष्ट्रीय स्तर पर उठने वाला मूल प्रश्न यह है कि कल के समाज के लिए किस प्रकार की कृषि शिक्षा की ज़रूरत है। इसलिए 21वीं सदी के लिए शिक्षा की योजना बनाते समय हमें इस संदर्भ में कृषि शिक्षा के उद्देश्य, प्रक्रिया और लक्ष्यों का पता लगाना होगा। विश्व और राष्ट्रीय स्तरों पर बदलते हुए सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में उच्च कृषि शिक्षा का पूरी तरह पुनरीक्षण करने की ज़रूरत है, ताकि रोज़गारपरक और मूलभूत शैक्षिक ज़रूरतों के बीच दीर्घ-कालिक आधार पर संतुलन बनाया जा सके।

इन उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि देश में उपलब्ध मानव शक्ति को अधिक से अधिक कृषि मानव संसाधन विकास में शामिल किया जाए। चूँकि हमारे देश की लगभग आधी जनसंख्या की भाषा हिन्दी है, अतः हिन्दीभाषी छात्रों को एम. एस-सी. व पी-एच. डी. स्तर की शिक्षा हिन्दी माध्यम से देकर हम उन्हें सहज रूप से विज्ञान व प्रौद्योगिकी के निकट ला सकते हैं और उनकी प्रतिभा का अधिक से अधिक उपयोग कर सकते हैं।

स्पष्ट है कि भा. कृ. अ. प. को 21वीं सदी में राजभाषांतरण के मामले में विशेष प्रयास करना होगा और परिषद् ने इसकी तैयारी आरंभ कर दी है। हाल के कुछ वर्षों में परिषद् व इसके संस्थानों में प्रशासन के साथ-साथ विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को और प्रोत्साहित करने के लिए भारतीय कृषिअनुसंधान परिषद् के महानिदेशक व सचिव महोदय के मार्गदर्शन में कुछ नई योजनाएँ आरंभ की गईं हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

1. परिषद् के अधीनस्थ संस्थाओं आदि में वर्ष के दौरान हिन्दी में सर्वाधिक कार्य करने वाले कार्यालयों को शील्ड/ट्राफियाँ देने की योजना;
2. परिषद् में हिन्दी में सर्वाधिक कार्य करने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों को नक़द पुरस्कार देने की प्रोत्साहन योजना में राजभाषा विभाग द्वारा निर्धारित राशि में वृद्धि करना;
3. हिन्दी में विज्ञान लेखन को बढ़ावा देने के लिए परिषद् द्वारा चलाई जा रही डॉ. राजेन्द्र प्रसाद पुरस्कार योजना की पुरस्कार राशि 20,000 रुपए से बढ़ाकर 50,000 रुपए करने तथा इसे प्रत्येक तीन वर्ष के स्थान पर हर एकांतर वर्ष में देने का प्रस्ताव;
4. 'क' और 'ख' क्षेत्रों में कार्यरत परिषद् के वैज्ञानिकों द्वारा कृषि विज्ञान से संबंधित हिन्दी में अनूदित पुस्तकों के प्रकाशन की योजना;
5. कृषि विज्ञान पर एक ऐसी तकनीकी शब्दावली तैयार करने की योजना, जिसमें नवीनतम शब्दों का समावेश हो तथा उनके संगत अर्थ एवं पर्यायवाची शब्द दिए गए हों;

6. परिषद् की हिन्दी पत्रिकाओं व अन्य प्रकाशनों की गुणवत्ता में सुधार कर उन्हें विश्व स्तर का बनाना;

7. परिषद् मुख्यालय व इसके अधीनस्थ संस्थानों आदि में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन में तेज़ी लाने के लिए मुख्यालय में निरीक्षण दलों का गठन व उनके द्वारा मुख्यालय के विभिन्न प्रभागों तथा संस्थानों आदि का नियमित निरीक्षण और निरीक्षण रिपोर्ट की प्रस्तुति के बाद अनुवर्ती कार्रवाई;

8. संसदीय राजभाषा समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन के प्रथम चार खण्डों पर त्वरित व प्रभावी कार्रवाई के लिए इन खण्डों का सार प्रकाशित करना और सभी संस्थानों आदि को इस अनुरोध के साथ परिचालित करना कि इन सिफारिशों के अनुसरण में जो कमियाँ रह गई हैं, उन्हें दूर करने के लिए तत्काल अपेक्षित कार्रवाई किया जाना;

9. परिषद् के सभी वर्ग के कर्मचारियों की हिन्दी में काम करने की झिझक को दूर करने के लिए परिषद् मुख्यालय तथा इसके अधीनस्थ संस्थानों आदि में हिन्दी कार्यशालाओं का नियमित आयोजन;

10. परिषद् मुख्यालय में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन की समीक्षा के लिए महानिदेशक महोदय की अध्यक्षता में उप-महानिदेशक स्तर के वरिष्ठ अधिकारियों की विशेष समिति का गठन;

11. देश की स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में परिषद् व इसके संस्थानों आदि में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग में हुई प्रगति की झलक प्रस्तुत करने के लिए **'राजभाषा आलोक'** नामक वार्षिक पत्रिका का शुभारंभ। यह पत्रिका प्रतिवर्ष परिषद् में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग की प्रगति को प्रस्तुत करती है और परिषद् की राजभाषा नीति को अगली सदी में भी उजागर करती रहेगी;

12. स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती वर्ष में अखिल भारतीय स्तर पर निबंध प्रतियोगिता, दिल्ली के स्कूली छात्रों के लिए हिन्दी मे प्रश्न-मंच व परिषद् के संस्थानों में वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी व्याख्यानमालाओं का आयोजन। यह एक महत्वपूर्ण शुरुआत है जिसे नियमित रखा जाएगा और आने वाली पीढ़ी को भा. कृ. अनु. प. की हिन्दी गतिविधियों से जोड़ा जाएगा;

13. परिषद् द्वारा वैज्ञानिक विषयों पर अखिल भारतीय स्तर की संगोष्ठियों के आयोजन की श्रृंखला शुरू हो गई है। इसी क्रम में परिषद् के कुछ संस्थानों जैसे भारतीय चरागाह और चारा अनुसंधान संस्थान, झाँसी, उत्तर प्रदेश; केंद्रीय मात्स्यिकी प्रौद्योगिकी संस्थान, कोचीन; और तिलहन अनुसंधान निदेशालय, हैदराबाद में वर्ष 1997 व 1998 में वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में संगोष्ठियों का आयोजन किया गया व कुछ अन्य संस्थानों द्वारा ऐसी संगोष्ठियों के आयोजन की तैयारी की जा रही है। नई दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा दिनांक 11 से 13 अगस्त 1998 को ''भारतीय कृषि का भावी स्वरूप'' विषय पर आयोजित त्रिदिव-सीय संगोष्ठी भी अत्यंत सफल रही। इनमें से अधिकांश संगोष्ठियों में प्रस्तुत पत्रों को प्रकाशित किया गया है, जो हिन्दी में कृषि विज्ञान की अमूल्य धरोहर हैं और आगे आने वाली पीढ़ी के लिए कृषि विज्ञान को हिन्दी में प्रस्तुत करने का उदाहरण होंगी। भविष्य में भी इस प्रकार की संगोष्ठियाँ राजभाषा हिन्दी में आयोजित होते रहने से भावी पीढ़ी के वैज्ञानिकों को अपने विषय के शोधपत्रों को हिन्दी में प्रस्तुत करने में कठिनाई नहीं होगी;

14. परिषद् व इसके अन्य संस्थानों द्वारा कृषि विज्ञान संबंधी उच्च स्तर की पाठ्य-पुस्तकें व संदर्भ ग्रंथ हिन्दी में तैयार करना। इस दिशा में केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुम्बई ने उल्लेखनीय योगदान दिया है। परिषद् का उद्देश्य इसे अगली सदी में समय की माँग के अनुकूल बनाना है;

15. कई संस्थानों द्वारा हिन्दी माध्यम से अनेक प्रशिक्षण पाठ्क्रमों की शुरुआत। अगली सदी में सभी प्रशिक्षण हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं में देने व प्रशिक्षण सामग्री के उपलब्ध कराने का लक्ष्य; और

16. परिषद् के शिक्षण संस्थानों द्वारा हिन्दी में शोध-प्रबंध लिखने का विकल्प उपलब्ध कराना, विशेषकर केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुम्बई द्वारा शोध-प्रबंधों का सार हिन्दी में भी प्रकाशित करना। इस क़दम से अगली सदी में हिन्दी माध्यम से एम. एस-सी. व पी-एच. डी. की शिक्षा देने की संभावना और प्रबल हुई है।

–निदेशक (हिन्दी)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, कृषि भवन,
नई दिल्ली

दैवी आपत्तियों का प्रतीकार

दैवान्यष्टौ महाभयानि।।१।।

अग्निरुदकं व्याधि-दुर्भिक्षं मूषिका व्यालाः सर्पा रक्षांसीति।।२।।

तेभ्यो जनपदं क्षेत्।।३।।

ग्रीष्मे बहुरधिश्रयणं ग्रामाः कुर्युः।।४।। दशमूलीसंग्रहेणाधिष्ठिता वा।।५।।

दैव-वश होने वाले आठ महाभय हैं।।१।। अग्नि, जल, बीमारी, दुर्भिक्ष, चूहे, व्याघ्र, साँप और राक्षस।।२।। राजा इन सबसे जनपद की रक्षा करे।।३।। गरमी की ऋतु में ग्रामीणजन घर से बाहर भोजन आदि पकावें।।४।। अथवा दशकुल (दस घरों) का रक्षक गोप (यह राजा की ओर से नियुक्त जमादार का नाम है) जहाँ आज्ञा देवे, उसी जगह पर भोजन आदि बनावें।।५।।

नागरिकप्रणिधावग्नि प्रतिषेधो व्याख्यातः।।६।।

निशान्त प्रणिधौ राजपरिग्रहे च।।७।।

बलिहोमस्वस्तिवाचनैः पर्वसु चाग्निपूजाः कारयेत्।।८।।

नागरिक प्रणिधि नामक प्रकरण में अग्नि से बचने के उपाय बतला दिये गये हैं।।६।। निशान्त प्रणिधि नामक प्रकरण के अन्तर्गत राजपरिग्रह में भी अग्नि से बचने के उपाय बताये हैं।।७।। पूर्णमासी आदि पर्व-तिथियों में बलिहोम और स्वस्ति-वचनों से अग्नि की पूजा करवावे।।८।।

वर्षारात्रमनूपग्रामाः पूरवेलामुत्सृज्य वसेयुः।।९।।

काष्ठवेणुनावश्चावगृह्णीयुः।।१०।।

उह्यमानमलाबुदृति प्लवगण्डिकावेणिकाभिस्तारये युः।।११।।

वर्षा-ऋतु की रातों में, नदी के पास के गाँव, नदी के किनारों को छोड़ कर दूर जाकर निवास करें।।९।। लकड़ी, बाँस के बेड़े तथा नाव आदि तैरने के साधनों का सदा संग्रह रखें।।१०।। नदी के प्रवाह के साथ बहते हुए या डूबते हुए आदमी को तूँबी, मशक, तमेड़, लक्कड़ या बेड़े के सहारे तैरावें अर्थात् बचावें।।११।।

अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः।।१२।।

अन्यत्र प्लवहीनेभ्यः।।१३।।

पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत्।।१४।।

मायायोगविदो वेदविदो वा वर्षमभिचरेयुः।।१५।।

जो पुरुष, डूबते हुए आदमी को देख कर बचाने का यत्न न करें, उन्हें १२ पण दण्ड दिया जाय।।१२।। परन्तु यदि उसके पास तैरने का कोई साधन न हो, तो वे अपराधी नहीं।।१३।। और पूर्णमासी आदि पर्व-तिथियों में नदी की पूजा करवावें।।१४।। तथा मान्त्रिक एवं अथर्ववेद आदि के जानने वाले पुरुषों से अतिवृष्टि को शान्त करने के लिए जप, होम आदि करवावें।।१५।।

वर्षावग्रहे शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत्।।१६।।

व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतीकारैः प्रतिकुर्युः।।१७।।

औषधे श्चिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा सिद्धतापसाः।।१८।।

वर्षा के बन्द हो जाने पर इन्द्र, गंगा, पहाड़ और वरुण या समुद्र की पूजा करवावें।१६।। औपनिषदिक (१४वें) अधिकरण में कहे हुए उपायों के द्वारा कृत्रिम व्याधि, भय का प्रतीकार करें।।१७।। तथा अकृत्रिम व्याधिभय को वैद्य लोग चिकित्सा के द्वारा और सिद्ध तथा तपस्वी-जन शान्ति-कर्म और प्रायश्चित्त (व्रत उपवासादि) आदि के द्वारा दूर करें।।१८।।

तेन मरको व्याख्यातः।।१९।।

तीर्थाभिषेचनं महाकच्छवर्धनं गवां श्मशानावदोहनं कबन्धदहनं देवरात्रिं च कारयेत्।।२०।।

संक्रामक (फैलने वाली) महाव्याधियों के दूर करने के लिए भी इसी प्रकार के उपाय काम में लाने चाहिएँ।।१९।। गङ्गा आदि तीर्थों में स्नान, वरुण या समुद्र की पूजा, श्मशान में गौओं का दोहन (दूध दुहना), चावल और सत्तू से बने हुए कबन्ध (सिर-रहित शरीर) का श्मशान में दाह और किसी स्थान पर देव की पूजा करके रात्रि-जागरण करवावे।।२०।।

पशुव्याधिमरके स्थानान्यर्घनीराजनं स्वदैवतपूजनं च कारयेत्।।२१।।

दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रहं कृत्वानुग्रहं कुर्यात्।।२२।।

यदि पशुओं में बीमारी या महामारी फैल जावे, तो स्थान-स्थान पर रोग को दूर करने के लिए शान्ति-कर्म करवावे और उन-उन पशुओं के देवताओं की पूजा करवावे। (पशुओं के देवता निम्न प्रकार हैं- हाथी = सुब्रह्मण्य, घोड़ा = अश्विनी, गौ = पशुपति, भैंस = वरुण, बरका = अग्नि, इत्यादि)।।२१।। दुर्भिक्ष हो जाने पर राजा को चाहिए कि वह बीज तथा अन्न आदि देकर प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह करे।।२२।।

दुर्गसेतुकर्म वा भक्तानुग्रहेण भक्तसंविभागं वा देशनिक्षेपं वा।।२३।।

मित्राणि वाप्यपाश्रयेत।।२४।। कर्शनं वमनं वा कुर्यात्।।२५।।

अथवा क्षुत्पीड़ितों को उचित वेतन देकर उनसे दुर्ग या सेतु आदि का निर्माण करवावें। जो कार्य करने में असमर्थ होवें, उन्हें केवल अन्न देवे अथवा समीप के दूसरे देश में कष्ट समय तक उन लोगों के जाने का प्रबन्ध कर दे।।२३।। अथवा प्रजा की रक्षा के लिए, अपने मित्र राजाओं से सहायता लेवे।।२४।। और अपने देश के धनवान् आदमियों पर कर लगावे तथा उनसे अधिक मात्रा में एकमुश्त धन भी लेवे।।२५।।

निष्पन्नसस्यमन्यविषयं वा सजनपदो यायात्।।२६।।

समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत।।२७।।

धान्यशाकमूलफलावापान् सेतुषु कुर्वीत।।२८।।

मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान्वा।।२९।।

अथवा जिस देश में अन्न की खूब अधिकता हो, वहाँ पर ही जनपद के सहित चला जावे।।२६।। अथवा समुद्र के किनारे या बड़े-बड़े तालाबों के किनारे पर जाकर बसे।।२७।। जहाँ पर धान्य, शाक, मूल, फल आदि की खेती भी करवा सके।।२८।। अथवा मृग, पशु, पक्षी, व्याघ्र, मछली आदि का शिकार करके जीवन-निर्वाह करें।।२९।।

मूषिकभये मार्जारनकुलोत्सर्गः।।३०।।

तेषां ग्रहण- हिंसायां द्वादशपणो दण्डः।।३१।।

शुनामनिग्रहे च।।३२।। अन्यत्रारण्यचरेभ्यः।।३३।।

चूहों का भय होने पर बिल्ली और नेवलों को जगह-जगह पर छुड़वा देवे।।३०।। जो उनको पकड़े या मार देवें, उनको १२ पण दण्ड दिया जाय।।३१।। उनको भी १२ पण दण्ड दिया जाय, जो दूसरो का नुकसान कर देने पर भी अपने पालतू कुत्तों को न पकड़े।।३२।। जंगली कुत्तों के न पकड़ने में कोई अपराध नहीं।।३३।।

स्नुहीक्षीरलिप्तानि धान्यानि विसृजेदुपनिषद्योगयुक्तानि वा मूषिककरं वा प्रयुञ्जीत।।३४।।

शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः।।३५।।

पर्वसु च मूषिकपूजाः कारयेत्।।३६।।

तेन शलभपक्षिक्रिमिभयप्रतीकारा व्याख्याताः।।३७।।

सेंढ के दूध में भीगे हुए धान्य को या औपनिषदिक प्रकरण में बतलाई हुई औषधियों से मिले हुए धान्य को इधर-उधर बिखेर देवे। (जिससे कि उसे खाकर चूहे मर जावें)। अथवा चूहों को पकड़ने का कोई प्रबन्ध करें।।३४।। सिद्ध व तपस्वीजन चूहों को नष्ट करने के लिए शान्ति-कर्म करें।।३५।। पर्वतिथियों में मूषकों की पूजा करवावे।।३६।। इससे पतंगे, पक्षी और छोटे-छोटे कीड़ों से होने वाले भय का भी प्रतीकार समझ लेना चाहिए।।३७।।

व्यालभये मदनरसयुक्तानि पशुशवानि विसृजेत्।।३८।।

मदनकोद्रवपूर्णान्यौदर्याणि वा।।३९।।

लुब्धकाः श्वगणिनो वा कूटपञ्जरावपातैश्चरेयुः।।४०।।

हिंसक-व्याघ्र आदि पशुओं का भय होने पर औपनिषदिक अधिकरण में बताये हुए मदन-रस आदि युक्त, पशुओं की लाशों को जंगल में छुड़वा देवे। (ताकि उसे खाकर व्याघ्रादि मर जावें)।।३८।। अथवा धतूरा और जंगली कोदों को मिलाकर लाशों के पेट में भर दिया जाय, और उन्हें जंगल में छोड़ दिया जाय।।३९।। शिकारी और बहेलिये (कुत्तों के द्वारा शिकार करने वाली जाति-विशेष) छिपे हुए गड्ढों का उपयोग करें।।४०।।

आवरणिनः शस्त्रपाणयो व्यालानभिहन्युः।।४१।।

अनभिसर्तुर्द्वादशपणो दण्डः।।४२।।

स एव लाभो व्यालघातिनः।।४३।।

पर्वसु स पर्वतपूजाः कारयेत्।।४।।

तेन मृगपशुपक्षिसंघग्राहप्रतीकारा व्याख्याताः।।४५।।

कवच धारण कर हथियारों से सिंह आदि को मारें।।४१।। व्याघ्र आदि से घिरे हुए मनुष्य को जो न बचावे, उसे १२ पण दण्ड दिया जाय।।४२।। जो

व्याघ्रादि को मार देवे, उसे इतना ही (१२ पण) इनाम दिया जाय। ।४३।। और पर्व-तिथियों में पर्वतों की पूजा करावे। ।४४।। इसी प्रकार अन्य जंगली पशु और पक्षियों के झुण्डों के आक्रमण आदि से बचने के उपाय समझने चाहिये। ।४५।।

सर्पभये मन्त्रैरोषधिभिश्चि जाङ्गली विदश्चरेयुः। ।४६।।

संभूय वोपसर्पान्हन्युः। ।४७।।

अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः। ।४८।।

पर्वसु नागपूजाः कारयेत्। ।४६।।

तेनोदकप्राणिभयप्रतीकारा व्याख्याताः। ।५०।।

सर्प का भय होने पर मन्त्र और औषधियों के द्वारा, विषवैद्य उनका प्रतीकार करें। ।४६।। अथवा नगर निवासी जन भी जिस साँप को देखें, मिल कर मार देवें। ।४७।। अथवा अथर्ववेद (अथर्ववेद में प्रतिपादित अभिचारकर्मो) को जानने वाले पुरुष अभिचार क्रियाओं से सर्पो को मारें। ।४८।। पर्वतिथियों में सर्पो की पूजा करावे। ।४६।। जलचर प्राणियों से होने वाले भयों का प्रतीकार भी इसी प्रकार समझना चाहिए। ।५०।।

रक्षोभये रक्षोघ्नान्यथर्ववेदविदो मायायोगविदो वा कर्माणि कुर्युः ।।५१।।

पर्वसु च वितर्दिछत्रोल्लोपिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैश्चैत्यपूजाः कारयेत्। ।५२।

राक्षसों का भय होने पर, आभिचारिक (अथर्व प्रतिपादित अभिचार कर्म को जानने वाले) तथा मायायोग (शैवादि तन्त्र प्रतिपादित मारण, उच्चाटन आदि क्रियाओं) को जानने वाले पुरुष, राक्षसों के नाशक कर्मों का अनुष्ठान करें। ।५१।। और कृष्ण चतुर्दशी, अष्टमी आदि पर्व - तिथियों में वेदी, छाता, कुछ खाने का सामान, हाथ में छोटी झण्डी और बकरा भेंट के लिए लेकर श्मशान भूमियों में राक्षसों की पूजा करवावे। ।५२।।

चरुं वश्चरामं इत्येवं सर्वभयेष्वहोरात्रं चरेयुः। ।५३।।

सर्वत्र चोपहतान्पितेवानुगृह्णीयात्। ।५४।।

प्रत्येक भय के उपस्थित होने पर "हम तुम्हारे लिए हवि पकाते हैं" इस प्रकार कहते हुए पुरुष दिन और रात में घूमें। ।५३।। उपर्युक्त भयों से ग्रस्त हुए प्रजा-जनों की सब जगह राजा इस प्रकार रक्षा करें, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है। ।५४।।

मायायोगविदस्तस्माद्विषये सिद्धतापसाः।

वसेयुः पूजिता राज्ञा दैवापत्प्रतिकारिणः। ।५५।

इसलिए राजा को उचित है कि वह, दैवी आपत्तियों का प्रतीकार करने वाले, मायायोगवित् और सिद्ध तपस्वियों को सत्कारपूर्वक अपने देश में अवश्य रखे। ।५।।

–अर्थशास्त्र अध्याय 3 से उद्धृत

वैज्ञानिक सफलताएँ भी अन्य सफलताओं की तरह तब दुर्भाग्यपूर्ण बन जाती हैं, जब वे अत्युत्साह एवं अहंकार उत्पन्न करती हैं। कुछेक सफलताओं के कारण अपनी सर्वांगपूर्ण बुद्धिमत्ता का अभिमान किया जाने लगता है और यह भुला दिया जाता है कि, कुछ काम की कुछ सीमा तक मिली सफलता का अर्थ यह नही हैं कि अपना हर चिंतन और हर प्रयास सही या सफल ही होगा। सफलता के लिए क्रिया ही काफी नहीं; सतर्कता भी आवश्यक है।

–श्रीराम शर्मा आचार्य

इटालियन मधुमक्खी लायेगी भारत में शहद क्रान्ति

विजय चितौरी

कृषि, बागवानी, डेरी और मत्स्य-पालन जैसे क्षेत्रों में भारत ने काफी प्रगति की है क्योंकि इन क्षेत्रों में सरकार ने काफी दिलचस्पी ली, नये-नये शोध हुए और इन क्षेत्रों में नयी तकनीकें अपनायी गयीं। लेकिन इनसे मिलते-जुलते क्षेत्र मधुमक्खी पालन में हमारा देश अभी भी काफी पिछड़ा हुआ है। इसका बड़ा कारण यह रहा है कि यहाँ मधु या शहद को अभी भी लोग ओषधि के क्षेत्र में ही रखते हैं जबकि यह अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक खाद्य भी है। मधुमक्खी पालन के क्षेत्र में सरकार ने प्रचार-प्रसार और इस व्यवसाय को खड़ा करने के लिए कोई खास प्रयास भी नहीं किया है लेकिन गैरसरकारी क्षेत्रों में मधुमक्खी पालकों ने इस क्षेत्र में काफी काम किया है। अब जब से देश में इटालियन मधुमक्खी का पालन शुरू हुआ है शहद का उत्पादन तेज़ी से बढ़ रहा है। यदि इस क्षेत्र में सरकार भी दिलचस्पी ले ले तो देश में शहद-क्रान्ति की अच्छी संभावना है।

हमारे देश में मधुमक्खियों (मौन) की परंपरागत मुख्य तीन प्रजातियां पाई जाती हैं।

(1) भंवर (**एपिस डारसेटा**)

(2) पोतिंगा या छोटी मधुमक्खी (**एपिस फ्लोरिया**)

(3) भारतीय मौन (**एपिस सिरेना इंडिका**)

इटालियन मौन जो अब देश में तेजी से लोकप्रिय हो रही है, उस का वैज्ञानिक नाम **'एपिस मैलीफेरा'** है।

मधुमक्खी पालन (मौन पालन) के लिए उपरोक्त में से दो मौनें ही उपयुक्त हैं : भारतीय मौन तथा इटालियन मौन। प्रथम दो भंवर तथा पोतिंगा पाली नहीं जा सकतीं। भंवर ऊँचे वृक्षों, चट्टानों एवं ऊँचे मकानों में केवल एक बड़ा छत्ता बनाती हैं। पोतिंगा छोटी मौन है जो झाड़ियों, पेड़ों की डालों पर केवल एक छोटा छत्ता बनाती है। भारतीय मौन (**इंडिका**) दीवाल के दरारों में, पेड़ के खोखलों में एवं चट्टानों के भीतर 5 से 8 तक समान्तर छत्ते लगाती है। कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति इटालियन मौन की भी हैं। अँधेरे में एक के बाद एक समान्तर छत्ते लगाने की इनकी प्रवृत्ति का अध्ययन करके इन्हें लकड़ी की पेटियों में पालने के प्रयास किये गये। ये प्रयास पहले योरप के देशों में हुए। वहीं से यह तकनीक भारत आयी है।

मौन पालन की शुरुआत का श्रेय स्विटज़रलैण्ड के एक अंधे व्यक्ति फ्रांसिस हूबर को दिया जाता है। 1789 में हूबर ने किताब के पन्नों की तरह खुलने और बन्द होने वाले लकड़ी के फ्रेम (चौखटे) बनाये और उन्हीं फ्रेमों में मौन के छत्ते रखकर मौन पालन की शुरुआत की। बाद में लकड़ी की पेटीनुमा बक्सों में ये फ्रेम रखकर मौन पालन का काम होने लगा। भारत में मौन पालन की शुरुआत सबसे पहले 1911 में त्रिचनापल्ली (मद्रास) में एक अंग्रेज़ पादरी एल० बी० न्यूटन ने की।

भारत में मौन पालन सम्बन्धी पहला शोध एवं प्रशिक्षण केन्द्र 1938 में नैनीताल के पास ज्योलीकोट में खोला गया। आज़ादी के बाद मौन पालन सम्बन्धी शोध, प्रशिक्षण, प्रचार एवं प्रसार सम्बन्धी सारी ज़िम्मेदारी 'खादी ग्रामोद्योग आयोग' को सौंप दी गयी।

भारत में इटालियन मौन का प्रवेश सबसे पहले 1964 में पंजाब के मौन पालकों के प्रयास से हुआ। पंजाब के बाद पर्वतीय क्षेत्र नगरौटा नामक स्थान पर इसे पालकर इसका परीक्षण किया गया। बाद में 1966 से इसे लुधियाना में पाला जाने लगा। अब यह पूरे देश में तेज़ी से लोकप्रिय हो रही है।

इटालियन मौन की लोकप्रियता के कई कारण हैं। भारतीय मौन के एक मौनवंश से प्रतिवर्ष करीब 5 से 10 किलोग्राम तक शहद ही निकल पाती है जबकि इटालियन मौन के प्रति मौन वंश से प्रति वर्ष 25 से 40 किलोग्राम तक शहद निकाली जा सकती है। यहाँ इलाहाबाद में एक मौन

पालक ने एक मौन वंश से तो पिछले एक वर्ष में 53 किलोग्राम शहद प्राप्त किया। यह मात्रा इलाहाबाद में एक रेकॉर्ड है। शहद के अधिक उत्पादन के अलावा इटालियन मौन में एक विशेषता और है। इसमें घर छोड़कर भागने की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती जबकि भारतीय मौन में यह प्रवृत्ति बहुत पायी जाती है। इस प्रवृत्ति से मौन पालक परेशान रहते हैं। इटालियन मौन सीधी भी बहुत होती हैं। यह कम डंक मारती हैं। शहद की ही तरह इससे मोम भी ज्यादा प्राप्त होता है।

इटालियन मौन में "सैकब्रूड" नामक घातक बीमारी का असर भी कम होता है। 1982-83 में इस वायरल बीमारी से उत्तर प्रदेश के राजकीय एवं व्यक्तिगत मौनपालकों के करीब 90 प्रतिशत मौनवंश समाप्त हो गये थे। मौन पालन को उस साल करारा झटका लगा था। उस समय देखा गया कि सैकब्रूड का असर इटालियन मौनवंशों पर बहुत कम पड़ा। इसके पश्चात् इटालियन मौन ने शोधकर्ताओं और मौन पालकों को तेज़ी से अपनी ओर आकर्षित किया। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने इटालियन मौन पालन हेतु चौबटिया (रानीखेत-अल्मोड़ा) में एक शोध एवं प्रशिक्षण केन्द्र खोला। उत्तर प्रदेश में शहद की भीषण कमी को देखते हुए उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग उत्तर प्रदेश (मैदानी क्षेत्र) ने वर्ष 1989-90 में वृहद स्तर पर इटालियन मौन के प्रचार का निर्णय लिया। इसके लिये पंजाब से इटालियन मौन मँगवाकर प्रदेश के विभिन्न केन्द्रों और उपकेन्द्रों पर इसका पालन प्रारंभ किया गया। 1991-92 में इस कार्यक्रम में और भी बढ़ोत्तरी की गयी। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्र में लखनऊ, इलाहाबाद, गोरखपुर, आगरा, वाराणसी, बरेली, सहारनपुर, हरिद्वार, मुरादाबाद, कानपुर नगर, बस्ती, फैज़ाबाद, गाजीपुर एवं जौनपुर में इटालियन मौन का पालन हो रहा है। सरकारी प्रशिक्षण केन्द्रों से प्रशिक्षण लेकर निकले सैकड़ों लोगों ने इस कार्य को व्यवसाय के रूप में भी करना शुरू कर दिया है।

हमारे देश में मौन पालन की असीम संभावनाएं हैं। यह कार्य देश में हर जगह हो सकता है। मुख्य शर्त यह है कि वर्ष के अधिकांश महीनों में मौन वंश के आस पास 2-3 किलोमीटर तक मौनों के लिए फूलों से प्राप्त रस (मकरंद) एवं पराग मिल सके। यह स्थिति पहाड़ी क्षेत्र, मैदानी क्षेत्र और जंगली क्षेत्रों में लगभग हर स्थान पर है। अनेक मौन पालक अपने मौनालय के आस-पास ऐसी फ़सलें भी बोया करते हैं जिससे मौनें मकरंद एवं पराग ग्रहण करती हैं। मधुमक्खियां परागण करके किसानों को अतिरिक्त लाभ भी पहुँचाती हैं। जहाँ मौनें पाली जाती हैं देखा गया है कि फ़सल-उत्पादन 5 से 15 प्रतिशत तक बढ़ जाता है।

आय-व्यय विवरण

इटालियन मौन के दस मौन वंश से मौनालय स्थापना का आय-व्यय विवरण दिया जा रहा है। ये ऑकड़े राजकीय मौन पालन केन्द्र, इलाहाबाद द्वारा तैयार किये गये हैं :

1.	दस मौन पेटी का मूल्य	1400 × 10	= 14,000	रुपया
2.	4 फ्रेम वाले मौन वंश का मूल्य	500 × 10	= 5,000	रुपया
3.	अन्य आवश्यक उपकरण		6,000	रुपया
		कुल लागत	= 25,000	रुपया

प्रतिवर्ष आय-व्यय विवरण :

व्यय

1.	25,000 रुपये का ब्याज (12% वार्षिक)	= 3,000	रुपया
2.	कृत्रिम भोजन, मोमी छत्ताधार, औषधि आदि	= 3,000	रुपया

3.	माइग्रेशन व्यय (100 रुपया प्रति मौनवंश)		= 1,000	रुपया
4.	मौन पालन उपकरणों पर 5% ह्रास मूल्य		= 1250	रुपया
5.	अन्य		= 500	रुपया
		कुल वार्षिक व्यय	= 8,750	रुपया

आय

1.	प्रति मौनवंश 40 किग्रा० शहद, मूल्य 100 रुपये प्रति किलोग्राम के हिसाब से	$40 \times 10 \times 1000 =$	40,000	रुपया
2.	मौन वंशों की ब्रिकी से (एक से तीन करने पर)	$500 \times 20 =$	10,000	रुपया
3.	मोम उत्पादन, प्रतिमौन वंश 5 किग्रा० दाम 100 रुपये प्रति किलो	5×100	= 500	रुपया
		कुल वार्षिक आय	= 50,500	रुपया

शुद्ध वार्षिक लाभ = 50, 500 - 8,750 = 41,750 रुपया

लेखक ने अपने निवास पर अपना स्वयं का मौनालय स्थापित किया है। उक्त मौनालय में शहद, मौनवंश पालन सम्बन्धी प्रशिक्षण की व्यवस्था है। पत्राचार द्वारा भी प्रशिक्षण की व्यवस्था है। ऐसे लोगों को एक हफ्ते के लिये मौनालय में रहकर व्यावहारिक प्रशिक्षण लेना होगा। उक्त के सम्बंध में लेखक से संपर्क किया जा सकता है।

–संपादक, 'गाँव की नई आवाज'
घूरपुर, इलाहाबाद - 212110

डॉ० मनोज पटैरिया को विज्ञान लोकप्रियकरण पुरस्कार

विज्ञान परिषद् प्रयाग के आजीवन सभ्य, युवा वैज्ञानिक और विज्ञान लेखक डॉ० मनोज पटैरिया को इस वर्ष का बी० सी० देब स्मृति विज्ञान लोकप्रियकरण पुरस्कार प्रदान किया गया है। डॉ० पटैरिया को यह सम्मान लोकप्रिय विज्ञान लेखन के क्षेत्र में किए गए उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए प्रदान किया गया है। प्रख्यात शिक्षाविद् डॉ० गीता तालुकदार ने पुणे विश्वविद्यालय के संत ध्यानेश्वर हॉल में आयोजित एक समारोह में डॉ० पटैरिया को यह सम्मान प्रदान किया। पुरस्कार में पाँच हज़ार रुपये की नक़द राशि, प्रशस्ति पत्र और स्वर्ण फलक सम्मिलित हैं। यह पुरस्कार भारतीय विज्ञान कांग्रेस द्वारा प्रति वर्ष विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए प्रदान किया जाता है।

पुस्तक/पत्रिका समीक्षा

पुस्तक का नाम : **नन्हें हाथ खोज महान** (सचित्र)

लेखक : **हरि कृष्ण देवसरे**

प्रकाशक : आर्य प्रकाशन मण्डल, सरस्वती भण्डार, गाँधी नगर, दिल्ली - 110031

प्रथम संस्करण : 1998, मूल्य : 30.00 रु० मात्र, पृष्ठ : 80

पूत के पाँव पालने में ही दिखने लगते हैं, अर्थात् बच्चे के छोटे होने पर ही उसके गुण दिखाई पड़ने लगते हैं। विज्ञान में हुए विभिन्न आविष्कार भी इस बात को प्रमाणित करते हैं। ऐसे अनेक आविष्कार हैं, जिसके आविष्कार के बीज आविष्कारकों के बचपन में ही पड़ गये थे। दिन प्रतिदिन में घटने वाली विभिन्न घटनाओं की ओर उन बालकों का ध्यान गया और घटना उन्हें उसका रहस्य जानने समझने तथा उसका विविध क्षेत्रों में प्रयोग करने को प्रेरित करती रही। ऐसा इसलिए भी सम्भव हुआ क्योंकि उन घटनाओं को आविष्कारकों ने बाल सुलभ जिज्ञासु चंचल मन की चंचलता समझकर नजरअन्दाज नहीं किया। समीक्ष्य पुस्तक में कुछ ऐसे ही आविष्कारों की कथाएँ दी गयी हैं।

ये घटनाएँ बच्चों को जीवन में होने वाली घटनाओं को ग़हराई से सोचने के लिए प्रेरित करेंगी। यह बात उन्हें प्रोत्साहित करेगी कि उनका प्रत्येक कार्य बड़ा ही महत्वपूर्ण है। कौन जाने उनका कौन सा काम उनके बड़े होने पर उन्हें प्रेरणा देगा और उन्हें प्रसिद्धि दिला देगा। यह प्रसिद्धि प्राप्त करने व विशिष्ट व्यक्ति बनने की लालसा ही उनमें वैज्ञानिक रुचि विकसित कर देगी।

पुस्तक में दी गई समस्त कहानियाँ रोचक, ज्ञानवर्धक और प्रेरक हैं। कहानियाँ वार्तालाप सरस व सुबोध शैली में दी गयी हैं। भाषा स्पष्ट व सरल है, जिससे बच्चे सरलता से पाठ्य सामग्री को ग्रहण कर लेंगे, ऐसा विश्वास है।

पुस्तक का मुद्रण भी ठीक है। पुस्तक बच्चों के लिए प्रेरणादायक है।

पुस्तक : **देखो, समझो, करो ! (सचित्र)**

लेखक : **जगतराम आर्य**

प्रकाशक : आर्य प्रकाशन मंडल

सरस्वती भंडार, गांधी नगर, दिल्ली - 110031

प्रथम संस्करण : 1998, मूल्य : 25.00 रु०, पृष्ठ : 90

बालक अपने चारों ओर रहस्यमय वातावरण देखकर आश्चर्य और विस्मय से भर उठता है। उसके मन में अनेक प्रश्न उठते हैं, परन्तु उनका उचित समाधान नहीं मिल पाता है। इस प्रकार उनके बारे में उसका ज्ञान बहुत अल्प रहता है। कभी-कभी तो वस्तु उसके पास ही रहती है और वह उसके उपयोग से परिचित ही नहीं होता है। काश ! उनके बारे में वह ठीक से जानता और उनका लाभ उठा पाता तो कितना अच्छा होता।

समीक्ष्य पुस्तक में बालकों के दैनिक जीवन में उठने वाले कुछ ऐसे ही प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया गया है। जैसा कि पुस्तक का नाम है ठीक उसी प्रकार पाठ्य सामग्री को देखो, समझो और करो के आधार पर प्रस्तुत भी किया गया है। यही विज्ञान का मूल सिद्धान्त भी है। फिर

भी किसी घटना के पीछे छिपे रहस्य को स्वयं करके जानने व समझने का विशेष आनन्द होता है। लेखक ने इसी आनन्द के द्वारा बच्चों में वैज्ञानिक रुचि विकसित करने का प्रयास किया है। कहीं-कहीं रोचक बनाने के प्रयास में वास्तविक तथ्य गड़बड़ा गया है, जैसे- ''यह सारी दुनिया जो तुम्हें ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दायें-बायें दिखाई दे रही है, वह ब्रह्मा जी का अण्डा ही तो है, क्या तुमने पढ़ा नहीं कि दुनिया को ब्रह्माण्ड कहते हैं .... यह दुनिया एक बहुत बड़ा अण्डा है। उसी में चाँद, सूरज, पृथ्वी आदि अनेक छोटे-छोटे अण्डे भरे पड़े हैं ...... इस दुनिया को ब्रह्माण्ड या ब्रह्मा का अण्डा क्यों कहते हैं ?'' दवा जैसे प्रचलित शब्द के लिए दवाई शब्द का प्रयोग भी उपयुक्त नहीं जान पड़ता है।

यत्र-तत्र प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियाँ हैं लेकिन पुस्तक में दी गई जानकारी बच्चों के लिए काफी उपयोगी है। भाषा स्पष्ट तथा सुग्राह्य है और बच्चों को पुस्तक पढ़ने में रुचिपूर्ण लगेगी। शब्दों का चयन इस प्रकार किया गया है जो सरल होने के साथ ही रोचक भी हैं।

–डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

संयुक्त मंत्री, विज्ञान परिषद्, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002 (उ० प्र०)

पुस्तक का नाम : **पर्यावरण अवबोध**

लेखक : **डॉ० डी० डी० ओझा**

प्रकाशक : साइंटिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर

वर्ष : 1998,पृष्ठ-276, मूल्य : 200=00 रुपये

हर प्रबुद्ध नागरिक का उत्तरदायित्व है कि वह पर्यावरण को शुद्ध रखने में सहयोग दे। इसके लिए पर्यावरण शिक्षा आवश्यक है। साथ ही, पर्यावरण के मुख्य घटकों एवं विभिन्न कारकों की सही-सही जानकारी आवश्यक है। डॉ० ओझा ने प्रस्तुत पुस्तक में पर्यावरण अवबोध की प्रासंगिकता, प्रदूषण की त्रासदी, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, वनोन्मूलन, वन्य जीव विलुप्तता, ओज़ोन परत, हरित पौध गृह प्रभाव, प्रदूषण नियंत्रण एवं कानून, पारिस्थितिकी तंत्र तथा पर्यावरण प्रबन्धन के अन्तर्गत अधुनातन सूचना प्रस्तुत की है। साथ ही, आवश्यक चित्र भी दिये हैं। विभिन्न सारणियों में दिये गये आँकड़े अत्यन्त सूचनावर्धक हैं। सम्भवतः यह पहली पुस्तक है जिसमें पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर वैज्ञानिक ढंग से विवेचना की गई है।

पुस्तक में प्रेस की असावधानी से अनेक त्रुटियाँ पुनरावर्तित हुई हैं। यथा-स्त्रोत के स्थान पर स्रोत, रूप के स्थान पर रुप, है के स्थान पर हैं। कहीं-कहीं वाक्य गठन ठीक न होने से अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाया। लेखक ने मान्य पारिभाषिक शब्दावली का उपयोग करते हुए भी दो चार अतिक्रमण किये हैं जिनमें प्रमुख है नाइट्रोजन के लिए यत्र तत्र नत्रजन का प्रयोग। आशा है अगले संस्करण में संशोधन कर लिया जायेगा।

यदि पुस्तक के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची भी दी जाती तो यह अति प्रामाणिक बन जाती।

यह पुस्तक प्रतियोगिता में बैठने वाले छात्रों, अध्यापकों, कृषि विस्तार-कार्यकर्ताओं तथा पुस्तकालयों के लिए अपरिहार्य है।

–डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

पत्रिका : **गणित सुधा** (त्रैमासिक) 1998 (संयुक्तांक)

सम्पादक : **गोविन्द प्रसाद शर्मा**

प्रकाशक : **ऊषा शर्मा,** 432/19, काला काँकर कॉलोनी

पुराना हैदराबाद, लखनऊ - 226007

पृष्ठ : 48, मूल्य : एक वर्ष 60 रु० व्यक्तिगत, 80 रु० संस्थागत, आजीवन 600/-

समीक्ष्य पत्रिका ''गणित सुधा'' का सद्यः प्रकाशित अंक देखकर अच्छा लगा। आज भारत में ही नहीं, अपितु दुनिया के अन्य देशों में गणित के प्रति रुझान कम होती देखी जाती है। विज्ञान की जननी ''गणित'' के प्रति विद्यार्थियों की उपेक्षा आश्चर्यचकित कर देने वाली है। ऐसे समय में

हिन्दी भाषा के माध्यम से गणित को सरल-सहज बनाकर आम लोगों के बीच लोकप्रिय बनाने का प्रयास सराहनीय ही नहीं, स्तुत्य है।

48 पृष्ठों की पत्रिका में प्रकाशकीय, सम्पादकीय, पुस्तक समीक्षा तथा पुस्तक चर्चा को छोड़कर कुल 28 छोटे-बड़े आलेख और कवितायें सम्मिलित हैं। "गागर में सागर" की युक्ति चरितार्थ होती है। पाठकों को पत्रिका में ज्ञानवर्धन के साथ उनका मनोरंजन भी हो सके इसके लिए भी लेख और कवितायें दी गई हैं।. उदाहरण के लिए "अद्‌भुत भाग्यशाली अंक - 13 [पृष्ठ 44], "मूँछ घड़ी [पृष्ठ 43], "गणित का जादू" [पृष्ठ43] "चमत्कारी संख्या 1089" [पृष्ठ 44], "जेनो को जानो" [पृष्ठ 37] आदि। लेखों का चयन बढ़िया है। "कालबोध- एक सद् प्रयास" (ले० गोविन्द प्रसाद शर्मा) के अंतर्गत् प्रकाशित कविता (लेखक कन्हैया लाल सहगल) अच्छी लगी।

पश्चिमी जगत् में जहाँ 13 के अंक जो अशुभ माना गया है वहीं "अद्‌भुत् भाग्यशाली अंक-13" में अंक 13 को भाग्यशाली तथा शुभ बताया गया है।

सम्पादकीय में गणित की दो मूलभूत संख्याओं - संकलन (+) एवं व्यवकलन (–) का आध्यात्मिक विवेचन मनोहारी ढंग से किया गया है।

मेरी दृष्टि से पत्रिका आई आई टी, एम एन पी, बैंक, पी सी एस, आई ए एस की परीक्षाओं में बैठने वाले छात्रों के लिए उपयोगी है।

मुख पृष्ठ गणित की पत्रिका के अनुरूप आकर्षक है। मुद्रण साफ सुथरा एवं कागज बढ़िया हैं। किन्तु मुद्रण की यत्र-तत्र त्रुटियाँ खटकती हैं।

–डॉ० व्यास जी द्विवेदी

अध्यक्ष, गणित विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद-211002

पृष्ट 32 का शेष भाग

दूरसंचार एवं सूचना संप्रेषण का एक सर्वसुलभ, तीव्र सहज तथा सस्ता माध्यम बनकर उभरेगी। उन्होंने कहा कि आज सूचना क्रांति के क्षेत्र में इतनी तेज़ी से प्रगति हो रही है कि विश्व के किसी भी भाग में स्थित रहकर शेष विश्व से संपर्क किया जा सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी आज "वसुधैव कुटुम्बकम" की परिकल्पना को साकार कर रही है।

मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति श्री मार्कण्डेय काटजू ने कहा कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व बढता जा रहा है। किसी भी व्यवसाय से जुड़ा व्यक्ति आज इसके प्रभाव से अछूता नहीं है।

कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रो० अशोक कुमार गुप्ता ने कहा कि आज नवीनतम तकनीकों के माध्यम से मानव ने बहुत सी उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं किंतु हमें इनके द्वारा समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के प्रति भी सजग रहना चाहिए।

आरंभ में संस्थान के विशेष कार्य प्रभारी डॉ० मुरली धर तिवारी ने अतिथियों का स्वागत किया। राष्ट्रभाषा हिन्दी में दिये गये उद्‌बोधन में उन्होंने भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान की गतिविधियों का उल्लेख करते हुए व्याख्यानदाता का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम का संचालन कुमारी शिल्पी ने किया।

–देवव्रत द्विवेदी

विज्ञान परिषद् प्रयाग

1. इलाहाबाद में अतिविशिष्ट साइंस सिटी

साइंस सिटी योजना इलाहाबाद में लाने हेतु भारत सरकार के मानव संसाधन विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा महासागर विकास मंत्री डॉ० मुरली मनोहर जोशी जी विगत कई वर्षों से लगातार प्रयास कर रहे हैं। डॉ० ज़ोशी के भारत सरकार में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री बनने पर सन् 1999 में इलाहाबाद शहर के लिए यह योजना मंजूर हुई। इस शहर को कलकत्ता, बंगलौर एवं हैदराबाद शहरों की तरह विकसित शहर बनाने की दिशा में साइंस सिटी की स्थापना एक महत्वपूर्ण क़दम है।

अमेरिका के विज्ञान पार्कों की तर्ज़ पर राष्ट्रीय विज्ञान संग्रहालय परिषद भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित साइंस सिटी योजना को इलाहाबाद के नैनी स्थित नगर निगम के स्लज फार्म की 30 एकड़ ज़मीन के विशाल भूभाग पर 35 करोड़ रुपये की लागत से स्थापित किया जायेगा। भारत सरकार की इस योजना में उत्तर प्रदेश सरकार को भूखण्ड निःशुल्क उपलब्ध कराना है। योजना के बारे में उपलब्ध जानकारी के अनुसार इसका पूरा नाम "नेशनल काउंसिल ऑव साइंटिफिक मैनेजमेंट' है जो 30 एकड़ ज़मीन में 35 करोड़ रुपये की लागत से भारत सरकार बनायेगी। 30 एकड़ ज़मीन में से 5 एकड़ भूमि में यहाँ चार बड़े हॉल बनाये जायेंगे। इनमें विज्ञान के मॉडल, मनोरंजन के लिए विज्ञान प्रयोगशालायें और शेष जगह में साइंस पार्कों का निर्माण किया जायेगा।

इस परिसर में नियमित रूप से विज्ञान मेले, प्रदर्शनी एवं विभिन्न वैज्ञानिक गतिविधियाँ साल भर आयोजित की जायेंगी। इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय होगी विज्ञान प्रदर्शनी। इन प्रदर्शनियों में विज्ञान के आविष्कारों, सिद्धान्तों, समीकरणों, प्रक्रियाओं और वैज्ञानिक परिकल्पनाओं के सजीव मॉडलों तथा मनोरंजक नमूनों के माध्यम से इस तरह से समझाया जायेगा कि जब बच्चे कुछ समय इस केन्द्र में बिताकर निकलें तब उनको भौतिकी, रसायन तथा जीव विज्ञान के साथ गणित का भय नहीं रह जायेगा। प्रदर्शनी में मक्खी, मच्छर, मकड़ी, काकरोच तथा अन्य कीड़ों मकोड़ों के लाखों गुना बड़े कम्प्यूटरचालित मशीनी मॉडल दिखाये जायेंगे।

साइंस सिटी के आरम्भ में विज्ञान पार्क होगा जिसमें गति, भारहीनता, ऊर्जा, प्रकाश, ध्वनि, गुरुत्व और जड़त्व के सिद्धान्त सिखाये जायेंगे। इसके बाद मनोरंजन विज्ञान गैलरी में युवा विज्ञान प्रदर्शनी, संचार प्रौद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, जैव प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष विज्ञान, प्रदूषण एवं अन्य पहलुओं की जानकारी होगी। इसी तरह लोकप्रिय विज्ञान गैलरी से संबंधित गैलरी में नक्षत्रों, आकाश गंगाओं तथा सौर मंडल के रहस्यों की जानकारी होगी। तारामंडल नामक गुंबद में एकसाथ कई लोग सितारों और ग्रहों की स्थिति देख सकते हैं।

प्रदर्शनी के अंतिम हिस्से में जल को स्वच्छ बनाने के प्राकृतिक तरीकों, प्रदूषण और अन्य पहलुओं की जानकारी दी जायेगी। साइंस मॉडल बनाने का भी निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाएगा। जरूरत पड़ने पर स्कूलों के कार्यक्रमों के अनुसार गर्मियों एवं सर्दियों की छुट्टियों में इस परिसर में विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, शौकिया गतिविधियों और कक्षाओं का आयोजन भी किया जायेगा। साइंस सिटी में विज्ञान के विषयों पर फिल्में भी दिखाई जायेंगी। साइंस सिटी नयी शताब्दी में तैयार होकर लोगों को वैज्ञानिक तथ्यों से परिचित करायेगी। यह बहुउद्देशीय योजना क्षेत्रीय विकास, जनरुचि के साथ-साथ मानसिक विकास की दिशा में एक ठोस कदम है।

भारत सरकार ने इलाहाबाद में साइंस सिटी बनाने का सराहनीय निश्चय किया है जो कि इस शहर के निवासियों की बौद्धिक क्षमता को और अधिक विकसित करने की दिशा में एक ठोस कदम होगा।

–डॉ० के० एन० उत्तम

भौतिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

2. वर्ष 1999 का भौतिकी विषय में नोबेल पुरस्कार : भौतिकी कण भौतिकी सिद्धांत के लिए सबल गणितीय आधार

भौतिकी विज्ञान में इस वर्ष का नोबेल पुरस्कार हालैंड के दो वैज्ञानिकों, यूट्रेक्ट विश्वविद्यालय के गेरारडस टी हुफ्ट और मिशिगन विश्वविद्यालय के भौतिकी के अवकाशप्राप्त प्रोफेसर मार्टिनस वेलमान को अपरिमेय को विजित करने के लिए प्रदान किया गया है। यह पुरस्कार उन्हें एक ऐसी समस्या को हल करने के लिए प्रदान किया गया जिसने कई दशकों से वैज्ञानिकों को परेशान कर रखा था।

हम अपने पास जो कुछ भी देखते हैं वह अतिसूक्ष्म कणों से बना होता है जिन्हें हम परमाणु कहते हैं। ये परमाणु इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्यूट्रान के बने होते हैं। प्रोटान और न्यूट्रान मिल कर परमाणु के नाभिक की रचना करते हैं और ये स्वयं क्वार्क द्वारा निर्मित होते हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों से, जब से परमाणु के विखंडन के लिए अत्यंत शक्तिशाली एक्सीलरेटरों का प्रयोग किया जाने लगा है, इस विचार में परिवर्तन आया है। इससे न केवल कुछ नए उपपरमाण्विक कणों क पता लगा हैं बल्कि उन्हें आपस में बाँधने वाले नए बलों का भी ज्ञान हुआ है। इसके आधार पर कण भौतिकी (पार्टिकिल फिजिक्स) के 'स्टैन्डर्ड मॉडेल' का नियमन हुआ। यह मॉडल सभी मूलतत्वों को क्वार्क और लेप्टान के तीन कुलों में विभाजित करता है जो प्रबल और वैद्युत-निर्बल बलों के लिए अनेक 'विनिमय कणों' की सहायता से परस्पर क्रिया करते हैं। परमाणुओं में प्रबल बल परमाणु नाभिक को परस्पर बांधे रखते हैं जबकि निर्बल अन्योन्य क्रिया कुछ नाभिकों को विकिरण उत्सर्जित करते हुए रेडियोधर्मी या अवनत होने देती है।

जब स्टैंडर्ड मॉडल को पहली बार नियमित किया गया तब इसका सैद्धांतिक आधार, गणितीय रूप से अधूरा था इसलिए इसका प्रयोग भौतिक राशियों के कलन के लिए नहीं किया जा सका। इन दोनों भौतिकशास्त्रियों ने स्टैंडर्ड मॉडल की इस कमी को दूर कर एक सबल गणितीय आधार प्रदान किया है। इसकी सहायता से अब नए कणों के भौतिक गुणों की व्याख्या करना संभव हो सकेगा।

कणों की परस्पर क्रिया को बताने के लिए कण भौतिकी के स्टैंडर्ड मॉडल में इस समय प्रयोग किए जाने वाले आधुनिक सिद्धांतों को वैज्ञानिक 'गॉज सिद्धांत' कहते हैं। गॉज सिद्धांत, वास्तव में क्वांटम फील्ड सिद्धांत का ही एक वर्ग है– क्वांटम यांत्रिकी और आइंस्टाइन के विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धांत का ही सम्मिलित गणितीय सिद्धांत है जिसका प्रयोग सामान्यतया उपपरमाण्विक कणों और उनसे संबंधित तरंग क्षेत्रों की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। गॉज सिद्धांत में क्षेत्र परिवर्तों में होने वाले अनेक रूपांतरण क्वांटम क्षेत्र की मौलिक भौतिकी को अपरिवर्तित ही छोड़ देते हैं।

पांचवें दशक के मध्य में, कुछ अनुसंधानकर्ताओं को नए अभिलक्षणों के साथ क्वांटम फील्ड सिद्धांत का पहला प्रमाण मिला। यह था 'नॉन-एबेलियन गॉज सिद्धांत'। एबेलियन गॉज सिद्धांत के विपरीत, जिसमें गॉज रूपांतरण किसी भी क्रम में हो सकते हैं, नॉन-एबेलियन परिवर्तों का परिणाम उस क्रम पर निर्भर करता है जिस क्रम में रूपांतरण होते हैं। इससे जहाँ नवीन संभावनाएं जन्म लेती हैं वहीं सिद्धांत का गणितीय स्वरूप भी जटिल हो जाता है। इन नवीन संभावनाओं का उपयोग, अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने नॉन-एबेलियन गॉज सिद्धांत के विकास के लिए किया, जो वैद्युत-चुम्बकत्व और वैद्युत्-निर्बल अन्योन्य क्रिया में निर्बल क्रिया को जोड़ता है।

नया सिद्धांत W और Z नामक नए कणों के विषय में बताता है लेकिन जब उनके गुणों को ज्ञात करने के प्रयास किए गए तो सिद्धांत में गणितीय कमी के कारण तर्कहीन परिणाम प्राप्त हुए। वर्ष 1971 में वेलमान और उनके शिष्य टी हुफ्ट ने नॉन-एबेलियन गॉज सिद्धांतों के पुनर्मानकीकरण की एक विधि खोजी। उनकी इस खोज के आधार पर नॉन-एबेलियन गॉज सिद्धांत का प्रयोग कर नए कणों के भौतिक गुण ज्ञात कर पाना संभव हुआ। यह इनका ही काम था जिसके कारण वैद्युत-निर्बल सिद्धांत द्वारा ज्ञापित W और Z कणों के द्रव्यमान तथा अन्य भौतिक राशियां बताई जा सकीं। सन् 1995 में अमेरिका की फर्मीलैब में खोजे गए, स्टैंडर्ड मॉडल के तीसरे कुल में शामिल दोनों क्वार्कों में भारी 'टॉप' क्वार्क का सही-सही द्रव्यमान बता पाना वेलमान और हुफ्ट की गणनाओं की एक और सफलता थी। इस सिद्धांत का प्रयोग करके अभी तक अनाविष्कृत हिग्स कणों या हिग्स बोसान का द्रव्यमान ज्ञात कर पाना संभव हुआ है जिनकी

उपस्थिति यह बताएगी कि कणों में द्रव्यमान क्यों होता है हालांकि स्टैंडर्ड मॉडल यह बताने में असमर्थ था। यद्यपि हिग्स कण इतने भारी हैं कि इन्हें अभी उपलब्ध एक्सीलरेटरों में उत्पन्न कर पाना संभव नहीं है लेकिन इनका द्रव्यमान ज्ञात हो जाने के बाद, भविष्य में अधिक शक्तिशाली एक्सीलरेटर बनाए जा सकेंगे। इस प्रकार वेलमान्न और हुफ्ट के इस काम ने कण भौतिकी को एक नई दिशा दी है।

वर्ष 1931 में नीदरलैंड में जन्में मार्टिनस जे० जी० वेलमान को गॉज सिद्धांतों के पुनर्मानकीकरण पर किए गए उनके उल्लेखनीय योगदान के लिए सन् 1993 में यूरोपियन फ़िज़िकल सोसायटी ने हाई एनर्जी एंड पार्टीकल फ़िज़िक्स पुरस्कार से सम्मानित किया। वे सन् 1981 से डच एकेडमी ऑफ़ साइंस के भी सदस्य हैं। तिरपन वर्षीय प्रोफेसर गेरार-डस टी० हुफ्ट को भी इसी क्षेत्र में किए गए काम के लिए सन् 1979 में अमेरिकन फ़िज़िकल सोसायटी में डेनी हेनीमान पुरस्कार और सन् 1982 में वुल्फ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

–विनीता सिंघल

सी 4 जी/103 ए, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

3. खाद्य सुरक्षा के लिए रसायन की भूमिका

कृषि, जो कि सबसे महत्वपूर्ण सौर-शक्ति-उत्पादन का उद्यम है, भूमि, जल, पेड़-पौधों तथा पर्यावरण के संपोषित प्रबंध पर निर्भर करती है। प्रकाश-संश्लेषण को छोड़ मिट्टी तथा वनस्पति की प्रक्रियाओं से आयन-विनिमय को दूसरा महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है। इस सहस्राब्दी के अंत तक रक्षण शील जनसंख्या 1.0 अरब से 2025 वर्ष तक 1.4 अरब तक पहुँच जाएगी तो भारत को क्रमशः 240 और 300 करोड़ टन का खाद्यान्न उत्पन्न करना पड़ेगा, जबकि वर्तमान उपज-स्तर सिर्फ 190 करोड़ टन ही है। ऐसे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि की फ़सलें वर्ष 2000 में 27.0 करोड़ टन तथा वर्ष 20, 25 में 35 करोड़ टन प्रमुख पोषक निकाल लेगी। इसके अलावा बगीचे की पैदावार, फल, सब्जी, तिलहन, आलू, ईख तथा कपास आदि के लिए वर्ष 2025 तक 14 करोड़ टन पोषक आवश्यक होगा। खाद्य-क्षेत्र में अतीत की उपलब्धियों को दृष्टि में रखकर तथा उर्वरक-प्रयोग द्वारा कृषि-उत्पादन की 45-50% तक वृद्धि को देखते हुए रसायन की भूमिका के महत्व को स्वीकार करना ही होगा। यह तो और भी अधिक आवश्यक होगा जब हम अनुबंध उत्पादन की अपेक्षा अनुप्रस्थ प्रसारण पर निर्भर कर रहे हैं। संपोषित कृषि जो वनस्पति-पोषण व्यवस्था पर निर्भर करती है, उसके लिए रासायनिक उर्वरक, जैव खाद, फ़सल-अवशेष, प्राणी अपशिष्ट, जीव उर्वरक का इस्तेमाल करना होगा। ऐसा संवेष्टन तकनीकी दृष्टि से सुचारु, आर्थिक दृष्टि से उपयोगी, समाज-स्वीकृत पर्यावरण मित्र और व्यावहारिक होना चाहिए।

उर्वरक तकनीकी, वनस्पति सुरक्षा रसायन, पोषक का सदुपयोग, फ़सल कटने के बाद वाली तकनीक तथा पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण के लिए आगे बढ़ने के लिए रसायन विज्ञान की आवश्यकता है एवं इस प्रकार रसायन शिक्षण को खाद्य-सुरक्षा के लिए विशिष्ट भूमिका निभानी है। लेकिन रसायन शिक्षण तथा शोध के लिए सरकारी सहायता पर अधिक निर्भर करना हानिकारक होगा। रासायनिक तथा कांच की वस्तुओं की मंहगाई और विश्लेषक-यंत्रों के प्रयोग खर्च की बढ़ोत्तरी से सभी संस्थाओं को प्रायोगिक शिक्षण की तुलना में सैद्धांतिक शिक्षा पर अधिक बल देने के लिए बाध्य कर देती है। इस तरह के इकतरफा विकास को रोकने के लिए आत्मनिर्भरशील होना आवश्यक है और यह कार्य प्रबंध संस्थाओं द्वारा प्रदर्शित हो चुका है।

–डॉ० एन० पण्डा

पूर्व कुलपति,
सम्भलपुर विश्वविद्यालय, उड़ीसा

परिषद् का पृष्ठ

सभापति का आगमन

विज्ञान परिषद् प्रयाग की सभापति डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा (सचिव जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार) 22 जनवरी 2000 को अपनी इलाहाबाद यात्रा के कार्यक्रम से अपना बहुमूल्य समय निकाल कर परिषद् भवन में पधारीं। इस अवसर पर उन्होंने परिषद् की अंतरंग सभा की बैठक की अध्यक्षता करते हुए परिषद् द्वारा किये जा रहे कार्यों की समीक्षा की तथा आगामी योजनाओं के बारे में विचार-विमर्श किया। परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने सभापति को परिषद् की गतिविधियों से अवगत कराया। इस अवसर पर डॉ० चन्द्रिका प्रसाद, श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, श्री हरिमोहन मालवीय, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय, श्री देवव्रत द्विवेदी, श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय, श्री चन्द्रभानसिंह आदि उपस्थित थे।

जैव-प्रौद्योगिकी व्याख्यानमाला

जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा प्रायोजित लोकप्रिय व्याख्यानमाला की श्रृंखला में विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रथम व्याख्यान का आयोजन इलाहाबाद कृषि संस्थान, नैनी में 29 जनवरी 2000 को पूर्वाह्न किया गया। इस अवसर पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के जैव-प्रौद्योगिकी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ० बी. डी. सिंह ने "जीन ट्रांसफर्मेशन फॉर इम्प्रूवमेंट ऑफ क्राप्स" (Gene Transformation for Improvement of Crops) विषय पर व्याख्यान देते हुए फसलों के जीन रूपांतरण की तकनीकों पर प्रकाश डाला तथा स्लाइडों की सहायता से इस दिशा में किये जा रहे विभिन्न प्रकार के प्रयोगों एवं शोध कार्यों से छात्रों को अवगत कराया। डॉ० सिंह ने बौद्धिक संपदा पेटेंट कानून की चर्चा करते हुए आने वाले दिनों में सामने आने वाली समस्याओं से अवगत कराया तथा उनके प्रति सजग रहने एवं उनके निदान हेतु अभी से प्रयास करने का आह्वान किया। डॉ० सिंह ने छात्रों द्वारा पूछे गये प्रश्नों एवं शंकाओं का समाधान भी किया। इस अवसर पर इलाहाबाद कृषि संस्थान के निदेशक डॉ० आर. बी. लाल, डॉ० ए. क्यू. खान, डीन डॉ० एस. एम. सिंह, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता एवं विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधान मंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने भी अपने विचार व्यक्त किये। श्रोताओं में 250 से अधिक छात्र थे जो स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षाओं के थे।

इस श्रृंखला का द्वितीय व्याख्यान 29 जनवरी 2000 को ही अपराह्न में जवाहर इंटर कॉलेज जारी, इलाहाबाद में आयोजित किया गया जिसमें मत्स्य पालन विकास अभिकरण वाराणसी के वैज्ञानिक डॉ० अरविन्द मिश्र ने "नीली क्रांति की जननी जलीय खेती यानि एक्वाकल्चर" विषय पर भाषण देते हुए मत्स्य पालन के विभिन्न आयामों की चर्चा की। जैव-प्रौद्योगिकी की सहायता से मत्स्य पालन के क्षेत्र में प्राप्त नवीन उपलब्धियों के बारे में विस्तार से बताते हुए डॉ० मिश्र ने मछली पालन के साथ-साथ अन्य पशुओं के पालन की विधियों की जानकारी भी दी। व्यावसायिक पशुपालन की तकनीकों तथा उनकी सहायता से अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने के उपायों पर भी उन्होंने प्रकाश डाला। इस अवसर पर डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० बी. डी. सिंह एवं विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री पाण्डेय ने भी अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम का संचालन विद्यालय के प्राध्यापक एवं विज्ञान लेखक एवं पत्रकार श्री विजय चितौरी ने किया। ग्रामीण क्षेत्र में कॉलेज स्तर के छात्रों में जैव-प्रौद्योगिकी के विषय में जानकारी देने वाला यह पहला व्याख्यान था जिसे 200 से अधिक छात्र-छात्राओं ने मन्त्रमुग्ध होकर सुना और बाद में प्रश्न भी पूछे।

प्रो० चन्द्रा का व्याख्यान

भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद के तत्वावधान में प्रो० सतीश चन्द्रा, मैनेजर, माइटरटेक, वाशिंगटन का "नेटवर्किंग-ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव" विषय पर व्याख्यान जे. के. इंस्टीट्यूट के इलाहाबाद के सभागार में 15. 2. 2000 को सम्पन्न हुआ। प्रो० चन्द्रा ने इंटरनेट टेलीफोनी की परिकल्पना प्रस्तुत करते हुए इस दिशा में किये जा रहे शोध एवं तकनीकी विकास के कार्यों के बारे में बताया और आशा व्यक्त की कि आने वाले वर्षों में इंटरनेट टेलीफोनी

(शेष पृष्ठ 28 पर)

फार्म 4/FORM IV

नियम 8 देखिये (See Rule 8)

1. प्रकाशन स्थान	:	विज्ञान परिषद् प्रयाग
2. प्रकाशन अवधि	:	मासिक, प्रत्येक मास का 15 दिनांक
3. मुद्रक का नाम	:	श्री अरुण राय
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हाँ
पता	:	दी कम्प्यूटर कम्पोजर 7, बेली एवेन्यू, इलाहाबाद
4. प्रकाशक का नाम	:	डॉ० शिवगोपाल मिश्र
पता	:	अवकाशप्राप्त, प्रोफेसर, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद-2
5. सम्पादक का नाम	:	सम्पादक मंडल
क्या भारत का नागरिक है ?	:	हाँ
पता	:	विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद-2
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद-2

मैं शिवगोपाल मिश्र एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक 1-3-2000

शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग, इलाहाबाद-211002

ISSN : 0373-1200

यह प्रति 5 रु०

अप्रैल 1915 से प्रकाशित

हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 86 अंक 1

अप्रैल 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक

अरुण राय

दी कम्प्यूटर कम्पोजर,7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

फोन : 460001

विषय-सूची

एक बहुमुखी जैव-तकनीकी उपकरण : वी ए माइकोराइज़ा

डॉ० सुधीर चन्द्र*

उच्चतर पौधों और कवक तंतुओं के बीच स्थापित सहजीवी संबंध को माइकोराइज़ा कहते हैं। माइकोराइज़ा शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है कवक व जड़। सन् 1842 में विटाडिनी नामक वैज्ञानिक ने बताया कि कुछ कवक तंतु जड़ों को चारों ओर से घेरे रहते हैं तथा पोषक पदार्थों व जल को अवशोषित करने में उनकी सहायता करते हैं। फ्रैंक (1885) ने सर्वप्रथम इस प्रकार के सहजीवी संबंध को माइकोराइज़ा नाम दिया।

मुख्य रूप से दो प्रकार के माइकोराइज़ा पाये जाते हैं-

1. एक्टोमाइकोराइज़ा- इसमें कवक सहयोगी जड़ों के चारों ओर एक आवरण बना लेता है तथा इसका बहुत थोड़ा सा भाग जड़ों के भीतर पाया जाता है। वह भी उनके केवल बाहरी हिस्सों में, और

2. एन्डोमाइकोराइज़ा - यह एक दूसरे प्रकार का माइकोराइज़ा है। इसमें कवक सहयोगी आवरण नहीं बनाता तथा इसका अधिकांश भाग जड़ों के भीतर काफी अन्दर तक फैला रहता है। दोनों ही प्रकार के माइकोराइज़ा में कवक सहयोगी मृदा से जल व पोषक पदार्थों को अवशोषित करके पेड़ों की जड़ों तक पहुँचाता है तथा बदले में जड़ों से प्रकाश-संश्लेषी उत्पाद कार्बोहाइड्रेट लेता है।

वेसीकुलर आरबसकूलर माइकोराइज़ा एक प्रकार का एन्डोमाइकोराइज़ा है। संक्षेप में इसे वी ए माइकोराइज़ा कहते हैं। डैन्जियार्ड (1900) नामक वैज्ञानिक ने ही सर्वप्रथम किसी माइकोराइज़ा को यह नाम दिया। इस माइकोराइज़ा को यह नाम इसलिये दिया गया क्योंकि इसमें दो विशेष प्रकार की संरचनायें पायी जाती हैं : आरबसकूल एवं वेसीकिल। माइकोराइज़ा का कवक सहयोगी जड़ों में वल्कुट भाग तक फैला रहता है। इसके अंतराकोशिकीय कवक तंतुओं की कुछ शाखायें वल्कुट कोशिकाओं के भीतर छोटी-छोटी द्विभाजी शाखाओं का एक गुच्छा-सा बनाती हैं। इसे ही आरबसकूल कहते हैं तथा इन्हीं संरचनाओं द्वारा दो सहयोगियों के बीच पोषकों का आदान-प्रदान होता है। इसके अतिरिक्त, ये कवक तंतु एक अन्य प्रकार की संरचनायें निर्मित करते हैं जिसे वेसीकिल कहते हैं। ये गोली या अंडाकार होती हैं तथा ये पोषकों के संचय गृहों के रूप में कार्य करती हैं। सहयोगी कवक की जड़ों से बाहर फैले कवक तंतु बड़े-बड़े, मोटी भित्ति वाले सुप्त बीजाणु बनाते हैं। साथ ही ये वेसीकिल या संचय गृहों का निर्माण भी करते हैं।

वी ए माइकोराइज़ा : वितरण

वी ए माइकोराइज़ा कवकों का वितरण विश्व-व्यापी है। ये मृदा में क्लेमाइडो बीजाणु, जाइमो बीजाणु तथा एंज़ाइमों बीजाणु जैसे सुप्त बीजाणुओं के रूप में पाये जाते हैं। इन कवकों द्वारा निर्मित सहजीवी संबंध न केवल उच्चतर पौधों (ऐन्जियोस्पर्म व जिमनोस्पर्म) में वरन्, ब्रायोफाइटा व टेरिडोफाइटा के सदस्यों में भी प्रतिवेदित किया गया है। अब तक यह सहजीवी संबंध लगभग सभी प्रकार की फसलों, औषधीय पौधों, वनवृक्षों आदि में देखा जा चुका है।

---

* 10 मार्च 2000 को जैव प्रौद्योगिकी व्याख्यान माला का चतुर्थ पुष्प।

वी ए माइकोराइज़ा सभी प्रकार के आवासों में भी प्रतिवेदित किया जा चुका है। वी ए माइकोराइज़ा निर्मित करने वाले कवकों के सुप्त बीजाणु मैदानी, पहाड़ी, रेगिस्तानी, जलीय आदि सभी तरह के आवासों में पाये गये हैं। ये बीजाणु उत्तरी ध्रुवीय, शीतोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय प्रदेशों से भी प्रतिवेदित किये गये हैं। आश्चर्य की बात यह है कि ये बहुत ही प्रतिकूल दशाओं वाली मृदाओं में भी पाये गये हैं- जैसे कि अम्लीय अथवा क्षारीय मृदाओं में, विषैले पदार्थों युक्त मृदाओं में।

भूमि एवं जलवायु संबंधी बहुत से कारक वी ए माइकोराइज़ा एवं बी व माइकोराइज़ा के कवकों के वितरण तथा परिमाण को नियंत्रित करते हैं। मृदा की अम्लीयता व क्षारीयता, इसका ताप, इसमें जल व पोषक पदार्थों की मात्रा वी ए माइकोराइज़ा पर अत्यधिक प्रभाल डालते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि से संबंधित विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ जैसे कि सस्या-वर्तन, सिंचाई, गुड़ाई आदि भी इसको प्रभावित करते हैं। कृषि में प्रयुक्त किये जाने वाले रसायनिक पदार्थ जैसे कि कवकनाशी, कीटनाशी, रासायनिक खादें आदि भी इस सहजीवी संबंध पर प्रभाव डालते हैं।

मृदा में उपस्थित फॉस्फोरस एवं नाइट्रोजन की मात्रा का वी ए माइकोराइज़ा के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त जल की कमी अथवा इसकी अधिकता भी इसे प्रभावित करती है। जहाँ एक ओर फॉस्फोरस की कमी इसके विकास पर अनुकूल प्रभाव डालती है वहीं दूसरी ओर नाइट्रोजन की अधिकता भी इसे बुरी तरह से प्रभावित करती है।

वी ए माइकोराइज़ा : संरचना

वी ए माइकोराइज़ा के परपोषी में विकास को चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है : (i) बीजाणुओं का अंकुरण तथा कवकतंतु का निर्माण, (ii) कवक तंतुओं का मृदा से होते हुए परपोषी की जड़ों तक पहुँचना, (iii) वेधन तथा संक्रमण का प्रारम्भ और (iv) संक्रमण का विस्तार तथा सहजीवी संबंध की स्थापना व बीजाणुओं का निर्माण।

जड़ों के बाहर उपस्थित कवकतंतु दो प्रकार के होते हैं। मुख्य तंतु मोटी भित्ति वाले, चौड़े तथा पटविहीन होते हैं तथा इनसे निकली शाखायें पतली भित्ति वाली, कम चौड़ी तथा पटविहीन होती हैं। यही शाखायें जड़ों को बेधकर उनके भीतर प्रवेश करती हैं। इसके लिये ये जड़ों की सतह पर आसंगांग बनाती हैं। जड़ों के भीतर फैले कवकतंतु वल्कुट ऊतक में अंतराकोशिकी रूप से उपस्थित रहते हैं तथा ये भी पतली भित्ति वाले तथा पटविहीन होते हैं। ये दो प्रकार की संरचनाएं निर्मित करते हैं : आरबसकूल व वेसीकिल। अंतराकोशिकीय कवकतंतु की कुछ शाखाएं कोशिका के भीतर प्रवेश कर जाती हैं तथा द्विभाजी रूप से शाखित होकर एक गुच्छे जैसी संरचना का निर्माण करती हैं। इसे आरबसकूल कहते हैं तथा इसी के द्वारा परपोषी व कवक सहयोगी के बीच पोषकों का आदान-प्रदान होता है। देखा गया है कि आरबसकूल परपोषी की कोशिका द्वारा निर्मित एक आवरण तथा इसके प्लाज़्मा झिल्ली से घिरा रहता है। आरबसकूल निर्मित करने वाले कवकतंतुओं में असंख्या केन्द्रक, माइटोकॉन्ड्रिया, ग्लाइकोजन कण, वसा गोलिकाओं की उपस्थित प्रतिवेदित की गयी है। इनकी उपस्थिति से यह सिद्ध हो गया है कि आरबसकूल ही पोषक पदार्थों के आदान-प्रदान के लिए उत्तरदायी हैं। कॉक्स तथा टिन्कर द्वारा यह प्रतिवेदित किया गया है कि आरबसकूल निर्मित होने के बाद चार से पन्द्रह दिनों का क्रियाशील रहते हैं, फिर नष्ट हो जाते हैं।

वेसीकिल का निर्माण बाद में होता है। इनका कार्य क्या है, इस विषय में बहुत मतभेद है। एक ओर जहाँ कुछ वैज्ञानिक इसे संचय गृह मानते हैं, वहीं कुछ अन्य वैज्ञानिक इन्हें जनन के लिये उत्तरदायी मानते हैं। यह भी माना जाता है कि वे संरचनाएँ लुप्त अवस्था निरूपित करती हैं तथा समय आने पर फिर से सहजीवी संबंध स्थापित करती हैं।

वी ए माइकोराइज़ा निर्मित करने वाला कवक पूरे वल्कुट में फैला रहता है परन्तु रंग के भीतर कभी भी प्रवेश नहीं करता। पूरी तरह से परिपक्व जड़ों में भी इसका संक्रमण नहीं पाया जाता। जड़ों के भीतर

का संक्रमण प्रायः एकसमान होता है परन्तु कुछ पररोषियों में संक्रमण इकाइयाँ प्रतिवेदित की गयी है। बताया जाता है कि संक्रमण इकाइयों का उपस्थित होना इस बात का द्योतक है कि जड़ों का बेधन कम स्थलों पर हुआ है जिससे कि संक्रमण क्षेत्र एक दूसरे से मिल नहीं पाये हैं।

वी ए माइकोराइज़ा : कवक सहयोगियों का वर्गीकरण

सर्वप्रथम डैन्जियार्ड नामक वैज्ञानिक ने सन् 1900 में वी ए माइकोराइज़ा निर्मित करने वाले किसी कवक का वर्णन प्रस्तुत किया। उनके प्रतिवेदन के बाद सभी वी ए एम कवकों को जाइगोमासिटीज वर्ग के एन्डोगोनेलीज नामक गण रखा जाने लगा। ऐसे कवकों के 6 वंश माने गये तथा उन सबको कोएन्डोगोनेलीज गण की एन्डोगोनेसी कुल में सम्मिलित किया गया। ये वंश थे - **ग्लोमस, अकालोस्पोरा, गाइसेस्पोग, एन्ड्रोफॉसफोरा, स्क्ले-रोसिस्टिस तथा स्कुटेलीस्पोरा**। एन्डोगोन वंश को भी इसी कुल में रखा गया हालांकि यह मृतोपजीवी सदस्य वी ए माइकोराइज़ा नहीं बनाता परन्तु कभी-कभी एक्टोमाइकोराइज़ा बनाता है।

मॉरटन तथा बेनी ने वी एम कवकों का एक नयी वर्गीकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने एक नया गण-ग्लोमेलीज, प्रस्तावित किया तथा उन सभी कवकों को जो पौधों की जड़ों से अविकल्पी सहजीवी संबंध स्थापित करते हैं तथा आरबसकूल निर्मित करते हैं, इस गण में सम्मिलित किया। उन्होंने अपने वर्गीकरण में ग्लोमेलीज गण को दो उपगणों में विभाजित किया है। उपगण ग्लोमिनी में दो कुल सम्मिलित किये गये हैं। इसमें से ग्लोमेसी कुल में दो वंश ग्लोमस व स्क्लेरोसिस्टिस रखे गये हैं तथा अकालोस्पोरेसी कुल में भी दो वंश अकालोरेस्पोरा व एन्ड्राफॉस्फोरा रखे गये हैं। दूसरे उपगण गाइगेस्पोरिनी में केवल एक कुल-गाइकोस्पोरेसी रखा गया है तथा इस कुल में दो वंश गाइगेस्पोरा व स्कुरेलेस्पोरा सम्मिलित किये गये हैं।

मॉरटन तथा बेनी के वर्गीकरण में उपगण ग्लोमिनी में उन सभी सदस्यों को सम्मिलित किया गया है जो क्लेमाइडो बीजाणु, आरबसकूल तथा वेसीकिल बनाते हैं तथा उपगण गाइगेस्पोरिनी में उन सदस्यों को सम्मिलित किया गया है जो एज़ाइगो बीजाणु तथा केवल आरबसकूल बनाते हैं। इस वर्गीकरण में एन्डोगोनेलीज गण को भी बनाये रखा गया है परन्तु इसमें केवल एन्डोगोन को सम्मिलित किया गया। मार्टन तथा बेनी ने वी ए माइकोराइज़ा के स्थान पर एमाइकोराइज़ा तथा वी ए एम कवक के स्थान पर ए एम कवक के प्रयोग की संस्तुति की है। उनके अनुसार चूँकि इन कवकों के सभी वंश आरबसकूल तो बनाते हैं, परन्तु वेसीकल के कुछ सदस्य ही बनाते हैं अतः सभी के लिए वी ए एम कवक का प्रयोग अनुचित है। इन सब के लिए ए एम कवक का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त है। इसी प्रकार वी ए माइकोराइज़ा के स्थान पर ए माइकोराइज़ा का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त है।

एबॉट तथा रॉबसन के अनुसार वी ए एम कवकों की आकारिकी तथा संरचना का उपयोग उनको पहचानने के लिये किया जा सकता है। वी एम कवकों के बीजाणुओं के वृहत् अध्ययन से उनको पहचानने व वर्गीकृत करने में सहायता ली जाती है। बीजाणु के रंग पर प्रकाश का प्रभाव पड़ता है परन्तु यह पहचान एवं वर्गीकरण का एक महत्वपूर्ण आधार है। बीजाणु पीले, भूरे, काले या रंगहीन होते हैं। बीजाणुओं का आकार एक दूसरा महत्वपूर्ण आधार है। बीजाणु गोलाकार, अंडाकार, दीर्घवृत्तज अथवा मुदगराकार होते हैं। बीजाणु भित्ति वी एम कवकों के वर्गीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके विभिन्न लक्षण, जैसे कि परतों की संख्या, इसकी सतह आदि बहुत ही महत्वपूर्ण आधार माने गये हैं।

वी एनाइकोराइज़ा : परपोषी को उपलब्ध लाभ

मृदा में कुछ पोषकों की सांद्रता कम होती है। ऐसे पोषकों में से कुछ धीमे विसरण वाले होते हैं। जड़ों के चारों ओर ऐसे पोषकों का एक क्षीणता क्षेत्र बन जाता है। मृदा में फैले वी ए एम कवकों के कवक तंतु ऐसे पोषकों की क्षीणता क्षेत्र से बाहर से लाकर जड़ों तक पहुँचाते हैं। फलस्वरूप जड़ें ऐसे पोपकों को

निबांध गति से अवशोषित करती रहती हैं तथा पौधों को इनकी आपूर्ति निरन्तर होती रहती है। इस प्रकार वी एम माइकोराइज़ा के निर्मित करने वाले कवक सहायक जड़ों की भूमिका निभाते हैं। इसीलिये ऐसे पौधों में जिनमें जड़ें सुविकसित नहीं होतीं अथवा ऐसे क्षेत्रों में जहाँ की मृदा में ऐसे पोषकों की मात्रा आपेक्षित नहीं होती वी एमाइकोराइज़ा की बहुत अहम भूमिका होती है। वी ए एम कवक अपने परपोषी को बहुत से लाभ उपलब्ध कराते हैं जिसमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं --

(अ) पोषकों के उद्ग्रहण में सुधार : पोषकों को मृदा से अवशोषित करके उन्हें परपोषी को उपलब्ध कराना ही वी ए एम कवकों की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। इस सन्दर्भ में सबसे प्रमुख पोषक फास्फोरस है। वी ए एम कवक फास्फेटों के अव-शोषण, स्थानान्तरण व आपूर्ति को नियंत्रित रखने में अहम भूमिका निभाते हैं।

सामान्य दशाओं में, मृदा में पौधों के लिये उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा बहुत कम होती है अर्थात् मृदा में उपस्थित कुल फास्फोरस का केवल 1.5 प्रतिशत। चूँकि मृदा में इस फास्फोरस की विसरण-शीलता भी बहुत कम होती है इसलिये पौधों की जड़ों के चारों ओर इसकी क्षीणता का एक क्षेत्र बन जाता है और इसका अवशोषण अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे पौधे जिनकी जड़ें वी ए एम कवकों से एक सहजीवी संबंध स्थापित कर लेती हैं इस समस्या से बचे रहते हैं क्योंकि मृदा में फैले वी ए एम कवकों के कवकतंतु जड़ों से दूर के क्षेत्रों को अवशोषित करके जड़ों तक पहुँचाते रहते हैं तना क्षीणता क्षेत्र नहीं बनने देते ।

ऐसा प्रतिवेदित किया गया है कि वी ए एम कवकों के कवक तंतुओं द्वारा अवशोषित फॉस्फेट पॉलिफॉस्फेट में परिवर्तित कर दिया जाता है तथा रिक्तिकाओं में कणिकाओं के रूप में एकत्र हो जाता है तथा आरबसकूलों के द्वारा कोशिकाओं में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यह एक स्थापित तथ्य है कि परपोषी और कवकों के बीच पोषकों व कार्बोहाइड्रेटों का आदान प्रदान आरबसकूलों के ही द्वारा होता है।

नाइट्रोजन आपूर्ति में भी वी ए एम कवकों की भूमिका प्रतिवेदित की गयी है। ये कवक जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सुधार करके पौधों की नाइट्रोजन आपूर्ति बढ़ा देते हैं। चूँकि नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये जड़ों एवं ग्रन्थिकाओं को फॉस्फेट आपूर्ति का ठीक रहना आवश्यक है इसीलिये फॉस्फेट की आपूर्ति में सुधार होने पर नाइट्रोजन स्थिरीकरण में भी सुधार हो जाता है। यह सिद्ध हो चुका है कि वी ए एम कवक नाइट्रोजन को भी अवशोषित करके जड़ों तक पहुँचाते हैं। देखा गया है कि अमोनियम नाइट्रोजन की अधिकता वाली मृदाओं में ये कवक नाइट्रोजन के अवशोषण एवं आपूर्ति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अन्य पोषकों, जैसे कि जिंक, कैल्सियम, मैग्नी-शियम, आयरन, कापर तथा मैंगनीज के उद्ग्रहण में भी वी ए एम कवकों की भूमिका प्रतिवेदित की गयी है। मृदा में उपस्थित इन पोपकों को अपने कवक-तंतुओं द्वारा अवशोषित करके ये कवक परपोषी की जड़ों तक पहुँचाते हैं तथा इनकी आपूर्ति में सुधार करते हैं।

(ब) जल के उद्ग्रहण में सुधार : वी ए एम कवक जल के उद्ग्रहण में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ऐसा प्रतिवेदित किया गया है कि ये कवक अपने कवक तंतुओं द्वारा जड़ों के आस-पास दूर से मृदा में उपस्थित जल को अवशोपित करके जड़ों तक पहुँचाते हैं तथा जड़ों के कार्य में सहायता करते हैं। इनके कारण जड़ें अधिक सूक्ष्म रूप से पौधों की जलापूर्ति कर पाती हैं। जल की कमी वाली मृदाओं में भी इनके कारण पौधों पर जल की कमी का प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी दशाओं में भी जड़ों के चारों ओर जल का क्षीणता क्षेत्र नहीं बन पाता क्योंकि मृदा में फैले हुए कवकतंतु जड़ों की सीमा से परे स्थानों से जल अवशोषित करके जड़ों तक पहुँचाते रहते हैं तथा पौधों के लिये जल की आपूर्ति निरन्तर बनी रहती है।

(स) हार्मोन के स्तर में सुधार : वी ए एम कवक परपोषी में हार्मोन स्तर को भी प्रभावित करते हैं। ये साइटोकाइनेन की मात्रा में वृद्धि करते हैं तथा जिब्रेलिना व ऐबसिसिक अम्ल की मात्रा को नियंत्रित

करते हैं। ये ऐसे पदार्थों की मात्राओं को भी नियंत्रित करते हैं जो जड़ों के विकास, पौधों की वृद्धि तथा पोषदों के अवशोषण एवं स्थानान्तरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सहजीवी कवक द्वारा परपोषी में उत्प्रेरित रासायनिक परिवर्तन ही संभवतः वृद्धि नियंत्रकों की मात्राओं में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी हैं।

(द) रोग के प्रति प्रतिरोध में सुधार : पादप रोगों के, विशेष रूप से उनके विकास एवं प्रसार के नियंत्रण में वी ए एम कवकों की भूमिका से सम्बन्धित बहुत से लेख उपलब्ध हैं। विभिन्न प्रकार की फसलों पर रोग उत्पन्न करने वाले मृदोढ रोगजनकों के नियन्त्रण में वी ए एम कवकों की क्षमता बहुत से वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिवेदित की गयी है। फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम द्वारा उत्पन्न टमाटर के मूल विगलन मैक्रोफेमिना फेसियालाइना द्वारा उत्पन्न मूंग, उर्द तथा चने के मूल विगलन जैसे बहुत से रोगों के वी ए एम कवकों द्वारा नियंत्रण में सफलता पायी गयी है। प्रतिवेदित किया गया है कि वी ए एम कवकों द्वारा तंबाकू का आल्पीडियम ब्रेसिकी से, नींबू का थिलेविपॉप्सिस बेसीकोला से, प्याज का पाइरेनोकीरा टेरेस्ट्रिल से तथा काउपी का फाइटोफ्थोरा विग्नी से बचाव संभव है। पादप रोगों के अन्य रोगजनकों जैसे कि गोलकृमियों के प्रभाव को वी ए एम कवक कम करते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पौधों का रोगों से बचाव का कारण, कुछ उपायचयी पदार्थों का संचय, जड़ों की कोशिकाओं की भित्तियों का लिगनीकृत होना तथा काइटिन विघटनकारी एन्जाइमों में वृद्धि है। पाया गया है कि वी ए एम कवकों से सहजीवी संबंध स्थापित करने वाले पौधों में संवहन तंत्र अधिक विकसित हो जाता है। ऐसा प्रस्तावित किया गया है कि संभवतः इस परिवर्तन के कारण रोगजनकों का जड़ों के ऊतकों में प्रसार अवरुद्ध हो जाता है। यह भी कहा जाता है कि रोगजनकों द्वारा परपोषी पर डाले गये दुष्प्रभावों की वी ए एम कवकों द्वारा उपलब्ध कराये गये लाभ क्षतिपूर्ति कर देते हैं। यह संभावना भी व्यक्त की गयी है कि वी ए एम कवक, परपोषी के लिये अनिवार्य कुछ तत्वों के उद्ग्रहण में वृद्धि करके उसकी रोगजनकों के प्रति सहनशीलता को बढ़ा देते हैं। ग्राहम के अनुसार सहजीवी संबंध के कारण परपोषी में फॉस्फोरस का उद्ग्रहण बढ़ जाता है। फलस्वरूप रोगजनक की सक्रियता पर प्रभाव पड़ता है। यह भी कहा गया है कि पौधों के प्रकाशसंश्लेषी उत्पाद को रोगजनक भी उपयोग करते हैं जिसके कारण पौधों की वृद्धि में अवरोध आ जाता है, लेकिन सहजीवी संबंध के कारण उनके प्रकाशसंश्लेषण की क्रिया अधिक सक्रिय हो जाती है, फलस्वरूप पौधों की वृद्ध में अवरोध नहीं आ पाता। इस बात की संभावना भी व्यक्त की गयी है कि सहजीवी संबंध के कारण पौधों की जड़ों के कुछ अतिरिक्त उपापचयज निस्त्रावित होने लगते हैं अथवा किसी विशेष उपापचयज की अतिरिक्त मात्रा निस्त्रावित होने लगती है। जड़ों के निःस्त्राव में आये इन परिवर्तनों के कारण ही रोगजनकों की सक्रियता पर प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप इसकी संक्रमणक्षमता एवं तीव्रता घट जाती है।

हालांकि आज वैज्ञानिकों को एक ऐसा सक्षम जैव तकनीकी उपकरण उपलब्ध है जिसकी उपयोगिता न केवल ग्रीनहाउस प्रयोगों में वरन् खेतों में भी सिद्ध हो चुकी है परन्तु इसका वृहत स्तर पर प्रयोग आज भी नहीं हो पा रहा है क्योंकि अविकल्पी सहजीवी होने के कारण इसके संरोप का वृहत् स्तर पर उत्पादन संभव नहीं हो पा रहा है। फिर भी, प्रतिरोपण विधि द्वारा लगायी जाने वाली फसलों में इसका प्रयोग खेतों में किया जा रहा है क्योंकि ऐसी फसलों के लिये बहुत कम संरोप की आवश्यकता पड़ती है। इन फसलों की पौधों में नर्सरी स्तर पर ही संरोप का प्रयोग करके सहजीवी संबंध स्थापित कर दिया जाता है तथा इसके बाद इन्हें खेतों में लगाया जाता है। ऐसी फसलों में इस जैव तकनीकी उपकरण का भरपूर लाभ उठाया जा रहा है। ऐसी संभावना है कि जिस दिन वी ए एम कवकों के संरोप का वृहत् स्तर पर उत्पादन संभव हो जायेगा उस दिन जैवतकनीकी उपकरण बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

— एमेरिटस प्रोफेसर, वनस्पति विभाग,
इलाहाबाद विश्व विद्यालय।

हमारा स्वास्थ्य एवं जैव-प्रौद्योगिकी

प्रियंका अग्रवाल

15 अगस्त 1999 को भारत की जनसंख्या 100 करोड़ को पार कर गयी और भारत को चीन के बाद विश्व में दूसरे ऐसे देश का स्थान प्राप्त हो गया जिसकी जनसंख्या 100 करोड़ हो चुकी है। ऐसी स्थिति में जहाँ हमें बाह्य रूप से अन्य देशों से अपनी सुरक्षा करनी है, वहीं आतंरिक रूप से इस विकराल ढंग से बढ़ती हुई जनसंख्या पर भी ध्यान देना है, इसे नियंत्रित भी करना है और इस बढ़ी हुई आबादी के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना है। विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारत में 53 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। भारत सरकार सकल घरेलू उत्पादन का 2.7 प्रतिशत सैनिक सुरक्षा पर व्यय करती है परन्तु मात्र 0.7 प्रतिशत ही स्वास्थ्य सुविधाओं पर खर्च कर पाती है। इन्हीं सब भयंकर रूप से बढ़ती हुई एवं मानव के अस्तित्व पर ही प्रश्न लगाती हुयी समस्याओं से दो-चार होने के लिए, एक नयी तकनीकी, जैव-प्रौद्योगिकी (बायोटेक्नॉलाजी) को मानव-मस्तिष्क ने आविष्कृत किया। जैव-प्रौद्योगिकी वस्तुतः ऐसी प्रौद्योगिकी है जिसमें हम प्रौद्योगिकी, तकनीकी अथवा इंजीनियरिंग का प्रयोग जीवित तत्त्व अर्थात् वनस्पति/प्राणियों पर करते हैं। यह हमें कम लागत और कम समय में विभिन्न स्वास्थ्य सुविधाएँ एवं जीवन-रक्षक औषधियां उपलब्ध कराती है। वैसे तो भारत के प्राचीन वेदों, शास्त्रों में कई स्थानों पर देवताओं को ''सोम'' अर्पित करने, ''सिरका'' के प्रयोग व ''नीम'', ''करैले'', ''जामुन'' इत्यादि के औषधीय प्रयोग की बात आती है परंतु आधुनिक युग में 1920 में सर्वप्रथम लीड्स सिटी काउन्सिल, यू. के. ने जैव-प्रौद्योगिकी संस्था की स्थापना की। सन् 1982 में भारत सरकार ने नेशनल बायोटेक्नॉलाजी बोर्ड (एन. बी. टी. बी.) की स्थापना की।

संक्षिप्त रूप में, स्वास्थ्य के क्षेत्र में जैव-प्रौद्योगिकी के योगदान को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत समझ सकते हैं।

1. हॉरमोन (Hormones), 2. टीका (वैक्सीन) (Vaccines), 3. इंटरफेरॉन (Interferon), 4. प्रतिजैविक (Antibiotics), 5. विटामिन (Vitamins), 6. अमीनो अम्ल (Amino acids), 7. रोग-निर्णय; रोग-लक्षण उपकरण, 8. जीन-चिकित्सा (Gene therapy)

1. हॉरमोन : हॉरमोन ऐसे रासायनिक तत्व हैं जो प्रत्येक प्रकार के संदेश के वाहक होते हैं। ये शरीर की विभिन्न कोशिकाओं के कार्यों के बीच उचित ताल-मेल बिठाते हैं। इनके अभाव में कोशिकाएँ यह समझ पाने में असफल रहती हैं कि उन्हें क्या कार्य करना है। अतः शरीर में किसी भी प्रकार के हारमोन की कमी शरीर के लिए भीषण संकट पैदा कर देती है। चूँकि हॉरमोन शरीर की ग्रन्थियों से ही स्रावित होते हैं अतः इसकी कमी को किसी विशेष जन्तु से, उसे मार कर ही पूरा किया जा सकता है जो बहुत महँगा पड़ने के साथ-साथ एक सीमित मात्रा में ही उपलब्ध हो पाता है। जैव-प्रौद्योगिकी की आनुवंशिक इंजीनियरिंग शाखा, विशेषतः इस क्षेत्र में हमें महत्वपूर्ण सहयोग देती है। इनमें से कुछ संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित हैं;

1. (क) इन्सुलिन : इन्सुलिन एक पॉलीपेप्टाइड हॉरमोन है जिसमें A & B दो श्रृंखलाएं होती हैं। यह हॉरमोन लैंगरहैन्स द्वीप की b-कोशिकाओं से स्रावित होता है। इन्सुलिन मुख्यतः रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित करता है, इसकी कमी से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ जाती है और मनुष्य मधुमेह का शिकार हो जाता है।

इन्सुलिन में 51 अमीनो अम्ल होते हैं। सूअर से बनाये गये इन्सुलिन में मनुष्य में पाये जाने वाले इन्सुलिन की तुलना में एक अमीनो अम्ल भिन्न होता है जिससे कुछ रोगियों में प्रतिक्रिया और कुछ दुष्प्रभाव भी देखने को मिलते हैं।

इन्सुलिन जैव-प्रौद्योगिकी की प्राकृतिक जीन-क्लोनिंग एवं रासायनिक जीन क्लोनिंग, दोनों विधियों से बनाया जा सकता है। मानव-इन्सुलिन ऐसा प्रोटीन है जो अग्न्याशय में पाया जाता है। इन्सुलिन बनाने के प्रथम चरण में हम उन जीन्स को पहचानते एवं अलग करते हैं जो इन्सुलिन निर्माण के लिए उत्तरदायी होते हैं। चित्र 1.1 के अनुसार अग्नाशय कोशिकाओं को उच्च गति पर सेन्ट्रीफ्यूज करके उन एम.आर.एन.ए. को अलग कर लेते हैं जो इन्सुलिन बनाने के कारक होते हैं। इस एम. आर. एन. ए. में हम रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज एवं डी. एन. ए. का निर्माण करने वाले न्यूक्लियोटाइड डालकर दोहरे ताग डी. एन. ए. का निर्माण करते हैं। जैसा कि चित्र में प्रदर्शित है इस डी. एन. ए. को *E. Coli* के प्लाज्मिड के साथ जोड़ देते हैं। *E. Coli* के अंदर यह प्लाज्मिड अपने जैसे कई प्लाज्मिड उत्पन्न करता है और अपने साथ-साथ इन्सुलिन के जीन को भी गुणित करता चला जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक 20 मिनट बाद *E. Coli* द्विगुणित होता है एवं कुछ समय बाद लाखों जीवाणु-कोशिकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें उचित मात्रा में इन्सुलिन होता है। इस इन्सुलिन को शुद्ध कर मानव-उपयोग में लाया जाता है।
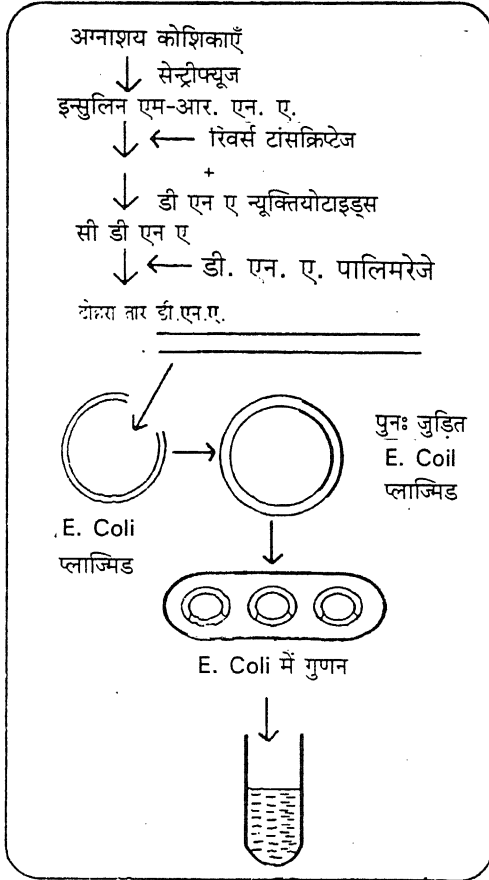
चित्र 1.1 प्राकृतिक जीन-क्लोनिंग द्वारा इन्सुलिन-निर्माण

रासायनिक रूप से निर्मित जीन्सों द्वारा भी इन्सुलिन का निर्माण होता है जिसमें इन्सुलिन को A एवं B श्रृंखलाओं के निर्माण के लिए उत्तरदायी जीनों को अलग-अलग प्लाज्मिड में जोड़ते हैं। इन प्लाज्मिडों को *E. Coli* के दो अलग-अलग स्ट्रेनों (strains) में डालते हैं। अब इनसे A एवं B श्रृंखलाओं के निर्माण के बाद इन्हें रासायनिक रूप से जोड़ देते हैं। यह विधि बहुत प्रचलित नहीं है।

1. (ख) **सोमैटोस्टैटिन** : यह हॉरमोन मुख्यतः अग्नाशय एवं मस्तिष्क की कोशिकाओं से स्त्रवित होता है। इसे भी आनुवंशिक इंजीनियरिंग की प्राकृतिक जीन-क्लोनिंग विधि द्वारा ही बनाते हैं जैसा कि इन्सुलिन के निर्माण में बताया गया है। जैसा कि चित्र 1.2 से स्पष्ट है हाइपोथैलेमस कोशिकाओं को रेस्ट्रिक्शन एन्डोन्यूक्लिएज एन्जाइम द्वारा काट कर सोमैटोस्टैरिन उत्पादन करने वाले जीन के अलग कर लेते हैं। अब इन्हें प्लाज्मिड के साथ जोड़कर E. Coli के अंदर डाल देते हैं एवं उत्पन्न हारमोन को अलग कर शुद्ध कर लेते हैं। जहाँ हमें 5 मि० ग्रा० हारमोन के लिए 500,000 भेड़ों के मस्तिष्क चाहिए वहीं मात्र 2.50 डालर में आनुवंशिक इंजीनयरिंग यह उपलब्ध

करा देती है। यह हॉरमोन इन्सुलिन एवं मानव विकास हॉरमोन के स्राव को रोकता है एवं मधुमेह तथा अन्य विकास संबंधी रोगों के इलाज में कार्यकारी है।

1. (ग) मानव विकास हॉरमोन : पिट्यूटरी ग्रंथि एक छोटी ग्रंथि है जो मस्तिष्क के आधार भाग पर लगी होती है और इस हॉरमोन को स्रवित करती है। इस हॉरमोन को बनाने में आनुवंशिक तकनीशियनों को विशेष प्रयास करना पड़ा क्योंकि यह हॉरमोन जब पिट्यूटरी में बनता है तो वहाँ इसके अपने 191
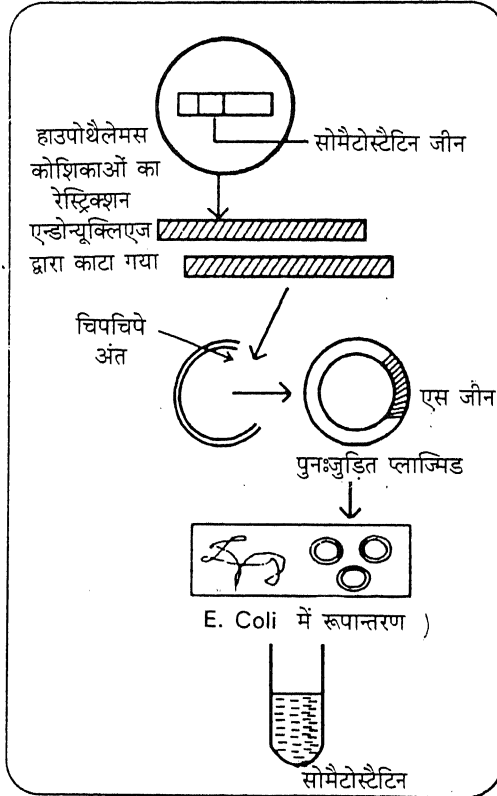
चित्र 1.2 सोमैटोस्टैटिन उत्पादन

अमीनो अम्ल एवं 26 दूसरे 'सिग्नल' अमीनो अम्ल होते हैं। अब जब हॉरमोन पिट्यूटरी से स्रावित होकर पूरे शरीर में वितरित होता है तो ये दूसरे 26 ''सिग्नल' अमीनो अम्ल इस हॉरमोन से निकाल दिये जाते हैं और इस प्रकार कार्यकारी हॉरमोन में केवल 191 अमीनो अम्ल ही होते हैं। अतः मानव विकास हारमोन (ह्यूमन ग्रोथ हॉरमोन) को बनाने में हम पहले
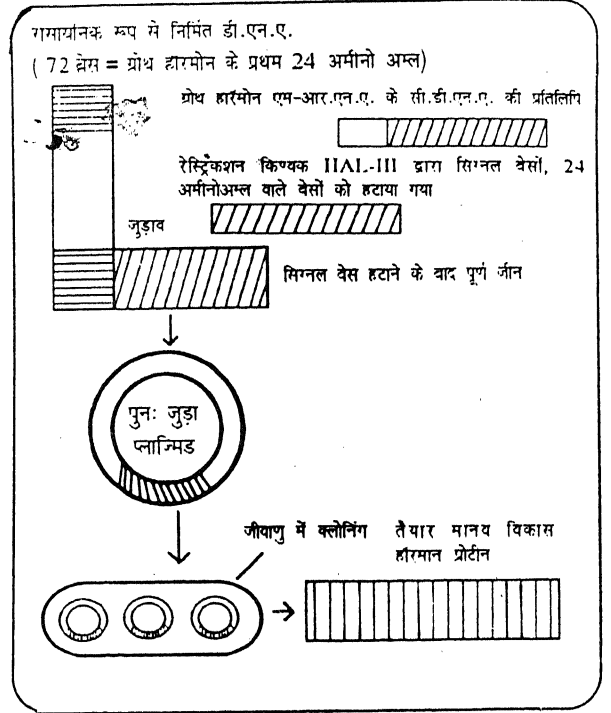
चित्र 1.3 मानव विकास हॉरमोन उत्पादन की विधि

इस हॉरमोन के एम.आर.एन.ए. से C-DNA जैसे कि इन्सुलिन बनाने की विधि में बनाया था, बनाते हैं। इस डी. एन. ए. में वे 26 'सिग्नल' अमीनो अम्ल भी होते हैं जो इस ह्यूमन ग्रोथ हॉरमोन को पूरी तरह कार्यकारी नहीं होने देते हैं। हमारे पास ऐसा कोई रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम भी उपलब्ध नहीं हैं जो 191 कार्यकारी और 26 'सिग्नल' अमीनो-अम्ल को ठीक बीचो-बीच काट सके। ऐसे में Hai III रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम का प्रयोग किया गया। इससे 26 'सिग्नल' अमीनो अम्ल तो निकल ही गये परंतु साथ में 24 कार्यकारी अमीनो अम्ल भी कट गये। अब इन 24 कार्यकारी अमीनो अम्ल की पूर्ति के लिए इनको रासायनिक रूप से तैयार कर चित्र 1.3 के अनुसार शेष 167 अमीनो अम्लों से जोड़ दिया गया। तत्पश्चात् प्राकृतिक जीन-क्लोनिंग कर इस हॉरमोन के उत्पादन में सफलता पायी गयी।

इस हॉरमोन की कमी से दुनिया में लाखों बच्चे बौनेपन के शिकार हो जाते हैं। बौनेपन के इलाज में यह प्रौद्योगिकी बहुत कारगर है जिसके अंतर्गत सप्ताह में एक बार 7 मि० ग्रा० का इंजेक्शन कई वर्षों तक दिया जाता है।

1. (घ) अन्य मानव हॉरमोन : उपरोक्त हॉरमोनों के अतिरिक्त कैल्सीटोसीन, एड्रिनोकॉर्टिकोट्रोपिन, कोलिसिस्टोकाइनिन इत्यादि के उत्पादन में भी जैव-प्रौद्योगिकी तकनीशियगण अपना प्रयास कर रहें हैं।

2. टीका (वैक्सीन) : टीका मुख्य रूप से वास्तव में बेहद कमजोर किया गया अथवा निष्क्रिय विषाणु। प्रोटोजोआ होता है। जब ये बेहद कमजोर (एटीन्यूटेड) अथवा निष्क्रिय विषाणु/प्रोटोजोआ हमारे शरीर में जाते हैं तो हमारे शरीर का प्रतिरक्षा तंत्र इनके विरुद्ध एंटीबॉडी तैयार करने लगता है। चूंकि ये विषाणु/प्रोटोजोआ या तो निष्क्रिय होते हैं अथवा अति कमजोर, अतः ये हमारे शरीर को प्रभावित नहीं कर पाते हैं परंतु धीरे-धीरे हमारे शरीर में उचित मात्रा में इनके विरुद्ध एंटीबॉडी तैयार हो जाता है और अब अगर शक्तिशाली पूर्ण जीवित विषाणु भी हमारे शरीर पर आक्रमण करता है तो वह मारा जाता है क्योंकि हमारा शरीर पहले ही उसके विरुद्ध एंटीबॉडी तैयार कर चुका होता है।

सैद्धांतिक रूप से यह प्रक्रिया सरल लगती है परंतु टीका तैयार करने में अत्यंत सावधानी एवं मेहनत की जरूरत पड़ती है क्योंकि यदि विषाणु/प्रोटोजोआ को हम एक निश्चित क्षमता तक कमजोर नहीं कर पाते हैं तो हमें उस टीके से रक्षा मिलने के स्थान पर भयंकर हानि हो सकती है। इसी प्रकार यदि विषाणु को पूरी तरह से निष्क्रिय करने में असावधानी हो गयी तो यह जानलेवा हो सकता है। हाल ही में यूरोप में जानवरों में फैली 'पाँव और मुख की बीमारी' इसी का उदाहरण है।

विषाणु टीके के उत्पादन में विषाणु की सर्वप्रथम किसी विशेष जानवर के अंदर या इन वीट्रो संवर्धित कोशिकाओं में संवर्धन (कल्चर) करके गुणित किया जाता है। तत्पश्चात् इन विषाणुओं को अलग कर निष्क्रिय अथवा अति कमजोर किया जाता है। आनुवंशिकी इंजीनियरिंग इस जटिल खर्चीली प्रक्रिया
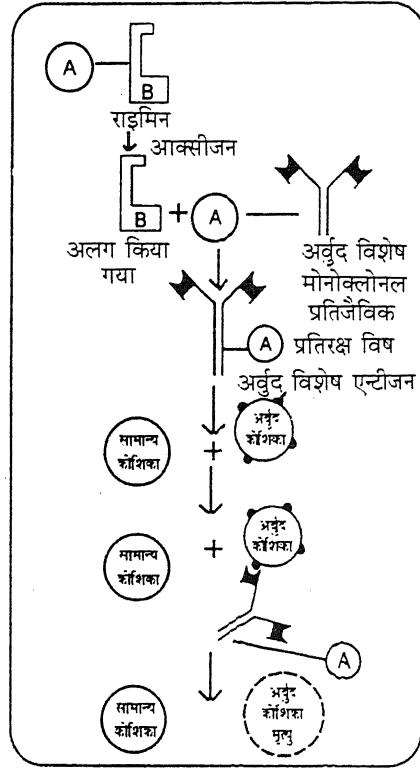
चित्र 1.4 प्रतिरक्षा विष द्वारा अर्बुद कोशिकाओं की मृत्यु

को सस्ता एवं प्रभावशाली बनाती है। हमारा प्रतिरक्षा तंत्र किसी भी विदेशी वस्तु को केवल उसके बाह्य आकार से ही पहचानता एवं तद्नुसार क्रिया करता है। उदाहरणार्थ, विषाणुओं के सिर्फ बाह्य प्रोटीन-आवरण के अनुसार ही प्रतिरक्षा तंत्र कार्य करता है। यदि हमें हिपैटाइटिस का टीका बनाना है तो हम इसके विषाणु से उस जीन को अलग कर लेते हैं जो इस विषाणु का प्रोटीन आवरण बनाता है। अब इस जीन को आनुवंशिक इंजीनियरिंग विधि द्वारा क्लोन कर बहुत मात्रा में हिपैटाइटिस विषाणु का प्रोटीन आवरण इकट्ठा कर लेते हैं। इस प्रकार प्राप्त टीका ज्यादा सुरक्षित रहता है। इसी विधि से रेबीज, मुख एवं पांव बीमारी इत्यादि रोगों के टीके भी बनाये जा रहे हैं।

हैजा मनुष्य में होने वाली एक खतरनाक बीमारी है। Vibrio cholerae स्ट्रेन OGAWA 0395 से प्राकृतिक

रूप से हैजा हो जाता है परंतु एक बार इस जीवाणु से संक्रमित हो जाने पर यह तीन साल तक के लिए हमारा प्रतिरक्षा तंत्र अपने ही विरुद्ध विकसित कर देता है। हैजा के ये जीवाणु मनुष्य के उदर को अपना निवास-स्थान बना लेते हैं। इसी गुण को ध्यान में रखकर आनुवंशिक इंजीनियरों ने Vibrio Cholerae के ऐसे स्ट्रेनों का विकास किया जो मनुष्य के अंदर रहकर अपने ही विरुद्ध उसके प्रतिरक्षा तंत्र को तो विकसित कर देता था परंतु उसे हानि नहीं पहुंचा पाता था।

प्रोटोजोआ से होने वाली बीमारियों में मलेरिया सबसे घातक बीमारी है। हाल ही में ऑस्ट्रेलिया के डॉ० रॉबिन एन्डर्स एवं उनकी टीम ने मलेरियारोधी टीका विकसित किया है जिसका भारत में यहाँ के लोगों पर परीक्षण किया जा रहा है।

कुष्ठ रोग एक ऐसी बीमारी है जो लंबे समय तक साथ में रहने से संक्रामक हो जाती है। अभी तक इसके विरुद्ध भी कोई टीका नहीं बनाया जा सका था परंतु नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोलॉजी के वैज्ञानिकों ने 25 वर्षों के अथक प्रयास से डॉ० जी० पी० तलवार के दिशा निर्देशन में यह भी कर दिखाया और बाजार में इसे 30 जनवरी 1999 को लाया गया है।

आजकल डी. एन. ए. वैक्सीन की नयी अवधारणा आयी है। इस विधि में विषाणु को निष्क्रिय अथवा कमजोर न करके सीधे इसके डी. एन. ए. को ही टीके के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। मनुष्य के लिए उपयोग में लाने से पहले अभी इसका अन्य पशुओं पर परीक्षण जारी है।

3. इंटरफेरॉन : यह एक ऐसा प्रोटीन है जो शरीर पर विषाणुओं का आक्रमण होने पर प्रथम रक्षा-पंक्ति के रूप में कार्य करता है। इंटरफेरॉन (आई० एफ० एन०) तीन प्रकार के होते हैं, ल्यूकोसाइट (श्वेत रक्त कणिकाएं) कोशिकाओं से उत्पन्न ल्यूकोसाइट आई० एफ० एन०; त्वचा और मांसपेशियों के संयोजी ऊतकों से उत्पन्न फाइब्रोब्लास्ट आई० एफ० एन० और प्रतिरक्षा तंत्र की लिम्फोसाइट कोशिकाओं से उत्पन्न प्रतिरक्षा आई० एफ० एन०।

1979 के अंत तक मानव आई० एफ० एन० का एकमात्र माध्यम मानव कोशिकाएँ थीं; 90,000 व्यक्तियों के रक्तदान से केवल 1 ग्राम आई० एफ० एन० प्राप्त होता था, वह भी केवल 1 प्रतिशत शुद्ध। जनवरी 1980 में गिलबर्ट और विजमैन ने E. coli के माध्यम से आनुवंशिकी इंजीनियरिंग द्वारा ल्यूकोसाइट आई० एफ० एन० प्राप्त करने में सफलता पायी। अब हम E. coli के एक लीटर आनुवंशिक इंजीनियरिंग से संवर्धित कोशिकाओं द्वारा 25,000 यूनिट प्राप्त कर सकते हैं। इस तकनीकी द्वारा आई० एफ० एन० का मूल्य 90 प्रतिशत कम हो गया। फिर भी आई० एफ० एन० अभी हमें इतनी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाया है कि साधारण विषाणु-जनित संक्रमण में इसका उपयोग किया जा सके। अभी इसमें शोध कार्य चल रहे हैं क्योंकि आई० एफ० एन० अनेक विषाणु-जनित रोगों के अतिरिक्त कैंसर के इलाज में भी काफी कारगर है।

4. प्रतिजैविक पदार्थ : प्रतिजैविक पदार्थ ऐसे रसायन हैं जो जीवाणुओं को या तो बढ़ने से रोकते हैं या उन्हें मार डालते हैं। पेनिसिलीन एक प्रमुख प्रतिजैविक है। जैव प्रौद्योगिकी की विधियों का उपयोग कर Penicillinum chrysogenum के ऐसे स्ट्रेनों का विकास किया जा चुका है जिससे हम पहले की अपेक्षा प्रति इकाई 10^4 गुना अधिक पेनिसिलीन उत्पादित कर रहे हैं।

पेनिसिलीन एवं अन्य प्रतिजैविक पदार्थ, उदाहरणार्थ, सिफैलोस्पोरिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन इत्यादि के साथ एक समस्या आजकल यह आ रही है कि जीवाणु इन सभी प्रतिजैविकों के लिए असंवेदी होते जा रहे हैं अर्थात् इन पर प्रतिजैविकों का कोई असर नहीं पड़ रहा है। अतः इन प्रतिजैविकों का सिर्फ उत्पादन बढ़ाते जाने से हमें कोई बहुत लाभ होने वाला नहीं है। जैव-प्रौद्योगिकी की अनेक विधियों से इन प्रतिजैविकों में संशोधन करना पड़ेगा। मोनो- क्लोनल प्रतिजैविकों की अर्बुद जैसे रोगों में काफी संभावनाएं हैं। राइसिन प्रोटीन Ricinus communis के बीजों के एन्डोस्पर्म में पायी जाती है। इस प्रोटीन में दो पेप्टाइड श्रृंखलाएं होती हैं– A तथा B। A श्रृंखला राइबोसोम को किण्वकित एवं अनुक्रमणीय रूप से बदल देती है

जिससे राइबोसोम निष्क्रिय हो जाते हैं। अंततः जिस कोशिका पर राइसिन प्रोटीन का प्रयोग किया जाता है वह मर जाती है। चित्र 4 के अनुसार A को B श्रृंखला से अलग कर अर्बुद विशेष मोनोक्लोनल प्रतिजैविक के साथ बाँध दिया जाता है। अब यह प्रोटीन केवल अर्बुद कोशिकाओं से ही बंधती है, साधारण कोशिकाओं से नहीं, एवं थोड़ी देर बाद अर्बुद कोशिका मर जाती है।

5. विटामिन : दैनिक भोजन में हम विटामिन अत्यंत कम मात्रा में लेते हैं परंतु शरीर के पूर्ण विकास में एवं शरीर को पूरी तरह स्वस्थ रखने में विटामिन सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विटामिन B_{12} का उत्पादन अब उत्परिवर्तित Propionibacterium freudenreichii, P. shermanii & Pseudomonas denitrificans द्वारा मूल स्ट्रेन की तुलना में प्रति इकाई 50,000 गुना बढ़ गया है। इसी तरह विटामिन B_2 के प्रति इकाई उत्पादन में भी 20,000 गुना वृद्धि हुयी है।

6. अमीनो अम्ल : हाल के कुछेक वर्षों में जैव प्रौद्योगिक विधियों से अमीनो अम्लों उदाहरणातः लाइसिन, मोनोग्लूटामिक अम्ल इत्यादि के उत्पादन में काफी तेजी आयी है। इस तकनीकी से अमीनो अम्ल को हम L-रूप में प्राप्त कर पाते हैं जिसकी हमें आवश्यकता होती है एवं लागत भी कम आती है।

7. रोग-निर्णय, एवं लक्षण उपकरण : आज भी किसी बीमारी का सबसे महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि रोग की सही-सही पहचान कर ली जाये परंतु हमारे देश में स्थिति अत्यंत शोचनीय है। यहाँ तो महीनों तक यही नहीं पता चल पाता कि वास्तव में रोग है क्या। मोनोक्लोनल प्रतिजैविक हमें रोग-निर्णय में काफी सहायता प्रदान करते हैं क्योंकि इनमें विशेष एन्टीजन को पहचानने की पूर्ण क्षमता होती है, ये दीप्तिकारक अणुओं से जुड़ सकते हैं जो पराबैंगनी किरणों में दीप्ति होकर एक अलग पहचान देते हैं। इस विधि में प्रतिरूप में दीप्तियुक्त मोनोक्लोनल, प्रतिजैविकों को डाल देते हैं। यदि नमूने में विशेष एन्टीजन उपस्थित होता है तो वह दीप्तिकारक मोनोक्लोनल प्रतिजैविक से जुड़ जाता है एवं प्रकाश की उपस्थिति में दीप्त होकर विशेष एन्टीजन अर्थात् विशेष रोग के उपस्थित होने की सूचना देता है। वर्षों के अथक शोध कार्यों के बाद वैज्ञानिकों ने कुछ रोगों के लिए रोग-लक्षण-निर्णय उपकरण विकसित करने में सफलता पायी जिनसे सेकंड और मिनट के अंदर रोग का निर्णय किया जा सकता है। इनमें से कुछ प्रमुख उपकरण निम्नलिखित हैं :

(i) फीलपाँव निर्णय उपकरण, (ii) गर्भधारण निर्णय उपकरण, (iii) अमीबा-यकृत व्रण निर्णय उपकरण, (iv) डुबित छड़ी डॉट किण्वक प्रतिरक्षा परख; सन्निपात ज्वर के निर्णय हेतु।

8. जीन चिकित्सा : मानव जीन चिकित्सा एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा आनुवंशिक एवं अन्य बीमारियों का इलाज किया जा रहा है। इसके अंतर्गत दोषी जीनों को सही जीनों से बदला जाता है या अनुपस्थित/अधिक जीनों को जोड़ा या कम किया जाता है।

पहली अनुमोदित जीन चिकित्सा 14 सितम्बर, 1990 को एडिनोसीन डिऐमिनेज (ए० डी० ए०) की कमी को दूर करने के लिए शुरू की गयी। बहरेपन, बौनेपन, वर्णांधता, थैलीसीमिया, मानसिक बीमारियों और यहाँ तक कि बुद्धिमत्ता इत्यादि तक के लिए भी जीनों को ही जिम्मेदार माना जा रहा है। इन सभी में जीन-चिकित्सा का शोध कार्य जारी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैव प्रौद्योगिकी निश्चित रूप से हमारे लिए वरदान है। यदि जैव प्रौद्योगिकी का मानव-मात्र की भलाई में उपयोग किया गया तो निश्चित रूप से यह प्रौद्योगिकी सिर्फ स्वास्थ्य के ही क्षेत्र में ही नहीं वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य के जीवन को अवलंब देकर उसे सुखी बनायेगी। [साभार]

मैक्स प्लांक और उनका क्वाटंम सिद्धान्त

डॉ० के० एन० उत्तम

विलक्षण प्रतिभा के धनी जर्मन भौतिक-शास्त्री मैक्स कार्ल अर्न्स्ट लुडविग प्लांक का जन्म 23 अप्रैल 1858 को कील, प्रुसिया में हुआ था। बाद में सन् 1867 में उनका परिवार म्यूनिख में आकर रहने लगा जहाँ प्लांक की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा हुई। 1874 में ज़िमनैज़ियम पूरा करने के बाद मैक्स प्लांक ने गणित एवं भौतिकी का विधिवत् अध्ययन शुरू किया। शुरू के तीन वर्षों में प्लांक ने प्रोफेसर वान जाली के निर्देशन में बिताए जबकि बर्लिन में एक वर्ष तक हेल्महोल्ज एवं किरचाफ के निर्देशन में अध्ययन किया। बर्लिन में ही प्लांक रूडोल्फ क्लासियस के कार्य से प्रथम दृष्टया परिचित हुए और उनकी प्रेरणानुसार प्लांक ने अपना ध्यान ऊष्मागतिकी के क्षेत्र में केन्द्रित किया। सन् 1879 में उसी क्षेत्र में उन्होंने अपना शोधप्रबन्ध (डाक्टरेट थिसिस) प्रस्तुत किया।

सन् 1880 में म्यूनिख विश्वविद्यालय में वह प्राइवेट डोजेन्ट हुए तथा सन् 1885 में कील में सैद्धान्तिक भौतिकी के अस्थाई प्रोफेसर नियुक्त किए गये। किरचाफ की मृत्यु के बाद सन् 1889 में प्लांक ने सैद्धान्तिक भौतिकी के अस्थाई प्रोफेसर का बर्लिन का आमन्त्रण स्वीकार किया जहाँ पर वे 1892 में स्थायी प्रोफेसर नियुक्त हुए। 70 वर्ष की अवस्था में 1928 में वह सेवानिवृत्त हुए लेकिन बाद के वर्षों तक वह अपना वैज्ञानिक शोधकार्य करते रहे।

अपने समय के सर्वश्रेष्ठ भौतिकशास्त्री, जिनके शोधकार्य ने भौतिक विज्ञान के सभी आयाम बदल दिये, प्लांक ने बौद्धिक संसार के लगभग सभी पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त किए। सन् 1900 में उन्हें क्वांटम सिद्धान्त की खोज के लिए ख्याति मिली और सन् 1918 में भौतिक विज्ञान के सर्वोच्च पुरस्कार 'नोबेल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इसके पूर्व 1894 में वे प्रूसियन एकेडेमी ऑफ साइंसेज के सदस्य निर्वाचित हो चुके थे तथा 1912 में एकेडेमी के स्थायी सचिव नियुक्त हुए थे। 1926 में वे रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन के विदेश सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए। 1929 में उन्हें कोपले मेडल से पुरस्कृत किया गया। वह सन् 1930 में बर्लिन की केसरविल्हेम सोसाइटी के अध्यक्ष बने ज़िसका बाद में नाम बदलकर मैक्स प्लांक सोसाइटी रख दिया गया। 1946 में वे रॉयल सोसाइटी के न्यूटन सम्मान समारोह के मुख्य अतिथि थे। यह अवसर मैक्स प्लांक की ब्रिटेन यात्राओं का अंतिम दौर था। प्लांक यूरोप एवं अमेरिका की अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य थे। लंदन एवं एडिनबरा विश्वविद्यालयों सहित अन्य कई विश्वविद्यालयों की मानद उपाधियों से मैक्स प्लांक को नवाजा गया। 80वें जन्मदिन के समय उनके सम्मान में एक छोटे तारा का नाम प्लांकियाना रखा गया।

जीवन के बाद के दिनों में प्लांक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिससे उनका व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन काफी तनावपूर्ण रहा। 1916 में उनके बड़े पुत्र की हत्या कर दी गयी। उनके दो जुड़वाँ बेटियों में, 1917 में एक की मातृत्व लाभ के समय मृत्यु हो गयी जबकि दूसरी की शादी एक विधुर के साथ हुई। एक वर्ष के बाद मातृत्व लाभ के समय दूसरी बेटी की भी मृत्यु हो गयी। उनके सबसे छोटे पुत्र को जुलाई 1944 के 'एण्टीहिटलर प्लाट' का दोषी करार दिया गया। उन्होंने अपना कीमती पुस्तकालय सहित सब कुछ खो दिया। प्लांक और उनकी पत्नी ने भागकर मजवर्ग के पास शरण ली। अमरीकियों ने जब यह घटनाक्रम सुना तो एक

सेना की गाड़ी भेजकर उनको गोटिंजेन बुलाया, जहाँ पर प्लांक ने अपने जीवन के शेष वर्ष बिताए। 4 अक्टूबर 1947 को गोटिंजेन में उनका निधन हो गया।

यद्यपि मैक्स प्लांक ने ऊष्मा-गतिकी, यांत्रिकी, प्रकाश विज्ञान तथा सापेक्षता के आलोक में विकिरण भौतिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया किन्तु केवल क्वांटम सिद्धान्त ही उनको आधुनिक गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त साबित हुआ। बाद के वर्षों में मैक्स प्लांक ने दर्शन एवं आकस्मिकता से संबन्धित समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और सराहनीय योगदान किया।

प्रकृति को हृदयंगम करने हेतु विज्ञान के क्षेत्र में, यांत्रिकी, सनातन यांत्रिकी, सांख्यिकीय यांत्रिकी, वैद्युत गतिकी और सापेक्षवाद के सिद्धान्त का विकास हुआ। इन मौलिक विषयों की सहायता से वृहद पिण्डों की गति को समझने में काफी सहायता मिली है यथा ब्रह्माण्डीय गति, पृथ्वी के आकर्षण क्षेत्र में पिण्डों की गति आदि। लेकिन जैसे ही हम सूक्ष्मकणों यथा इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान, अल्फाकण आदि की गति को समझने का प्रयास करते हैं, तो सनातन यांत्रिकी के सिद्धान्त विसंगत मालूम पड़ने लगते हैं फलतः और प्रायोगिक प्रेक्षकों की व्याख्या के लिए नये रूप में नयी यांत्रिकी का विकास हुआ जो मैक्स प्लांक के क्वांटम सिद्धान्त पर पूरी तरह आधारित है जिसे क्वांटम यांत्रिकी कहते हैं।

क्वांटम सिद्धान्त

वस्तुओं से ऊष्मा एवं प्रकाश दोनों का उत्सर्जन होता है। कम ताप पर केवल ऊष्मा के उत्सर्जन का अनुभव होता है, परन्तु तापमान बढ़ने पर पहले लाल और बाद में तीव्र श्वेत प्रकाश उत्सर्जित होते देखा जा सकता है। मोमबत्ती का जलना, भट्ठे की आँच और चमक, तप्त लोहे की धधक और सूर्य की चकाचौंध, ये सभी ऊष्मीय एवं प्रकाशीय विकिरण के उदाहरण हैं। ऊष्मीय विकिरण में अवरक्त (इन्फ्रारेड) किरणें उत्सर्जित होती हैं, और प्रकाशीय विकिरण में दृश्य प्रकाश उत्सर्जित होता है। इसलिए तप्त पिण्डों से उत्सर्जित समस्त विकिरणों को वैज्ञानिकों ने ''उष्मीय विकिरण'' नाम दिया।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में आदर्श कृष्ण पिण्ड पर चिरसम्मत सिद्धान्त का उपयोग करके, उत्सर्जित विकिरण की मात्रा, तापमान और तरंगदैर्घ्य के बीच संबंध व्यक्त करने वाले सूत्र ज्ञात करने के लिए अनेक प्रयास किए गये। व्यापक रूप में, ये प्रयास विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम के विभिन्न क्षेत्रों में, तापमान के आधार पर, उत्सर्जित विकिरण का वितरण व्यक्त करते हैं। कृष्ण पिण्डों के अध्ययन से वैज्ञानिकों ने दो महत्वपूर्ण नियम प्राप्त किये। प्रथम स्टीफन और बोल्जमान नियम। दूसरा वीन का स्थापन नियम रैले और जीन्स ने सन् 1900 में ऊष्मीय विकिरण के इन दोनों नियमों को समेकित करके एक व्यापक नियम प्राप्त किया जिसके अनुसार —

''किसी तप्त कृष्ण पिण्ड से उत्सर्जित विकिरण की तीव्रता उसके परमताप के चतुर्थ घात के समानुपाती और विकिरण के तरंग दैर्घ्य के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होती है।''

परन्तु रैले एवं जीन्स के नियम से प्रायोगिक परिणाम पूरी तरह मेल नहीं खाते हैं। एक गंभीर बात यह है कि रैले एवं जीन्स के अनुसार लघुत्तर तरंगदैर्घ्य की ओर विकिरण की तीव्रता असीमित रूप से बढ़ती जानी चाहिए पर व्यवहार में ऐसा नहीं पाया जाता है। चिरसम्मत सिद्धान्त के आधार पर प्राप्त रैले एवं जीन्स नियम, प्रयोगों द्वारा प्राप्त तरंगदैर्घ्यों (500 नैनोमीटर से अधिक के लिए) सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक परिणामों में अच्छा मेल पाया जाता है, परन्तु निम्नतर तरंगदैर्घ्य की ओर सैद्धान्तिक सूत्र प्रयोगफलों से सर्वथा बेमेल हो जाते हैं। इस विसंगति को दूर करने के लिए चिरसम्मत सिद्धान्तों के आधार पर जितने भी प्रयास किए गये, वे सब असफल रहे। अंततः सन् 1901 में जर्मन भौतिकविद मैक्स प्लांक ने ''क्वांटम परिकल्पना'' के आधार पर इस वितरण की व्याख्या सफलतापूर्वक प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार

(शेष पृष्ठ 21 पर देखें)

खाद्य एवं विषाक्त खुम्ब की पहचान

प्रमिला शाह एवं डॉ० नरेन्द्र कुमार

खुम्ब एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक आहार है जिसमें मानव शरीर के लिए आवश्यक सभी तत्व विद्यमान है। इसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, रेशा, खनिज तत्व तथा विटामिन पाये जाते हैं। पौष्टिकता के साथ-साथ औषधीय गुणों के कारण खुम्ब का महत्व और भी बढ़ गया है।

विश्व में खाद्य खुम्ब की लगभग 2000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें से कुछ ही प्रजातियों का कृत्रिम रूप में उत्पादन किया जा रहा है- जैसे **अगेरिकस बाइस्पोरस, अगेरिकस बाइटोरक्विस, वाल्वेरियेला वाल्वेसिया, वाल्वेरियेला डिप्लेसिया, प्ल्यूरोटस** की प्रजातियाँ, **साजोर काजू फ्लैबिलेट्स आस्ट्रिएटस लेन्टाइनस-इडोड, अरिकुलेरिया आरिकुला, फ्लैमुलिना-वेल्युटाइप** आदि।

हमारे देश में पाई जाने वाली खाद्य खुम्ब की 300 प्रजातियों में से 80 प्रजातियाँ प्रायोगिक रूप में, 20 प्रजातियाँ व्यापारिक रूप में और 4-5 प्रजातियाँ व्यावसायिक रूप में उगाई जा रही हैं।

खुम्ब का भोजन के रूप में प्रयोग आदिकाल से ही मानव सभ्यता से जुड़ा है। रोमवासियों के अनुसार इसे ''देवताओं का भोजन'' की संज्ञा दी गई है। वास्तव में ये उच्च श्रेणी के कवकों की प्रजातियाँ हैं। इनमें क्लोरोफिल नहीं पाया जाता। इनका कृत्रिम-उत्पादन लगभग 200 वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया गया। प्राकृतिक रूप से जंगलों में खाद्य खुम्बों के साथ-साथ कई विषैले खुम्ब भी उगते हैं। लोवनफेल्ड (1956) के सर्वेक्षण के अनुसार प्रकृति में विषैले खुम्ब, खाद्य खम्बों की अपेक्षा काफी कम मात्रा में पाये जाते हैं। फिर भी, लोगों की खुम्ब के प्रति बढ़ती हुई जिज्ञासा को देखते हुए खाद्य खुम्बों के साथ-साथ विषैले खुम्बों की जानकारी होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। स्थानीय लोगों द्वारा प्राकृतिक रूप से उगने वाले खुम्ब की कई प्रजातियों को एकत्रित करके खाया भी जाता है। परन्तु आम व्यक्ति को खाद्य एवं विषाक्त खुम्ब की सही पहचान न होने के कारण दुर्घटना का शिकार होना पड़ जाता है।

आमतौर पर खुम्ब की पहचान के लिए कई परम्परागत तरीकों का उपयोग किया जाता है। किन्तु इन परम्परागत तरीकों के आधार पर की गयी पहचान पूर्णरूपेण विश्वसनीय नहीं है। इसके कई अपवाद हैं जो तथ्य निम्न प्रकार हैं —

- कहा जाता है यदि चाकू से काटने पर खुम्ब का रंग बदल जाय तो वह खुम्ब विषैला होता है, यदि रंग न बदले तो वह खुम्ब खाद्य होता है।

बोलेटन साइनिसन्स चाकू से काटने पर स्याह रंग का हो जाता है, विषैला नहीं है, जबकि अमानिता प्रजाति के खुम्ब चाकू से काटने पर रंग नहीं बदलते, लेकिन विषैले हैं।

- जिस खुम्ब की बाहरी परत आसानी से निकल जाती है वह खाद्य माना जाता है।

अमानिता फैलोइड्स की बाहरी परत आसानी से निकल जाती है। परन्तु यह विषाक्त खुम्ब है, खाद्य नहीं।

- ऐसे खुम्ब जिनसे दुध की तरह का तरल पदार्थ (लैटेक्स) निकलता है वे विषैले होते हैं।'

लैक्टेरियस सैम्बिफ्लस व **लैक्टेरियस डोलिसिओसस** से लैटेक्स निकलता है, पर खाद्य हैं।

- आमतौर पर गहरे रंग के खुम्ब विषाक्त माने जाते हैं।

कई गहरे रंग के खुम्ब जैसे **माइसिना प्यूरा**, **कोर्टिनेरिसस व्योलेसियस** व **कैन्थैलस साइबेरियम** खाद्य खुम्ब हैं।

- सफेद व हल्के रंग के खुम्ब खाद्य माने जाते हैं।

अमानिता फैलोइटस, **अमानिता वर्ना** और अमानिता **सिरोसा** सफ़ेद रंग के खुम्ब हैं, लेकिन खाद्य नहीं हैं।

- अधिकांशतः यह माना जाता है कि एक वर्ग में आने वाले सभी खुम्बों की प्रकृति एक सी होती है।

अगेरिकस वर्ग के अधिकतर खुम्ब खाद्य हैं लेकिन इसी वर्ग का एक खुम्ब **अगेरिकस जैन्थोफिल** विषैला है।

- यह भी धारणा है कि जिन खुम्बों को घोंघे व अन्य छोटे जीव खाते हैं, वे खुम्ब विषाक्त नहीं होते।

कुछ खुम्ब ऐसे भी हैं जिन्हें घोंघे बहुत पसन्द करते हैं, पर वे विषाक्त हैं जैसे **अमानिता** मस्कारिआ व **अमानिता फैलोइड्स**।

- कहा जाता है बसंत ऋतु में उगने वाला खुम्ब विषैला नहीं होता है।

अमानिता वर्ना बसंत ऋतु में उगता है, लेकिन विषैला खुम्ब है।

- पतझड़ के मौसम में उगने वाले खुम्ब खाद्य माने जाते हैं।

अमानिता मस्कारिआ व **अमानिता फैलोइड्स** पतझड़ के मौसम में उगते हैं, पर खाद्य नहीं हैं।

- सजीव पेड़ों पर उगने वाले खुम्बों को खाद्य व निर्जीव पेड़-पौधों व सड़े-गले पदार्थों पर उगने वाले खुम्बों को विषाक्त माना जाता है।

खुम्ब के प्रति यह धारणा भी ग़लत है, क्योंकि **क्लाइटोसाइब ओलीएसिया** सजीव ओक व जैतून के पेड़ों पर उगता है खाद्य नहीं है, जबकि **कॉपराइनस कॉमेटस** सड़ी-गली खाद पर उगता है, लेकिन खाद्य है।

बहुत से लोगों का यह भी मानना है कि यदि खाद्य खुम्ब को कोई विषैला सर्प छू ले या उसके आस-पास कोई जहरीला पौधा हो, तो खाद्य खुम्ब भी विषैला हो सकता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि किसी पौधे की उपस्थिति खुम्ब की उपज को प्रभावित कर सकती है, लेकिन एक खाद्य खुम्ब को विषाक्त खुम्ब में परिवर्तित नहीं कर सकती।

अलग-अलग प्रजाति के विषैले खुम्बों में विष भी भिन्न-भिन्न प्रकार का पाया जाता है। विष के प्रभाव के आधार पर विषैले खुम्बों को चार वर्गों में विभाजित किया गया है –

1. पाचक तंत्र विनाशक : इस प्रकृति के खुम्ब सीधे आँतों में अपना प्रभाव दिखाते हैं, जिससे उल्टी-दस्त व पेट-दर्द होता है। जैसे **रूसुला इमीटिका, इन्टोलोमा लिपिडम।**

2. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र विनाशक खुम्ब : ये खुम्ब मस्तिष्क की कोशिकाओं को प्रभावित करते हैं, जिसके फलस्वरूप चक्कर आने लगता है। कभी-कभी आँखों की दृष्टि में भी बाधा पड़ती है। जैसे – **पैनिओलस** वर्ग के खुम्ब।

3. अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र विनाशक खुम्बः इन खुम्बों के सेवन से उल्टी-दस्त शुरू हो जाते हैं, फिर मांस-पेशियों में खिंचाव के साथ मूर्छा आने लगती है। समय पर उपचार न होने पर मृत्यु भी हो सकती है। जैसे – **अमानिता मस्कारिआ, क्लाइटोसाइब इडूलैन्स।**

4. कोशिका विनाशक खुम्ब : इस प्रकार के खुम्बों के सेवन से रुधिर कोशिकाएँ नष्ट होने लगती

हैं जिससे पीलिया (जॉन्डिस) होने की सम्भावना रहती है। जैसे – **गाइरोमित्रा एस्कुलैन्टा।**

अधिकांशतः विषाक्त खुम्ब ''अमानिता'' समूह के होते हैं। विषाक्त खुम्ब के सेवन से होने वाली दुर्घटनाओं में 70 प्रतिशत **अमानिता फैलोइड्स** खुम्ब के कारण होती है। इस समूह के खुम्ब की प्रमुख पहचान यह है कि इसके स्टाइप ('तने' सदृश्य रचना) के नीचे वाले भाग में कप के सदृश्य आकृति होती है, जिसे ''वल्वा'' कहते हैं और स्टाइप के ऊपरी भाग में गिल्स के नीचे ''एनुलस रिंग'' होती है, जो सफ़ेद झिल्ली की तरह स्टाइप से जुड़ी रहती है। **अमानिता** समूह के खुम्ब में 'साइक्लोपेप्टाइड्स' व 'अमेनिटिन' पाया जाता है, जो हमारे शरीर के लिए हानिकारक है। यही कारण है कि इस खुम्ब के सेवन के 9-15 घंटे बाद उल्टी-दस्त शुरू हो जाते हैं, फिर चक्कर-सा आने लगता है। धीरे-धीरे यह यकृत व गुर्दे की कार्य-प्रणाली को प्रभावित करता है जिससे आदमी ''कोमा' की स्थिति में पहुँच जाता है और समय पर उपचार न होने पर मृत्यु का शिकार हो जाता है।

अतः किसी भी जंगली खुम्ब के प्रयोग से पहले खुम्ब विशेषज्ञ से पहचान करवाना अति आवश्यक है। परम्परागत तरीकों के आधार पर खुम्ब की पहचान कर उसे खाने का दुःसाहस नहीं करना चाहिए। खुम्ब की पहचान के लिए अभी तक कोई एक निश्चित सिद्धान्त नहीं है, जिसके आधार पर खाद्य व विषाक्त खुम्ब में भिन्नता प्रकट की जा सके। खुम्ब की पहचान के लिए प्रयोग किये जाने वाले परम्परागत तरीके मात्र भ्रांतियाँ हैं, इनसे खुम्ब की सही पहचान सम्भव नहीं है। खाद्य-विशेषज्ञों द्वारा खुम्बों की सही पहचान उसकी प्रत्येक प्रजाति का क्रमबद्ध अध्ययन करके किया जाता है, जिसमें खुम्ब के उगने का स्थान, उगने का मौसम, वितरण, खुम्ब की बाह्य आकृति, आकार तथा विभिन्न वर्गों हेतु रासायनिक परीक्षण किये जाते हैं।

खुम्बों के बीजाणुओं का परीक्षण **मेलजर्स अभिकर्मक** (0.5 ग्राम आयोडीन + 1 ग्राम पोटेशियम आयोडाइड + 20 मिल. ली. आसुत जल + 20 ग्राम क्लोरल हाइड्रेट) में किया जाता है। **मेलजर्स अभिकर्मक** में डुबोने पर कई खुम्बों के बीजाणु रंग बदलते हैं। रंग परिवर्तन के आधार पर खुम्बों की सही पहचान कर ली जाती है।

खुम्ब के प्रति जो भ्रान्तियाँ हैं यदि उनका सही ज्ञान हो और खुम्ब विशेषज्ञों द्वारा प्रकृति में मूल रूप से व्याप्त खाद्य खुम्बों की सही पहचान कर ली जाय तो निकट भविष्य में प्रकृति की इस अनमोल देन का निःसंकोच एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक आहार के रूप में प्रयोग बढ़ाकर प्रोटीन की कमी व खाद्य समस्या का कुछ अंश तक निराकरण किया जा सकता है और साथ ही अनभिज्ञातावश विषाक्त खुम्ब के सेवन से होने वाली दुर्घटनाओं से बचा जा सकता है।

– रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला,
पिथौरागढ़ (उ० प्र०) – 262501

भूल सुधार

विज्ञान के फरवरी 2000 अंक में पृष्ठ 1 सर रामन के जन्म का वर्ष 1888 के स्थान पर 1988 छप गया है। इस त्रुटि के लिए हमें खेद है।

– सम्पादक

टेफलॉन-संगमरमर जैसा प्लास्टिक

डॉ० डी० डी० ओझा

संयोगवश कई आविष्कार ऐसे हो जाते हैं जिसका वैज्ञानिकों को भी पूर्वानुमान नहीं होता। ऑस्ट्रोमिसलेंस्की नाम के वैज्ञानिक कृत्रिम रबड़ की खोज में प्रयत्नशील थे किन्तु उनके हाथ पॉलिवायनिल क्लोराइड का आविष्कार अचानक लग गया। यह देखा गया है कि अनुसंधान क्षेत्र में कई बार वैज्ञानिक की हालत इस प्रकार हो जाती है जैसी कि कहावत है कि ''चौबे जी होने गए थे छब्बे जी किन्तु रह गए दूबे जी''। कभी-कभी तो इससे भी गंभीर स्थिति हो जाती है। प्लंकेट नामक वैज्ञानिक की हालत ठीक ऐसी ही रही होगी। ये टेट्राफ्लोरो एथिलीन से एक अलग ही प्रकार की गैस के अनुसंधान में प्रयत्नशील थे, जो पदार्थों को ठंडा करने के काम में आ सके। इस अनुसंधान-कार्य में वे लगातार असफल होते रहे।

उन्होंने एक नली में टेट्राफ्लोरोएथिलीन नामक द्रव संचित करके रखा था। कुछ ही समय पश्चात् प्लंकेट के मन में संशय उत्पन्न हुआ कि हो न हो, उक्त नली खाली हो गई है और वे सोचने लगे कि आखिर उस द्रव का क्या हुआ होगा और वह कहाँ लुप्त हुआ होगा। इस शंकाओं के समाधान के लिए जब उन्होंने नली फोड़ी तो उसके भीतर एक सफेद पाउडर दिखाई दिया। यह सफेद पाउडर अन्य कुछ भी न होकर पॉलिटेट्राफ्लोरोएथिलीन यानी वर्तमान का ''टेफलॉन'' ही था। इस प्रकार की नई उपलब्धि से वर्ष 1933 प्लंकेट के लिए बहुत लाभदायक रहा तथा विश्व को एक नए प्रकार का प्लास्टिक पदार्थ प्राप्त हुआ। टेट्राफ्लोरोएथिलीन गैस रंगहीन, स्वादहीन, गंधहीन तथा विषरहित होती है। इसे द्रव रूप में संचित किया जाता है।

टेफलॉन का औद्योगिक उत्पादन दो भिन्न-भिन्न प्रकार की रासायनिक पद्धतियों से किया जाता है। पहली पद्धति में टेट्राफ्लोरोएथिलीन में उत्प्रेरक तथा अन्य रसायन मिलाकर बहुलकीकरण के बाद टेफलॉन के छोटे-छोटे कण तैयार होते हैं। दूसरी पद्धति में टेट्राफ्लोरोएथिलीन, उत्प्रेरक, जल तथा साबुन जैसे पदार्थों को एकसाथ मथकर प्रक्रिया घटित की जाती है। इस पद्धति में टेफलॉन चूर्ण के रूप में अथवा द्रव रूप में मिलता है।

टेफलॉन का औद्योगिक उत्पादन करने का श्रेय डूपोंट कंपनी को ही जाता है जिसने वर्ष 1950 में इसका नामकरण के साथ इसका उत्पादन भी शुरू किया। वस्तुतः यह प्लास्टिक बहुत ही विलक्षण है। यह किसी भी द्रव में नहीं घुलता है। न्यूनतम तापमान से अधिकतम तापमान तक किसी भी प्रकार के तापमान (-250 से + 25^{o} सेल्लियस) के कारण इसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। संगमरमर की शुभ्रता एवं चिकनापन तो इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। टेफलॉन से अन्य कोई भी वस्तु नहीं चिपकती और वह भी किसी वस्तु को अपने में चिपकने नहीं देता। यह विद्युत् तथा घर्षण निरोधक होता है। यांत्रिक क्षेत्र में अपना अस्तित्व कायम रखने में यह सफल साबित हुआ है।

टेफलॉन के बहुपयोग – टेफलॉन ने रसोईघर से लेकर बड़े-बड़े कारखानों तक अपना सिक्का जमा रखा है। घर में जब अधिक मेहमान आये हुए होते हैं, तब जल्दी से पूड़ियाँ बनानेवाले यंत्र में लगाई गई गोल सफेद तख्ती इसी टेफलॉन की होती है। स्वयं किसी वस्तु से न चिपकने या अन्य वस्तु को न चिपका देने

की इस विशेषता के कारण आटे की लोई को दबाया नहीं कि वह फैलती जाती है और उसकी पूड़ी तैयार हो जाती है। इसी प्रकार, डोसा, पूरणपोली, आमलेट आदि बनाने में प्रयुक्त नॉनस्टिक तवों या ऑमलेट पैन टैफ्लॉन का लेप चढ़ाकर बनाया जाता है। इस तवे के रख-रखाव हेतु इसे हल्का-हल्का ही माँजना पड़ता है। टेफ्लॉन पर किसी भी रसायन का असर नहीं पड़ता (ओलियम रसायन से उसका पृष्ठ भाग काला पड़ जाता है), इसलिए बड़े-बड़े रासायानिक प्रक्रिया पात्रों के भीतरी भाग पर इस प्लास्टिक की कोटिंग चढ़ायी जाती है। यांत्रिक मथनी, बुशिंग आदि के लिए टेफ्लॉन काम में लाया जाता है। टेफ्लॉन विद्युतनिरोधक होता है, इसलिए विद्युतमोटरों, पानी में बिठाई गई विद्युतमोटरों के आर्मेचर के निरोधक आवरण आदि में टेफ्लॉन की फिल्में या टेप लगाई जाती है। यंत्रों के जिस भाग में अधिक दाब रहता है वहाँ टेफ्लॉन का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि अत्यधिक दाब के कारण टेफ्लॉन का आकार भी बदल जाता है। इस कमी को दूर करने के लिए टेफलॉन में काँच के धागे, ग्रेफाइट, काँसी या इसी प्रकार की मिश्रधातुएँ मिलाई जाती हैं। ग्रेफाइट-टेफ्लॉन के मेल से बनाए गए यंत्रों के भागों में घर्षण की मात्रा बहुत ही कम रहती है तथा ऐसे कल-पुर्जे बहुल वर्षों तक काम देते हैं।

टेफ्लॉन के धागे से कपड़ा भी बनता है। यह प्रायः देखने को मिलता है कि कारखानों से विविध प्रक्रियाओं के कारण रसायनों के कण वातावरण में फैल जाते हैं और प्रदूषण उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार के प्रदूषण को रोकने के लिए टेफ्लॉन की थैलियों को काम में लाया जाता है। इन थैलियों में ऐसे विषैले कणों को एकत्रित करके प्रदूषण को रोका जा सकता है। पानी के नलों को एक-दूसरे से जोड़ते समय सन के रेशों (सुतली) का प्रयोग किया जाता है। इस जोड़ को खोलते समय उस पर जंग चढ़ा रहने से उसके पेंच घुमाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। पूरी ताकत लगाने पर भी कभी-कभी ऐसे जोड़ नहीं खोले जा सकते तथा कभी-कभी तो वे टूट भी जाते हैं। अतः यदि टेफ्लॉन का टेप पेंचों पर रखकर नल एक दूसरे से जोड़े जाएँ तो उन पर जंग चढ़ने की आशंका नहीं रहती है तथा उन्हें खोलते समय भी किसी भी प्रकार की अड़चन पैदा नहीं होती है।

इतना ही नहीं, टेफ्लॉन का उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में भी विशेषतः शरीर के कृत्रिम अंग बनाने के लिए भी किया जाता है। हमारे शरीर में भी टेफ्लॉन आसानी से प्रविष्ट किया जा सकता है। इसी कारण इस प्लास्टिक का उपयोग हृदय में लगाए जानेवाले कृत्रिम वाल्व बनाने के लिए किया जाता है। अन्य कतिपय कृत्रिम अंग भी इससे बनाए जाते हैं, जो हमारे शरीर में आसानी से लगाए जा सकते हैं।

जैसा कि विदित है 500^{O} सेल्सियस तापमान के बाद टेफ्लॉन का विघटन प्रारंभ हो जाता है तथा उसकी राख तक नहीं तैयार होती। उसकी इस विशेषता को उपयोग में लाते हुए वैज्ञानिकों ने उपग्रह बनाने में इसका सहारा लिया है। उपग्रह बनाते समय उस पर टेफ्लॉन का पुट चढ़ाया जाता है। इस योजना का उद्देश्य यह होता है कि वातावरण में अत्यधिक ऊँचाई पर घर्षण से यान का बाहरी आवरण जल न सके और यदि थोड़ा बहुत जल भी जाए तो उसके कारण यान को किसी भी प्रकार के खतरे का सामना न करने पड़े।

व्यापारिक क्षेत्र में यह हैलोन,पालिफॉन, होस्टप्लॉन, प्लूकॉन आदि कई नामों से बिकता है। हमारे देश में टेफ्लॉन-हिफ्लॉन का उत्पादन आंध्र प्रदेश में होता है। कारखानों के लिए आवश्यक 'स्पेयर पार्ट्स' तो मुँहमाँगे दाम में खरीदने पड़ते हैं तथा उन्हें लाने में भी अधिक समय लगता है। यदि मात्र थोड़े से अधिक दाम में टेफ्लॉन बनाया जाए तो उससे विदेशी मुद्रा एवं समय की भी बचत हो सकती है एवं काफी लाभ कमाया जा सकता है।

-विज्ञान परिषद् जोधपुर शाखा, ब्रह्मपुरी
हजारी चबूतरा, जोधपुर – 342001

चैतन्यमय जगत

प्रेमघन

उपाध्याय चौधरी बदरी नारायण ''प्रेमघन'' (जन्म 21 अगस्त 1856, देहावसान 14 फरवरी 1923 ई०) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के अभिन्न मित्र, भारतेन्दु मंडल के प्रतिभावान नक्षत्र, हिन्दी के उन्नायक, संस्कृत, हिन्दी, बंगला, उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी भाषाओं के ज्ञाता, मासिक पत्रिका ''आनन्द कादम्बिनी'' एवं साप्ताहिक पत्र ''नागरी नीरद'' के संपादक, कवि, लेखक विचारक, तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन - कलकत्ता के सभापति; मीरजापुर के प्रसिद्ध प्रतिष्ठित नागरिक एवं रईस थे। ''आनन्द कादम्बिनी'' की माला 4, चैत्र-वैशाख, सं० 1960 वि० मेघ, 8, 9 के अंक में प्रकाशित, आचार्य जगदीश चन्द्र बसु के नवीन आविष्कारों की चर्चा से संबद्ध लेख ''चैतन्यमय जगत'' में ''प्रेमघन'' जी ने तात्कालिक हिन्दी भाषा के पत्रों के संपादकों से आचार्य बसु को ''भारत-मार्तण्ड'' की उपाधि से विभूषित करने का निवेदन किया है। उन्ही के शब्दों में :-

सम्पादक मण्डल

हम आर्य्य सन्तान मात्र समस्त जगत को चैतन्यमय मानते हैं, हमारे पूर्व पुरुष भी ऐसा ही मानते चले आये हैं। न केवल सामान्य तत्ववित् वरञ्च त्रिकालदर्शी ऋषिगण यही सिद्धान्त कर गये हैं। हमारे सत्य शास्त्र भी पुकार-पुकार कर यही उपदेश कर रहे हैं। यद्यपि पवित्र वेद, उपनिषद् और पुराणों में इसके विषय में बहुतेरे प्रमाण मिलते हैं, परन्तु महाभारत के शान्ति पर्व में तो वृक्षादि के पञ्चज्ञान इन्द्रिय आदि का विस्पष्ट रूप से सविस्तर वर्णन वर्णित है। किन्तु जहवादी यूरप निवासी उसपर विश्वास नहीं करते। सुतराम् यदि केवल वेही इस पर आशंका करें तो इतने आश्चर्य का विषय नहीं है, क्योंकि उनका विज्ञान अभी इन सूक्ष्म विषयों तक नहीं पहुँचा है। परन्तु खेद का विषय है कि आजकल प्रायः उन्हीं के स्वीकृत सिद्धान्तों को सत्य मानने वाले उनकी शिक्षा दीक्षा से दीक्षित अनेक हमारे देश निवासी भ्रातृगण भी भूलकर अपने सनातन सम्मत सिद्धान्तों से विचलित हुए से लखाते हैं, इसी से न केवल यूरोपीय वैज्ञानिकों और विद्वानों के समझाने और सिखलाने ही के लिए उन प्राचीन सिद्धान्तों को प्रमाणित करने की आवश्यकता आन पड़ी है वरञ्च उनके अनुगामी अपने अनेक भूले भाइयों के चित्तों में भी पुनरपि उन प्राचीन सिद्धान्तों के स्थापन करने वा अटल रखने की अधिक आवश्यकता हुई है।

परन्तु उन प्राचीन सिद्धान्तों में से किसी एक को भी यूरप में चमत्कृत मस्तिष्क विशद बुद्धि विशारद वैज्ञानिकों की सभा में खड़े होकर प्रत्यक्षतया प्रमाणित कर देना आज क्या किसी भारतीय आर्य्य सन्तान से सम्भव समझा जा सकता है ? कहाँ यूरप और कहाँ भारत ! कहाँ आकाश और कहाँ पताल ! कहाँ अँगरेज़ और कहाँ भारतीय ! दोनों की दशा में दिन और रात्रि का अन्तर है। अँगरेज़ों की विद्या बुद्धि आज सूर्य्य सी प्रकाशमान संसार की आँखों में चकाचौंध दे रही है। हमारी विद्या बुद्धि घोर घन पटल आच्छादित कुहू निशीय के तिमिर राशि पूरित दुर्दशा में अनभ्यास झाड़ झंखाड़ों के बीच जुगनू सी जुगजुगा रही है। परन्तु ईश्वर की महिमा अत्यन्त विचित्र है। उसकी भारत भूमि की सृष्टि भी बड़ी ही विलक्षण है, जिसमें समय-समय पर ऐसे ही लोग उत्पन्न हो जाया करते हैं जो अवाज्वक संसार को चकित कर दिया

करते हैं। यवनों के घोर अत्याचार पूरित सुदृढ़ साम्राज्य के समय में किसे भरोसा हो सकता था, कि अब भी कोई एक ऐसा आर्य्य सन्तान उत्पन्न होगा कि जो अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापन कर सकेगा। परन्तु मानो इसी असम्भव को सम्भव करने के अर्थ ईश्वर ने महाराज शिवा जी छत्रपति को उत्पन्न किया। जिसने औरङ्गज़ेब से उद्दंड यवन राज के उत्कट समय में भी अपना अखण्ड राज स्थापन कर लिया, और ऐसा धक्का मारा कि जिसके आघात से क्रमशः छिन्नभिन्न हो यवन राज्य प्रायः भारत में शून्य हो गया। उसी प्रकार दूसरा उदाहरण पंजाब केशरी महाराजा रणजीत सिंह द्वारा भी दिखलाया। आज ऐसे गिरे दिन में भी भारत भूमि ऐसे सन्तान प्रसव कर सकी है जो न शस्त्र तो शास्त्र द्वारा संसार को चकित करने में समर्थ हुए हैं। उनमें से एक महानुभाव का आदरणीय नाम विज्ञान शास्त्र के आचार्य्य **डॉ० श्री जगदीश चन्द्र बसु** है। जिसकी विद्या बुद्धि की यशो ज्योत्स्ना आज सारे संसार में फैल रही है।

सम्प्रति हम लोग आश्चर्य से यही सुना करते हैं कि यूरप वा अमेरिका के अमुक विद्वान ने अमुक अद्‌भुत यन्त्र का निर्माण किया, वा अमुक अज्ञात तत्व का आविष्कार किया है। साथ ही उसके किसी भारतीय विद्वान से ऐसी आशा एकबार ही अति असम्भव समझते हैं। परन्तु आज ठीक-ठीक उसके विपरीत उदाहरण मिला है। उक्त बसु महाशय ने असाधारण प्रतिभा और बहुत चेष्टा से जिस नये तत्व का अविष्कार किया है, उससे यूरोप के विज्ञान राज्य में मानो नये युग का प्रवर्त्तन हुआ है। थोड़े दिन हुए लण्डन के रायल इन्स्टीट्यूशन में उन्होने एक वक्तृता की, कि वृक्ष, गुल्म, लता, प्रस्तर, धातु, आदि जड़ वस्तुओं में भी चेतना विराजती है। पूर्व प्रशंसित महानुभाव ने युरोप की विज्ञानसम्मत परीक्षा से सब को दिखला दिया, कि मनुष्य पशु पक्षी आदि की भाँति वृक्ष, गुल्म लता, प्रस्तरादि धातुओं में भी विषय के अनुभव की शक्ति वर्त्तमान है। अर्थात् मनुष्य में जैसे जीवन और ज्ञान की शक्ति है, जड़ पदार्थों में भी वैसी ही है। आज तक युरोप के दार्शनिक लोगों की यही धारणा थी, कि जड़ पदार्थ प्राणहीन है, परन्तु जगदीश बाबू ने विज्ञान बल से ही प्रमाणित कर दिया, कि वह धारणा भूल है। विष से वा क्लोरोफ़ारम करने से जैसे मनुष्य की चेतना जाती रहती है, ठीक वैसे ही उसके प्रयोग से जड़ वस्तुओं की भी दशा हो जाया करती है। अर्थात् जैसे देह की भीतर के चैतन्य प्रकाशक यन्त्र के गड़बड़ होने से देह की चित्त शक्ति का विकास बन्द होकर निरूपित समय में मृत्यु होती है, और देह वस्तुओं के मरण और रूपान्तर पाने की अवस्था भी ठीक उसी नियम के अनुसार होती है।

युरोप वालों को जो न सूझी थी, जगदीश बाबू को यही सूझी है। जिससे उनकी इतनी कीर्त्ति हुई है। युरोप के पण्डितों ने अभी तक बिजली के सहारे अनेक यन्त्र बनाकर अनेक परीक्षाएँ की थी, परन्तु बिजली के सहारे जड़ पदार्थ में चैतन्य को परखने का यन्त्र जगदीश बाबू ही ने बनाया। इसी से युरोप के सब पंडितों ने इस चैतन्य-प्रकाशक यन्त्र को देखकर इसके चलाने की रीति परख कर और इसकी उद्‌भावना को सराहकर बिजली की सर्वशक्तिमत्ता समझने वाला एक मात्र आचार्य्य जगदीश बाबू को ही स्वीकार किया है। यह भी जानना चाहिए कि हमारे शास्त्रों में वर्णन की हुई चेतना का चिच्छक्ति ही यूरोप वालों के यहाँ बिजली कहलाती है।

प्रशंसित डाक्टर महोदय ने इसके आगे भी अपने विलक्षण बुद्धि वैभव और वैज्ञानिक प्रतिभा से और भी नवीन आविष्कार किये हैं। इसके पूर्व उन्होंने एक ऐसा ही अपूर्व और विलक्षण यन्त्र और उसके तरंगों का पता लगा और उसके रंग रूप आदि नेत्रों से देख पड़ने लगे, जिस कारण उनकी बड़ी ख्याति हुई, और विलायत के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों की सभा ने उनके नवीन आविष्कार के महत्व की मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया, और जिसके द्वारा आज बड़े कठिन और आश्चर्यजनक कार्य हो रहे हैं।

अब प्रश्न यह है, कि उनके इतने बड़े पुरुषार्थ का देश ने क्या सम्मान किया ? भारत गवर्नमेण्ट ने उनकी बहुत कुछ सहायता की है, परन्तु हमारे देश के किस राजा महाराजा व धनी ने उन्हें क्या पुरस्कार दिया ? जन साधारण ने उनके साथ क्या उपकार किया ? उन्होंने अपने इतने बड़े परिश्रम के लिए देश से कौन सा फल

पाया ? यदि इसका उत्तर नहीं, अथवा कुछ नहीं है ? तो क्या यह किसी सभ्य देश के लिए लज्जा का विषय नहीं है ? अस्तु, आर्थिक पुरस्कार तो राजा महाराजाओं के हाथ में है, इसमें उन्हें अपनी योग्यता दिखलाने, और देश के कलंक छुड़ाने के अच्छे अवसर को कदापि हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। परन्तु हम लोगों को भी किसी कवि के कथनानुसार मौनावलम्बन नहीं करना चाहिये। यथा,-

''मिख परवाना नहीं कुछ जरी माल अपने पास।
हम फ़क़त तुझ पै फ़िदा करने का जोर रखते हैं।''

अतः समस्त सम्पादकों की सेवा में सविनय निवेदन है, कि यदि वे उचित समझें तो प्रशंसित होकर महानुभाव को अपनी ओर से **''भारत मार्तण्ड''** की उपाधि से भूषित करें। और उनके इतने बड़े परिश्रम की कृतज्ञता देश की ओर से स्वीकार कर, उन्हें उत्साहित करें क्योंकि उन्हें अभी इस विषय में बड़े-बड़े धुरन्धर वैज्ञानिकों से द्वन्द्व युद्ध करना है।

— डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय
फैजाबाद के सौजन्य से

(पृष्ठ 13 का शेषांष)

द्रव्य पदार्थों से विकिरण ऊर्जा का उत्सर्जन या अवशोषण एक क्वाण्टमी प्रक्रिया है अर्थात् यह उत्सर्जन या अवशोषण सतत् रूप से न होकर, ऊर्जा के नन्हे पैकेटों के रूप में होता है। इन पैकेटों का मान सम्बद्ध विकिरण की आवृत्ति पर निर्भर होता है।

मैक्स प्लांक के कृष्ण पिण्ड विकिरण के अध्ययन से उत्पन्न क्वांटम सिद्धान्त एक अत्यधिक उर्वर आधुनिक भौतिकी की परिकल्पना है जो एक निकाय में ऊर्जा के संचरण की कल्पना प्रदर्शित करती है। ऊष्मा का संचरण एक समूह से दूसरे समूह में सतत् न होकर एक निश्चित क्वांटा के रूप में होता है जो प्राकृतिक आवृत्ति के समानुपाती होता है। इस समानुपातिक स्थिरांक को प्लांक स्थिरांक कहते हैं और इसका मान 6.457×10^{-8} अर्ग सेकेण्ड तथा इकाई कोणीय संवेग की इकाई है।

प्लांक इस संकल्पना पर पहुँचे कि एक सरल आवर्ती दोलन विकिरण के लिए एक अनुनादक के रूप में कार्य करता है। आइन्सटाइन ने सन् 1905 में इसी परिकल्पना का विद्युतचुम्बकीय विकिरण के क्षेत्र में प्रयोग कर प्रकाशविद्युत प्रभाव के नियम विकसित किए और बोह्र ने सन् 1913 में हाइड्रोजन परमाणु का सिद्धान्त विकसित किया। डिबाई ने सन् 1912 में इसी परिकल्पना का उपयोग कर ठोस पदार्थों की विशिष्ट ऊष्मा की व्याख्या की तथा कॉम्प्टन ने सन् 1923 में इसका उपयोग कर कॉम्प्टन प्रभाव को पूर्णरूप से परिभाषित किया। इतना ही नहीं, इलेक्ट्रान विवर्तन को क्वांटम सिद्धान्त द्वारा ही पूरी तरह से समझा जा सका। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आइन्सटाइन, बोह्र, कॉम्प्टन को क्रमशः 1921 1922 और 1927 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ जिससे प्लांक की खोज की महत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। आशा है कि 21वीं सदी में क्वांटम भौतिकी विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

-भौतिकी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

वर्तमान कृषि शिक्षा प्रणाली – समस्याएँ व समाधान

डॉ० राजेन्द्र सिंह परोदा

कृषि हमारी भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। सकल घरेलू उत्पाद,में इस क्षेत्र का योगदान 32% है तथा समकालीन विकसित विश्व के 2.7% की तुलना में हमारे देश की 70% आबादी कृषि के काम में लगी हुई है। सौभाग्यवश हमारे कृषि उत्पादन में 2.1% प्रतिवर्ष की वृद्धि जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप होती रही है। वर्ष 1950-51 के 51 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन की तुलना में वर्ष 1995-96 में 192 मिलियन टन का रिकार्ड उत्पादन हुआ तथा हमारे पास खाद्यान्न का पर्याप्त सुरक्षित भण्डार है। तिलहन के क्षेत्र में भी, जो मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर है, पिछले सात वर्षों में शानदार उपलब्धि रही है और हमारा उत्पादन दुगुना (22 मिलियन टन) हो गया है तथा खली एवं गौण तेलों का निर्यात खाद्य तेलों के हमेशा सबसे अधिक रहने वाले आयात बिल से दुगुना है। बागवानी, पशुधन, दूध, मछली और मुर्गीपालन के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ है। आज हम फलों, गन्ना और आलू के सबसे बड़े उत्पादक हैं तथा दूध एवं सब्जी के उत्पादन में विश्व में हमारा दूसरा स्थान है। इन सभी स्पष्ट संकेतों से यह पता चलता है कि कृषि विज्ञान ने हमारे राष्ट्र की समग्र उन्नति और समाज के विकास में मदद की है। इससे हमारा आत्मसम्मान बढ़ा है और यह आत्मविश्वास पैदा हुआ है कि हम अपनी निरंतर बढ़ती आबादी को बिना अधिक आयात किये खिला सकते हैं। जहाँ तक खाद्यान्न उत्पादन का सवाल है आज हम इसमें आत्मनिर्भर हैं। यह आत्मनिर्भरता काफी हद तक हमारे वैज्ञानिकों के सम्मिलित प्रयासों तथा सरकार की प्रगतिशील नीतियों के कारण ही संभव हो सकी है। फिर भी, हम यह सोचकर इत्मीनान से नहीं बैठ सकते कि हमारे खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की दर जनसंख्या में होने वाली 2.0% की वृद्धि दर से थोड़ी अधिक है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में हमें 4.5% की कृषि विकास दर प्राप्त करनी होगी, बशर्ते कि 7.0% की राष्ट्रीय विकास दर प्राप्त कर ली जाती है। हमारे देश में पर्याप्त मात्रा में अन्न का सुरक्षित भण्डार होने के बावजूद लोग गरी तथा कुपोषित हैं। खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि काफी हद तक अनाज के उत्पादन में वृद्धि होने के कारण ही हुई है। दूसरी ओर दालों का उत्पादन पिछले तीन दशकों में 13 से 14 मिलियन टन के बीच स्थिर रहा है, जिसके कारण प्रति व्यक्ति प्रोटीन के प्रमुख स्रोत दालों की उपलब्धता कम रही है। मानव स्वास्थ्य सीधा पोषक तत्वों पर निर्भर है इसलिए भारत में दालों के उत्पादन में सुधार लाने पर तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है। कृषि के क्षेत्र में इन चुनौतियों से निपटने के लिए हमें कृषि अनुसंधान को और गति देनी होगी तथा कृषि शिक्षा को और सफल बनाना होगा।

राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली

कृषि अनुसंधान और शिक्षा के लिए हमने विश्व में एक सर्वाधिक मजबूत राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली का विकास किया है। आज इसके तहत 49 अनुसंधान संस्थान, 30 राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र, 10 प्रायोजना निदेशालय, 28 राज्य कृषि विश्वविद्यालय तथा एक केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय और अनेक अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान प्रायोजनाएं कार्य कर रही हैं जिनमें 24,000 से अधिक कृषि वैज्ञानिक और शिक्षक कार्यरत हैं। हमारे कृषि विश्वविद्यालयों से प्रति वर्ष करीब 10,000 कृषि स्नातक निकलते हैं।

कृषि मानव संसाधन विकास

भारतीय कृषि को 21वीं शताब्दी में ले जाने के लिए तेजी से बदलती जरूरतों और भावी चुनौतियों के अनुरूप कृषि कार्य में लगी जन-शक्ति की गुणता, तकनीकी निपुणता और प्रबंधन में सुधार लाना अति आवश्यक है। अगर दी जाने वाली शिक्षा वर्तमान और भावी वास्तविकताओं के अनुरूप नहीं है तो राष्ट्रीय अनुसंधान, विस्तार और कृषि व्यवसाय प्रणालियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

यह एक आम राय है कि कृषि विज्ञान के विभिन्न विषयों में स्नातकों की योग्यता में गिरावट आ रही है और यह अत्यावश्यक है कि राज्य कृषि विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा की गुणवत्ता और स्तर को उन्नत करने पर ध्यान दें। विशेषकर छात्रों को उपलब्ध और दी जाने वाली सूचना के रूप में समग्रतः निम्न शैक्षिक स्तर एक चिन्ताजनक बात है।

राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के समक्ष प्रमुख समस्याएं शैक्षिक पद्धति से ही संबंधित हैं। अधिकांश राज्य कृषि विश्वविद्यालय में उसी राज्य के छात्र होते हैं, जिससे संकीर्ण स्थानीयता जारी रहती है। शिक्षण में विशिष्टता प्राप्त करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं है, प्रशिक्षण की विधियां और पाठ्यक्रम बहुत पुराने हैं तथा भौतिक सुविधाएं, उपकरण और प्रशिक्षण के लिए सहायक साधन अच्छी स्थिति में नहीं हैं। अध्यापन में व्याख्यान पद्धति तथा शिक्षा प्राप्ति में नोट रटने पर अधिक बल दिया जाता है। पाठ्यक्रम और व्यवहारिक अनुभव के बीच स्पष्ट संबंधों पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता है। छात्र सामान्य समस्याओं के समाधान की योग्यताएं प्राप्त नहीं कर पाते, जिनसे वे नई एवं बदलती स्थितियों का मूल्यांकन कर सकें तथा उपलब्ध विकल्पों के बारे में उचित निर्णय ले सकें। विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों में साज-सामान तथा निधि का अभाव है और शिक्षा/अध्यापन के लिए इनका बहुत कम उपयोग हो पाता है। पुस्तकालयों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निरंतर मिलने वाली नई सूचनाओं को प्राप्त करने तथा उनके प्रबंधन के लिए कम्प्यूटर और दूरसंचार सुविधाओं का अभाव है। पाठ्यक्रम का बोझ बहुत अधिक है, जिससे आम रूप में जांच-पड़ताल करने की योग्यता, कक्षा में विचार-विमर्श या कक्षाओं के बाहर बौद्धिक वाद-विवाद के गुण विकसित करने के लिए समय नहीं रह पाता है। व्याख्यान कक्ष और प्रयोगशाला आधुनिक उपकरणों व सुविधाओं से सुसज्जित नहीं हैं, इसलिए सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं बन पाता है। कम्प्यूटर संबंधी सुविधाएँ लगभग नगण्य हैं।

राज्य कृषि विश्वविद्यालय को वित्तीय सहायता प्रायः अपर्याप्त रहती है। वंर्तमान पाठ्यक्रम में स्नातकों को सरकारी नौकरी के अलावा कृषि या कृषि व्यवसाय में अपना कैरियर बनाने के लिए प्रेरित करने पर बहुत कम बल दिया जाता है और वर्तमान मानव संसाधन विकास प्रणाली में इस बेमेल व्यवस्था को दूर करने हेतु तत्काल कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली की इस कमजोरी के कारण निजी नियोक्ताओं को प्रायः स्नातकों को लेने तथा उन्हें कार्य-कालीन प्रशिक्षण देने पर काफी निवेश करना पड़ता है।

सभी गतिशील प्रणालियों में स्थिरता और बाहरी ताकतों के साथ संतुलन बनाए रखने के लिए मानव संसाधन विकास एक आवश्यक घटक है। मानव संसाधन विकास के बिना संगठन प्रगति नहीं कर सकते हैं। अनुसंधान और विकास पद्धति में कोई बदलाव लाने या नया रूप प्रदान करने के प्रयास करने से पहले मानव संसाधन विकास के क्षेत्र में तद्नुरूप पहल करनी आवश्यक है। प्रणाली और सेवाओं में सभी सुधारों में मानव संसाधन विकास का घटक आवश्यक है। यदि संगठन नेतृत्व करना चाहता है तो अपेक्षित उद्देश्यों के अनुरूप व्यापक मानव संसाधन विकास कार्यक्रम शुरू करने के अलावा उसके सामने और कोई विकल्प नहीं है।

नई चुनौतियों का सामना करने और उच्च प्रौद्योगिकी वाली कृषि के लिए उन्नत प्रौद्योगिकीय जरूरतों को पूरा करने और अग्रणी विषयों में चुनौतियों का सामना करने के लिए स्नातकों को तैयार करने हेतु हमें ऐसे कृषि स्नातकों की जरूरत होगी जो

आधुनिक विज्ञान कम्प्यूटर प्रयोग, सूचना प्रणाली, जैव प्रौद्योगिकी, आण्विक जैविकी, समेकित नाशी कीट प्रबंध, समेकित पौध पोषक तत्व प्रबंध, कृषि व्यापार, खाद्य-प्रौद्योगिकी और सक्षम फसल उत्पादन प्रौद्योगिकी की अच्छी जानकारी रखते हों। निजीकरण और भूमंडलीकरण से नए रास्ते खुलें हैं, लेकिन साथ ही पारस्परिक प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है। अधिकाधिक मशीनीकरण और उत्पादन तकनीकों को आधुनिक बनाने पर अधिक जोर देने की बात पर हमारे प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में भी अधिक बल दिया जाना चाहिए।

भारत में कृषि शिक्षा विभिन्न स्तरों पर चल रही है, जो सामान्य जानकारी से लेकर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उच्च स्तर तक की है। विश्व और राष्ट्रीय स्तर पर उठने वाला मूल प्रश्न यह है कि कल के समाज के लिए **किस प्रकार की कृषि शिक्षा की जरूरत** है ? इसलिए 21वीं सदी के लिए शिक्षा की योजना बनाते समय हमें इस संदर्भ में कृषि शिक्षा के उद्देश्य, प्रक्रिया और लक्ष्यों का पता लगाना होगा। विश्व और राष्ट्रीय स्तरों पर बदलते हुए सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में उच्च कृषि शिक्षा का पूरी तरह पुनरीक्षण करने की जरूरत है, ताकि रोजगार-परक और मूलभूत शैक्षिक जरूरतों के बीच दीर्घकालिक आधार पर संतुलन बनाया जा सके।

कुछ नई पहल

इन चिंताजनक स्थितियों का सामना करने के लिए हमने राष्ट्रीय स्तर पर जो उपचारात्मक उपाय किए हैं उनमें से कुछ पर विचार-विमर्श करना उपयुक्त होगा।

कृषि शिक्षा के मानदंड और मानक नियत करने हेतु शक्तियाँ प्रदान करते हुए प्रत्यायन बोर्ड की स्थापना की गई है। इससे राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के एक समान मानक स्थापित हो सकेंगे और उच्च शिक्षा के संबंध में एक मजबूत प्रत्यायन पद्धति का विकास हो सकेगा। साथ ही इसकी सतत निगरानी हो सकेगी जिसकी आवश्यकता काफी समय से महसूस की जा रही है। यह बोर्ड यह भी सुनिश्चित करेगा कि सभी विश्वविद्यालयों के पास ही शिक्षा देने के लिए न्यूनतम आधार-ढाँचा उपलब्ध हो। स्थानीयता/क्षेत्रीयता से बचने के लिए सभी कुलपतियों ने इस बात पर सहमति प्रकट की है कि कृषि विश्वविद्यालयों में **राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा** के आधार पर भर्ती की जाए। मैं समझता हूँ कि प्रवेश के स्तर पर संकाय के लिए आवश्यक क्षमता सुनिश्चित करने के लिए यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण कदम होगा। इस समय स्नातक स्तर पर 15 प्रतिशत सीटें और स्नातकोत्तर स्तर पर 25 प्रतिशत सीटें भा. कृ. अनु. प. द्वारा आयोजित की जाने वाली अखिल भारतीय प्रवेश परीक्षा के आधार पर भरी जा रही हैं। इससे न केवल राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा मिलेगा बल्कि काफी हद तक क्षेत्रीयता/स्थानीयता की स्थिति भी समाप्त होगी और शिक्षा के स्तर में सुधार होगा। पिछले कुछ वर्षों से 300 प्रतिभा खोज छात्रवृत्तियाँ भी उन प्रतिभाशाली छात्रों को दी जा रही हैं जो स्नातक स्तर पर अपने राज्य को छोड़कर दूसरे राज्य में अध्ययन करने के अलावा प्रतिभाशाली युवा छात्र बाहरी वातावरण से परिचित होंगे जो उनके व्यक्तित्व निर्माण और आत्मविश्वास के लिए आवश्यक हैं। सभी विषयों के अंतिम वर्ष के स्नातक **छात्रों के लिए छह महीने गांव में कार्य करने का अनुभव अनिवार्य कर दिया गया है।** पचास प्रतिशत बाह्य परीक्षा की शुरुआत की गई है। इसे और अधिक लचीला और संगत बनाने के लिए अब पाठ्यक्रम में संशोधन के कार्य को प्राथमिकता दी जा रही है। इसके अतिरिक्त बेहतर पुस्तकालय, प्रयोगशाला तथा छात्रावास सुविधाएँ मुहैया कराने को उच्च प्राथमिकता दी गयी है। सर्वश्रेष्ठ जानकारी प्राप्त करने के लिए हम सभी राज्य कृषि विश्वविद्यालयों तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों को परस्पर श्रेष्ठ **विश्व व्यापी नेटवर्क के साथ जोड़कर एक राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान सूचना प्रणाली विकसित** कर रहे हैं।

भारतीय कृषि अनुसाधन परिषद ने हाल ही में सबैटिकल अवकाश नियमों को लागू किया है, जिससे देश भर में सक्षम संकाय का संचालन सुनिश्चित हो सकेगा अर्थात् श्रेष्ठ शिक्षक देश के प्रत्येक भाग में

उपलब्ध होंगे। इससे वैज्ञानिकों को नयी प्रौद्योगिकी तथा नये शैक्षणिक तरीकों को सीखने के लिए भारत तथा विदेशों में अल्पावधि अध्ययन संबधी दौरे करने हेतु प्रोत्साहन मिलेगा। परामर्शदाताओं/विशेषज्ञों को रखने तथा वैज्ञानिकों को तैनात करने की हमारी नई स्कीमों से इस संबंध में और मदद मिलेगी।

यह भी एक तथ्य है कि इस समय संकाय सक्षमता के लिए कोई प्रोत्साहन उपलब्ध नहीं है। यदि हमें प्रौद्योगिकी के प्रसार तथा ज्ञान-उपार्जन की कड़ी माँगों के अनुरूप उच्च शिक्षा में सुधार करना है, तो प्रणाली में श्रेष्ठ संकाय सदस्यों तथा कर्मचारियों के लिए आकर्षक पुरस्कार की व्यवस्था अवश्य करनी होगी। विद्यार्थियों तथा समकक्ष व्यक्तियों एवं प्रबंधन के प्रति अध्यापकों की जवाबदेही आवश्यक है। विद्यार्थियों तथा समकक्ष व्यक्तियों द्वारा संकाय का निरंतर मूल्यांकन, सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं तथा प्रौद्योगिकी विकास के क्षेत्र में नवीन उपलब्धियों के अनुसार पाठ्यक्रम को अद्यतन करना, मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन तथा समीक्षा करना, नई शिक्षा नीति का एक आधार होना चाहिए। संकाय सदस्यों को उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करने हेतु एक सुस्पष्ट कैरियर प्रबंध तथा प्रगति की नीति आवश्यक है। भा. कृ. अनु. परिषद अब संकाय सदस्यों को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों/परिचर्चाओं, ग्रीष्म/शरदकालीन विद्यालयों आदि में भाग लेने के लिए सहायता दे रही है। इसी प्रकार अध्यापन में उत्कृष्टता को बढ़ावा देने के लिए परिषद द्वारा प्रत्येक विश्वविद्यालय में प्रति वर्ष 10,000 रु० के पाँच संकाय पुरस्कार शुरू किये गये हैं। राष्ट्रीय स्तर पर हर दो वर्ष में अब 20,000 रु० के पांच श्रेष्ठ अध्यापक पुरस्कार दिये जा रहे हैं। परिषद द्वारा प्रणाली में श्रेष्ठ प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देने तथा साथ ही आधार ढांचे में सुधार लाने और कार्य करने की सुविधाएं सृजित करने के उद्देश्य से हाल ही में परामर्श, ठेके पर अनुसंधान तथा प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के लिए कई प्रोत्साहन दिये गये हैं।

हमने यह महसूस किया है कि प्रभागाध्यक्षों/संकायाध्यक्षों/निदेशकों में अदल-बदल करने की प्रणाली गैर-लाभकारी है- इसलिए भा. कृ. अनु. प. में हमने इस पद्धति के स्थान पर गुण दोष के आधार पर चयन की प्रणाली अपनाई है। उत्कृष्टता को बढ़ावा देने के लिए हमने हाल ही में श्रेष्ठ विश्वविद्यालय पुरस्कार, श्रेष्ठ अध्यापक पुरस्कार, श्रेष्ठ विस्तार वैज्ञानिक पुरस्कार, श्रेष्ठ महिला वैज्ञानिक पुरस्कार, तथा प्रतिभाशाली युवा वैज्ञानिकों के लिए भी पुरस्कार शुरू किये हैं।

विश्व बैंक द्वारा निधि प्रदत्त एक नई कृषि मानव संसाधन विकास प्रायोजना के तहत हम पाठ्यक्रम में संशोधन, जन-शक्ति नियोजन तथा तैनाती, संकाय क्षमता निर्माण, सूचना प्रबंध प्रणाली तथा देश और विदेशों में सम्मेलनों/संगोष्ठियों में भाग लेने के अवसरों को उच्च प्राथमिकता दे रहे हैं। नौवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान जैव प्रौद्योगिकी, पर्यावरण विज्ञान, जी आई एस तथा मॉडलिंग, कम्प्यूटर उपयोग, कृषि व्यापार आदि के नये क्षेत्रों में स्नातकोत्तर कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी।

— महानिदेशक, भा.कृ.अ.प.
एवं सचिव, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग
कृषि भवन, नई दिल्ली

उर्वरकों के अंधाधुंध उपयोग से ज़मीन की सेहत ख़तरे में

विजय चितौरी

पौधों को अपने पोषण के लिये आमतौर पर सोलह तत्त्वों की आवश्यकता होती है लेकिन व्यवहार रूप में पौधों को केवल तीन तत्वों नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैशियम की ही कमी पड़ती है। शेष तत्व वे हवा, पानी और मिट्टी से प्राप्त कर लेते हैं। यदि जमीन को एक दो फसलों के बाद परती छोड़ा जाय, उसमें पर्याप्त मात्रा में कम्पोस्ट खादों का उपयोग किया जाय तो इन तीनों तत्वों की भी कमी नहीं रहेगी। लेकिन आजकल ऐसा संभव नहीं क्योंकि बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने के लिये जमीन से अधिक से अधिक उत्पादन किया जाना आज की आवश्यकता बन गयी है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये उर्वरकों यानी रासायनिक खादों की प्रचलन शुरू हुआ।

अपने यहाँ साठ के दशक से ही किसान उर्वरकों का उपयोग करने लग गये थे लेकिन तब तक कम्पोस्ट खादें ही सर्वाधिक लोकप्रिय थीं। फलतः उर्वरकों के उपयोग के लिये काफी प्रचार-प्रसार करना पड़ता था। किन्तु सत्तर के दशक में हरित क्रान्ति के पदार्पण के साथ खेती में उर्वरकों का तेजी से उपयोग शुरू हुआ। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की अच्छी सुविधा थी, मिट्टी उपजाऊ थी, किसानों ने नये संकर बीजों का उपयोग शुरू किया वहाँ उर्वरकों का भी बेतहाशा उपयोग शुरू हुआ। खेती में कृषि यन्त्रों, जैसे ट्रैक्टर, थ्रेसर, पम्पसेट आदि का उपयोग बढ़ने से बैल रखने की आवश्यकता घटती गयी। यही नहीं, उर्वरकों का तेज असर, उपलब्धता तथा ढुलाई आदि में सुविधा के कारण किसानों के बीच यह लोकप्रिय होता गया। आज स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि उर्वरकों के बगैर खेती की कल्पना ही नहीं की जा रही है। परिणाम यह हुआ है कि किसानों ने कम्पोस्ट खाद बनाना ही बन्द कर दिया।

गोबर का उपयोग उपले बनाने में हो रहा है। अन्य कूड़ा-करकट और जैविक पदार्थ खाद के गड्ढे में जाने के बजाय इधर उधर फेंक दिया जाता है जिससे वह वातावरण के प्रदूषण का कारण बन रहा है।

इतना ही नहीं, नयी पीढ़ी का किसान कम्पोस्ट खाद की खूबियों से भी अपरिचित है। कम्पोस्ट खादें मिट्टी के सूक्ष्म तत्वों की मात्रा को संतुलित रखती हैं। कम्पोस्ट पड़ी जमीन में पानी सोखने और उसे अपने अंदर देर तक सुरक्षित रखने की क्षमता काफी बढ़ जाती है। केंचुए जैसे कृमि कम्पोस्ट युक्त मिट्टी में खूब पलते-बढ़ते हैं जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति तथा जलधारण क्षमता काफी बढ़ जाती है। यही नहीं, कम्पोस्ट खादों के उपयोग से उत्पन्न अनाज, फलों और सब्जियों का स्वाद और पोषकता अत्यन्त उच्च कोटि की होती है। गाँवों में अभी भी तमाम बड़े बूढ़े हैं जो अपने बचपन के समय के खाये हुए अनाजों, फलों और सब्जियों के स्वाद के किस्से चटखारे लेकर सुनाते हैं। दूध-घी की भी यही स्थिति है। जानवरों को जो चारा दिया जा रहा है वह उर्वरकों से तैयार होता है। फलतः दूध, घी का प्राकृतिक स्वाद बीते दिनों की बात हो गयी है। देशी घी पहले तो कहीं मिलता नहीं, मिलता भी है तो स्वाद और सुगंध कुछ नहीं। पता नहीं चलता कि देशी घी है या वनस्पति घी।

उर्वरकों के अंधाधुंध उपयोग का सबसे बुरा असर मिट्टी की सेहत पर पड़ रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि किसान उर्वरकों का विज्ञान-

सम्मत फार्मूला नहीं अपनाते। इसकी उन्हें जानकारी भी नहीं है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि उर्वरकों में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम युक्त उर्वरक होते हैं। इनका मिट्टी में देने का अनुपात क्रमशः 4, 2 और 1 होना चाहिए। लेकिन हर जगह यूरिया यानी नाइट्रोजन उर्वरक का बहुत ज्यादा उपयोग किया जा रहा है। पिछले दिनों उत्तर प्रदेश में उर्वरकों के उपयोग का जो आँकड़ा सामने आया उसे देखकर कृषि विशेषज्ञ चकित हैं। यहाँ नाइट्रोजन (एन०), फास्फोरस (पी०) और पोटाश (के०) के उपयोग का अनुपात 30:7:1 तक पहुँच गया है। कृषिवैज्ञानिक इसे खतरे की घंटी बता रहे हैं। यदि स्थिति नियंत्रित नहीं की गयी तो जमीन को ऊसर होने से कोई रोक नहीं सकता। 1991-92 से स्थिति ज्यादा बिगड़नी शुरू हुई जब डी० ए० पी० (डाईअमोनियम फास्फेट उर्वरक) पर से मूल्य नियंत्रण हटा लिया गया। निम्नलिखित आँकड़ों से यूरिया और डी० ए० पी० के उपयोग में बढ़ते अंतर को साफ देखा जा सकता है।

वर्ष	यूरिया (लाख मी० टन)	डी० ए० पी० (लाख मी० टन)
1990-91	33.00	6.78
1991-92	33.42	7.13
1992-93	35.02	5.88
1993-94	37.90	5.83
1994-95	39.51	6.60
1995-96	42.62	6.01
1996-97	44.43	6.72
1997-98	46.86	8.75
1998-99	43.95	8.95

समझा जा रहा है कि डी० ए० पी० के मूल्य में वृद्धि से किसान इसका उपयोग कम कर रहे हैं और यूरिया का उपयोग ज्यादा कर रहे हैं। यूरिया के अधिक उपयोग से जमीन की उर्वरा शक्ति नहीं बढ़ती। पौधे पर इसका तात्कालिक असर ज्यादा होता है, पत्तियाँ खूब निकलती हैं, पौधे की प्रतिरोधक शक्ति घटती है फलतः बीमारियों का प्रकोप पढ़ जाता है।

उत्तर प्रदेश सरकार ने उर्वरकों के अंधाधुंध असंतुलित उपयोग तथा कम्पोस्ट खाद की उपेक्षा के मुद्दे को गंभीरता से लिया है। इसका एक कारण यह भी है कि अब सरकार का भी यह भ्रम टूट चुका है कि उर्वरकों के उपयोग से लगातार अन्नोत्पादन बढ़ सकता है। प्रदेश की आठवीं पंचवर्षीय योजना में अन्नोत्पादन बढ़ाने का लक्ष्य साढ़े चार प्रतिशत था लेकिन बढ़ा मात्र 3.75 प्रतिशत। सभी पहलुओं पर विचार करके सरकार ने पिछले दिनों यह निर्णय लिया है कि कम्पोस्ट खाद, हरी खाद तथा अन्य जैविक खादों को बढ़ावा देने के लिये प्रत्येक जिले में एक एक विकास खण्ड का चयन किया जाये। इन विकास खण्डों में किसानों को कम्पोस्ट खादों के उपयोग के लिये प्रोत्साहित किया जायेगा।

आजकल अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों में जैव खेतीरू * (organic farming) तेज़ी से लोकप्रिय हो रही है। इस खेती की शुरुआत सर एडवर्ड होवर्ड ने की थी। इस तरह की खेती में किसी प्रकार के उर्वरक और कीट-नाशकों का उपयोग नहीं किया जाता है। उर्वरकों की जगह कम्पोस्ट खाद तथा कीटनाशकों की जगह जैविक नियंत्रण की पद्धति अपनायी जाती है। इस तरह की खेती से उत्पन्न अनाजों, फलों और सब्जियों की पश्चिम के बाजारों में भारी माँग है। लोग ज्यादा कीमत देकर भी ऐसे उत्पादन खरीदने के लिये लालायित रहते हैं।

पश्चिम में तो जैव खेती अब शुरू हुई है। हमारे यहाँ तो यह हजारों साल से हो रही है। वैज्ञानिक ज्ञान से अब इस जैव खेती का और भी अच्छा विकास किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप पहले किसान को कम्पोस्ट खाद बनाने में वर्ष भर का समय लगता था लेकिन अब तीन से छः माह में ही कम्पोस्ट तैयार करने की तकनीक उपलब्ध है। यही नहीं, बहुत कम गोबर का उपयोग करके भी काफी मात्रा में कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है।

-संपादक 'गांव की नई आवाज'
घूरपुर, इलाहाबाद-212110

* विशेष विवरण के लिए फरवरी 2000 का 'विज्ञान देखें।

विज्ञान, साहित्य समागम (एक प्रयोग) पेपर बैक, 128 पृष्ठ, निःशुल्क (सीमित वितरण के लिए)

सम्पादक : डॉ० पी. डी. गुप्ता कोशिकीय एवं आणविकी विज्ञान केन्द्र, हैदराबाद-500007

हर्ष का विषय है कि देश की तीन शीर्ष शोध संस्थाओं 'कोशिकीय एवं आणविक जीव विज्ञान केन्द्र', (सी. सी. एम. बी.) व एन. जी. आ. आई., 'राष्ट्रीय भू-भौतिकीय संस्थान (एन.जी.आर.आई.)', भारतीय रासायनिक प्रौद्योगिकी संस्थान (आई. आई. सी. टी.)', के अधिकारियों ने अपने-अपने संस्थान की उपलब्धियों को जन-सामान्य तक पहुँचाने के निमित्त प्रयोग किया जिसमें दो दिन के लिए देश के तीन शीर्ष साहित्यकारों को कोशिकीय आणविक जीव केन्द्र में आमन्त्रित किया गया। उनके साथ तीनों संस्थाओं के विभिन्न वैज्ञानिकों के विचारों का आदान-प्रदान किया तथा अपने-अपने संस्थान की उपलब्धियों के विषय में जानकारी दी। इस जानकारी को आमन्त्रित साहित्यकार साहित्य की विभिन्न विधाओं में समावेश कर उसे जन-सामान्य तक सरल व सरस भाषा में पहुचाएँगें।

इस वैज्ञानिक-साहित्यकार समागम के दौरान उत्पन्न जानकारी पर आधारित है आलोच्य पुस्तक। इसमें कुल 9 अध्याय हैं। प्रथम में तो सम्पादक ने विषय का सुंदर ढंग से प्रतिपादन किया है। तत्पश्चात वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के महानिदेशक, डॉ० रघुनाथ अनन्त माशेलकर, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार की सचिव डॉ० मंजू शर्मा, डॉ० श्रीकृष्ण जोशी, भू-महानिदेशक वैज्ञानिक तथा अनुसंधान परिषद व साहित्य अकादमी के फेलो डॉ गुंटूरि शेषेन्द्र शर्मा के उक्त आयोजन के संबंध में विचारों को संकलित किया गया है। तीसरे अध्याय में तीनों संस्थानों के निदेशकों की अपने-अपने संस्थाओं के विषय में जानकारी देने वाले आलेखों का समावेश किया गया है। तीनों ही निदेशकों ने अपने-अपने संस्थान के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन करते हुए संस्थान की विशिष्ट उपलब्धियों का विवरण दिया है वहीं वर्तमान में जिन विषयों पर शोध कार्य किया जा रहा है उनका भी उल्लेख किया है। सबसे महत्वपूर्ण चौथे-छठे अध्यायों में तीनों संस्थानों से संबंधित विभिन्न वैज्ञानिकों के महत्वपूर्ण शोधों के विषय में जानकारी से परिपूर्ण 18 लेख सम्मिलित हैं। जहां कोशिकाओं के विभाजन पर नियन्त्रण, डी. एन. ए. से प्रोटीन संश्लेशषण तक की प्रक्रिया, रासायनिक संदेश वाहक-हार्मोन, उपवास की उपयोगिता, मोतियाबिंद पनपने के कारण, हरित कृषि के लिए फेरोमोन का प्रयोग, पादप स्त्रोतों से जीव सक्रिय तत्वों का विकास, शल्यक आसंजकों का विकास और जैव-नियंत्रण के विभिन्न पहलुओं जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण विषयों पर वैज्ञानिकों के आलेखों का संकलन किया गया है, वहीं भूकम्प के विभिन्न पहलुओं, भू-जल और स्वर्ण-खनन पर भी आलेख दिए गए हैं जिनसे राष्ट्र के भावी विकास के अत्यधिक प्रभावित होने की आशा है। सातवें अध्याय में आमन्त्रित साहित्यकारों का परिचय कराया गया है तो आठवें अध्याय में उनके विचारों का संकलन है।

जे. एस. यादव
अधिष्ठता, विज्ञान संकाय
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र-136119

मन के रोग : डॉ० यतीश अग्रवाल, प्रकाशक-प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1999, पृष्ठ संख्या 136, मूल्य 125/-

डॉ० यतीश अग्रवाल सफदरजंग अस्पताल के वरिष्ठ चिकित्सक हैं। वे सन् 1980 से देश की प्रमुख पत्र पत्रिकाओं में आयुर्विज्ञान विषयक विविध लेख लिखते रहे हैं। उनकी विशेषता यह रही है कि वे बच्चों, किशोरों तथा नवसाक्षरों को ध्यान में रखकर रचनाएँ करते आये हैं। उन्होंने अब तक 17 पुस्तकें

लिखी हैं जिनमें नेत्र रोग, हृदय रोग, हार्ट केयर मुख्य हैं। प्रस्तुत पुस्तक ''मन के रोग'' उसी श्रृंखला की पुस्तक है। इस पुस्तक में 20 निबन्ध हैं जो मनोचिकित्सा के परिचय से लेकर टोने टोटके, अवसाद, दुश्चिंता, आत्मघात, नशा, मदिरा, रोग तंबाकू सेवन, मानस चिकित्सा, तनाव, बाल मन की गुत्थियों को लक्षित करके लिखे गये हैं। अन्त के तीन अध्यायों में शब्द परिचय, देश के प्रमुख मनोचिकित्सकीय अस्पतालों की सूची तथा आभार व्यक्त किया गया है। पुस्तक में स्थान-स्थान पर चित्र हैं। पुस्तक की भाषा सरल, सुबोध किन्तु साथ ही स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली से युक्त है। यतीश जी की अपनी निजी शैली है जिसमें वार्तालाप भी सम्मिलित हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि पाठक के मन में उठने वाली सारी शंकाओं का समाधान करते चलते हैं।

पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

-शिवगोपाल मिश्र

अजनबी : लेखक - डॉ० हरीश गोयल। प्रकाशक- विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण : 1999, पृष्ठ संख्या 84, मूल्य : 80/-

यह पुस्तक 8 छोटी-छोटी विज्ञान कथाओं का संग्रह है जिसमें कालपात्र, अजनबी, आपरेशन पुनर्जन्म, जीवाणु बम, नर्सिंग होम, हाइट, जलप्लावित कलकत्ता तथा तहलका शीर्षक कथाएँ संकलित हैं। इस पुस्तक का नामकरण दूसरी कथा को लेकर हुआ है। पुस्तक की ये कथाएँ स्मृति, प्रतिरोधी जीवाणु, जीन, डी. एन. ए. जीनोम, आनुवंशिक रोग, पालीमरेज चेन रिएक्शन, विश्वतापन, वृद्धिकारक हार्मोन सम्बन्धी नवीन जानकारी को आधार बनाकर लिखी गई हैं जिनमें कहीं प्रेम, कहीं लोभ तो कहीं सामाजिक बुराई की चाशनी चढ़ी हुई है। इन कथाओं में कौन कितनी सफल है, यह निर्णय तो पाठक स्वयं से करेंगे किन्तु लेखक ने जैव प्रौद्योगिकी के विकास में नैतिकता के पक्ष को नजर अंदाज करने का जो अंजाम होगा उसको अंकित करने में सफलता पाई है। संवादों में रोजमर्रा में प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी शब्दों का उसी रूप में प्रयोग हुआ है। रिच, ह्वाइट, सीक्रेसी, सेकंडरी थिंग जैसे शब्दों का व्यवहार अटपटा लगता है। 'हाइट' शीर्षक को समझने में काफी बुद्धि लडानी पड़ेगी।

लेखक ने विडियोफोन, सुपरकम्प्यूटर, सौर कार, होलोग्राम, नेटवर्क, ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट, एम. आर. आई. का बारम्बार प्रयोग करके बताने की चेष्टा की है कि आज के युग में ये कितनी सामान्य व्यावहारिक चीजें हैं।

पुस्तक में विशेष करके अंतिम कुछ पृष्ठों पर अनेक त्रुटियाँ हैं-यथा पृष्ठ 16 पर देवदारु के स्थान पर देवदास, पृष्ठ 39 पर सनक के स्थान पर सनद, पृष्ठ 29 पर निजात के स्थान पर निजाम आदि। यदि लेखक ने भूमिका भी दी होती तो अच्छा होता। जिस त्वरा से हिन्दी में विज्ञान कथाएं प्रकाश में आ रही हैं वह एक शुभ लक्षण है।

-शिवगोपाल मिश्र

डॉ० हरदेव बाहरी को श्रद्धांजलि

सुप्रसिद्ध भाषा विज्ञानी, हिन्दी साहित्यकार डॉ० हरदेव बाहरी का ३१ मार्च २००० को इलाहाबाद में निधन हो गया। डॉ० बाहरी का मार्ग दर्शन विज्ञान परिषद् प्रयाग को सदैव प्राप्त होता रहा है।

परिषद् परिवार डॉ० बाहरी को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

1. राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर गोष्ठी सम्पन्न

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा 28 फरवरी 2000 के राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर एक गोष्ठी आयोजित की गई। गोष्ठी की अध्यक्षता रसायन विज्ञान विभाग के पूर्व अध्यक्ष डॉ० पूर्णचन्द्र गुप्ता ने की। आरंभ में संचालक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने अतिथियों का स्वागत किया। देवव्रत द्विवेदी ने अध्यक्ष को माल्यार्पण कर स्वागत किया।

इस अवसर पर प्रो. ईश्वर चन्द्र शुक्ल ने ब्रह्माण्ड के उद्भव के महाविस्फोट सिद्धान्त तथा उसमें डॉ० नार्लिकर द्वारा किये गये संशोधनों की चर्चा की। डॉ० के. एन. उत्तम ने डॉ० शिव प्रसाद कोस्टा द्वारा वनस्पतियों से विद्युत ऊर्जा प्राप्त करने के क्षेत्र में किये जा रहे शोधों के बारे में बताया। डॉ० दिनेश मणि ने विज्ञान के विवकशील प्रयोग पर बल देते हुए निश्चित उद्देश्य एवं लक्ष्य के साथ विकास की बात कही। डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने बौद्धिक संपदा के सरंक्षण हेतु पेटेंटों के प्रति सजग रहने का आह्वान किया। देवव्रत द्विवेदी ने सूचना प्रौद्योगिकी तथा जैव प्रौद्योगिकी के विकास के साथ एक समन्वयवादी दृष्टिकोण की आवश्यकता बताई।

परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिव गोपाल मिश्र ने कहा कि निष्ठा एवं लगन के साथ कार्य करने पर सीमित साधनों से भी उच्च लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है। आज पुनः देश को रामन जैसे विज्ञानसाधकों की आवश्यकता है। अध्यक्ष, डॉ० गुप्त ने कहा कि आज इस बात की आवश्यकता है कि बच्चों को आरंभ से ही वैज्ञानिक चिंतन के लिये प्रेरित किया जाय जिससे वे बड़े होकर देश के वैज्ञानिक विकास में अपना योगदान कर सकें। इस अवसर पर बलराम यादव, रजनीश सिंह तथा आशु कुमारी ने भी अपने विचार व्यक्त किये। अंत में संचालक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित किया।

2. जैव प्रौद्योगिकी विषयक व्याख्यान आयोजित

भारत सरकार के जैव प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा प्रायोजित और विज्ञान परिषद् द्वारा सी. एम. पी. डिग्री कॉलेज (महिला शाख) में जैव प्रौद्योगिकी विषय पर 20 फरवरी 2000 को आयोजित व्याख्यान में बोलते हुए इलाहाबाद विश्व विद्यालय के वनस्पति विज्ञान के प्रो० जी० एल० तिवारी ने बताया कि जिन नील-हरित शैवालों में हेटेरोसिस्ट पाये जाते हैं आमतौर से उन्हीं में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता होती है किन्तु अब नये शोधों से ऐसे प्रमाण सामने आ रहे हैं कि जिनमें हेटेरोसिस्ट नहीं पाये जाते उनमें भी नाइट्रोजन को स्थिर करने की क्षमता होती है। आलोसाइरा के विषय में उन्होंने बताया कि इसके तन्तु बंडल रूप मे पाये जाते हैं और बाहर के तन्तुओं में तो प्रकाश संश्लेषण की क्षमता होती है एवं अंदर वाले तन्तुओं में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की। उन्होंने इसी विषय में और शोध करने की सलाह दी। उन्होंने रंगीन ट्रांसपेरेन्सीज को भी दिखाया। इसे प्रोजेक्ट करने का कार्य देवव्रत द्विवेदी ने किया। प्रारंभ में डॉ० सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव ने अतिथि का स्वागत किया। डॉ० राजेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। डॉ० मीना राय ने धन्यवाद ज्ञापन किया और अंत में परिषद् की ओर से प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने सभी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

उपर्युक्त के अतिरिक्त इस व्याख्यान के दौरान डॉ० डी० एन० लाल डॉ० वी. के. ललोरिया, डॉ० एच. एन. श्रीवास्तव, डॉ० सुषमा चौहान, डॉ० अमिता पाण्डेय एवं डॉ० सुश्री कीर्ति राजे सिंह आदि उपस्थित रहीं। बी. एस-सी, प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय वर्ष की लगभग 200 छात्राओं ने भी इस व्याख्यान को सुना। अध्यापकों और अनेक छात्राओं ने विषय से संबंधित अनेक प्रश्न उठाये जिसका व्याख्यानदाता ने समुचित समाधान किया। कुल मिलाकर यह व्याख्यान अत्यन्त सफल रहा और छात्राओं के लिए निश्चित रूप से लाभप्रद रहा।

3. विज्ञानकथा लेखन कार्यशाला, सारनाथ

भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति ने 19 से 22 फरवरी 2000 तक सारनाथ, वाराणसी में 'संचार माध्यमों के लिए विज्ञान कथा लेखन' विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला का उद्घाटन विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने दीप प्रज्वलित कर किया। इस अवसर पर विषय प्रवर्तन करते हुए राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् के वैज्ञानिक डॉ० मनोज पटेरिया ने 'विज्ञान कथा लेखन' के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला। इस कार्यशाला में देश के प्रख्यात विज्ञान कथालेखक श्री देवेन्द्र मेवाड़ी, डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय, श्री हरीश गोयल, डॉ० अरविंद मिश्र, इरफान ह्यूमन, जाकिर अली रजनीश, विजय चितौरी आदि ने भाग लिया। कार्यशाला में 30 प्रशिक्षुओं ने इन लेखकों के निर्देशन में विज्ञान कथा लेखन के बारे में विभिन्न जानकारियाँ प्राप्त कीं तथा चार दिनों के अंदर ही 30 कहानियों की स्क्रिप्ट तैयार की। इनमें 22 प्रिंट मीडिया, 6 श्रव्य मीडिया तथा 2 दृश्य मीडिया के लिये थीं। 6 श्रेष्ठ रचनाओं को अंतिम दिन पुरस्कृत भी किया गया। कार्यशाला के अंतिम दिन ''विज्ञान कथा में मानवीय संवेदना'' विषय पर एक परिचर्चा भी आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता डॉ० गिरीश पाण्डेय ने की।

इस अवसर पर श्री देवेन्द्र मेवाड़ी तथा डॉ० मनोज पटेरिया को सम्मानित किया गया। श्री हरीश गोयल तथा जाकिर अली रजनीश की पुस्तकों का विमोचन और ऐग्रो टाइम्स नामक पत्रिका का लोकार्पण डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने किया। कार्यशाला में विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र के अतिरिक्त डॉ० दिनेश मणि, देवव्रत द्विवेदी तथा विजय चितौरी भी सम्मिलित हुए एवं संगोष्ठी में 21वीं सदी के विज्ञान कथा लेखन की चुनौतियों एवं भावी दिशाओं के निर्धारण से संबंधित अपने विचार प्रस्तुत किए।

— देवव्रत द्विवेदी

4. जैव-प्रोद्योगिकी व्याख्यानमाला का चतुर्थ व्याख्यान सम्पन्न

गत् 10 मार्च 2000 को ''विज्ञान परिषद् प्रयाग'' द्वारा आयोजित और जैव-प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित व्याख्यानमाला का चतुर्थ व्याख्यान इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के दिव्यदर्शन पंत सभागार में सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया। व्याख्यान का विषय था- ''एक बहुमुखी जैव-तकनीकी उपकरणः वी ए माइकोराइज़ा (VAM)। इस अवसर पर प्रो० बिहारी लाल (वर्तमान अध्यक्ष, वनस्पति विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) एवं पूर्व अध्यक्ष प्रो० जी० के० श्रीवास्तव विशिष्ट अतिथि थे।

प्रारंभ में व्याख्यान के संयोजक डॉ० डी० आर० मिश्र ने डॉ० सुधीर चन्द्र का स्वागत करते हुए उनके द्वारा किए गए शोध के विषय में जानकारी देते हुए उनका संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया और होमियोपैथिक ओषधियों का पादप रोगों के निराकरण एवं वैसीकुलर आरबसकुलर माइकोराइज़ा पर प्रो० सुधीर चन्द्र द्वारा किए गए शोध का उल्लेख किया।

जॉ० सुधीर चन्द्र ने माइकोराइज़ा के इतिहास, प्रकार, संरचना, लाभ व भविष्य की सम्भावनाओं के विषय में विस्तार से बताया। उन्होंने कहा कि माइकोराइज़ा के कारण पौधों की जड़ें पोषकों को अधिक सुगमता तथा अधिक मात्रा में अवशोषित करती हैं, जिसके कारण पेड़-पौधों को पोषक तत्वों की आपूर्ति निरंतर होती रहती है। भविष्य की संभावनाओं की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने कहा कि जिस दिन वी ए माइकोराइज़ा के संरोप का उत्पादन वृहत स्तर पर संभव हो जायेगा, उस दिन वह जैव-तकनीकी उपकरण अत्यंत महत्वपूर्ण हो जायेगा।

आगे बोलते हुए उन्होंने बताया कि इस दिशा में प्रयास चल रहे हैं और पूर्ण विश्वास है कि एक दिन ऐसा अवश्य ही संभव हो जायेगा। अब यह स्वीकृत तथ्य है कि ''वैम'' (VAM) में बढ़ती जनसंख्या के

लिए किसी अंश तक भोजन उपलब्ध करा सकने की क्षमता है। व्याख्यान के दौरान उन्होंने स्लाइडों और ट्रांसपेरेंसीज के माध्यम से विषयवस्तु को सरल, ग्राह्य एवं रोचक बना दिया।

उन्होंने अनेक प्रश्नकर्ताओं की, माइकोराइज़ा के संबंध में, उठाई गई शंकाओं का समाधान भी किया और माइकोराइज़ा के प्रयोग के संबंध में उठाये गए विवाद में पड़ने के बजाय मिल-बैठकर किसी एक वर्गीकरण को मान्यता देने की आवश्यकता पर बल दिया।

अंत में ''विज्ञान परिषद् प्रयाग'' की ओर से ''विज्ञान'' के पूर्व संपादक एवं वर्तमान कोषाध्यक्ष प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने प्रो० सुधीर चन्द्र को उनके सूचनाप्रद, ज्ञानवर्धक, रोचक व्याख्यान के लिए; प्रो० डी० आर० मिश्र को कुशल संचालन के लिए; श्री नलिन जोशी को स्लाइडों और ट्रांसपेरेन्सीज को प्रोजेक्ट करने के लिए; प्रश्नकर्ताओं को अनके प्रश्नों के लिए और सभी श्रोताओं को विज्ञान परिषद् प्रयाग की ओर से और अपनी ओर कृतज्ञता ज्ञापित की।

व्याख्यान के अवसर पर शोधार्थियों एवं एम० एस-सी० के विद्यार्थियों के अतिरिक्त डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल, डॉ० डी० के० चौहान, डॉ० हरबंस कौर केहरी, डॉ० राजेश्वर प्रसाद, डॉ० एस० एन० श्रीवास्तव, डॉ० मीना राय, कु० कीर्ति राजेसिंह, डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय (संयुक्त मंत्री, विज्ञान परिषद्), श्री देवव्रत द्विवेदी, सुश्री ऋचा, श्रीमती गायत्री दीक्षित, श्री अनिल तिवारी, वन विभाग के श्री ओझा, श्री चन्द्रभान सिंह सहित अनेक गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

-प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

5. डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

विज्ञान परिषद् के सभागार में 18 मार्च, 2000 को षष्ठम ''डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यान आयोजित हुआ। इस अवसर पर मुख्य वक्ता के रूप में उपस्थित मेहता रिसर्च इंस्टीट्यूट के निदेशक डॉ० एच० एस० मणि ने 'न्यूट्रिनों भौतिकीः हाल के परिणाम' विषय पर प्रकाश डालते हुए न्यूट्रिनों की खोज, परमाणवीय अभिक्रियाओं में न्यूट्रिनों के उत्सर्जन की अवधारणा से अवगत कराया।

डॉ० मणि ने विश्व के विभिन्न देशों की प्रयोगशालाओं में न्यूट्रिनों संसूचन की दिशा में किये जा रहे प्रयोगों की जानकारी दी। उन्होंने सूर्य पर चल रही नाभिकीय अभिक्रियाओं को समझने में न्यूट्रिनों संसूचन के उपयोग तथा भविष्य में न्यूट्रिनों दोलन की संकल्पना की पुष्टि होने की संभावना पर भी अपने विचार व्यक्त किये।

कार्यक्रम के प्रारंभ में डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने डॉ० गोरख प्रसाद का जीवन परिचय दिया। डॉ० एच० एस० मणि, डॉ० हरिश्चन्द्र खरे तथा डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने डॉ० गोरख प्रसाद के चित्र पर माल्यार्पण किया। संचालक डॉ० अशोक गुप्त ने डॉ० मणि का परिचय दिया तथा देवव्रत द्विवेदी ने मुख्य वक्ता तथा अध्यक्ष को माल्यार्पण किया।

कार्यक्रम के अंत में डॉ० हरिश्चन्द्र खरे ने अध्यक्षीय भाषण दिया तथा विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिव गोपाल मिश्र ने धन्यवाद ज्ञापित किया। इस अवसर पर तमाम श्रोताओं के अतिरिक्त डॉ० एम० डी० तिवारी, प्रो० पूर्ण चन्द्र गुप्त, श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, डॉ० हरि प्रकाश, डॉ० जे० एस० चौहान, डॉ० दिनेश मणि आदि उपस्थित थे।

— देवव्रत द्विवेदी

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग,

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

ISSN : 0373-1200

मई 2000

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका
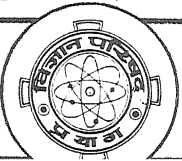
विज्ञान परिषद् प्रयाग

// विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913

विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 86 अंक 2

मई 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत

1000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्, प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक

अरुण राय

दी कम्प्यूटर कम्पोजर,7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

फोन : 460001

विषय सूची

विज्ञान कथा लेखन-कुछ टिप्पणियाँ*

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

वर्ष 1997 में फैजाबाद से प्रारम्भ होकर विज्ञान परिषद् प्रयाग की यात्रा करते हुए वाराणसी-सारनाथ में आयोजित विज्ञान कथा लेखक समिति के तृतीय अधिवेशन के मुख्य अतिथि जी, समिति के संरक्षक प्रो० डॉ० शिव गोपाल मिश्र जी, विभिन्न स्थानों से आये सम्मानित विज्ञान कथा लेखकों एवं विज्ञान कथा लेखन में अभिरुचि रखने वाले प्रतिभागियों, देवियों एवं सज्जनों का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। आप लोग अनेक स्थानों से आकर काशी की प्राचीन, पौराणिक एवं ऐतिहासिक नगरी में विज्ञान कथा लेखकों को एक नयी ऊर्जा प्रदान करने जा रहे हैं।

इस अवसर पर मैं भारतीय विज्ञान कथा लेखन समिति के सभी सदस्यों की ओर से राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा उत्प्रेरण और समर्थन के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना चाहता हूँ जिसके फलस्वरूप आज हम सभी इस ऐतिहासिक स्थल पर एकत्र हुये हैं। विज्ञान एवं कैंसर शोध से जुड़े होने के कारण अनेक विज्ञान कथाओं को लिखने पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है तथा मैं अपनी पारिवारिक परम्परा के अनुरूप हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार एवं प्रसार का समर्थक हूँ। मेरा अपना मत है कि विज्ञान के विभिन्न विषयों के कठिन से कठिन शोध की उपलब्धियों को हिन्दी भाषा में कथा लेखन के सशक्त माध्यम द्वारा जनमानस तक सरलता से पहुँचाया जा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान लेखक-प्रकाशक अंग्रेजी का मोह छोड़कर हिन्दी भाषा में विज्ञान कथा लेखन करें, तो देश में विज्ञान के प्रति अधिक जागरूकता एवं रुचि उत्पन्न होगी।

आइजक आसिमोव, जो विश्व के एक विख्यात विज्ञान कथालेखक हैं ''आसिमोव इन साइंस फिक्शन'' में लिखते हैं कि प्रत्येक सच्चे बुद्धिजीवी को जिसने ज्ञान की किसी शाखा में विशेषता हासिल कर ली है, उसे अपना ज्ञान यथासंभव हर व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए अपनी भाषा में लिखना चाहिए।

विज्ञान का सीधा सम्बन्ध जनता के भविष्य से है, क्योंकि इस क्षेत्र में हर प्रगति जाने अनजाने, समाज के उत्थान और विनाश से सम्बन्धित है। सामान्य जनता वैज्ञानिक शोधों के लिए कर (टैक्स) देती है अतः जनता को यह जानने का भी अधिकार है कि विज्ञान शोधों का उपयोग देश के विकास या विनाश के लिए हो रहा है। वैज्ञानिक शोधों की निरन्तरता और गति को बनाये रखने के लिए आज देश को बड़ी संख्या में वैज्ञानिक अभिरुचिसम्पन्न प्रशिक्षित लोगों की आवश्यकता है। यह केवल तभी संभव है जब विज्ञान का ज्ञान अपनी बोलचाल की भाषा में, जनहित में प्रचलित हो। वैज्ञानिक खुद आम जनता का ही अंश है अतः उसको अपने ज्ञान को ''बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'' के दृष्टिकोण से आज के परिवेश में लोकप्रिय बनाना पुनीत कर्तव्य है। कुछ शीर्ष स्थानों पर आसीन भारतीय वैज्ञानिक हिन्दी में विज्ञान साहित्य सृजन को अनावश्यक कृत्य मानते हैं। आसिमोव की दृष्टि में ऐसे वैज्ञानिक मानसिक रूप में अपरिपक्व हैं। भारत में हिन्दी के उन्नायकों ने प्रारम्भ से ही अपनी भाषा हिन्दी में साहित्य सृजन की लहर चला दी थी, परन्तु आज पूरे देश में एक भी ऐसा सशक्त विज्ञान कथाकार नहीं है जिससे प्रेरणा लेकर हिन्दी में भी विज्ञान लेखन को अवलम्ब मिले।

पाश्चात्य एवं रूसी विज्ञान कथा साहित्य की तुलना में हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन की विधा का

* 'विज्ञान कथा लेखक संघ के अध्यक्ष द्वारा 19 फरवरी 2000 को कार्यशाला के उद्घाटन के अवसर पर दिया गया अध्यक्षीय भाषण।

विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है तथा हिन्दी के साहित्यकारों में यह विधा पूर्ण प्रतिष्ठित नहीं हो पायी है। उसका मुख्य कारण विज्ञान के तथ्यों को इन साहित्यकारों द्वारा सही ढंग से न समझ पाना है। दूसरी तरफ पश्चिम के विज्ञान कथा लेखक जैसे आइजक आसिमोव, एच० जी० वेल्स, जूल वर्न आदि ने विज्ञान कथा के माध्यम से विज्ञान के ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का अनूठा प्रयास किया था। शताब्दी पूर्व जूल वर्न की ''फ्राम अर्थ टू मून'' तथा एच० जी० वेल्स की ''शेप आफ द थिंग्स टु कम'' कथा, एक कपोलकल्पित विज्ञान कथा लगती थी, जो 50 वर्षों बाद सत्य में बदल गयी और एक नवीन वैचारिक वैज्ञानिक क्रान्ति को जन्म दे दिया।

ह्यूगो गर्न्स बैंक ने विश्व की प्रथम वैज्ञानिक कथा पत्रिका (अमेजिंग स्टोरीज) के सम्पादकीय में कहा है कि विज्ञान कथा साहित्य की वह विधा है जिसका शैक्षिक महत्व हो तथा उनके माध्यम से ज्ञान को लोक मानस तक आसानी से प्रतिष्ठित किया जा सके। आसिमोव लिखते हैं कि विज्ञान कथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी में समन्वित परिवर्तनों के प्रति मानवीय अभिक्रियाओं को अभिव्यक्ति देती है। आसिमोव ने विज्ञान कथा को दो भागों में बाँटा है– ''फिक्शन'' एवं ''फैंटेसी''। लैटिन शब्द फिक्शन का अर्थ है आविष्कार करना एवं ग्रीक शब्द फैंटेसी का अर्थ है कल्पना करना। साइंस फिक्शन वैज्ञानिक मान्यताओं पर आधारित होती है जबकि फैंटेसी कपोलकल्पित होती है। इसके आधार का कुछ अता-पता नहीं होता है। विज्ञान कथायें सामान्य कथाओं से कैसे भिन्न हैं, इसके अन्तर को भी लेखकों को जानना चाहिए। उदाहरण के तौर पर मंगल और चाँद पर पहुँचने की बात कौन कहे हमारे पौराणिक कथाओं में सशरीर स्वर्ग तथा देवर्षि नारद द्वारा इच्छानुसार ब्रह्माण्ड में यात्रा, विमान यात्रा की ढेर सारी कथायें हैं। क्या इन पौराणिक कथाओं को आप वैज्ञानिक कथा के रूप में मान्यता दे सकते हैं ? अगर आइंस्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त पर नजर डालें तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हम प्रकाश की गति से तेज नहीं चल सकते। इस तरह नक्षत्रों तक पहुँचने के लिए हमें हजारों वर्ष लगेंगे। फिर देवर्षि नारद की ब्रह्मवाद यात्रा को हम विज्ञान कथा की संज्ञा कैसे दे सकते हैं ? उसे तो मात्र हम फैंटेसी कह सकते हैं।

श्री श्याम नारायण कपूर ने अपनी पुस्तक ''प्राचीन भारत में विज्ञान और शिल्प'' पृष्ठ 308, 1998, में लिखा है कि प्राचीन भारत के वैज्ञानिकों को विमान निर्माण एवं उड्डयन की विधि ज्ञात थी। राइट बन्धुओं से करीब दस वर्ष पूर्व श्री शिवकर बापू जी तलपदे ने ऋग्वेद में वर्णित ''मरुतसखा'' नामक विमान का निर्माण मंत्रों में निहित विमान निर्माण विधि के आधार पर किया था। इसका प्रदर्शन भी उन्होंने 1895 ई० में बम्बई के चौपाटी मैदान में अनेक गणमान्य व्यक्तियों जिनमें तत्कालीन बड़ौदा नरेश, महाराजा सर सया जी गायकवाड़ भी उपस्थित थे, के सम्मुख किया था। इस यान में एक ऐसा यंत्र लगा था जो इसे 15 फिट की ऊँचाई तक ले जाकर नीचे उतार लाता था। यह विमान चालकरहित था जिसका श्री तलपदे महोदय ने सुप्रसिद्ध विद्वान श्री महादेव गोविन्द रानाडे को भी दिखाया था। संभवतः इस प्रकार अनेक विमान प्राचीन भाव में निर्मित हुए होंगे जिनसे सम्बद्ध तथ्य पुष्पक विमान आदि से जुड़े हैं। परन्तु इन विमानों में हंस जोड़कर उड़ाने की बात विशुद्ध फैन्टेसी है जिससे विज्ञान कथालेखकों को बचना चाहिए। दूसरे शब्दों में, विज्ञान कथा एक ऐसी विधा है जो किसी मानवीय समस्या और उसके वैज्ञानिक पक्ष के प्रति संस्करण, प्रवर्धन अथवा सामञ्जस्य या निराकरण से संबद्ध होती । इसमें मानवीय पक्षों, संवेदनाओं का तथा विज्ञान के तथ्यों का, तर्कों का, अद्भुत सम्मिश्रण होता है। हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन का प्रारम्भ तो 19वीं सदी के प्रारम्भ में ही हो गया था परन्तु इसके विकास की गति अपेक्षाकृत मंद रही। परिणामतः प्रारम्भ के 50-60 वर्षों में इस विधा के रचनात्मक पक्ष में त्वरा न आ सकी। इस विधा में वास्तविक गति तो 1960 के दशक से प्रारम्भ हुई जो इस वर्ष के आते-आते अपने पूर्ण स्वरूप को ग्रहण कर चुकी है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज आहूत यह विज्ञान कथा लेखन ज्ञानयज्ञ है।

विज्ञान कथा लेखन में मानवीय समस्या और उसका समाधान दो आवश्यक पहलू हैं जिन्हें प्रत्येक

कथा लेखक को लिखते समय ध्यान रखना चाहिए। कोई भी विज्ञान कथा मात्र वैज्ञानिक आवरण देने से पूरी नहीं हो जाती वरन् वैज्ञानिक विषय वस्तु के कारण ही उसे पूर्णता मिलती है। आज विज्ञान के आविष्कारों, नवीन शोधों तथा टेक्नालॉजी की प्रगति से सम्बन्धित सूचनायें कम्यूनिकेशन टेक्नालॉजी के सूचना विस्फोट के कारण सरलता से प्राप्य हैं। इस हेतु यह आवश्यक नहीं कि विज्ञान कथा लिखने के लिए एक व्यक्ति को उच्चकोटि का वैज्ञानिक होना आवश्यक है। कभी-कभी विज्ञान कथाओं में लेखक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर रख देते हैं जिससे कथानक प्रायः निर्जीव हो जाता है एवं अर्थ का अनर्थ हो जाता है। विज्ञान कथा लिखते समय लेखकों को मुख्यतः **तीन बातों** का ध्यान रखना चाहिए। प्रथम आवश्यकता विज्ञान के तथ्य, भविष्य में झाँकने की दूरदर्शिता, उर्वर कल्पना एवं मानव से सम्बद्धता कथा में रोचकता का पुट दे देते हैं। वैज्ञानिक तथ्यों की विश्वसनीयता ही विज्ञान कथा का उत्स होती है। दूसरी आवश्यकता है कि लेखक को हिन्दी भाषा व्याकरण और शब्द भण्डार के साथ-साथ भारत के प्राचीन वैज्ञानिक वैभव तथा मिथकों का पर्याप्त ज्ञान जिससे विज्ञान कथा लेखन में सरलता, संवेदना एवं रोचकता की वृद्धि हो सके। इसके लिए सिद्धहस्त हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन भी लेखन कला को निखारने में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विज्ञान कथा लेखन में तीसरी महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि विश्व की विभिन्न भाषाओं में लिखी गयी कथाओं के प्रति सहज जागरूकता। जूलवर्न, एच० जी० वेल्स, आसिमोव, ऐडगर ऐलन पो, ए० सी० क्लार्क आदि अनेक प्रतिष्ठित विज्ञान कथा लेखकों की विज्ञानकथायें पढ़ने से हिन्दी में नवसृजित विज्ञान कथाओं की पृष्ठ भूमि बनाने में सुगमता होगी।

अब हम कुछ ऐसी समस्याओं पर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे जिन पर नवोदित विज्ञान कथाकार अपनी लेखनी चला सकते हैं। उदाहरण के लिए जीन बैंक, क्लोनिंग, ऊर्जा भंडारों का क्षरण, ऊर्जा स्रोत, ऊर्जा दोहन, पर्यावरण प्रदूषण, ट्रांसजेनिक बीज, कृषि में नवीन तकनीक, सागर की सम्पदा, विश्वव्यापी गरीबी एवं भुखमरी, जनसंख्या विस्फोट एवं नियंत्रण, न्यूक्लियर विस्फोट एवं परमाणविक निरस्त्रीकरण, आकाश गंगा और अनेक नक्षत्र, अंतरिक्ष बस्तियाँ, अन्तरिक्ष यात्रायें, जेनेटिक इंजीनियरिंग, बायोटेक्नालॉजी, रोबोटिक्स, कम्प्यूटर, ब्लैक-होल, नैनो मशीनें, परामनोविज्ञान, इलेक्ट्रानिक यंत्र, इलेक्ट्रानिक पेपर, ऊर्जायुक्त कारें, आतंकवाद पर नियंत्रण आदि ऐसे विषय हैं जिन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

मैं यह कहना चाहूँगा कि कोई भी लेखक चाहे वह साहित्यकार, पत्रकार अथवा विज्ञान कथाकार हो, सभी राष्ट्र के सजग प्रहरी हैं। इस अवसर पर सबसे मेरा विनम्र निवेदन है कि विज्ञान कथा की इस विधा को जन-जन तक पहुँचाने हेतु आप इस संगोष्ठी में संकल्प लें। आपका यह संकल्प प्रयोगशालाओं में कोष्ठित महत्वपूर्ण वैज्ञानिक शोधों को जनमानस तक पहुँचाने में सफलता दिलायेगा। इस प्रकार जनमानस से विज्ञान सम्बन्धी अज्ञान को तिरोहित कर आप ईशावास्योपनिषद् के ''अंध तमः प्रविशन्ति येऽ विद्यामुपासते'' मंत्र की सार्थकता को सिद्ध करने में सहायक होंगे।

— परिसर कोठी काके बाबू,
देवकाली मार्ग, फैजाबाद-224001

विज्ञान कथा लेखन : शिल्प और तकनीक

डॉ० अरविन्द मिश्र

पाश्चात्य साहित्य में 'विज्ञान कथा' (गल्प) आज एक समादृत रचना विधा है। अमेरिका, ब्रिटेन और यहाँ तक कि सोवियत संघ (अब विभाजित) में विज्ञान कथा विगत सौ वर्षों में उत्तरोत्तर विकसित और समृद्ध हुई है। किन्तु दुर्भाग्य से भारत में और विशेषकर हिन्दी साहित्य में अपने जन्म के सौ वर्षों के बावजूद भी यह विधा अपेक्षित रूप से पुष्पित, पल्लवित नहीं हो सकी है। अभी भी साहित्य और समाज में यह विधा भलीभाँति जानी पहचानी नहीं जा सकी है, इसे व्यापक स्वीकृति नहीं मिल सकी है। इस स्थिति के पार्श्व में बताये जाने वाले अन्यान्य कारणों में एक यह भी है कि जिस तरह हिन्दी कहानी शिल्प और तकनीक की दृष्टि से उत्तरोत्तर समृद्ध होती गयी है, विज्ञान कथा का शिल्प विकसित नहीं हो सका और वह हिन्दी के पाठकों से तादात्म्य स्थापित नहीं कर सकी। अतः विज्ञान कथा को ''हिन्दी कहानी'' के समकक्ष लाने और लोकप्रिय बनाने के लिए इसके शिल्प और तकनीक में सुधार की व्यापक संभावनाये हैं।

यह भी एक विडम्बना है कि अधिकांश हिन्दी साहित्यकारों को विज्ञान की मूलभूत जानकारियाँ भी नहीं होतीं, वहीं वैज्ञानिकों को साहित्यिकता से कोई लेना देना नहीं रहता। इन दोनों विषम स्थितियों का नतीजा एक ही है - विज्ञान कथा लेखकों का घोर अभाव ! साहित्यकार और वैज्ञानिक दोनों ही इस विधा को लेकर असमंजस की स्थिति में रहते हैं। एक बड़ी गलतफहमी यह भी है कि विज्ञान कथा केवल वैज्ञानिक ही लिख सकते हैं जबकि सच्चाई यह है कि विज्ञान कथा विज्ञान के किसी वर्ग या विभाग से सम्बन्धित न होकर विशुद्धतः एक साहित्यिक विधा ही है और इस विधा का सेवी मूलतः साहित्यकार है, फिर वह वैज्ञानिक हो सकता है और नहीं भी। आशय है कि विज्ञान कथा लेखक होने के लिए वैज्ञानिक होना कोई अनिवार्य शर्त नहीं है।

कहानी के कई भेदों-स्वरूपों की भाँति ही विज्ञान कथा मूलतः कहानी का ही एक रूप है– जैसे जासूसी कहानी, सामाजिक कहानी, ऐतिहासिक कहानी, पौराणिक कहानी, शिकार की कहानी, ठीक वैसे ही विज्ञान कहानी (विज्ञान की कहानी नहीं)। कहानी के विविध स्वरूपों से विज्ञान कथा इस अर्थ में बिल्कुल अलग पहचान बनाती है कि वह भविष्य-दर्शन कराती है। अन्य कहानियों में जहाँ अतीत और वर्तमान की विविध परिस्थितियाँ रूपायित होती हैं, वहीं विज्ञान कथा भविष्य का चित्रण करती दीखती है– वह भविष्य जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति से प्रभावित होने वाला है। विज्ञान कथा वस्तुतः परिवर्तनशील विज्ञान और प्रौद्योगिकी के भावी समाज पर पड़ने वाले प्रभावों की मानवीय प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति देती है। यह हमें भविष्य की राह दिखाती है, भविष्य के खतरों के प्रति आगाह करती है और इस अर्थ में एक बड़े सामाजिक उद्देश्य, सरोकार की पूर्ति करती है।

अतएव एक सामाजिक सरोकार से सम्पृक्त विधा मानवीय या सामाजिक संवेदना से शून्य हो यह नहीं हो सकता और यहीं साहित्यिकता का भाव प्रबल हो उठता है। विज्ञान कथा के लिये इसलिये एक सफल, बहुश्रुत, बहुपठित और प्रशंसनीय कहानी के सारे गुणों से युक्त होना आवश्यक हो जाता है। इस दृष्टि से आइये हम विज्ञान कथा की शिल्पगत और तकनीकी विशेषताओं पर चर्चा करें।

अंग्रेजी की 'शार्ट स्टोरी' ही वस्तुतः बँगला में

'गल्प' तथा हिन्दी में 'कहानी' के नाम से जानी पहचानी जाती है। 'गल्प' और 'कहानी' शब्द ही सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

हिन्दी कहानी के किसी भी स्वरूप की भाँति विज्ञान गल्प/कथा/कहानी में भी कथासूत्र (थीम), कथानक, पात्र, चरित्र, परिस्थिति और देशकाल (भविष्य का पूर्वानुमानित देश्काल) प्रमुख तत्व हैं। विज्ञान कथा में भी प्रौद्योगिकी की दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति से जूझते भावी मानव समाज, व्यक्तियों-पात्रों के पारस्परिक संसर्ग, द्वंद्व, नित नयी परिस्थितियों-विभीषिकाओं से संघर्ष, मानवीय जिजीविषा, संघर्ष की पराकाष्ठा आदि का विविधतापूर्ण वर्णन होता है। कहानी के ये सभी तत्व कहानी विशेष में अभिन्न रूप से समाहित हो जाते हैं, तथापि किसी कहानी में कथानक, किसी में कथासूत्र किसी में वातावरण प्रबलता से मुखरित होता है। हाँ, ज्यादातर विज्ञान कथायें चूँकि वर्णनप्रधान होती हैं अतः उनमें चरित्र-चित्रण का पक्ष गौण हो जाता है जो कई साहित्यकारों की दृष्टि में विज्ञान कथा का एक बेहद कमजोर पक्ष है। विज्ञान कथा के विवरणात्मक पक्ष पर अधिक बल देने से उसके निबन्ध या आलेख के रूप में परिवर्तित हो जाने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। वस्तुतः कथासूत्र या आधारभूत विचार पर अधिक जोर देने से कथा निबन्धात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेती है। लेकिन कहानी, निबन्ध नहीं है, क्योंकि इसमें मानवीय कल्पना या संवेदना का आग्रह होता है और वह मानवीय पुरुपार्थ, उसके अन्तिम अभीष्ट, उदात्तता या रामराज्यीय (यूटोपिया) चिन्तन के विस्तार आदि पहलुओं को अपने व्यापक फलक में समेटने को, व्यग्र रहती है - यह मानव मूल्यों, सत्यों के नूतन अन्वेषण और उद्घाटन एवं उनकी विविधतापूर्ण व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति के लिये प्रयत्नशील होती है न कि निबन्धों में वर्णित शुष्क तथ्यों की अभिधा-मूलक प्रस्तुति तक सीमित रह जाती है।

कहानी-कला के सम्बन्ध में आमतौर पर जो नियम या सिद्धान्त बताये जाते हैं, उनमें से प्रायः सभी विज्ञान कथा पर भी लागू होते हैं। मसलन विज्ञान कहानी में भी औत्सुक्य भाव (आगे क्या होगा ?) का होना नितान्त आवश्यक है। इसी तरह, द्विधा भाव (सस्पेन्स) का होना भी एक आवश्यक शर्त है। मशहूर अमरीकी विज्ञान कथालेखक आइज़क आसिमोव ने कई जासूसी कथाओं (डिटेक्टिव स्टोरी) को भी विज्ञान कथाओं की परिधि में लाने का प्रयास किया था। अमरीका के डेविस पब्लिकेशन ने ''आसिमोवस् एस. एफ. एडवेन्चर मैगजीन'' का प्रकाशन भी आरंभ किया था। कहानी 25,00 से 10,000 शब्दों तक सीमित हो तो बेहतर है, अन्यथा वह उपन्यास का रूप ले लेगी। लम्बी कहानी प्रायः उपन्यास में परिणित हो जाती है। 'उपन्यासिका'* श्रेणी के अन्तर्गत प्रायः लम्बी विज्ञान कथायें 'वर्गीकृत' होती हैं। हिन्दी में यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' का 'चक्षुदान' 'अपराधी वैज्ञानिक', 'हिमसुन्दरी' 'नियोगिता नारी', सम्पूर्णानन्द जी का 'सप्तर्षि मण्डल की सैर'' आचार्य चतुरसेन का 'खग्रास' आदि मशहूर औपन्यासिक कृतियाँ हैं। हिन्दी का पहला विज्ञान 'उपन्यास' पण्डित राहुल सांकृत्यायन की 'बाइसवीं सदी' है जो 1924 में प्रणीत हुआ। इसी तरह देवेन्द्र मेवाड़ी की कई लम्बी कहानियाँ- 'सभ्यता की खोज' 'खेम एन्थानी की डायरी' 'कोख' उपन्यासिकायें बन कर सामने आती हैं। ज़ाकिर अली रजनीश का उपन्यास 'गिनी पिग' अभी हाल में ही प्रकाशित (1998) हुआ है जिसे वे हिन्दी का (पहला) वैज्ञानिक उपन्यास मानते हैं जबकि समीक्षक उनके दावे से सहमत नहीं हैं।

नियमों-सिद्धान्तों के सहारे ही अच्छी कहानी नहीं लिखी जा सकती। भाव प्रबलता हो और मौलिकता का विशेष आग्रह हो तो श्रेष्ठ कहानी स्वयं ही जन्म ले लेती है। विश्व के कई महान विज्ञान कथाकारों - जूल्स वर्न, एच जी वेल्स, मेरी शैली की अधिकांश रचनायें स्वतः स्फूर्त एवं उद्भूत लगती हैं। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचनाओं की विशेपताओं का अध्ययन-मनन कर के ही वैज्ञानिक 'कहानी कला' के 'आवश्यक तत्वों' की पहचान की जा सकती है। इन रचनाकारों ने नियमों-सिद्धान्तों के 'फ्रेम' में अपनी

---

* हिन्दी की पहली विज्ञान उपन्यासिका ''आश्चर्य वृत्तान्त 1884-88 में लिखी गई, लेखक थे अम्बिका दत्त व्यास

रचनायें नहीं बाँधीं बल्कि उनकी रचनाओं से ही नियमों-सिद्धान्तों के फ्रेम-फरमा तैयार हुये, उनकी प्रस्तावना हुई। प्रायः ऐसी अनुभूतियाँ भी हुई हैं कि कई (श्रेष्ठ) रचनायें स्वयं को अभिव्यक्त करा लेती हैं- लिखा लेती है, लेखक तो निमित्त मात्र होते हुये भी उनके प्रणयन का श्रेय पा जाता है। परन्तु ऐसी कहानियों के प्रणयन के लिये लेखक में अतिशय भावप्रवणता, सुरुचिपूर्ण एवं गहरी संवेदनशीलता ज़रूरी है।

एक आदर्श 'कहानी' की ही भाँति विज्ञान कथा में भी मानवीय संवेदना, सामाजिक सरोकार और जीवन मूल्यों के प्रति आग्रह होना चाहिये तभी उसे व्यापक लोकप्रियता और स्वीकृति मिल सकती है - मात्र प्रौद्योगिकी और यन्त्रों के नीरस वर्णन या विवरण, शोधों अनुसन्धानों की रिपोर्टिंग से 'विज्ञान कथा' लेखन की खान पूरी तो हो सकती है, किन्तु 'साहित्यिक' मानदण्डों पर उसे स्वीकारा नहीं जा सकता।

शैली की दृष्टि से भी विज्ञान कथाओं में अनेक प्रयोगों की संभावनायें हैं। कई विज्ञान कथायें ''फ्लैश बैक'' तकनीक के सहारे कथा के 'अन्त' को पहले ही 'प्रोजेक्ट' कर देती हैं, सारी कथा इस तरह उसी 'अन्त' का पार्श्व अनुसरण करती हुई समाप्त होती है। 'अमरा वयम' में लेखक ने कहानी की शुरूआत ही इस जुमले से की है, ''अन्त भला सो सब भला''। कथा में शैली या उक्ति-वैचित्र्य का एक खतरा भी है- कहानी की सहजता, किस्सागोई का सतत सहज प्रभाव नष्ट हो सकता है - यहाँ सावधानी की जरूरत है।

विज्ञान कथा अपने सरलतम रूप में सीधे सादे, नियमित और व्यवस्थित तरीके से शुरू हो सकती है किन्तु नाटकीयता लाने के लिये कहानी कथानक के किसी स्थल से शुरू की जा सकती है। कल की 'वर्णन प्रधान' विज्ञान कथा अब रूपकों और प्रतीकों के सहारे और भी कलात्मक रूप ले रही है, उसकी शैली में निरन्तर विकास परिलक्षित हुआ है। हिन्दी में तो कम, किन्तु मराठी में कई ऐसी उत्कृष्ट कथायें, मराठी विज्ञान कथा के त्रिदेवों - नार्लीकर, फोण्डके और लोढ़े द्वारा लिखी गयी हैं जिनमें अनेक शैलीगत एवं कथोपकथन की विशेषताओं के दर्शन होते हैं।

हिन्दी की पहली विज्ञान कथा 'चन्द्रलोक की यात्रा' (सरस्वती भाग-1 संख्या ; लेखक वावू केशवप्रसाद सिंह) और तदन्तर 'आश्चर्यजनक घंटी' (सरस्वती, 1908, ले० सत्यदेव परिब्राजक) तथा रक्त मंडल, स्वर्गपुरी (उपन्यास) आदि कृतियाँ (लेखक : दुर्गाप्रसाद खत्री) आदि विवरण प्रधान/वर्णनात्मक कहानियाँ - उपन्यास हैं। यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' की कई कहानियां- ''वैज्ञानिक की पत्नी' ''प्रोफेसर की भूल'' राजीव रंजन उपाध्याय की 'अतिमानव', एवं ''यूक्का'' देवेन्द्र मेवाड़ी की 'डॉ० गजानन के आविष्कार' तथा अरविन्द मिश्र की ''अन्तरिक्ष कोकिला'' पात्रों के चरित्र-चित्रण पर भी ध्यान रखती है, इन्हें चरित्र प्रधान 'विज्ञान कथाओं की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसी तरह देवेन्द्र मेवाड़ी की ''एक और युद्ध'' अरविन्द मिश्र की ''अछूत', हरीश गोयल की 'कालजयी यात्रा' आदि वर्णनात्मक शैली की ''वातावरण प्रधान'' कहानियाँ हैं। देवेन्द्र मेवाड़ी की 'दिल्ली मेरी दिल्ली' तथा अरविन्द मिश्र की 'कायान्तरण' पत्रात्मक शैली में व्यक्त हुई हैं। अरविन्द मिश्र की 'गुरू दक्षिणा' में 'डायरी लेखन' के जरिये कथा का प्रवाह होता है। कई अन्य तकनीक जैसे 'आपसी संवाद', 'टाइम मशीन' के जरिये 'भूत व भविष्य दर्शन' 'समाचार कतरनों के उद्धरण के जरिये भी विज्ञान कथा के कथानक का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया जा सकता है। इस तरह, अन्य कहानियों की ही भाँति विज्ञान कथायें भी 1. कथानक या घटना प्रधान कहानी 2. चरित्र प्रधान कहानी 3. वातावरण प्रधान कहानी और 4. भाव प्रधान कहानी के रूप में वर्गीकृत की जा सकती हैं। जहाँ तक शैली की बात है उन्हें भी पत्रात्मक शैली, नाटकीय शैली, आत्मचरित्र शैली, डायरी शैली या 'मिश्रित' शैलियों में विभाजित किया जा सकता है।

विज्ञान कथाओं का ''वामन रूप'' आज समूचे ब्रह्माण्ड को अपने में समेट लेने को व्यग्र है। किन्तु आसिमोव का मानना है कि विज्ञान कथाओं के लिये

यह वहुत आवश्यक नहीं कि हमें प्रायः अपने सौर मंडल के बाहर 'थीम' की खोज में ताकना झाँकना पड़े। खुद हमारे सौर मंडल में ऐसे अनेक विषय और समस्यायें हैं, जो विज्ञान कथाओं की रोचक थीम बन सकती हैं। हिन्दी विज्ञान कथा के रचनाकारों ने अपनी अधिकांश रचनाओं को सौरमंडल और धरती से ही जुड़ा हुआ रखा है। कथा जितनी ही हमारे क़रीब होगी, जमीन से जुड़ती नज़र आयेगी उतना ही वह पाठक से सम्प्रेषण/तादात्म्य कायम रखेगी और लोकप्रिय बनेगी। जितना ही हमसे दूर होती जायेगी वह अविश्वसनीय (अनरियलिस्टिक) हवाई, बेसिरपैर (फंतासी) की होती जायेगी और आम पाठक से संवाद नही बना सकेगी। हमारे कितने जमीनी मुद्दे हैं जिनपर विज्ञान कथायें लिखी जा सकती हैं - यद्यपि जमीन से जुड़ी विज्ञान कथाओं का प्रणयन आसान नही हैं, इसके लिये अनवरत लेखकीय अभ्यास होना चाहिये और मानवीय सरोकारों, समस्याओं की अच्छी समझ और भविष्यद्रष्टा की 'दूर दृष्टि' होनी चाहिये। हमारी धरती की कई समस्याओं पर उत्कृष्ट विज्ञान कथायें लिखी जा सकती हैं, जैसे जनसंख्या का भावी स्वरूप, आनुवंशिक अभियान्त्रिकी के विविध पहलू-महामानव (कल्कि ?) का जन्म (क्लोन !), यन्त्र मानवों, एन्ड्रायडों का भावी रूप, किराये की कोख, सागर सम्पदा, जनसंख्या स्थानान्तरण-सागरीय या 'भूमिगत' जीवन, खाद्य समस्या का समाधान, अमरता या चिरंतन यौवन की खोज, प्रेम और सौन्दर्यानुभूति के बदलते प्रतिमान आदि ढ़ेरों विषय हैं जिनपर नया कथाकार लेखनी उठा सकता है। 'विज्ञान कथा' विशेषांक 1984 में विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित हुआ था। पांच वर्ष बाद 1989 में 'भारतीय भाषाओं में 'विज्ञान लेखन' विषयक राष्ट्रीय विचार गोष्ठी में कई प्रतिभागियों ने विचार व्यक्त किये थे कि विज्ञान कथा लेखन के लिये कार्यशालायें आयोजित कर उनमें आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाये और विश्वविद्यालयों में इस विधा के लिये पाठ्यक्रम निश्चित कर विधिवत् शिक्षा दी जाय। यहाँ हिन्दी में 'विज्ञान कथा' से सम्बन्धित पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा प्रस्तुत है।

जहाँ तक कार्यशालाओं के आयोजन का प्रश्न है, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति (मु० फैजाबाद) इस दिशा में राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद् दिल्ली के सहयोग से 19-22 फरवरी 2000 को एक चार दिवसीय कार्यशाला का आयोजन सारनाथ में किया, जिसमें प्रायः सारे विज्ञान कथा लेखक एकत्र हुए।

हिन्दी विज्ञान कथा पाठ्यक्रम की प्रस्तावित रूपरेखा

इतिहास - पाश्चात्य साहित्य में विज्ञान कथा उद्भव और विकास, ब्रितानी, अमेरिकी और रूसी विज्ञान कथायें और प्रमुख रचनाकार, वर्तमान वैश्विक परिदृश्य, भारत में विज्ञान कथा, भारतीय मिथकों एवं विज्ञान कथाओं में ''भविष्य दर्शन'' भारतीय भाषाओं में विज्ञान कथा-अतीत और वर्तमान हिन्दी विज्ञान कथा के विशेष संदर्भ में।

समकालीन परिदृश्य : आधुनिक हिन्दी कहानी, बनाम विज्ञान कथा, प्रमुख लेखक और उनका योगदान, विज्ञान कथा : आलोचना एवं समीक्षा।

तकनीक: शिल्प विधान, शैली, कथानक और कथा-वस्तु का विकास, विज्ञान कथाओं के उदाहरण सहित।

भावी स्वरूप : हिन्दी में विज्ञान कथा का भविष्य, स्वरूप और संभावनायें।

—सचिव, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति
A-2/21 संजय अपार्टमेन्ट, काटन मिल कम्पाउन्ड,
चौका घाट, वाराणसी-221002

हिन्दी विज्ञान कथा के सौ वर्ष

डॉ० अरविन्द मिश्र

सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका ''सरस्वती'' के प्रकाशन के पहले वर्ष, 1900 के अंक - 6 में तीन कहानियाँ प्रकाशित हुईं, जिसमें ''इन्दुमती'' लेखक किशोरी लाल बाजपेयी को हिन्दी की पहली आधुनिक कहानी होने का गौरव मिला हुआ है। इसी अंक की दूसरी कहानी ''चन्द्रलोक की यात्रा'' लेखक : केशव प्रसाद सिंह को श्री नारायण चतुर्वेदी प्रभृत रचनाकारों - समीक्षकों ने हिन्दी की पहली वैज्ञानिक कहानी की उल्लेखनीय मान्यता प्रदान की है। इस तरह हिन्दी वैज्ञानिक कहानी ने अपना शतक पूरा कर लिया है। विज्ञान कथा के शतकोत्सव पर चलिये हम इस महत्वपूर्ण विधा के अतीत के मुख्य स्थलों, स्मारकों का एक विहंगावलोकन तो कर लें।

आइये, शुरुआत ''सरस्वती'' से ही करते हैं। हिन्दी साहित्य में ''सरस्वती'' का प्रकाशन एक प्रमुख घटना है - एक महान साहित्यिक यात्रा का प्रस्थान बिन्दु। यह कहना समीचीन होगा कि ''सरस्वती'' ने हिन्दी साहित्यिक और उसकी विविध विधाओं के स्वरूप निर्धारण के उत्तरदायित्व का बखूबी निर्वहन किया। अब कहानी को ही ले लीजिये - हिन्दी की पहली आधुनिक कहानी ''इन्दुमती'' के साथ ही एक सर्वथा नये संस्कार-परिपेक्ष से पाठकों का परिचय कराती वैज्ञानिक कहानी ''चन्द्रलोक की यात्रा'' का प्रकाशन किसी युगद्रष्टा के सोच की ही परिणति कही जा सकती है। किन्तु छठे दशक के आते-आते ''सरस्वती'' के अवसान से जिन कई साहित्यिक संभावनाओं के द्वार बन्द होते नजर आये, उसमें एक वैज्ञानिक कहानी भी थी। साहित्यिकारों ने जैसे इस विधा को ही बिसरा दिया। कहानी के नाम पर, जनवादी कहानी, मनोविश्लेषणात्मक कहानी, और अकहानी जैसे आन्दोलन आये और गये किन्तु साहित्यकारों ने वैज्ञानिक कहानी की खोज-खबर तक नहीं ली, उससे मानो नजरें ही फेर लीं।

अकेले सरस्वती ने ही ''चन्द्रलोक की यात्रा'' ''आश्चर्यजनक घंटी'' (ले० सत्यदेव परिब्राजक, सरस्वती, 1908) ''विज्ञान की कहानियाँ'' ''चन्द्रलोक की परिक्रमा'' (अनुवाद केशव सदाशिव केलकर) ''उड़ते अतिथि'' (कु० विनोदनी मिश्र), चन्द्रलोक की यात्रा (ले० श्री सूर्यकान्त शाह, एक ही कथावस्तु की पुनरावृत्ति), आकाश में युद्ध (श्री सत्यप्रकाश पाण्डेय) बैलून बिहार (ले० शिव सहाय चतुर्वेदी, 1918), भूभर्ग की सैर (एक हिन्दी सेवक, अनूदित, 1919) विमान विध्वंसक (1923, अनूदित) संरचनाओं का समय समय पर प्रकाशन कर कहानी की इस महत्वपूर्ण विधा को समृद्ध करने के संकल्प को पूरा करने का स्तुत्य प्रयास किया। साथ ही, रचनाकारों को इस विधा में लेखनी चलाने का निमन्त्रण भी दिया।

पहली वैज्ञानिक कहानी ''चन्द्रलोक की यात्रा'' वैसे तो जूल्स वर्न की प्रसिद्ध कृति'' फाइव वीक्स इन बैलून'' से प्रभावित है, किन्तु यह निश्चय ही लेखक की एक मौलिक रचना है, जूल्स वर्न की प्रश्नगत कहानी का मात्रा अनुवाद नहीं। इस कहानी में कथानक, परिवेश, पात्र, कथोपकथन का अपना देशज स्वरूप ही मुखरित हुआ है। कहानी का अभागा (भारतीय) नायक तीन सूदखोरों से लिये कर्ज की देनदारी से बचने के लिये गुब्बारे और कई जुगतों-यन्त्रों के सहारे चाँद की ओर उड़ चलता है। साथ में होते हैं दो कबूतर और आसन्नप्रसवा एक बिल्ली। सभी उसके सहयात्री। पल पल कष्टकारी होती गयी इस यात्रा में चाँद को धरती तक केवल नायक ही पहुँच पाता है - अकेला, असहाय। किन्तु वहाँ उसे चन्द्रवासी मिलते हैं - सीधे साधे चन्द्रवासियों में से ही एक के जरिये वह धरती पर पत्र सन्देश

भेजता है। इसी पत्र के उजागर होती है ''चन्द्रलोक की यात्रा''। यह कहानी एक ओर तत्कालीन समाज पर सूदखोरों के आतंक को बखूबी चित्रित करती है, वहीं चन्द्रयात्रा की भविष्यता की ओर संकेत करती दिखती है। अर्थात्, सही अर्थों में एक प्रतिनिधि विज्ञान कथा का बोध करती दिखती है। इस कहानी की संभावना आज हकीकत बन चुकी है। आज मानव चन्द्रजेता है।

सरस्वती में ही प्रकाशित एक दूसरी उल्लेखनीय वैज्ञानिक कहानी, आश्चर्यजनक घंटी (1908) भौतिकी के अनुनाद (रेजोनेन्स) सिद्धान्त पर आधारित है, जिसमें एक जापानी दीवाल घड़ी जो कहीं सूदूर ध्वनि के स्रोत के प्रति सुग्राही सुग्राही है, स्वयं घंटी बजाकर नायक को विस्मित करती रही है। कथानक के प्रवाह में ही अचानक एक हत्या भी हो जाती है, जिसकी गुत्थी सुलझाने के दौर में एक गिलास और सारंगी के तरंग दैर्ध्यों की आवृत्तियों की जुगलबन्दी की भी घटना घटती है। यह कहानी जासूसी कहानी का सा रोमांच भी उत्पन्न करने में सफल हुई है।

वैज्ञानिक कहानी के मील के एक देदीप्यमान पत्थर के रूप में डॉ० नवल बिहारी मिश्र की लम्बी कहानी ''मंगल ग्रह की पहली यात्रा'' (1956) भी है। सरस्वती में ही प्रकाशित यद्यपि इस कहानी की मूल प्रेरणा लेखक को पश्चिमी गल्प साहित्य से मिली लगती है। हिटलर के आतंक से त्रस्त कुछ वैज्ञानिक स्वनिर्मित राकेट के सहारे मंगल ग्रह तक जा पहुँचते हैं। इस कहानी में राकेट प्रक्षेपण, आकाशीय यात्रा की मौजूदा प्रणाली की आरम्भिक झलक स्पष्ट दिखती है। कहानी का एक पात्र अकेले ही वापस धरती तक सकुशल पहुँच पाता है, किन्तु लम्बी बीमारी के पश्चात् यह भी चल बसता है। पूरी कहानी एक चिकित्सक के संस्मरण के रूप में सामने आती है।

यह तो रही ''सरस्वती'' में प्रकाशित वैज्ञानिक कहानियों की एक चर्चा। अब आइये यह देखें कि क्या अन्यत्र भी ''वैज्ञानिक कहानियों'' को तरजीह मिल पायी ? विज्ञान कथा साहित्य के अतीत-अवगाहन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 1930 के आस-पास श्रीराम शर्मा और पं० बनारसी दास चतुर्वेदी ने ''विशाल भारत'' और 'चित्रथगा' में भी वैज्ञानिक कहानियों के प्रकाशन की समर्पित शुरुआत की। तब के लेखकों में प्रमुख हस्ताक्षर थे - दुर्गा प्रसाद खत्री, यमुना दत्त वैष्णव, ''अशोक'', डॉ० नवल बिहारी मिश्र, ब्रजमोहन गुप्त, रमेश वर्मा। इन लेखकों ने विज्ञान कथा साहित्य की अभिवृद्धि में जो योगदान दिया वह अविस्मरणीय रहेगा।

वर्ष	औपचारिक कृति	लेखक
1916	परीक्षा शुरु	लाल श्रीनिवास दास
1924	वाइसवीं सदी	राहुल सांकृत्यायन
1925	प्रतिशोध, लाल पंजा	दुर्गा प्रसाद खत्री
1949	चक्षुदान	यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'
1950	पृथ्वी से सप्तर्षि मंडल	डॉ० सम्पूर्णानन्द
1956	अन्न का आविष्कार	यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'
1958	मंगल यात्रा : जीवन और मानव	डॉ० ओम प्रकाश शर्मा
1960	खग्रास	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
1963	अदृश्य शत्रु	डॉ० नवल विहारी मिश्र
1963	अन्तरिक्ष स्पर्श सिन्दूरी ग्रह	रमेश वर्मा
1968	अपराधी वैज्ञानिक	यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'
1982	नियोगिता नारी	यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'
1999	गिर्नी पिग	ज़ाकिर अली ''रजनीश''

बात विज्ञान कथा की हो रही है तो आइये कहानी के ही एक परिवर्द्धित रूप उपन्यास की चर्चा हो जाय। मेरी समझ में राहुल सांकृत्यायन की कृति ''वाइसवीं सदी'' (1924) हिन्दी के पहले ''वास्तविक विज्ञान गल्प'' विधा का प्रतिनिधित्व करती है। इसके पूर्व दुर्गा प्रसाद खत्री जी ने कई उपन्यास लिखे, जिनमें आश्चर्यजनक उपकरणों, जुगतों की चर्चा है। एक मात्र विस्मयकारी अस्त्र, शस्त्र, यन्त्रों की चर्चा से रचना को ''वैज्ञानिक कथा/उपन्यास'' श्रेणी में रखना उचित नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि इसी तरह कई और लेखक और उनके प्रमुख औपन्यासिक कृतियाँ जो विज्ञान कथा के इतिहास में सुनहली आभा से आलोकित हैं।

(शेष पृष्ट 11 पर)

विज्ञान कथा साहित्य में मानवीय संवेदना

डॉ० अरविन्द मिश्र

''मानवीय संवेदना'' के मायने क्या हैं ? क्या मानवेतर जीवों में संवेदना/संवेदनायें नहीं होतीं ? जीव ही क्यों, अब तो कृत्रिम बुद्धि से युक्त मशीनों-रोबों की एक नयी संस्कृति ही जन्म ले रही है - कहीं उनमें अकस्मात् संवेदना का स्फुलिंग रूपायित न हो उठे। फिर तो जड़-चेतन की एक बड़ी विभाजक रेखा ही ध्वस्त हो जायेगी– ''फूटा कुम्भ जल जल ही समाना'' की भाँति। तब कैसी होगी यह दुनियाँ ? मशीन सोचेगी, आदेश देगी और आदमी जी हुजूरी करेगा। जब आज संवेदना से युक्त आदमी संवेदना-शून्य हो उठा है, तो संवेदना से रहित मशीन का अचानक संवेदना से सम्पृक्त हो उठना कौन सी अनहोनी होगी ? इन्हीं तमाम सवालों को हल कों तलाशती इस संगोष्ठी में आपका स्वागत है।

बात संवेदना की है। आइये, एक पड़ताल करें कि संवेदना का उद्गम कहाँ से है। यदि जीवन के आरंभ से देखा जाय तो एककोशीय जीवों में किसी भी उद्दीपन की प्रतिक्रिया बहुत सधी हुई और हर बार एक-सरीखी ही होती है - जैसे अमीबा प्रकाश के प्रति हमेशा एक-जैसा व्यवहार प्रदर्शित करता है - दूर भागता है-अमीबा प्रकाश के प्रति ''संवेदनशील'' है। इसी तरह निम्न श्रेणी के लगभग जीव-जन्तु प्रकाश, ध्वनि, क्षार-अम्ल इत्यादि उद्दीपनों के प्रति आकर्षित-विकर्षित होते हैं-इनमें मस्तिष्क का विकास अपनी आरम्भावस्था में ही है - मात्र चन्द न्यूरॉन- गैन्गिलियान, बस। अकशेरुकीय से कशेरुकीय प्राणियों तक के विकास में मस्तिष्क का विकास सबसे महत्वपूर्ण है जो उनमें चेतना या संवेदना (1) के विभिन्न स्तरों को इंगित करता है। पृष्ठवंशी प्राणियों के सच्चे आदि प्रतिनिधियों में मछली है जिसमें कुछ प्रजातियों में ''ममत्व'' का ऐसा उदाहरण आँखों के सामने आता है कि कोई भी आम आदमी उनमें संवेदना की महज मौजूदगी ही नहीं, उसकी पराकाष्ठा का दावा कर सकता है। टिलैपिया अपने मुँह के भीतर नवजात बच्चों को तब तक रखती है, जबतक कि वे अपनी रक्षा में स्वयं समर्थ नहीं हो जाते। इसी तरह टेंगन की एक जाति की मादा बच्चों को अपने तल भाग से चिपकाये रखती है, बच्चे माँ के तल भाग को चूसते चिचौरते रहते हैं, यहाँ तक कि वह अधमरी हो उठती है किन्तु बच्चों का मोह त्याग नहीं करती।

मेढ़कों में भी वात्सल्य-देखभाल (Parental care) के अनूठे उदाहरण हैं - एक मेढ़क प्रजाति अपने पीठ पर नन्हें शिशुओं की एक बड़ी फौज ही ढोती फिरती है। विकास क्रम में आगे बढ़िये तो इससे भी बढ़कर एक से एक नजारे पेश होते हैं - कई पक्षी प्रजातियाँ अपने बच्चों यहाँ तक कि स्वजाति संकट के समय अपनी जान की जोखिम पर भी उनकी रक्षा करती हैं - कौओं की जमात में किसी एक को छेड़कर तो देखिये ? उनमें स्वजाति प्रेम-रक्षा (Altruism) की इस बानगी को क्या कहेंगे आप ! क्या संवेदनाशीलता का कोई उच्च स्तर ? किन्तु व्यवहारवादी (Ethologist) हमें यहीं सावधान करते हैं। वे कहते हैं कि प्राणि-व्यवहार को ''आदमी के चश्मे'' के बजाय तटस्थ प्रेक्षक के रूप में देखना चाहिये - उनकी राय में इन प्राणियों में ज्यादातर व्यवहार ''सहजबोध'' का परिणाम है। ऐसे प्रदर्शनों के पार्श्व में बुद्धि का आग्रह नहीं है - चिन्तन मनन नहीं है, तर्क वितर्क नहीं - ये बुद्धि से परे, प्रकृतिप्रदत्त पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे व्यवहार के प्रतिरूप हैं। जैसे नवजात गाय भैंस का बच्चा जन्म लेते ही माँ का थन ढूंढ लेता है, बिना किसी बाह्य सहायता के। ठीक वैसे ही समूचे-जगत में ऐसे असंख्य उदाहरण भरे पड़े हैं, जिन्हें देखकर सहसा ही यह प्रतीत होता है कि उनमें संवेदना का भाव है।

दरअसल विकास क्रम में मानव तक पहुँचते पहुँचते ये सभी व्यवहार प्रतिरूप अपने उत्कर्ष को पा गये हैं - क्रोध की बात कीजिये तो ''अगिया बैताल'' है आदमी। प्रेम की बात करिये तो वह ''सितारों को भी तोड़ लाने'' को उद्यत दीखता है। घृणा तो ऐसी की जन्म-जन्मान्कर मुँह न देखने की कसम खा लेता है।

उत्सर्ग ऐसा कि आन, बान, शान के लिये कुर्बान हो जाता है आदमी - ''रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई'' - कहीं मानव के ये सारे व्यवहार प्रतिरूप महज ''सहजबोध'' के ही विकसित-परिष्कृत रूप तो नहीं हैं ? उनमें उसकी तर्क-बुद्धि क्षमता की कोई भूमिका नहीं है बल्कि उल्टे हो यह रहा है कि मानव की बुद्धि उसकी कुटिलता, चतुरता, कई बार उसकी उदात्त प्रवृत्तियों पर सहसा ब्रेक लगा देती है। लोगों को अवसर यह कहते सुना जाता है कि ''भावुक न होइये, प्रैक्टिकल बनिये''। समय से अपने गंतव्य पर पहुँचने की जल्दी में रास्ते में दुर्घटनाग्रस्त पड़े आदमी का आर्तनाद भी हमें रोक नहीं पाता। ''कौन झंझट मोल ले'' सोचकर हमारे पैर खुद ब खुद आगे चल पड़ते हैं - यह वही देश है, जहाँ राजा शिवि का किस्सा मशहूर है, जिन्होंने आक्रान्ता बाज से कबूतर को बचाने के लिये अपने शरीर का मांस न्योछावर कर दिया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आदमी की बुद्धि ही आज उसकी भाव प्रवणता की राह का रोड़ा बन रही है - उसका अन्य पशुओं से अलग अस्तित्व पा गया मस्तिष्क अब उसके खुद के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये शायद उसे नित नये पाठ पढ़ा रही है। भविष्य का मानव शायद संवेदना भावुकता के ''फालतू'' विकासीय बोझ से रहित होगा। पर तब आदमी होने का ही क्या मतलब रह जायेगा ! ''भरा नहीं जो भावों से ....'' वह कैसा आदमी ? तब तो वह मशीन ही बन बैठेगा ! और मशीनें भावप्रवण हो उठेंगी। ये सभी प्रश्न इस संगोष्ठी में विचारणीय हैं, क्योंकि यही वे महाप्रश्न हैं जिनके जवाब भविष्य की विज्ञान कथाओं की पृष्ठभूमि तय करेंगे।

पृष्ठ 9 का शेष

इस तरह वैज्ञानिक उपन्यासों का छिटपुट प्रणयन होता रहा है। उनके प्रकाशन वर्षो के बीच लम्बे अन्तराल से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिक उपन्यास लेखन में नैरन्तर्य का अभाव रहा है और इधर तीन दशकों से तो इस दिशा में प्रयास नगण्य ही है। बस हरीश गोयल प्रणीत 'कालजयी यात्रा', तथा अभी गत वर्ष प्रकाशित जाकिर अली ''रजनीश'' का उपन्यास ''गिनीपिग'' ध्यान आकर्षित करता है। ''गिनीपिग'' को वैज्ञानिक उपन्यास की श्रेणी में रखने को लेकर समीक्षकों में सहमति नहीं बन पायी है। इस उपन्यास में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की मानव सम्बन्धों में भूमिका को लेकर एक कथानक सृजित हुआ है किन्तु कथानक से भविष्य की कोई टोह नहीं मिलती, जो विज्ञान गल्प की एक बड़ी पहचान है। प्रोफेसर दिवाकर (संभवतः छद्म् नाम) के कई वैज्ञानिक उपन्यास पॉकेट बुक्स (लुगदी साहित्य) की श्रेणी में प्रकाशित हुये हैं, जिनमें ''सूरज की भेंट'' ''दिमागों का अपहरण'' ''शुक्र ग्रह का धावा'' ''नक्षत्रों का युद्ध'' ''समय के स्वामी'' ''किरणों के चोर'' ''लेडी रोबो'' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। किन्तु इन्हें स्तरीय विज्ञान गल्प के अन्तर्गत रखने में संकोच होता है क्योंकि ये कृतियाँ अन्य पॉकेट बुक्स - उपन्यासों की तरह बस तात्कालिक मनोरंजन कराती हैं और फिर विस्मृति के गहरे गर्त में डूब जाती हैं। ये सभी कृतियाँ कालजयी नहीं लगतीं और वह साहित्य ही क्या जो कालजयी न हो ?

यह तो उपन्यासों की चर्चा हुई। वैज्ञानिक कहानी के क्षेत्र में इधर समवेत प्रयास शुरू हुआ है। इस समय अनेक विज्ञान कथाकार ''भारतीय विज्ञान कथालेखक समिति'' के बैनर तले हिन्दी विज्ञान कथा साहित्य की अभिवृद्धि में पूरे मनोयोग और समर्पण से जुटे हैं। सबसे रोचक तो यह है कि एकसाथ तीन-तीन पीढ़ियाँ रचनाकर्म में जुटी दिखायी देती हैं। विज्ञान कथा लेखन के सशक्त हस्ताक्षर श्री देवेन्द्र मेवाड़ी जहाँ मौजूदा तीनों पीढ़ियों के अग्रज रचनाकार हैं, वहीं हरीश गोयल, डॉ० राजीवरंजन उपाध्याय, अरविन्द मिश्र के साथ मनीष मोहन गोरे, जाकिर अली ''रजनीश'', कल्पना कुलश्रेष्ठ, इरफान ह्यूमन, अमित कुमार, लक्ष्मीनानारायण कुशवाहा, स्वप्रिल भारतीय आदि नये ऊर्जावान लेखकों की एक भरी पूरी टीम ही इस रचनात्मक यज्ञ में हविदान को जुटी दिखायी देती है।

विज्ञान कथा के इस शतकीय सफर से यह आशा बँधती है कि इस नयी सदी ही नहीं आगामी सदियों में भी साहित्य की यह धारा निर्बाध गति से बहती रहेगी और मानवता का त्राण करेगी।

भविष्योमुखी विज्ञान कथाओं का स्वरूप एवं मानवीय संवेदनायें

डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय

मानव ने आदि काल से अपनी विचारधारा, भावों आदि को अभिव्यक्त करने हेतु कभी भिन्न चित्रों का तो कभी शब्दों का सहारा लिया था। इन्हीं विचारों की भावनाओं की अभिव्यक्ति की कामना ने कालान्तर में साहित्य को जन्म दिया। इसी कारण मानव हित को स्पष्ट, उद्भासित एवं सम्पादित करने वाले शब्दों, एवं शब्दार्थों को ही साहित्य कहा गया है। इसी संदर्भ में साहित्याचार्य राजशेखर के इस कथन, कि कोई ऐसी विद्या, कला एवं शास्त्र इस विश्व में नहीं है जो साहित्य में समाहित न होता हो। तात्पर्य है कि साहित्य शब्द की सार्थकता, महत्ता एवं विशेषता ''सर्व-शास्त्र ग्राहिता'' में निहित है।

विज्ञान शब्द प्रज्ञा, बुद्धि एवं ज्ञान का वाचक माना गया है तथा विवेचन, अन्तर, प्रवीणता, कुशलता, अनुभव जन्म विशिष्ट ज्ञानादि शब्द विज्ञान के अर्थ को प्रकट करते हैं। विज्ञान प्रकृति के रहस्यों का उद्भेदन कर नवीन तथ्यों को प्रस्तुत कर, उनकी उपादेयता, गुणवत्ता एवं कभी-कभी दुष्परिणामों की ओर हमारा ध्यान इंगित करता है। विज्ञान में विष्णुतत्व एवं शिवतत्व दोनों निहित हैं।

वैज्ञानिकों की भाषा, विज्ञान के तथ्यों के निरूपण में, प्रत्युक्त होने वाली भाषा-एक प्रकार से सरस नहीं होती। परन्तु जब विज्ञान के तथ्यों को जन सामान्य तक प्रेपित करना होता है, उस समय विज्ञान के तथ्यों को अपने अंक में समेटे जिस भाषा का प्रयोग होता है वह दुरूह न होकर सर्व-बोधगम्य होती है। इस कारण वैज्ञानिक साहित्य, साहित्य के सभी गुणों को समेटे, विज्ञान की नीर-क्षीर विवेचनात्मक दृष्टियुक्त होता है।

कुतूहल की भावना मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है। यही भावना जब कल्पना के पंखों पर बैठकर शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती है तो वह कथा बन जाती है। साहित्य की अनेक विधाओं में कथा-साहित्य सर्व-लोकप्रिय विधा है क्योंकि इन विज्ञान कथाओं द्वारा मनोरंजन ही नहीं होता वरन् यह जीवन की संवेदनाओं को, उससे संबद्ध विविध पक्षों को संस्पर्शित करती हुई समय की सहचरी सम होती है।

19वीं शती का प्रारम्भ आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों से उसकी नवीन खोजों से, नवीन तथ्यों के उद्घाटन से तथा इन विविध शोधों के परिणामों की मानव हित में उपयोगिता के कारण महत्वपूर्ण है। स्वाभाविक है कि तत्कालीन साहित्य पर इस विज्ञान-प्रगति का प्रभाव पड़ा था तथा परिणाम-स्वरूप साहित्यिक कथाओं, कहानियों, गल्पों के साथ-साथ विज्ञान कथाओं का भी प्रणयन प्रारम्भ हुआ था।

सामान्य कथाओं, गल्पों आदि का उद्देश्य मानव-मनोरंजन है, परन्तु विज्ञान कथाओं की सार्थकता विज्ञान के तथ्यों को समेटे, कथा माध्यम से जन साधारण के मनोरंजन में निहित है। दूसरे शब्दों में, विज्ञान कथाएं मानव समाज में व्याप्त अंध विश्वासों के तार्किक निराकरण के साथ-साथ विज्ञान के ज्ञान के दुरुपयोगों को तथा विज्ञान की भविष्योनमुखी प्रगति को जन मानस तक पहुँचाती हैं। इस कारण विज्ञान कथाओं के लेखन में कुछ मूल-भूत तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है जो मुख्य रूप में उदात्त-स्पृहणीय भाव एवं प्रेषणीय भाषा शैली हैं। लेखक के विचार उच्चादर्श युक्त प्रगतिशील एवं

प्रभावशाली होने के साथ ही रचना की भाषा सरस, बोधगम्य एवं कलात्मकतायुक्त होनी चाहिये। उसमें रस, अलंकार, लोकोक्तियों आदि से मंडित संकलित विज्ञान तथ्य होने चाहिए। अत्याधिक विज्ञान तथ्य और कम कलात्मकता, नीरस शब्दों का अत्यधिक उपयोग कथा को निरर्थक बना देता है। क्योंकि विज्ञान कथाएं एक प्रकार से सत्य तथ्य वाहक भविष्योनमुखी एवं लोक मंगल कामना युक्त होने के कारण सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का प्रतिनिधित्व करती हैं।

आधुनिक विज्ञान का विकास योरप में प्रारम्भ हुआ था-- स्वाभाविक है कि आधुनिक विज्ञान कथा लेखन का उद्भव भी यहीं पर हुआ। भविष्योनमुख विज्ञान मय विचारों को विकसित करने में इटली के महान चित्रकार लियोनार्दो-द-विंची (1452-1519 ई०) परोक्ष में, मध्य युग में, विज्ञान कथाओं के प्रतीकात्मक विकास के प्रणेता माने जा सकते हैं तो निश्चित रूप में प्रत्यक्ष में उत्प्रेरकतुल्य सृजनात्मक प्रभाव मेरी शैली के उपन्यास फ्रैंकनस्टोन (1818) जूल्सवर्न की रचनाओं में (1828-1895) तथा एच. जी. वेल्स (1866-1946) की कृतियों में देखा जा सकता है। कालान्तर में एच. जी. वेल्स, जार्जग्रोफिय, हर्मन लैग, डेविड, रोरविक पाल एण्डरसन, रार्बट हिनसे, जान क्रिस्टो, जान गोडी, डेविड शील्टजर, एडगर राइसवरो, कानन डायल (आर्थर), आर्थर सी. क्लार्क, स्मिथ आस्तंमोव, स्टीफेनहीम, जार्ज ओटेवल, रेन्वडेंवरी आदि लेखकों ने पश्चिमी विज्ञान कथा साहित्य को गरिमा प्रदान की। अमेरिका में, ह्यूगो गिसंवर्ग नामक विज्ञान कलाकार ने ''अमोजिंग स्टोरीज'' नामक विज्ञान कथामय मासिक पत्र प्रारम्भ कर उस देश में विज्ञान कथाओं को लोकप्रिय बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया था। 1950 से 1960 तक का समय अमेरिका में विज्ञान कथा साहित्य सृजन का स्वर्ण युग था।

भारत में कथाओं का, गल्पोंका, आख्यायिकाओं एवं लघुकथाओं का प्रारम्भ प्राचीन उपनिषदों की रूपक कथाओं में, महाभारत, जैन एवं बौद्ध साहित्य के विविध उपख्यानों में, संस्कृत साहित्य के अनेक ग्रन्थों में देखने को मिलता है, परन्तु इस कथा साहित्य को विविधता एवं विलक्षणता तो पौराणिक आख्यानों ने प्रदान की।

इन आख्यानों में वर्णित तथ्य आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों के इतने समीप हैं, कि उनको पढ़कर भारतीय मनीषा की बौद्धिकता पर सहज आश्चर्य होता है।

यह सर्व विदित तथ्य है कि आधुनिक विज्ञान का उद्भव पश्चिमी गोलार्ध में हुआ तथा वैज्ञानिक विकास एवं दृष्टिकोण का कालान्तर में, विश्व के अनेक देशों पर प्रभाव पड़ा था। विज्ञान की शिक्षा का प्रारम्भ भारत में अंग्रेजों के समय से ही प्रारम्भ हुआ था। स्वाभाविक है कि विज्ञान के इस नवोन्मष का प्रभाव भारत की भाषाओं, विशेष कर हिन्दी भाषा के पत्रों एवं पत्रिकाओं पर भी पड़ा। तभी तो हिन्दी साहित्य के विकास काल से संबद्ध पत्रिकाओं एवं पत्रों मुख्यतः 'कवि वचनसुधा', 'हिन्दी प्रदीप' 'आनन्द कादम्बिनी', 'नागरी नीरद', 'सरस्वती', 'माधुरी', 'सुधा', 'विशाल भारत', 'हिन्दोस्तान', 'अभ्भुदय', 'सम्मेलन पत्रिका' के विविध अंकों में विज्ञान के तथ्यों के उल्लेख को पर्याप्त स्थान दिया गया था।

हिन्दी के कथा साहित्य में विषयवस्तु एवं कथा शिल्प पर अनेक अभिनव प्रयोग हुये और कहानी की कला में पर्याप्त विकास भी हुआ। परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है, कि हिन्दी में, अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा, विज्ञान कथा लेखन में आशा के अनुरूप विकास नहीं हुआ। इसकी पृष्ठ भूमि में हमारी शिक्षा पद्धति का संस्कृत, साहित्य एवं विज्ञान के प्रति एकागीं दृष्टिकोण भी उत्तरदायी रहा है। यह सर्व विदित है कि हमारा प्राचीन वैज्ञानिक साहित्य संस्कृत में है परन्तु विज्ञान के विद्यार्थी संस्कृत ज्ञान से अपरिचित रहते हैं तथा साहित्य वर्ग के छात्र साहित्य का पठन-पाठन तो कर लेते हैं– पर वे आधुनिक अथवा प्राचीन विज्ञान के संस्कृत निहित ज्ञान के तारतम्य नहीं बैठा पाते। परिणाम हमारे सामने हैं। संस्कृत का उत्कृष्ट वैज्ञानिक साहित्य जो विज्ञान कथा लेखन का प्रेरणा स्रोत हो सकता था, वह 20वीं

शती के उत्तरार्ध के आते आते सूख चुका था, निष्प्राण हो चुका था।

आज संस्कृत भाषा जो कभी देवभाषा कहलाती थी मृत-तुल्य है और दूसरी तरफ इजराइल वासियों ने अपनी 5 हजार वर्ष पूर्व मृतक भाषा ''हिब्रू'' को पुर्नजीवित कर दिया है। क्यों विरोधाभी है इन दोनों देशों के दृष्टिकोण एवं शिक्षा पद्धति में ?

विज्ञान कथा लेखन के विविध आयामों की चर्चा 1997 में फैजाबाद में आयोजित भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति के प्रथम अधिवेशन में की जा चुकी है तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग इलाहाबाद के तत्वावधान में आयोजित भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति के 1998 के द्वितीय अधिवेशन में संचार माध्यमों में ''विज्ञान कथा'' विषय पर भी विस्तार से चर्चा हुई थी। परन्तु एक प्रश्न सहज रूप से उभर कर सामने आता है कि विज्ञान कथाओं का, विशेषकर हिन्दी में नव सृजित विज्ञान कथाओं का, क्या भावनात्मक स्वरूप होना चाहिए तथा उनका विकास किस रूप में हो रहा है। इन प्रश्नों के उत्तर हेतु प्रसिद्ध पत्रिका ''विज्ञान प्रगति'' के जनवरी से दिसम्बर, 1998 के अंकों तथा कुछेक इसी समय की विज्ञान कथाओं की प्रकाशित पुस्तकों के विज्ञान कथा निधि का अवलोकन आवश्यक हो जाता है।

श्री जीशान हैदर जैदी की ''विज्ञान प्रगति'' के जनवरी 1998 के अंक में प्रकाशित ''कम्प्यूटर की मौत'' नामक कथा-प्रत्येक दृष्टि से स्वच्छ एवं प्रभावशाली रचना है जो आने वाले समय में कम्प्यूटर टेकनालॉजी के विकास से संबद्ध प्रतिस्पर्धा की भावना को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती है। कथा सराहनीय है तथा अपने उद्देश्य में सफल है।

श्री अशोक शाह की रचना ''आसमानी होता आकाश'' पृथ्वी के विनाशशील पर्यावरण के अन्तिम परिणति का विवरण है। जो कल्पना के पंखों पर बैठकर कथा को, गल्प को फैन्टैसी में परिवर्तित कर देता है। वास्तव में गल्प-फैंटेसी ही है परन्तु श्री शाह की भौतिकी की अभिरुचि, ब्लैक-होल्स से ऊर्जा के दोहन की संभावना, उनके मस्तिष्क की उर्वरता का द्योतक हैं। प्रसन्नता का विषय यह है कि वे प्रशासनिक कार्यों में व्यस्त रहने के उपरान्त भी कथा के नायक मि० मैंडसन की भाँति विज्ञान लेखन के प्रति संवेदनशील हैं।

सुश्री संयोगिता लखेड़ा की मार्च अंक में प्रकाशित गल्प, हार्ट-पेसमेकर की भाँति ही मस्तिष्क में विशेष सूक्ष्म यंत्र के प्रत्यारोपण से संबद्ध रचना है जो शारीरिक ऊर्जा में वृद्धि कर, क्रीड़ा स्पर्धाओं के समय ऊर्जा क्षय नहीं होने देती। अपने तरह की सराहनीय, मानव-फिजीयालॉजी से जुड़ी संवेदनाओं को व्यक्त करती यह आर्कषण रचना है।

प्रतिष्ठित विज्ञान कथाकार श्री हरीश गोयल की विज्ञान प्रगति के अप्रैल 98 अंक में प्रकाशित गल्प ''मानव-क्लोन'' तथा 'तीसरा विश्व युद्ध' मानव क्लोनिंग के विविध आयामों को समेटे-इसी नाम से पुस्तक का स्वरूप ले चुकी है। इनकी कृतियों के विषय में विज्ञान कथा की प्रकाशित पुस्तकों के संदर्भ में चर्चा करना समीचीन होगा।

''टी. एस. ई. ई. रामास्वामी और वे अजनबी लोग'' श्री राम जी लाल दास की नवीनता युक्त मनोरंजक, कुतूहलजन्य विज्ञान-गल्प है जो शरीर से उत्पन्न चैत्य ऊर्जा के विकिरण, उसका ''मुआ'' जो उल्लू प्रजाति का पक्षी होता है-- से काल्पनिक संबंध, तथा शरीर से टूटे हुए (मृतक) बाल की ऊर्जा मापों इलेक्ट्रानिक यंत्र द्वारा व्यक्ति विशेष को लोकेट करने के प्रयास को आपस में समेटे है। रचना सशक्त कल्पनामय होते हुए भी शरीर से अलग हो जाने के उपरान्त बाल से ऊर्जा के सतत् विकिरण की कल्पना को प्रश्रय देने के कारण किंचित अवैज्ञानिक हो गयी है। लेकिन इसके बाद भी यह गल्प अपनी सशक्त शैली के कारण पाठक को बांधे रखती है। कथा रोमांचक एवं मनोग्राही है। तथा मानवीय संवेदनाओं की कमी खटकती नहीं है।

श्री विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी के रचना ''याददाश्त की चोरी'' जो विज्ञान प्रगति के जुलाई, 1998 के अंक में प्रकाशित हुयी है मानव मस्तिष्क में विद्यमान स्मृति संबंधित ठोस एवं तरल अणुओं की कल्पना पर

आधारित, परीक्षा में सर्वोच्च स्थान पाने की कथा है। मात्र ठोस एवं तरल अणुओं की कल्पना, इंजेक्शन के बाद भी इसको प्रभावी गल्प बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है। कथा में वैज्ञानिक तथ्यों का अभाव खटकता है। अगस्त अंक में प्रकाशित, विज्ञान कथा लेखन के नव ऊर्जावान हस्ताक्षर श्री मनीष मोहन गोरे की ''पृथ्वी पुत्र'' नामक रचना संभावनाओं से भरी है। 2050 ई० में अधिकांश युद्धों में प्रयुक्त होने वाले अस्त्रों एवं शस्त्रों के स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन हो जायेगा, इस तथ्य का ध्यान रखना आवश्यक होगा। वैसे कथा सुन्दर है और भावनाओं का चित्रण संतोषजनक है।

श्री साबिर हुसैन की सितम्बर 1998 अंक में, प्रकाशित ''जीन पावर'' नामक कृति सुन्दर तथा सराहनीय है। जिसमें जिनैटिक मैनीपुलेशन द्वारा मिश्रित जीवों की कल्पना को संवारा गया है। जीन-पावर नामक सिंह एवं गैडें के जीवों के संभोग से विकसित जीव प्राकृतिक आपदा का लाभ उठाकर ध्वंसकारी हो जाता है तथा उसका अन्त जीवाणु प्रयोग से इस कथा में होता है। 'लिलि' शब्द 'लिली' होता तो अच्छा रहता। श्री प्रवीण मलिक की कृति-- ''पृथ्वीवासी खतरे में'' जो विज्ञान प्रगति के अक्टूबर अंक में प्रकाशित हुई है– मानव जीवन प्रदूषण विनाश एवं अस्तित्व भय की भावना से जुड़ी रचना है। क्लोरोफिल युक्त जीवों की कल्पना नवीन नहीं है– नवीनता है उनका बुद्धिमान होना। दूरस्थ ग्रह वासी हुदाली विज्ञान के विविध विकसित यंत्रों एवं ज्ञान का आलम्ब लेकर किस भाँति पृथ्वी की रक्षा कर उसके पर्यावरण में सुधार लाता है-- इसका आनन्द इस कथा को पढ़कर ही उठाया जा सकता है। वैज्ञानिक तथ्यों का आधार लिये यह एक अतीव सुन्दर विज्ञान कथा है। ''कार का चक्कर'' इन्टेलीजेन्ट कारों का चक्कर है। इन्टेलीजेन्ट कारों के सड़क पर आने में देर नहीं है-- प्रश्न है उनके मूल्य का। यदि कोई भी व्यक्ति सेठ रामचन्द्रन की भाँति ही इस तरह की कीमती कार खरीदना चाहे तो कोई समस्या नहीं है लेकिन जब कार कम्पनियों में ही प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जाय तो समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। श्री जीशान हैदर जैदी की इस प्रभावशाली विज्ञान तथ्यों युक्त रचना में जिस प्रकार जैव-प्रायोगिकी की उपादेयता दर्शायी गयी है, जो सराहनीय है-- सम्भाव्य है। मनोभावों की अभिव्यक्ति सशक्त है। अमृत प्राप्ति की कथा पुराणों से चलकर विज्ञान कथाओं से जुड़ गयी है। इसी उत्स पर श्री स्वपनिल भारतीय की विज्ञान गल्प जो विज्ञान प्रगति के वर्षान्त अंक में प्रकाशित हुई है, भी टिकी है। कथा प्रभावी है इसमें प्रवाह है, आकर्षण है जो पाठक को अन्त तक बाँधे रहता है खटकती तो बात यह है कि क्या मात्र ''इम्यूनिटी रेजिस्टेंस'' तथा ''इम्यूनिटी रिसपाँस'' ही अमरता के हेतु वांछित गुण हैं। इस अमरता का सम्बन्ध अनेक जैविक-जैव-रासायनिक एवं कोशिका जन्य पदार्थों में है-- जिसके रहस्यों को अभी आधुनिक विज्ञान स्पष्ट करने में लगा है। गत वर्ष भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति के द्वितीय अधिवेशन के अवसर पर विज्ञान परिषद् प्रयाग के, सभा कक्ष में, श्री देवेन्द्र मेवाड़ी की कृति ''कोख'' तथा डॉ० अरविन्द मिश्र रचित विज्ञान कथाओं के संग्रह ''एक और क्रौंच वध का'' लोकापर्ण हुआ था। समिति के लिए यह अतीव हर्ष का दिवस था, जब विज्ञान कथा लेखन के इन प्रतिष्ठित रचनाकारों की कृतियां सुधी पाठकों तक पहुँची।

श्री मेवाड़ी जो विगत अनेक वर्षों से हिन्दी में विज्ञान लेखन के आयामों को अपनी रचनाओं से समृद्ध करते रहे हैं। विज्ञान कथा लेखन के क्षेत्र में आपके अवदान से सभी परिचित हैं। यहाँ पर मैं आपका ध्यान अपनी एक विज्ञान कथा ''आधी रात का सूर्य'' की तरफ दिलाना चाहूँगा जो मेरी ''आधुनिक विज्ञान कथायें'' संग्रह में संग्रहीत है तथा जिसमें प्रथम बार इस तकनीक की वैधानिक उपादेयता को दर्शाया गया था। डी. एन. ए. फ्रिंगर प्रिन्टिंग तकनीक कालान्तर में विधि वेत्ताओं द्वारा मान्य की गयी थी। श्री मेवाड़ी के कथा संग्रह ''कोख'' की ''चूहा'' नामक कथा जनसंख्या विस्फोट से सम्बन्धित है। यह कथा प्रसिद्ध योरोपीय कथाकार ''काफ्का'' की कथाओं की भाँति, लिखी विज्ञान कथा है। ''कालयंत्र'' की यात्रा से सम्बद्ध है, ''अतीत का एक दिन''। इन दोनों रचनाओं में श्री मेवाड़ी की लेखनी की कारीगरी दिखती है।

कोई भी लेखक समभाव से सभी कथायें नहीं लिख सकता। उसकी मनःस्थिति में परिवर्तन कथाओं में स्पष्ट दिखता है। ऐसी है वालीवुड से संबंधित कथा ''अलौकिक प्रेम''। इस रचना के प्रेम प्रवाह-जन्य वातावरण, में लेखक इतना डूब गया कि उसकी दूरस्थ ग्रह वासिनी नाभिका, वालीवुड की नायिकाओं की भाँति बिना धरा के वातावरण से एक्लेमेटाइज हुये गुरुत्वाकर्षण की समस्याओं से बिना मुक्ति पाये, क्वाटराइजेशन की परवाह किये बिना र्निद्वन्द्व विचरण करती प्रेमालाप करती है। अन्त में कथा नायक के साथ जब चाहती है आती और चली जाती है। यह रचना, यह कथा मानवीय एवं अन्तरिक्ष वासी प्रेम के रस से भरपूर होने के उपरान्त भी शुद्ध विज्ञानाभासमयी फैंटासी है जिसमें विज्ञान तत्व प्रेम के सागर में डूब गया है।

डॉ० अरविन्द मिश्र ऐसे प्राणि वैज्ञानिक हैं जिनकी विज्ञान कथायें उनमें छिपे साहित्यकार को उद्भासित करतीं हैं। यह तथ्य उनकी क्रमशः विकसित होती संग्रह की प्रत्येक कथा में दिखता है। परन्तु इनके कथा संग्रह क मुख्य कथा ''एक और क्रौंच वध' अत्यन्त भावमयी, साहित्य के लालित्य एवं शिल्प से युक्त है तथा अत्यन्त प्रभावी ढंग से मानवीय भावनाओं को, अनुभूतियों को प्रस्तुत करतीं हैं। इस मनोग्राही रचना का रसास्वादन बारम्बार करने के उपरान्त भी कोई व्यक्ति ऊबेगा नहीं क्योंकि इसमें विज्ञान और साहित्य के लालित्य और स्नेह रसास्वादन की अनुभूति के मिश्रण का अनुपात बराबर है।

विज्ञान कथा लेखन के विविध आयामों के दर्शन श्री हरीश गोयल की पुस्तक ''मानव क्लोन तथा तीसरा विश्व युद्ध'' की कथाओं में होते हैं। चाहे वह ''देश भक्त'', ''सूनी कोख'', ''दूसरी सुधा'', ''नकाबपोश, टेलीपैथी'' या ''सर्व श्रेष्ठ सुन्दरी'' ही क्यों न हो। इसी कथा संग्रह की इन सभी रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं को, कथा लेखन के सभी पक्षों की भाँति ही सुचारू रूप में चित्रित किया गया है। श्री गोयल की पैनी दृष्टि ने क्लोनिंग की तकनीकी का उचित ढंग से वर्णन कर इस संग्रह की प्रत्येक कथा को पूर्ण वैज्ञानिक उत्स प्रदान किया है। मानवीय संवेदनाओं का प्रभावशाली चित्रण श्री गोयल की दूसरी कथा संग्रह में, अति सजीवता से चित्रित हुआ है। कथा संग्रह ''अजनबी'' अनेक भावमय कथाओं युक्त हैं। जिनकी चर्चा अन्य अवसर पर करना ही समीचीन होगा।

संवेदनायें मात्र मानवों में ही निहित नहीं है। यह प्राणिमात्र में व्याप्त नहीं है। समस्या सिर्फ उनके समझने की है। जीवों विशेषकर प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त होने वाले प्राणियों में श्वेत मूषों का बलिदान मुख्यतः होता है। उनकी संवेदनाओं को दर्शाती मेरी ''मूक-प्रश्न'' नामक विज्ञान कथा जो विज्ञान गरिमा सिन्धु के अंक 27 पृष्ठ-4-5, 1998 में प्रकाशित हुई है, मूषों की संवेदनाओं उनकी पीड़ा, अकुलाहट आदि को दर्शाने की दिशा में प्रथम प्रयास है। मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाना चाहता हूँ कि विश्व वैज्ञानिक समुदाय और भारतीय वैज्ञानिकों के प्रयास के फलस्वरूप, भारत सरकार द्वारा प्रयोगशालाओं में जीवों के बलिदान पर नियन्त्रण हतु अधिनियम आने के पूर्व ही यह कथा मैंने लिखी थी क्योंकि इसका भी उद्देश्य प्रयोगशालाओं में हो रही जीवों के प्रति हिंसा को रोकना था। एक प्रकार से यह कथा मेरी इस प्रकार की लिखी अन्य कथाएं जैसे ''ताजा गोश्त'' जनमोर्चा 6-11-1994 और ''चिम्पैंजी'' विज्ञान गंगा जून 1996 पृ० 23-24 आदि के साथ, अपने उद्देश्य में सफल सिद्ध हुई है।

इसी भाँति यदि विज्ञान कथा लेखकों की विज्ञान की नवीनतम शोधों, समस्याओं और दूरगामी परिणाओं की सूचनायें प्राप्त होती रहे, तो पूर्ण आशा है कि विज्ञान कथा लेखन में एक नई ऊर्जा ही नहीं आयेगी वरन् कथा का कलेवर और भी विकसित होगा। कथा की पृष्ठभूमि में वैज्ञानिकता के साथ साहित्य का प्रसाद गुण युक्त होकर विज्ञान कथाओं को सर्वग्राह्य बना सकने में सक्षम होगा।

परिसर कोठी काके बाबू,
देवकाली मार्ग, फैजाबाद-224001

वैज्ञानिक संवेदना की कथा

जीशान हैदर अली

संवेदना किसी प्राणी का मूल आधार है। कोई भी प्राणी बगैर संवेदना का प्राणी नहीं है। जन्तुओं की संवेदना आसानी से मालूम हो जाती है। किसी तेजगर्म सतह से अपने शरीर को दूर हटा लेना, ठंडक से सिकुड़ जाना, जोड़े बनाकर परिणय करना और सभी की मृत्यु पर उदास हो जाना संवेदना के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है। वर्षों पहले डॉ० जगदीश चन्द्र बोस यह सिद्ध कर चुके हैं कि पौधों में भी संवेदना होती है। फूल हमेशा सवेरे खिलते हैं और तेज धूप में मुरझा जाते हैं। शराब पाकर झूमने लगते हैं और पहली बारिश पड़ते ही पत्तियों की रंगत बदल जाती है। यह हैं कुछ उदाहरण यह सिद्ध करने के लिए कि प्राणी संवेदनशील होते हैं।

संवेदनाएं प्राणियों के प्राणी स्तर को नापने का या प्रकट करने का पैमाना भी होती हैं। जो प्राणी जितना अधिक विकसित होगा उतनी ही उसमें भावना होगी। जन्तु पौधों से अधिक विकसित नस्ल के प्राणी हैं। जन्तुओं में भी अलग-अलग विकास के स्तर हैं। आरोही क्रम में पहले कीट, फिर मछलियाँ, पक्षी, सरीसृप, अन्त में स्तनधारी आते हैं। इनमें भावनाओं का समावेश भी इसी अनुपात में बढ़ता जाता है। यही कारण है कि सर्वाधिक विकसित मनुष्य सर्वाधिक संवेदनशील भी होता है। नौ रस उसके अन्दर सदैव पाये जाते हैं। श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, वीभत्स, वात्सल्य, लज्जा, भय। यह वह भावनाएं हैं। जिन्हें साहित्यकारों ने निर्दिष्ट किया है। साहित्यकारों द्वारा लिखा गया साहित्य इन्हीं संवेदनाओं से सराबोर होता है। स्पष्ट है कि विज्ञान कथाएँ भी इससे अछूती नहीं रह सकतीं। भले ही इन कथाओं में निर्दिष्ट प्राणी एलियन हों, भावनाएँ उनमें अवश्य रहेंगी। वास्तविकता यह है कि संवेदनाओं के बगैर कथाओं का अस्तित्व ही नहीं। वह कथाएँ चाहे जिस क्षेत्र की हों बगैर संवेदनाओं के उस शरीर की तरह होंगी जिसमें आत्मा न हो।

सच्चाई यह है कि विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना का समावेश कथाओं के कल्पनालोक को मानवीय धरातल के साथ जोड़ने का कार्य करता है। कथाएँ तभी सफल होती हैं जब उनके अन्दर मानव मन को झिझोड़ने की शक्ति हो। और यह तभी संभव है जब वे मानवीय भावनाओं के साथ तालमेल बिठा रही हों। विज्ञान कथाओं का नायक भी प्रेम करता हो। यह दूसरी बात है कि प्रेमिका किसी और ग्रह की हो। और जब प्रेमिका उसे छोड़कर अपने ग्रह को लौट जाती है तो नायक विरह भाव प्रकट करता हुआ दर-दर भटकता भी है। वास्तविकता यह है कि विज्ञान कथाओं में भावनाओं को प्रकट करने का कहीं बड़ा कैनवस है। विज्ञान कथाओं की मशीनें आम मशीनों की तरह नहीं होती बल्कि मनुष्य की तरह संवेदनशील होती हैं। उनके कृत्रिम मस्तिष्क में संसार पर शासन करने की अभिलाषा जागृत होती रहती है। यहाँ बचपन में पढ़ी एक कहानी याद आती हैं जिसमें हजारों वैज्ञानिकों का दिमाग रखने वाला कम्प्यूटर अपने को सर्वश्रेष्ठ समझ बैठता है और मानव जाति को अपना गुलाम बनाने का ख्वाब देखने लगता है।

विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना के विभिन्न रूपों के दर्शन इस प्रकार होते हैं कि आम कहानियों में ऐसा दर्शन सम्भव ही नहीं। उदाहरण के लिए एक विज्ञान कथा में गंजों में नफरत करने वाला व्यक्ति जब मर जाता है तो एक साइंटिस्ट उसका दिमाग चुरा कर एक्सपेरिमेंट कराता है। फलस्वरूप वह मस्तिष्क पुनर्जीवित होकर शहर में मौजूद गंजे व्यक्तियों का मर्डर करने लगता है। एक और कहानी है डॉ०

अरविन्द मिश्र की ''गुरुदक्षिणा''। इस कहानी में दूसरे ग्रह से आया रोबोट प्राणी एक मानव से इतना घुलमिल जाता है कि वापस अपने ग्रह पर लौटने से इंकार कर देता है।

मिश्र जी की एक और कहानी ''आपरेशन काम दमन'' इस तथ्य का खुलासा करती है कि वास्तव में मानवीय संवेदनाएं और विशेष रूप से काम इच्छाएं मानव जाति की समस्त प्रगति का कारक हैं। यदि इन इच्छाओं को नष्ट कर दिया जाय तो मनुष्य मात्र एक निर्जीव मशीन बनकर रह जायेगा जो किसी तरह का सृजन नहीं कर सकती।

मानवीय संवेदनाओं का एक अन्य आश्चर्य-जनक उदाहरण है डॉ० राजीव रंजन उपाध्याय की कहानी 'पिरामिड' जिसमें हजारों वर्ष पुरानी सामाज्ञी की टेस्ट ट्यूब पुत्री जब पिरामिड में पहुँचती है तो हजारों वर्ष पुरानी संवेदनाएं उसके मस्तिष्क में जागृत हो जाती हैं और उसकी मृत्यु का कारण बन जाती हैं।

अब मैं कुछ उदाहरण देता हूँ अपनी लिखी विज्ञान कथाओं का जिनमें मानवीय संवेदनाओं का प्रचुरता से उपयोग हुआ है। 'सिलिकन मैन' एक ऐसे एलियन का नाम है जो भावनाशून्य है। केवल एक भावना है बोर होने की। एक अन्य कहानी 'कम्प्यूटर की मौत' में एक कम्प्यूटर कंपनी से अपमानित करके निकाला गया व्यक्ति प्रतिशोध लेता है और उस कंपनी के हजारों कम्प्यूटर उसके निर्देश पर अपने को स्वयं नष्ट कर डालते हैं। 'कार का चक्कर' में आपसी प्रतिस्पर्धा के चलते दो कंपनियां आपस में भिड़ जाती हैं। 'अनजान पड़ोसी' में एक इंसान एलियन के साथ बुद्धि से अपनी भावनाओं का सौदा कर लेता है।

'बौना मामला' में चिम्पांजी माँ से पैदा हुआ मानव पुत्र अपने बाप के खिलाफ विद्रोह कर देता है और उसकी पूरी लैबोरेट्री नष्ट कर देता है। 'वैज्ञानिक राजकुमारी' में उम्र स्थिर रखने की मशीन जब काम करना बन्द कर देती है और युवा राजकुमारी बूढ़ी हो जाती है तो उसका पति उसे अपने प्यार का यकीन दिलाता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मानवीय संवेदनाओं को छुए बिना किसी भी तरह की कहानी अधूरी है। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के साइंस जैसे शुष्क विषय के साथ आम आदमी को जोड़ने के लिए हमेशा मानवीय संवेदनाओं के रंगों की जरूरत होगी।

यहाँ पर विज्ञान कथाएं एक सशक्त माध्यम है भविष्य की विज्ञान प्रगति की दिशा निर्धारित करने का ताकि वह मानव विकास का कारण बने, मानव विनाश का नहीं। अक्सर विज्ञान कथाओं ने वैज्ञानिकों का ध्यान शोध के नये क्षेत्रों की ओर आकृष्ट कराया है। यह एक विज्ञान कथा थी जिसने परमाणु बम की तरफ वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट किया। और यह भी विज्ञान कथाएं थीं जिन्होंने कम्प्यूटर क्षेत्र के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। अर्थात् विज्ञान कथाएं विध्वंसात्मक और रचनात्मक, साइंस के दोनों रूपों के विकास में मदद दे सकती हैं। लेकिन अगर उनका लेखक मानवीय है, वह मानव जाति या अन्य प्राणियों के दुःख दर्द को समझता है और अपनी कथाओं में इंगित करता है तो वे कथाएं कभी भी डिस्ट्रक्टिव विज्ञान को बढ़ावा नहीं देंगी और हमें 'एक और क्रौंच वध' जैसी सशक्त रचनाएं देखने को मिलेंगी। आज मानव जाति अनेकों समस्याओं से जूझ रही है। डबल पी यानि पोल्यूशन और पापुलेशन एक ऐसे एसिड के रूप में हमारे सामने मौजूद हैं जो किसी भी चीज को गलाकर नष्ट कर देता है। हमें एक ऐसे एलमीन की खोज करनी है जो इस एसिड का प्रभाव न्यूट्रल कर दे। साइंस ने हमेशा नये हल, नये रास्ते सुझाएं हैं। इनका हल भी भविष्य में खोज लेगी लेकिन इसके लिए सीढ़ी का काम विज्ञान कथाएं ही कर सकती हैं अपनी नयी परिकल्पनाओं के साथ। लेकिन यह तभी संभव होगा जब ये कथाएं मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी होंगी क्योंकि अगर ये कथाएं संवेदनहीन होंगी तो परिकल्पनाओं का सृजन तो कर सकती हैं लेकिन आम जीवन में जुड़ी समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दे सकतीं।

390/39 A, बाग वाली मस्जिद,
रुस्तम नगर, लखनऊ-226003

कृषि विज्ञान साहित्य में मानवीय संवेदनाओं के विविध आयाम

प्रो० गिरीश पाण्डेय

आज हम 21वीं सदी की दहलीज पर कदम रख चुके हैं। अब आम वैज्ञानिक यह अटकलें लगाने में मशगूल हैं कि, 21वीं सदी जैव प्रौद्योगिकी की होगी, कुछ का मानना है कि अब हम अपनी दुनिया अंतरिक्ष में बना लेंगे। कुछ लोग तीसरे विश्वयुद्ध की परिकल्पना करते हैं। कुछ का मानना है कि क्लोनिंग मानव सभ्यता के लिए खतरनाक साबित होगा। कुछ का मानना है कि अब सूचना एवं संचार प्रणाली का बोलबाला होगा। भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है यह तो वक्त ही बताएगा। हमें यह बातें तभी करनी चाहिए जब सुरसा की मुँह की तरह बढ़ती आबादी में दो वक्त की रोटी मुहैया करा सकें। यद्यपि आज हम खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हैं फिर भी हमारे देश में भूख एवं कुपोषण से मरने वालों की संख्या विश्व में कई विकासशील देशों से कम नहीं है। क्या हम 21वीं सदी में बढ़ती हुई आबादी की उदरपूर्ति हेतु खाद्यान्न चुनौतियों का सामना कर पाएंगे, इस यक्ष प्रश्न का मात्र एक ही उत्तर है कि कृषि की नवीनतम तकनीकी को जो अब भी प्रयोगशालाओं में बंद है किसानों के खेतों तक ले जाया जाय। हम 21वीं सदी में टिकाऊ खेती के लिए प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन से ही कृषि उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त कर पाएंगे।

कृषि विज्ञान कथा साहित्य है क्या ?

संस्कृत मूल ''विद्'' से हिन्दी शब्द विद्या बना है। लैटिन मूल शब्द ''साइरे'' से अंग्रेजी शब्द साइंस बना है। दोनों मूल शब्दों का अर्थ है जानना या ज्ञान। विद्यायें बहुत सी हैं, जब किसी ज्ञान में विशेषता हो तो वह विज्ञान कहलाता है। साहित्य ''स'' और ''हित'' से व्युत्पन्न है अतः अनिवार्यतः विज्ञान साहित्य सबका हित करने वाला होना चाहिए। यहाँ मैं विज्ञान के दर्शन को समझने के लिए श्रीमद्भगवत गीता के सातवें अध्याय के प्रारम्भ के दूसरे श्लोक को उदधृत करना चाहूँगा जिसमें भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

''ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।''

अर्थात् विज्ञान सहित ज्ञान मैं तेरे लिए पूरी तरह से कहूँगा, जिसे जान लेने पर इस संसार में और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता। यानी विज्ञान सम्पूर्ण ज्ञान का चरम है। यही इसकी विशेषता है। ह्यूगो गर्न्स बैक के अनुसार विज्ञान कथा साहित्य वह विधा है जिसके माध्यम से ज्ञान को लोक-मानस तक पहुँचाया जा सकता है। आसिमोव के अनुसार विज्ञान कथा साहित्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी के समन्वित परिवर्तनों के प्रति मानवीय संवेदना को अभिव्यक्ति देती है।

कृषि विज्ञान साहित्य में मानवीय संवेदनाओं के विविध आयाम

1. कृषि विकास स्तर एवं मानवीय संवेदना--इस देश के प्रथम प्रधान मंत्री स्व० पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 1958 में जन-जन में वैज्ञानिक अभिरुचि को विकसित करने के लिए आवश्यक परिवेश के सृजन हेतु आह्वान किया था जो आज की प्रगति के लिए एक आधार है। प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थितियाँ चाहे 1942 का बंगाल का भीषण अकाल रहा हो या आसाम के कालाहांडी का दुर्भिक्ष जो आज भी राष्ट्रीय शर्म बना हुआ है। आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में एक

कीड़े जिससे सारी की सारी फसल चौपट हो गई एवं किसानों को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा हो या पिछले 29 अक्टूबर को उड़ीसा में आए विनाशकारी तूफान से जान-माल की भयंकर तबाही। इस मानवीय संवेदनाओं एवं दैवी आपदाओं से हमारे वैज्ञानिक नीति निर्धारक एवं शासक अवश्य द्रवित हुए हैं। इन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों से हमारे कृषि वैज्ञानिकों ने भी सबक सीखा है। यही कारण है कि जहाँ वर्ष 1950-51 में मात्र 5.1 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन होता था वहीं आज हम 19.13 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन कर रहे हैं। आज हम याचक की स्थिति से उबरकर आत्मनिर्भर हो गये हैं। आज हम विश्व में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान प्राप्त कर चुके हैं। फल, नारियल एवं काजू के उत्पादन में हम पहले से ही प्रथम स्थान पर रहे हैं। सब्जी एवं मत्स्य उत्पाद में हम विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर हैं। गन्ना, चीनी, पटसन, काफी चाय का भारत पहले से ही बहुत बड़ा उत्पादक रहा है। भारतीय कृषि में आए इस परिवर्तन का कोई भी मुकाबला नहीं है। देश की इन उपलब्धियों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया है।

2. कृषि में किसानों की सहभागिता : पहले कृषि की नीतियाँ नीति निर्धारकों द्वारा वातानुकूलित कक्ष में बैठकर बना ली जाती थीं। किसानों से उसका कोई सरोकार नहीं होता था। बिना उनकी सहभागिता के कृषि तकनीकी को अंगीकार करने के लिए सर पर थोप दिया जाता था जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि आज भी कृषि शोध 30 फीसदी तक ही किसानों तक पहुँच पाई है। अब नीति निर्धारक एवं कृषि वैज्ञानिक काफी जागरूक हुए हैं। अब प्रायः जो भी कृषि नीति बनाई जा रही है उसमें किसानों की पूर्ण सहभागिता है। कृषि की कुछ योजना बनाने में किसानों की क्षेत्रीय परिस्थितियों, उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, किसानों के पारम्परिक ज्ञान एवं उनके सुझाव के अनुरूप बनाई जा रही है ताकि लघु एवं सीमांत किसान भी उसका लाभ उठा सकें। इस सहभागिता के दौरान हम पारम्परिक ज्ञान-विज्ञान को भी आज के बदलते परिवेश में पुनः परीक्षण, आकलन, एवं मूल्यांकन करके यदि वह सामाजिक एवं पर्यावरण दृष्टिकोण से व्यावहारिक है तो किसानों को उसको अंगीकृत करने हेतु सुझाव दे रहे हैं। कृषि में किसानों के सहभागिता से तकनीकी स्थानान्तरण में एक नया मोड़ आया है।

3. सुझाव एवं सरल साहित्य : कृषि विज्ञान एक शुष्क विषय है लेकिन इसे भी ललित लेखन शैली से रोचक बनाया जा सकता है। फसल, उत्पादन, पशु पालन, मत्स्य पालन, बागबानी इत्यादि क्षेत्र में अनेक प्रगतिशील किसानों ने अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। इन उपलब्धियों को सफल प्रेरक प्रसंगों या सफल कथाओं के माध्यम से किसानों तक उन्हीं की बोलचाल की भाषा में पहुँचाया जा सकता है। या ऐसे प्रगतिशील कृषकों के खेत का उत्सुक किसानों को भ्रमण भी कराया जा सकता है जिससे तकनीकों को देखकर किसानों को उसे अपनाने में इच्छाशक्ति जागृत हो। वैसे कृषि के क्षेत्र में कृषि विश्वविद्यालयों एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा अनेक पत्र-पत्रिकाएँ निकलती हैं जिसे प्रायः प्रगतिशील कृषक ही पढ़ पा रहे हैं। आज कृषक बहुत कम पढ़ा लिखा है। अच्छा होगा कि कृषि की उपलब्धियों को जनमानस तक पहुँचाने हेतु सरल हिन्दी एवं क्षेत्रीय भाषा में वैज्ञानिक लेखनी उठावें ताकि प्रयोगशालाओं में बंद महत्वपूर्ण शोध, किसानों तक पहुँच सकें। कृषि विज्ञान के लेखकों को चित्रों के माध्यम से खेती की कथा (प्राइमर) जिसमें किसी भी फसल की खेती की, खेत की तैयारी से बीज उत्पादन तक सचित्र सरल शब्दों में लिखा जाय तो मेरा विश्वास है कि कम पढ़े लिखे किसान अवश्य लाभान्वित होंगे।

4. प्रभावी प्रचार एवं प्रसार माध्यम : किसी भी तकनीकी को किसानों तक पहुँचाने के लिए आज भी रेडियो एवं दूरदर्शन प्रचार एवं प्रसार के सशक्त माध्यम हैं। 70-75 फीसदी किसानों की खेती जोखिम भरी होती है (डाइवरसीफाइड रिस्क फ्राम एग्रीकल्चर)। जो भी हमने हरित क्रांति की है मात्र सिंचित क्षेत्रों में ही। आज भी 65-70 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा आधारित है एवं असिंचित है। देश की कुल भूमि का 57 फीसदी हिस्सा किसी न किसी समस्या-- भूमिक्षरण, ऊसर, बंजर, खादर, जलप्लावन, बीहड़,

रेगिस्तान की समस्याओं से घिरा हुआ है। इन क्षेत्रों में उत्पादन कैसे बढ़ाया जाय इस पर पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो एवं दूरदर्शन के माध्यम से प्रभावी प्रचार एवं प्रसार किया जाना चाहिए क्योंकि अब देश में दूसरी हरित क्रांति इन्हीं क्षेत्रों से आनी है। अधिक उपयुक्त होगा कि किसानों में कौशल दक्षता लाने के लिए दूरदर्शन पर आउटडोर शूटिंग करके, खेती की विभिन्न सघन पद्धतियों-- खेत की तैयारी, मृदा उर्वरक एवं जल प्रबंधन, फसल सुरक्षा एवं बीज उत्पादन के विभिन्न पहलुओं पर व्यवहारिक ज्ञान किसानों को दिया जाय तो वह आत्मनिर्भर बनेगा। समय-समय पर किसानों के खेत पर इन तकनीकों का प्रदर्शन भी कराया जाय ताकि किसान "करो एवं सीखो" (लर्निंग बाई डूइंग) माध्यम से कृषि तकनीकों को आसानी से अपना सकेंगे।

कृषि विज्ञान कथा साहित्य के माध्यम से प्रचार-प्रसार

कृषि विज्ञान में भी अनेक रोचक कथाएं एवं घाघ एवं भड्डरी की कहावतें भरी पड़ी हुई हैं जिसे अपने लेखन में आप समुचित स्थान देकर लेखन को अत्यधिक रोचक बना सकते हैं। उदाहरण के तौर पर धान की खेती को लें। धान असम से जेपोर क्षेत्र की उत्तरी-पूर्वी पहाड़ियों से चीन की ओर गया। इस प्रकार चीनी वैज्ञानिक चीन को धान की जन्मस्थली मानते हैं। वस्तुतः धान भारत की ही देन है। भारत में 38 जगह की खुदाई में पुरातत्ववेत्ताओं को धान मिला है। राइस शब्द तमिल के "अरिषि" तथा लैटिन के आरोइजा शब्द से व्युत्पन्न है। आधुनिक अंग्रेजी में इसे राइस कहते हैं। अमेरिका के एक राष्ट्रपति इटली से लम्बार्टी किस्म के धान के बीज अपनी जेबों में भरकर चुरा लाए थे तब वे फ्रांस में अमेरिका के राजदूत थे।

किसी भी कृषि वैज्ञानिक को विज्ञान कथा लेखन में किसानों की समस्याएँ एवं उसका समाधान यह दो बातें अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। कोई भी कथा मात्र वैज्ञानिक आवरण देने से पूरी नहीं हो जाती वरन् उन्हें वैज्ञानिक विषयवस्तु के बदौलत पूर्णता प्रदान की जाती है। कथा लिखने के लिए लेखकों को कृषि विज्ञान की मूलभूत जानकारी आवश्यक है। कभी लेखक तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर रख देते हैं जिससे कथानक प्रायः निर्जीव हो जाता है। विज्ञान कथा लिखते समय लेखकों को तीन बातें अवश्य ध्यान में रखना चाहिए–

1. विज्ञान के शुष्क तथ्य को रोचक शैली में प्रस्तुत करना जिससे पाठक का मन न हटे।
2. गंभीर से गंभीर विषय को सरल भाषा में प्रस्तुत करना ताकि वे आसानी से समझें एवं समझाए जा सके।
3. नई-नई शोधों को तर्कसंगत कल्पना करके उसके लिए मार्ग सुलझाना और भावी संभावनाओं की ओर इंगित करना जिससे पाठकों में धैर्यपूर्वक कार्य करने एवं परिश्रम करने की प्रवृत्ति बढ़ सके।

यह तभी संभव है जबकि आपको हिन्दी भाषा की सही पकड़ हो एवं आप विज्ञान कथाओं के निर्णायक एवं सजग पाठक हों। अंत में यही कहना चाहूँगा विज्ञान कथा साहित्य मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हुई है। उन संवेदनाओं को अपने कथानक में ललित विज्ञान लेखन के माध्यम से जन-मानस तक पहुँचाने हेतु आपको सुंगध की पुट देनी ही पड़ेगी।

—नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,
कुमारगंज, फैजाबाद

सृजक की गरिमा का मेरुदण्ड उसकी गहरी मानवीय संवेदना है

डॉ० दिनेश मणि

मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक अनुभवों और उसकी अनुभूतियों की सीमाओं का निरंतर विस्तार होता है और उसी अनुपात में उन अनुभवों और अनुभूतियों की भाषिक अभिव्यक्ति की युक्तियाँ भी सतत विकास पाती हैं। समाज में जब कभी विज्ञान, धर्म, संस्कृति, उद्योग, कला, चिंतन, दृष्टि में परिवर्तन होता है, उसी के अनुसार भाषा का विकास होता है। चूँकि भाषा बहता नीर है इसलिए यह स्वाभाविक है कि समाज के विकास के साथ-साथ इसकी अभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिए भाषा का भी विकास होता जाता है और इस प्रकार वह समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं से अपने प्रयोजन में बहुआयामी तथा बहुमुखी हो जाती है। भाषा का यह बहुमुखी और बहुआयामी विकास मुख्यतः अभिव्यक्ति का प्रसार है। इस अभिव्यक्ति के प्रसार में भाषा के मानकीकरण/आधुनिकीरण की आवश्यकता रहती है जिनसे विभिन्न प्रयोजनों की पूर्ति के अनुकूल भाषा का संस्कार होता है।

विज्ञान से भाषा, संवेदना और रचनात्मकता (सृजन) का बहुत गहरा सम्बन्ध है। आर्कमिडीज, आइंस्टीन, न्यूटन जैसे वैज्ञानिक अपने अनुभव की मूल संवेदना तक अपनी भाषा के माध्यम से ही पहुँचे थे वरना आर्कमिडीज यूरेका-यूरेका कहते हुए टब से निकलकर नंगा ही न दौड़ पड़ा होता। हमारे देश के अधिकांश वैज्ञानिकों यथा-- रमन, बोस, साहा आदि ने किसी न किसी स्तर पर इस सुख का साक्षात्कार किया है।

सच कहा जाय तो सृजन का सीधा सम्बन्ध स्वयं सृजक की संवेदना, कल्पना, चिन्तन, दृष्टिकोण, कालबोध, दर्शनबोध आदि से हुआ करता है। सृजन मानसिक प्रक्रिया का अन्तिम स्वरूप है जिसमें अवचेतन और चेतन मन का निरंतर नीरव संवाद चलता रहता है। जब इस संवाद को भाषा मिल जाती है तो सृजन की प्रक्रिया पूरी मानी जाती है। और सृजन भी सृजक से पृथक और स्वतंत्र हो जाता है जैसे शिशु प्रसव के बाद अपनी माँ से पृथक अस्तित्व ग्रहण कर लेता है।

सृजक की गरिमा का मेरुदण्ड उसकी गहरी मानवीय संवेदना है जो ऊर्ध्वीकृत होकर उसकी अन्तर्प्रज्ञा को मंगलमय बनाता है। प्राणीमात्र से तादात्म्य बोध इसी अन्तर्प्रज्ञा से हुआ करता है। सृजक की सूक्ष्मतम अनुभूतियाँ, उसका समस्त सृजन इसी अन्तर्प्रज्ञा से ओत-प्रोत होता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि लेखन का गतिरोध सृजन का गतिरोध नहीं है। रचनाकार कुछ न लिखने पर भी सृजनशील बना रह सकता है। यदि उसके भीतर खोजबीन जारी है तो इसका मतलब है कि उसकी अन्तर्प्रज्ञा, अन्तर्क्षोभ के इन क्षणों की प्रतीक्षा कर रही है, जिसमें कृति रूपायित होती है। ''लियोनार्द दा विन्सी'' सात दिन-रात केनवास के सामने खड़ा रहा। आठवें दिन उसने एक अविस्मरणीय चित्र बनाया ''द लास्ट सपर''। रंग, तूलिका और फलक को न छूते हुए भी पिछले दिनों वह अपनी रचना में जारी था। अर्थात् कलाकार का कुछ समय के लिए या काफी समय के लिए खामोश रहना, सृजन का अन्तराल या गतिरोध नहीं कहा जा सकता। वास्तविक अन्तराल तो वह है जिसमें अंतस्तल निष्क्रिय हो जाता है। यह भी आवश्यक नहीं कि अनवरत लेखन का अर्थ सृजन की निरंतरता ही हो।

वास्तव में सृजन, भावों और विचारों की अभिव्यक्ति है जिसका सम्प्रेषण भाषा के माध्यम से होता है। बिम्बों एवं प्रतीकों में प्रयुक्त शब्द की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शब्दों के अनुकूल चयन

से ही तदनुकूल भावों एवं विचारों की छवि की सृष्टि होती है। यही बिम्ब-विधान कथ्य को अर्थवत्ता प्रदान करता है। सृजन को उसकी समग्रता में देखा जाना चाहिए क्योंकि सृजन का काम न तो एक बार में पूरा होता है और न ही उसका कोई स्थिर रूप बन पाता है। इसलिए उसमें लगातार परिवर्तन/संशोधन होते रहते हैं। तभी कथ्य स्वरूप ग्रहण कर पाता है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि साहित्य की सभी विधायें सृजनात्मक ऊर्जा के ही विविध रूप हैं।

भाषा केवल शब्दों की राशि नहीं, भाषा शब्दों के प्रयोग की एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है। भाषा के शब्दों पर अधिकार से तात्पर्य केवल शब्दों के अर्थ का ज्ञान होना ही नहीं है। इसका तात्पर्य शब्दों के विभिन्न सूक्ष्म अर्थों को पहचानने और उपयुक्त संदर्भ में उपयुक्त शब्द का प्रयोग करने की क्षमता से है। आज भाषावैज्ञानिक यह मानते हैं कि वाक्य का हर शब्द एक खास प्रकार के भाषिक या अभाषिक सन्दर्भ या परिवेश से जुड़ा है और इसलिए किसी भी संदर्भगत वाक्य में एक शब्द का प्रयोग दूसरे शब्द की अपेक्षा अधिक उपयुक्त हो सकता है। इसीलिए शब्द-ज्ञान के परीक्षण में सही-गलत की कसौटी के बजाय उपयुक्त, सबसे अधिक उपयुक्त, सबसे निकट अर्थ आदि जैसी कसौटियों को अपनाया जाता है।

''बात समझना'' भाषा के माध्यम से चलने वाले हमारे सामाजिक व्यवहार का आधारभूत अंग है। वक्ता बात समझाने के लिए तथा श्रोता बात समझने के लिए उद्यत और प्रयत्नशील रहता है। इस व्यापार को सम्प्रेषण कहते हैं। सम्प्रेषण का सफल होना इस बात पर निर्भर है कि बात ऐसी भाषा में कही जाए कि समझने वाला वही समझे जो समझाने वाला समझाना चाहता है। दूसरे शब्दों में बात को समझना-समझाना तथा इसके लिए उसी ढंग की भाषा का प्रयोग करना, एक ही स्थिति के दो पहलू हैं। इनमें पहली बात बोधन के अन्तर्गत है और दूसरी रचना (अभिव्यक्ति) के और दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

एक विशेष कालखण्ड में सृजक को जो जीवन-ज्ञान और जगत ज्ञान प्राप्त होता है वह उसी को प्रायः बाँधा करता है, विशेषकर असमझौतों की स्थिति में सृजक के विचारों का उत्कृष्ट रूप बिम्बमाला बनकर विकसित होता है। यही कारण है कि मानवीय संबंधों के भीषण अवमूल्यन के बीच भी सृजक मानवीय गरिमा के बल पर जीता है। वेदना संवेदना की सघनता एवं प्रखरता सृजक की रचनाधर्मिता को नया आयाम देती है और सृजक इसी प्रयत्नशीलता की उपज है। कर्मनिष्ठ सृजक सृजन की उत्कृष्टता पर ध्यान रखता है। सृजक सृजन को प्रतिष्ठा का प्रश्न मानकर अपनी सारी कुशलता दाँव पर लगा देता है। इसीलिए अपने सीमित साधन और समय में भी सृजक निरंतर सृजनशील रहा करता है।

मानवीय संवेदना के अभाव में विज्ञान अतिचारी होने के साथ-साथ सामान्य आदमी से बहुत दूर चला गया है, विशिष्टीकरण की प्रक्रिया में वह इतना मंहगा, सूक्ष्म और जटिल हो गया है कि आज अगर गैलीलियो और न्यूटन फिर पैदा हो जाएँ तो चक्कर खा जाएँ।

इसे संवेदहीनता का तकाज़ा ही कहा जाए कि जिस वैज्ञानिक दृष्टि का दावा इसी शती के दूसरे चरण तक सत्य का पर्याय बन गया था, अब वही दावा झूठा होने जा रहा है। क्या कारण है कि विज्ञान की अनेकानेक शाखाओं के पारंगत विशेषज्ञ धीरे-धीरे बेकारों की तालिका में जुड़ते जा रहे हैं।

आज विज्ञान संबंधी 25-30 हजार पुस्तकें, कई लाख लेख प्रतिवर्ष छपते हैं। इनमें से अधिकतर इतने ठोस और जटिल होते हैं कि मात्र कुछ विशेषज्ञों को छोड़कर संगणकों तक की यह क्षमता नहीं कि उनके कथ्य की व्याख्या कर सकें। आज जब यह हाल है तो सौ वर्ष बाद उसे रूपांतरित कर नई पीढ़ी को हस्तांतरित करने का दम कौन भर सकता है। ?

पूर्व संपादक, ''विज्ञान''
विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद-211002

21वीं सदी की विज्ञान कथा : मानवीय संवेदनाओं की एक व्यथा

इरफ़ान ह्यूमन

साहित्य समाज का दर्पण होता है। कोई भी साहित्य समाज की व्यथा तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। लेकिन विज्ञान कथा साहित्य वास्तविक साहित्य से भिन्न है क्योंकि इसमें संभावनाओं का वर्णन रहता है जिसमें मानव की भावी आकांक्षाएँ, सुखद कल्पनाएँ और दुःस्वप्न प्रतिबिंबित होते हैं। एक विज्ञान कथा लेखक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की नई दिशायें सुझा सकता है। विज्ञान कथाएँ भविष्य की ऐसी झांकी प्रस्तुत कर सकती हैं जिससे किसी अनहोनी का पूर्वाभास हो सकता है, हम आने वाले खतरों के प्रति सचेत और मानवीय संवेदनाओं के प्रति अधिक सजग हो सकते हैं।

सन् 1818 में मेरी शैली द्वारा लिखित पुस्तक 'फ्रेकेस्टाइन' को वैज्ञानिक विश्व की पहली विज्ञान कथा मानते हैं जिसमें मानवीय संवेदनाओं का एक संतुलित समावेश था। यह कहानी एक ऐसे वैज्ञानिक की है जो एक आदर्श मानव की सृष्टि करने का प्रयास करता है। बड़े परिश्रम के बाद वह अपने प्रयोग में सफल हो जाता है लेकिन अपने प्रयोग में वह एक आदर्श मानव को नहीं बल्कि 'फ्रेकेस्टाइन' नामक एक दैत्य को जन्म दे डालता है। भयावह फ्रेकेस्टाइन जिधर जाता है लोग डरकर भागने लगते हैं। वैज्ञानिक उसे सही रास्ते पर लाने की बहुत कोशिश करता है और उसकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाता है लेकिन उस दैत्य की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आता। अन्त में परेशान होकर वह वैज्ञानिक उसे स्वयं ही खत्म कर देता है।

आज वैज्ञानिक फ्रेकेस्टाइन की कहानी को वास्तविक रूप देने में लगे हैं और महामानव बनाने की तैयारी चल रही है। हम जानते हैं कि मानव प्रजाति सभी जीवों में सर्वाधिक विकसित और बुद्धिमान है लेकिन अब वैज्ञानिक मानव के मस्तिष्क को और अधिक अर्जावान बुद्धिमान बनाने में जुटे हैं, एक ऐसा महामानव जो चलता फिरता इन्साइक्लो-पीडिया होगा और 21वीं शताब्दी के वैज्ञानिक चमत्कारों में अद्‌भुत होगा। वह पचास साल पहले मिले किसी व्यक्ति का चेहरा और उससे हुई समस्त बात-चीत को याद रखने में सक्षम होगा। एक बार पढ़ा और सीखा उसे जीवन भर याद रहेगा और वह कठिन से कठिन सवालों को चुटकी बजाते हल कर लेगा। अमेरिकी वैज्ञानिकों में इस समय चर्चित जो सिएन ने एक तेजतर्रार सुपर माउस तैयार करके इस दिशा में एक उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। वैज्ञानिकों ने मानव मस्तिष्क के एन. आर-2 बी. के जीन को चूहे के भ्रूण में प्रत्यारोपित कर एक अति बुद्धिमान चूहा तैयार कर लिया है जिससे महामानव की संभावनाओं को बल मिला है, लेकिन इससे संबंधित प्रयोगों ने वैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों के बीच नैतिकता की जंग छेड़ दी है। हमारी जीन हमारे पुरखों की जीन है जो सदियों से हमारी पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँच कर दृष्टिगोचर होती हैं, इस व्यवस्था में मनुष्य का कोई नियंत्रण नहीं। कौन सा जीन कब कौन सी करवट बदल ले– यह तो प्रकृति का ताना बाना है जिसमें किसी भी तरह का हस्तक्षेप भविष्य के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। सम्भव है कि नई जीन कालान्तर में विकसित होकर मनुष्य को मनुष्य न रहने दे और महामानव के स्थान पर महादानव का जन्म हो जाए।

अब बात करते हैं जनसामान्य में मानवीय संवेदनाओं को विकसित करने वाले वैज्ञानिक साहित्य की। आज मनुष्य ने अपार वैज्ञानिक उपलब्धियां हासिल की हैं जिनके बल पर वह स्थल पर तीव्र गति से दौड़ सकता है, आकाश में पक्षियों की तरह उड़ सकता है और समुद्र में मछलियों की तरह तैर सकता है। आज मनुष्य चन्द्रमा पर तो पहुँच गया है लेकिन चन्द्रमा को खोता जा रहा है। आज इण्टरनेट जैसे नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों से वह अपने घर बैठे देश-विदेश के लोगों का हाल जान लेता है लेकिन उसे अपने पड़ोसी की पीड़ा भरी सिसकियाँ सुनाई नहीं देती। कहीं भौतिकवादिता के इस दौर में हम अपनी संवेदनाओं को खोते तो नहीं जा रहे हैं ?

विज्ञान कथा साहित्य जन-जन में वैज्ञानिक जागृति का संचार कर सकता है जिससे सामान्य जन-मानस में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हो सकेगा जो बेहतर मानवीय संवेदनाओं के विकास में सहायक सिद्ध हो सकती है। यदि किसी सामान्य आदमी से यह कहा जाये कि हम हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई एक हैं, हम ही नहीं बल्कि पेड़-पौधे और जानवर भी हमारे रिश्तेदार हैं, तो यह बात उसके मस्तिष्क में आसानी से नहीं बैठेगी और सम्भव है वह इसे हँसी में उड़ा दे, लेकिन यदि हम इस प्रयोग से पहले उसे पृथ्वी के जन्म और इस पर सर्वप्रथम एक कोशिकीय जीव तथा इससे विकसित हुए तरह-तरह के जीवों व स्वयं मनुष्य की कहानी सुनाकर उसे वैज्ञानिक मनोवृत्ति (साइंटिफिक टेम्पर) से युक्त कर दिया जाए तो वह पूर्व कथन को आसानी से आत्मसात कर लेगा। वैज्ञानिक मनोवृत्ति हमें धर्म, जाति, रंग-भेद, क्षेत्रीयता और देश की सीमाओं से उठकर सोचने के लिए प्रेरित करती है और मानवीय संवेदनाओं को सशक्त करती है। आज भारत में वैज्ञानिक चेतना का बड़ा अभाव है जहाँ एक कदम चलो तो तीन अंधविश्वास मिलते हैं। इतनी वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद आज भी यहाँ किसी तांत्रिक या साधू बाबा के कह देने मात्र से किसी बच्चे की बलि दे दी जाती है, धर्मान्धता के कारण आए दिन साम्प्रदायिक दंगे-फसाद होते रहते हैं, स्त्री के देह शोषण की एक अमानवीय परम्परा देवदासी प्रथा, बिहार प्रदेश की डायन प्रथा आदि अंधविश्वासी परम्परायें आज भी जीवित हैं वहीं अब फिर पति की चिता के साथ पत्नी के जल जाने की सती प्रथा जैसी घटनाएं भी प्रकाश में आने लगी हैं जो पूर्णता अवैधानिक और अमानवीय हैं।

अब बात करते हैं एक ऐसे पहलू की जिसने विज्ञान कथा साहित्य पर अपनी एक विशेष छाप छोड़ी है। जी हाँ, किसी अन्य ग्रह, उपग्रह, उड़नतश्तरी और दूसरे ग्रह के विचित्र प्राणियों की कहानी। कैमिल फ्लेमरिओन नामक एक खगोलविद् सबसे पहले ऐसे विज्ञान कथा लेखक थे जिन्होंने दूसरे ग्रहों पर रहने वाले जीवों की कल्पना की। सुप्रसिद्ध विज्ञान कथा लेख एच. जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक 'द वार ऑफ द वर्ल्ड्स' में हमारे सौर मण्डल के ग्रह मंगल पर जीवन की कहानी गढ़कर एक आक्टोपस जैसे मंगलवासी की कल्पना की जो अपने ग्रह के उन्नत विज्ञान के बल बूते पर पृथ्वी पर पहुँच जाता है और विनाश प्रारम्भ कर देता है। पृथ्वीवासी उससे युद्ध करते हैं लेकिन हमारी सुरक्षा प्रौद्योगिकी उसके सामने विफल हो जाती है। खुद को हारता देख पृथ्वीवासी उस पर सूक्ष्म जीवाणुओं से वार करते हैं जिससे वह नहीं लड़ पाता और अन्ततः मारा जाता है। आम तौर पर विज्ञान कथाओं में बाहरी ग्रह के जीवों को हिंसक और क्रूर ही दर्शाया जाता है लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू भी होता है, उनका स्वभाव हमारे ऋषि-मुनि, बुद्ध-महावीर, जैसा भी हो सकता है। विज्ञान कथा लेखक जी. प्रकाश ने अपनी पुस्तक ''महाप्रलय की प्रतीक्षा में'' एक नए सिद्धांत को गढ़ने की कोशिश की है कि उड़नतश्तरी यात्री या कोई भी अंतरिक्ष यात्री, जो अन्य ग्रहों से लम्बी दूरियाँ तय करके आए वह कभी भी स्वभाव से हिंसक या क्रूर नहीं हो सकता।

इस विज्ञान कथा का केन्द्र बिन्दु मानव मस्तिष्क पर अत्यन्त बढ़े हुए गुरुत्वाकर्षण बल का अतिविनाशकारी प्रभाव है जिसे कथा में कुछ ऐसे दर्शाया गया है जो जो भविष्य के लिए एक बड़ी चेतावनी सिद्ध हो सकता है।

हम जानते हैं कि मानव मस्तिष्क पर गुरुत्वाकर्षण बल के चुंबकत्व का प्रभाव पड़ता है जिसका ठोस प्रमाण हैं पूर्णिमा के दिनों के करीब बड़ी तादाद में दुर्घटनाओं का होना और आत्मघाती प्रवृत्तियों जैसी आत्महत्याओं की संख्या बढ़ जाना जो यह सिद्ध करता है कि मस्तिष्क की गतिमान ऊर्जा तरेंगे गुरुत्वाकर्षण बल के चुंबकत्व से प्रभावित होती हैं। आज संपूर्ण मानव जाति गला काट प्रतिस्पर्धा से प्रभावित है, ऐसी स्थिति में मस्तिष्क में ऊर्जा की खपत बढ़ जाने से अनियंत्रित विद्युत तरंगों का बड़ी मात्रा में उत्पन्न स्वभाविक है। मनुष्य में हिंसा, उत्तेजना, अप्राकृतिक प्रवृत्तियों की उत्पत्ति मस्तिष्क की कार्यक्षमता घटाकर उसका स्वयं में स्थित विद्युततरंगों पर नियंत्रण कम कर देती है या मस्तिष्क विद्युत तरंगों पर नियंत्रण खोता जाता है। यदि परिस्थितियां ऐसी रहीं तो मानव मस्तिष्क में अनियंत्रित विद्युततरंगों की भीड़ बढ़ती जायेगी, परिणामस्वरूप मस्तिष्क में ऊष्मा का रिसाव बड़ी मात्रा में होकर वह एक आसान मौत का शिकार हो सकता है। इस प्रकार सम्पूर्ण मानव जाति एक ही समय में एक ठण्डी मौत का शिकार होकर अचानक लुप्त हो सकती है। इस अवस्था के पास पहुँचने के बहुत पहले ही वह उत्तेजित होकर इतना हिंसक हो जायेगा कि आपस में मारा-मारी करेगा। अगर ऐसे हालात आज के बाद कभी भी पैदा होते हैं तो जैविक और परमाणु शस्त्रों का प्रयोग निश्चित है।

आज विकास की अंधी दौड़ में मानव की बदलती मानसिकता पर चोट करती मेरी विज्ञान कथा 'रोबोनॉइड्स' में दूसरे ग्रह के लोगों द्वारा पृथ्वी से दो लोगों, जिसमें एक महिला होती है और दूसरा पुरुष, का अपहरण कर लिया जाता है। उड़नश्तरी द्वारा पृथ्वी पर आए वे अपहरणकर्ता प्राणी नहीं बल्कि सुपर कम्प्यूटर युक्त यंत्र मानव होते हैं जिन्हें कथा में 'रोबोनॉइड्स' कहा जाता है। उनका ग्रह रासायनिक युद्ध के कारण नष्ट हो चुका है। वहाँ के इन यंत्र मानवों ने अपना ग्रह नष्ट होते ही एक अन्य ग्रह की खोज कर ली जिसकी परिस्थितियाँ बिलकुल पृथ्वी जैसी थीं लेकिन वहाँ कोई बुद्धिमान जीव नहीं था। उनका उद्देश्य था पृथ्वी से अपहृत उन दो लोगों को ले जाकर उस अनजान ग्रह पर बसाना और ऐसे समाज की नींव रखना जो द्वेष और घृणा से मुक्त हो। लेकिन जब वे परीक्षण करते हैं तो पृथ्वी पर मानव मस्तिष्क को द्वेष और घृणा से प्रदूषित पाते हैं और अपने मिशन के अनुरूप न पाकर वे अपहृत दोनों पृथ्वीवासियों को मुक्त कर अपने उद्देश्य को लेकर किसी अन्य ग्रह की तलाश में चल देते हैं। यह विज्ञान कथा अजीवों द्वारा सजीवों को दिए गए मानवता के पाठ पर आधारित है, वे अजीव जिन्होंने द्वेष, घृणा और इससे उत्पन्न कृत्यों से तंग आकर प्राणियों को ऐसी संवेदनाओं को ग्रहण किया जो मानवता के विकास में सहायक हों।

आत्मरक्षा प्राणियों का एक अनुवांशिक गुण है। मनुष्य ने मनुष्य के साथ अपनी शारीरिक शक्ति के विकास के साथ-साथ नये-नये अस्त्र-शस्त्रों की खोज की है। अपने कुल की रक्षा और भोजन के लिए प्राचीन आदिमानव युग की लड़ाई से लेकर भौतिक-वादी युद्ध के लिए परमाणु बम के निर्माण तक की यात्रा में जैविक हथियारों तक का निर्माण कर लिया गया है, ऐसे नरसंहारक हथियार जो बिना कोई धमाका किए पृथ्वी की संपूर्ण मानव जाति को सदा के लिए मौत की गहरी नींद सुला सकते हैं।

21वीं शताब्दी और तीसरी सहस्त्राब्दि में विज्ञान की नवीन उपलब्धियाँ किसी जादू या चमत्कार से कम नहीं होंगी। लेकिन क्या इस विकास यात्रा में मानव अपनी मानवता को कायम रख सकेगा ? मानवता और मानव को बचाने के प्रयासों में विज्ञान कथा लेखक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। वे ऐसे साहित्य की रचना कर सकते हैं जिससे जन-जन में वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हो और समाज में ह्रास होती मानवीय संवेदनाओं को बचाया जा सके।

—संपादक-साइंस टाइम्स,
67 अण्टा, शाहजहाँपुर-242001

विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना

हरीश गोयल

विज्ञान कथाएँ भविष्योन्मुखी होती है। विज्ञान तथा तकनीकी में हो रही खोजों तथा संभावित खोजों का मानव पर दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है। क्या मानव वैज्ञानिक खोजों के द्वारा हो रहे समाज में बदलाव का सामना कर पायेगा ? या फिर उसे एल्विन टोफ्लर के 'फ्यूचर शॉक' का सामना करना पड़ेगा। क्या वह भविष्य के साथ सामंजस्य स्थापित कर पायेगा ? विज्ञान कथाएं इसका उत्तर देने का प्रयास करती हैं।

मानव की खोजों का दुष्परिणाम हम भोगने भी लगे हैं। लेकिन इसके लिये विज्ञान कथाकारों ने हमें बहुत पहले ही आगाह कर दिया था। और इसका कारण स्वयं विज्ञान न होकर मानव की मूलभूत प्रवृत्ति है। पर्यावरण के दूषित होने की विज्ञान कथाकारों ने बहुत पहले ही चेतावनी दे दी थी। रॉबर्ट बार ने 'द ड्रम ऑफ लन्दन' में प्रदूषित कोहरे के बारे में आगाह किया। ऐसी ही कल्पना जॉन ब्रुनर ने 'द शीप लक अप' में की। देवेन्द्र मेवाड़ी की विज्ञान कथा 'दिल्ली मेरी दिल्ली' में सन् 2025 में पर्यावरण प्रदूषण को एक बच्चे द्वारा अपने दादाजी को लिखे पत्र के माध्यम से दर्शाया गया है। मैंने 'थकते डैने' में पक्षी के माध्यम से इसे व्यक्त किया है। कोशिक घोष की विज्ञान कथा 'कस्टमाइज्ड क्लाइमेट लिमिटेड, में धरती से दूर की एक कालोनी में मौसम विज्ञानियों द्वारा बिगड़े मौसम को बदलने का प्रयास किया जाता है।

मनीष मोहन गोरे की विज्ञान कथा ''जीवन की पुनरुत्पत्ति'' में होमोफ्यूचरिस द्वारा पृथ्वी के विनाश के बाद पुनः जीवनोपयुक्त आवश्यक वातावरण की उत्पत्ति का प्रयास किया जाता है। इन कथाओं में मानव की पर्यावरण के प्रति संवेदनहीनता को बताया गया है। प्राकृतिक आपदाओं से भी पृथ्वी का विनाश हो सकता है। डॉ० जयन्त विष्णु नार्लीकर ने 'हिम प्रलय' में हिमयुग की कल्पना की तो मैंने 'जल प्लवित कलकत्ता' में पृथ्वी पर गर्मी के बढ़ने से 'जल प्लावित' शहरों की कल्पना की।

ऐसे ही मैंने 'उड़नशील मानव' में पक्षियों के समाहत होने की कल्पना की। ऐसे ही मनोज पटैरिया ने 'वरदान', 'जंगल में मंगल' पर्यावरण पर एक रेडियो रूपान्तर लेखों में वनों का संरक्षण पर ऐसे ही बढ़ती जनसंख्या पर भी विज्ञान कथाकारों ने चिंता व्यक्त की है। ब्राइन एल्डिस ने विज्ञान कथा 'ग्रेलियर्ड' में परमाणु परीक्षण के दुष्प्रभावों को बताया है। इन परीक्षणों के कारण आवादी कम होती चली जाती है क्योंकि मानव जाति नपुंसक हो जाती है। हैरी हैरीसन की कथा 'मेकरूम मेक' में पानी पर राशन लग जाता है और मांस गायब हो जाता है। फ्रेडरिक पॉल तथा साइरिल कार्नव्लथ ने 'द स्पेस मर्चेंट्स' में आबादी बढ़ने पर सार्वजनिक स्थल की सीढ़ियां भी किराये पर मिल पाने की कल्पना की। रावर्ट सिल्वर बर्ग ने 'द वर्ल्ड इन्साइड' में भविष्य में हजार हजार मंजिला इमारतों की कल्पना की जिनमें एक एक इमारत में एक एक लाख लोग रहेंगे। क्या फिर मानवीय संवेदनाएं मर नहीं जायेंगी। जॉन ब्रुनर ने 'स्टैंड ऑफ जंजीबार' में आबादी बढ़ने पर मानव की प्रतिक्रिया को व्यक्त किया है। यह एक दहशत भरी सोच होगी कि आनुवंशिक रोगों वाले बच्चों के जन्म पर कानूनी पाबंदी लग जाये या फिर केवल वे ही बच्चे जन्म लेने का अधिकार रखेंगे जो 'जीनियस' होंगे।

विज्ञान कथाकार देवेन्द्र मेवाड़ी की 'चूहे' बढ़ती आबादी की प्रतीक कथा है। उन्होंने चूहे के माध्यम से

(शेष पृष्ठ 38 पर)

विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना

देवेन्द्र मेवाड़ी

मुख्य अतिथि आदरणीय डॉ० अब्दुल खालिक, डॉ० शिव गोपाल मिश्र, डॉ० राम मोहन पाठक जी और साथियों : विज्ञान कथाकार डॉ० अरविंद मिश्र ने विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना का विषय प्रवर्तन करके मुझे साथी वक्ताओं के वक्तव्यों का सार प्रस्तुत करने का भार सैंपा है। इसलिए पहले सार।

'विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना' विषय पर अभी विज्ञान कथाकारों और अन्य साथियों ने अपने विचार व्यक्त किए।

श्री अजय सिंह ने कहा - विज्ञान कथा साहित्य की विधा है। इसलिए इसमें मानवीय संवेदना अनिवार्य है। विज्ञान कथाएं विज्ञान और मानव की संवेदनाओं पर बुनी जाती हैं। उन्होंने मानवीय संवेदना की व्याख्या की और कहा संवेदना न केवल मानव में बल्कि प्राणियों और पेड़-पौधों में भी होती है। हमें विज्ञान कथाओं में इसका ध्यान रखना चाहिए।

श्री इरफान हयूमन ने कहा - विज्ञान कथाएं भविष्य का आभास होती हैं। इसलिए मानवीय संवेदनाओं को उनमें समाहित करना जरूरी है। यह संवेदना और समझ भी जरूरी है कि प्रकृति के ताने-बाने को न छेड़ा जाय। उन्होंने पूछा, हम ब्रह्मांड की बातें करते हैं। लेकिन क्या पडोसी की पीड़ा को भी समझते हैं ? क्या हम आपसी प्रेम को बढ़ाने में मदद कर रहे हैं ? उन्होंने कहा विज्ञान कथाओं से मानवीयता बढ़ाई जा सकती है।

ज़ाकिर अली रजनीश ने कहा कि – विज्ञान कथाएं विज्ञान पर आधारित कहानियां हैं और जब कहानियां है तो उनमें माननीय संवेदना बेहद महत्वपूर्ण है। लेकिन आज जब दूसरों की पीड़ा को देखने-अनुभव करने तक का समय किसी से पास नहीं है तो संवेदनाओं को जगाने का काम विज्ञान कथाकारों को करना चाहिए। हम छोटी-छोटी बातों पर असंवेदनशील हो जाते हैं।

उन्होंने विज्ञान कथाकारों से अपेक्षा की कि वे समाज के प्रति अपना दायित्व निभा कर अपनी कहानियों में मानवीय संवेदनाओं को उभारें।

जीशान अली हैदर ने बताया कि संवेदना केवल मानव तक सीमित नहीं है। वह प्राणियों और पेड़-पौधों में भी है। आचार्य जगदीश चंद्र बसु ने पौधों की संवेदनशीलता को सिद्ध कर दिखाया था। जानवरों में अपने साथी की मृत्यु पर शोक और उदासी छा जाती है। इसलिए संवेदनाओं से विज्ञान कथाएं अछूती नहीं रह सकतीं। संवेदना के बिना विज्ञान कथा आत्मा के बिना शरीर की तरह है।

श्री लक्ष्मी नारायण कुशवाहा ने कहा— किसी को दुःख में देखकर सहानुभूति होना संवेदना है। उन्होंने सिद्धार्थ का उदाहरण देकर कहा कि किस तरह घायल हंस की पीड़ा अनुभव करके और बीमार, वृद्ध व जीवन का अंत देखकर वे गौतम बुद्ध बन गये। उन्होंने कहा कि विज्ञान कथाओं में संवेदनाओं को जगाने से समाज का हित होगा।

युवा विज्ञान कथाकार मनीष मोहन गोरे ने हिन्दी की विज्ञान कथाओं के विकास पर प्रकाश डाला और कहा कि इन कथाओं में संवेदना उभार कर समाज की जड़ता टूटेगी। विज्ञान कथाकारों से उन्होंने जड़ता तोड़कर एक बेहतर भविष्य बनाने की अपील की।

वरिष्ठ विज्ञान कथाकार डॉ० राजीव रंजन

उपाध्याय ने कहा कि विज्ञान कथा विज्ञान के तथ्यों को अपने अंक में समेट कर पाठकों के सामने रखती हैं। उन्होंने कहा कि विज्ञान कथाओं को समाज में आस्था जगानी चाहिए। डॉ० उपाध्याय ने विज्ञान कथाओं के विकास पर प्रकाश डाला और हिन्दी विज्ञान कथा जगत का चित्र खींचा। हिन्दी विज्ञान कथाओं में माननीय संवेदना के उदाहरणों का उल्लेख किया।

वरिष्ठ विज्ञान कथाकार श्री हरीश गोयल ने विज्ञान कथाओं के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा कि स्वरूप के अनुसार ही उनमें संवेदनाएं होती हैं। वे कभी लोभ, क्रोध, घृणा, अहंकार जैसे नकारात्मक स्वभाव की ओर संकेत करती हैं तो कभी प्यार, सद्भावना, सहयोग और समझ जैसे सकारात्मक स्वभाव को प्रदर्शित करती हैं ताकि पाठक समझ सकें कि क्या ठीक है और क्या गलत। उन्होंने मानवीय संवेदनाओं के उदाहरण के रूप में विज्ञान कथाओं के संदर्भ दिए।

यह सब सुनते और गुनते हुए अब दो शब्द मेरी ओर से– विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना बनी रहनी चाहिए। यह बहुत बड़ा दायित्व है विज्ञान कथाकारों का। विज्ञान-प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ आज मनुष्य संवेदना खो रहा है। महानगरों में लाखों की भीड़ में आदमी अकेला होता जा रहा है। आदमी आदमी से कट रहा है। वह दूसरों से सुख-दुखों से दूर हो रहा है। संकट में भी अपने साथी मनुष्यों की मदद करना भूल रहा है। यह कैसी प्रगति है ? कैसा विकास है ?

क्या आदमी स्थितप्रज्ञ हो रहा है ?

"सुख-दुःखे समेकृत्वा लाभालाभौ जया जयो।"

लेकिन, स्थितप्रज्ञ व्यक्ति तो अन्य लोगों के प्रति और भी अधिक संवेदनशील होता है। अपने कर्तव्य के प्रति अधिक उत्तरदायित्व अनुभव करने लगता है।

तो फिर आदमी अपनी संवेदनाएं क्यों खो रहा है ? कवि के शब्दों में :

''आज तुम्हारी सभ्यता का काफिला

आजमाने चांद की दूरी चला,

धरती पर न तय हो पा रहा

आदमी से आदमी का फासला''।

इसलिए विज्ञान कथाकारों का दायित्व है कि वे अपनी विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदना को जगाएं ताकि मशीनी मानव 'रोबोट' या मानव और मशीन का मिला-जुला रूप 'साइबोर्ग' या कृत्रिम कार्बनिक मानव 'एंड्रायड' की तरह मानव भी कहीं इसी भावनाशून्य बिरादरी में न शामिल हो जाय।

उसमें भावनाएं जीवित रहे तभी कल का आदमी जीवित रहेगा। अगर वह भी मशीन बन गया तो कल की बुद्धिमान मशीनें उसे अनुपयोगी मान कर नष्ट कर सकती हैं।

नोबेल शांति पुरस्कार विजेता डॉ० नार्मन बोरलाग ने वर्षों पहले अपने एक भाषण में व्यंग्य करते हुए आनुवंशिकीविदों को सुझाव दिया कि अब होमो सेपिइंस' अर्थात् आदमी की एक नई नस्ल विकसित की जानी चाहिए ताकि हमारी सभ्यता सुरक्षित रहे। इस नई नस्ल के आदमी की आंतों में 'सेल्युलेज' एंज़ाइम होना चाहिए ताकि वह विश्व भर के योजनाकारों, दफ्तरशाहों और प्रेस द्वारा अपार मात्रा में पैदा किए जा रहे कागज़ तथा लाल फीते के पहाड़ों को खा-पचा सके। इस जीन के साथ तीन जीन और जुड़े रहें। एक, ऐसा जीन जो अपने अपने साथी इंसानों के प्रति सहानुभूति पैदा करे। दूसरा जीन, जो सहज बुद्धि को बढ़ा सके क्योंकि इसमें लगातार गिरावट हो रही है। और, तीसरा ऐसा जीन जो मनुष्य की संतानोत्पादन क्षमता को घटा सके। इतिहास साक्षी है कि आदमी ने बार-बार अपनी आबादी बढ़ा कर कंगाली और अकाल न्योते हैं।

अपनी विज्ञानकथाओं में हमें आदमी को लगातार सचेत करना होगा कि वह भावनाओं और

संवेदनाओं के कारण ही आदमी है। हमें उसे भावनाहीन होने से रोकने का प्रयास करना होगा।

आज आप स्वयं देख रहे हैं कि आदमी आदमी का दुश्मन बन रहा है।

अपने स्वार्थ और लाभ के लिए वह दूसरों को धोखा दे सकता है, उसे नुकसान पहुँचा सकता है। वह हत्या बलात्कार, लूट-खसोट में भी नहीं झिझक रहा है। क्या यह है हमारे काम का मानव ? हमें इसीलिए विज्ञान कथाओं में मानवीय संवेदनाओं को जगाते रहना होगा।

एक विज्ञान कथा में एक अंतरिक्ष यान किसी तकनीकी खराबी के कारण पृथ्वी पर एक समुद्र तट पर गिर पड़ता है। उसमें एक जीव है जिसमें कोई हरकत नहीं होती। जीव को रेत में दबा देते हैं। अंतरिक्ष यान दर्शकों के लिए खोल दिया जाता है। एक पत्रकार छिपकर देखता है। यान का रोबोट रात में जागकर चुपचाप बाहर आता है। जीव को देखता-सेवा करता है। एक दिन जीव ठीक हो जाता है। यान में तब पत्रकार पूछता है - तुमने अपने मालिक को नया जीवन दे दिया है।

रोबोट कहता है - मालिक मैं हूँ।

हमें मानवीय संवेदनाओं को चित्रित करके कल की संवेदनाओं की ओर संकेत करना चाहिए ताकि मानवीय संवेदनाओं के मूल्य को समझा जा सके और एक संवेदनशील समाज की स्थापना हो सके जिसमें सब सहयोग से रह सकें। उपनिषद् की यह प्रार्थना हमारा लक्ष्य बने :

ॐ सहनाववतु सहनोभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै

तेजस्विनावधीतमस्तु मां विद्विषावहै।।

संवेदना का स्वरूप

बर्क के अनुसार संवेदना ऐसा भावावेश है जो उस समय उत्पन्न होता है जब हम किसी अन्य व्यक्ति के स्थान पर अपने को रखने और उसी व्यक्ति के समान घटना तथा परिस्थिति से प्रभावित होने के साधन से उसमें प्रवेश करते हैं अर्थात् उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर जाते हैं।

बाण से बिद्ध हंस को देखकर राजकुमार सिद्धार्थ के अन्तःकरण में उमड़ी करुणा के कारण वे हंस की सेवा में जुट गये।

आधुनिक विज्ञान कथाओं में मावनीय संवेदना परिलक्षित होती है। डॉ० अरविन्द मिश्र की विज्ञान कथा ''एक और क्रौंचबध'' इसका अनूठा उदाहरण है।

मेरा सुझाव है कि वैज्ञानिकों को बायोटेक्नालॉजी में क्रियात्मक और परीक्षणात्मक ज्ञान के लिए जीवों का प्रयोग न करके मॉडलों का प्रयोग करना चाहिए। इससे जीव हत्या से बचा जा सकेगा।

लक्ष्मीनारायण कुशवाहा
कुम्हारपुरा वाराणसी कैंट-2

आश्चर्य-वृत्तांत

यह कहानी 1884 से 1888 के मध्य 'पीयूष प्रवाह' नामक पत्रिका में जिसके सम्पादक स्वयं अंबिकादत्त व्यास थे, प्रकाशित हुई। संभवतः यह पहली हिन्दी विज्ञान कहानी है– एक उपन्यासिका। अभी तक 1900 में 'सरस्वती' में प्रकाशित कहनी को प्रथम विज्ञान कथा होने का श्रेय दिया जाता रहा है।

'संसारेऽपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यपि किम्।'

- इस संसार के रहते यदि कोई दूसरा इंद्रजाल भी है, तो इससे क्या ? (कवि का अभिप्राय यह है कि संसार ही सबसे बड़ा इंद्रजाल है।)

चित्रकूट से कुछ दक्षिण को झुकते, पुष्करिणी तीर्थ के पास विराधकुंड नामक एक तीर्थ है। वहाँ की भूमि भूपहाड़ों के कारण अत्यंत कठिन और पाषाणमय है। वहाँ लगभग सोलह-सत्रह हाथ की चौड़ाई का गोल एक कुवाँ ऐसा गहरा है, कि उसके देखने ही से ऐसा आश्चर्य होता है कि इन चट्टानों को तोड़कर इस घोर जंगल में यह किस बली ने खुदवाया है। वहाँ यह बात प्रसिद्ध है कि श्री रामचंद्रजी ने विराध राक्षस के गाड़ने को गड़हा करने के लिए पृथ्वी में बाण मारा, तब पाताल तक छेद हो गया था, सो यही है। अब तक लोग उसमें बड़े-बड़े पत्थरों के ढोंके छोड़ते हैं, पर वह ऐसा गहरा है कि खड़का तक नहीं सुन पड़ता। वह कितना गहरा है और कैसा है इसके निश्चय करने को अँगरेज लोग बहुत दिनों से पीछे पड़े हैं पर अभी तक कुछ पता नहीं लगा। 1 मार्च सन् 1884 को अमेरिका के प्रसिद्ध प्रोफेसर 'लूफ लिरपा' (Loof Lirpa) वहाँ पहुँचे, उसी के पास तंबू तान डेरा डाला और दूरबीन लगा नाप-जोख कर यह निश्चय किया कि किनारों की तरफ चारों ओर संधी से अनेक घास-फूस और पेड़ वगैरह निकल आए हैं। यदि किसी किनारे से कुछ लटकाया जायगा तो उन झाड़-झंखाड़ों में फँस जायगा। इसलिए जैसे कूप में घरारी पर से बड़ा घड़ा लटकाया जाता है, वैसे ही एक बड़ी घरारी पर से कल के द्वारा एक भारी लंघर इसके बीचोबीच लटकाया जाय। उसी से इसकी गहराई का पता लगेगा। बस 5 तारीख को कल और लंघर मँगाने के लिए बंबई पत्र भेजा गया और 14 तारीख को सब सामान आ पहुँचा और 31 मार्च तक खोद-खाद गाड़-गूड़ कर घरारी ठीक-ठीक जमा दी गई।

अब एक एप्रिल को सवेरे सात बजे प्रोफेसर साहब के साथ और भी कई अँगरेज लोग चारों ओर दूरबीन ले-लेकर बैठे और घरारी पर से पैंतालीस मन का लंघर लटकाया गया। उस गड़हे में बड़ा ही घोर अंधकार था, इसलिए प्रोफेसर साहब ने इस लंघर में एक बड़ा लंप भी बाँध दिया था कि ज्यों-ज्यों नीचे जाय त्यों-त्यों उजाला भी होता जाय और ऊपर से सबकुछ देख भी पड़ता जाय। बस धीरे-धीरे लंघर लटकने लगा और उस अँधेरे में के पेड़, झाड़-झंखाड़, मकड़ियों के जाले, साँपों की केंचुलियाँ, बिल और संधों में बैठे बिच्छू आदि जंतु देख पड़ने लगे। प्रोफेसर साहब उसे देख-देख अपनी बही में कुछ-कुछ लिखते जाते थे और वह लटकता जाता था। यहाँ तक कि दूर होने के कारण अंत में वह लंघर केवल एक गुब्बारे या तारे ऐसा चमकने लगा और उसके चारों ओर केवल अँधेरा देख पड़ने लगा।

नौ बजने के समय साहब ने निश्चय किया तो वह लंघर दो माइल और तीन सौ सैंतीस गज नीचे जा चुका था। जब पंद्रह मिनट और बीते तब वह लंघर एकाएकी लटकने से रुक गया। साहब ने हिसाब किया तो उतनी देर में चार सौ पचास गज और नीचे पहुँचा

था। अर्थात् कुल दो माइल और सात सौ सत्तासी गज नीचे जा पहुँचा था। जब उन लोगों ने यह निश्चय किया कि अब लंघर का नीचे की ओर लटकाना किसी प्रकार हो ही नहीं सकता तो हारकर ऊपर ही खींचने लगे। पर खींचने के समय उस लंघर का बोझा बढ़ जाना देख साहब को और-और लोगों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ और चकचिहाकर देखने लगे कि देखें, लंघर के साथ उलझा-पुलझा क्या आता है !

फिर क्रम से पहले धीरे-धीरे उस लंघर की लालटेन चमकने लगी, फिर उसका भी कुछ-कुछ आकार देख पड़ने लगा, फिर जब तक लोग एकटक लगाकर देखते ही हैं तब तक तो उस गंभीर गड़हे से एक बड़ी गूँज के साथ ध्वनि भी आने लगी। तब तो सभों को और भी आश्चर्य हुआ और ध्यान देकर सुनने से जाना गया कि 'धीरे-धीरे' यह शब्द है। साहब को आदमी के शब्द का निश्चय होते ही लंघर धीरे-धीरे खींचा जाने लगा और थोड़ी देर में यह शब्द स्पष्ट सुन पड़ने लगा। फिर देखा कि जाले औ सूखी लताओं के साथ एक आदमी उस लंघर में चिपट रहा है। देखते ही साहब ने औ और लोगों ने भी उसे धीरज धराया कि 'घबराओ मत, लंघर को जोर से पकड़े रहो।'

ज्योंही लंघर ऊपर आया त्योंही कल बल से साहब ने उस आदमी को लंघर से उतारा औ उसके जाले छुड़ा, धूल झाड़ी, पर वह मारे घबराहट के एकाएकी बेचेत-सा होकर हाँफता हुआ लेट गया। उसके कपड़े लत्ते से जान पड़ता था कि वह राजपुताने की ओर का रहनेवाला, किसी भले घर का आदमी है। झट छाया में ले जाकर, लोगों ने उसे पानी के छींटे दे, हवा कर ठंढा किया, घंटे भर में वह अपने में आया। जल पीने के अनन्तर उसने पूछा कि यह कौन स्थान है ? समीप कौन पहाड़ी है ? यहाँ से गयाजी कितनी दूर हैं ? और आप लोग क्यों जुटे हैं ?

ये प्रश्न सुन के लोग और भी चकित हुए, क्योंकि इस समय ये कई बातें आश्चर्य की उपस्थित हुईं कि पहले तो उस विराध कुंड ही की गहराई बहुत लंबी पाना और फिर उसमें से विचित्र रीति से एक आदमी की निकलना, तिस पर भी वह आदमी राजपुताने की ओर का, और फिर भी वह पूछने लगा कि यहाँ से गयाजी कितनी दूर हैं।

उस समय उन लोगों को गड़हे की गहराई का कौतुक छोड़ इसकी बातें सुनने का एक नया ही कौतुक आ उमगा और चारों ओर से भीड़ों के ठट्ट जमने लगे।

पहले उसे संक्षेप से यह कह सुनाया गया कि यह चित्रकूट के पास का जंगल है और झन्ना-पन्ना, पथर कछार वगैरह की राजधानी यहाँ से समीप है। वे पहाड़ भी उसी लगाव के हैं। यहाँ से गयाजी सैकड़ों कोस पर हैं तथा हम लोग आज इस गड़हे की गहराई नापने को इकट्ठे हुए थे और इसीलिए हम लोगों ने यह लंघर लटकाया था। पर इस लंघर के साथ आपको देख, अब हम लोगों को कैसा आश्चर्य और कौतुक हो रहा है सो कह नहीं सकते। आप कौन हैं ? कहाँ के हैं ? कैसे इस गड़हे में आए ? और कब से इसमें हैं ? वहाँ का क्या हाल है ? हम लोगों को बड़ा ही आश्चर्य है कि आप इधर से गिर के भीतर जाते तो जीते कैसे ? कोई सुरंग होती तो क्या इस अँगरेजी राज्य में भी छिपी रहती ? भूगर्भ की किसी विचित्र सृष्टि के आदमी होते तो हम लोगों से झटपट बोलचाल कैसे मिलती ?

यह सुन वह आदमी और भी आश्चर्य में भर उठा, इधर-उधर ताकने लगा और बोला कि ''क्या ! गयाजी सैकड़ों कोस पर हैं ?''

वे बोले, ''हाँ-हाँ, सैकड़ों कोस पर हैं।'' यह सुन वह चार-पाँच मिनट तक चुप होकर मन ही में विचारने लगा कि 'ओः ! परमेश्वर की क्या माया है! मैं कहाँ का रहनेवाला, कहाँ सैर करने लगा ! कहाँ जा पड़ा !! और कहाँ आ निकला !!!' फिर कुछ ठठक कर प्रगट बोला कि ''अच्छा आप लोगों को मेरा इतिहास सुनने का कुतूहल हो तो सुनिए, मैं कहूँगा, मेरी कथा बड़ी लंबी-चौड़ी और आश्चर्यमयी है।'' फिर जब चारों ओर से 'हाँ-हाँ, कहिए, कहिए, हमारा बड़ा जी लगा है'-यह ध्वनि हुई तो वह बोला कि ''अच्छा तो मैं बड़ी देर से प्यासा हूँ, थोड़ा जल पी

लूँ तो स्वस्थ होकर कहूँ।''

फिर उसने उठकर, पास ही वाले एक पहाड़ की चट्टान के बीच से झरते हुए झरने का टटका पाना पीया और हाथ-मुँह धो, आँखें मल, रुमाल से मुँह पोंछता हुआ फिर उसी समाज में आ बैठा और चारों ओर से लोगों को एकटक अपनी ही ओर ताकता हुआ देख, अपनी कथा कहने लगा-

(अंशतः)

साहित्याचार्य : पं० अंबिकादत्त व्यास

विलक्षण प्रतिभासंपन्न पं० अंबिकादत्त व्यास का जन्म जयपुर के सिलवटों के मुहल्ले में चैत्र शुक्ल अष्टमी को सन् 1958 में हुआ था और निधन 19 नवंबर, 1900 को काशी में हुआ। व्यासजी में इतनी विरल सृजन-शक्ति थी कि उन्होंने दस वर्ष की आयु में ही साहित्य सृजन के क्षेत्र में प्रवेश कर लिया। उनकी रचनाएँ दस वर्षीय बालक द्वारा विरचित है, यह अविश्वसनीय माना था। भारतेंदु ने ''कविवचन सुधा'' में इनकी कविता इस संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित की– ''इस विलक्षण बालक की बुद्धि विलक्षण ही है और अवस्था इसकी केवल बारह वर्ष की है। हम इसके और समाचार भी लिखेंगे।'' इस तरह बारह वर्ष की आयु में ही व्यासजी ने सरस्वती, मंत्र, अष्टावधान और अन्य चमत्कारों से काशी के रसिक मंडल को मंत्रमुग्ध कर अपने भावी सृजन के प्रति पूरी तरह आश्वस्त कर लिया। भारतेंदु कवि उनकी काव्य-प्रतिभा पर ऐसे रीझे कि उन्होंने ''काशी कविता वर्धिनी सभा'' में उन्हें ''सुकवि'' की उपाधि से विभूषित कर दिया। आशु कवि के रूप में भी व्यासजी ने खूब ख्याति प्राप्त की। संस्कृत का गंभीर अध्ययन करके उन्होंने वाईस वर्ष की अवस्था में ही काशी के गवर्नमेंट कॉलेज से ''साहित्याचार्य'' की परीक्षा उत्तीर्ण की और संस्कृत साहित्य में पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया।

उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं : काव्य– ''शतावधानी'', ''पावस पचासा'', सुकवि सतसई, श्रीकृष्ण की बाललीला पर सात सौ दोहे, आनंद मंजरी, गणेश शतक, ताशकौतुक पचीस, समस्या पूर्ति सर्वस्व, महाताशकौतुक पचासा, बिहारी विहार, रसीली कजरी, चतुरंग चातुरी, हो हो होली, झूलन झुमका, सहस्त्रनाम रामायण। नाटक– गो संकट, ललिता नाटक, समवेत नाटक (संस्कृत) व्याकरण धर्म आख्यान संबंधी-अवतार मीमांसा, धर्म की धूम, मूर्ति पूजा, विभक्ति विलास, भाषा ऋतु पाठ, गद्य काव्य मीमांसा, छंद प्रवंध, सांख्य तरंगिणी, तर्क संग्रह। उपन्यास– शिवराज विजय, (संस्कृत)। कहानी– आश्चर्य वृतांत।

पत्रकारिता के क्षेत्र में भी व्यास जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैष्णव पत्रिका, पीयूष प्रवाह आदि पत्रों तथा सारन सरोज नामक मासिक पत्रिका का सफल संपादन किय। उनकी आश्चर्य-वृतांत नामक पुस्तक उनकी गद्य शैली का उत्कृष्ट नमूना कही जा सकती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों की दृष्टि से इस पुस्तक का छूट जाना अपने आप में आश्चर्यजनक है। जो जीवंतता, जिज्ञासा, रोचकता, हास्य व्यंग्य की छटा, भाषा और वर्णन में एक साथ मौजूद है वह अपने आप में अनोखा प्रभाव छोड़ती है।

बुद्धं शरणं गच्छामि

विजय चितौरी

सामने वृत्ताकार सुन्दर घड़े को देखकर डॉ० नरेन्द्र एकाएक रुक गये। ईसा पूर्व करीब 600 साल पहले का बना यह घड़ा इतना साफ और चिकना था मानो यह अभी महीने दो महीने पहले का बना हो। जब डॉ० नरेन्द्र कई मिनटों तक अपलक उस घड़े को देखते रहे तो साथ चल रहे संग्रहालय के अधीक्षक और डॉ० नरेन्द्र के मित्र मनीष से नहीं रहा गया। उसने टोंका : ''क्यों रुक गये नरेन्द्र !, ऐसी क्या बात है इस घड़े में, जो इसे अपलक देखे जा रहे हो ? संग्रहालय में और भी तो बहुत कुछ है, उसे नहीं देखेगो ... ?

लेकिन डॉ० नरेन्द्र शीशे के शोकेस में बन्द उक्त घड़े के चारों ओर चक्कर काटते हुए देखने में इतने तल्लीन थे कि उन्हें मनीष की बात सुनाई ही नहीं दी। यही नहीं, हद तो तब हो गयी जब नरेन्द्र ने जेब से हैण्डलेंस निकाल लिया और उससे घड़े को देखने का प्रयास करने लगे।

मनीष ने जोर का ठहाका लगाया। आस पास के दर्शक दोनों मित्रों की ओर ताकने लगे। डॉ० नरेन्द्र की एकाग्रता भी भंग हुई। मनीष ने डॉ० नरेन्द्र को आफिस की ओर घसीटते हुए कहा, ''तभी तो लोग कहते हैं कि ''वैज्ञानिक आधे पागल होते हैं। यार, ''हैण्डलेंस से सूक्ष्मजीव देखे जाते हैं न कि भारी भरकम घड़ा।''

डॉ० नरेन्द्र बोले कुछ नहीं। उनके चेहरे पर अभी भी पहले वाली गंभीरता दिख रही थी। हाथ में निकाला हुआ हैण्डलेंस उन्होंने पुनः जेब के हवाले कर दिया।

मनीष और नरेन्द्र दोनों कॉलेज के दोस्त थे। पढ़ाई के बाद नरेन्द्र वैज्ञानिक बना जबकि मनीष पुरातत्ववेत्ता। जब से मनीष की नियुक्ति सारनाथ के संग्राहलय के अधीक्षक पद पर हुई तब से वह कई बार डॉ० नरेन्द्र को सारनाथ आने का न्यौता दे चुका था। नरेन्द्र भी काफी समय से इस ऐतिहासिक बौद्ध स्थल को देखने के लिए लालायित था। आखिर आज वह शुभ दिन आ ही गया। दोनों मित्र आज संग्रहालय देखने को निकले थे। लेकिन उस घड़े ने डॉ० नरेन्द्र के दिमाग में पता नहीं कौन सा भूचाल ला दिया जिसके कारण मनीष उसे आफिस में घसीट लाया।

चपरासी दोनों मित्रों के सामने काफी का प्याला रख गया। डॉ० नरेन्द्र ने प्याला होंठों से लगाया। फिर प्याले को मेज पर रखते हुए कहा, ''मनीष, यार घड़े को यहाँ मँगवा सकते हो ?''

''क्यों उस घड़े के पीछे पड़े हो यार ? ऐसी क्या बात है उस घड़े में ?'' मनीष ने जवाब दिया।

''उस घडे की दीवार पर भगवान बुद्ध के ध्वनि संकेत अंकित हो सकते हैं। मैं उन्हीं ध्वनि संकेतों का अध्ययन करना चाहता हूँ।''

''लेकिन घड़े की दीवाल पर ऐसा कुछ लिखा तो नही है। एकदम सपाट है उसकी दीवार।''

''टेप भी तो एकदम सपाट दिखता है। लेकिन वही टेप जब रिकार्ड प्लेयर में लगाकर बटन 'आन' किया जाता है तो कैसी मधुर ध्वनि निकलती है ?''

''हाँ, लेकिन टेप पर तो पूर्व में ध्वनि का अंकन किया हुआ होता है। इस घड़े से भला यह सब क्यों

संभव होगा ? यह तो असंभव बात है।''

''हाँ, अभी तो असंभव ही है। लेकिन घड़े पर ध्वनि का अंकन नहीं है, यह बात सही नहीं है।''

''क्या, घड़े पर ध्वनि का अंकन है ?''

''हाँ, ध्वनि का अंकन है। उस घड़े की दीवार पर वे ध्वनियां रिकार्ड हैं जो घड़े के निर्माण के समय कुम्हार के आस पास बोली जा रही थीं।''

''नरेन्द्र, तुम्हारी बातें समझ के परे हैं। भला यह कैसे संभव हो सकता है ?''

''मनीष, तुम ध्वनि संचरण का सिद्धान्त तो समझते ही हो। ध्वनि तरंगें हवा में अणुओं के संपीडन और विरलन के परिणामस्वरूप एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचती हैं। हवा में अणुओं के संपीडन और विरलन से उत्पन्न तरंगें किसी भी तरल पदार्थ में भी उसी तरह संपीडन और विरलन के चिन्ह बना सकती हैं। जिस समय घड़े का निर्माण हो रहा था उसकी सतह सरल थी। उस समय ध्वनि तरंगों के अणुओं की टक्कर से घड़े की दीवार पर कुछ उसी तरह के खांचे बन गये होंगे जैसे टेप पर चुम्बकीय सूई से खांचे बन जाते हैं। जिस तरह टेप पर निर्मित खांचों पर दुवारा चुम्बकीय सूई घूमने पर मूल ध्वनि दुबारा सुनी जा सकती है उसी तरह यदि कोई ऐसी इलेक्ट्रानिक सुई बनाई जाय जो घड़े की दीवाल पर बने आणुविक खांचों पर सरक सके तो घड़े के निर्माण के समय की ध्वनि सुनी जा सकती है।

इसी बीच वह बौद्धकालीन घड़ा डॉ० नरेन्द्र की मेज पर आ चुका था। डॉ० नरेन्द्र ने हैण्डलेंस की मदद से घड़े को घुमा फिरा कर तल्लीनता से अध्ययन किया। इस बीच मनीष कुछ फाइलें निबटाने में लग गये।

करीब आधे घंटे हो चुके थे। नरेन्द्र घड़े का बारीकी से निरीक्षण कर चुके थे। उन्होंने हैण्डलेंस व अपना चश्मा उतारकर मेज पर रखा। मनीष का ध्यान भी फाइलों से दूर गया। उसने कहा, ''क्यों नरेन्द्र, कुछ मिला ?''

''हाँ, मिला तो। लेकिन दोस्त मुझे अभी तुरन्त अपनी प्रयोगशाला लौटना होगा।''

''ये क्या कह रहे हो नरेन्द्र। तुम यहाँ हफ्ते भर की छुट्टी लेकर आये हो। तुमने खुद फोन किया था कि तुम काफी थक चुके हो और सारनाथ के सुरम्य वातावरण में कुछ दिन विश्राम करना चाहते हो। फिर आज ही आना और तुरन्त लौट जाना, कुछ अटपटा सा लग रहा है नरेन्द्र।''

''नहीं मनीष, आज जाने दो। दिमाग में एकवारगी कुछ नये विचार आये हैं। उनको लिपिवद्ध करके उन पर प्रयोग करना आवश्यक है। थोड़ा विश्राम मिलते ही मैं फिर आऊँगा। वादा करता हूँ।''

काफी समझाने बुझाने के बावजूद मनीष की बातों पर नरेन्द्र के ऊपर कोई असर नहीं पड़ा। नरेन्द्र ने अपना सामान वटोरा, अटैची उठाई और अपने प्रयोगशाला की राह ली।

*   *   *   *

करीब पांच वर्षों वाद सारनाथ संग्रहालय के प्रांगण में बड़ी चहल-पहल देखी गयी। राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय मीडियाकर्मी तथा अनेक वैज्ञानिक आज वहाँ उपस्थित थे। कारण, देश के प्रसिद्ध भौतिकविज्ञानी डॉ० नरेन्द्र आज दुनिया के सामने एक नया प्रयोग दिखाने वाले थे। यह प्रयोग था प्राचीन अवशेषों पर अंकित ध्वनि संकेतों को पढ़ने का।

मिट्टी का वही घड़ा लाया गया जिसका कई साल पहले डॉ० नरेन्द्र ने वारीकी से अध्ययन किया था। नवनिर्मित यंत्र पर घड़े को रख दिया गया। यंत्र पर रखते ही घड़ा उसी तरह वृत्ताकार घूमने लगा जैसे वह निर्माण के समय चाक पर घूमता है। डॉ० नरेन्द्र ने अपने यंत्र के कुछ उपकरण घड़े की दीवाल से चिपका कर लगा दिया। अव उन्होंने एक और वटन दवायी। अरे, यह क्या .....। घड़े की दीवार से ध्वनि निकलने लगी।

''बुद्धं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि।।''

संपर्क : घूरपुर, इलाहाबाद-212110

सर्वज्ञ

देवव्रत द्विवेदी

भोलेनाथ की नगरी काशी की तंग गलियों से गुजरते हुए श्याम, बाबा विश्वनाथ के दर्शनों के बाद पतित पावनी माँ गंगा के तट पर स्थित दशाश्वमेघ घाट पहुँचा। शाम का धुँधलका घिर रहा था और अर्धचंद्राकार रूप में बहती गंगा जैसे तुलसीदास द्वारा वर्णित शिव के स्वरूप 'शशि ललाट सुंदर सिर गंगा' की मनोहारी छटा प्रस्तुत कर रही थी। श्याम ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और घाट की सीढ़ियाँ उतरकर अंजुली में गंगाजल भर कर माथे लगाया तथा अपने ऊपर छिड़क कर कुछ बूँदे पीकर आचमन किया। घाट पर माँ गंगा की आरती चल रही थी और शंख, घंटा, घड़ियाल तथा मंत्रों की ध्वनियाँ वातावरण को पवित्र कर रही थी। श्याम ने एक नाव वाले को आवाज देकर बुलाया और उससे गंगा के दूसरे तट पर ले जाने को कहा। नाव पर बैठते ही नाव वाले ने लंगर खोला और नाव मंद गति से लहरों पर थिरकती हुई आगे बढ़ चली। माँझी ने एक सुरीला लोकगीत जो माँ गंगा के बारे में था, गाना आरम्भ कर दिया। कुछ देर के बाद नाव गंगा के दूसरे तट पर पहुँची जहाँ महानगर की चकाचौंध, हलचल और कोलाहल के विपरीत अंधेरा, निर्जनता और सन्नाटा फैला हुआ था। श्याम ने माँझी से महात्मा जी की कुटिया के बारे में पूछा तो उसने एक ओर इशारा कर दिया। श्याम ने उससे कुछ देर वहीं ठहरने को कहा और गंगा तट की बालुका राशि में अपने कदम बढ़ा दिये। कुछ दूर चलने के बाद कुटिया स्पष्ट दिखाई देने लगी। कुटिया से कुछ पहले ही एक वट वृक्ष के नीचे महात्मा जी आसन लगाए बैठे थे। श्याम ने वहाँ जाकर उन्हें प्रणाम किया और पास ही बैठ गया। उसने महात्मा जी के बारे में बहुत सी बाते सुन रखी थीं। उनकी सिद्धियों और क्षमताओं के आश्चर्य जनक किस्से अनेक लोगों के मुँह से सुनने के बाद श्याम का खोजी पत्रकार मन उनके दर्शन करने और उनकी सिद्धियों के रहस्य को जानने का लोभ संवरण नहीं कर सका था। इसीलिये मुंबई से चलकर वह इतनी दूर काशी आया था। थोड़ी देर बाद महात्मा जी ने आँखें खोली और श्याम की ओर देखकर उससे वहाँ आने का कारण पूछा। अंधेरे में भी उनकी आँखों में एक अनोखी चमक थी। पहले तो श्याम ने कहा कि वह मात्र स्वामी जी के दर्शनों के लिये आया है किंतु स्वामी जी की अनुभवी आंखों ने श्याम के मनोभावों और भीतर चल रहे अंतर्द्वन्द्व को उसके चेहरे से पढ़ कर उससे निःसंकोच अपना मंतव्य स्पष्ट करने को कहा। श्याम ने झिझकते हुये कहा-- ''मैंने आपके बारे में अनेक किस्से सुन रखे हैं कि 'स्वामी जी को दुनिया की हर बात की खबर रहती है।' 'स्वामी जी जब चाहें, जिससे चाहें बात कर सकते हैं।' ''स्वामी जी सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं आदि आदि, यद्यपि मुझे इन बातों पर विश्वास नहीं होता किंतु फिर भी मैं आपके दर्शनों का लोभ संवरण न कर सका।''

स्वामी जी के चेहरे पर एक रहस्यमय मुस्कान उभरी उन्होंने अपनी आँखें फिर बंद कर लीं और ध्यानस्थ हो गये। अचानक उनके चेहरे पर चिंता के भाव प्रकट हुए और आँखें खोल कर उन्होंने श्याम से बताया कि अभी अभी पड़ोसी देश ने अपने देश पर हमला कर दिया है और सीमा पर युद्ध आरंभ हो चुका है।

श्याम आश्चर्य से स्वामी जी का चेहरा देखने लगा जैसे उसने संसार का आठवां अजूबा देख लिया हो। समाचार की सत्यता परखने के लिये उसने अपनी जेब से ट्रांजिस्टर निकालकर ऑन किया। आकाश- वाणी से विशेष समाचारों का प्रसारण चल रहा था जिसमें देश पर हुए हमले के बारे में बताया जा रहा था। अब तो श्याम से रहा न गया और वह स्वामी जी के पाँव पकड़ कर उनसे बच्चों की भाँति अपनी शक्तियों के रहस्य पर से परदा उठाने की जिद करने लगा।

स्वामी जी फिर मुस्कुराए तथा उन्होंने श्याम से थोड़ी देर धैर्य रखने को कहा। वे अपने स्थान से उठे और अंधेरे में धीरे-धीरे अपनी कुटिया की ओर चल पड़े। श्याम भी कौतूहल और उत्सुकता के साथ उनके पीछे चलने लगा।

स्वामी जी ने अपनी कुटिया का दरवाजा खोला और अंदर प्रवेश किया। यह एक छोटा सा कमरा था जिसमें एक दीपक जल रहा था। एक ओर जमीन पर चटाई बिछी थी तथा दूसरी ओर एक छोटी चौकी पर भगवान की कुछ मूर्तियाँ और पूजा का सामान पड़ा था। उसके सामने बैठने के लिये आसन था। श्याम को वहाँ ऐसा कुछ भी असामान्य नजर नहीं आया। उसने एक बार फिर प्रश्नवाचक निगाहों से स्वामी जी की ओर देखा। स्वामी जी ने आँखों से ही उसे आश्वस्त किया और चौकी को अपने स्थान से उठाकर एक ओर रख दिया। उसके नीचे एक गड्ढा दिखाई दिया जिसमें नीचे की ओर सीढ़ियाँ जा रही थी। स्वामी जी सीढ़ियों से नीचे उतरे तो श्याम भी उनके पीछे उतर गया। वे नीचे पहुँचे तो श्याम ने अपने आपको विद्युत प्रकाश से आलोकित एक कक्ष में खड़ा पाया। एक ओर कुछ विद्युत यंत्र एवं बैटरियाँ तथा दूसरी ओर एक कम्प्यूटर स्क्रीन, की-बोर्ड, मोडेम, साउण्ड बाक्स आदि अनेक इलेक्ट्रानिक उपकरण रखे थे। स्वामी जी ने कहा-- ''यही हैं मेरी सिद्धियाँ और उनका रहस्य।'' श्याम की उत्सुकता बढ़ गई। उसने स्वामी जी से पूछा कि इन विद्युत तथा इलेक्ट्रानिक यंत्रों और उनकी सिद्धियों और शक्तियों का भला क्या और कैसा संबंध है ?

स्वामी जी कम्प्यूटर के सामने बैठ गये और श्याम को भी एक कुर्सी पर बैठने को कहा। फिर एक शिक्षक की भाँति गम्भीरता से श्याम को बताने लगे--

''इलेक्ट्रानिक्स के विकास के साथ माइक्रो इलेक्ट्रानिक्स, टेली कम्यूनिकेशन, कम्प्यूटर साइंस, सैटेलाइट कम्यूनिकेशन, लेजर, आप्टिकल फाइबर, इंटरनेट आदि अनेक नये नये शब्द हमें बार-बार सुनाई पड़ते हैं। इन सभी के समेकित प्रयोग के द्वारा इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में मानव ने सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी थी। विश्व के सभी संस्थानों के पुस्तकालयों को इंटरनेट से जोड़ कर हमने विश्व के सम्पूर्ण पुस्तकीय ज्ञान को कम्प्यूटर की स्क्रीन पर ला दिया है। सभी नवीन शोध, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, टी० वी० चैनल आदि इंटरनेट के माध्यम से कम्प्यूटर पर उपलब्ध हैं। संदेशों के आदान प्रदान के लिये पेजर, मोबाइल, सेलुलर फोन, ई-मेल आदि से आगे बढ़ते हुए आज हम इंटरनेट टेलीफोनी के युग में आ गये हैं। विश्व का सारा व्यापार आज इलेक्ट्रानिक कॉमर्स या ई-कॉमर्स द्वारा संचालित हो रहा है। विश्व के अनेक स्थानों पर सूचना पार्क स्थापित हो गये हैं जहाँ पर सभी प्रकार की सूचनाएँ संग्रहीत रहती हैं और आवश्यकता पड़ने पर कोई भी व्यक्ति अपने कम्प्यूटर पर इंटरनेट के माध्यम से कोई भी सूचना प्राप्त कर सकता है।''

श्याम कुछ आश्वस्त हुआ। उसने फिर कहा मगर स्वामी जी, इस सूचना क्रांति और आपकी सिद्धि के बीच का संबंध अभी भी मेरी समझ में नहीं आया है।

स्वामी जी ने एक क्षण के लिये आँखें बंद कीं और कम्प्यूटर के स्क्रीन पर देश के प्रधानमंत्री का संदेश प्रसारित होने लगा। वे देश पर हुए हमले और सेना द्वारा की गई जवाबी कार्यवाही के बारे में राष्ट्र को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने बताया कि सीमा पर एन्टीमिसाइल रेडार सिस्टम की सहायता से शत्रु के हमले को नाकाम कर दिया गया है तथा रिमोट चालित पायलट विहीन युद्धक विमान दुश्मन के ठिकानों को नेस्तनाबूद कर रहे हैं।

श्याम ने एक बार फिर प्रश्नवाचक निगाहों से स्वामी जी की ओर देखा तथा कमरे में हर ओर नज़रें घुमाईं। स्वामी जी उसके मनोभावों को समझ कर बोले-- ''तुम यह सोच रहे होगे कि ऊपर तो कुटिया में दीपक जल रहा था फिर यह कम्प्यूटर किस प्रकार चलने लगा ? दरअसल मेरी कुटिया के छप्पर में सौर सेल लगी हुई हैं जदो सौर ऊर्जा को इन नीचे रखी बैटरियों में संग्रहीत करती हैं जिससे वे सभी उपकरण चल रहे हैं।

'किंतु स्वामी, आपने तो कम्प्यूटर को हाथ भी नहीं लगाया। आपके हाथ में कोई रिमोट कंट्रोल भी नहीं है फिर भी आपने कम्प्यूटर को कैसे चलाया ?

''यह तो जैव प्रौद्योगिकी, न्यूरोसर्जरी, माइक्रो इलेक्ट्रानिक्स, आप्टिकल इलेक्ट्रानिक्स तथा मानवीय एकाग्रता का एक मिला जुला प्रयास है जिसके परिणाम स्वरूप यह चमत्कार संभव हुआ है।''

मेरे मस्तिष्क में सर्जरी द्वारा एक माइक्रोबायो इलेक्ट्रानिक चिप ट्रांसप्लांट कर दी गई है। इसमें एक अति सम्मिश्र इलेक्ट्रानिक परिपथ है जिसका संबंध मेरे मस्तिष्क के तंतुओं से किया गया है। जब मैं किसी भी विषय पर अपने विचारों को केंद्रित करता हूँ तो मेरे मस्तिष्क में विचारों के कारण होने वाली न्यूरॉनों की हलचलों को यह परिपथ इलेक्ट्रानिक संकेतों में बदल देता है। ये संकेत एक ट्रांसमीटर के माध्यम से कम्प्यूटर तक पहुँचते हैं जो उन संकेतों के आदेश पर कार्य करने लगता है। इस चिप में एक रिसीवर भी है जो कम्प्यूटर द्वारा प्राप्त संकेतों को मस्तिष्क तक पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक और विशेषता है। शायद तुमने मेरी आँखों की चमक पर ध्यान नहीं दिया। कान्टैक्ट लेंस के आकार की यह फ्लोरोसेन्ट स्क्रीन आप्टिकल फाइबर के द्वारा मेरे मस्तिष्क में लगी चिप से जुड़ी हुई है। मैं कहीं भी रहूँ कम्प्यूटर के स्क्रीन पर आने वाले दृश्य मुझे आँखें बंद करने पर दिखाई देते रहते हैं। इस प्रकार मैं इस एकांत में भी सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा और सर्वव्यापी बन गया हूँ।

इतना कह कर स्वामी जी ने आँखें बन्द कर लीं। कम्प्यूटर की स्क्रीन पर दृश्य बदल गया। सीमा पर दुश्मन के ठिकाने मिसाइलों और युद्धक विमानों के जवाबी हमले से नष्ट हो चुके थे। दुश्मन पीछे हट चुका था। एक पहाड़ी पर तिरंगा शान से लहरा रहा था।

स्वामी जी ध्यानस्थ बैठे हुए थे। श्याम ने उनको प्रणाम किया और कुटिया के बाहर निकल आया। वापस लौटते हुए विश्वनाथ की नगरी में आज उसे सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, त्रिनेत्र शिव के आधुनिक स्वरूप के साक्षात दर्शन का आनन्द अनुभव हो रहा था।

विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

(पृष्ठ 27 का शेष)

बढ़ती आबादी का खौफनाक मंजर प्रस्तुत किया है। चूहे सोचते हैं उन्हें आबादी बढ़ने का आदम रोग लग गया। कुछ ही वर्षों में एक ही शहर में मानव की आबादी दो करोड़ होने को थी।

पर चिकित्सा विज्ञान में हो रही खोजों का भी मानव पर प्रभाव पड़ा है। विज्ञान कथाओं में संभावित खोजों के दूरगामी प्रभावों को बताया गया है। हृदय की मृत्यु हो जाने पर भी मस्तिष्क जीवित रहता है। इस तथ्य का उपयोग करके अनेक भारतीय विज्ञान कथाकारों ने अत्यन्त रोचक विज्ञान कथाएं लिखी हैं। डॉ० अरविन्द मिश्र की 'धर्म पुत्र' स्मृति अंतरण पर आधारित कथा है।

–54, शास्त्री नगर
अजमेर-305006

डॉ० शिवगोपाल मिश्र सम्मानित

इलाहाबाद की साहित्यिक संस्था 'अभिषेक श्री' द्वारा 23 अप्रैल को विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र को उत्तर प्रदेश के गन्ना विकास मंत्री डॉ० नरेन्द्र कुमार सिंह गौड़ के कर कमलों से वर्ष 2000 का 'अभिषेक श्री' सम्मान प्रदान किया गया। इस अवसर पर नगर के अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

भारतीय अस्मिता के अग्रदूत : लेखक डॉ० राम दास चौधरी, **प्रकाशक** : गौरव प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण : 1998, मूल्य : 200/- रु०

डॉ० रामदास चौधरी उत्तर प्रदेश के जिला इटावा के ऐसे वैज्ञानिक हैं जो 40 वर्ष पूर्व विदेश चले गये और वहीं 1996 में यूनिवर्सिटी आफ ब्रिटिश कोलम्बिया बैंकुवर (कनाडा) से भौतिकी में पी. एच-डी. उपाधि प्राप्त की। सम्प्रति वे आसवीगो की स्टेट यूनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क में भौतिकी के प्रोफेसर हैं। आपकी विशेष रुचि भारतीय इतिहास में रही है और हिन्दी के प्रति आपका अगाध प्रेम भी अवर्णनीय है। आप ''विश्वा'' पत्रिका के मुख्य सम्पादक भी हैं। आपने इस पत्रिका के लिए समय-समय पर भारतीय विभूतियों पर कुछ खोजपूर्ण निबन्ध लिखते रहे हैं जो अब पुस्तकाकार होकर प्रकाशित हुए हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में जहाँ एक ओर शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द जैसे चिन्तकों पर निबन्ध हैं वहीं गोपाल कृष्ण गोखले, तिलक, महात्मा गांधी जैसे राजनीतिक व्यक्तियों पर भी शोधपूर्ण लेख हैं। इसमें राहुल सांकृत्यायन पर भी एक निबन्ध है किन्तु इस पुस्तक का सर्वाधिक महत्व उन दो वैज्ञानिकों का विस्तृत जीवन परिचय है जिन पर सारे भारतीयों को गर्व का अनुभव होता है। ये हैं श्रीनिवास रामानुजन तथा डॉ० जगदीश चन्द्र बोस।

पुस्तक में सारे महापुरुषों के चित्र हैं और प्रत्येक निबन्ध के अन्त में उन पुस्तकों का उल्लेख है जिनसे निबन्ध के लिए सामग्री ली गई है। इन निबन्धों की भाषा अत्यन्त परिष्कृत है और स्थान-स्थान पर लेखक ने अपने स्वतन्त्र विचार भी व्यक्त किये हैं। विदेश में रह कर भी डॉ० चौधरी ने जिस प्रकार भारत के उन्नीसवीं सदी के राजनैतिक एवं सामाजिक तथा बौद्धिक परिदृश्य का चित्रण किया है वह मेरी दृष्टि में श्लाघनीय है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

राजस्थान के वैज्ञानिक : लेखक डॉ० दुर्गादत्त ओझा
प्रकाशक : राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर
प्रथम संस्करण : 1999, मूल्य : 200/- रु०

किसी प्रान्त विशेष के वैज्ञानिकों का जीवन परिचय एवं उनकी उपलब्धियों का संकलन काफी परिश्रमपूर्ण एवं कठिन कार्य है। इसमें इसका भय रहता है कि कुछ जीवित व्यक्ति अपनी उपलब्धियों का ठीक से वर्णन न होने पर नाराज हो सकते हैं और वे जिनके विवरण छूट गये हैं, यह सोच सकते हैं कि किसी पक्षपात के कारण ऐसा हुआ है। फिर भी पाठकों के लिए अधिकांश वैज्ञानिकों का परिचय एक जगह एकत्र मिल जाने से बड़ी सुविधा होती है और ऐसे अनेक महत्वपूर्ण व्यक्ति उस क्षेत्र के निकल आते हैं जिसकी पूर्वकल्पना भी नहीं की जा सकती। डॉ० ओझा ने सचमुच सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने अभियांत्रिकी के 8, अंतरिक्ष विज्ञान के 2, आयुर्विज्ञान के 12, आयुर्वेद के 28, कृषि विज्ञान के 6, गणित विज्ञान के 5, पशुपालन विज्ञान के 3, प्राणि विज्ञान के 7, भूगर्भ के 1, भौतिक विज्ञान के 2, रसायन विभाग के 4, वनस्पति विज्ञान के 4, वन्यजीव सुरक्षा एवं वानिकी के 2, इस तरह कुल मिलाकार 86 वैज्ञानिकों का विवरण उनके पारिवारिक जीवन, व्यावसायिक उपलब्धियाँ, विशेष कार्य क्षेत्र, पुरस्कार एवं सम्मान तथा वर्तमान पता सहित दिया है।

सम्भवतः हिन्दी में ऐसी सम्पूर्ण विवरणिका पहली बार प्रकाशित हुई है। इसमें से प्रो० ओम प्रकाश नारायण कल्ला, डॉ० राजेन्द्र सिंह परोदा, डॉ० राम किशोर सक्सेना, डॉ० ईश्वर प्रकाश, प्रो० दौलतसिंह कोठारी, प्रो० एम. जी. के मेनन, प्रो० रामचरण मेहरोत्रा, प्रो० पंचानन माहेश्वरी ऐसे नाम हैं जो बहुविख्यात हैं। इसमें भी कइयों ने हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार प्रसार में अभूतपूर्व योगदान किया है। इस पुस्तक में अधिकांश वैज्ञानिकों के पासपोर्ट आकार के चित्र भी हैं। पुस्तक की छपाई सुन्दर है। पुस्तक पठनीय, संग्रहणीय एवं प्रशंसनीय है।

—शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग,

परिषद् का पृष्ठ

1. जैव-प्रौद्योगिकी व्याख्यानमाला का पंचम व्याख्यान

14 मार्च 2000 को नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, फैजाबाद के सभागार में विज्ञान परिषद प्रयाग ने जैव प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार द्वारा प्रायोजित व्याख्यानमाला के पंचम व्याख्यान का आयोजन किया। यह व्याख्यान राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान लखनऊ के उप निदेशक डॉ० एच० सी० चतुर्वेदी द्वारा ''टिश्यू-कल्चर'' विषय पर दिया गया। डॉ० चतुर्वेदी ने विश्व के अनेक देशों में तथा विशेष रूप से भारत में टिश्यू-कल्चर'' के क्षेत्र में किये गये शोधों के बारे में विस्तार से चर्चा की। स्लाइड प्रोजेक्टर की सहायता से उन्होंने प्रयोगशाला में पौधे के विकास की विधि का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि टिश्यू-कल्चर विधि के प्रयोग से तैयार पौधों की गुणवत्ता तथा उत्पादन में वृद्धि द्वारा अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। भविष्य में इस दिशा में विकास की और अधिक संभावनाएं विद्यमान हैं। डॉ० चतुर्वेदी ने श्रोताओं के प्रश्नों के उत्तर देकर उनकी शंकाओं का समाधान भी किया।

विश्वविद्यालय के कृषि संकाय के डीन डॉ० मौर्य तथा शोध निदेशक डॉ० शर्मा ने भी अपने संबोधनों में टिश्यू-कल्चर के महत्व पर प्रकाश डाला। डॉ० गिरीश पाण्डेय ने कार्यक्रम का संचालन किया। विज्ञान परिषद् की ओर से डॉ० अशोक कुमार गुप्ता ने धन्यवाद ज्ञापित किया। डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय तथा देवव्रत द्विवेदी ने व्यख्यान की सारी व्यवस्था की।

2. डॉ० रत्नाकुमारी स्मृति व्याख्यान

वर्ष 2000 का डॉ० रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यान मोती लाल नेहरू चिकित्सा महाविद्यालय की प्रोफेसर श्रद्धा द्विवेदी ने 29 मार्च को डॉ० नैथानी सभागार में दिया। उनके व्याख्यान का विषय था ''पर्यावरण और स्वास्थ्य''। उन्होंने बताया कि सामान्य रूप से प्रकृति अपनी ओर से पर्यावरण सन्तुलन बनाये रखने का प्रयास करती है किन्तु यह कार्य एक सीमा के अन्दर ही सम्भव है। प्रकृति की होड़ में अपने अल्प लाभ के लिए मनुष्य ने इस संतुलन को बुरी तरह गड़बड़ा दिया है और आज स्वयं उसके दुष्प्रभाव से बुरी तरह पीड़ित है। डॉ० द्विवेदी ने वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, रेडियोधर्मिता प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि की चर्चा करते हुए उनके कारण उत्पन्न होने वाले विविध रोगों की चर्चा की। इस व्याख्यान की अध्यक्षता चिकित्सा महाविद्यालय के प्रिंसिपल डॉ० जैन ने की। विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने श्रोताओं को धन्यवाद दिया। डॉ० ए० के० गुप्ता ने व्याख्यानकर्ता का परिचय दिया और श्री देवव्रत द्विवेदी ने मंचासीन व्यक्तियों को माल्यार्पण किया। इस अवसर पर महाविद्यालय के अनेक शिक्षक, शिक्षिकाएँ तथा आर्य समाज कटरा के प्रतिनिधि उपस्थित थे।

3. जैव-प्रौद्योगिकी विषयक छठाँ व्याख्यान सम्पन्न

6 अप्रैल को कृषि महाविद्यालय नैनी की प्लांट पैथोलाजी विभाग की अध्यक्षा श्रीमती डॉ० प्रमिला गुप्ता ने ''जैव उर्वरक'' विषय पर अपना व्याख्यान दिया। उन्होंने बताया कि पौधों में पोषक तत्वों के संवर्धन के लिए जैव उर्वरक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। पौधों की एकीकृत पोषक वितरण प्रणाली में जैव उर्वरक सबसे महत्वपूर्ण घटक है। यह सस्ता होने के साथ ही पर्यावरण को हानि न पहुँचाने वाला है। उन्होंने योजना निर्माताओं तथा नीति निर्धारकों का आह्वान किया कि वे जैव उर्वरकों के उत्पादन तथा विपणन के विभिन्न पहलुओं पर विचार विमर्श करके ऐसा निर्णय लें जिसमें देशहित निहित हो। जैव उर्वरकों की सफलता के लिए गुणवत्ता पर ध्यान देना आवश्यक है। व्याख्यान की अध्यक्षता शोध निदेशक डॉ० मैथ्यू प्रसाद ने की। धन्यवाद ज्ञापन डॉ० आलोक मिल्टन ने तथा संचालन विज्ञान परिषद् के भवन मंत्री डॉ० ए० के० गुप्ता ने किया। परिषद् की ओर से डॉ० सुनील पाण्डे तथा श्री देवव्रत द्विवेदी भी उपस्थित थे।

–देवव्रत द्विवेदी

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग,

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

ISSN : 0373-1200

जून 2000

यह प्रति 5 रु०

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 86 अंक 3
जून 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत
1,000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् , प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक
अरुण राय
दी कम्प्यूटर कम्पोजर
7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001

विषय सूची

जैव-विविधता का संरक्षण

के० राजमोहन

जैव-विविधता से अभिप्राय विविध रूपों - यानी विभिन्न प्रकार के पौधे, जीव-जन्तु और सूक्ष्म जीव समूह से है। इसमें उनके जीन और वे पारिस्थितिकी प्रणालियाँ भी शामिल हैं, जिनका वे निर्माण करते हैं। इसका सम्बन्ध उन गतिशील प्रक्रियाओं के साथ है जिनमें नए आनुवंशिक रूपान्तरण के होने पर प्रजातियों में बढ़ोत्तरी होती है अथवा उनका विनाश होता है। इस प्रकार जैव-विविधता एक ऐसी अवधारणा है जिसमें सजीव जगत् की परस्पर सम्बद्ध प्रकृति प्रक्रियाओं पर बल दिया जाता है। जैव-विविधता के संरक्षण का अर्थ है प्रकृति द्वारा निर्मित जीवन-समर्थक प्रणाली को हर तरह से बनाए रखना और पारिस्थितिकी विषयक स्थायी विकास के लिए अनिवार्य जीवन-संसाधनों की रक्षा करना।

भारत जैव-विविधता की दृष्टि से असाधारण रूप में समृद्ध है और विश्व के 12 बड़े विविधता केन्द्रों में से के है। भारत में 10 जैव-भौगोलिक अंचल और 25 जीवीय प्रान्त हैं यहाँ विश्व की सभी प्रमुख पारिस्थितिकी प्रणालियां पायी जाती हैं। जैव-विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थलों में मुख्य रूप से पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट और पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्र शामिल हैं। भारत में 45,000 से अधिक पौधों की प्रजातियां और 81,000 जीव-जन्तु प्रजातियां पायी जाती है। विश्व की 7 प्रतिशत वनस्पति प्रजातियां और 6.5 प्रतिशत जीव-जन्तु प्रजातियां भारत में मौजूद हैं, जिनमें 33 प्रतिशत वनस्पति और 62 प्रतिशत जीव-जन्तु प्रजातियां स्थानिक (देशज) हैं।

प्रकृति के संरक्षण का अर्थ है विकास के प्रभावों से प्रकृति की रक्षा करना, जबकि जैव-विविधता संरक्षण के अंतर्गत् खेती योग्य वनस्पति और वनों तथा पालतू और जंगली सभी तरह के जीव-जन्तुओं का संरक्षण शामिल है। जैव-विविधता के तीन विशिष्ट स्तर हैं, हालांकि वे सभी एक जटिल जाल के घटक हैं।

आनुवंशिक विविधता : इसका संबंध प्रजातियों के बीच जीन संबंधी भिन्नता के साथ है। यह भिन्नता समान प्रजातियों के विभिन्न समूहों के बीच और एक ही समूह के अलग-अलग जीवों में हो सकती है। अनुमान लगाया गया है कि विश्व भर के जीव-समूहों में विभिन्न प्रकार के करीब 109 जीन बिखरे हुए हैं। आनुवंशिक विविधता जीव समूहों और पारिस्थितिकी प्रणालियों को ऐसी क्षमता प्रदान करती है जिससे वे परिवर्तित होने पर पुनः स्वस्थ रूप धारण कर सकें।

प्रजाति विविधता : इसका अर्थ है जीवित प्रजातियों में विविधता। इस विविधता के मूल्यांकन और सूचकांक में प्रजातियों की प्रचुरता (एक सीमित क्षेत्र में प्रजातियों की संख्या), प्रजातियों की बहुलता (प्रजातियों के बीच सापेक्षिक संख्या), और जातिवृत्त संबंधी विविधता (विभिन्न प्रजाति समूहों के बीच संबंध सूत्रता)। भूमध्य क्षेत्र धरती के अन्य भागों की तुलना में प्रजातियों की दृष्टि से अधिक समृद्ध है। समुदायों की सुचारु कार्यप्रणाली और सामुदायिक स्तर के गुणों के विकास के लिए प्रजाति विविधता उसी तरह अनिवार्य है जैसे एक जटिल जीव समूह (कॉम्पलेक्स आर्गेनिज्म) के ठीक से कार्य करने के लिए अलग-अलग तरह के डी एन ए अनकोएडिड ऐन्ज़ाइम जरूरी होते हैं।

पारिस्थितिकी विविधता : इसके अंतर्गत् प्राकृतिक वास विविधता सहित पारिस्थितिकी प्रणालियों के प्रकारों और प्रत्येक पारिस्थितिकी में होने वाली पारिस्थितिकी विषयक प्रक्रियाओं के बीच

व्यापक अन्तर शामिल है। प्रत्येक प्रणाली में ऊर्जा-प्रवाह और जल-चक्रों की अलग-अलग पद्धतियाँ होती हैं। यह अनिवार्य तत्त्व जैव-विविधता के सभी मानदंडों में झलकता है।

जैव-विविधता के संरक्षण की आवश्यकता

मानव की गतिविधियों से प्राकृतिक वास ख़तरे में पड़ते जा रहे हैं। वर्षा पर आधारित वनों का निरन्तर सफाया होता जा रहा है और ऐसे में इस बात का पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता कि उन प्रजातियों की सही संख्या कितनी है जिनका विनाश हो रहा है। अतः आज जो शेष है उसकी पारिस्थितिकी और जैव-विविधता का अध्ययन एवं संरक्षण करने की तत्काल आवश्यकता है और यह अंतर्राष्ट्रीय प्राथमिकता का महत्वपूर्ण मुद्दा है। संरक्षण की आवश्यकता विविधता के घटकों के मूल्य में, यानी पारिस्थितिकी प्रणाली की सेवाओं, जैविक संसाधनों और सामाजिक लाभों में निहित है।

जल संसाधनों का संरक्षण : जलग्रहण क्षेत्रों में प्राकृतिक वनस्पति आच्छादन से जलीय चक्र को बनाए रखने, सतही जल पर नियंत्रण और उसे स्थिरता प्रदान करने में मदद मिलती है साथ ही बाढ़ और सूखे जैसी स्थितियों में यह प्रतिरोधक का काम करती है। इससे भूमिगत जल के स्तर को नियमित बनाने और भूमि की स्थिरता बनाए रखने में मदद मिलती है। इस प्रकार प्राकृतिक वास नष्ट होने से भारत में भूमिगत जल के स्तर में कमी आयी है। भारत में पिछले 25 वर्षों में भूमिगत जल का स्तर समूचे पूर्वी तट पर 30 फुट नीचे चला गया है और यह बार-बार बाढ़ और सूखे का कारण हो सकता है।

भूमि संरचना और संचरण : जैव-विविधता भूमि की संरचना बनाए रखने और उसकी नमी धारण करने की क्षमता बढ़ाने तथा पोषक तत्त्वों का स्तर बनाए रखने में भी सहायक है। पारिस्थितिकी संरक्षण के ठोस प्रयासों के अभाव में भूमि कटान और अनाच्छादन की समस्या बढ़ती जा रही है। इस तरह भूमि में लवणता बढ़ोत्तरी, पोषक तत्त्वों का घुलकर बह जाना, ऊपरी परत का क्षरण आदि के कारण भूमि की उत्पादकता का ह्रास हो रहा है। पेड़ भूमि की संरचना में भी मदद करते हैं, उनकी जड़ें पानी को नीचे तक पहुँचाने में सहायक होती हैं और खनिज पोषक तत्त्वों को सतह तक लाती हैं। कार्बनिक कूड़ा-कचरा जीवाणुओं की गतिविधियों को बढ़ाता है।

पोषक तत्त्वों का संग्रह और चक्र

पोषक तत्त्वों की एक चक्र के रूप में पुनरावृत्ति पारिस्थितिकी प्रणाली को बनाए रखने संबंधी एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इसके लिए जैव विविधता अनिवार्य है। मिट्टी में जो जीवाणु होते हैं वे मरे जीव-जन्तुओं को अपघटित करके और कचरे को गलाकर मिट्टी के पोषक तत्त्वों की पुनः पूर्ति करते हैं। नाइट्रेट बैक्टीरिया और नाइट्रीफाइंग बैक्टीरिया का कार्य चूंकि भिन्न होता है, अतः सूक्ष्मजीवों की विविधता भी अनिवार्य है।

प्रदूषण, विघटन और विलयन : मलजल, कूड़ा-करकट, तेल-रिसाव आदि सहित अनेक प्रदूषक ऐसे हैं जो पारिस्थितिकी संतुलन को हानि पहुँचाते हैं। पारिस्थितिकी प्रणाली के विविध घटक, विशेषकर विघटित करने वाले घटक, इस कचरे को अपघटित करके आत्मसात् कर लेते हैं। आर्द्र या नम भूमि प्रदूषकों को अपघटित करके उनका अवशोषण करती है, निस्सारी तत्त्वों को फिल्टर करती है और पोषक तत्त्वों, भारी वस्तुओं को अलग करती है, बी ओ डी कम करती और हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट भी करती है। वातावरण में जो भी प्रदूषक होते हैं वे अक्सर अपने वास्तविक स्रोत से काफी दूर के स्थलों को भी प्रदूषित करते हैं। उत्तर ध्रुवीय और दक्षिण ध्रुवीय क्षेत्रों में सील मछलियों और अन्य जलीय जीव-जन्तुओं पर डी डी टी के हानिकारक प्रभाव के संकेत मिले हैं।

जलवायु स्थिरता : वनस्पति सूक्ष्म और वृहत दोनों स्तरों पर जलवायु को प्रभावित करती है। वनों में बराबर वर्षा होते रहने के कारण यही है कि वहाँ

वातावरण में लगातार जलवाष्प-चक्र चलता रहता है और मंडप-प्रभाव (नैनोपि-इफैक्ट) के जरिए वायुमंडलीय विक्षोभ को बढ़ावा मिलता है। वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में बढ़ोत्तरी के कारण वहाँ तापमान बढ़ जाता है। जनसंख्या वृद्धि सहित मानव-गतिविधियों और वनों तथा पेड़ों की कुल प्रसार के बीच विपरीत अनुपात के कारण भी इसमें वृद्धि होती है। केवल पेड़-पौधे की कार्बन डाइ आक्साइड को अवशोषित कर सकते हैं और ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइऑक्साइड के बीच स्थिर संतुलन बनाए रख सकते हैं। भारतीय विज्ञान संस्थान के कुछ अनुसंधानों में संकेत दिया गया है कि धरती का तापमान बढ़ने से पश्चिमी घाट के जंगलों के प्रकारों में परिवर्तन आ सकता है। धरती के तापमान में ग्रीन हाउस गैसों के निस्सारण से बढ़ोत्तरी हो रही है।

संसाधनों का रखरखाव : अस्तित्व बनाए रखने के लिए जीव-जन्तु और पौधों की परस्पर-सम्बद्धता अनिवार्य है और साथ ही चेतन जगत और आवश्यक संसाधनों के बीच संतुलन बनाए रखना भी जरूरी है। अतः जल और नमी का स्तर तथा ऑक्सीजन-कार्बन डाइऑक्साइड का स्थिर संतुलन बनाए रखने के लिए वनस्पति-आच्छादन अनिवार्य है। जीवन का जाल इतना जटिल है कि पारिस्थितिकी प्रणाली के एक हिस्से को हटाना या उसमें व्यवधान डालना अनेक दूसरे घटकों की कार्यप्रणाली की सुचारुता पर असर डाल सकता है।

जैविक संसाधन

भोजन : विषम पोषक अपने भोजन के लिए स्वपोषक पर निर्भर करता है, जो भोजन का प्राथमिक उत्पादक है। वनस्पति विविधता के संरक्षण से ही विश्व की खाद्य आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है क्योंकि विभिन्न समूहों के लिए पोषण संबंधी मूल्य अलग-अलग होता है। खाद्य फसलों में विविधता से कृषि उत्पादकता में बढ़ोत्तरी की संभावना बढ़ती है।

चिकित्सा : आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति पूरी तरह से वनस्पति विविधता पर निर्भर करती है। विविध पौधों में अनेक प्रकार के ओषधीय गुण होते हैं। पौधों से जो उत्पाद मिलते हैं उनका दायरा अत्यन्त विशाल है, उनमें **सिनकोना** से कुनैन, से लेकर वाइन **टाइलोफोरा** से टाइलोरव्राइन (गंभीर लिम्पाइड ल्यूकेमिआ के उपचार में काम आने वाली दवा) तक का उत्पादन शामिल है। इस प्रकार ओषधीय महत्त्व के नए मिश्रण तलाश करने के लिए संसाधन जुटाने के वास्ते कम से कम प्रकृति का कुछ हिस्सा तो ऐसा छोड़ना ही होगा, जहाँ किसी प्रकार का व्यवधान न डाला जाए। केरल में साइलेंट वैली के जंगलों को उस समय से संरक्षित किया गया जव पता चला कि वहाँ विविध प्रकार की स्थानिक प्रजातियाँ हैं, जिनका ओषधीय महत्त्व है।

जनसंख्या का जलाशय : प्राकृतिक क्षेत्र अनेक जीवन प्रणालियों को आधार प्रदान करते हैं। कुछ प्राकृतिक आवास वन्य जीवों के महत्वपूर्ण चरणों अथवा तत्त्वों का आधार हैं, जिनके विना उनका अस्तित्व कायम नहीं रह सकता। इस प्रकार कच्छ वनस्पति (मैन्ग्रोव) और नम-भूस्थलों (वेट-लैंड्स) को अगर साफ कर दिया गया, तो अनेक ऐसी व्यावसायिक मछली प्रजातियां भी नष्ट हो जाएंगी, जो इस कच्छ वनस्पति का उपयोग प्रजनन स्थलों के रूप में करती हैं। इस प्रकार भारत में सुन्दरवन डेल्टा को सुरक्षित क्षेत्र का दर्जा प्राप्त है, क्योंकि यह क्षेत्र क्रस्टेशियन, जैसे झींगा, मॅडक्रैब्स मछलियों का भंडार बनाए रखने और अनेक अन्य जलीय जीवों और प्रवासी पंछियों के लिए महत्वपूर्ण है।

बाग़बानी और लकड़ी की आवश्यकताएं : नई संकर प्रजातियों का विकास करने और सजावटी पौधों की मांग पूरी करने के लिए जैव-विविधता का संरक्षण अनिवार्य है। लकड़ी एक बुनियादी जरूरत की वस्तु है और इसे जंगल में उगाया जाता है। इमारती लकड़ी उद्योग हमारी आधुनिक अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। कठोर या कड़ी लकड़ी, नरम लकड़ी आदि का उपयोग एकदम भिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है जबकि अन्य प्रकार की लकड़ी, ईंधन, कागज़ बनाने आदि कामों के लिए इस्तेमाल

की जाती है। अतः विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जैव-विविधता बनाए रखना जरूरी है।

सामाजिक लाभ

प्रकृति अध्ययन के लिए सबसे बेहतर प्रयोग-शाला है। प्राकृतिक वातावरण की हू-ब-हू नकल करना संभव नहीं। अतः अनुसंधान शिक्षा और तत्संबंधी विस्तार कार्यों को प्रकृति और उसमें निहित जैव-विविधता की मदद से ही पूरा किया जा सकता है। प्राकृतिक वास में अगर कोई परिवर्तन न किया जाए तो वे प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों का निर्धारण करने के लिए सूचियों का विकास करने में मददगार हो सकते हैं।

मनोरंजन : प्राकृतिक आवासों का सौन्दर्यात्मक महत्व उनकी जैव-विविधता का परिणाम है। किसी भी वन में कोई दो स्थल सभी पहलुओं की दृष्टि से पूरी तरह एक जैसे नहीं हो सकते। अनादि काल से प्रकृति मानव का मनोरंजन करती रही है। प्रकृति के वरदानों और जैव-विविधता ने भारत को आधुनिक विश्व में पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण आकर्षणों में से एक बना दिया है।

सांस्कृतिक मूल्य : इस बात को सिद्ध करने के काफी सबूत हैं कि मानव संस्कृति का विकास पर्यावरण के विकास के साथ हुआ है। इसे देखते हुए मनुष्य के लिए अपनी सांस्कृतिक पहचान कायम रखने के वास्ते जैव-विविधता का संरक्षण अनिवार्य है। क्योंकि यह देखा गया है कि प्रकृति ने लोगों को प्रेरित करने, उनमें सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि जगाने और उन्हें शिक्षा देने में योगदान किया है। प्रकृति हमारी भावात्मक और आध्यात्मिक खुशहाली में भी योगदान करती है। जैव विविधता के संरक्षण में मुख्य बाधाएं इस प्रकार हैं :

जैविक संसाधनों का महत्व पूरी तरह नहीं समझा गया।

अत्यन्त प्रभावशाली एवं धनी व्यापारी तथा विनिर्माता बहुमूल्य संसाधनों का अत्यधिक शोषण करते हैं और देशवासियों को निर्धन बना रहे हैं। अनेक प्रजातियों और पारिस्थितिकी प्रणालियों के बारे में ज्ञान का अभाव है। संरक्षण गतिविधियाँ संकीर्ण दायरे में केन्द्रित हैं।

जैव-विविधता को ख़तरा

गांधी जी ने एक बार कहा था, "प्रकृति मां के पास हमारी सभी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए सब चीजें हैं, लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं।" इस सिद्धान्त पर अमल न करने के कारण समूची जैव- विविधता को ख़तरा पैदा हो गया है। पारिस्थितिकी प्रणाली की रक्षा करने के लिए ठोस प्रयासों का अभाव रहा है। जैसे जैसे आनुवंशिक विविधता नष्ट हो रही है, वैसे ही कृषि, वनों और मवेशी उत्पादन बनाए रखने एवं उसमें बढ़ोत्तरी करने की हमारी क्षमता कम होती जा रही है। जैव-विविधता में कमी के लिए जिम्मेदार प्रमुख घटक इस प्रकार हैं :

अत्यधिक शोषण : अंधाधुंध शिकार से अनेक जीव-जन्तुओं का अस्तित्व ख़तरे में पड़ गया है। केरल के पेरियार अभयारण्य में एक भी टँस्कर (खांगदार हाथी) दिखाई न देना, इसका सबूत है। उनके बहुमूल्य वस्तुओं के लिए जीव-जन्तुओं को शिकार किया जाता है, जैसे हाथी दांत, लोम चर्म, चमड़ा, सींग आदि।

प्राकृतिक वासों का ह्रास : प्रजातियों में प्रजनन की आदत छूट जाने से उनका अस्तित्व ख़तरे में पड़ सकता है। भरतपुर पक्षी अभयारण्य के प्रसिद्ध कोएलादेव राष्ट्रीय उद्यान में 1982 में भैंसों के प्रवेश पर रोक लगाई गई थी। इसका नतीजा यह हुआ कि आर्द्र भूमि में घास बहुत बढ़ गई, जिससे जलीय प्राकृतिक आवास में व्यवधान आया। **पास्पालम डिस्टिचम** नाम के खरपतवार के बहुत बढ़ने से जल के ऊपर एक चटाई सी बिछ जाती है जिससे पक्षियों को भोजन ग्रहण करने में बहुत कठिनाई होती है। साइबेरिया के सारस, बगुला और जलकुक्कट जैसे प्रवासी पक्षियों के आगमन में इसी वजह से काफी कमी आयी है। प्राकृतिक आवासों के विघटित होने के अनेक कारण हैं जिनमें वनों का ह्रास और प्रदूषण प्रमुख हैं।

वनों का ह्रास : भवन निर्माण और खेती भूमि के विस्तार के लिए विस्तृत वन क्षेत्रों का सफाया कर दिया गया है, जिससे स्थानीय जीव-जन्तु बेघर हो गए हैं। बांधों क निर्माण से नदियों और धाराओं के व्यापक हिस्से और पारिस्थितिकी प्रणालियाँ नष्ट हो गई हैं। झूम खेती की वजह से पूर्वोत्तर के जंगलों में काफी कमी आयी है। पहले झूम खेती का चक्र 25 से 30 वर्ष का होता था जबकि आजकल यह घटकर मात्र 5 से 8 वर्ष तक रह गया है, जिससे वनों का ह्रास दुगुना हो गया है। अकेले नागालैंड में झूम खेती वाले क्षेत्रों में हर साल भूमि की सतह पर 4.4 लाख टन उपजाऊ मिट्टी की क्षति होती है। पूर्वोत्तर में 300 वर्ग किलोमीटर से अधिक वनों का सफाया हो चुका है जबकि भारत में कुल 5482 वर्ग किलोमीटर वनों का अनाच्छादन हुआ है।

स्थल प्रदूषण : प्रदूषण पारिस्थितिकी प्रणाली पर दबाव डालता है और संवेदनशील प्रजातियों को कम करता है। ब्रिटेन में वार्न आउट यानी करैल या उल्लू के अस्तित्व को ख़तरा पैदा हो गया है क्योंकि वहाँ कृन्तकनाशी (रोडेन्टिसाइड) का इस्तेमाल बहुत अधिक किया गया है। कीटनाशकों में जो विष की मात्रा होती है उसका असर बायो-मैग्निफिकेशन प्रक्रिया के माध्यम से उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्रों के जीव-जन्तुओं पर भी पड़ रहा है। 6017 वर्ग किलोमीटर के सुन्दरवन क्षेत्र को 1997 में विश्व धरोहर स्थल घोषित किया गया था, उसे भी आज ख़तरे का सामना करना पड़ रहा है। हजारों उच्च कोटि के पेड़ समाप्त हो गए हैं। यहाँ तक कि मिट्टी में जो सूक्ष्म वनस्पति और जीव-जन्तु होते हैं, उन पर प्रदूषण का दुष्प्रभाव पड़ा है। क्योंकि उद्योगों से भारी मात्रा में हानिकारक रसायन छोड़े जा रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय जलवायु परिवर्तन : अगली शताब्दी में धरती के तापमान में बढ़ोत्तरी होने से समुद्र का स्तर एक से दो मीटर बढ़ जाने का अनुमान है। उस समय भारत का क्या मानचित्र होगा, इसका पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि अनेक तटीय क्षेत्र और द्वीप समुद्र में डूब जायेंगे। अक्सर अपनाई जाने वाली प्रजातियों के कारण स्थानीय प्रजातियों का सफाया हो सकता है। परभक्षियों के अभाव के कारण उनकी संख्या स्थानीय प्रजातियों से अधिक हो सकती हैं, जिसे देखते हुए अंततः स्थाई प्रजातियां विलुप्त हो सकती हैं।

जैव-विविधता के ह्रास के प्रभाव

प्रजातियों का अस्तित्व बड़ी तेज़ी से मिटता जा रहा है और इनमें अनेक ऐसी प्रजातियां भी हैं जिनके बारे में दस्तावेज तक तैयार नहीं होता और वे नष्ट हो जाती हैं। प्रजातियों को जब अनेक वर्षों तक देखा नहीं जाता, उसके बाद ही उनका अस्तित्व समाप्त समझा जाता है। भारतीय जीव विज्ञान सर्वेक्षण के हाल के अध्ययन के अनुसार चीता, गुलाबी चोंच वाली बत्तख़ और माउन्टेन क्वेल का अस्तित्व पिछले दशक में ही मिट गया था जबकि भूरे सींग वाले हरिण, दृढ़लोमी खरगोश (हिपसिड हेपर) आदि का अस्तित्व ख़तरे में पड़ा हुआ है। वनस्पति विविधता का भी यही हश्र हुआ है।

आनुवंशिक विविधता का ह्रास : इससे कृषि जोखिम में पड़ गई है। किसानों में संकर किस्मों की बढ़ती लोकप्रियता के कारण उनकी वन्य संबंधी प्रजातियों की उपेक्षा हो रही है, जो अंततः समाप्त हो जाती हैं। धान की कुछ प्रजातियां ऐसी थीं जिन पर ग्रासी स्टंट वाइरस (एक विषाणु) का तत्काल असर पड़ता था। जब इस बीमारी ने महामारी का रूप ले लिया तब इसके वन्य संबंधी की खोज आरंभ हुई ताकि प्रतिरोधी जीन की तलाश की जा सके। केवल **ओइजानिवारा शर्मा** नाम की वन्य प्रजाति में आवश्यक जीन पाए गए। उत्तर प्रदेश से मिली यह प्रजाति आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण में महत्वपूर्ण साबित हुई। विश्वभर में आनुवंशिक दृष्टि से विशेष महत्व के करीब 492 पेड़ों के समूह का अस्तित्व ख़तरे में पड़ा हुआ है।

सांस्कृतिक विविधता की क्षति : आनुवंशिक और पारिस्थितिकी प्रणाली दोनों की ही विविधता की क्षति से सांस्कृतिक विविधता को नुकसान पहुँचता है। जैसे नए दबाव और पद्धतियां सामने आती हैं, तो उनके

फलस्वरूप समग्र परिवर्तन होते हैं, धर्म, मिथक शास्त्र और लोकगीतों में अनेक प्रजातियों के विलुप्त होने की बात सन्निहित है। प्राकृतिक आवास नष्ट किए जाने से अधिक उष्णकटिबंधी स्तरों में ऐसे बड़े जीव-जन्तुओं के विलुप्त होने का अंदेशा अधिक रहता है जिनकी संख्या में बढ़ोत्तरी की दर कम होती है और जिनमें गर्भावधि अधिक होती है। प्राकृतिक आवास में परिवर्तन किए जाने से भी व्यापक विनाश होता है, खासकर स्थानिक प्रजातियाँ बड़ी संख्या में नष्ट हो जाती हैं। ग्रेट ऑक (**अल्का इम्पेनिस**) और स्टेलर्स सी काउ इसके उदाहरण हैं। प्राकृतिक आवास नष्ट होने पर अधिक और निम्न दोनों ही उष्णकटिबंधी स्तरों पर कम संख्या वाली प्रजातियों के विलुप्त होने का ख़तरा अधिक रहता है। उच्च कार्याग्निक मांग वाली बड़ी प्रजातियों, विस्तृत प्राकृतिक वास में रहने वाली प्रजातियों, खास तरह के भोजन और जीवन स्थितियों में रहने वाली प्रजातियों, संकीर्ण प्रसार क्षमता रखने वाली प्रजातियों और धीमी प्रजनन दर वाली प्रजातियों और अनुकूलता की कम क्षमता वाली प्रजातियों आदि के विलुप्त होने की अधिक आशंका रहती है। पारिस्थितिकी प्रणाली एक कठिन जाल है। किसी एक प्रजाति के विलुप्त होने का पारिस्थितिकी में अन्य प्रजातियों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। यह विनाशकारी प्रभाव उस समय सामने आता है जब एक प्रजाति का स्थानीय तौर पर विलुप्त होना अन्य प्रजातियों की संख्या के अनुपात में महत्वपूर्ण बदलाव लाता है। वे प्रजातियां, जिनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति शेष प्राकृतिक समुदाय पर गहरा प्रभाव डालती हैं, को कीस्टोन (मूल गुठली) प्रजाति कहा जाता है। एक कीस्टोन परभक्षी अपने शिकारों की संख्या को सीमित करता है, जबकि अन्योन्याश्रित कीस्टोन परस्पर लाभ की अन्तक्रियाओं में संलग्न रहता है और उसके साझेदारों की विविधता नष्ट होने का असर उस पर भी पड़ता है। सभी पारिस्थितिकी प्रणालियों में कीस्टोन प्रजातियों का समान स्तर नहीं है। एक प्रणाली में यह भूमिका निभाने वाली प्रजाति जरूरी नहीं है कि अन्य पारिस्थितिकी में भी कीस्टोन की भूमिका निभाये। आदर्श कीस्टोन प्रजातियों का निर्धारण प्रत्येक पारिस्थितिकी प्रणाली में करना बड़ा महत्वपूर्ण है, इसके बाद ही संरक्षण के प्रयास किये जाने चाहिए।

जैव-विविधता और आई पी आर

जैव-विविधता से उत्पादों में भी विविधता आती है। रूपान्तरित सूक्ष्मजीव समूह, पौधे और जीव-जन्तुओं का पेटेन्ट किया जा सकता है और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों (आई पी आर) यानी इंटलेक्च्युअल प्रोपर्टी राइट्स) के तहत उन्हें निजी सम्पत्ति बनाया जा सकता है। जैव-विविधता के संरक्षण के लिए किसी प्राकृतिक वास अथवा देश की वनस्पति और जीव जन्तुओं का व्यापक सर्वेक्षण किया जाता । खास विषयों में विशेषज्ञ प्रजाति स्तर पर प्रत्येक समूह की पहचान कर सकते हैं। व्यक्तिगत अध्ययन के जरिए ही यह पहचान संभव है। प्रजातियों की संख्या में कमी अथवा उनके विलुप्त होने के कारणों का पता लगाने के लिए पारिस्थितिकी प्रणाली, उसके घटकों, संभावित ऊर्जा चक्र और पौष्टिक भोजन का प्रवाह, जीव-जन्तु का दर्जा कि वह परभक्षी है या शिकार, उनकी जीवन पद्धति, भोजन की आदत, आदि की समुचित जानकारी जरूरी होती है।

जैविक संसाधनों के आर्थिक योगदान की चर्चा करना भी जरूरी है। धन प्राप्ति के संदर्भ में उनकी सेवाओं का संरक्षण करके ही सही मूल्यांकन किया जा सकता है। यह काम उपभोग के मूल्यांकन के जरिए संभव है, जहाँ प्राकृतिक उत्पादों जैसे ईंधन, चारा आदि के मूल्य पर विचार किया जाता है। गैर उपभोगवादी मूल्यांकन में पारिस्थितिकी प्रणाली के प्रत्यक्ष मूल्य को आंका जाता है। समय-समय पर निगरानी रखना भी जरूरी है। दूर संवेदन प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके धरती के संसाधनों के बारे में विश्वसनीय सूचनाएं दी जाती हैं। आई आर एस एक-सी और आई आर एस दो-डी से भूपरिदृश्यों के विस्तृत चित्र हासिल किए जा सकते हैं और जैविक संभावना मंडलों की विशेषताओं का बखान करने के लिए उनका इस्तेमाल किया जा सकता है। भारत में मात्र 19% भू-भाग वन आच्छादित है।

जैव-विविधता बनाए रखने के उपाय : प्राकृतिक वासों का संरक्षण इस दिशा में प्रथम कदम है। बंजर भूमि पर वृक्षारोपण करके उसका परिष्कार किया जा सकता है। वृक्षों का चयन प्राकृतिक वास के प्रचलित स्वरूप के अनुसार होना चाहिए, इसके संरक्षण के लिए राष्ट्रीय उद्यानों, अभ्यारण्यों और अन्य सुरक्षित क्षेत्रों का निर्माण किया जाना चाहिए। उन औद्योगिक इकाइयों को नियंत्रित किया जाना चाहिए जो बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल करती हैं और उनसे कहा जाना चाहिए कि वे पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करायें। प्रत्येक देश को प्राकृतिक उत्पादों और पर्यावरण संसाधन आधार में होने वाले परिवर्तनों का ब्यौरा तैयार करना चाहिए। स्वस्थाने और अन्य स्थान पर संरक्षण को समान महत्व दिया जाना चाहिए। प्राणि विज्ञान उद्यानों, वनस्पति उद्यानों, बीज बैंकों, पराग और बीजाणु बैंक, और निगरानी के अंतर्गत् प्रजनन आदि अन्य स्थान पर संरक्षण के उदाहरण हैं। जीन बैंक की स्थापना से आनुवंशिकी विविधता की क्षति में काफी कमी आयी है। अगर बीजों को 5% नमी और करीब 20% से तापमान में भंडारित किया जाए तो पौधों में उनकी व्यावहार्यता बनी रहती है। समय समय पर किए गए परीक्षणों में अगर अंकुरण 85 से 90% से नीचे है तो भंडार को खाली करके फिर से संग्रह करना होगा। इसके कुछ उदाहरणों में कोलोराडो विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय बीज भंडार प्रयोगशाला और फिलीपीन्स में अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान शामिल हैं।

प्रजातियों और पारिस्थितिकी प्रणालियों के बारे में ज्ञान का वर्तमान स्तर अपर्याप्त है और अनेक समूहों के प्रसार और जनसंख्या के आकार के बारे में विस्तृत जानकारी हमें नहीं है। विज्ञान के सम्पूर्ण विकास के लिए जीन-समृद्ध और प्रौद्योगिकी सम्पन्न देशों तथा प्रौद्योगिकी विपन्न देशों के बीच प्रौद्योगिकी के विनिमय और भागीदारी को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। पर्यावरण प्रबन्ध तकनीकी और संरक्षण के बारे में विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। देश की वनस्पति और जीव-जन्तुओं के संरक्षण के लिए जैव विविधता विधेयक पारित किया जाना चाहिए। इस बारे में स्पष्ट आम सहमति होनी चाहिए कि क्या, कहाँ कैसे और कितना संरक्षण किया जाना है।

जैव-विविधता मूल्यांकन और प्रबन्ध संबंधी परियोजनाओं को परम राष्ट्रीय आवश्यकता समझते हुए उनके लिए अधिक धन आवंटित किया जाना चाहिए। पर्यावरण की ताज़ा समस्याओं के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करने के लिए संचार माध्यमों का व्यापक उपयोग करना चाहिए। जैविक संसाधनों का स्थाई इस्तेमाल लोगों की भागीदारी के आधार पर किया जाए। स्थानीय समुदायों से परामर्श करके जैव-विविधता सूची तैयार करनी चाहिए, जिससे प्राकृतिक संसाधनों की स्थानीयता का सबूत मिल सके। प्रस्तावित राष्ट्रीय जैव-विविधता विधेयक के मसौदे में इस प्रकार की सूची को वैधानिक दर्जा दिया गया है। इससे हमारी वनस्पति और जीव-जन्तुओं का विदेशियों द्वारा शोषण किए जाने पर भी निगरानी रखी जा सकेगी।

अतः यह जरूरी है कि जीवविज्ञानियों और लोगों को जैव-विविधता और पारिस्थितिकी प्रणाली में उसकी भूमिका के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के प्रयासों और समुचित संसाधन जुटा कर ही मनुष्य मात्र के लिए जैव संसाधनों के स्थाई और दीर्घावधि के लिए उपयोग का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है।

–एस.आर.एफ. भारतीय प्राणि विज्ञान सर्वेक्षण विभाग, पश्चिमी घाट क्षेत्र, कालीकट, केरल

मोटर वाहनों से जल-प्रदूषण

डॉ० हेम चन्द्र जोशी

मोटर वाहनों के धुएँ से वायु-प्रदूषण की चर्चा तो अब आम बात हो चुकी है। परंतु क्या आपने कभी यह भी सोचा है कि एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने वाले, मानव सभ्यता के द्योतक दुपहिया, तिपहिया, चौपहिया तथा छपहिया मोटर वाहन जल-प्रदूषण के भी स्त्रोत बनते जा रहे हैं ? यह सर्वज्ञात है कि इन वाहनों में प्रयुक्त होने वाला ईंधन सीसा युक्त होता है। गाड़ी के धुएँ के साथ यह सीसा बाहर निकल कर वायु में मिश्रित होता है तथा भारी होने के कारण धूल के साथ निरंतर भूमि में बैठता रहता है। बारिश होने पर यही सीसा पानी के साथ बहकर अंततोगत्वा नदी नाले में पहुँचता है तथा जल को प्रदूषित करता है। यह तो हुआ वाहनों द्वारा जल समुदायों का सार्वभौमिक प्रदूषण, जिसका स्वरूप बड़ा ही विस्तृत है। इसे कम करने के लिए ईंधन में सीसे की मात्रा को धीरे-धीरे विभिन्न चरणों में कम किया जा रहा है। दिल्ली जैसे शहरों में, जहाँ कम सीसा युक्त पेट्रोल का प्रयोग पिछले तीन सालों से किया जा रहा है, वायु में सीसे की मात्रा में कमी रिपोर्ट हुई है। परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है वाहनों के रखरखाव के कारण उत्पन्न जल प्रदूषण का नया स्त्रोत। यह स्त्रोत वाहनों की संख्या में लगातार होने वाली वृद्धि के कारण बहुत महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इससे पहले जल प्रदूषण के इस स्त्रोत की कोई गिनती नहीं की जाती थी।

मोटर वाहनों की बढ़ती संख्या : पिछले दशक में आर्थिक सुधारों के फलस्वरूप औद्योगिक विकास में जो परिवर्तन हुआ उसका मोटर वाहनों के निर्माण पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। वर्ष 1995 तथा वर्ष 2000 के आँकड़ों पर दृष्टि डालें तो देश में पिछले पाँच वर्षों में विभिन्न प्रकार के मोटर वाहनों की संख्या में 60-80 % की उल्लेखनीय वृद्धि हुई है (सारणी-1)।

सारणी-1

वर्ष 1995 से वर्ष 2000 तक भारत में विभिन्न प्रकार के मोटर वाहनों की संख्या में वृद्धि

वाहनों की श्रेणी	वाहनों का प्रकार	वाहनों की संख्या (लाख में)	
		1995	2000
श्रेणी-I	भारी छपहिया वाहन, बस, ट्रक इत्यादि	25	39
श्रेणी-II	हल्की गाड़ियां, कार जीप इत्यादि	42	73
श्रेणी-III	दुपहिया, तिपहिया, स्कूटर, टैम्पो इत्यादि	252	419

विभिन्न विश्वप्रसिद्ध विदेशी कम्पनियों जैसे होण्डा, डेवू, फोर्ड, ओपेल इत्यादि के प्रवेश के बाद अब इस संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि होने की संभावना है। यही नहीं देशी, कम्पनियाँ भी अपने नए मॉडल लेकर बाज़ार में आ रही हैं। अवश्य ही इतनी गाड़ियों के रख रखाव के कार्य एवं सफाई सुविधाओं में तद्नुसार वृद्धि हुई है तथा आगे भी इसमें उल्लेखनीय वृद्धि प्रत्याशित है। अन्ना विश्वविद्यालय, तमिलनाडु के अनुसार तमिलनाडु प्रांत में भारी गाड़ियों, जैसे बस, ट्रक इत्यादि, हल्के वाहनों जैसे कार, जीप इत्यादि तथा छोटे दुपहिया व तिपहिया वाहनों जैसे स्कूटर, टैम्पो के रख रखाव केन्द्रों (सर्विस स्टेशनों) की संख्या 450, 750 व 350 है। अकेले दिल्ली में इस प्रकार के सर्विस स्टेशनों की संख्या 2000 से अधिक है। पूरे देश में इस प्रकार के सर्विस स्टेशनों का कोई सर्वेक्षण तो नहीं हुआ है परंतु दिल्ली एवं तमिलनाडु के आँकड़ों के आधार पर इनकी संख्या लगभग 1400-1500 तक होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी-2 सर्विस स्टेशनों के आसपास की प्रदूषक विशेषताएँ

वाहन रखरखाव केन्द्र की श्रेणी	अपस्त्राव का परिमाण लीटर/दिन	कुल अघुलित ठोस मिग्रा./ली.	बी ओ डी मिग्रा./ली.	सी ओ डी मिग्रा./ली.	तेल व ग्रीज मिग्रा./ली.
1. श्रेणी-I भारी वाहन	10,000-15,000	650-4590	85-250	290-920	27-140
2. श्रेणी-II हल्के वाहन	3,000-5,000	650-3200	95-570	570-1640	80-420
3. श्रेणी-III छोटे वाहन	1,000-2,000	610-640	75-160	270-560	14-17

मोटर वाहन रख रखाव में जल का प्रयोग : यों तो हरेक घर में जहाँ भी मोटरकार व्यक्तिगत प्रयोग में लाई जाती है लगभग प्रतिदिन गाड़ियों की धुलाई में जल का प्रयोग होता है। एक गाड़ी की धुलाई में औसतन 20-30 लीटर जल प्रयुक्त होता है। यद्यपि इस धुलाई का परिमाण विस्तृत है पर यह केवल ऊपरी धुलाई है जिसके साथ केवल गाड़ी के ऊपर बैठी धूल तथा कुछ साबुन पानी के साथ पनालों में चला जाता है (जहाँ यह सुविधा उपलब्ध है) या फिर ज़मीन पर बिखर कर धीरे-धीरे सूख जाता है। यह जल किस प्रकार नदियों तथा जल समुदायों तक पहुँचता है यह आकलन कुछ कठिन है परंतु सर्विस स्टेशनों में, जहाँ कि प्रत्येक गाड़ी 3-6 माह में एक बार अवश्य पहुँचती है उनका आकलन कुछ शोधकर्ताओं ने किया है।

प्रत्येक सर्विस स्टेशन में जल का प्रयोग मुख्यतया धुलाई के लिए होता है। इसमें सर्वप्रथम वाहन की जेट द्वारा धुलाई होती है, फिर साबुन द्वारा धुलाई होती है तथा तीसरी बार साबुन निकालने के लिए साधारण धुलाई होती है। इसके बाद गाड़ी के विभिन्न भागों में जहाँ-जहाँ आवश्यक हो ग्रीस तैल इत्यादि लगाया जाता है। अंत में फर्श की धुलाई होती है जिसमें फर्श में बिखरे तेल एवं अन्य अपशिष्ट इन रख-रखाव केन्द्रों में बहिस्राव के साथ नाली में पहुँच जाते हैं।

धुलाई के बाद जल का भौतिक-रासायनिक स्वरूप : विभिन्न वर्गों के सर्विस स्टेशनों में प्रतिदिन लगभग 2000 से 15000 लीटर अपस्त्रावित जल निकलता है जो कि पनालों में गिरता है। ये जल वाहिकाएँ इस गंदे जल को जल समुदायों तक ले जाती हैं। इस जल का विश्लेषण करने के बाद पाया गया है कि इसमें जैव-रासायनिक माँग (बी.ओ.डी.), रासायनिक ऑक्सीजन माँग (सी.ओ.डी.), कुल अघुलित ठोस तथा तैल व ग्रीज की मात्रा मूल जल से कई गुना बढ़ जाती है जो मानक मापदण्डों की सीमा पार कर जाती है। सारणी-2 में विभिन्न वर्गों के सर्विस स्टेशनों से अपस्त्रावित जल की गुणवत्ता दिखलाई गयी है। आँकड़े दर्शाते हैं कि इस तरह का अपस्त्राव सीधे जल समुदायों तक नहीं छोड़ा जा सकता है। इसका उपचार किया जाना आवश्यक है। परंतु क्या इन छोटे-छोटे सर्विस स्टेशनों के पास उपचारण व्यवस्था के लिए पर्याप्त भूमि तथा आर्थिक स्रोत जुटाना संभव होगा ? जो भी हो, यदि मानव सभ्यता के विकास के लिए वाहनों का होना जरूरी है तो मानव समेत समस्त प्राणि जगत के कल्याण के लिए इनके रख-रखाव केन्द्रों के बहिःस्राव की उपचारण व्यवस्था भी अनिवार्य करनी होगी। इसका खर्च इन सर्विस स्टेशनों को या स्थानीय स्वयंशासी निकायों को ही वहन करना होगा। अन्ना विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने इस ओर प्रयास किया है तथा एक उपचार प्रणाली का विकास किया है जो कि संभवतः इस अपस्त्राव का उपचार कर इस जल को स्वीकृत गुणवत्ता के स्तर तक ला सकती है ताकि इस अपस्त्राव को कम से कम स्थानीय नालों में निस्सरित किया जा सके।

—पर्यावरण विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

पर्यावरण

दिलीप भाटिया

कटते पेड़
प्रदूषित नदियां
काला धुआँ
अम्लीय गैसें
फटे प्लास्टिक
सड़ता कचरा
बढ़ती गर्मी
घटती वर्षा
दूषित वायु
उद्योग अपशिष्ट
सभी कह रहे
चीख चीख कर
प्रगतिशील मानव से
सोचो कुछ तो
कहो मत केवल
करो कुछ तो
बचाओगे हमें
नष्ट होने से
वरना अगली पीढ़ी
कोसेगी तुम्हें
ज़हरीले वातावरण में
वह जी तो लेगी
परन्तु घुट-घुट कर
रोग पाल कर
दवाई खा कर
निभाएगी बस
जीने की औपचारिकता
इसलिए
सुनहरे कल के लिए
आज कुछ करना होगा
पर्यावरण को
बचाना होगा।

—टाईप 5/5, अणुकिरण
रावतभाटा-323307
(कोटा-राजस्थान)

पेड़ का वक्तव्य

स्व० वीरेन्द्र मिश्र

पेड़ हूँ मैं, जानता हूँ, सृष्टि के प्राकृत नियम को,
आप मुझको काटते जब, काटते हैं तब स्वयम् को।
नष्ट करके सभ्यताएँ सभ्यता के आवरण में
आप कल्मष भर रहे हैं इस हरे वातावरण में
जल रहे हैं फूल-पत्ते और झाड़ी जल रही है
आपकी कुर्सी बनाने को कुल्हाड़ी चल रही है
द्रौपदी की तरह निर्वसना हुई वनश्री हमारी
कौन-सा संगीत दोगे तोड़कर वंशी हमारी
छोड़कर इंसानियत, संवेदना, लज्जा-शरम को
आप मुझको काटते जब, काटते हैं तब स्वयम् को।
दूर तक मेरी जड़ें हैं, बहुत गहरी माटियों में
नील नदियों के किनारे, पर्वतों पर, घाटियों में
आप क्या जानें कि बादल गीत के कितने घने हैं
मैं वही परिवेश जिसमें जन्मती रामायणें हैं
वे प्रकृति को जानते हैं, वन जिन्हें मुझमें दिखा है
मेघदूतों के बहाने कालिदासों ने लिखा है
और मेरे जंगलों ने जिया है शाकुंतलम को
आप मुझको काटते जब, काटते हैं तब स्वयम् को।
काटना है ? काटिये, कुछ तर्क से,
कुछ व्यंग्य कसकर
पर न मुझको काटिये आलोचकों की तरह हँसकर
खुशबुओं का पेड़ हूँ, मेरी भला औकात क्या है
जानता मैं नहीं, मेरा धर्म क्या है, जात क्या है
आपके पाषाण गृह में कुल्हाड़ों का कारखाना
किंतु मैं रचता कलम या पत्तियों का शामियाना
आप मेरे सामने ही तोड़ते मेरी कलम को
आप मुझको काटते जब, काटते है तब स्वयम् को।
आज मुझको काट लें,
कल बच सकेंगे आप भी क्या ?
सह सकेंगे शीत भीषण !
सह सकेंगे ताप भी क्या ?
पर्वतों पर वृक्ष की डाली पकड़कर, जल प्रलय में,
शरण लेंगे या कि काटेंगे मुझे मेरे निलय में ?
एक पृथ्वी-ग्रह समूचा शेष प्राणी-हीन होगा
सभ्यता की लाश पर यम काल-सा आसीन होगा
लील लेगा तिमिर सत्यम को, शिवम को,
सुंदरम को
आप काटेंगे मुझे जब काट लेंगे तब स्वयम् को।

वायु प्रदूषण और वनस्पति जगत्

डॉ० दीपक कोहली एवं रिम्मी कोहली

मानव के जीवित रहने के लिए जिस तरह भूमि, जल एवं वायु आवश्यक है, उसी तरह वनस्पतियाँ और अन्य प्राणी भी जरूरी हैं। प्राकृतिक जीवन का यह सम्पूर्ण तन्त्र एक विशाल मशीन की भांति है जिसमें छोटे से छोटा पेंच और पुर्जा उसके सुचारु कार्य-संचालन के लिए बड़े अवयवों की भांति ही महत्वपूर्ण हैं। जरा सी खराबी से सारी मशीन और उसकी प्रक्रिया गड़बड़ा जाती है। प्रकृति का भी हर जीव अर्थात् पेड़-पौधे, प्राणी, कीट-पतंगे, पक्षी आदि सभी प्रकृति के आवश्यक एवं अपरिहार्य अंग हैं। किसी भी कारण पौधों या प्राणियों को कोई नुकसान पहुँचता है तो इसके दुष्परिणाम सृष्टि के सारे क्रिया-कलापों में महसूस किये जाते हैं।

वायुमण्डल में पाई जाने वाली समस्त गैसें एक निश्चित अनुपात में होती हैं। कुछ अवांछनीय तत्वों के प्रवेश से इस अनुपात में असन्तुलन आ जाता है तो ये जीवधारियों के लिए घातक हो जाती हैं। इस असन्तुलन को 'वायु-प्रदूषण' की संज्ञा दी गई है। जल और मृदा प्रदूषण की अपेक्षा वायु प्रदूषण विशेष हानिकारक होता है, क्योंकि यह क्षेत्रीय नहीं होता और कोई भी जीव अधिक समय तक श्वांस लेना रोक नहीं सकता है। मनुष्य एवं जन्तुओं की अपेक्षा वनस्पतियाँ वायु प्रदूषण के प्रति कई गुना संवेदनशील होती हैं।

पौधों में हानिकारक प्रभाव डालने वाले विषाक्त पदार्थों में सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड, ओज़ोन, क्लोरीन, फ्लोरीन, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फॉइड, परऑक्सी ऐसिटिल नाइट्रेट तथा धातु युक्त धूम प्रमुख हैं। ये सभी प्रदूषक वनस्पतियों के विकास तथा प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। धूल और धुँआ सूर्य के प्रकाश को पत्तियों तक पहुँचने नहीं देते तथा रन्ध्रों को बन्द कर देते हैं, जिस कारण पौधा कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया अवरुद्ध हो जाती है तथा पौधे भोजन की कमी से सूखने एवं नष्ट होने लगते हैं।

प्रदूषक पौधों को कई प्रकार से क्षति पहुँचाते हैं जिसमें ऊतक-क्षय, पर्ण-हरित की कमी, पत्तियों का जल्दी झड़ जाना एवं पत्तियों के शीघ्र परिपक्व होने से नीचे की ओर मुड़ना प्रमुख हैं। कोशिकाओं के मर जाने से पत्तियों में ऊतकक्षय के लक्षण प्रदर्शित होते हैं। सल्फर डाइऑक्साइड, फ्लोराइड, ओज़ोन, परऑक्सी ऐसिटिल नाइट्रेट आदि प्रदूषक सभी प्रकार के हरे ऊतकों को नुकसान पहुँचाते हैं।

सल्फर डाइऑक्साइड के प्रभाव से चौड़ी पत्तियों में क्रमरहित, द्विपृष्ठी तथा शिराओं तथा शिराओं के मध्य में सफेद से लेकर लाल-भूरा रंग, पर्णहरित की कमी तथा ऊतकक्षय एक साथ देखे जा सकते हैं। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के कारण भी प्रदूषण अपेक्षाकृत अधिक होने से ऐसे ही लक्षण पैदा होते हैं। इसकी अधिक मात्रा होने पर पत्तियाँ जल्दी झड़ने लगती हैं।

फ्लोराइड प्रदूषण के कारण कुछ विशेष प्रकार के लक्षण दिखायी देते हैं। पत्तियों के किनारे जले हुए से तथा रंग लाल होता है। किनारे के ऊतक क्षतिग्रस्त तथा मरे हुए होते हैं और उनके पास पर्णहरित की कमी भी दिकाई देती है। कुछ पौधों में ऊतकक्षय वाले हिस्से सड़कर गिर जाते हैं, पौधों की पत्तियाँ छोटी होने लगती हैं, टहनियाँ अधिक फैलने लगती हैं, फल कम लगते हैं और सड़ने भी लगते हैं।

ओज़ोन से भी पत्तियों पर विशेष प्रकार के लक्षण परिलक्षित होते हैं। ऊपरी सतह पर लाल-भूरे रंग के धब्बे और लाल एवं सफेद क्षेत्र बन जाते हैं।

द्विपृष्ठी ऊतकक्षय के क्षेत्र भी बनते हैं और पत्तियाँ शीघ्र ही परिपक्व हो जाती हैं।

परऑक्सी ऐसीटल नाइट्रेट से मध्योत्तर कोशिकायें नष्ट हो जाती हैं। पत्तियों की नीचे वाली सतह चमकीली, चाँदी या ताँबे के रंग की हो जाती है। कुछ में ये लक्षण दोनों पृष्ठों पर होते हैं। पौधे प्रौढ़ होने लगते हैं।

इन लक्षणों के आधार पर वातावरण में प्रदूषक विशेष की उपस्थिति बताई जा सकती है। जलवायु, मृदा, जीव-जन्तु तथा मनुष्य आदि घटकों के असामान्य होने पर भी पौधे कुछ इस प्रकार के लक्षण प्रदर्शित करते हैं जिससे यह कहना कठिन हो जाता है कि क्षति के लक्षण प्रदूषण के कारण ही हैं। इसलिए प्रदूषण के स्रोत की जानकारी होना आवश्यक है। पौधों में प्रदूषकों की मात्रा के विश्लेषण के आधार पर प्रदूषकों की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। केवल क्षति के लक्षणों के आधार पर निर्णय करना ग़लत हो सकता है।

प्रदूषक पौधों को **दो** प्रकार से प्रभावित करते हैं **प्रत्यक्ष** एवं **अप्रत्यक्ष**। प्रत्यक्ष प्रभाव दो प्रकार के होते हैं- तीक्ष्ण और दीर्घकालीन। तीक्ष्ण क्षति वह है जिसमें कोशिकाभित्तियाँ असन्तुलित हो जाती हैं जिससे कोशिकायें मर जाती हैं। अधिक प्रदूषण में थोड़ी देर रहने पर ये लक्षण 24 घण्टे के भीतर ही देखे जा सकते हैं।

दीर्घकालीन लक्षण पौधों में सामान्य कोशिकीय क्रियाओं के प्रभावित होने पर उत्पन्न होते हैं। पत्तियों में शनैः-शनैः पर्णहरित कम हो जाता है तथा अन्त में वह रंगहीन हो जाती हैं तथा तीक्ष्ण क्षति जैसे लक्षण दिखने लगते हैं। पत्तियों का जल्दी झड़ जाना भी दीर्घकालीन लक्षण है, जो अल्प प्रदूषण में अधिक समय तक रहने से भी दिखाई देता है।

अप्रत्यक्ष प्रभावों में पौधों की कार्यिकी तथा जैव-रासायनिक क्रियाओं में अवांछनीय परिवर्तन आते हैं जिससे पौधों की वृद्धि और विकास रुक जाता है तथा उत्पादन एवं प्रजनन पर भी प्रभाव पड़ता है। पौधे में अन्य कोई लक्षण दिखाई नहीं देते। प्रयोगों से यह भी ज्ञात हुआ है कि पौधों में प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता कम होने लगती है और उपज घट जाती है। पौधों की अन्य कार्यिकी एवं जैव रासायनिक क्रियायें जैसे श्वसन, वाष्पोत्सर्जन, रन्ध्र क्रियाएं तथा एन्जाइमों पर भी वायु प्रदूषकों का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। परागकणों और पराग नलिका के विकास पर भी सल्फर डाइऑक्साइड का बुरा असर पड़ता है।

पौधों पर विभिन्न प्रकार के वायु प्रदूषकों का हानिकारक प्रभाव अलग-अलग प्रकार का होता है, और पौधों की प्रतिक्रियायें भी भिन्न-भिन्न होती हैं :

सल्फर डाइऑक्साइड सल्फरयुक्त प्राकृतिक संसाधनों जैसे कोयला और खनिज तेल जलाने से पैदा होती है। ताप-विद्युत केन्द्र, पेट्रोलियम रिफाइनरी तथा खाद कारखाने इसके मुख्य स्रोत हैं। यह पौधों में मुख्यतः रन्ध्रों द्वारा पादप-ऊतकों में पहुँचती है और कोशिका-भित्ति की सतह पर जल सम्पर्क होने पर इससे गन्धक के अम्ल $H_2 SO_3$ व $H_2 SO_4$ बन जाते हैं। इसलिए कोशिका रस की अम्लीयता बढ़ जाती है। क्लोरोफिल-ए सल्फर डाइ-ऑक्साइड के प्रभाव से फीयोफाइटीन में बदल जाता है। इस क्रिया को 'फीयोफाइटोनाइजेशन' कहते हैं जिसमें पर्णहरित के अणुओं से मैग्नीशियम आयन (Mg^{++}) अलग हो जाते हैं। इससे पौधे की प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता नष्ट हो जाती है।

नाइट्रोजन के ऑक्साइडों में नाइट्रिक ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन डाइऑक्साइड द्वारा पौधों को सबसे ज्यादा हानि पहुँचाई जाती है। ये स्वचालित वाहनों एवं रिफाइनरियों से निकलती हैं। नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड कम सान्द्रता में लम्बे समय तक रहने पर पौधों में किसी प्रकार के लक्षण नहीं दिखते हैं। अधिक सान्द्रता में थोड़े समय में ही हानि के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं। इसके कारण जीव-द्रव्य भार में 25 प्रतिशत की कमी आ जाती है। नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड (NO_2) की अधिक सान्द्रता के परिणाम-

(शेष पृष्ट 18 पर)

वनस्पतियाँ भी झेलती हैं वायु प्रदूषण का प्रभाव

डॉ० विजय कुमार उपाध्याय

हाल तक लोगों की धारणा थी कि वायु प्रदूषण से सिर्फ जन्तु ही प्रभावित होते हैं तथा वनस्पतियों पर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु हाल में किये गये वैज्ञानिक शोधों से जानकारी मिली है कि पेड़-पौधे भी वायु-प्रदूषण से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। सन् 1980 में बर्न हार्ड उलरिच नामक एक जर्मन वैज्ञानिक ने वायुमंडल में पहुँचनेवाले मानवनिर्मित चन्द प्रदूषकों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। उलरिच विगत एक शताब्दी के दौरान सतत् अम्ल वर्षा के कारण जंगली मिट्टी में आनेवाले रासायनिक परिवर्तन पर शोध कर रहा था।

हालाँकि अधिकांश वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि मिट्टी का ऑक्सीकरण मुख्य रूप से वर्षा जल में उपस्थित गंधकाम्ल तथा नाइट्रिक अम्ल के कारण हुआ है, परन्तु इस मिट्टी में उगे पेड़-पौधों में आने वाली क्षति या बीमारी का दोष पूर्ण रूप से मिट्टी में आने वाले रासायनिक परिवर्तन पर ही मढ़ना उचित नहीं है। कुछ वैज्ञानिकों ने अपनी राय प्रकट की है कि अम्ल-वर्षा सीधे ही पत्तों को नुकसान पहुँचाती है। परन्तु इस मत से अधिकांश वैज्ञानिक सहमत नहीं हैं। कुछ ऐसे प्रयोग किये गये जिनमें पेड-पौधों पर अम्लीय घोलों (जो प्राकृतिक अम्ल वर्षा का प्रतिनिधित्व करते थे) का छिड़काव किया गया। इन प्रयोगों से पता चला कि यदि घोल की अम्लता बहुत अधिक नहीं हो तो वनस्पतियों को अम्लीय घोलों से कोई नुकसान नहीं होता है। रासायनिक परिवर्तन से प्रभावित मिट्टी वाले क्षेत्र में सामान्य तौर पर जो अम्लीय वर्षा होती है, उसकी अम्लता साधारण ही कही जा सकती है।

वर्षा को अम्लीय बनाने वाली वायु प्रदूषक गैसों में शामिल हैं सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन के विभिन्न ऑक्साइड। अधिकांश परिस्थितियों में ईंधनों को जलाने के फलस्वरूप ये ही दो प्रदूषक गैसें पैदा होती हैं। ज्वलन के कारण तापमान अधिक होने पर इसके कारण पैदा होनेवाले नाइट्रोजन ऑक्साइड का परिमाण बढ़ता जाता है। ईंधनों के जलने के कारण नाइट्रोजन के जो ऑक्साइड पैदा होते हैं उनमें शामिल हैं नाइट्रिक ऑक्साइड तथा नाइट्रोजन डाइ ऑक्साइड। ईंधनों के जलाने पर शुरू में नाइट्रिक ऑक्साइड पैदा होता है, परन्तु तापमान अधिक होने पर यह नाइट्रिक ऑक्साइड वायुमंडल से कुछ और ऑक्सीजन लेकर नाइट्रोजन डाइऑक्साइड बनाता है। इस प्रकार वायुमंडल में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड बढ़ता जाता है।

इस शताब्दी के दौरान शुरू से अब तक जो अध्ययन किये गये हैं, उनसे पता चलता है कि मानव कार्यकलापों के कारण उत्पन्न होने वाले नाइट्रोजन ऑक्साइड के परिमाण में क्रमिक वृद्धि ही इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में वायु-प्रदूषण का प्रमुख कारण रहा है। ईंधनों के जलने से उत्सर्जित होनेवाले नाइट्रोजन ऑक्साइडों के परिमाण में वृद्धि उन क्षेत्रों में भी जारी है जहाँ प्रदूषण-नियंत्रण संबंधी कदम उठाये जाने के फलस्वरूप उत्सर्जित होने वाले सल्फर डाइऑक्साइड के परिमाण में कुछ कमी आयी है। इसका नतीजा यह हुआ है कि विगत 20 वर्षों के दौरान वायुमंडल में सल्फर डाइऑक्साइड के सापेक्ष नाइट्रोजन ऑक्साइड का परिमाण लगातार बढ़ता गया। इसके फलस्वरूप पेड़-पौधों को काफी नुकसान सहना पड़ा। नाइट्रोजन के विभिन्न ऑक्साइड स्वयं तो विषैले प्रदूषक हैं ही, साथ ही साथ ये वायुमंडल में ओज़ोन उत्पन्न करने में भी योगदान देते हैं। ओज़ोन पेड़-पौधों तथा अन्य सभी जीवधारियों के लिये विषैला माना जाता है। ओज़ोन का उत्पादन तीव्र प्रकाश तथा ऊँचे तापमान द्वारा उत्प्रेरित होता है। यही कारण है कि

ओज़ोन-प्रदूषण ग्रीष्म ऋतु में काफी अधिक बढ़ जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि नाइट्रोजन के ऑक्साइड किस प्रकार वायुमंडल से चल कर पेड़-पौधों में प्रवेश करते हैं ? पेड़-पौधों में नाइट्रोजन ऑक्साइड का प्रवेश दो प्रकार से होता है। कुछ नाइट्रोजन ऑक्साइड वर्षा जल में घुल कर मिट्टी में प्रवेश करता है तथा वहाँ से यह फिर पेड़-पौधों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ नाइट्रोजन ऑक्साइड वायु के साथ मिल कर सीधे ही पेड़-पौधों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है।

ओज़ोन द्वारा पेड़-पौधों को होनेवाली हानि के संबंध में अभी ठीक-ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है। परन्तु ओज़ोन-प्रदूषण द्वारा जड़ी-बूटियों को पहुँचने वाले नुकसान के संबंध में हाल में कुछ प्रमाण मिले हैं। ब्रिटेन में लन्दन स्थित इम्पीरियल कॉलेज के डॉ० नीगेल बेल तथा उनके सहयोगियों द्वारा किये गये शोधों से पता चलता है कि यदि वायुमण्डल के प्रति एक अरब अणुओं में ओज़ोन का परिमाण 100 अणु से अधिक हो जाय तो पेड़-पौधे क्षतिग्रस्त होने लगते हैं। वैसे सामान्य तौर पर वायुमण्डल के प्रति एक अरब अणु में ओज़ोन के 40 अणु पाये जाते हैं।

हालाँकि ओज़ोन-प्रदूषण द्वारा पेड़-पौधे क्षतिग्रस्त होते पाये जाते हैं, परन्तु अभी तक कोई ऐसा वैज्ञानिक प्रयोग विकसित नहीं किया जा सका है जिसके द्वारा क्षतिग्रस्त पौधों की जाँच कर यह बताया जा सके कि यह क्षति ओज़ोन-प्रदूषण के कारण हुई है। अभी वैज्ञानिक लोग ऐसी जाँच विधियों को विकसित करने के प्रयास में लगे हुए हैं। देखें, उन्हें कब तक सफलता प्राप्त होती है। ओज़ोन-प्रदूषण को निर्धारित करना काफी कठिन काम है, क्योंकि ओज़ोन शीघ्र ही विघटित होकर ऑक्सीजन में परिवर्तित हो जाता है तथा पौधे में अपनी उपस्थिति का कोई भी संकेत नहीं छोड़ता।

पेड़-पौधों के विकास की सामान्य प्रक्रिया में प्रकाश संश्लेषण के कारण पत्तों में पैदा होने वाले पोषक पदार्थ (शर्करा इत्यादि) पेड़-पौधों के अन्य भागों में वितरित होते रहते हैं। इसके फलस्वरूप उनका विकास समुचित तथा संतोषजनक ढंग से चलता रहता है। यह वितरण जड़ तथा प्ररोह के सभी भागों में आवश्यकता के अनुरूप होता रहता है। हाल के शोधों से जानकारी मिली है कि वायु को प्रदूषित करने वाले सल्फर डाइऑक्साइड तथा ओज़ोन जैसे पदार्थ पौधों में शर्करा-वितरण की क्रिया में व्यवधान पैदा कर देते हैं। इस व्यवधान के कारण पौधों के ज़मीन के नीचे वाले भाग (जड़) में विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसके विपरीत ज़मीन के ऊपर स्थित पौधे के भाग (तना, पत्ता, इत्यादि अंग) में विकास की गति तीव्र हो जाती है। जड़ की विकास क्रिया अवरुद्ध हो जाने के कारण पौधों को ज़मीन से आवश्यक परिमाण में कुछ पोषक पदार्थ उपलब्ध नहीं हो पाते। इसका नतीजा यह होता है कि पौधे धीरे-धीरे कमजोर होने लगते हैं तथा अन्ततः बहुत कम आयु में ही सूख जाते हैं।

—प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरी कॉलेज,
भागलपुर-813210

व्हिटेकर पुरस्कार-1999

वर्ष 1999 के व्हिटेकर पुरस्कार निम्नलिखित प्रतिभागियों को उनकी प्रविष्टियों के लिये प्रदान किये गये हैं :

1. डॉ० दुर्गादत्त ओझा-: **पुस्तक** : राजस्थान के वैज्ञानिक
2. श्री सुभाष लखेड़ा-: **लेख** : भारतीय मिसाइलों के जनक डॉ० ए. पी. जे. अब्दुल कलाम

—प्रधानमंत्री, विज्ञान
परिषद् प्रयाग

स्वास्थ्य एवं पर्यावरण*

डॉ० श्रद्धा द्विवेदी

पारिभाषित रूप में पर्यावरण शब्द मनुष्य सहित उसकी अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक, रासायनिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग है। हमारे चारों ओर जो भी प्राकृतिक तथा मानव जनित वस्तुएं हैं, वे सब मिलकर पर्यावरण बनाती हैं। वर्तमान के सन्दर्भ में मनुष्य की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति भी इस परिभाषा में जुड़ गई है।

पर्यावरण के मुख्य घटक हैं–

भौतिक : जैसे हवा, पानी, धरती, आवास।

जैविक : जीव-जन्तु सहित पेड़ पौधे और वनस्पतियाँ

सामाजिक : रीतिरिवाज, धर्म, जाति, व्यवसाय, जीवन शैली।

मानव जाति के स्वास्थ्य की कुंजी मुख्यतः पर्यावरण में ही है। हमारी अधिकांश बीमारियों का स्रोत पर्यावरण प्रदूषण में ही मिलेगा। सामान्य रूप से प्रकृति अपनी तरफ से पर्यावरण संतुलन बनाए रखने का प्रयास करती है। यह कार्य एक सीमा के अन्दर ही सम्भव है। प्रकृति की होड़ में, अपने अल्प लाभ के लिए, मनुष्य ने इस संतुलन को बुरी तरह गड़बड़ा दिया है और आज स्वयं उसके दुष्प्रभाव से बड़े स्तर पर पीड़ित है।

हमने विकास के नाम पर बहुत प्रगति की है परन्तु हमें भारी कीमत चुकानी पड़ रही है। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, रेडियोधर्मिता प्रदूषण कागज पर लिखे शब्द नहीं रह गए हैं। यह आज की वास्तविकताएँ हैं और हमारे जीवन पर अपने अस्तित्व की छाप छोड़ रहे हैं।

ग्रीन हाउस इफेक्ट, ओजोन की परत में छेद, तेजाबी वर्षा, मौसम की विषमताएं, भूमि का क्षरण, मरुस्थलों का विस्तार, वायु, जल, भूमि तथा ध्वनि प्रदूषण से सभी को चिन्ता है।

वायु प्रदूषण

विश्व भर में लगभग 1.3 अरब शहरी निवासी निर्धारित मानकों से अधिक दूषित हवा में श्वांस ले रहे हैं। वाहन, कारखानों, ताप-बिजलीघरं द्वारा निकलने वाले कार्बन के कण, धुंआ, खनिज कण तथा अन्य विषैली गैसें वायुमण्डल को प्रदूषित करती हैं। घरों में जलाए जाने वाले ईंधन, कूड़े कचरे का जलाया जाना, कीटनाशक दवाइयों का छिड़काव भी वायु प्रदूषण में सहायता करते हैं। बड़े शहरों में यह प्रदूषण अत्यधिक है तथा कई बीमारियों का सीधा कारण भी है। आज की दिल्ली महानगरी में श्वास लेना दिन भर में 10 सिगरेट पीने के बराबर हानिकारक है। वहाँ हवा में लगभग दो हजार प्रदूषक पाए गए हैं। जाड़ों में शहरों में धूम्र कोहरे (Smog → Smoke + Fog) की समस्या भी गम्भीर होती जा रही है। इसके कारण श्वांस लेने में कठिनाई, दम घुटना तथा मृत्यु भी हो सकती है।

*डॉ० रत्नकुमारी स्मृति व्याख्यान 2000 के रूप में दिया गया भाषण।

वायु प्रदूषण से श्वांस रोग, हृदयरोग, त्वचारोग, एलर्जी आंखों तथा गुर्दों की बीमारी में बहुत वृद्धि हुई है। बच्चों में दमें की बीमारी, एलर्जी, दम घुटने की समस्यायें बढ़ रही हैं। लम्बे समय तक दूषित वायु के कारण फेफड़ों के कैन्सर की सम्भावना भी अधिक हो जाती है। प्रदूषित वायु से अन्य जीवों तथा वनस्पति का भी विनाश होता है जिससे प्राकृतिक संतुलन और अधिक बिगड़ता है।

जल तथा भूमि प्रदूषण

जल तथा भूमि परस्पर जुड़े हुए हैं। धरती के माध्यम से इसे प्रदूषित करने वाले सभी स्रोत अंततोगत्वा जल मार्गों तथा भूमि की सतह में स्थित जल को भी प्रदूषित करते हैं। मानव जाति की अधिकतम बीमारी शुद्ध तथा स्वच्छ पेय जल की अनुपलब्धता से हैं। विश्व भर में करीब एक अरब आबादी स्वच्छ जल से वंचित है और यह मुख्यतः विकासशील देशों की है।

जल प्रदूषण से उत्पन्न अनेक बीमारियों को हम अपने इर्द-गिर्द देखते हैं। अतिसार, पेचिश, पीलिया, पोलियो, हैजा, टाईफाइड, पेट में कीड़े तथा ऐसी कई अन्य बीमारियां दूषित पेय जल के कारण होती है। पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु का एक मुख्य कारण अतिसार है। रोगों का तथा जल भूमि प्रदूषण का एक बड़ा कारण है मल का सही रूप से निस्तारण न होना। विश्व भर में दो अरब जनसंख्या को शौचालय सुविधा उपलब्ध नहीं है। अपने देश में जहाँ 70 प्रतिशत से अधिक आबादी ग्रामीण अंचलों में रहती है, खेतों में मल त्यागने की प्रथा सर्वथा प्रचलित है। शहरों की मलिन बस्ती के निवासी भी खुले मैदानों का प्रयोग करते हैं। त्यौहारों पर पवित्र नदियों में स्नान कर, जल का आचमन करना नदियों में शव को प्रवाह करना भी हमारी कुछ ऐसी परम्पराएँ हैं जो कि स्वास्थ्य के लिए घातक हैं।

उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से, उद्योगों में उपयोग में लाए गए रासायनिक तत्त्वों, से भूमि तथा जल प्रदूषण बढ़ता है तथा इनके कारण कई नई बीमारियां भी पाई जाने लगी हैं।

गन्दे तथा ठहरे हुए जल में मच्छर तेजी से पनपते हैं और उनसे फैलती हैं, मलेरिया, डेंगू, जापानी इन्सेफलाइटिस जैसी बीमारियां।

रेडियोधर्मिता प्रदूषण

इस विनाशकारी प्रदूषण का पहला अनुभव द्वितीय महायुद्ध में हुआ था जब हिरोशिमा तथा नागासाकी पर अणु बम विस्फोट किया गया था। इन शहरों की लगभग पूरी आबादी नष्ट हो गई थी। यह तो था तत्काल प्रभाव, दीर्घकालीन प्रभावों को अभी भी वहाँ के निवासी झेल रहे हैं। यह दोनों विस्फोट सीमित क्षेत्रों में हुए थे तथा इनका प्रभाव भी काफी हद तक सीमित था परन्तु ''चरनोबिल हादसे'' से पूरा विश्व ही प्रभावित हुआ। रूस सहित समस्त यूरोपीय देशों में रेडियोधर्मिता से प्रदूषित वायु तथा जल का प्रभाव पहुँचा। सुदूर अमेरिका में भी रेडियोधर्मिता क्रिया में वृद्धि देखी गई तथा भारत में भी बढ़ी हुई क्रिया नापी गई। रेडियोधर्मिता से समस्त पर्यावरण प्रभावित होता है-- वायु, जल, भूमि, वनस्पति तथा जीव जन्तु। चिन्ता की अधिक बात यह है कि प्रयास करने पर भी, यदि प्रदूषण हो गया है, तो उस पर अल्प समय में नियन्त्रण नहीं पाया जा सकता क्योंकि रेडियोधर्मिता पदार्थों की अर्ध-आयु 60 वर्ष से 35,000 वर्ष तक होती है।

मनुष्य पर तो इस प्रदूषण के प्रभाव अति गम्भीर है। हर प्रकार के कैंसर में वृद्धि होती है, बीमारी से लड़ने की क्षमता में कमी आती है, नपुसंकता हो जाती है, गर्भ में पल रहे शिशु में विकलांगता आ जाती है। जैविक गुणसूत्रों में विषमता (Gentic Mutation) के कारण आने वाली पीढ़ियाँ भी प्रभावित होती हैं।

ध्वनि प्रदूषण

आज का युग ध्वनि प्रदूषण का युग है। घरों, सड़कों तथा कार्यक्षेत्रों में जहाँ जाइए वहीं शोर सुनाई

पड़ता है। एक स्तर तक ध्वनि मधुर लगती है, उससे बढ़ जाने पर वह अप्रिय तथा असहनीय हो जाती है।

ध्वनि प्रदूषण पूर्णतः मानव जनित प्रदूषण है। स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव केवल बहरेपन तक ही सीमित नहीं है। इसका बुरा असर शरीर के अन्य भागों पर भी पड़ता है। बेचैनी, मानसिक तनाव, बढ़ा हुआ रक्तचाप, श्वांस का तेज चलना, दिल का धड़कना, चिड़चिड़ापन, हमेशा थकावट महसूस करना, चक्कर आना, नींद बाधित होना, इन सबमें भी ध्वनि प्रदूषण का योगदान है।

कानों पर दुष्प्रभाव से व्यक्ति बहरा हो जाता है। यदि तेज शोर अल्प समय के लिए हो तो व्यक्ति कुछ समय के लिए बहरा हो जाता है। उदाहरण के लिए जब स्टेशन पर पास से ट्रेन गुजर जाती है तो थोड़ी देर तक कुछ सुनाई नहीं पड़ता, तत्पश्चात् स्थिति सामान्य हो जाती है, परन्तु तेज ध्वनि के वातावरण में लगातार काम करने से व्यक्ति को पूर्ण रूप से वहरा होने का खतरा वना रहता है।

इन ब्राह्य घटकों का प्रभाव निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले सभी व्यक्तियों पर समान रूप से पड़ता है। इसे हम दीर्घ (मैक्रो) पर्यावरण की संज्ञा भी देते हैं। इसके अलावा घरों के अन्दर के सूक्ष्म पर्यावरण का भी परिवार के सदस्यों पर प्रभाव पड़ता है। यह पर्यावरण काफी हद तक आर्थिक स्तर, रहन-सहन के तौर-तरीके तथा जीवन शैली से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए जिस घर में एक भी व्यक्ति सिगरेट पीता है, उस घर के अन्य सदस्यों पर भी सिगरेट के धुएं का प्रतिकूल असर पड़ता है। इसे ''पैसिव स्मोकिंग'' कहा जाता है। सिगरेट पीने से जुड़े फेफड़ों के कैन्सर जैसी भयानक बीमारी के भागीदार ये पैसिव स्मोकर्स भी हो जाते हैं चाहे उन्होंने अपने से सिगरेट का एक कश भी न लिया हो। गर्भ में पल रहे शिशु तथा छोटे बच्चों पर इस पैसिव स्मोकिंग का दुष्प्रभाव अधिक गम्भीर होता है।

हमारे पूर्वज प्राकृतिक संतुलन तथा पर्यावरण के महत्व को समझते थे तथा यह संतुलन न विगड़े व समस्त जगत मंगलमय हो इसकी कामना करते थे और ऐसा बनाए रखने के लिए आवश्यक कार्यों का उल्लेख भी उन्होंने किया है। इस अमूल्य धरोहर को हमने विकास के नाम पर अनदेखा किया है और स्वार्थवश क्षणिक सांसारिक सुख साधनों को जुटाने तथा उनका उपभोग करने में जुट गए। समस्त ब्रह्माण्ड या सृष्टि को एक लय व एक रूप में देखने की अपेक्षा खंड में देखने लगे और पृथ्वी का दोहन करते रहे। मानवता के इन विनाशकारी कृत्यों को कुछ बुद्धिजीवियों ने पहचाना तथा इसके दूरगामी परिणामों के भयानक दृश्य की कल्पना मात्र से विचलित हो उठे। और ऐसे बुद्धिजीवियों के प्रयासों से सृजन हुआ पृथ्वी के संरक्षण के उपायों का। विकास के साथ साथ प्रकृति का संरक्षण तथा संतुलन बनाए रखने का दायित्व व्यक्ति विशेष का ही नहीं परन्तु सभी विकसित तथा विकासशील देशों का है। विकसित देशों ने जहाँ प्राकृतिक संसाधनों को जमकर लूटा वहीं आज उन्होंने पर्यावरण संरक्षण के ठोस कदम भी उठाए हैं।

पर्यावरण संरक्षण कानूनों का सख्ती से पालन करके वायु प्रदूषण, जल तथा भूमि प्रदूषण पर नियन्त्रण भी पाया है। वायु प्रदूषण को कम करने के लिए पेड़ पौधे लगाकर ''ग्रीन वेल्ट'' (हरित क्षेत्र) वनाए रखना, वाहनों से निकलते धुएं पर नियन्त्रण, उद्योगों को अन्य जगह विस्थापित करना बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। रातों-रात तो प्रदूषण पर उसके दुष्प्रभाव पर नियन्त्रण तो नहीं पाया जा सकता पर प्रयास करने से कम तो किया ही जा सकता है।

सभी को स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय समन्वित जल संसाधन आयोग का गठन किया गया है। राष्ट्रीय जल नीति में जल ग्रहण क्षेत्रों का समन्वित विकास, भूमि पर तथा भूमिगत जल का संरक्षण एवं सम्पूर्ण उपलब्ध जल को प्रदूषण से बचाने का लक्ष्य रखा गया है। राष्ट्रीय वन नीति में वन अथवा वृक्षावरण के अन्तर्गत देश की कुल भूमि क्षेत्र का कम से कम एक तिहाई हिस्सा लाने का लक्ष्य रखा गया है। यह सब पर्यावरण संरक्षण के ठोस कदम हैं जिन्हें यदि सही रूप से अपनाया गया तो प्राकृतिक संतुलन पुनः स्थापित करने में वहुत सहायता मिलेगी।

स्कूल, अस्पताल, रिहायशी क्षेत्रों के आस-पास साइलेन्स जोन की स्थापना तथा उनके अनुपालन से, सार्वजनिक लाउडस्पीकर आदि पर नियन्त्रण से तथा ध्वनि प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों की विस्थापना करके इस गम्भीर समस्या का भी निदान करने का प्रयास किया जा सकता है।

मनुष्य का अस्तित्व पर्यावरणीय स्थिरता और प्राकृतिक संतुलन के रख-रखाव पर निर्भर करता है। इस धरती पर प्रदूषण समाप्त कर हम आने वाली पीढ़ियों को एक सृजनात्मक राह दिखायें जिससे वे शुद्ध वायु, स्वच्छ जल, नैसर्गिक सुषमा, सौन्दर्य एवं रमणीयता से परिपूर्ण पृथ्वी पर विचरण कर सके तथा :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत।।

के साथ-साथ यह भी कामना कर सकें :

ॐ द्यौ शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथ्वी शान्ति रापः शान्तिः रोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिः विश्वे देवाः शान्तिः ब्रह्म शान्तिः शान्ति रेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

—प्रोफेसर एस. पी. एम. विभाग,
मोती लाल नेहरू मेडिकल कॉलेज,
इलाहाबाद

(पृष्ठ 12 का शेष)

स्वरूप पौधों की पत्तियों की ऊपरी सतह पानी को सोखकर फूल जाती है तथा कुछ समय पश्चात् ऊतकक्षय हो जाता है।

प्रकाश-रासायनिक प्रदूषकों में **ओज़ोन** सबसे विषैला प्रदूषक है। प्राथमिक प्रदूषक सूर्य के प्रकाश एवं आर्द्रता की उपस्थिति में आपस में क्रिया कर ओज़ोन का निर्माण करते हैं। ओज़ोन के प्रभाव से पत्तियों के रन्ध्र धीरे-धीरे बन्द होने लगते हैं और उनके गैस-विनिमय पर प्रभाव पड़ता है। रन्ध्र पूर्णतः बन्द होने के पूर्व ही ओज़ोन की अधिक मात्रा ऊतकों तक पहुँच जाती है। ओज़ोन की ऑक्सीकरण क्षमता अधिक होने से भी पादप क्रियायें प्रभावित होती हैं।

परऑक्सी-नाइट्रेट द्वितीयक प्रदूषक है, जो स्वचालित वाहनों द्वारा उत्पन्न प्राथमिक प्रदूषकों के वायुमण्डल में कुछ रासायनिक एवं प्रकाश-रासायनिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। पौधों की पुरानी पत्तियों की अपेक्षा नई पत्तियाँ इसके प्रति संवेदनहीन होती हैं।

निलम्बित कणाकार के उत्सर्जन को वनस्पति के सन्दर्भ में हानिकारक नहीं माना जाता है जब तक ये अत्यधिक विषैले न हों तथा इनका अत्यधिक जमाव न हो। स्रोत के निकट सीमेंट फैक्टरी द्वारा उत्सर्जित क्षारीय कणाकार पौधों को क्षति पहुँचाता है। सीमेन्ट के कण पत्तियों के ऊपर मोटी परत बना लेते हैं जिस कारण प्रकाश के अवशोषण में बाधा पहुँचती है जिसके फलस्वरूप स्टार्च का निर्माण नहीं हो पाता। चूने के कण भी पत्तियों के ऊपर कड़ा आवरण बना लेते हैं, जिस कारण प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में बाधा पहुँचती है और पौधा अपनी क्षमता एवं दृढ़ता खो देता है। इसके अतिरिक्त **धूल के कण** भी पत्तियों के रन्ध्रों को बन्द कर देते हैं तथा पत्तियों में ऊतक-क्षय के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। मार्गों के किनारे पायी जाने वाली वनस्पतियों में लेड की उपस्थिति के लक्षण आसानी से दिखायी पड़ते हैं।

गैसीय फ्लोराइड की अपेक्षा कणाकार फ्लोराइड कम हानिकारक होता है। फ्लोराइड कणाकार आसानी से ऊतक में नहीं पहुँच पाते किन्तु पत्तियों में इनका जमाव चरने वाले पशुओं के लिए हानिकारक होता है।

—प्र० व० स, उ० प्र० सचिवालय
ई-2652, राजाजीपुरम् (निकट पुराना टैम्पो स्टैंड)
लखनऊ -226017

पर्यावरणीय सुरक्षा

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

माता पृथ्वी पुत्रोऽहं पृथिव्याः-

अर्थात् पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। इसी वाक्य की अनुगूँज 'पृथ्वी दिवस' में सुनी जा सकती है। पृथ्वी को हम भूमि और अधिक सरल रूप में मिट्टी कहते हैं। यदि मिट्टी को ठीक से रखा जायेगा तो यह अन्न और ईंधन उत्पन्न करेगी, हमें शरण प्रदान करेगी और हमारे चारों ओर सौन्दर्य बिखेरेगी। यदि इसका दुरुपयोग होगा तो यह मृत हो जावेगी और अपने साथ सम्पूर्ण मानव जाति को निगल जावेगी।

पृथ्वी हमारे पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण घटक है। अन्य दो घटक जल तथा वायु हैं। इन तीनों घटकों में से यदि किसी एक में कोई विकार आता है- यानी प्रदूषण उत्पन्न होता है तो शेष दो घटक प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते। पृथ्वी (स्थल या भूमि) के विषय में लापरवाही सह्य नहीं, उसकी सुरक्षा आवश्यक है क्योंकि उसके स्वास्थ्य में रंच भी गड़बड़ी आई नहीं कि मनुष्य का अस्तित्व ख़तरे में पड़ सकता है।

सम्पूर्ण विश्व का भौगोलिक क्षेत्रफल 13,390 मिलियन हेक्टेयर है जिसके 10% क्षेत्रफल में खेती की जाती है। हमारे देश का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का 2.5% है किन्तु कृषि प्रधान होने से इसके आधे क्षेत्रफल में खेती की जाती है। देश की जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही है उसके फलस्वरूप भूमि और मनुष्य का अनुपात लगातार घट रहा है। 1950 में यह अनुपात 0.34 था जो घटते-घटते इस समय 0.14 पर पहुँच चुका है और अगले 25 वर्षों में यह 0.10 हो जावेगा। उल्लेख्य है कि देश में प्रतिवर्ष खाने वालों की संख्या में 2 करोड़ की वृद्धि हो रही है और वह दिन दूर नहीं जब यह चीन से भी बाजी मार ले जावेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि 'हरित क्रान्ति' के फलस्वरूप विगत 40 वर्षों में खाद्यान्न उत्पादन में **चार** गुनी वृद्धि हुई है किन्तु इसके कारण पर्यावरण तथा भूमि को काफी मूल्य चुकाना पड़ा है। जिन-जिन साधनों के बल पर कृषीय उत्पादन में क्रान्ति आई थी वे ही उलट कर पर्यावरण के लिए घातक बन गये हैं। इस क्रान्ति की चपेट में मृदा उर्वरता एवं मृदा संरचना की जिस कदर उपेक्षा हुई है उससे पर्याप्त मात्रा में ऊसरों या मरुस्थलों का जन्म हुआ है। जीवनाशी रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग से मिट्टी के सूक्ष्मजीवों पर दुष्प्रभाव पड़ा है और खाद्य पदार्थ प्रदूषित हुए हैं जिससे नाना प्रकार के रोगों का जन्म हुआ है। इतना ही नहीं, नई किस्म की उन्नत फ़सलों के उपजाने के लिए सिंचाई हेतु भौमजल का जिस तेजी से दोहन हुआ है वह भी कम चिन्ता का विषय नहीं है।

आम जनता में यह धारणा बन चुकी है कि खाद्यान्नों के उत्पादन हेतु **उर्वरक** तथा **जीवनाशी रसायन** अनिवार्य हैं। वह खाद्यान्न के प्रति आश्वस्तता को पर्यावरणीय सुरक्षा से अधिक महत्व देती है। वह यह भूल जाती है कि खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय सुरक्षा में चोली दामन का संबंध है। नये-नये उर्वरकों, अधिक उपज देने वाली नवीन प्रजातियों तथा पादप-रक्षी जीवनाशी रसायनों के प्रयोग से मिट्टी, जल, वायु तथा जीनी आधार की अपूरणीय क्षति हुई है। इक्कीसवीं शती के प्रारम्भ में ही एक अरब भारत-वासियों के लिए कम से कम 240 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पन्न करना होगा जिसके लिए भूमि तथा जल का जिस तरह से दोहन या शोषण किया जावेगा उससे पर्यावरण के टिकाऊपने पर प्रश्नचिह्न लगे बिना नहीं रह सकता।

पहले हम **मिट्टी** को ले रहे हैं। भूमि अपरदन से प्रतिवर्ष 5330 मिलियन टन ऊपरी मिट्टी की हानि होती है- यानी हर हेक्टेयर भूमि से 16.35 टन मिट्टी निकल जाती है जिसका 60% अपने स्थान से बहकर दूसरे स्थान तक चला जाता है, 10% जलाशयों की तली में बैठ जाता है और 30% बहते-वहते समुद्र में पहुँच जाता है। यदि इस मिट्टी में केवल कण ही होते तो भी गनीमत थी किन्तु इन कणों में अधिशोषित नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटैशियम नामक तीन तत्व, जो मृदा उर्वरता के मूलाधार हैं, बह जाते हैं। यह मृदा उर्वरता की बहुत ही बड़ी क्षति है। इसी प्रकार भूमि पर अधिक चराई होने, जंगलों के कटने, यातायात के लिए मार्ग बनाने एवं रिहायशी बस्तियों के लिए उपजाऊ क्षेत्रों के प्रयोग होने, नदियों में बाढ़े आने और पहाड़ी क्षेत्रों में भूस्खलन होने, से भूमि की क्षति होती रहती है। इतने पर भी आदिम जनजातियाँ कम से कम 50 लाख हेक्टेयर में झूमिंग खेती करती हैं जिससे भूमि अपरदन को बढ़ावा मिलता है। अनुमान है कि विभिन्न प्रकार के अपरदनों के फलस्वरूप 144 मिलियन हेक्टेयर भूमि प्रभावित होती है। राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक के काफी भू-भाग वायु अपरदन के शिकार बनते रहते हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों में भी व्यापक भूमि अपरदन होता है।

अनुमान है कि 2025 तक हमें 300 मिलियन टन खाद्यान्नों की जरूरत पड़ेगी जिसके लिए 45 मिलियन टन अतिरिक्त पोषक तत्वों की जुगाड़ कृत्रिम उर्वरकों तथा खादों के द्वारा करनी होगी। **खादों** से तात्पर्य है कार्बनिक स्त्रोतों से तैयार खादें। इसके अन्तर्गत गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मीकम्पोस्ट आते हैं। हमारे देश में प्रतिवर्ष 100-115 मिलियन टन फ़सलों के अवशेष निकलते हैं जिनका अधिकांश जला दिया जाता है या उपेक्षित पड़ा रहने दिया जाता है। यदि इनका उपयोग कार्बनिक खाद के रूप में किया जाय तो क्रमशः 1.13,1.41 तथा 3.54 मिलियन टन नाइट्रोजन, फॉस्फोरिक अम्ल तथा पोटाश मिल सकते हैं जो पादप पोषण के लिए उपयोगी हैं। यदि शहरों के कूड़ा-करकट तथा अवमल को कार्बनिक खाद या कम्पोस्ट में परिणित किया जा सके तो इस तरह 7.1 मिलियन टन नाइट्रोजन, 3.0 मिलियन टन फॉस्फोरिक अम्ल तथा 7.6 मिलियन टन पोटाश मिल सकता है।

कृत्रिम उर्वरकों में केवल नाइट्रोजनी उर्वरकों पर प्रारम्भ से विशेष बल दिया जा रहा है। यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि इन उर्वरकों से अन्ततोगत्वा भूमि में अम्लता उत्पन्न होती है, अधिक उपज दिलाने के कारण भूमि में से सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की अधिक मात्रा निष्कासित कराने के कारण ये इन तत्वों की न्यूनता उत्पन्न कराते हैं।

हमारे देश में 1951-52 में कृत्रिम उर्वरकों का उत्पादन तथा प्रयोग नाममात्र को था किन्तु धीरे-धीरे उत्पादन और प्रयोग में वृद्धि हुई है फलस्वरूप जहाँ 1951-52 में प्रति हेक्टेयर केवल 0.5 किग्रा० उर्वरक का उपयोग होता था वहीं अब 90 किलोग्राम होता है। यह सोचना कि डाली गई उर्वरक की पूरी मात्रा फ़सलों द्वारा गृहीत हो जाती होगी, भ्रामक है। उर्वरकों की कम से कम आधी मात्रा मिट्टी में रह जाती है। इस तरह नाइट्रोजनी उर्वरकों में से नाइट्रेट और फॉस्फेटी उर्वरकों में से फास्फेट की प्रचुर मात्राएँ विलेय अवस्था में जलस्त्रोतों में मिलती रहती हैं। धान, गन्ना, मक्का, कपास, अंगूर जैसी फ़सलों में उर्वरकों की सर्वाधिक मात्रा प्रयुक्त की जाती है अतः इन फसलों के कारण पर्यावरण की गुणवत्ता प्रभावित होती है और मिट्टी के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

नाइट्रोजनी उर्वरकों में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला उर्वरक **यूरिया** है। यूरिया के प्रयोग से इसका वाष्पीकरण, निक्षालन तथा विनाइट्रीकरण होता है जिससे नाइट्रोजन-क्षति होती है। वाष्पीकरण से अमोनिया गैस बनती है जो वायुमण्डल में पहुँचकर नाइट्रिक अम्ल बनाती है। यूरिया जब नाइट्रेट में परिणित होता है तो विलेय नाइट्रेट भौम-जल में पहुँच जाता है और उसे प्रदूषित करता है। विनाइट्रीकरण से नाइट्रस ऑक्साइड बनते हैं जो ओज़ोन स्तर को क्षति पहुँचाते हैं। कई वार कम गहरे कुओं में नाइट्रेट की अधिक मात्रा पाई जाती है। यदि यह मात्रा 10

मिग्रा./ली. से अधिक हो तो कुओं का पानी पीने से बच्चों को 'नीले रक्त की बीमारी' (मेटहीमोग्लोबिनीमिया) हो जाती है। इतना ही नहीं, अधिक नाइट्रेटयुक्त जल पीने से कैंसर होने की भी संभावना बनी रहती है। राजस्थान के अनेक जिलों में नाइट्रेट की अत्युच्च सान्द्रता (530 मिग्रा./ली.) सूचित की गई है। पंजाब के नलकूपों के जल में प्रति लीटर 17-18 मिग्रा. नाइट्रेट पाया गया है। इसका कारण आसपास के स्थानों में नाइट्रोजनी उर्वरकों का अधिक प्रयोग है। इस तरह अधिक उपज के लिए अधिक मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग भूमि के स्वास्थ्य के लिए और पर्यावरण सुरक्षा के लिए अहितकर सिद्ध हो सकता है। फिर भी जीवनाशी रसायनों की तुलना में उर्वरकों से अपेक्षतया कम क्षति की सम्भावना है।

सारणी-1

विभिन्न कारणों से देश में मृदा प्रदूषण

मिट्टी को प्रदूषित करने वाले कारक	प्रदूषित भूमि (लाख हेक्टेयर)	प्रतिशत
पानी और हवा से गंभीर भूमिक्षरण	1500	85.7
झूम खेती	30	1.7
क्षारीयता और लवणीयता	70	4.0
जलभराव	60	3.4

अधिक खाद्यान्न उत्पादन के लिए **जीवनाशी रसायनों** का प्रयोग बढ़ा है। 1950-51 में हमारे देश में कुल 2350 टन जीवनाशियों का प्रयोग होता था वहीं 1988-89 में यह मात्रा बढ़कर 76000 टन हो गई। 1970 के पूर्व अधिकांश जीवनाशियों का आयात होता था किन्तु इस समय देश में 400 इकाइयों द्वारा 55 प्रकार के जीवनाशी रसायन तैयार किये जा रहे हैं। फलस्वरूप दक्षिण एशियाई देशों में भारत जीवनाशियों का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता बन चुका है। सम्प्रति प्रति हेक्टेयर 0.03 किलोग्राम जीवनाशी का प्रयोग किया जा रहा है। यह मात्रा संयुक्त राज्य अमेरिका या जापान की तुलना में काफी कम है। (इन देशों में प्रति हेक्टेयर क्रमशः 1 किग्रा. तथा 10 किलोग्राम जीवनाशी प्रयुक्त होते हैं) कहने के लिए देश में जीवनाशियों की प्रयुक्त मात्रा कम है किन्तु इनका उपयोग विभिन्न प्रदेशों में एकसमान नहीं होता। वर्षाआश्रित भूभागों में इनका न्यूनतम प्रयोग किया जाता है जबकि सिंचित प्रदेशों में अधिक प्रयोग होता है। इतना ही नहीं, जीवनाशियों की सारी मात्रा कुछेक फसलों में ही डाली जाती है। उदाहरणार्थ कपास में कुल मात्रा का 54%, धान में 17% तथा शाक सब्ज़ियों में 13% का प्रयोग होता है। गन्ना, तेलहनी या दलहनी फ़सलों अथवा गेहूँ की फसलों में इन जीवनाशी रसायनों का प्रयोग नाममात्र का होता है। हमारे देश में आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु जीवनाशी रसायनों के प्रयोग में सबसे आगे हैं। विगत दस वर्षों में शाकपातनाशी रसायनों के प्रयोग में वृद्धि हुई है। 1990 में 3000 टन की तुलना में इस समय 4300 टन शाकपातनाशी प्रयुक्त हो रहे हैं। ये रसायन स्थायी होने के कारण मिट्टी में संचित होते रहते हैं और मृदा के सूक्ष्मजीवों पर दुष्प्रभाव डालते हैं।

सारणी-2

कुछ चुने हुए जीवनाशियों का दीर्घस्थायित्व

क्लोरिनेटेड हाइड्रोकार्बन कीटनाशी (डी० डी० टी०, बी एच सी, क्लोरडेन, ऐल्ड्रिन आदि)	2-5 वर्ष
ट्रायज़ीन खरपतवारनाशी	1-2 वर्ष
आर्गेनोफॉस्फेट कीटनाशी (मैलाथियान आदि)	1-2 वर्ष सप्ताह

यह भ्रम पालना ठीक नहीं कि जीवनाशी रसायनों के प्रयोग से फ़सलों के रोगों तथा शत्रुओं से रक्षा हो सकेगी। इसका दूसरा पहलू भी है। इनके लगातार उपयोग से प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ता है और पारितन्त्र को धक्का लगता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है मृदा, जल, पर्यावरण तथा खाद्य पदार्थों में जीवनाशी अवशेषों की उपस्थिति। इससे पर्यावरणीय सुरक्षा बाधित हुई है। ये जीवनाशी पशुओं और मनुष्यों के ऐडिपोज ऊतकों में संचित होते रहते हैं और कुछ काल बाद उनके स्वास्थ्य के लिए गम्भीर संकट उत्पन्न कर देते हैं। यदि प्रयुक्त होने वाले जीवनाशी रसायन

केवल लक्ष्य शत्रुओं का विनाश करते होते तो चिन्ता की बात नहीं थी किन्तु वे अलक्ष्य सूक्ष्मजीवों तथा मिट्टी में रहने वाले अन्य उपयोगी जन्तुओं पर प्रहार करते हैं। वे पौधों द्वारा शोषित होते हैं, घुलकर जल स्त्रोतों को दूषित करते हैं और जल में निवास करने वाले प्लैंकटन, मत्स्य तथा अन्य जीवों को संदूषित करते हैं। अन्नों में संचित जीवनाशियों के अवशेष मनुष्य के शरीर में एकत्र होते रहते हैं जो कालान्तर में कैंसर उत्पन्न कर सकते हैं, कोलेस्टेरॉल की वृद्धि कर सकते हैं, शिशु मृत्यु दर बढ़ा सकते हैं और अनेक आनुवंशिक दोष उत्पन्न कर सकते हैं। इन जीवनाशियों के अवशेष जल, थल तथा वायु में पाये गये हैं। दूध के माध्यम से डी० डी० टी० की प्रचुर मात्रा मनुष्य के शरीर में पहुँचती है। आन्ध्र प्रदेश, पंजाब तथा गुजरात में वयस्कों में प्रतिदिन 22-32 माइक्रोग्राम डी० डी० टी० प्रविष्ट होती है। टमाटर, प्याज, तेल के द्वारा मोनोक्रोटोफॉस तथा मछली के माध्यम से एंडोसल्फॉन जीवनाशी प्रवेश करते हैं। इंडोनेशिया, बंगलादेश तथा अन्य अनेक देशों में भी यही स्थिति है। इसी दुष्परिणाम को ध्यान में रखकर कुछ जीवनाशियों के प्रयोग पर **प्रतिबन्ध** लगाया गया है।

आइये, **अब जल की स्थिति** पर विचार करें। अनुमान है कि विश्व के कुल सिंचित क्षेत्रफल का 20% अकेले भारत में है। (यह 48 मिलियन हेक्टेयर है)। दुर्भाग्यवश भारत अपने सम्पूर्ण जल संसाधनों का 93% कृषिकार्यों में व्यवहृत करता है जबकि जापान तथा संयुक्त राज्य अमेरिका अपने जल का केवल 50 तथा 40% जल कृषि कार्यों में प्रयुक्त करते हैं। विडम्बना यह भी है कि भारत में लगभग 8.5 मिलियन हेक्टेयर भूमि जल भराव से ग्रस्त है। जल भराव के साथ ही जल संसाधन बुरी तरह से प्रदूषित हो चुके हैं। अनेक भागों में जल में फ्लोरीन तथा आर्सेनिक की प्रचुर मात्राएँ पायी जाती हैं। जब यह जल भूमि की सिंचाई के लिए प्रयुक्त होता है तो मिट्टी प्रदूषित होती है और पीने पर नाना प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। जल जैसा महत्वपूर्ण घटक संकटाकीर्ण है।

उद्योगों ने तो जीना दूभर कर दिया है। बड़ी-बड़ी फैक्टरियों से निकले बहिःस्त्रावों तथा ऊँची-ऊँची चिमनियों से निकली गैसों से भूमि, जल तथा वायुमण्डल प्रदूषित होते रहे हैं। इससे पशु तथा मनुष्य स्वास्थ्य को हानि पहुँची है और मिट्टी भी प्रदूषित हुई है। चिमनियों से निकली गैसों से भूमि, जल तथा वायुमण्डल प्रदूषित होते रहे हैं। इससे पशु तथा मनुष्य स्वास्थ्य को हानि पहुँची है और मिट्टी भी प्रदूषित हुई है। चिमनियों से निकली गैसों में कार्बन मोनो-ऑक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड मुख्य हैं। तरल बहिःस्त्रावों में अनेक विषैली भारी धातुएँ मिली रहती हैं। यदि इस जल से मिट्टियों को सींच कर फ़सलें उगाई जाती हैं तो उन्हें भी हानि पहुँचती है। साथ ही पर्यावरण एवं पारितन्त्र प्रभावित होते हैं। अनुमान है कि देश में 1551 उद्योग हैं जिनमें से 166 के द्वारा सर्वाधिक प्रदूषण उत्पन्न होता है। ताप बिजलीघरों, उर्वरक, चीनी तथा कागज उद्योगों से निकला दूषित जल महत्वपूर्ण जलस्त्रोतों को बुरी तरह प्रदूपित करता है। इसी तरह शहरों का मलजल मिट्टी पादप पारितंत्र को दूषित बनाता है। इसमें क्रोमियम, निकेल जैसे विषैले तत्त्वों की प्रचुरमात्रा रहती है। अनेक नदियों के जल में **आर्सेनिक** की अधिक मात्रा सूचित की गई है। आर्सेनिक की अनुमत सीमा 0.4 मिग्रा./ली. है। दक्षिण कलकत्ता में पेरिस ग्रीन उत्पादन करने वाली फैक्टरी के निकट हजारों निवासी आर्सेनिक विषाक्तता के शिकार बताये जाते हैं। कागज़ उद्योग से निकले तरल बहिःस्त्राव से यदि खेतों को सींचा जाता है तो उनमें बीजों का अंकुरण देर से और कम मात्रा से होता है। बाद में अन्न तथा भूसे की उपज भी कम होती है। सीमेंट उद्योग तथा ईंट के भट्टों से अत्यधिक वायु प्रदूषण होता है।

मृदा का विनाश, कृषीय उत्पादन में ह्रास और जलवायु परिवर्तन, भूमि उपयोग और टिकाऊ विकास एक दूसरे से अन्तर्ग्रथित हैं। हरित गृह गैसों तथा वायुमण्डल में विद्यमान कणिकाओं से ''ग्लोबल वार्मिंग'' जैसी घटना घटित हो रही है। अनुमान है कि अगले 50 वर्षों में कार्बन डाइऑक्साइड के स्तर में 3% वृद्धि होगी। फलस्वरूप पृथ्वी की सतह के ताप

(शेष पृष्ट 27 पर)

रेडियोएक्टिव पदार्थ एवम् पर्यावरण

दिलीप भाटिया

पर्यावरण की संरक्षा-सुरक्षा आज सभी के लिए चिन्ता का विषय है। फिर रेडियोएक्टिव पदार्थ का नाम आते ही यह चिन्ता तो और भी बढ़ जाती है। मन में प्रश्न उठने लगते हैं। रेडियो एक्टिव पदार्थ निकालने वाले संस्थानों के प्रति शंका एवम् संदेह पनपने लगते हैं। पर्यावरण का हाल दिन पर दिन बुरा होता जा रहा है। ऐसे में लगता है कि रेडियोएक्टिव पदार्थ तो जैसे आग में घी का काम करेंगे। सही तथ्य एवम् वैज्ञानिक दृष्टिकोण जानने के लिए हम चिन्तित होते हैं एवम् प्रयास करते हैं ताकि मन से भ्रम, शंका एवम् संदेह के बादल छँट सकें।

औद्योगिक संस्थान परमाणु संस्थान एवम् परमाणु अनुसंधान केन्द्र के क्रियाक्लापों से रेडियोएक्टिव पदार्थ बनते-निकलते हैं। रेडियो आइसोटोप चिकित्सा एवम् अनुसंधान में लाभकारी होते हैं। परमाणु बिजलीघरों से रेडियोधर्मी अपशिष्ट निकलते हैं। ताप बिजली घर से भी रेडियोधर्मी पदार्थ निकलते हैं। रेडियेशन कहें या विकिरण, इससे रोगों के निदान एवम् उपचार दोनों ही होते हैं। प्राकृतिक विकिरण वायु मण्डल में हर स्थान पर व्याप्त है।

कोई भी संस्थान, चाहे वह रेडियो एक्टिव पदार्थों का उत्पादन कर रहा हो या फिर उसके किसी उत्पादन से रेडियोएक्टिव पदार्थ निकल रहे हों, उसे इस बात पर पूर्ण सजगता रखनी है कि तकनीकी प्रक्रिया, गुणवत्ता आश्वासन, तकनीकी प्रावधान, प्रचलन, अनुरक्षण इस प्रकार से हों कि पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। कर्मचारियों एवम् आसपास रहने वाली जनता के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव न हो एवम् उस संस्थान की समाज में एक गौरवमयी छवि बनी रहे।

हमारे देश में छः परमाणु बिजली घर विद्युत-उत्पादन कर रहे हैं। तारापुर, रावतभाटा, कलपक्कम, नरोरा, काकरापार एवम् कैगा के ये परमाणु बिजली-घर 2000 मेगावाट से अधिक बिजली बना रहे हैं। इनमें यूरेनियम और थोरियम ईंधन के रूप में काम में लाया जाता है। इन बिजली घरों से निकला अपशिष्ट ईंधन रेडियोधर्मी होता है एवम् इस ईंधन के पुनर्संसाधन से प्लूटोनियम जैसा महत्वपूर्ण रेडियोएक्टिव पदार्थ निकलता है, जिसका उपयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए भी किया जा सकता है एवम् विनाशकारी परमाणु बम बनाने के लिए भी। इसके अतिरिक्त इन बिजलीघरों से रेडियोधर्मिता भी निकलती है। ठोस अपशिष्ट को ज़मीन में गाड़ दिया जाता है। द्रव नदी में जाता है एवम् गैसें वायुमण्डल में। हमारे देश में परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद् इस सम्बन्ध में दिशा-निर्देश जारी करती है एवम् बिजली घरों का निरीक्षण कर यह सुनिश्चित करती है कि रेडियोधर्मी अपशिष्ट का विसर्जन अनुमत सीमा के अंतर्गत ही हो रहा है। हर बिजलीघर स्थल पर एक स्वतंत्र एवम् निष्पक्ष पर्यावरण सर्वेक्षण प्रयोगशाला होती है, जो सीधे भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र द्वारा संचालित होती है। यह प्रयोगशाला कर्मचारियों के स्वास्थ्य की वार्षिक जांच करती है। वायुमण्डल, जल, भूमि, खाद्यान्न, दूध, कृषि, मछली इत्यादि की समय समय पर जांच करके यह सुनिश्चित करती है कि बिजली घर उत्पादन से पर्यावरण पर अनुमत सीमा के अन्दर ही रेडियोएक्टिव पदार्थों का विसर्जन हुआ है।

जी हाँ, इस पर्यावरण सर्वेक्षण प्रयोगशाला के उपकरणों की विश्वसनीयता प्रमाणित करने के लिए भी प्रावधान रहते हैं, ताकि सर्वेक्षण के परिणामों की

विश्वसनीयता वनी रहे। गुणवत्ता नियंत्रण एवम् गुणवत्ता आश्वासन कार्यक्रम इसकी पुष्टि करते हैं। हाल में ही, पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित आई एस ओ-14000 के प्रमाण-पत्र हमारे बिजलीघरों को मिलने लगे हैं। 31 जुलाई 1999 को नरोरा परमाणु विजली घर को आई एस ओ-14000 का प्रमाण-पत्र मिल चुका है एवम् शीघ्र ही राजस्थान परमाणु बिजली घर को भी यह प्रमाण-पत्र मिल जायेगा। अन्य बिजली घरों को भी इस वर्ष के अन्त तक यह प्रमाण पत्र मिल जायेगा। इस प्रमाण-पत्र से यह स्वतः ही सिद्ध हो जाता है कि हमारे देश के परमाणु संस्थान पर्यावरण संरक्षा के प्रति पूर्ण जागरूक हैं।

मानवीय भूल स्वाभाविक है। पूर्ण सावधानी एवम् निगरानी के पश्चात् भी दुर्घटनाएँ घट जाती हैं, इसके लिए डिज़ाइन में ही कई आपात्कालीन प्रावधान रखे जाते हैं। तकनीकी प्रावधानों के अनुपालन की जाँच के लिए एक विशिष्ट विभाग रहता है। गुणवत्ता आश्वासन विभाग वाले आंतरिक ऑडिट करते हैं। मुख्य कार्यालय एवम् परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद् वाह्य ऑडिट करती हैं। गलतियों को सुधारा जाता है। प्रशिक्षण, पुनर्प्रशिक्षण, रिफ्रेशर कोर्स चलाए जाते हैं। जिस प्रकार वाहन चलाने के लिए लाइसेंस होना अनिवार्य है, उसी प्रकार परमाणु संयंत्रों के प्रचालन एवम् रखरखाव कार्यों के लिए भी लाइसेंस प्रणाली लागू है। हर तीन वर्ष पश्चात इन लाइसेंसधारी कर्मचारियों के साक्षात्कार के पश्चात् इनके लाइसेंसों का नवीनीकरण भी होता है। इस प्रकार यह सुनिश्चित किया जाता है कि गलतियाँ न्यूनतम हों एवम् पर्यावरण सुरक्षित रहे।

रेडियोएक्टिव पदार्थ वे पदार्थ होते हैं, जिनमें रेडियोधर्मिता होती है– अल्फा, बीटा, गामा, न्यूट्रॉन इत्यादि रेडियेशन निकलते हैं। इनसे बचाव के लिए समय, दूरी, क्षय एवम् शील्डिंग का चार पक्षीय सिद्धांत काम में लाया जाता है। इस पदार्थों से कार्य करते समय अलारा सिद्धान्त का पालन भी किया जाता है। अलारा है 'ऐज़ लो ऐज़ रीज़नेबली एचीवेवल' यानी जितना कम से कम सम्भव हो सके। शून्य रेडियोधर्मिता संभव नहीं है। हाँ, सही कार्यकलापों द्वारा इसे न्यूनतम रखा जा सकता है। हाल में ही, रावतभाटा स्थित राजस्थान परमाणु बिजली घर की पहली इकाई में ओवर प्रेशर रिलीफ डिवाइस की मरम्मत करके इस इकाई को पुनःजीवन दिया गया एवम् इकाई-दो की सभी 306 कूलेंट नलिकाएं बदलकर इस इकाई का पुनरुद्धार किया गया। इन दोनों ही विशिष्ट कार्यों में यह सावधानी रखी गयी कि निकली हुई रेडियोएक्टिव नलिकाएँ इस प्रकार निकाली एवम् विसर्जित की जायें, जिससे पर्यावरण प्रभावित नहीं हो एवम् इस कार्य के करते समय कर्मचारियों को न्यूनतम एवम् नियम-अनुमत सीमा के अन्दर ही रेडियेशन मिले। इस संस्थान के लिए यह गौरव-गरिमा की बात है कि न्यूनतम समय, न्यूनतम लागत एवम् न्यूनतम विकिरण-मात्रा में देश में इस प्रकार का चुनौतीपूर्ण कार्य प्रथम बार निर्विघ्न सम्पन्न हुआ, जिसकी प्रशंसा विश्व के सभी परमाणु परिवारों ने की। इस बिजली घर से इस समय 350 मेगावाट बिजली का उत्पादन हो रहा है। इकाई-तीन से शीघ्र ही 220 मेगावाट बिजली उत्पादन होने वाला है। यह रावतभाटा की परमाणु नगरी देश की सेवा में करीब 800 मेगावाट बिजली देगी, जिससे इस चित्तौड़गढ़ ज़िले के कई अंधेरे घर रोशन होंगे एवम् नए उद्योग लगने की संभावनाओं में भी वृद्धि होगी।

प्रोसीज़र एवम् चेक लिस्ट का उपयोग, योजनाबद्ध कार्यान्यवन कार्य की समीक्षा, मॉक-अप-ट्रेनिंग, ड्रिल, एक्सरसाइज़ द्वारा मानवीय भूलों एवम् दुर्घटनाओं में कमी लाई जा सकती है। रेडियोएक्टिव पदार्थों के साथ कार्य करते समय तो इनकी आवश्यकता बहुत महत्वपूर्ण है। जरा सी भूल, तनिक सी असावधानी, दुखद परिणाम देगी, जिसके दुष्परिणाम हमें ही नहीं, अगली पीढ़ी को भी भोगने पड़ सकते हैं।

टाईप 5/5, अणुकिरण
रावतभाटा-323307
(कोटा-राजस्थान)

जारी है ओज़ोन कवच का क्षरण

अनुराधा श्रीवास्तव

आज समाचारपत्र व पत्रिकाओं के जरिये 'कार्बन-मोनो-ऑक्साइड' क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन', 'ओज़ोन क्षरण' तथा 'पराबैंगनी किरण' जैसे शब्द विशेषज्ञों के दायरे से निकलकर जन साधारण तक पहुँच चुके हैं। यहाँ तक कि इन शब्दों से आज बच्चे-बच्चे तक परिचित हो गये हैं। कारण यह है कि आजकल सभी समाचारपत्र मौसम परिवर्तन तथा पर्यावरण सम्बन्धी ख़बरों से पटे पड़े रहते हैं। ये खबरें यूं ही नहीं प्रकाशित हो रही हैं। आज वायुमण्डल की ऊपरी सतह में विद्यमान ओज़ोन गैस की सघनता में कमी इस समय विश्वव्यापी चिंता का विषय है। इसी चिंता की प्रतिक्रियास्वरूप ये शब्द वैज्ञानिक शब्दावली से निकलकर समाचारपत्रों के माध्यम से आम जनता तक पहुँच गये हैं।

'ओज़ोन कवच' ऑक्सीजन गैस की एक ऐसी परत है जो हमारी धरती से 20-25 किलोमीटर ऊपर वायुमंडल में छायी रहती है। यह सूर्य की घातक पराबैंगनी किरणों को सोखकर उन्हें हमारी धरती पर सीधे पड़ने से रोकती हैं। अन्यथा ये किरणें मनुष्य, पशु और वनस्पति जगत को गंभीर नुकसान पहुँचा सकती है-- जैसे-- जीवों में मोतियाबिंद, अंधता, चर्म कैंसर आदि तथा मौसम-चक्र में हस्तक्षेप कर काफी नुकसान पहुँचा सकती हैं। जैसे-- धरती को अनुपजाऊ व बंजर बनाकर वीरान कर सकती है। पर्वत श्रृंखला को पिघलाकर पृथ्वी के बड़े भूभाग को समुद्र में डुबो सकती हैं। समुद्र से मछलियों को, तो धरती से घास गायब कर सकती हैं। संक्षेप में जीवन को संभव बनाने व विकसित करने वाली हर चीज को ये पराबैंगनी किरणें नष्ट कर सकती हैं। अतः ओज़ोन कवच का सुरक्षित रहना हमारे लिये बेहद ज़रूरी है। किन्तु ओज़ोन परत को नष्ट करने के मुख्य कारक-क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन, कार्बन-मोनो-ऑक्साइड तथा 'मीथेन गैस' की मौजूदगी से स्थिति बनने के बजाय बिगड़ती ही जा रही है। इसके लिये पूरा विश्व चिंतित है और प्रयासरत भी।

दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र के ऊपर ओज़ोन कवच में बढ़ता छेद काफी समय से विश्व के लिये चिंता का विषय बना हुआ है। जहाँ एक ओर विश्व पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं से जूझने में लगा है, वहीं इस बार वैज्ञानिकों को अंटार्कटिका के ऊपर बने ओज़ोन छेद के आकार और प्रभाव की चिंता ने परेशान कर दिया है। क्यों कि इस बार उसका आकार पिछले साल के मुकाबले कहीं अधिक था। अर्जेंटीना मौसम विभाग के अनुसार इस बार अंटार्कटिका में दिखायी दिया ओज़ोन छेद का आकार और प्रभाव 1976 की तुलना में कहीं अधिक रहा। (वर्ष 1976 को वातावरण में ओज़ोन का आधार वर्ष माना जाता है।) इस बार एक और बात रही। ओज़ोन छेद उस समय की तुलना में 15 दिन पहले दिखना शुरू हुआ और दो-तीन सप्ताह अधिक समय तक रहा, जो अब गायब हो गया है। (ओजोन छेद आमतौर पर अंटार्कटिका में दिसम्बर के शुरू में दिखाई देना शुरू होता है।) इस घटना से वैज्ञानिक चिंतित हैं। जो स्वाभाविक भी है। क्योंकि ओज़ोन कवच का रक्षा का सम्बन्ध संपूर्ण मानवता की रक्षा से है। अतः अगर धरती पर जीवन को जन्म देने और पालने-पोसने वाले तत्व नष्ट हो जायेंगे तो यह धरती ही वीरान हो जायेगी। तमाम कोशिशों के बावजूद मिले इस परिणाम से आज पर्यावरणविद् पुनः चिंतित हो गये हैं।

समतापी ओज़ोन क्षरण की यह दुर्घटना पहली नहीं है। इसके पूर्व भी अनेकों बार ऐसी स्थिति बन चुकी है। अंटार्कटिका क्षेत्र में 1957 से ही ओज़ोन

सांद्रता के आँकड़े नियमित रूप से एकत्रित किये जाते हैं। किन्तु समतापी ओज़ोन क्षरण का पता सर्वप्रथम 1985 में लगा था। तब अमेरिका ने सन् 1987 में ओज़ोन कवच को हुये नुकसान का पता लगाने के लिये एक यू-2 जासूसी विमान भेजा तो अध्ययन से पता चला कि यह ओज़ोन छेद अमेरिका से चार गुना बड़ा है। उस समय यह घटना केवल दक्षिणी ध्रुव तक ही सीमित थी और आज भी इस क्षेत्र में ओज़ोन क्षरण लगातार जारी है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस समय दक्षिणी ध्रुव के ऊपर की 50 प्रतिशत ओज़ोन परत नष्ट हो चुकी है।

बाद में ओज़ोन क्षरण की कुछ और भी घटनायें अनेक जगहों पर दृष्टिगोचर हुयीं। उत्तरी ध्रुव और कुछ शीत कटिबंधीय अक्षांशों के ऊपर भी ओज़ोन की सघनता में कमी पायी गयी। आस्ट्रेलिया में पराबैंगनी किरणों के उतरने के प्रमाण भी मिले जिसके कारण हजारों भेड़ें, खरगोश व अन्य जीव अन्धे हो गये। मनुष्यों ने शरीर में जलन और चर्म रोगों की शिकायत की। त्वचा कैंसर पीड़ितों की संख्या अचानक बढ़ गयी। कुछ खाद्यान्न उत्पादनों में भी कमी पायी गयी।

अर्जेन्टीना और न्यूजीलैंड में भी त्वचा कैंसर पीड़ितों में वृद्धि हुई। उत्तरी ध्रुव अभियान पर गये वैज्ञानिकों के अनुसार उत्तरी गोलार्ध में भी पराबैंगनी किरणों के उतरने की पूरी संभावना है क्योंकि वहाँ के वायुमण्डल में कुछ ऐसे रसायनों की उपस्थिति उन्होंने पायी है जो ओज़ोन पर्त को नष्ट करने में पूर्ण समर्थ हैं।

अभी कुछ पहले कनाडा में भी कार्बन-मोनो-ऑक्साइड के प्रदूषण का कुप्रभाव नज़र आया था। उस वर्ष वहाँ ऐसा तूफान व मूसलाधार वर्षा हुई कि पर्यावरणविद् चौकन्ने हो गये। तूफान थमने के बाद कुम्हलाये पेड़-पौधों पर कार्बन-मोनो-ऑक्साइड के प्रदूषण का कुप्रभाव साफ नज़र आया।

स्पष्ट है कि ओज़ोन क्षरण का दायरा धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा है और अभी तक इसे सीमित करने में हमारे एक भी प्रयास सफल नहीं हो रहे हैं। यदि इसी तरह वायुमंडल में ओज़ोन दिन-प्रतिदिन क्षरित होता रहा तो वह दिन दूर नहीं होगा जब सूर्य की पराबैंगनी किरणें हमारी पृथ्वी पर अपना पैर पसार लेंगी और इन हानिकारक किरणों की वजह से हमारा दिन में घर से निकलना भी दूभर हो जायेगा। फिर तो घर से निकलते समय हमें सुरक्षाकवच पहनना पड़ेगा और 'सनस्क्रीन' का सहारा लेना पड़ेगा। हमारे प्रचलित धूप के चश्मे बेकार हो जायेंगे और आंखों के लिये हमें पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करने वाला लेंस पहनना पड़ेगा।

वैज्ञानिक तो यह भी आकलन करने लगे हैं कि यदि इसी रफ्तार से ओज़ोन क्षरण होता रहा तो सन् 2050 तक पृथ्वी का तापमान 2.0 से 5.0 सेल्सियस तक बढ़ सकता है और कालान्तर में हिमशैल, हिम खण्ड तथा ध्रुव प्रदेश के आवरण पिघलने से अनेक तटीय प्रदेश जलमग्न हो दुनिया के नक्शे से गायब हो सकते हैं। मौसम-चक्र में भयंकर परिवर्तन होने से पृथ्वीवासियों को मौसम की चरम स्थितियों का जैसे-- बाढ़, सूखा, चक्रवात का बार-बार सामना करना पड़ेगा जिसका खाद्यान्नों पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा। खाद्यान्न के अभाव में संभवतः ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि मानव जाति आपस में उलझ जाय।

1985 में ज्यों ही ओज़ोन क्षरण की जानकारी वैज्ञानिकों को लगी, संपूर्ण विश्व चिंतामग्न हो गया और ओज़ोन क्षरण में सहायक कार्बन-मोनो-ऑक्साइड तथा क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन जैसी हानि-कारक गैसों के निर्माण को कम करने अथवा पूर्णतया बन्द करने पर विचार करने लगी। इसी संदर्भ में 1987 में मांट्रियल में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया जिसमें विश्व के 47 देशों ने इस आशय का समझौता किया कि सन् 1999 तक विश्व में क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन का उत्पादन 50 प्रतिशत कम कर दिया जायेगा। किन्तु जब शीघ्र ही ओज़ोन क्षरण के लक्षण दक्षिणी गोलार्ध में नज़र आने लगे तो घबराकर सभी देशों ने 1990 में लंदन में पुनः एक सम्मेलन किया। इस सम्मेलन में यह तय हुआ कि सन् 2000 तक इन गैसों का निर्माण पूर्णतया बन्द कर दिया जाय तथा इस रसायन का दूसरा विकल्प ढूढ़ा जाय। लेकिन निर्णय का कार्यान्वयन ठीक से नहीं हुआ।

परिणामस्वरूप इन गैसों के कुप्रभाव से डेनमार्क में भी पराबैंगनी किरणों के उतरने के लक्षण नज़र आने लगे। ओज़ोन क्षरण के बढ़ते दायरे से घबराकर जर्मनी तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने सभी देशों से पुनः अपील की कि इन हानिकारक गैसों का निर्माण कम से कम 1995 तक पूर्णतया रोक दिया जाय। किन्तु सभी प्रयास निराशाजनक ही रहे। इस वर्ष अंटार्कटिका के ऊपर बने ओज़ोन छेद का आकार और प्रभाव पिछले वर्ष तथा ओज़ोन के आधार वर्ष 1976 से कहीं अधिक बड़ा है। जाहिर है सम्मेलनों में हुये समझौतों का गंभीरता से पालन नहीं हुआ है। ओज़ोन कवच में बढ़ता छेद ख़तरे की घंटी है जिसे संपूर्ण विश्व ने अवश्य सुना होगा।

आज वायुमंडल के ओज़ोन को काफी क्षति पहुँच चुकी है। यदि आज से ही ओज़ोन क्षरण में सहायक रसायनों का निर्माण पूर्णतया बन्द कर दिया जाय तो पुनः अपनी पूर्ण अवस्था में आने के लिए 80 वर्ष से भी अधिक समय लग सकता है। हमारे पास अभी भी समय है कि अपनी भूल सुधारें, वरना हमारी लापरवाही से पराबैंगनी किरणें उतर कर हमारी पृथ्वी को अन्य ग्रहों की भांति वीरान बना सकती हैं।

द्वारा-- डॉ० वी० के० श्रीवास्तव
4/5, डाली बाग कॉलोनी, लखनऊ
पिनकोड-226001 (उ० प्र०)

(पृष्ठ 22 का शेष)

में 1.50 से 4.50 सें० तक की वृद्धि हो सकती है। इससे शुष्क भाग अधिक शुष्क बनेंगे और जो प्रदेश आर्द्र हैं वे अधिक आर्द्र बन जायेंगे। इस जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कृषि, वानिकी तथा प्राकृतिक पारितन्त्र पर पड़ेगा। समुद्रों का जलस्तर ऊपर उठने से निचले क्षेत्र जलमग्न हो सकते हैं।

सारणी-3

भारत के प्रमुख नगरों में कूड़ा-कचरा उत्पादन

कलकत्ता	4000	टन/प्रतिदिन
मुम्बई	3500	"
दिल्ली	3000	"
चेन्नई	2200	"
कानपुर	850	"

भारी उद्योगों से उत्पन्न तरल तथा ठोस अपशिष्टों का सही निपटान भूमि प्रबन्धन की विकट समस्या है। यदि उद्योगों से निकलने वाला बहिःस्राव शून्य हो जाय, यदि वे प्रदूषण नियंत्रण विधियों का ईमानदारी से प्रयोग करें तो इस समस्या का समाधान हो सकता है। इस समय पर्यावरण-मित्र फार्मिंग प्रणालियों पर बल दिया जा रहा है जिसमें 'आर्गेनिक फार्मिंग' मुख्य है। मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ा कर भूमि प्रदूषण का सामना किया जा सकता है। इससे जीवनाशी रसायनों या कृत्रिम उर्वरकों के कुप्रभावों का शमन हो सकता है। इसीलिए कम्पोस्टिंग पर और इस समय तो वर्मीकम्पोस्टिंग पर जोर दिया जा रहा है। शहरी कूड़ा-कचरा या कृषीय अवशेषों को वर्मीकम्पोस्टिंग के द्वारा उपयोगी कम्पोस्ट में बदला जा सकता है और इसका उपयोग खेतों के उर्वरकीकरण में किया जा सकता है।

वनरोपण, कार्बनिक खादों का उपयोग, सिंचाई जल का सही उपयोग, समन्वित जीवनाशी प्रबन्धन, जैव उर्वरक, शस्यावर्तन- ये कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनको अपना कर भूमि के प्रदूषण को निम्नतम स्तर पर लाया जाया जा सकता है।

पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए भूमि प्रदूषण पर नियन्त्रण पाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम होगा। कहा भी गया है- एकहि साधे सब सधै।

--प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002

प्लास्टिक-पॉलिथीन प्रदूषण का कहर

निमिष कपूर

वर्तमान युग को यदि पॉलिथीन युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। पॉलिथीन उत्पादन और उसका उपयोग पिछले दो दशकों में तेजी से बढ़ा है। गृहोपयोगी वस्तुओं से लेकर चिकित्सा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी आज प्लास्टिक- पॉलिथीन का बोलबाला है। दैनिक आवश्यकताओं/वस्तुओं को बाँधने/रखने, खाद्य पदार्थों की लापरवाही, दूध की थैलियों से लेकर पान मसालों के पाउच तक में पॉलिथीन अपना आधिपत्य जमा चुका है। हर प्रकार के उपयोग में लाया जाने वाला पॉलिथीन घातक या ख़तरनाक नहीं होता क्योंकि यह एक प्रकार का सक्रिय बहुलक (पॉलीमर) है जो अन्य जैविक पदार्थों से क्रिया नहीं करता पर जब इसमें अन्य बाहरी घटक जैसे प्लास्टीसाइजर, स्टैबिलाइजर व रंगीन पदार्थ मिलाये जाते हैं तो यह स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की दृष्टि से घातक हो जाता है। हम गौर करें तो पायेंगे कि व्यक्ति जब घर से खरीददारी के लिए निकलता है तो वह जितनी भी वस्तुएँ खरीदता है, चाहे वह साग-सब्ज़ी हो या पैंट, कमीज, टी० वी०, फ्रिज हो या स्कूटर, यहां तक कि अस्पतालों व ब्लड बैंकों में मिलने वाला रक्त भी प्लास्टिक पॉलिथीन की गिरफ्त में रहता है।

हमारे जीवन को प्रभावित कर रही रंग बिरंगी पन्नियाँ जो वास्तव में प्लास्टिक को गलाकर बनाई जाती हैं। प्लास्टिक एक प्रकार के अल्प अणुओं (मोनोमर) के रूप में होता है जिससे बहुलक (पॉलीमर) बनाया जाता है। बहुलक बनने पर यह अक्रिय हो जाता है। अक्रिय यौगिक बहुलक प्लास्टिक से नये उत्पाद का बनना सम्भव नहीं अतः इससे अन्य वस्तुओं को बनाने के लिये अन्य रसायनों का उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक को अल्प अणुओं से बहुलक अवस्था में लाते समय कुछ अल्प अणु इसमें लगे रह जाते हैं जो शरीर में खाद्य पदार्थों के जरिये पहुँचते रहते हैं। प्लास्टिक निर्माण में मुख्य रूप से ईथेन, विनाइल क्लोराइड, स्टाइरीन, फीनॉल, फार्मेल्डिहाइड, यूरिया, ऐसिटिलीन तथा बेन्ज़ीन का प्रयोग किया जाता है। इन रसायनों के कारण प्लास्टिक वस्तुओं को किसी भी जैविक प्रक्रिया से नष्ट किया जाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इस कारण प्लास्टिक व पॉलिथीन को अविघटनकारी (Non- biodegradable) कहा जाता है। प्लास्टिक या पॉलिथीन को ज़मीन में दबाने और पानी में बहाने से भी रसायनों का प्रभाव समाप्त नहीं होता बल्कि रसायन के तत्व वायुमण्डल में घुल कर उसे प्रदूषित करते हैं। भूमि में दबाने से ये प्लास्टिक/ पॉलिथीन के रसायन गर्मी पाकर ज़हरीली गैसें उत्पन्न करते हैं, जो भूमि के अन्दर विस्फोट भी कर सकती हैं।

प्लास्टिक पॉलिथीन आज दैनिक उपयोग की एक ऐसी आवश्यक वस्तु बन चुकी है, जिस पर

> जब प्लास्टिक को गलाकर पॉलिथीन बनाया जाता है तो इसमें कुछ रंगीन पदार्थों के साथ प्लास्टिसाइजर व स्टेबलाइजर रसायन भी डाले जाते हैं। ये पदार्थ पॉलिथीन से संग्रहीत वस्तुओं पर दुष्प्रभाव डालते हैं। पॉलिथीन निर्माण में प्रयुक्त प्लास्टिसाइजर मानव रोग के बहुत से पहलू समेटे हुए है। इसका सीधा असर दिमाग, यकृत (लिवर) एवं प्रजनन क्षमताओं पर भी होता है। इससे हमारे शरीर में चलने वाली विखण्डन क्रियाएँ (अपचय उपापचय) भी प्रभावित होती है। जब शरीर में कोई विषाक्त तत्व प्रवेश कर जाता है और एन्ज़ाइम के सम्पर्क में आता है तो विखण्डन क्रिया निष्क्रिय हो जाती है तथा शरीर के एन्ज़ाइम प्रभावित होते हैं। स्टेबिलाइजर रसायन भी हमारे शरीर के लिए घातक है जो कि लोहे व लैड आदि यौगिकों को हमारे शरीर में घोलता रहता है। इसके भयावह परिणाम हो सकते हैं।

नियंत्रण या रोक लगाने जैसे विषयों पर बात करना कठिन हो चला है। वैसे कुछ राज्य प्लास्टिक के बढ़ते प्रदूषण के प्रति सचेत हो गये हैं और इस पर नियंत्रण भी लगा रहे हैं।

प्लास्टिक-पॉलिथीन जलाये जाने पर कार्बन मोनो- ऑक्साइड, सल्फर ऑक्साइड व अन्य विषैली गैसें उत्पन्न होती हैं, जो वाता- वरण को विषैला बनाती हैं। विकसित देशों में प्लास्टिक को बन्द कक्षों में जलाते हैं जिससे विषैली गैसें बाहर नहीं आ पाती हैं। हमारे देश में ऐसा नहीं किया जाता है। इसके स्थान पर प्लास्टिक का पुनरुत्पादन किया जाता है, जिससे प्रदूषण फैलता रहता है। पॉलिस्टरिन नामक प्लास्टिक को जलाने से जहरीले क्लोरोफ्लोरोकार्बन बाहर आते हैं, जो ओज़ोन कवच के लिए हानिकारक हैं। ओज़ोन के नष्ट होने से धरती पर प्रलयकारी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणें मानव शरीर में त्वचा कैंसर उत्पन्न करती हैं, ओज़ोन पर्त इन पराबैंगनी किरणों को हम तक पहुँचने से रोकती है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन का एक अणु, ओज़ोन के एक लाख अणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखता है।

एक वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार 50 हज़ार पॉलिथीन बैग तैयार करने में17 किलो सल्फर डाइ ऑक्साइड गैस वायुमण्डल में समा जाती है। इसके अतिरिक्त कार्बन मोनोऑक्साइड, नाइट्रोजन और हाइड्रोकार्बन वायु में उत्सर्जित होते हैं तथा पानी में भी जहरीले पदार्थ मिलते हैं। इसी प्रकार जब फाइबर बनाये जाते हैं तो कम से कम 13 किलो नाइट्रस ऑक्साइड और 12 किलो सल्फर डाइऑक्साइड वायुमण्डल में जा मिलती है। इस प्रकार के पर्यावरण प्रदूषण से बचने के लिये वैज्ञानिकों ने जैव विघटनीय (जिन्हें जीवाणु या फफूंद गला देते हैं) तथा प्रकाश विघटनीय डिग्रेडेबिल (जो प्रकाश तथा धूप में गल जाते हैं) प्लास्टिक का निर्माण किया है, परन्तु इस प्रकार के प्लास्टिक के निर्माण में खर्च काफी अधिक होने की वजह से भारत जैसे विकासशील देश में लोकप्रिय नहीं हुए। वैज्ञानिक इस प्रकार के प्लास्टिक की लागत को कम करने के लिए तकनीक विकसित करने में प्रयासरत हैं। हाल ही में प्लास्टिक प्रदूषण से मुक्ति के अभियान में लगे सेंट्रल ट्यूबर क्रॉप रिसर्च सेन्टर' तिरूवनन्तपुरम् ने प्रगति के नये आयाम दिये हैं। इस संस्थान के वैज्ञानिक डॉ० एस० के० नन्दा ने जैविक क्रिया से नष्ट होने वाले प्लास्टिक को एक वृक्ष से तैयार किया है। इस वृक्ष का नाम 'टेपिओका' है, जिससे स्टार्च निकाला जाता है और कुछ कम घनत्व की पॉलिथीन ट्यूबर आदि स्टार्च में डालकर प्लास्टिक बनाया जा रहा है।

> हमारे देश मे स्वास्थ्य मंत्रालय व ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैण्डर्ड ने प्लास्टिक जाँचने के लिये मानक निर्धारित किये हैं। हिमाचल प्रदेश सरकार ने 'नॉन बायोडिग्रेडेबिल वेस्ट (कंट्रोल) एक्ट' पास करके सार्वजनिक जगहों पर प्लास्टिक बैग के निस्तारण पर रोक लगा दी है। इस एक्ट की अवमानना करने वालों के लिये एक वर्ष की सजा का प्रावधान है। पॉलिथीन पर सेल्स टैक्स बढ़ाकर 30% तक कर दिया गया है। पिछले वर्ष हरियाणा सरकार ने राज्य में पॉलिथीन के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की घोषणा की है। इसके साथ ही महाराष्ट्र सरकार ने हाल ही में पार्कों व दूकानों में प्लास्टिक के उपयोग पर रोक लगाई है। वास्तव में इनके उपयोग पर सरकारी नियंत्रण होना चाहिए।

शहरों की 90 फीसदी सीवर-चोकिंग पॉलिथीन के कारण होती है। सीवर-चोकिंग के परिणामस्वरूप विषैली गैसें बनती हैं, जो उच्च ज्वलनशील होती हैं। उत्तर प्रदेश भी प्लास्टिक व पॉलिथीन के आगोश में आ चुका है। एक जानकारी के अनुसार प्रदेश में पॉलिथीन का व्यवसाय लगभग 500 करोड़ रुपये से अधिक की लागत का है। प्रदेश के पर्वतीय इलाकों में पिछले कुछ वर्षों के दौरान पॉलिथीन व प्लास्टिक के डिब्बों आदि का अनियंत्रित उपयोग होने से सैकड़ों टन प्लास्टिक का कचरा पहाड़ों में एकत्र हो चुका है। गंगोत्री में इसके दुष्प्रभाव से ज़मीन बंजर होती जा रही है। इतना ही नहीं, झरनों में पॉलिथीन फँसने से पानी गिरना प्रभावित हुआ है। इन सब ख़तरों को भाँपते हुए उत्तर प्रदेश सरकार शीघ्र ही एक्ट बनाने के प्रयास में है। आज बंगलादेश व असम की गरीब जनता उत्तर प्रदेश व आस-पास के प्रदेशों में प्लास्टिक, पॉलिथीन

पुनरुत्पादन केन्द्रों में बंधुआ मजदूर के रूप में ज़हरीली गैसों के बीच अपना जीवन जी रही है। इन अवैध पुनरुत्पादन केन्द्रों पर अभी तक किसी का ध्यान केन्द्रित नहीं हुआ है और न ही नयी पुनरुत्पादन तकनीक विकसित की जा रही है। आज घरों में विद्युत तार, जिस काले रंग के प्लास्टिक पाइप (पॉलिविनाइल क्लोराइड पाइप) में फिट होते हैं, वे पाइप पानी बीनने वालों से पन्नियों को एकत्र करके, पन्नियाँ गलाकर बनाये जाते हैं जिसके निर्माण में पुनरुत्पादन मशीनों पर लगा मनुष्य ट्यूमर/कैंसर की चपेट में आ चुका है।

आज सम्पूर्ण पारितन्त्र (इको सिस्टम) के लिये खतरनाक बन चुके प्लास्टिक का पुनरुत्पादन करने वालों के पास लगभग एक हज़ार टन प्लास्टिक/पॉलिथीन का कचरा प्रतिवर्ष एकत्रित होता है। इसका 65-70 प्रतिशत भाग सस्ती चप्पलें बनाने के काम आता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 1991 में प्लास्टिक का उत्पादन लगभग नौ लाख टन था। आश्चर्य की बात है कि इस भयावह उत्पाद के निर्माण, उपयोग एवं पुनः निर्माण के उचित नियंत्रण के अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं किया जा सका है। एक जानकारी के अनुसार स्पेन के एक अभियंता एंटोनियोइवानेज़ अल्वा ने कुदरती पेड़ों के सम्भावित विकल्प के रूप में प्लास्टिक के पेड़ों को विकसित किया है। पॉलीयूरेथीन से बने यह कृत्रिम पेड़ रात में अपनी सतह पर जमा होने वाली ओस को सोखते हैं और दिन में उसे धीरे-धीरे हवा में छोड़ते हैं। इस प्रक्रिया से आस-पास के तापमान में कमी आ जाती है, जो वर्षा को प्रेरित करती है। इस प्रकार के कृत्रिम पेड़ रेगिस्तानों की जलवायु के लिए वरदान साबित हो सकते हैं। इनमें विशेषता यह भी है कि ये जमीन से जल या अन्य तत्व सोखने की क्षमता नहीं रखते।

आज शहरों के गली-मोहल्लों में लगे कूड़े के ढेर में पॉलिथीन बड़ी तादात में जमा होता है और जिसे हमारी गौ माताएँ अपना भोजन बनाती हैं। फलस्वरूप उनके शरीर में पॉलिथीन जमा होने से वे ट्यूमर की चपेट में आती जा रही हैं। पॉलिथीन से उत्पन्न रोगों के कारण प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में गायें, बछड़े व साँड़ असमय ही मर जाते हैं। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में पॉलिथीन एवं इसके अन्य उत्पादों का प्रयोग काफी कम है, लेकिन तेज़ी से बढ़ते इसके उपयोग से पॉलिथीन प्रदूषण सर्वव्यापी हो चुका है। पिछले 8-10 वर्षों में जैसे प्लास्टिक के नाम पर क्रांति सी आ गयी है। इतना होने पर भी हमें आज उपयोग करो और फेंको संस्कृति की द्योतक पॉलिथीन के खतरों से बचने के लिये चाक-चौबन्द बन्दोबस्त करने होंगे। यदि ऐसा न किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब प्लास्टिक प्रदूषण मानव आनुवंशिकी से छेड़छाड़ शुरू कर दें। अब वक्त आ गया है 'झोला संस्कृति' की पुनरावृत्ति का। पॉलिथीन के उपयोग से अच्छा है कि एक 'झोला' प्रयोग में लाया जाये। सरकार के लिए गम्भीर समस्या बन चुका प्लास्टिक प्रदूषण आज आम जनता को आसानी से समझाया जा सकता है।

-सी 988, सेक्टर-बी
महानगर, लखनऊ-226006

प्रोफेसर आर० सी० कपूर का निधन

जोधपुर विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के पूर्व अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक, विचारक, चिंतक, हिन्दी विज्ञान लेखक और विज्ञान परिषद् प्रयाग के पूर्व प्रधानमंत्री (1959-62) तथा उपसभापति और जोधपुर शाखा में विभिन्न पदों को सुशोभित करने वाले, परिषद् के परमहितैषी डॉ० कपूर का 7 मई 2000 को जोधपुर में कैंसर की बीमारी से निधन हो गया। शोकाकुल परिषद् परिवार उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वे दिवंगत आत्मा को स्वर्ग में शांति और परिवारजनों को यह दुःख भार वहन करने की शक्ति दें।

कचरा निपटान की गहराती समस्या

ज्योति भाई

सामाजिक, आर्थिक और प्रौद्योगिकी विकास के फलस्वरूप प्रतिदिन प्रति व्यक्ति कचरे की मात्रा बढ़ती ही जा रही है। गाँवों की अपेक्षा शहरों में यह समस्या और भी तेज़ी से बढ़ रही है। जो शहर जितना ही बड़ा है वहाँ कचरा उतना ही ज्यादा मात्रा में निकलता है और वहाँ यह समस्या उतनी ही भयावह है। आधुनिक प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ हमारे रहन-सहन में संश्लेषित पदार्थों जैसे प्लास्टिक का उपयोग जितना ही बढ़ रहा है कचरे की प्रकृति भी लगातार परिवर्तित होते हुए और भी ख़तरनाक होती जा रही है।

प्रतिदिन पैदा होने वाले कचरे की मात्रा और प्रकृति व्यक्ति के रहन-सहन के स्तर और औद्योगीकरण के विकास के स्तर से सम्बन्धित है। भारत के शहरों में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति औसतन 400 ग्राम कचरा रोज पैदा करता है। आज देश की आबादी एक अरब की सीमा के निकट पहुँच रही है। अनुमान है कि इसमें करीब 30 करोड़ लोग शहरों में निवास कर रहे हैं। ये शहरी प्रतिदिन एक लाख टन से भी अधिक कचरा उत्पन्न कर रहे हैं। यह कचरा नगर पालिकाओं और नगर की स्वास्थ्य सेवाओं के लिये एक समस्या बना हुआ है।

राजधानी दिल्ली को ही लें। यहाँ प्रतिदिन करीब चार हज़ार टन कचरा पैदा होता है जिसमें से करीब 2500 टन ही हटाया जाता है। चेन्नई में करीब 2700 टन कचरा पैदा होता है जिसमें से केवल 2650 टन ही हटाया जाता है। इसी तरह मुंबई में भी करीब चार हज़ार टन कचरा तैयार होता है। यह भी पूरा का पूरा नहीं निबटाया जाता।

इतनी बड़ी मात्रा में कचरे का निपटान वास्तव में एक बड़ी समस्या है। शहरों और आस-पास के क्षेत्रों में जब आदमी को रहने के लिये जगह नहीं है तो कूड़े-कचरे के लिये जगह कहाँ मिलेगी ? इसीलिये बहुत सारा कचरा शहरों के पास स्थित पुराने तालाबों या नीची ज़मीनों पर डाल दिया जाता है ताकि ये स्थान भी ऊँचे हो जायें और यहाँ भी रिहायशी बस्तियाँ बसाई जा सकें। यद्यपि यह तरीका पर्यावरण के लिये ख़तरनाक है लेकिन इस तरह के स्थान भी तो नहीं है जहाँ कचरा लगातार फेंका जा सके।

कचरे की समस्या यूँ तो विश्वव्यापी है। लेकिन पश्चिमी उन्नत देशों की सरकारें कचरा निपटान समस्या के प्रति काफी सजग हैं। यही नहीं कचरा निपटान से सम्बन्धित प्रौद्योगिकी पर लगातार शोध जारी है। कचरे के पुनर्चक्रण से पुनः अनेक उपयोगी उत्पाद तैयार कर लिये जाते हैं। कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने के अनेक उन्नत तरीके भी विकसित कर लिये गये हैं।

कागज़, धातु और प्लास्टिक का पुनर्चक्रण तो काफी पहले से हो रहा है। जापान ने तो पुराने टायरों से भारी किस्म का तेल और कोयला प्राप्त करने का तरीका विकसित कर लिया है। पहले पुराने टायरों का निपटान एक बड़ी समस्या थी। लेकिन अब इन टायरों को गरम करके विघटित किया जाता है। जिससे वाष्प के रूप में तेल प्राप्त होता है जिसे आसवित करके द्रव तेल प्राप्त कर लिया जाता है। एक टन टायर से 400 लीटर शुद्ध तेल प्राप्त होता है। तेल निकलने के बाद बचे अंश को 800^0 से. ग्रे. तक गरम करके जस्ता मुक्त कोयला प्राप्त किया जाता है। यह जस्ता मुक्त कोयला पानी को शुद्ध करने के काम में आता है। तेल तथा कोयला प्राप्त करने के दौरान उत्पन्न ऊष्मा का उपयोग ऊर्जा के रूप में किया जाता है। ब्रिटेन की

'बायोटेक्ना' नामक संस्था ने शहरी मल-मूत्र से शैवाल की खेती का काम शुरू किया है। शैवाल मल-मूत्र से नाइट्रोजन, फॉस्फेट आदि तत्त्व सोख लेते हैं और उन्हें प्रोटीन में बदल देते हैं। इससे एक ओर जहाँ मलजल साफ होता है वहीं तैयार शैवाल मवेशियों के लिये उत्तम पौष्टिक खाद्य के रूप में काम आ जाता है। कचरा निपटान में चीन का शंघाई शहर काफी उन्नत माना जाता है। यहाँ शहर ही नहीं ग्रामीण क्षेत्रों से भी कमीशन एजेंटों द्वारा कचरा एकत्र करवाया जाता है। कचरे में से अलग-अलग चीजें जैसे रबड़, लोहा, प्लास्टिक, कागज, कपड़ा, हड्डियाँ, बाल, कांच, मशीनों के पुर्जे आदि अलग अलग छाँटे जाते हैं और इनकी बिक्री और शोधन के अलग अलग केन्द्र बनाये गये हैं यानी, शंघाई शहर में कचरा प्रबंधन एक अच्छा खासा व्यवसाय हैं जहाँ करीब 35000 लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रोज़गार मिला हुआ है।

यदि अकेला शंघाई शहर 35000 लोगों को रोजगार दे सकता है तो भारत में नित नये तैयार हो रहे कचरे के पहाड़ न जाने कितने बेरोजगारों को रोजगार दे सकते हैं। लेकिन अभी यहाँ इस तरफ न तो सरकार और न जनता का ही कोई ध्यान जा रहा है। हर नागरिक आंख मूंदकर घर का कचरा सड़क पर फेंक आता है। नगर पालिका की गाड़ियां इस कचरे को उठाकर शहर के बाहर फेंक आती हैं। इस कचरे से केवल प्लास्टिक की कुछ मात्रा ही कचरा बीनने वालों द्वारा एकत्र की जाती है। बाकी कचरे की अधिकांश उपयोगी चीजें वहीं पड़ी प्रदूषण फैलाती रहती हैं।

हमारे देश में भी कचरा निपटान के लिये बम्बई और दिल्ली जैसे महानगरों में कुछ प्रयोग किये जा रहे हैं। कचरे से बिजली तैयार करना, कचरे से कम्पोस्ट खाद और बायोगैस प्राप्त करने के ये प्रयोग कहीं भी सफल नहीं माने जा रहे हैं। ये प्रयोग आर्थिक लाभ नहीं दिखा रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण विदेशी तकनीक का अंधानुकरण और स्वदेशी सोच का अभाव है। शहर के सुलभ शौचालयों से बेशक बहुत ज़्यादा और उपयोग बायोगैस प्राप्त की जा सकती है। लेकिन यहाँ आदमी का दिमाग़ अभी उस गैस को उपयोग करने की ही स्थिति में नहीं है। गाँव में रसोई गैस नहीं है। जब वहाँ बायोगैस आन्दोलन सफल नहीं हो पा रहा है तो शहर में कोई प्रश्न ही नहीं है। इसके लिये नयी पीढ़ी को शिक्षित करना पड़ेगा। साथ साथ ऐसे कानून भी बनाने पड़ेंगे जिससे लोग इस तरह के उत्पादों के उपयोग के लिये बाध्य हों।

कचरा के सम्बन्ध में जनमानस की सोच में बदलाव लाना पड़ेगा। लोगों को यह पता होना चाहिए कि कचरे में वास्तव में कुछ भी अनुपयोगी नहीं है। कचरे के घटक जैसे कागज, प्लास्टिक, लकड़ी के टुकड़े, कांच धातु के टुकड़े आदि को यदि अलग अलग कर लिया जाय तो ये सभी उपयोगी और कीमती हैं। व्यवस्था कुछ ऐसी हो कि लोग अपने घरों में कचरे के घटकों को अलग-अलग कर लें। कुछ स्वयंसेवी संगठन या व्यापारिक कम्पनियां ऐसी भी होनी चाहिए जो कचरे से एकत्र की गयी चीजों को खरीदें और उन्हें पुनर्चक्रण के लिये कारखाने तक भेजें। शहरों में ऐसे अनेक लोग मिल जायेंगे जो धातु और कांच की टूटी फूटी चीजों को एकत्र करते रहते हैं और मुहल्ले में फेरी वाले के हाथ बेंच देते हैं। जब तक इन चीजों का कोई खरीदार नहीं था कोई भी इन चीजों को एकत्र नहीं करता था।

वास्तव में कचरा निपटान के क्षेत्र में हमारे देश में रोज़गार की असीम संभावनाएं हैं। एक उदाहरण ही काफी होगा। कुछ दशकों पूर्व देश में सुलभ शौचालय आंदोलन चला। शहरों में बस अड्डों, स्टेशनों, एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों पर सुलभ शौचालय खुल गये जहाँ नाम मात्र के शुल्क पर लोग इनका उपयोग कर सकते हैं। इस सुविधा से नागरिकों को बेहद फायदा हुआ, शहरों की सफाई में मदद मिलीं साथ-साथ हज़ारों बेरोज़गारों को रोज़गार भी मिला। इसी तरह यदि दृढ़ निश्चय हो और स्वदेशी सोच हो तो कचरा निपटान के क्षेत्र में अनेक नये रोज़गार खोजे जा सकते हैं तथा नवीन प्रौद्योगिकियाँ विकसित की जा सकती हैं। (सौभाग्यवश चेन्नई में कूड़ा-कचरा निपटान का भार एक कम्पनी ने संभाल लिया है।)

(शेष पृष्ट 37 पर)

जीवों के प्राण वन

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय

जीवन के पर्याय वृक्षों के प्रति जनमानस का लगाव आदि काल से ही रहा है। वैदिक भविष्य वक्ताओं ने लगभग 5000 वर्ष पूर्व ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि यदि प्रकृति के किसी अंग को नुकसान पहुँचाया गया तो सम्पूर्ण पर्यावरण प्रणाली पर विनाश के काले बादल मँडराने लगेंगे। भारतीय पौराणिक साहित्य में वृक्षों के महत्व का उल्लेख किया गया है। वेदों में प्रकृति तथा उसके विभिन्न घटकों के महत्व को बताते हुए उनके संरक्षण की बात कही गई है। हिन्दू धर्म में वृक्षों की पूजा की बात लिखी गई है। महाभारत में वृक्षों को काटना वर्जित माना गया है। वर्तमान में देश के सकल घरेलू उत्पाद का 1.7 प्रतिशत भाग तो वनों से ही प्राप्त होता है।

द्रुत गति से बढ़ रही जनसंख्या ने शुद्ध वायु, जल व भोजन की समस्या उत्पन्न कर दी है। सन् 1901 में हमारे देश की जनसंख्या लगभग 24 करोड़ थी, जो 1951 में 36 करोड़ तथा 1991 में 85 करोड़ हो गई और सम्भावना है कि इस वर्ष तक यह जनसंख्या 100 करोड़ को पार कर जायेगी। दूसरी तरफ अनेक प्रयासों के बावजूद वनों का क्षेत्रफल अनवरत घट रहा है। यहाँ यह विचारणीय है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में 7 करोड़ 50 एकड़ क्षेत्रफल में वन थे जो कुल भू-भाग का 22 प्रतिशत है जबकि सुदूर संवेदन सर्वेक्षण के अनुसार वर्तमान में वनों का क्षेत्र संकुचित होकर 19.27 प्रतिशत ही रह गया है। इसमें से लगभग 11 प्रतिशत भू-भाग पर घने वन, 8 प्रतिशत पर मुक्त वन तथा 0.5 प्रतिशत पर कच्छीय वन हैं। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 42 लाख हेक्टेयर से अधिक वन नष्ट हो चुके हैं।

वनों की इस निरन्तर कमी से वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और ऑक्सीजन का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ने से वातावरण का ताप भी बढ़ रहा है और अनेक नई-नई समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि वृक्ष अपने भोजन निर्माण के प्रक्रम में कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण करते हैं तथा बदले में जीवों के श्वसन के लिए आवश्यक ऑक्सीजन (प्राणवायु) का उत्सर्जन करते हैं। औद्योगिकीकरण से पूर्व वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा जहाँ 200 भाग प्रति दशलक्षांश थी, वहीं 1980 में वह बढ़कर 340 भाग प्रति दशलक्षांश हो गई तथा अगले वर्ष यह मात्रा बढ़कर 500 भाग प्रति दशलक्षांश तक हो जाने की सम्भावना है।

वृक्षों को काट कर पृथ्वी को मरुस्थल में परिवर्तित किया जा रहा है। वनों का एक अप्रत्यक्ष किन्तु प्रमुख उत्पाद 'जल' है। यही कारण है कि जिन क्षेत्रों में वनस्पतियों का अभाव है वहाँ वर्षा बहुत कम होती है। राजस्थान, गुजरात और उड़ीसा में इस समय उत्पन्न सूखे की समस्या ने पूरे जनमानस को झकझोर दिया है और जल के अभाव में लोगों को जो कष्ट उठाना पड़ रहा है वह अवर्णनीय है। लोगों का कहना है कि ऐसा भयानक सूखा पिछले सौ वर्षों में नहीं पड़ा, इसका प्रमुख कारण वनों का अभाव ही है। पौधों की वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया में जल का उत्सर्जन होता है जिससे वनों के ऊपर की वायु नम और ठण्डी रहती है, और वर्षा होने में सहायता करती है। प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वनीकरण से गर्मी के माह में तापमान 10 डिग्री सेग्रे० तक कम हो सकता है।

वनों का एक प्रमुख उत्पाद लकड़ी भी है। इस लकड़ी का प्रयोग एक तरफ जहाँ ऊर्जा के रूप में किया जाता है वहीं दूसरी तरफ इसका प्रयोग फर्नीचर के रूप में भी किया जाता है। हमारे देश में 20 प्रतिशत ऊर्जा की पूर्ति वनों द्वारा ही होती है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह 80 प्रतिशत है। एक अध्ययन के अनुसार 15 करोड़ टन लकड़ी प्रतिवर्ष ईंधन के लिए काटी जाती है जबकि औद्योगिक क्षेत्र में लकड़ी की माँग 47 करोड़ घन मीटर है।

आज के बदलते परिवेश में तो वृक्षों का महत्व और भी बढ़ता जा रहा है। पादपों की हरियाली इस तनावग्रस्त जीवन में लोक मानस को प्रसन्न रखती है। वन में जहाँ आत्मिक शान्ति मिलती है वहीं इनकी प्राकृतिक नैसर्गिकता बरबस ही मन को मोह लेती है। वृक्षों की छाया में बैठकर लोक के स्वर गीत बनकर निकलते हैं। अंततः एक नवीन क्रियात्मक वातावरण का निर्माण होता है।

इस सबके बावजूद आज के भौतिकवादी युग में मानव तुच्छ लाभ के लिए उसके अनेक लाभों से वंचित होता जा रहा है। वह इस ओर कभी ध्यान नहीं देता कि अंधाधुंध कटाई और अविवेकपूर्ण दोहन से उसे इस कार्य का मूल्य भविष्य में कई गुना चुकाना पड़ सकता है। यह स्थिति भी उस समय है, जबकि एक जीवित वृक्ष को काटने पर उसके वास्तविक मूल्य का मात्र 0.3 प्रतिशत ही मिल पाता है।

वनों के हो रहे निरन्तर ह्रास से परोक्ष एवं अपरोक्ष दोनों प्रकार से हानि हो रही है। एक तरफ जहाँ पर्यावरण को हानि पहुँच रही है वहीं दूसरी तरफ बाढ़, सूखा, मृदा-अपरदन आदि के कारण मृदा-उत्पादकता में भी कमी आ रही है। कुछ लोगों की आजीविका तो वनों पर ही आधारित होती है। पशुओं के लिए आवश्यक चारे का 30 प्रतिशत वनों से ही प्राप्त होता है। वनों से प्रत्येक वर्ष लगभग 27 करोड़ टन ईंधन, 28 करोड़ टन चारा और लगभग 12 लाख घन मीटर इमारती लकड़ी तथा लकड़ी के अलावा अन्य वन्य उत्पाद प्राप्त होते हैं। एक अनुमान के अनुसार सामान्य बाज़ार मूल्य पर सब वस्तुओं का मूल्य लगभग तीन अरब रुपए बैठता है।

वनों की महत्ता को देखते हुए सरकारी व गैर-सरकारी स्तर पर प्रयास सतत चल रहे हैं। वनों के क्षेत्रफल में वृद्धि हेतु के० एम० मुंशी द्वारा सन् 1950 में शुरू किया गया कार्यक्रम ''वन महोत्सव'' काफी महत्वपूर्ण है। वनों के संरक्षण हेतु चलाया गया आन्दोलन ''चिपको आन्दोलन'' भी काफी लोकप्रिय हुआ है। हमारा देश विश्व के उन गिने-चुने देशों में है जिसकी अपनी वन नीति है। हमारी वन नीति 1894 में ही बन गई थी। राष्ट्रीय वन नीति (1988) में वनों के संरक्षण, पुनरुद्धार और विकास के साथ-साथ उनकी आर्थिक क्षमता के उपयोग का लक्ष्य रखा गया है।

राष्ट्रीय वानिकी कार्यक्रम एक ऐसा कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य सन् 2020 तक देश के 33 प्रतिशत भू-भाग को वृक्षों से आच्छादित करना है। इस कार्यक्रम में सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी और वृक्षों की खेती को बढ़ावा देने की बात कही गई है। वानिकी के विस्तार और पर्यावरण के बारे में जागरूकता लाने का प्रयास किया जा रहा है। पर्यावरण शिक्षा को अब स्कूली तथा विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में भी शामिल किया जा रहा है।

इस प्रकार 'जीवों के प्राण वन' के विकास एवं संरक्षण का प्रयास सतत चल रहा है; किन्तु इस अभियान की सफलता हेतु देश के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह इस पुनीत कार्य में अपना योगदान दे। यदि सभी को स्वच्छ एवं शुद्ध वायु, जल व भोजन चाहिए तो वृक्षों के प्रति की जा रही अनदेखी से बचना होगा। इसके लिए हमें यह सदैव ध्यान में रखना होगा कि यदि वृक्ष न होंगे तो हम भी न होंगे। अतः हमें बिना समय बिताये वसुन्धरा के परिधान वनस्पतियों को संरक्षित एवं संवर्धित करने के कार्य में पूर्ण मनोयोग के साथ जुट जाना होगा।

—संयुक्त मंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

नर्मदा बचायें

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

आज पर्यावरण प्रदूषण की चपेट में सारा विश्व आ गया है। यह समस्या अपने देश भारत में भी कुछ कम ख़तरनाक नहीं। व्यक्तिगत लोभ और वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में हम प्रकृति के साथ निरंतर अत्याचार किए जा रहे हैं, किन्तु प्रकृति को पुनर्स्थापन का अवसर नहीं दे रहे हैं।

वर्तमान् में हमारे पास ऐसी उन्नत वैज्ञानिक तकनीकें हैं जिनके माध्यम से हम नदियों पर बाँध बना सकते हैं और नदियों की जलधारायें मोड़ सकते हैं। किन्तु ऐसा करके हम हरे-भरे मैदानों को अनन्त जलाशयों में बदल डालेंगे। हमें विज्ञान ने बाँध बनाने की प्रौद्योगिकी तो दी है पर उसके दूरगामी परिणामों के आकलन की दृष्टि नहीं दी है। इसका जीता-जागता उदाहरण है नर्मदा नदी पर बाँध बनाने की योजना।

1960 में नर्मदा और उसकी सहायक नदियों पर 30 बड़े बाँध और हज़ारों छोटे-छोटे बंधाओं को बनाने की योजना थी। बारगी और तवा बाँधों का निर्माण पूरा हो चुका है और लगभग आधे दर्जन बाँध बनाने का कार्य चल रहा है। इसका दुष्परिणाम यह होगा कि लगभग आधी नर्मदा नदी का जल रुके हुए जलाशय में बदल जायेगा और यहाँ की पारिस्थितिकी असंतुलित हो जायेगी।

एक आकलन के अनुसार इसके दूरगामी परिणाम इतने भयानक होंगे जिनकी एक बार गिरफ़्त में आने के बाद छुटकारा कठिन ही नहीं, दुष्कर होगा। यहाँ कुछेक संभावित दुष्परिणामों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

- लगभग 50,000 हेक्टेयर हरे-भरे वन क्षेत्र और लगभग इतनी ही कृष्य भूमि जलमग्न हो जायेगी।
- पत्थर, बालू और पोषकों का ढोना बाधित होगा जिससे खेती और मछली-पालन प्रभावित होगा।
- प्रवासी मछलियों, घड़ियालों और कछुओं के साथ ही साथ एक प्राचीन जल-तंत्र नष्ट हो जायेगा।
- जंगली प्राणी या तो पानी में डूब जायेंगे और यदि बचे तो भी उन्हें अपना घर-जंगल-छोड़ना होगा।
- महेश्वर और पश्चिमी होशंगाबाद सहित अनेक पुरातत्वीय महत्त्व के स्थल हमेशा के लिए समाप्त हो जायेंगे।
- लगभग 5 लाख कृषक, नाविक और आदिवासी

घड़ियाल बचायें

वैज्ञानिक साक्ष्यों के अनुसार नर्मदा नदी में घड़ियाल पिछले 20 लाख वर्षों से रहते आ रहे हैं। किन्तु अब घड़ियाल (*Crocodylus palustois*) की संख्या 100-200 और खारे पानी वाले घड़ियाल (*Crocodylus porosus*) की संख्या बहुत थोड़ी रह गई है।

एक अनुमान के अनुसार समूचे भारत में वन्य मगर की कुल संख्या 10,000 के लगभग होगी। नदी में प्रदूषण के कारण और बड़े बाँधों से तेज़ी से पानी छोड़े जाने के कारण घड़ियालों को ख़तरा है। इनकी संख्या में कमी आती जा रही है। घड़ियालों का अवैध शिकार भी काफी हद तक इनकी संख्या में कमी का जिम्मेवार है। नदी में सड़ी लाशों को खाकर घड़ियाल नदी का जल में साफ रखते हैं, किन्तु इनकी संख्या में कमी से नदी-जल-प्रदूषण और भी बढ़ रहा है। अतएव नर्मदा को निर्मल रखने के लिए घड़ियालों के न केवल सुरक्षा प्रदान करनी होगी, वरन् उनकी संख्या भी बढ़ानी होगी।

–प्रे० च० श्रीवास्तव

बेघर हो जायेंगे और उनका भविष्य भी अनिश्चित होगा। अनुपयुक्त पुनर्वास योजनायें क्षति की भरपाई नहीं कर पायेंगी।

- मछलियों की संख्या में कमी के कारण खम्बाट की खाड़ी के समुद्री जल में मछलियाँ पकड़ने वाले मछुआरे भी निश्चित रूप से प्रभावित होंगे।
- नदी के किनारे हज़ारों की संख्या में हिन्दू मंदिर, धर्मशालायें पानी में डूब जायेंगी। समाप्त हो जायेगी "परिक्रमा" की प्राचीन परम्परा और इसी के साथ गाँवों के लोग, जो तीर्थयात्रियों की सेवा से रोज़ी-रोटी कमाते आयें हैं, विस्थापित हो जायेंगे।
- शताब्दियों से पवित्र नर्मदा नदी का मौखिक इतिहास भी नष्ट हो जायेगा, क्योंकि इसे सुनने और सुनाने वाले दोनों ही नहीं रह जायेंगे।
- विशाल जलकुण्ड मलेरिया, दस्त जैसे संक्रामक रोगों को फैलाने वाले रोगवाहकों (वेक्टर) के "फूलने-फलने" के लिए बढ़िया वातावरण/पर्यावरण है।
- बड़े बाँधों के भार विवर्तनिकीय प्रभावी क्षेत्रों में भूकम्प पैदा करते हैं।

नर्मदा जीवंत नदी है। 1,312 किलोमीटर लम्बी यह नदी हज़ारों हिन्दू देवी-देवताओं के मंदिरों से अलंकृत है। गाँवों और नगर-निवासियों के लिए नर्मदा जीवनदायिनी "माँ" है। प्यार और श्रद्धा से लोग इसे "नर्मदा माई" पुकारते हैं। नर्मदा का शाब्दिक अर्थ है– "आनन्द की नदी"। हिन्दू धर्म ग्रंथ पुराणों के अनुसार नर्मदा की उत्पत्ति भगवान "शिव" के पसीने की एक बूँद के धरती पर गिरने से उस समय हुई, जब वे पहाड़ पर नृत्य कर रहे थे। कहते हैं नर्मदा इतनी तेज़ी से उछलती हुई बहती हैं कि उन्हें स्वर्ग का भी कोई "राजकुमार" रोक नहीं पाया। इसी कारण नर्मदा को "रेवा" भी कहते हैं। अमरकण्टक, जहाँ से नर्मदा निकली है, समुद्र के स्तर से 1,057 मीटर ऊँचा है। हज़ारों-लाखों तीर्थ-यात्री प्रतिवर्ष पवित्र नर्मदा में स्नान करने आते हैं, और मुख्य मंदिर में नर्मदा माई की मूर्ति का दर्शनलाभ करते हैं। यह मूर्ति काले असिताश्म (बसल्ट) पत्थर से बनी हुई है।

अमरकण्टक से पश्चिम दिशा की ओर सुन्दर बांगरों (घास स्थलों) और ऊँचे साल वनों से होती हुई नदी आगे बढ़ती है। कुछ किलोमीटर के बाद 24 मीटर ऊँचे कपिलधारा झरने में मिल जाती है। इसके नीचे विशाल घना जंगल है। फिर तो उछलती, कूदती, कल-कल करती यह नदी कुछ महीनों की लम्बी यात्रा के बाद सागर में मिल जाती है।

नर्मदा की 99,000 वर्ग किलोमीटर घाटी क्षेत्र-विन्ध्य पर्वतमाला और मैकाल, महादेव और सतपुड़ा– के बीच पहाड़, जंगल और जलधारा मनोरम दृश्य उपस्थित करती हैं। अपने वेग के कारण यह नदी पत्थर, बालू और मिट्टी लगातार पहाड़ों से काट-काट कर समुद्र में ले जा रही है। इस प्रकार चाहे जबलपुर के संगमरमर हों अथवा लाखों वर्षों में निर्मित उपजाऊ भूमि, सभी नर्मदा नदी की देन हैं। इससे जीवन के उद्भव पर भी प्रकाश पड़ता है। डेक्कन कॉलेज, पुणे के पुरातत्वविद् डॉ० जी० एल० बदाम कहते हैं– "गौर, भैंसा और कुछ हिरनों के जीवाश्मों के विश्लेषण से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि इन जानवरों का जन्म भारतवर्ष में ही हुआ था।" डॉ० बदाम के अनुसार दरियाई घोड़ा और हाथी की 22 प्रजातियाँ कभी यहाँ विचरण करती थीं। यही नहीं, अरुण सोनाकिया ने तो होशंगाबाद के निकट हाथनोरा से 150,000-200,000 वर्ष पुराने मानव जीवाश्म को ढूँढ निकाला। यह भारत में मानव का प्राचीनतम जीवाश्म है। इससे यह सिद्ध होता है कि नर्मदा घाटी सभ्यता प्राचीन काल से प्रारंभ होकर आज भी जीवित है।

लगभग 100 वर्ष पूर्व नर्मदा घाटी की खोज में आये कैप्टेन जे० फॉर्सिथ ने यहाँ की जैव-विविधता का मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया है। अपनी पुस्तक "जंगल बुक" लिखने के लिए रुडयार्ड किपलिंग ने महादेव पहाड़ियों की यात्रा की। यहाँ के जंगल छोटे-बड़े नालों की सहायता से नर्मदा को भरते रहते हैं। किन्तु यह भी सच है कि मानव गतिविधियों के

कारण नर्मदा संकटापन्न हो गई हैं। अब पहले जैसे जंगल और जैव-विविधता नहीं रही। नदी में घड़ियाल और जंगलों में वन्यजीव कम होते जा रहे हैं। फिर भी अनेक प्रकार के जंगली जानवर दिख जाते हैं।

गुजरात के सरदार सरोवर बाँध से तो ऐसा लग रहा है जैसे नर्मदा घाटी सभ्यता विलुप्त हो रही हो। पिछले वर्ष मानसून के समय नर्मदा नदी में आय बाढ़ के कारण पानी पहाड़ों की ऊँचाई तक पहुँच गया और डॉमखेदी और जालसिन्धी गाँव तबाह हो गए थे। डॉमखेदी 80 लाख आबादी वाला भीलों का निवास है। दोनों ही गाँवों के पानी में डूब जाने का ख़तरा उत्पन्न हो गया था, किन्तु जलस्तर और नहीं बढ़ा। भविष्य में क्या स्थिति हो सकती है, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

पर्यावरणविद् एक स्वर से इन बाँधों के निर्माण को रोक देने की माँग कर रहे हैं। सरकारी नीति कुछ और है। अब समय वाद-विवाद और आन्दोलन का नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी सरकारी नीतियाँ, हमारे दैनंदिन कार्य और हमारी बृहत्तम योजनायें जब क्या, क्यों और कैसे की कसौटी पर कसी जाकर अपनाई जायेंगी तभी वह वैज्ञानिक चिंतन हमारे देश की प्रगति में अपना पूर्ण गुणात्मक योगदान दे सकेगा।

–स्थानीय अंतरंगी, विज्ञान परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

(पृष्ठ 32 का शेष)

ऐसा ही एक क्षेत्र है कचरे से कम्पोस्ट का उत्पादन। कूड़े-करकट के कार्बनिक पदार्थों पर केंचुए पालकर उनसे प्राप्त खाद कम्पोस्ट कहलाती है। कूड़े करकट में विद्यमान कागज़, सूती वस्त्र, पत्ती, डंठल, रसोई की छीलन, गोबर, रोटी के टुकड़े लकड़ी की वस्तुएं, केंचुओं का अच्छा भोजन हो सकती हैं। वर्मी कम्पोस्ट के लिये केंचुए को 'यूड्रिलस यूजेनी', 'ईसेनिया फेटिडा' और 'पेरियोनिकस एक्सकेवेटस' जातियाँ उपयोगी पाई गयी हैं। कार्बनिक पदार्थों को खाने के बाद केंचुए मिट्टी की गोलियाँ जैसे जो पदार्थ निकलाते हैं वह उच्च कोटि की खाद होती है जो पौधों के लिये अत्यन्त उपयोगी होती है। इस खाद में जैविक कार्बन 9.15% से 17.68 प्रतिशत, नाइट्रोजन 0.5 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.1 प्रतिशत से 0.3 प्रतिशत, पोटेशियम 0.15 प्रतिशत से 0.56 प्रतिशत, सोडियम 0.06 प्रतिशत से 0.3 प्रतिशत के अलावा अनेक आवश्यक सूक्ष्म तत्त्व विद्यमान होते हैं। यह खाद उर्वरक का अच्छा और प्रदूषण रहित विकल्प है जिसे बढ़ावा देकर कचरा निपटान के साथ-साथ अच्छी उपजाऊ खाद और रोज़गार प्राप्त हो सकता है। देश के अनेक कृषि विश्वविद्यालयों में वर्मी कम्पोस्टिंग पर शोध और प्रशिक्षण दिये जा रहे हैं।

कचरे सम्बन्धी तमाम समस्याओं की तह में हमारी ग़लत सोच जिम्मेदार है। ऐसे कितने लोग हैं जो अपने परिवेश की साफ-सफाई की ओर ध्यान रखते हैं ? लोग कहीं भी मूंगफली, केले या अन्य चीजें खाकर उनका छिलका बिखेर देते हैं। यदि कोई ऐतराज करे तो लोग झगड़े पर आमादा हो जाते हैं। गली में या दरवाज़े के सामने कुत्ता, बिल्ली मर जाय तो खुद खींचकर ठिकाने नहीं लगा सकते, भले ही उसकी दुर्गन्ध में उन्हें रहना पड़े। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक ध्यान बच्चों की शिक्षा पर देना होगा। पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाना चाहिए कि बच्चों में बचपन से ही सफाई का संस्कार पड़े। वे अपनी व्यक्तिगत सफाई, घर और पड़ोस की सफाई के प्रति जागरूक हो सकें। यही नहीं, उच्च शिक्षा में भी कचरा प्रबन्धन का एक स्वतंत्र विषय पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।

–ग्रामोदय, प्रकाशन
घूरपुर, इलाहाबाद-212110

हिन्दी विज्ञान पत्रकारिता : डॉ० मनोज कुमार पटैरिया

प्रकाशक : तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

संस्करण : 2000, मूल्य 350.00 रु०

यह वर्ष 1990 में इसी नाम से प्रकाशित पुस्तक का द्वितीय संस्करण है। इसमें नई प्रस्तावना जुड़ी है जिसमें लेखक ने विगत दस वर्षों में विज्ञान पत्रकारिता में हुए प्रयोगों की, विज्ञान की नई पत्रिकाओं एवं नई-नई विधाओं की चर्चा की है। लेखक ने 'क्या हुआ क्या नहीं हुआ' के अन्तर्गत भावी प्रगति की चर्चा की है।

इसमें सन्देह नहीं कि यह पुस्तक अपने प्रकार की एकमात्र पुस्तक रही है जिसका उपयोग लेखकों, संगोष्ठियों के आयोजनकर्ताओं ने धड़ल्ले से किया है। चूँकि ऐसे लोगों ने पुस्तक का उल्लेख नहीं किया इसलिए डॉ० पटैरिया ने अन्त में कुछ कठोर शब्दों का भी इस्तेमाल किया है।

यद्यपि डॉ० पटैरिया ने पुराने संस्करण में कुछ अधिक संशोधन या परिवर्तन नहीं किये किन्तु पुस्तक का पुनः प्रकाशन स्वागत योग्य है। यह विज्ञान पत्रकारिता के विविध आयामों के विषय में मार्गदर्शिका का काम करती रहेगी ऐसा विश्वास है।

अब डॉ० पटैरिया जिस पद पर हैं उस पर कार्य करते हुए आशा है वे इस पुस्तक के कलेवर को एकदम नया स्वरूप दे सकेंगे।

—डॉ० शिवगोपाल मिश्र

डॉक्टर मुझे हँसा दो, डॉ० अक्षय कुमार वर्मा

प्रकाशक : अर्जीत प्रकाशन, हरीगंज, खण्डवा/चेन्नई

पृष्ठ संख्या : 106 + 8, प्रथम संस्करण : 1999, मूल्य : 120/- रुपये

समीक्ष्य पुस्तक प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० अक्षय कुमार वर्मा के लम्बे चिकित्सीय जीवन के दौरान तरह-तरह के रोगियों के विभिन्न प्रकार के रोगों के सफल इलाज का लेखा जोखा है। डॉ० वर्मा ने बड़े ही सरल, रोचक भाषा-शैली वाले छोटे-छोटे लेखों के माध्यम से एक ''अद्भुत'' पुस्तक की रचना की है। यह पुस्तक आम लोगों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। यत्र-यत्र उर्दू भाषा के ''शेरों'' से रोचकता में वृद्धि हुई है। एक बार प्रारंभ करने के बाद पुस्तक पढ़ना रोका नहीं जा सकता है। इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इससे चिकित्सक भी लाभ उठा सकते हैं। डॉ० वर्मा ने अपनी स्वयं की कहानी भी लिखी है। पुस्तक में जले हुए रोगियों के लिए, मलेरिया और उसकी रोकथाम, दमा का दमन, बम विस्फोट और उसके बाद, एड्स का भारत पर हमला, पेट में बालों की गेंद जैसे अनेक विषयों पर कलम चलाई है। मैं अधिक कुछ न कह मात्र इतना ही कहना चाहूँगा कि इस पुस्तक को अवश्य ही पढ़ना चाहिए और दूसरों को भी पढ़ाना चाहिए। पुस्तक ''गागर में सागर'' की उक्ति को चरितार्थ करती है।

—प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पत्रिका : जीवन्ती (प्राकृतिक विज्ञान व संरक्षण की शोध-पत्रिका)

सम्पादक : डॉ० जे० एस० यादव

अंक : 16, वर्ष 1998; पृष्ठ 60, **मूल्य** : व्यक्तिगत 50 रुपये; संस्थागत 100 रुपये

समीक्ष्य वार्षिक शोध-पत्रिका ''जीवन्ती'' का यह अंक देखकर अच्छा लगा। हिन्दी में प्रकाशित होने वाली शोध-पत्रिकाओं (विज्ञान विषयक) की संख्या को तो उंगलियों पर गिना जा सकता है। जहाँ एक ओर हिन्दी भाषा में शोध-पत्र तैयार करना साहस का कार्य है वहीं शोध-पत्रिका का प्रकाशन अत्यन्त साहस का कार्य है। संभवतः इसी कारण इस प्रकार की पत्रिकाओं की संख्या न्यून है। इसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहें ? इस दृष्टि से ''जीवन्ती'' का प्रकाशन सुखद अनुभूति है। 64 पृष्ठों की इस पत्रिका में कुल 9 शोध-पत्र सम्मिलित हैं--

1. लड़कियों में अस्थि-परिपक्वता का अध्ययन और महत्व, 2. मधुमक्खियों के शत्रु-- भाग 1 माईट, 3. करौली के पक्षियों की प्रेक्षण सूची, 4. विकर्षकों का मधुमक्खियों पर प्रभाव, 5. भूमिगत खारे पानी का भृगल मछली के प्रजनन तथा शारीरिक वृद्धि पर प्रभाव, 6. ऐलीलोपैथी : क्रिया, पारिस्थितिक प्रभाव व उपयोग, 7. बेल : एक बहुउपयोगी फल, 8. संध्या का मधुमक्खियों की वापसी पर प्रभाव और, 9. कुरुक्षेत्र स्थित बारहमासी सीवर ताल में शरद ऋतु के दौरान पाये जाने वाले पक्षियों के बारे में साधारण विश्लेषण।

शोध-पत्रों की भाषा-शैली और विषयवस्तु सरल, सुबोध एवं सामयिक है। साथ में आवश्यकतानुसार तालिकायें भी दी गई हैं। संदर्भ (References) और सारांश (Absatract) अंग्रेज़ी में दिए गए हैं। इससे अंग्रेज़ी जानने वाले अहिन्दी भाषा-भाषी निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। पूरी पत्रिका में मात्र एक शोध-पत्र के साथ (पृष्ठ 50-51 के बीच में) एक फोटो प्लेट पर 9 पक्षियों के रंगीन चित्र दिए गए हैं।

–प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग,
सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद-2

(पृष्ठ 40 का शेष)

मणि, श्री दयाशंकर पाण्डेय, डॉ० अजय कुमार, श्री प्रदीप पाण्डेय, डॉ० बी० एस० गहलौत आदि उपस्थित थे।

राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस पर गोष्ठी का आयोजन

विज्ञान परिषद् द्वारा 11 मई को राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी दिवस के अवसर पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता रसायन विभाग के अवकाशप्राप्त आचार्य प्रो० जगदीश सिंह चौहान ने की।

विज्ञान लेखक श्री शुकदेव प्रसाद ने आज़ादी के बाद भारत द्वारा विभिन्न क्षेत्रों विशेषकर दूरसंचार तथा परमाणु ऊर्जा के क्षेत्रों में हुए विकास के बारे में बताया। डॉ० दिनेश मणि ने कहा कि प्रौद्योगिकी के विकास को मानवता के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा नैतिक पक्षों से जोड़ कर भविष्य के लिए मार्ग निर्धारित करना चाहिए। डॉ० के० एन० उत्तम ने अपने संबोधन में नाभिकीय संलयन की तकनीक द्वारा विद्युत-उत्पादन की दिशा में किए जा रहे प्रयोगों की जानकारी दी तथा लेसर तकनीक के बढ़ते उपयोगों के बारे में बताया। डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ने कहा कि प्रौद्योगिकी ऐसी होनी चाहिए जो हमें अंधकार से प्रकाश तथा असत से सत्य की ओर ले जा सके एवं मानवता को विनाश से बचाये। विज्ञान परिषद् प्रयाग के उप सभापति डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी ने भारत की प्राचीन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों की चर्चा करते हुए कहा कि प्रौद्योगिकी अपने आप में अच्छी या खराब नहीं होती वरन् उसे किस रूप में उपयोग में लाया जाता है यह उसकी गुणवत्ता को निर्धारित करता है। परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने विज्ञान परिषद् द्वारा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रचार-प्रसार की दिशा में किए जा रहे कार्यों की चर्चा करते हुए विज्ञान लेखकों का आह्वान किया कि वे सम-सामयिक विषयों पर सदैव लिखते रहें, जिससे जन सामान्य उसका लाभ उठा सकें।

सभाध्यक्ष डॉ० जे० एस० चौहान ने इस प्रकार के आयोजनों की आवश्यकता एवं महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि प्रौद्योगिकी मानवता के हित में होनी चाहिए तथा उससे आम आदमी को लाभ मिलना चाहिए।

अंत में संचालक देवव्रत द्विवेदी ने सभी के प्रति आभार व्यक्त किया। इस अवसर पर श्री प्रेमचंद्र श्रीवास्तव, डॉ० राजकुमार दुबे, सर्वश्री चंद्रभान सिंह, बलराम यादव, संतोष कुमार सिंह आदि उपस्थित रहे।

–देवव्रत द्विवेदी

पं० गंगानाथ झा स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

विज्ञान परिषद् प्रयाग के तत्वाधान में वर्ष 2000 का पं० गंगानाथ झा स्मृति व्याख्यान 29 अप्रैल को परिषद् सभागार में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर नागरी प्रचारिणी सभा काशी के प्रधानमंत्री पं० सुधाकर पांडेय ने 'मध्यकालीन हिन्दी पांडुलिपियों में विज्ञान' विषय पर व्याख्यान दिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र, केंद्र निदेशक, आकाशवाणी इलाहाबाद ने की।

कार्यक्रम का आरम्भ डॉ० प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' द्वारा सरस्वती वन्दना तथा राष्ट्रभाषा वन्दना द्वारा हुआ। डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने पं० गंगानाथ झा का जीवन परिचय प्रस्तुत किया। परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने श्री पाण्डेय का स्वागत किया। डॉ० अशोक कुमार गुप्त तथा डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने अतिथियों को माल्यार्पण किया।

अपने उद्‌बोधन में पं० सुधाकर पाण्डेय ने कहा कि ज्ञान, विज्ञान से सम्बन्धित देवनागरी लिपि में निवद्ध लाखों पाण्डुलिपियाँ अभी तक अप्रकाशित हैं जिनका हम उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। औपनिवेशक काल में बहुत से दुलर्भ प्राचीन ग्रन्थों को अंग्रेज उठाकर ले गये और उन ग्रन्थों के ज्ञान से उन्होंने हमारा बौद्धिक शोषण करना शुरू कर दिया। आज यत्र-तत्र विखरी पड़ी पाण्डुलिपियों के संवर्धन एवं संरक्षण की जरूरत है। साथ ही भारत सरकार की जो पाडुलिपियां बाहर पड़ी हैं उन्हें भी वापस मंगाया जाना चाहिए। हिन्दी में अकेले आयुर्वेद के ऊपर लिखे गये 25 हजार से अधिक मूल्यवान ग्रन्थ हैं जिनका हम सदुपयोग नहीं कर पा रहे हैं।

श्री पाण्डेय ने कहा कि बाबर से लेकर औरंगजेब काल तक हर विषय में लिखने की परम्परा न्यूनाधिक रूप में विद्यमान थी। युद्ध व शिल्प विज्ञान व आयुर्वेद के अप्रतिम ग्रन्थ लिखे गये। "जहांगीरनामा" से पता चलता है कि जहांगीर विज्ञान प्रेमी भी था। उसने गंगाजल की पवित्रता का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया तथा उसमें पाये जाने वाले जीवाणुओं पर शोध करवाया। वह स्वयं गंगाजल का सेवन करता था।

श्री पाण्डेय ने कहा कि कृषि, अर्थशास्त्र, शिल्प विज्ञान, आयुर्वेद, संगीतशास्त्र, कामशास्त्र, पशु-चिकित्सा आदि विषयों का ज्ञान देवनागरी लिपियों में मौजूद है। इन हस्तलिपियों में यात्रा विवरण साहित्य की परम्परा का ज्ञान भी निहित है। उन्होंने कहा कि ये हस्तलेख चारों तरफ बिखरे पड़े हैं परन्तु हम पश्चिम का अन्धानुकरण करते हुए अपनी ज़मीन से कटते जा रहे हैं। इन हस्तलेखों में जो ज्ञान बिखरा पड़ा है उसे विश्वविद्यालय स्तर पर भी समेटने का प्रयास किया जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि धर्म व विज्ञान का जब-जब समन्वय हुआ है देश विकसित हुआ है। राजनीतिक दांव-पेंच से दूर आज साहित्य को संरक्षण देने की जरूरत है। विदेशी मानसिकता के चलते भारतीय संस्कृति का लोप होता जा रहा है। उन्होंने कहा कि हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी के विकास के लिए हर व्यक्ति को स्वयं चिराग बनने की जरूरत है। अपने अध्यक्षीय भाषण में आकाशवाणी इलाहाबाद के केन्द्र निदेशक डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र ने श्री पाण्डेय के सुझावों से सहमति व्यक्त करते हुए इस दिशा में शीघ्र उचित कदम उठाने की आवश्यकता बताई।

इस अवसर पर डॉ० जगदीश गुप्त तथा परिषद् के पूर्व सभापति डॉ० दिव्यदर्शन पन्त ने भी अपने विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम के अंत में श्री पृथ्वी नाथ पाण्डेय की तीन पुस्तकों का लोकापर्ण किया गया। कार्यक्रम का संचालन देवव्रत द्विवेदी ने किया।

इस अवसर पर सर्वश्री डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी, डॉ० जी० एल० तिवारी, सर्वश्री हरि मोहन मालवीय, प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, दर्शनानन्द, डॉ० दिनेश (शेष पृष्ठ 39 पर)

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग,
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

जुलाई 2000

विज्ञान

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 86 अंक 4
जुलाई 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत
1,000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक
अरुण राय
दी कम्प्यूटर कम्पोजर
7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद-211002

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001

विषय सूची

स्वर्गीय प्रो० रमेश चन्द्र कपूर

डॉ० ओम प्रभात अग्रवाल

भारत के महान वैद्युत रसायनज्ञ एवं सुपरिचित हिन्दीसेवी वैज्ञानिक प्रो० रमेश चन्द्र कपूर नहीं रहे। गत 7 मई 2000 को उनकी आत्मा पार्थिव शरीर को छोड़कर परमात्मा में विलीन हो गई। कैन्सर जैसी गंभीर बीमारी ने अंततः उनकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। विश्व भर में फैले उनके अनगिनत प्रशंसक और विद्यार्थी तथा तीन पुत्रों, एक पुत्री, पत्नी कृष्णा एवं नाती-पोतों से भरा पूरा परिवार, सभी कई माह से इस घड़ी को टालने की प्रार्थना प्रभु से करते रहे, परंतु क्रूर काल के आगे किसी की न चल पाई।

प्रो० कपूर का जन्म 22 दिसंबर 1927 को उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर में हुआ था यद्यपि बाद में उनका कार्यक्षेत्र इलाहाबाद और जोधपुर बने। निश्छल और बच्चों जैसा निर्दोष चेहरा, प्रफुल्लित व्यवहार और सदैव मुस्कराते रहने वाले प्रो० कपूर इतने सरल थे कि कोई जब उनसे मिल रहा होता तो उसे आभास ही नहीं होता था कि वह एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिक से बातें कर रहा है। अपने विद्यार्थियों पर वे जीवनपर्यंत स्नेह-सुधा बरसाते रहे और उनकी उपलब्धियों पर उन्हें बधाई देना कभी भी नहीं भूले। इन पंक्तियों के लेखक को, जिसने उन्हीं के श्रीचरणों में बैठ कर वैद्युत वैश्लेषिक रसायन के प्रारंभिक पाठ पढ़े उनसे पितृतुल्य प्यार तथा जीवन के प्रत्येक मोड़ पर मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ। उनके निर्देशन में पीएच० डी०, डी० फिल पाने वाले सभी 41 एवं डी० एस-सी० प्राप्त करने वाले दोनों विद्यार्थियों के मानस पटल पर प्रो० कपूर का ऐसा ही व्यक्तित्व सदैव जीवित रहेगा।

प्रो० कपूर ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० (1944), एम० एस-सी० (1946), डी० फिल० (1948) एवं डी० एस-सी० (1957) डिग्रियाँ प्राप्त कीं। शोध के लिए उन्होंने अमेरिका के दो विश्व-विद्यालयों-मिनेसोटा (1953-1956) एवं ओक्लाहोमा स्टेट विश्वविद्यालय (1962-63) को भी चुना। मिनेसोटा में ही प्रो० आई० एम० कोल्तहाफ के साथ कार्य करते हुए उनके शोधक व्यक्तित्व की प्रखरता उजागर हुई। प्रो० कपूर इलाहाबाद वि० वि० में 1947 से 1953 तक प्रवक्ता और 1956 से 1962 तक सहायक प्रोफेसर के रूप में जुड़े रहे तथा 1963 से 1987 तक जोधपुर वि० वि० में प्रोफेसर एवं रसायन विभाग के अध्यक्ष के पद पर कार्यरत रहे। इसी वि० वि० ने उन्हें 1970 में वरिष्ठ प्रोफेसर नामित कर उनको सम्मानित किया। 1986 में जोधपुर वि० वि० के कार्यकारी कुलपति का पद भी प्रो० कपूर ने सँभाला। 1987 से 1989 तक वे ताइवान के वामकांग वि० वि० में विज़िटिंग प्रोफेसर रहे तथा स्वदेश लौटने पर उन्होंने सक्रिय शिक्षण एवं शोध से संन्यास ले लिया। इस दौरान जोधपुर को ही अपने नगर के रूप में अपनाया और वहीं उनका देहावसान भी हुआ।

प्रो० कपूर एक वैद्युत वैश्लेषिक रसायनज्ञ थे तथा उन्होंने पोलैरोग्राफीय एवं वोल्टतामितीय विधियों को शोधकार्य सम्पादन हेतु चुना। उनके शोध के मुख्य विषय थे-कार्बनिक सल्फर एवं विषमचक्रीय यौगिक, धातु आयन एवं संकुल इलेक्ट्रोड भौतिकी तथा अजलीय माध्यमों में इलेक्ट्रोड आचरण। इन्हीं विधियों के सहारे उन्होंने पर्यावरण के क्षेत्र में भी पैर पसारे तथा सूक्ष्म-मात्रिक प्रदूषकों के परिमापन की नई विधियों के विकास एवं जल प्रदूषण तथा उपचार पर यथेष्ठ कार्य किया। कुल मिला कर उन्होंने 147 शोध पत्र प्रकाशित

किये। शोध के संबंध में उन्होंने संसार भर में भ्रमण किया एवं व्याख्यानादि दिये। वैज्ञानिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों के अंतर्गत भी उन्होंने अमेरिका एवं जापान के अनेक विश्वविद्यालयों की यात्रायें कीं। शिक्षण एवं शोध के प्रति सतत समर्पित प्रो० कपूर ने अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय शोध गोष्ठियों में भाग लिया और वैज्ञानिक के रूप में समस्त विश्व को प्रभावित किया।

प्रो० कपूर इंटरनेशनल यूनियन ऑफ प्योर एंड एप्लाइड केमिस्ट्री (IUPAC) नामक सुप्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय संस्था से 1969 से ही सक्रिय रूप से संबद्ध रहे। वे इसके इलेक्ट्रोएनेलिटिकल कमीशन के 1969-73 व 1985-89 की अवधि में सहायक (एसोशियेट) सदस्य तथा 1977-85 की अवधि में टिट्लर सदस्य थे।

वे इसी संस्था की पर्यावरणीय वैश्लेषिक रसायन संबंधी उपसमिति के भी 1987-89 में तथा तत्संबंधी कमीशन के 1989-91 में सदस्य रहे। IUPAC की साधारण सभा की द्विवार्षिक बैठकों में भी वे 1977 (वारसा, पोलैंड), 1979 (डिवोस, स्विटजरलैंड), 1981 (लियुवेन, बेल्जियम), 1983 (लिंगबी, डेनमार्क), 1985 (लियो, फ्रांस) एवं 1987 (बोस्टन, अमेरिका) में सम्मिलित हुये।

प्रो० रमेशचन्द्र कपूर अनेक वैज्ञानिक संगठनों से संबंधित थे। नेशनल अकादमी ऑफ साइंसेज, इंडिया ने तो उन्हें अपना फेलो भी बनाया था। वे इंडियन केमिकल सोसाइटी एवं सीस्ट के भी 'लाइफ फेलो' थे। सीस्ट के तो वे दो बार- 1972 एवं 1979 में - उपाध्यक्ष भी रहे। केमिकल सोसाइटी लंदन ने 1951-54 की अवधि में उन्हें अपना फेलो मनोनीत किया तो अमेरिकन केमिकल सोसाइटी ने 1954 से 1986 तक उन्हें अपना सदस्य बनाये रखा। अमेरिका के 'क्लिनिकल टॉक्सिकोलॉजी' जर्नल के सम्पादक मंडल के वे 1980 से 1982 तक सदस्य रहे और संप्रति 'क्लिनिकल एंड एनवायरानमेंटल रिसर्च' के सम्पादक मंडल के सदस्य की भूमिका का निर्वाह कर रहे थे।

उन्होंने चार पुस्तकें लिखीं। इनमें से दो - 'टॉपिक्स इन इलेक्ट्रोएनेलिटिकल केमिस्ट्री' (ताइवान, 1989) तथा 'प्रिंसिपिल्स ऑफ पोलैरोग्राफी' (भारत, 1991) - वैश्लेषिक रसायन के स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के मध्य अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

विज्ञान के क्षेत्र में अपने उच्चकोटि के योगदान के लिये प्रो० कपूर को बार-बार सम्मानित किया गया। इंडियन साइंस कांग्रेस के जनवरी 1973 अधिवेशन में उन्होंने रसायन खंड के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया तो 1978 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उन्हें राष्ट्रीय प्रवक्ता (नेशनल लेक्चरर) घोषित किया। इंडियन केमिकल सोसाइटी ने वर्ष 1983 के लिये पी० सी० मेमोरियल लेक्चर के लिये तथा वर्ष 1992 में इंडियन साइंस कांग्रेस ने प्रतिष्ठित प्लैटिनम जुबली लेक्चर के लिए उनका मनोनयन कर उनकी अभ्यर्थना की। वर्ष 1980 में मुंबई विश्वद्यालय ने गौरवशाली वेंकटरमण श्रृंखला के भाषण के लिये उन्हें सादर आमंत्रित किया।

पूज्य डॉ० साहब के व्यक्तित्व का एक जाज्वल्य-मान पक्ष यह भी था कि वे जीवनपर्यंत विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी के पक्षधर बने रहे। उनकी हिंदी सेवाएँ अनन्य थीं। 1947 से ही वे हिन्दी विज्ञान अकादमी - विज्ञान परिषद् प्रयाग - के सदस्य रहे तथा 1959 से 1962 तो उन्होंने इस अति प्रतिष्ठित संस्था के प्रधानमंत्री के रूप में भी कार्य किया। वे इस संस्था के मुखपत्र 'विज्ञान' के नियमित लेखकों में से थे तथा परिषद् की डॉ० गोरख प्रसाद स्मृति व्याख्यान-माला के अंतर्गत 1992 में उन्होंने ''स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधानों का मूल्यांकन'' विषय पर अपना व्याख्यान भी प्रस्तुत किया। साठ के दशक में उन्होंने परमाणु विखंडन जैसे जटिल विषय पर हिंदी में इसी शीर्षक से एक पुस्तक लिखी जिस पर उन्हें 1968 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का गौरवशाली पुरस्कार - मंगला प्रसाद पारितोषिक-प्राप्त हुआ। स्मरणीय है कि हिन्दी संसार का यह अति प्रतिष्ठित पुरस्कार है जो विज्ञान के क्षेत्र में उन्हें प्राप्त हो सका है।

प्रो० रमेश चंद्र कपूर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही निश्चित रूप से विलक्षण एवं प्रेरणादायक थे। उनके निधन से वैज्ञानिक समाज एवं हिन्दी जगत दोनों की ही अपूरणीय क्षति हुई है।

श्री वेंकटेश भवन
445-बी (नया नंबर-273)
देव कालोनी, रोहतक-124001

क्लोनिंग

डॉ० लालजी सिंह

विश्व में पहली बार, रोज़लिन इन्स्टीट्यूट के सर इआन विल्मुट के प्रयत्नों द्वारा एक स्तनधारी प्राणी की अभिन्न संतान (क्लोन) ने जन्म लिया। कुछ लोग इसे तकनीकी करिश्मा मानते हैं और कुछ लोग भविष्य में इसके दुरुपयोग से भयभीत हैं।

आखिर क्लोन है क्या ?

क्लोन एक ऐसा जीव है जो दूसरे के सर्वसम (हमशक्ल) है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार ''क्लोन'' का अर्थ है ''लैंगिक तौर पर उत्पन्न पूर्वज द्वारा अलैंगिक विधि से प्रजनित सन्तानें''। ये एक दूसरे से आनुवंशिक एवं भौतिक रूप से अभिन्न होते हैं।

आइए पहले आनुवंशिकी के आधार को समझा जाए। सभी प्राणी कोशिकाओं द्वारा संचरित होते हैं। मानव शरीर में लगभग 10^{13} कोशिकाएं हैं। प्रत्येक कोशिका में एक केन्द्रीय संरचना जिसे केन्द्रक के नाम से जाना जाता है, धागे के समान दिखने वाले गुणसूत्रों को संजोए रखता है। मानव में इन गुणसूत्रों की संख्या 46 है जिसमें से 23 उसे पिता की तरफ से और शेष 23 अपनी माता से प्राप्त होते हैं। गुणसूत्र, आनुवंशिक पदार्थ डी एन ए से बने होते हैं जो शरीर में सभी गुणों एवं क्रियाओं का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक प्राणी की विशिष्टता, गुणसूत्रों के अनियमित समन्वय द्वारा संभव होती है। एक ही माता-पिता द्वारा उत्पन्न संतानों के अलग-अलग दिखने का कारण गुणसूत्रों का यह अनियमित समायोजन ही है। कभी-कभी किसी दम्पत्ति को जुड़वाँ संतानें भी पैदा होती हैं। ये जुड़वाँ बच्चे जो दिखने में समान हों एकांडिक जुड़वाँ या समरूप यमज कहलाते हैं। जैसा कि नाम से जाहिर है ये एक ही अंडे से उत्पन्न होते हैं, जो किसी कारणवश दो कोशिकीय अवस्था में अलग होकर, प्रत्येक एक संपूर्ण सन्तान में विकसित होती हैं। एकांडिक जुड़वाँ बच्चों को अलग तौर पर पहचानना कठिन होता है क्योंकि उन्हें एक जैसा आनुवंशिक पदार्थ प्राप्त हुआ होता है।

अगर हम एक वयस्क व्यक्ति की किसी कोशिका से एक केन्द्रक लेकर, उसका एक अंडे में, जिसका केन्द्रक विलग किया गया हो, प्रतिरोपण करें तो उससे जो संतान उत्पन्न होगी वह उस व्यक्ति के समान ही होगी, इसी क्रिया को क्लोनिंग कहते हैं। हालांकि, सभी कोशिकाओं में लगभग 50 से 100 हजार जीन होते हैं पर विभिन्न कोशिकाएं अलग-अलग जीनों को अभिव्यक्त करती हैं जैसे कि इन्सुलिन का उत्पादन केवल पैनक्रियास (अग्नाशय) में होता है न कि मस्तिष्क में। इससे केन्द्रक की समानार्थकता पर प्रश्न लगता है। पेड़-पौधे तो उनमें पाए जाने वाली एक कोशिका से बनाए जा सकते हैं, पर जन्तुओं में इस क्रिया की संभावना पर अभी प्रश्न चिन्ह लगा है।

क्लोनिंग

गर्डन ने 1975 में प्रदर्शित किया कि उभयचरी (एम्फीबिया) ग्रुप के प्राणियों के भ्रूण से केन्द्रक लेकर क्लोन बनाए जा सकते हैं। पर टेडपोल और वयस्क प्राणियों से लिए गए केन्द्रक इस तकनीक में असफल रहे। अष्टकोशिकीय अवस्था से बड़ी चुहिया के भ्रूण से लिए गए केन्द्रक भी क्लोनोत्पत्ति के लिए अनुपयोगी रहे। इसी बीच कैम्पबेल ने संवर्धित (कल्चर) कोशिकाओं के केन्द्रक से क्लोन भेड़ का विकास किया। उन्होंने अनिषेचित अंडे से एक अन्य कोशिका का संयोजन कर एक कोशिका वंशावली

बनाई। इन कोशिकाओं के केन्द्रक भ्रूण बनाने में सक्षम थे जिसे फिर मादा भेड़ में प्रत्यारोपित किया गया। यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसे परीक्षण भेड़ों में ही सफल रहे।

विल्मुट और साथियों ने (1997) में दर्शाया कि लगभग मिलते जुलते तरीके से छः साल की भेड़ के स्तन से प्राप्त कोशिका के केन्द्रक द्वारा भी क्लोनोत्पत्ति संभव है। इस सफलता के पीछे केन्द्रक और कोशिकाद्रव्य के बीच विकसित अनुकूलता है। प्रत्यारोपित केन्द्रक और कोशिकाद्रव्य के बीच का सामंजस्य, प्रतिरोपित अंडे के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जब भी भ्रूण के केन्द्रक को अंडे में प्रत्यारोपित किया जाता था, डी एन ए के दुगुना होने से गुणसूत्रों की संख्या बदल जाती थी। कोशिका की सुप्तावस्था में उनके केन्द्रकों का प्रयोग कर सर विल्मुट ने समस्या को सुलझा लिया। ऐसे में डी एन ए के दुगुना होने का समय, अंडे की कोशिका द्रव्य अवस्था के अनुकूल होता है जिससे विकृतियाँ पनप नहीं पातीं।

क्लोन बनाने की सफलता अभी कम ही है। केन्द्रक प्रतिरोपण द्वारा विकसित करीब 25 प्रतिशत गायों के भ्रूण, ब्लास्टोसिस्ट तक विकसित होते हैं और इनका लगभग 30 प्रतिशत पूर्ण विकास दिखता है। डॉ० विल्मुट ने 277 स्तन कोशिकाएं और अंडों का प्रयोग किया पर केवल 29 भ्रूण में विकसित हुए और इन में से 13 भेड़ों ने गर्भाधारण किया, पर इसमें से भी केवल एक ने जन्म दिया। बाकी सभी की गर्भ में ही मृत्यु हो गई। ''डॉली'' के गुणों और भविष्य का भी कुछ ठीक से पता नहीं। हाँ यह जरूर पता चला है कि, डॉली की उम्र अभी से छः वर्ष के करीब है।

क्लोनिंग के लाभ

- भेड़ों और गाय-भैंसों की अच्छी नस्लों को क्लोन करना।
- घरेलू पशु (पशुधन) में परिवर्तित जीन के प्रत्यारोपण द्वारा जैव-तकनीक में नए प्रयोग।
- कैंसर तथा अन्य आनुवंशिक रोगों से निदान का अध्ययन एवं बुढ़ापे को टालने के प्रयत्न।
- दवाओं का उत्पादन करने वाली जीनों को प्रत्यारोपित करके पालतू पशुओं से दवाओं का सस्ते में उत्पादन करना।
- बुढ़ापे का गुणसूत्रों पर प्रभाव का अध्ययन।
- इस विधि का अन्य स्तनधारी जीवों पर प्रयोग।
- अंगों के प्रतिरोपण में समरूपी अंगों का विकास।

क्लोनिंग से जुड़े कुछ भय

1. मुर्दे से जीवित पैदा करना : मरे हुए आदमी की किसी कोशिका का केन्द्रक उसका क्लोन बनाने में प्रयोग किये जाने की संभावना, वैज्ञानिक इस बारे में चुप्पी साधे हुए हैं।

2. क्या भय काल्पनिक या आधाररहित है ?: उसमें कुछ तकनीकी कठिनाइयाँ जरूर हैं। एक तो यह कि, डी एन ए अपरिवर्तित रहना चाहिए। मृत्यु के बाद डी एन ए बहुत जल्दी खराब होता है। कोशिकाएं सही अवस्था में होना आवश्यक है। अतः मृत व्यक्ति से क्लोन करना अभी केवल कल्पना मात्र है।

3. मानव क्लोन : डॉली की क्लोनिंग के कारण मानव की क्लोनिंग की संभावना की उम्मीदें जग उठी हैं, जिसके विरोध में कई आवाज़ें भी बराबर उठीं हैं। ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिकी सरकारों ने तो मानव क्लोनिंग पर प्रतिबंध भी घोषित किया है।

क्या मानव क्लोनिंग एक आकर्षक योजना है ?

1. व्यक्तित्व बनने के आधार : क्लोनिंग से आप एकांडिक जुड़वा के समान अभिन्न संतान पैदा कर सकते हैं। आनुवंशिक आधार के अतिरिक्त, माहौल भी व्यक्तित्व के लिए महत्वपूर्ण होता है। आदमी का व्यक्तित्व, सामाजिक, आर्थिक और आस-पास के माहौल से सम्बन्ध रखता है। व्यक्तित्व कभी आनुवंशिक नहीं होता। अतः जरूरी नहीं है कि एक विजेता का क्लोन विजेता ही हो।

II. क्या क्लोन अमर कर देगा : क्लोन भौतिक रूप से सर्वसम जरूर होगा पर मानसिक स्थिति,

अनुभव, सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक मूल्य तो व्यक्तिगत होते हैं। अतः क्लोन आपको अमर नहीं बना सकता। अमर होने का तात्पर्य आपकी यादों और अनुभवों की अखंडता है, जो क्लोनिंग से संभव न हो पाएगा।

III. अन्य निहित भय : जीवनकाल में पर्यावरण में म्यूटाजनों और विकिरणों द्वारा डी एन ए में विकृतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं जो विभिन्न कोशिकाओं में एकत्रित होती रहती हैं। अनिषेचित प्रजनन द्वारा कोशिकाओं में काफी हद तक डी एन ए का सुधार होता रहता है। लैंगिक प्रजनन के दौरान, दो अभिभावकों की जीनों का संयोजन होता है जो एक दूसरे के पूरक होते हैं। अतः ऐसी विकृतियाँ अभिव्यक्त नहीं हो पातीं। अलैंगिक प्रजनन में ऐसी विकृतियों से कोई निदान नहीं दिखता। एकत्रित आनुवंशिक विकृतियों के अभिव्यक्त होने की संभावना मानव क्लोन के विकास में एक बाधा है। (पर हाँ – अंग प्रतिरोपण के लिए मानव क्लोन का विकास कुछ संभावना रखता है।)

IV. नर की आवश्यकता पर प्रश्न चिह्न ? : क्लोनोत्पत्ति के लिए मादा का अंडा अति आवश्यक है। केन्द्रक तो नर या मादा कहीं से भी लिया जा सकता है। इससे नर की आवश्यकता पर प्रश्न चिन्ह लगता है। लैंगिक प्रजनन आनुवंशिकी के विभिन्न संयोजनों से विविधता उत्पन्न करता है जिससे अच्छी नस्लें बनती हैं। अलैंगिक प्रजनन को अपनाना आत्महत्या की तरह होगा। फिर भी बांझ लोग या समलैंगिक लोग भविष्य में क्लोनिंग की तकनीक अपना सकते हैं। हो सकता है औरतें यह जिम्मेदारी सिर्फ अपने ऊपर ले लें लेकिन पुरुष रहित औरतों का यह समाज बहुत ही नीरस होगा।

किसी भी महत्वपूर्ण खोज के दो पहलू होते हैं। नाभिकीय ऊर्जा इसका एक अच्छा उदाहरण है, एक तरफ इसका उपयोग विद्युतोत्पादन या भेषजज्ञान में हो रहा है, दूसरी ओर विश्व को नष्ट करने के लिए एटमबम बन रहे हैं। इसी तरह क्लोनिंग की उपयोगिता भी हो सकती है। इस पर प्रतिबन्ध लगाने से पहले इसके सभी पहलुओं पर गौर करना आवश्यक है।

(पृष्ट 5 का शेष भाग)

आज इक्कीसवीं शती में हम जीवन की अनेकानेक सुविधाओं के लिए टेक्नोलॉजी पर निर्भर हैं। इसमें संदेह नहीं कि सूचना प्रौद्योगिकी और कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी सारे संसार को निकट लाने में सक्षम हैं। इनकी प्रगति को कोई रोक नहीं पायेगा, क्योंकि नयी पीढ़ी के किशोर-किशोरियों की इसमें आस्था भी है और रुचि भी। जीव विज्ञान के क्षेत्र में हो रहे शोध इस ओर इंगित करते हैं कि जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनेक सफलताओं के शीघ्र मिलने की आशा है। यह शताब्दी निश्चित रूप से सूचना-प्रौद्योगिकी और जैव-प्रौद्योगिकी की होगी।

किन्तु हमें नई प्रौद्योगिकियों के माध्यम से वर्तमान की अनेक समस्याओं के समाधान भी ढूँढ़ने होंगे। ये समस्यायें हैं :

- जनसंख्या विस्फोट,
- नाभिकीय ख़तरे,
- दूषित पर्यावरण,
- धरती की सम्पदा के छीजते स्रोत,
- साफ पीने के पानी, बिजली और भूखे-नंगे लोगों के लिए दो जून की रोटी और कपड़े की समस्या आदि।

आइए प्रौद्योगिकी दिवस के अवसर पर हम इस बात का वादा करें कि हम अपनी आज की समस्याओं के समाधान ढूढ़ने में अपना सहयोग, अपना योगदान अवश्य करेंगे।

– पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विभाग,
सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज,इलाहाबाद-211002

पश्चिम में सूर्योदय

डॉ० देवेन्द्र कुमार राय तथा डॉ० श्रवण कुमार तिवारी

हमारे एक व्यवसायी मित्र हाल ही में विदेश-यात्रा से लौटे हैं। उन्होंने बताया कि जब उनका वायुयान लन्दन से टोरान्टो की ओर जा रहा था तो उन्होंने पश्चिम-क्षितिज पर सूर्योदय होते देखा। यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ। हम बचपन से यह देखते आए हैं कि सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम में अस्त होता है। अतः सामान्यतः पश्चिम में सूर्य का उदित होना एक अनहोनी सी बात है। आज की वैज्ञानिक प्रगति के जमाने में बहुत सी अनहोनी घटनाएँ देखने को मिलती हैं। आप अपने किसी मित्र को, जो न्यूयार्क में हो, रविवार को प्रातः लगभग 9.00 बजे फोन पर कोई संदेश भेजिए। मित्र को वह संदेश शनिवार की रात में ही मिल जाएगा। क्या यह अनहोनी नहीं है, आप का भेजा हुआ समाचार एक दिन पहले जी हाँ, आपके भेजने के दिन से भी एक दिन पहले जा पहुँचा। ऐसा कैसे होता है ? आप जानते हैं न्यूयार्क हमारे देश के वाराणसी या इलाहाबाद से हजारों मील दूर पृथ्वी के पश्चिमी गोलार्द्ध में स्थित है। वहाँ पर सूर्योदय भारत की अपेक्षा लगभग 12 घंटे बाद होता है। अतः जब वाराणसी में दिन के 9.00 बजे होंगे तब अमेरिका (न्यूयार्क) में पूर्व रात्रि के लगभग 9.00 बजे होंगे। आपका संवाद फोन द्वारा विद्युत चुम्बकीय तरंगों पर चढ़कर जाता है जिसकी गति एक लाख छियासी हज़ार मील प्रति सेकेन्ड है अतः वह न्यूयार्क में पलक झपकते ही पहुँच जाता है। सूर्योदय की अनहोनी भी कुछ ऐसी ही बात है।

सूर्योदय पश्चिम की ओर कैसे दिखाई पड़ सकता है, इसे समझने के लिए सूर्योदय और सूर्यास्त की घटनाओं पर कुछ गहराई से विचार करना होगा। हम भली भाँति जानते हैं कि पृथ्वी गेंद की भाँति गोल है और वह अपनी कीली पर घूर्णन करती रहती है। अति प्राचीन काल में लोगों को यह सत्य ज्ञात नहीं था। लोग यह समझते थे कि सूर्य पूर्व में उगता है और पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए पश्चिम में डूब जाता है, शायद किसी विशाल पर्वत के पीछे छिप जाता है और रात भर चल कर पुनः अगली सुबह पूर्व में उदित होता है। हम सब जानते हैं कि पृथ्वी अपनी कीली पर भी घूमती है और सूर्य की परिक्रमा भी करती है। पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य स्थिर जान पड़ता है। यहाँ पर हम पृथ्वी की घूर्णन गति पर ही विचार करेंगे। इसे दैनिक गति भी कहते हैं। वास्तव में समय की प्रचलित माप पृथ्वी की इसी गति के आधार पर बनाई गयी है। पृथ्वी जितने समय में अपनी धुरी पर एक घूर्णन (चक्कर) पूरा करती है उसे ''अहोरात्र'' या ''दिन-रात'' कहते हैं। इस अवधि का 24वाँ भाग एक घंटा कहा जाता है। घंटे का साठवाँ भाग एक मिनट और मिनट का साठवाँ भाग सेकेन्ड हैं। पृथ्वी का दैनिक घूर्णन पश्चिम से पूर्व की ओर होता है (या यों कहिए कि प्रातः काल जिस दिशा में सूर्य उदित होता दिखाई देता है (विशेषतः विषुवतीय कटिबंध से) वही दिशा ''पूर्व'' दिशा कही गई है। इस दिशा से विमुख (विपरीत) दिशा ''पश्चिम'' दिशा मानी गई है। इस घूर्णन के दौरान पृथ्वी का जो भाग सूर्य की ओर होता है वहाँ दिन और शेष भाग में रात होती है। चूँकि पृथ्वी गोल है अतएव उस पर सूर्य का प्रकाश सर्वत्र एक समान या एक ही समय नहीं पड़ सकता है। दर्शक की आँखों तथा सूर्य के बीच में पृथ्वी का एक वक्र भाग सूर्य की किरणों को दर्शक तक पहुँचने नहीं देता है। परन्तु ज्यों-ज्यों पृथ्वी पश्चिम में पूर्व की ओर घूमती है यह आड़े आने वाला भाग नीचा होता जाता है। उसके बाद जिस स्थिति में सूर्य दिखाई देने लगता है, सूर्य और दर्शक के बीच की ''आड़'' समाप्त हो जाती है और सूर्योदय होने लगता है। पृथ्वी के घूर्णन के साथ प्रेक्षण-स्थल सूर्य की ओर अधिकाधिक घूमता जाता है और दिन चढ़ता जाता है। दोपहर में दर्शक का स्थान लगभग सूर्य के ठीक नीचे आ जाता है।

सूर्योदय को और अच्छी तरह से समझने के लिए अपने प्रेक्षण-स्थान पर पूरी पृथ्वी के संदर्भ में

ध्यान दीजिए। हम जानते हैं कि पृथ्वी तल पर माना गया विषुवत-वृत्त ऐसा बृहत्तम वृत्त है जिसका समतल पृथ्वी की धुरी को लम्बवत् काटता है। अन्य अक्षांशीय वृत्त इसके समान्तर एवं इससे छोटे होते हैं। (चित्र 1)।

एक ऐसे ही अक्षांशीय वृत्त की कल्पना कीजिए जो आपके प्रेक्षण-स्थल से होकर जाता है। मान लीजिए आप इसी ऊर्ध्वाधर अक्षांश-वृत्त की परिधि पर खड़े होकर सूर्योदय देखना चाहते है। वास्तव में आप चाहे जिस स्थान पर खड़े हों, वहीं पर एक अक्षांशीय वृत्त की कल्पना कर सकते हैं। यदि इस वृत्त पर, प्रेक्षण-बिन्दु पर एंक स्पर्श-रेखा खींची जाए तो यही रेखा क्षितिज की ओर जाने वाली दृष्टि-रेखा होगी। प्रेक्षक इससे नीचे पड़ने वाली वस्तुओं को (भवन, वृक्ष, सूर्य, तारे आदि) नहीं देख सकता है। (चित्र 2 क, ख, ग, घ) में इस दृष्टि-रेखा की चार स्थितियाँ दिखाई गई हैं।

जब पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है तो उस पर स्थित कोई भी बिन्दु (स्थान), उस स्थान से होकर जाने वाले अक्षांशीय वृत्त पर पश्चिम से पूर्व की ओर घूमता जाता है। चित्र 2 (क) में दृष्टि-रेखा ठीक सूर्य की सीध में है, सूर्य उससे ठीक नीचे है। इस स्थिति में सूर्य के प्रकाश का आभास होगा, पर सूर्य दिखाई नहीं देगा। यह सूर्योदय से कुछ क्षण पूर्व की स्थिति है। 2 (ख) में पृथ्वी कुछ घूम गई है अतः दृष्टि-रेखा नीचे की ओर झुक गई है और सूर्य ऊपर उठ गया है। यह सूर्योदय के कुछ समय बाद की स्थिति है। 2 (ग) में यह रेखा काफी झुक गई है, सूर्य काफी ऊपर चढ़ गया है यह दोपहर से कुछ पूर्व की स्थिति है। 2 (घ) में पृथ्वी आधी घूम गई है, क्षितिज की दृष्टि-रेखा घूम कर दूसरी ओर चली गई है। सूर्य उस ओर है ही नहीं। अतः उसे देखने के लिए प्रेक्षक को पश्चिम की ओर अभिमुख होना पड़ेगा, जहाँ पीछे की ओर बढ़ाई गई दृष्टि-रेखा की ओर, डूबता (छिपता) हुआ सूर्य दिखाई देगा। जब सूर्य इस वर्धित दृष्टि-रेखा से नीचे चला जायगा तब सूर्यास्त हो जायगा। इस प्रकार, यह बात स्पष्ट होती है कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक का स्थिति-परिवर्तन पृथ्वी की घूर्णन गति के कारण होता है। इस घूर्णन के चलते प्रेक्षण-बिन्दु, सूर्योदय से सूर्यास्त तक पृथ्वी की परिधि की लगभग आधी लम्बाई तक घूम जाता है।

अब तनिक इस बात पर विचार करें कि यदि पृथ्वी घूर्णन नहीं करती तो क्या होता। स्पष्ट है कि जो प्रेक्षक जहाँ खड़ा रहता, वह सूर्य की वहाँ की ही स्थिति को सदैव देखता। जो सूर्योदय देखने की स्थिति में होता उसे सदैव सूर्योदय ही दिखाई देता और जो दोपहर या शाम की स्थिति (2 ग, घ) में होते वे सदैव वही दृश्य देखते रहते। इतना ही नहीं रात और दिन भी स्थायी होते। आधी पृथ्वी पर दिन और आधी पर सदैव रात होती। ऐसी स्थिति में यदि प्रेक्षक ही स्थिर पृथ्वी की किसी अक्षांशीय परिधि पर पश्चिम से पूर्व की ओर अत्यंत तीव्र गति से चले तो उसका स्थान परिवर्तित होगा और वह 2 (क), (ख) (ग) आदि स्थितियों में पहुँच कर सूर्योदय और सूर्यास्त आदि देख सकेगा। यदि प्रेक्षक पूर्व से पश्चिम की ओर चले तो उसे सूर्योदय पश्चिम में दिखाई देगा। यह अवश्य है कि वह मनुष्य द्वारा उपलब्ध साधनों की सहायता से इतनी तीव्र चाल से नहीं चल सकेगा कि 24 घंटों में ही वह सूर्योदय और सूर्यास्त देख सके। उसे तो उतनी तेज चाल से चलना होगा जितनी तेज चाल से पृथ्वी की परिधि पर स्थित कोई बिन्दु, पृथ्वी के घूर्णन के कारण चलता है।

आइए हम देखें कि पृथ्वी के घूर्णन के कारण कोई प्रेक्षण-बिन्दु किस चाल से भाग रहा होता है। पृथ्वी गोल है। विषुवत वृत्त पर उसकी त्रिज्या सबसे बड़ी 6400 km है। विषुवतीय परिधि की लम्बाई $6400 \times 2\pi$ km होगी और इस पर का कोई भी बिन्दु $6400 \times 2\pi \div 24$ km प्रति घंटे अर्थात् लगभग 1674 km की चाल से घूमता है। ऊपर जिन दो स्थितियों की कल्पना की गई है वे तो संभव नहीं हैं; अर्थात् न तो पृथ्वी स्थिर है न ही प्रेक्षक 1674 Km/h की चाल से दौड़ सकता है। परन्तु ऐसा होना तो सर्वथा संभव है ही कि पृथ्वी अपनी चाल से घूर्णन करती रहें और प्रेक्षक भी यथासंभव चाल से परिक्रमण करें। वर्तमान युग में तो ऐसे वायुयान उपलब्ध हैं जिनकी चाल 500 से 1000

km प्रति घंटे तक होती है। अतः उपर्युक्त परिस्थितियों के संदर्भ में हम प्रेक्षक तथा पृथ्वी, दोनों को गतिशील समझ कर पुनः विवेचन कर सकते हैं।

मान लिया जाय कि कोई प्रेक्षक विषुवत् वृत्त पर ही स्थित है और 500 Km/h की चाल से पश्चिम
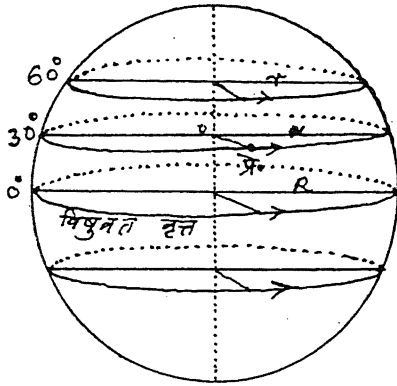
चित्र 1

से पूर्व की ओर जा रहा है। ऐसी स्थिति में दृष्टि-रेखा में झुकाव पृथ्वी की गति के कारण तो होगा ही, प्रेक्षक की चाल के कारण भी होगा। अतः यह झुकाव तेजी से होगा अर्थात् चित्र-2 में दिखाई गई (क) स्थिति से (घ) स्थिति में जाने में कम समय लगेगा। तात्पर्य यह कि दिन छोटा हो जायगा। इसके विपरीत यदि प्रेक्षक पूर्व से पश्चिम की ओर जाने लगे तो पृथ्वी की गति के कारण दृष्टि-रेखा में तो झुकाव आएगा, परन्तु प्रेक्षक की चाल के कारण इस रेखा में उठान आएगा अतः 2 (क) से 2 (घ) तक पहुँचने में अपेक्षतः अधिक समय लगेगा; तात्पर्य यह कि दिन की लम्बाई बढ़ जाएगी। जब तक पृथ्वी की चाल (अर्थात् प्रेक्षण-बिन्दु की चाल) प्रेक्षक की चाल से अधिक है, सूर्योदय पूर्व में ही होगा, भले ही प्रेक्षक पूर्व से पश्चिम की ओर या पश्चिम से पूर्व की ओर चले। परन्तु यदि किसी विशेष परिस्थिति में प्रेक्षक का वायुयान भी 1674 km/h की चाल से पूर्व से पश्चिम की ओर उड़ने लगे तो दोनों विपरीत कारणों से
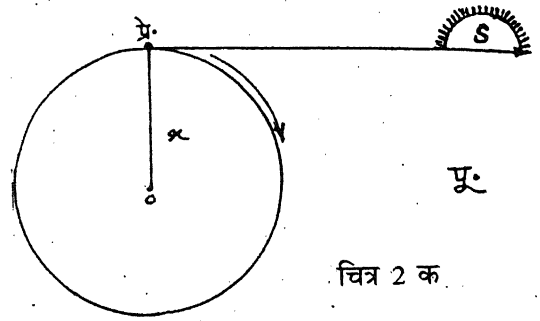
चित्र 2 क
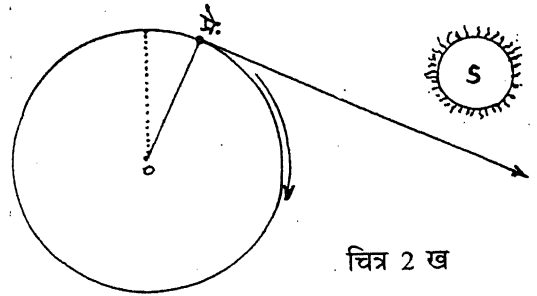
चित्र 2 ख
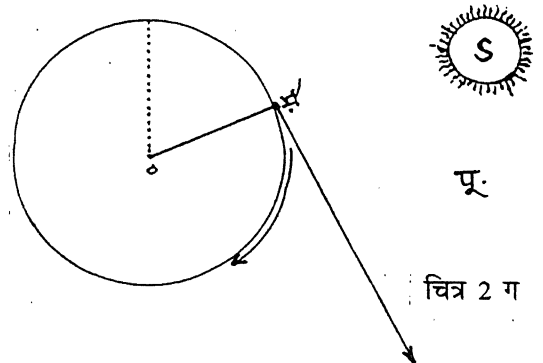
चित्र 2 ग
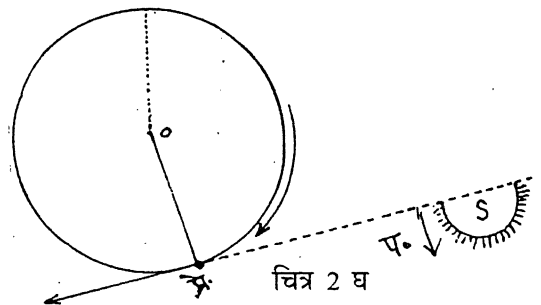
चित्र 2 घ

दृष्टि-रेखा का झुकाव निरस्त हो जाएगा; उसमें झुकाव या उठाव होगा ही नहीं; वह यथास्थिति में बनी रहेगी। अतः जिस स्थिति (समय) में प्रेक्षक समान गति से उड़ना आरंभ करेगा वही स्थिति बनी रहेगी।

यह स्थिति वास्तव में प्राप्त हो सकती है। हमने विषुवत-वृत्त पर प्रेक्षण-बिन्दु की गति 1674 km/h ज्ञात की है। विषुवत वृत्त के ऊपर या नीचे के अक्षांशीय वृत्त इससे छोटे होते हैं। जैसे 60^o अक्षांश पर अक्षांशीय वृत्त की त्रिज्या $r = R \sin 60^o = 6400 \times 0.5 = 3200$ km होगी। अतः इस अक्षांशीय वृत्त के किसी प्रेक्षण-बिन्दु की गति $= 2. \pi . 3200 \times (1/24) = 833$ km/h होगी। अतः इस अक्षांश पर कोई प्रेक्षक अपने वायुयान से 833 km/h की चाल से उड़ान भरे तो वह पृथ्वी की गति द्वारा उत्पन्न प्रभाव को संतुलित कर लेगा। अर्थात् यदि कोई विमान 60^o अक्षांश या अक्षांशीय परिधि के समानान्तर 833 km/h की चाल से पूर्व से पश्चिम की ओर उड़े तो उस पर सवार प्रेक्षक को यात्रा के दौरान सूर्य की तत्कालीन स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देगा।
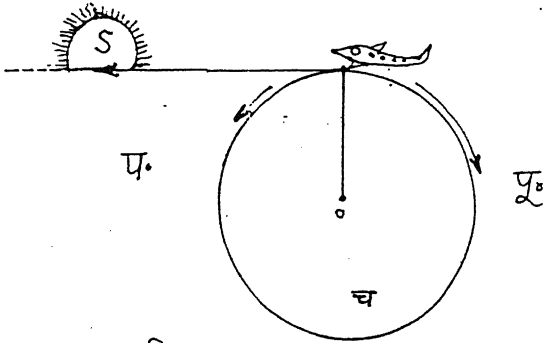
चित्र 3

वर्तमान समय में ऐसे वायुयान बन चुके हैं जो 1000 km/h की चाल से उड़ सकते हैं। अतः ऐसे विमानों से, पूर्व से पश्चिम की ओर जा रहे प्रेक्षक की दृष्टि-रेखा पश्चिम की ओर झुकती-जाएगी, परन्तु पृथ्वी की घूर्णन गति के कारण यह रेखा पूर्व की ओर झुकेगी। चूँकि प्रेक्षक की चाल पृथ्वी के घूर्णन से सम्बद्ध, प्रेक्षण-बिन्दु की चाल से अधिक है, अतः प्रेक्षक की दृष्टि-रेखा का परिणामी झुकाव पश्चिम की ओर ही होगा। अतएव यात्रा आरंभ से कुछ समय पूर्व सूर्यास्त हो चुका हो तो पश्चिम दिशा की ओर जा रहे विमान के प्रेक्षक को थोड़ी ही देर बाद पश्चिम में सूर्योदय होता दिखाई देगा (चित्र 3)।

लंदन से अमेरिका के कुछ उत्तरी नगरों या कनाडा के नगरों की ओर पश्चिमाभिमुख वायुयानों का मार्ग कुछ दूर तक 60^o उत्तरी अक्षांश-वृत्त के समांन्तर पड़ता है। इन विमानों से तीसरे पहर पश्चिम की ओर यात्रा करने वाले यात्रियों को अपने मार्ग में जाते हुए पहले तो सूर्य पश्चिम में अस्त होता दिखाई देता है। यह वह भाग होता है जो 60^o अक्षांश से पर्याप्त दक्षिण में पड़ता है जहाँ पृथ्वीतल पर स्थित किसी बिन्दु की चाल 1000 km/h से अधिक होती है। उसके बाद हवाई मार्ग का वह भाग आता है जो 60^o अक्षांश के निकट है जहाँ प्रेक्षण-बिन्दु की चाल 850 km/h के आस-पास होती है। यहाँ पर विमान की गति (= 1000 Km/h) इससे काफी अधिक हो जाती है। अतः पश्चिमाभिमुख प्रेक्षक की दृष्टि-रेखा का पश्चिमाभिमुख झुकाव बढ़ने लगता है और सूर्य इससे ऊपर उठता दिखता है। अर्थात् वहाँ पश्चिम में सूर्योदय होने लगता है (चित्र 3), दृश्य थोड़ी ही देर तक दिखाई पड़ता हैं क्योंकि हवाई मार्ग थोड़ी ही देर बाद 60^o अक्षांश से काफी दक्षिणाभिमुख हो जाता है जहाँ पृथ्वी-तल की चाल पुनः हजार मीटर प्र० घ० से अधिक हो जाती है।

– भौतिकी विभाग,
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

कुछ उभड़ते एवं विदेशज पशुरोग : राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य

डॉ० रमेश सोमवंशी

पिछले चार दशकों में पशुओं तथा कुक्कटों में अनेक उभड़ते (emerging) रोगों ने भारत में प्रविष्टि पायी, इनका निदान किया गया यथा निलर्सना, संक्रामक गोपशु नासा प्रणालशोथ (आई बी आर), पैराइन्फ्लूयँजा-III, गोपशु ल्यूकोसिस, संक्रामक श्वसनीशोथ (आई बी), संक्रामक स्वरयंत्र प्रणालशोथ (आई एल टी), पक्षीय मस्तिष्क सुषुम्नाशोथ (ए ई), मैरेक्स रोग (एम डी), एग ड्राप सिनड्रोम (ई डी एस), संक्रामक बर्साशोथ (आई बी डी), पक्षीय माइकोप्लाज्मता, अश्वीय इन्फ्लुएंजा, अश्वीय संक्रामक अरक्तता, अश्वीय प्रमस्तिष्क एक्जेंथीमा संदिग्ध रोग इत्यादि।

कुछ विदेशज (exotic) पशु रोग भारत सहित विकासशील देशों के पशुधन के लिये अधिक खतरा सिद्ध हो सकते हैं। इनका अध्ययन अत्यधिक जटिल पी 3 से पी 5 स्तर की उच्च सुरक्षा पशुरोग प्रयोगशाला इत्यादि में ही किया जा सकता है।

भारत के लिये कुछ महत्वपूर्ण पशुरोग अफ्रीकी सूकर ज्वर, सूकर और गोपशुओं का वेसीकुलर (जलस्फोटीय) रोग, एजस्कीस रोग, पोरसाइन पार्वो विषाणु, खुरपका और मुँहपका रोग की अफ्रीकी स्ट्रेंन-सैट-I, सैट-2, सैट-3, गोपशु विषाणु दस्त (बी वी डी), म्यूकोसल रोग काम्पलेक्स, लम्पी त्वचा रोग, लाऊपिंग रुग्णता, गोपशु स्पांजीफार्म मस्तिष्क रुग्णता, इब्रास्की रोग तथा गोपशु का जेमब्रान रोग, निलर्सना विषाणु रोग के कुछ स्ट्रेंस, पेस्टिस डेस पेटिट रयूमीनेंट्स (पी पी आर), भेड़ों में रिफ्ट वैली ज्वर, बकरियों में अजः संधिशोथ मस्तिष्कशोथ (लेंटी विषाणु संक्रमण), संक्रामक अश्वीय गर्भाशयशोथ (सी ई एम-77), कुक्कट प्लेग, बत्तख विषाणु यकृत तोड़ना शोथ, मानव तथा कुक्कट में रेटीकुलोइंडो-थीलियोसिस, शशकों में हीमरेजिक रोग इत्यादि हैं। इनमें से अनेक रोग भारत के पड़ोसी देशों तथा अन्य देशों में आघटित होते हैं।

सन् 1967 में इटली से अफ्रीकी सूकर ज्वर का उन्मूलन एक लाख सूकरों का वध करके किया जा सका जिसकी कीमत पचास लाख अमरीकी डालर आँकी गयी। क्यूबा ने अफ्रीकी सूकर ज्वर का उन्मूलन करने के लिये चार लाख सूकरों का वध किया। अफ्रीकी सूकर ज्वर से मुक्ति पाने के लिये डोमीनिकन गणराज्य ने दस लाख सूकरों का बलिदान किया। ब्राजील में यह रोग 1978 में आया तथा इसके नियंत्रण अभियान पर दो माह में 30 करोड़ डालर व्यय हुये। माल्टा ने सूकर ज्वर उन्मूलन के लिये अपने समस्त सूकरों को नष्ट किया। हैती ने 3,84,000 सूकरों का वध किया तथा मात्र अफ्रीकी सूकर ज्वर के आगमन पर क्षतिपूर्ति या मुआवजा के लिये 9,548,860 डालर का भुगतान किया। जाम्बिया के लुसाका शहर में 1993 में पशु-चिकित्सा अधिकारियों ने त्वरित अभियान में हजारों सूकरों को गोली मारी, जलाया तथा दफनाया। लुसाका में 15 किमी० अर्धव्यास में समस्त सूकरों को गोली मारकर नष्ट किया गया।

इंडोनेशिया में सन् 1964 में जैमब्रान रोग आघटित हुआ जिससे तीन वर्षों में 60,000 गौजाति तथा भैसों की मृत्यु हुई। इंडोनेशिया तथा थाईदेश में इब्रास्की रोग का आघटन होता है।

निलर्सना के 1–7% रिएक्टर्स के परिणामस्वरूप सन् 1977 में विश्व के अनेक देशों ने आस्ट्रेलिया से पशु एवं पशु उत्पादों यथा मांस, ऊन, वीर्य तथा चमड़ों (हाइड्स) के आयात पर रोक लगा दिया जिससे वहाँ के विदेशी व्यापार को बहुत अधिक हानि हुई। आस्ट्रेलिया

की सीमित कुक्कुट आबादी में, फाऊल प्लेग के प्रकोप के उन्मूलन की कीमत लगभग एक करोड़ डालर आयी।

इंग्लैण्ड की भेड़ों में स्क्रेपी तथा मानव के कुरु रोग की तरह का एक धीमा विषाणु गोपशु स्पांजीफार्म मस्तिष्क रुग्णता (बी एस ई) गायों में एक प्रमुख समस्या बन गया है। इससे सन् 1987-89 के दौरान 2000 गौजाति पशु प्रभावित हुये थे तथा इस देश के समक्ष, इस रोग से मुंक्त अमेरिका तथा यूरोपीय आर्थिक समुदाय के देशों में गौ-मांस आयात की प्रमुख समस्या उत्पन्न हो गयी थी। गायों में रोग का जनन कुछ गायों में गौप्राशन द्वारा हुआ जिसमें स्क्रेपी जैसे रोगग्रस्त विषाणुयुक्त भेड़ों के चोकर्राश (आफल्स) मिलाये गये थे। बी एस ई पृथकीकृत, भेड़ों की पिछली ज्ञात स्क्रेपी के सभी 20 स्ट्रेंनों से भिन्न हैं तथा चूहों में इस का उष्मायनकाल कम (116 दिन) है। बी एस ई भेड़ और बकरी में संचालित की गयी है। अमेरिका में बोवाईन इम्यूनोडेफीसियेंसी वाइरस (बी आई वी) प्रगामी दुर्बलता अवस्था उत्पन्न करता है। यह विषाणु पृथकीकृत किया गया तथा बी आई बी और एच आई वी के मध्य 'जीनोमिक' सम्बन्ध स्थापित किया गया। बी आई वी ग्रस्त गोपशु में प्रगमनीय ल्यूकोसाइटोसिस विकसित हुई किंतु कोई नैदानिक लक्षण आलेखित नहीं किये गये हैं। एशिया, यूरोप तथा अमेरिका के कई देशों में विषाणु रक्तस्त्रावीय रोग से लाखों शशक कालग्रस्त हुये हैं। केवल इटली को 3.2 करोड़ शावकों की हानि हुई थी। यह रुग्णता सन् 1988 में चीन से जहाज से आये हिमीकृत मांस द्वारा पहले मैक्सिको शहर तथा बाद में सम्पूर्ण अमेरिका में फैल गयी।

सन् 1960 से पूर्व भारत में दक्षिणी अफ्रीकी अश्व रुग्णता नहीं होती थी। सन् 1963 के मध्य इस रोग से 33,000 घोड़ों की मृत्यु के कारण बहुत अधिक आर्थिक हानि हुई। समुद्रपार विदेशी प्रयोगशालाओं में रोग का सुनिश्चय हुआ तभी इसके नियंत्रण के उपाय किये जा सके। इसी प्रकार सन साठ के प्रारंभ में सूकर ज्वर (हाग कालरा) के देश में प्रवेश के फलस्वरूप पर्याप्त संख्या में सुअरों का नुकसान हुआ। भारत को अनुमानतः प्रतिवर्ष 5,100 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की क्षति खुरपका और मुंहपका से मृत्यु एवं अस्वस्थता से होती हैं। ये हानियाँ दुग्ध उत्पादन में कमी, पुनरुत्पादकीय एवं बोझा ढोने की क्षमता में ह्रास के कारण होती है। ये हानियाँ खुरपका और मुंहपका विषाणु की ए, ओ, सी और एशिया-1 स्ट्रेन से होती हैं। भारत में सैट-1, सैट-2 तथा सैट-3 एवं ए–24 उप प्रकार खुरपका एवं मुंहपका विषाणु नहीं पाये जाते हैं। खुरपका और मुँहपका विषाणु का ए-24 उपप्रकार 1989 में फिलीपाइंस तथा मध्यपूर्व में प्रकट हुआ है तथा यह कभी भी भारत में प्रविष्ट कर सकता है। ऐसा अनुमान है इससे 30% अस्वस्थता दर और देश को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी। इसी प्रकार इंडोनेशिया और थाईदेश में आघटित हो रहे इब्रास्की रोग तथा इंडोनेशिया का जैमब्रान रोग भारत में कभी भी प्रवेश कर सकते हैं।

पेस्टिस डेस पेटिटस र्‌यूमीनैटस (पी पी आर) सीमित मात्रा में आईवरी कोस्ट, पूर्वी और केन्द्रीय अफ्रीका, मध्य सूडान, इथोपिया और अरब प्रायद्वीप में फैली हैं। रोग का दक्षिणी भारतीय राज्यों में होने का संदेह है। (नोट– वर्तमान समय में इस रोग का कहर/प्रकोप अधिकांश भारत में मच चुका है)।

बोवाइन वाइरल डायरिया (बी वी डी)/म्यूकोसल रोग काम्पलेक्स का सम्पूर्ण विश्व में वितरण है। गो प्रजाति पशुओं के अतिरिक्त बी वी डी वी भेड़ों, बकरी, सुअर, वन्य रोमन्थी पशुओं में विविध नैदानिक लक्षणों सहित पायी जाती है। इसको भारत में अभी नहीं पहचाना गया है।

संदर्भ

सिंह, सी० एम० (1985) फूडबार्न डिसीजेस इन इंडिया।

डॉ० बी० सी० दासगुप्ता मेमोरियल ओरेशन। फरवरी 8, 1985 को नागरकोइल, कन्याकुमारी, तमिलनाडु में सम्पन्न।

-नेशनल फेलो (भा० कृ० अ० प०)
पैथोलोजी विभाग
भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान,
इज्जतनगर – 243122

क्वार्ट्ज का वैज्ञानिक महत्व

डॉ० के० एन० उत्तम

क्वार्ट्ज घड़ियों का नाम सुनते ही क्वार्ट्ज के बारे में जानने की जिज्ञासा होती है। प्रकृति में क्वार्ट्ज कई रूपों में पाया जाता है। क्वार्ट्ज का प्रयोग विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्राचीन काल से होता रहा है। मिलर नामक वैज्ञानिक, जो प्रकाश के उपकरण बनाने में पारंगत थे, 1923 में प्रकाशिक उपकरणों का व्यवसाय छोड़कर क्वार्ट्ज व्यवसाय से जुड़ गये। क्वार्ट्ज क्रिस्टल प्रायः क्रिस्टल नियंत्रित दोलित्र, फिल्टर एवं क्रिस्टल घड़ी दोलित्र में प्रयोग किये जाते थे। क्वार्ट्ज फिल्टरों का प्रयोग कार्डलेस फोन, सेलुलर फोन एवं अति उच्च आवृत्ति के चलायमान रेडियो में किया जाता है। क्रिस्टल फिल्टर आकृति में छोटे एवं भार में हल्के होने के साथ-साथ उच्चकोटि की बनावट के कारण कम्पन-प्रतिरोधी होते हैं। क्वार्ट्ज जैकेट युक्त उच्चदाब मरकरी आर्कस् 50 माइक्रॉन से अधिक अवरक्त विकिरण प्रकाश स्रोत की तरह प्रयोग किया जाता है। क्वार्ट्ज का उपयोग आभूषण, क्रिस्टल औषधि, संगीत वाद्य यंत्रों, छादन प्लेट, प्रकाश के क्रिस्टल इत्यादि बनाने में भी किया जाता है। इसके साथ क्वार्ट्ज का उपयोग आवृत्ति नियंत्रित उत्पाद, ओवरटोन क्रिस्टल दोलित्र, विभव नियंत्रित क्रिस्टल दोलित्र, क्वार्ट्ज क्रिस्टल टेक्सो एवं आक्सो-दोलित्र, घड़ी दोलित्र, रेडियो प्रसारण एवं संचार के उपकरण बनाने में किया जाता है।

क्वार्ट्ज का रासायनिक सूत्र सिलिकन डाइ ऑक्साइड (SiO_2) है। जब सिलिकन एवं सिलिकन डाइ ऑक्साइड के मिश्रण को निर्वात में गरम किया जाता है तो सिलिकन डाइ ऑक्साइड का फाइबर रूप प्राप्त होता है। क्वार्ट्ज पर क्लोरीन, ब्रोमीन, हाइड्रोजन एवं अधिकांश अम्लों का सामान्य ताप पर कोई प्रभाव नहीं होता, परन्तु फ्लोरिक अम्ल एवं क्षार से क्वार्ट्ज प्रभावित होता है। क्वार्ट्ज क्रिस्टल की संरचना एक त्रिफलीय निकाय में एक षट्कोणीय प्रिज्म की तरह होती है जिसके दोनों किनारों पर समानान्तर षट्कोणीय वर्ग होता है। षट्कोणीय प्रिज्म के विपरीत शीर्षों को मिलाने वाले तीन अक्षों को **दाब विद्युत अक्ष** तथा षट्कोणीय प्रिज्म की सतह के लम्बवत् तीन अक्षों को **यांत्रिक अक्ष** कहते हैं। षट्कोणीय प्रिज्म का अक्ष, जो कि ऊर्ध्वाधर केन्द्र से होकर जाता है एवं जिससे प्रकाशिक सममित प्राप्त होती है, क्रिस्टल का **'प्रकाशिक अक्ष'** कहलाता है।

प्रकृति में पाया जाने वाला स्फटिक क्वार्ट्ज दो रूपों में पाया जाता है जो कि आकृति के साथ-साथ प्रकाशिक गुणों में भी एक दूसरे के दर्पण आकृति होते हैं। क्वार्ट्ज को देखकर यह निश्चित किया जा सकता है कि यह किस रूप से सम्बन्धित है। जब किसी ध्रुवित प्रकाश को एक रूप कम्पन तल को दाहिने घुमाता है तो दूसरा रूप कम्पन तल को बायीं ओर घुमाता है। अरागो नामक वैज्ञानिक ने 1811 ई० में क्वार्ट्ज क्रिस्टल में प्रकाशिक सक्रियता गुण की खोज की। प्रकाशिक सक्रियता का अर्थ है कि जब कोई समतलीय ध्रुवित प्रकाश किसी क्वार्ट्ज क्रिस्टल से गुजारा जाता है तब क्वार्ट्ज से निकलने वाले समतलीय ध्रुवित प्रकाश के कम्पन तल में परिवर्तन हो जाता है। कुछ क्वार्ट्ज क्रिस्टल जो ध्रुवित प्रकाश के कम्पन तल को घड़ी की दिशा में घुमाते हैं उन्हें राइट हैण्डेड क्वार्ट्ज एवं जो घड़ी की विपरीत दिशा में घुमाते हैं उन्हें लेफ्ट हैण्डेड क्वार्ट्ज कहते हैं। प्रकाशिक सक्रियता में विभिन्न रंग, भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रभावित होते हैं। बैगनी रंग की किरणों का घूर्णन लाल रंग की किरणों की अपेक्षा लगभग 4 गुना अधिक होता है। एक मिलीमीटर मोटी क्वार्ट्ज प्लेट द्वारा उत्पन्न किये गये घूर्णन को 'विशिष्ट घूर्णन' कहते हैं। क्वार्ट्ज के प्रकाशिक सक्रियता गुण का उपयोग कर पोलारीमीटर बनाये जाते हैं।

क्वार्ट्ज क्रिस्टल 2000-10500 आंगस्ट्राम प्रकाश हेतु पारदर्शी पदार्थों की तरह व्यवहार करता है जब कि फ्यूज्ड क्वार्ट्ज केवल 2000-8000 आंगस्टाम प्रकाश हेतु पारदर्शी पदार्थ की भाँति कार्य करता है। क्वार्ट्ज के पारदर्शिता गुण का उपयोग प्रकाशिक उपकरणों, लेन्सों एवं प्रिज्म इत्यादि बनाने में किया जाता है। फ्यूज्ड क्वार्ट्ज क्रिस्टल का अपवर्तनांक 1.52308 से 1.45340 के मध्य होता है जब कि क्वार्ट्ज क्रिस्टल का मुख्य अपवर्तनांक साधारण किरण हेतु 1.64927 से 1.53483 एवं असाधारण किरण हेतु 1.66227 से 1.54368 के मध्य होता है। क्वार्ट्ज का उपयोग ध्रुवित प्रकाश उत्पन्न करने में किया जाता है। जब किसी प्रकाश की किरण को क्वार्ट्ज क्रिस्टल से गुजारा जाता है तो परावर्तित किरण के साथ-साथ एक के स्थान पर दो अपवर्तित प्रकाश किरणें प्राप्त होती हैं। यह क्रिया द्विअपवर्तन कहलाती है।

क्वार्ट्ज की पारदर्शिता गुण का उपयोग अवरक्त क्षेत्र में 50 माइक्रॉन से अधिक स्पेक्ट्रम के छोटे मान को अलग करने में किया जाता है। क्वार्ट्ज का उपयोग उन प्रिज्मों के बनाने में किया जाता है जो पराबैंगनी एवं दृश्य प्रकाश क्षेत्र के अध्ययन के लिए प्रयोग किये जाते हैं। पराबैंगनी क्षेत्र में फ्यूज्ड क्वार्ट्ज एवं स्फटिक क्वार्ट्ज दोनों का उपयोग किया जाता है। उत्सर्जन स्पेक्ट्रोग्राफ में दो प्रकार के क्वार्ट्ज प्रिज्म प्रयोग में लाये जाते हैं जिन्हें कार्नू एवं लिट्रो प्रिज्म कहते हैं। कार्नू प्रिज्म क्वार्ट्ज के दो छोटे प्रिज्मों से मिलकर बना होता है जिसमें एक राइट हैन्डेड प्रिज्म और दूसरा लेफ्ट हैन्डेड प्रिज्म होता है। प्रकाशिक अक्ष आधार के समानान्तर होता है। लिट्रो माउन्टेड क्वार्ट्ज प्रिज्म में एक ही प्रिज्म होता है जिसकी पिछली सतह एल्यूमिनियम अथवा चाँदी द्वारा लेपित कर परावर्तक बनायी जाती है। ऐसा करने से परावर्तित प्रकाश में द्विअपवर्तन एवं प्रकाशिक घूर्णन दोनों ही अनुपस्थित पाये जाते हैं।

क्वार्ट्ज प्रिज्म से बने हुए स्पेक्ट्रोग्राफ बहुधा प्रयोग में लाये जाते हैं। क्वार्ट्ज स्पेक्ट्रोग्राफ का उपयोग 2000-8000 आंगस्ट्राम स्पेक्ट्रम क्षेत्र के अध्ययन के लिए किया जाता है। क्वार्ट्ज प्रिज्म स्पेक्ट्रोग्राफ प्रायः तीन भिन्न मॉडलों में बाजार में उपलब्ध हैं– छोटा स्पेक्ट्रोग्राफ, माध्यमिक स्पेक्ट्रोग्राफ एवं वृहत् क्वार्ट्ज स्पेक्ट्रोग्राफ। छोटे स्पेक्ट्रोग्राफ का उपयोग 2500 आंगस्ट्राम से कम तरंगदैर्घ्य स्पेक्ट्रम के अध्ययन हेतु अत्यंत उपयोगी है क्योंकि इस क्षेत्र में क्वार्ट्ज की पारदर्शिता अन्य पदार्थों की अपेक्षाकृत अधिक है जो कि फोटोग्राफी के लिए अधिक उपयोगी है। माध्यमिक स्पेक्ट्रोग्राफ की सहायता से एक ही समय में पूर्ण पराबैंगनी क्षेत्र 1850-3700 आंगस्ट्राम का अध्ययन कर सकते हैं। अधिक विक्षेपण हेतु हिलगर ई-492 मॉडल क्वार्ट्ज स्पेक्ट्रोग्राफ का प्रयोग करते हैं। इस तरह के स्पेक्ट्रोग्राफ का उपयोग विश्लेषणात्मक कार्य के लिए अत्यधिक उपयोगी है। गार्नर ने सर्वप्रथम अत्यधिक बड़े क्वार्ट्ज प्रिज्म का प्रयोग कर एक वृहद क्वार्ट्ज स्पेक्ट्रोग्राफ बनाया। इस स्पेक्ट्रोग्राफ की सहायता से एक समय में 2500-5000 आंगस्ट्रम स्पेक्ट्रम क्षेत्र का अध्ययन किया जा सकता है।

क्वार्ट्ज एक विषमांगी क्रिस्टल है जिसके भौतिक गुण दिशा के साथ-साथ बदलते हैं। एक अक्ष जिसे प्रकाशिक अक्ष कहते हैं, ऐसा भी होता है जो क्रिस्टल आवृत्ति एवं अणुओं की व्यवस्था के सापेक्ष सममित होता है। यदि कोई गुण जैसे ऊष्मीय क्षमता विभिन्न दिशाओं में नापी जाती है तो यह पाया गया कि प्रकाशिक अक्ष के लम्बवत् नापी गयी रेखा में यह गुण समान होता है। जब प्रकाश की किरण प्रकाशिक अक्ष की दिशा में भेजी जाती है तो क्वार्ट्ज में पाया जाने वाला द्विअपर्वतन नहीं होता है। इस तरह क्वार्ट्ज से एक ही चित्र प्राप्त होता है। फ्यूज्ड क्वार्ट्ज से द्विअपर्वतन एवं वृत्तीय ध्रुवीय प्रकाश प्राप्त नहीं किया जा सकता है। क्वार्ट्ज की तुलना में फ्यूज्ड क्वार्ट्ज का विक्षेपण भी कम होता है। साथ में यह 2800 आंगस्ट्राम से कम तरंगदैर्घ्य के प्रकाश को अवशोषित कर लेता है। कभी-कभी प्रकाशिक स्तर की पर्याप्त समांगता भी नहीं उत्पन्न कर सकता है।

अच्छे यांत्रिक गुणों एवं सीमित क्षरण के कारण क्वार्ट्ज प्लेटों का प्रयोग प्रायः अति उच्च आवृत्ति की पराश्रव्य ध्वनि उत्पन्न करने में किया जाता है। अत्यधिक टूटने एवं बनाने सम्बन्धी परेशानियों के कारण क्वार्ट्ज की पतली प्लेटें एक निश्चित आवृत्ति की सीमा (लगभग 50 मेगा हर्ट्ज) तक उपयोग में लायी जाती हैं। 50 मेगाहर्ट्ज की पराश्रव्य ध्वनि उत्पन्न करने हेतु 0.054

मिलीमीटर मोटाई की क्वार्ट्ज प्लेट की आवश्यकता होती है।

क्वार्ट्ज का प्रयोग बायोमार्फ माइक्रोफोन बनाने में किया जाता है। बायोमार्फ माइक्रोफोन में दो एक्स-कट क्वार्ट्ज प्लेटों को आपस में जोड़कर खूँटी के सहारे रख दिया जाता है। दाब सील किसी न सूखने वाले द्रव का होता है। क्वार्ट्ज प्लेटों की लम्बाई लगभग 30 मिलीमीटर, चौड़ाई 10 मिलीमीटर एवं मोटाई 1.5 मिलीमीटर होती है। जुड़ी हुई प्लेटों की अनुनाद आवृत्ति लगभग 19 किलोसाइकिल होती है। क्वार्ट्ज प्लेटों का प्रयोग इसलिए किया जाता है क्योंकि माइक्रोफोन का प्रयोग अत्यधिक विस्फोटक ध्वनि जहाँ पर उच्च दाब (लगभग एक वातावरण) तथा ताप एवं रासायनिक स्थिरता सुग्राहिता से ज्यादा महत्वपूर्ण होता है।

क्वार्ट्ज का प्रयोग दाब-विद्युत ट्रांसड्यूसर एवं दाब-विद्युत माइक्रोफोन बनाने में किया जाता है। क्वार्ट्ज ट्रांसड्यूसर प्राकृतिक क्रिस्टल से कटी हुई प्लेट से बने होते हैं। अनुदैर्घ्य तरंगों के उत्पन्न करने हेतु एक्स-कट ट्रांसड्यूसर प्लेट का उपयोग किया जाता है। क्वार्ट्ज का प्रयोग तृतीय कोटि के प्रत्यास्थता गुणांक को नापने में भी किया जाता है जो फोनान-फोनान के अन्वेषण के बारे में जानकारी देता है। अति उच्च आवृत्ति पर क्वार्ट्ज में पराश्रव्य ध्वनि का अवशोषण नापा जा सकता है।

दोलित्र में उच्चकोटि का आवृत्ति स्थायित्व दाब-विद्युत क्रिस्टलों को अनुनादी परिपथ की भाँति प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है। यह क्रिस्टल स्फटिक क्रिस्टल से इस प्रकार कटे हुए अनुभाग होते हैं कि इनके चपटे सिरे किसी एक वैद्युत अक्ष के लम्बवत हों। जब यह क्रिस्टल उस अक्ष के सहारे संपीडित होते हैं तो उनके पृष्ठ पर वैद्युत आवेश प्रकट होते हैं। इनके विपरीत, जब क्रिस्टल प्रत्यावर्ती वैद्युत क्षेत्र में रखे जाते हैं तो उनमें यांत्रिक कम्पन्न होने लगते हैं। यदि प्रयुक्त वैद्युत आवृत्ति उस आवृत्ति के बहुत निकट हैं जो क्रिस्टल के यांत्रिक अनुनाद उत्पन्न करती है तो कम्पनों का आयाम अति विस्तृत होगा। कंपायमान क्रिस्टल एक तुल्यमान वैद्युत परिपथ द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

सर्वाधिक प्रचलित क्रिस्टल नियंत्रित दोलित्र 'मिलर परिपथ' है। जब क्रिस्टल अपने वैद्युत तुल्यमान परिपथ द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है तो दोलित्र समस्वरित-ऐनोड-समस्वरित-ग्रिड प्रकार का हो जाता है जिसमें समस्वरित-ग्रिड परिपथ क्रिस्टल द्वारा निर्मित होता है। क्रिस्टल के तुल्यमान परिपथ का शक्ति गुणांक बहुत अधिक होता है। यह प्रचलित वैद्युत परिपथों के शक्ति गुणांक से 100 गुना तक हो सकता है। उच्च शक्ति गुणांक के कारण क्रिस्टल आवृत्ति के केवल एक बहुत संकीर्ण परिसर में ही दोलन करता है। परिणामस्वरूप, ऐसे दोलित्र का आवृत्ति स्थायित्व बहुत अधिक होता है। जब क्रिस्टल का तापमान स्थिर रखा जाता है तो आवृत्ति युक्त 10^6 भागों में एक भाग से कम हो जाती है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हाउस्टन नामक वैज्ञानिक ने प्रकाश की गति नापने के लिये एक विशेष प्रकार के प्रकाशिक शटर का प्रयोग किया। दाब-विद्युत क्वार्ट्ज दोलित्र में अप्रगामी पराश्रव्य तरंगें स्थापित की गयीं। जब उसने उच्च आवृत्ति का विभवान्तर क्वार्ट्ज क्रिस्टल के दोनों ओर स्थापित किया तो पराश्रव्य तरंगें इस प्रकार स्थापित हुई कि घनत्व का परिवर्तन क्रिस्टल की दिशा में हुआ एवं स्थानिक परिवर्तन का परिणाम समय के साथ एक निश्चित समय अंतराल बाद बदलता है। परिणामस्वरूप क्रिस्टल एक विवर्तन ग्रेटिंग की तरह व्यवहार करती है एवं तीव्रता में होने वाले परिवर्तन आवर्ती होते हैं। इस प्रकार प्राप्त प्रकाश की किरण को हाउस्टन ने अति उच्च आवृत्ति (100 मेगासाइकिल प्रति सेकण्ड) के लिये माडुलेट किया। जब प्रकाश को दर्पण से गुजारा गया तो ग्रेटिंग प्रभावशाली होने पर ही प्रकाश स्रोत की तरफ पुनः लौटी। इस तरह क्वार्ट्ज क्रिस्टल आरादांती की तरह व्यवहार करती है जो कि फीजो के प्रयोग से मिलता-जुलता है। हाउस्टन ने बाद के प्रयोगों से प्रकाश की गति के परिणाम में और अधिक सुधार किया। इस तरह क्वार्ट्ज वैज्ञानिक कार्यों हेतु एक अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है।

– अतिरिक्त निजी सचिव
मानव संसाधन विकास मंत्री,
भारत सरकार

फसलों, सब्जियों व फलों में जिंक की अहम् भूमिका

श्रीमती शिवानी चतुर्वेदी

जिंक उन सूक्ष्म तत्त्वों में से हैं जिसकी कमी से पौधों के न सिर्फ विकास में अपितु कई जरूरी क्रियाओं में भी बाधा आती है। अतः यदि इन अभाव के लक्षणों को ध्यान देते हुये भूमि या पर्णिल उपचार विधि अपनायी जाय तो निश्चित तौर पर बेहतर फसल मिलेगी। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि किस तरह की फसल को किस अनुपात में इन अवयवों की आवश्यकता है।

जिस प्रकार मानव को शारीरिक विकास व वृद्धि के लिए मुख्य पोषक तत्त्वों के साथ-साथ कुछ मात्रा सूक्ष्म पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है। ठीक उसी तरह हमारे पेड़-पौधों को भी अपनी पैदावार व वृद्धि के लिए इन सूक्ष्म तत्वों की जरूरत होती है। ये सूक्ष्म तत्त्व आठ हैं– लोहा, मैगनीज, ताँबा, बोरॉन, मॉलिबडेनम और जस्ता (जिंक) आदि हैं। जस्ता (जिंक) तत्त्व एक अहम् भूमिका अदा करता है। जस्ते का मुख्य कार्य प्रोटीन की संश्लेषण क्रिया को बढ़ाना व वृद्धि में सहायक बहुत से एन्जाइम्स को सक्रिय बनाना है।

जिंक के प्रमुख कार्य

हम निम्न बिन्दुओं में इन्हें क्रमबद्ध कर सकते हैं :

- पौधों में पाये जाने वाले एन्जाइमों को क्रियाशील बनाना।
- पौधों में प्रोटीन निर्मित करना : यह इनकी उपापचय क्रियाओं को नियंत्रित करके सम्भव है।
- पौधों में कार्बोहाइड्रेट के उपयोग को नियन्त्रित करना।
- पौधों में प्रकाश-संश्लेषण तथा जल शोषण को प्रभावित करना ।
- पौधों में कार्बोहाइड्रेट का परिचालन करना ।
- पौधों की कोशिका में ऑक्सीकरण करना।
- पौधों में फल व फलों की संख्या बढ़ाना, साथ ही फल जल्दी पकाना ।

जिंक कमी के प्रमुख लक्षण

पौधों में बौनापन लगना, तनों पर गाँठें, पत्तियों का छोटे-गुच्छों के रूप में उगना, पत्तियाँ पर असमान रूप से हल्के हरे, पीले व भूरे व सफेद धब्बे पड़ना तथा अन्ततः फसल पकने में देर लगना इत्यादि हैं।

जस्ते की पौधे में मात्रा 20 ग्राम प्रति टन शुष्क पदार्थ (ड्राई मैटर) से कम हो तो उसके लक्षणों आदि का प्रकट होने की सम्भावना होती है।

मृदा परीक्षण से इसकी मात्रा जानी जा सकती है। इस क्षेत्र में एटॉमिक एबर्जोप्शन स्पेक्ट्रोफोटोमीटर सर्वाधिक आधुनिक उपकरण हैं।

उपचार

सामान्य रूप से इस कमी को पूरा करने के लिए दो उपचार विधियाँ हैं– एक भूमि उपचार जो श्रेष्ठ मानी जाती है तथा दूसरी पर्णीय छिड़काव।

भूमि उपचार में 50 किग्रा० प्रति हेक्टेयर की दर से समान रूप से भूमि सतह पर बिखेर कर उसे अच्छी तरह जोत दिया जाता है। दूसरी विधि में घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है। एक हेक्टेयर फसल पर 500 से 600 लीटर घोल की आवश्यकता पड़ती है।

इसमें भी जिंक या तो जिंक सल्फेट के रूप में जिसमें 21% जिंक होता है या जिंक सल्फेट मोनो-हाइड्रेट ($ZnSO_4 . H_2O$) के रूप में जिसमें जिंक 33% होता है। भारत में जिंक हेप्टाहाड्रेइट ($ZnSO_4 .7H_2O$) का प्रचलन अधिक है। अतः यहाँ उसी को ध्यान में रखते हुए घोल आदि तैयार करवाये जाते हैं किन्तु आप जिंक मोनोहाइड्रेट का प्रयोग करें तो मात्रा घटा कर दो तिहाई कर लें।

आम रूप से 5 ग्राम जिंक सल्फेट + 2.5 ग्राम बुझा चूना या 20 ग्राम यूरिया + एक लीटर पानी परन्तु हरेक फसल की आवश्यक मात्रा भी अलग-अलग होती है। अतः उसको सारणीबद्ध यहाँ किया कया है–

फसल	भूमि उपचार प्रति हेक्टेयर	पर्णिल छिड़काव प्रति हेक्टेयर
गेहूँ	50 किग्रा०	500 लीटर पानी + 2.5 किग्रा० $ZnSO_4 .7H_2O$ + 1.25 किग्रा बुझा चूना
चावल	25–50 किग्रा०	500 लीटर पानी +2.5 किग्रा० जिंक सल्फेट +10 किग्रा० यूरिया
दलहन (मूंग, उर्द, अरहर,चना, मसूर)	25-30 किग्रा०	500 लीटर पानी + 2.5 किग्रा० जिंक सल्फेट +1.25 किग्रा० बुझा चूना
तिलहन (सूरजमुखी,मूँगफली, सोयाबीन,सरसों)	25 किग्रा०	500 लीटर पानी + 2.5 किग्रा० जिंक सल्फेट +'1.25 किग्रा० बुझा चूना
फल (सेब, केला, अंगूर, नींबू सन्तरा, आम,आडू, पपीता अमरूद, अनन्नास)	प्रति पौधा 100 ग्राम –300 ग्राम	100 लीटर पानी + 100 ग्राम जिंक सल्फेट + 50 ग्राम बुझा चूना
सब्जियाँ (धनिया,सेम, मूली,गाजर, भिंडी, प्याज,लहसुन, खीरा, टमाटर)	5-20 किग्रा०	250 लीटर पानी + 1.25 किग्रा० $ZnSO_4 .7H_2O$ + 0.625 किग्रा० बुझा चूना
आलू	20 किग्रा०	500 लीटर पानी +1 किग्रा० जिंक सल्फेट + 500 ग्राम बुझा चूना
चाय व कॉफी	10 ग्राम प्रति गढ्ढा	100 लीटर पानी 55 किग्रा० $ZnSO_4 .7H2O$ + 2.5 किग्रा० बुझा चूना

इस तरह यदि उचित मात्रा में जिंक सल्फेट की मात्रा भूमि में बनाये रखें तो वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार हमें बेहतर परिणाम मिलेंगे।

–द्वारा श्री देवेश चतुर्वेदी
(आई० ए० एस०)
जिलाधिकारी निवास, बुलंदशहर

सर्प : मानव का शत्रु या मित्र

डॉ० एन० के० बोहरा

सम्पूर्ण विश्व में सर्प भय एवं आकर्षण के स्रोत रहे हैं। सर्प सर्वत्र पाये जाते हैं। ये भूमिगत, भूमि पर, वृक्षों पर, झाड़ियों में, दलदली स्थानों पर, ताजे पानी में, समुद्री पानी में, पहाड़ों आदि सभी स्थानों पर पाये जाते हैं। साँपों को रेप्टीलिया वर्ग के गण स्कैमैटा में रखा गया है। विश्व के गरम क्षेत्रों में साँपों की लगभग 2500 जातियाँ पाई जाती हैं, परन्तु उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्र एवं न्यूजीलैण्ड में कोई भी साँप नहीं मिलता। अधिकतर सर्प अहानिकारक तथा विषहीन होते हैं तथा अभी तक ज्ञात कुल जातियों में से मात्र एक तिहाई ही विषैली होती हैं।

विषैले साँपों में दो विषग्रन्थियाँ होती हैं जो शिकार के शरीर में विष भेजने के लिए दो खोखले विषदन्तों से जुड़ी रहती हैं। इसके विपरीत विषहीन साँपों में विष भेदक दन्त व ग्रन्थियाँ नहीं होती हैं। भारत तथा ब्राजील में सर्पदंश से सर्वाधिक मृत्यु होती है। भारतीय विषैले साँपों में मुख्यतः कोबरा, कोरल तथा करैत व समुद्री साँप आते हैं जबकि भारतीय विषहीन सर्पों में मुख्यतः नेत्रहीन सर्प (टाइफ्लोपिडी), यूरोबेल्ट, मिट्टी में रहने वाले सर्प, अजगर, घोंघा साँप, मस्सा साँप, मूषद साँप, बालू का सर्प, वृक्ष सर्प, जल सर्प, कुकरी साँप आदि हैं जिनमें से अजगर आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। साँपों में स्त्री तथा पुरुष होते हैं तथा ये एक वर्ष में 10-100 अण्डे देते हैं जो तीन माह में फूट जाते हैं। साँपों के विकास में लगभग 4 वर्ष लग जाते हैं। सर्प का आयुकाल लगभग 20 वर्ष आँका गया है। साँप की त्वचा सुन्दर तथा महँगी बिकने वाली वस्तुएँ बनाने के काम आती है। ये मांस-भक्षी होते हैं तथा मेंढक, चूहे, छोटे पक्षी, कीड़े आदि खाते हैं।

सर्प एवं धार्मिक मान्यताएँ : समय-समय पर साँप द्वारा पुरानी केंचुली छोड़ने से पुनर्जन्म से भी इसका संबंध जोड़ा जाता है। सर्पों को सारी दुनिया में पूजा जाता है। मिस्र के पिरामिडों की दीवारों पर इन्हें चित्रित किया गया है तथा इनको "भगवान इजो" के रूप में पूजा जाता था। मेसोपोटेमिया में इन्हें मुहरों एवं प्यालों पर उत्कीर्ण किया जाता था। यूनान में इनका स्वरूप यूनानी देवता "जीयस" के रूप में माना जाता है तो प्राचीन भारत देश में काबुल के राजा सर्प होने का उल्लेख मिलता है।

साँपों की पूजा अफ्रीका एवं साउथ पैसिफिक, चीन एवं दक्षिण अमेरिका में भी होती है। वहाँ सर्प उर्वरता एवं पानी के प्रतीक हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में सर्पों का एक विशेष स्थान रहा है। सर्पों से संबंधित कई त्यौहार जैसे नाग पंचमी एवं अनन्त चतुर्दशी पर साँपों को दूध एवं अन्य पूजा सामग्री चढ़ाई जाती है। इसके अतिरिक्त बंगाल एवं बिहार में नागों की देवी "मनसा" का त्यौहार भी बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। भारतीय साहित्य में भी शेषनाग को भगवान विष्णु की शैय्या के प्रतीक के रूप में माना गया है। समुद्र मंथन के समय वासुकी नाग को मंथन करने वाली रस्सी के रूप में प्रयुक्त होने का उल्लेख मिलता है। भगवान शिव के गले में सर्प मिलता है तो सर्प पर आधारित कई फिल्में भी भारत में बहुत लोकप्रिय हुई हैं।

भारत में अधिकांश लोग साँपों को, विशेषतया कोबरा को पुराने रीति-रिवाजों के अनुसार मारते नहीं हैं। इसके पीछे मान्यता है कि इससे अनाज की रक्षा होती है। सर्पविष से एक दवाई "शुचिका भरन्" बनाई जाती है जो प्राचीन काल में चेचक से बचने के लिए प्रयुक्त की जाती थी। केरल में आज भी अनेक घरों में जमीन का एक हिस्सा साँप की पूजा के लिए रखा जाता है, जहाँ साँप आता है तथा उपहार ग्रहण करता है। साँपों की पूजा से इस बात की आशा की जाती है कि इससे साँप चूहों को मारकर सम्पत्ति व खाद्यान्न की रक्षा करेंगे व लक्ष्मी (धन) की वृद्धि करेंगे।

सर्पविष : सर्पविष आधुनिक युग में बहुत उपयोगी है तथा हैफकिन संस्थान (बम्बई) में चषक पर रखे प्लास्टिक के ढक्कन पर दंश लगवाकर नाग का विष एकत्र किया जाता है।

बड़े दाँतों वाले सर्प का विष पेट्रीडिश में एकत्र किया जाता है। जाड़े की अपेक्षा गर्मी की ऋतु में साँप अधिक विष देते हैं। खुला रखे जाने पर नाग व करैत अपेक्षाकृत अधिक विष देते हैं। इसी प्रकार नर साँप मादा की अपेक्षा अधिक विष देता है। साँपों से एक मास में दो बार विष निकाला जाता है तथा एक वर्ष के साँप का विष वयस्क के विष से 3.5 गुणा अधिक घातक होता है। सर्पविष में 80 प्रतिशत तक जल होता है तथा शेष प्रोटीन व अन्य अकार्बनिक पदार्थ होते हैं। विभिन्न सर्पों की विषाक्तता मानव एवं जन्तुओं के शरीर में भिन्न-भिन्न रूप में सक्रिय होती है।

सर्प के उपयोग : आधुनिक युग में सर्प की खाल एवं सर्पविष बहुत उपयोगी एवं मूल्यवान हैं। सर्पविष से प्राप्त परिशुद्ध प्रकिण्व की अच्छी माँग है। सर्पविष का मूल्य इसके उत्पादक सर्प के आकार एवं जाति की उपलब्धता सीमा तथा एकत्रण में उठाए जाने वाले जोखिम पर निर्भर करती है। भारत में नाग तथा रसल घोषण के विष का अनुमानतः मूल्य 200 से 300 रुपये प्रतिग्राम तथा करैत का 300 से 400 रुपये प्रतिग्राम या अधिक होता है। समुद्री साँप का विष बहुत कम मात्रा में एकत्र होने के कारण इसका मूल्य 7000 से 8000 रुपये प्रति ग्राम तक होता है। शुद्धीकृत प्रकिण्वों से प्राप्त फॉस्फोलाइपेस "ए" का मूल्य 50 रुपये प्रति मिलीग्राम तक हो सकता है। सर्पविष के अतिरिक्त सर्प की खालों का चर्मशोधन कर व्यापारिक वस्तुएँ बनाई जाती हैं। पश्चिम जर्मनी, इटली, इंग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, युगोस्लाविया, जापान, नीदरलैण्ड, स्पेन आदि सर्प खालों का आयात करने वाले प्रमुख देश हैं।

मित्र के रूप में : चूहा, गिलहरी आदि से रोकथाम करने में साँपों का विशेष महत्व है। वर्षा के दिनों में जब किसान खेती में व्यस्त होता है, तब साँप खलिहानों में अनाज की चूहों से रक्षा करते हैं। साँपों के काटने की मृत्यु दर, चूहों के द्वारा नष्ट होने वाले अनाज की हानि की अपेक्षा बहुत कम है।

दहेज के रूप में : राजस्थान में सँपेरों की एक जनजाति में साँपों को दहेज के रूप में देने की प्रथा है। इस जनजाति का नाम "शबर" है। इस जनजाति के लोग साँप पकड़कर उनका जहर निकालते हैं व गाँवों में साँप के खेल दिखाते हैं। इनकी शादी में लेन-देन पाप समझा जाता है, परन्तु शादी के बाद रस्म के तौर पर कन्या पक्ष को 9 से 14 साँप दहेज में देने का रिवाज है।

भोजन के रूप में : चीन, बर्मा तथा भारत के अनेक भागों में, विशेष रूप से उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में तथा मध्य प्रदेश के आदिवासी बहुल इलाकों में साँप को खाया जाता है। हांगकांग में साँपों को खाने के अतिरिक्त उनके पित्ताशय से मदिरा व अन्य दवाइयाँ बनाई जाती हैं। भारत में कुछ लोग साँप के अण्डों को भी खाते हैं। सर्प सामान्यतः 70 अण्डे (बाज के पक्षी के अंडों से थोड़ा बड़े व मुलायम चमड़े की परत वाले) देता है।

औषधि के रूप में : आयुर्वेद में साँप की चर्बी से अनेक रोगों का उपचार किया जाता है। साँप के तेल को प्राचीन काल से ही दवा के रूप में गाँठ (ट्यूमर), सूजन, दर्द व गठिया में प्रयुक्त किया जाता रहा है। यूरोप, अमेरिका एवं अन्य देशों में साँप की चर्बी से अनेक औषधियों का निर्माण किया जाता है।

दर्दनाशक के रूप में : सर्प का विष ऐन्टीवेनम बनाने के काम आता है। भारत में यह औषधि मुख्यतया हैफकिन संस्थान, मुम्बई व केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान, कसौली में तैयार की जाती है। सर्पविष का प्रयोग दर्द कम करने व पेशीय अयोग्यता के उपचार में होता है। नाड़ी के कुष्ठ रोग से पीड़ित रोगियों के दर्द को कम करने में नाग के विष का इन्जेक्शन दिया जाता है। होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति में रेटल साँप के विष को मिर्गी, दमा, नाड़ी, शूल, कमर का रोग, दंत रोग, क्षय रोग आदि में रोग निवारण के लिये प्रयुक्त किया जाता है। भारत के पूर्वी राज्यों में "तामूल" (पहाड़ी सर्प) व मलाया के "पाम्बू" सर्प की खालों को सुखाकर व उनका चूर्ण बनाकर कुष्ठ रोगों का उपचार किया जाता है। यूनानी चिकित्सा पद्धति में श्वेत कुष्ठ रोग व हैजा आदि रोगों की औषधि बनाने में सर्पों के रक्त का उपयोग किया जाता है।

सर्पविष पाचक रसों का एक मुख्य स्रोत है तथा इससे अनेक प्रकार के पाचक रस तैयार कर अनुसंधान में इनका प्रयोग किया जाता है।

– प्लाट नं० 389
गली नं० 10, मिल्क मैन कालोनी
पाल रोड, जोधपुर

धान-कृषि-पारिस्थितिकी और मच्छरों का प्रजनन

डॉ० रजनी कान्त

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारी कुल आबादी का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र में रहता है तथा कृषि पर निर्भर है। जनसंख्या में अतिशय वृद्धि के साथ खाद्यान्नों के उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है। बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्य आपूर्ति एवं आत्मनिर्भरता के लिए नई सिंचाई की योजनाएं तथा उच्च उत्पादन वाली किस्मों की फ़सलों को बढ़ावा दिया गया है। एक आकलन के अनुसार भारत का खाद्यान्न उत्पादन जो सन् 1951 में 52.5 मीट्रिक टन था वह सन् 1995 में बढ़कर 182 मीट्रिक टन तक पहुँच गया तथा इसी दौरान कृषि उत्पादन की वृद्धि के लिए सिंचाई के विस्तार में भी 22.6 मिलियन से बढ़कर 90 मिलियन हेक्टेयर तक की वृद्धि हो गई।

धान संसार की प्राचीनतम फ़सलों में से एक है, जिसका उल्लेख विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ **ऋग्वेद** में विभिन्न स्थानों पर मिलता है। अनेक इतिहासकारों एवं पुरातत्ववेत्ताओं ने धान का उत्पत्ति स्थल भारत को ही माना है जिसका प्रसार अन्य देशों में भारतवासियों के द्वारा ही किया गया।

विश्व के लगभग 110 देशों के 140 मिलियन हेक्टेयर भू-भाग पर धान की खेती की जाती है। यह एशिया महाद्वीप का एक प्रमुख आहार है तथा विश्व में कुल धान उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग दक्षिण पूर्व एशिया के देशों द्वारा ही किया जाता है जिसका 50 प्रतिशत उत्पादन अकेले भारत एवं चीन में ही होता है।

धान भारत की प्रथम कृष्य फ़सल है तथा 3.80 करोड़ हेक्टेयर भू-भाग (कुल कृषि उत्पादन भूमि का एक चौथाई) में धान की खेती की जाती है। भारत की अनुमानतः तीन चौथाई आबादी धान पर निर्भर करती है। धान की पैदावार का सीधा सम्बन्ध पानी से है। यह फ़सल करीब 4-5 महीने तक खेतों में रहती हैं एवं पूरे समय खेत पानी से भरे रहते हैं। कई क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की पर्याप्त सुविधा है वहाँ वर्ष में 2 या कुछ क्षेत्रों में 3 फ़सलें भी उगाई जाती हैं। चूँकि धान के खेत की पारिस्थितिक स्थितियाँ निरन्तर परिवर्तित होती रहती हैं इसलिए मच्छरों के प्रजनन पर भी इसका सीधा असर पड़ता है।

धान की खेती कई क्रमों को पार करके पूरी होती है। इस फ़सल की सामान्यतः 4-5 मुख्य अवस्थाएँ हैं। यह धान कृषि पारिस्थितिकी का सम्पूर्ण हिस्सा है।

(i) नर्सरी अवधि

(ii) नए रोपे गए खेत

(iii) मध्यावधि की फ़सल, वृद्धि की अवस्था

(iv) धान की बाली निकलने (पुष्पण) एवं कटाई पूर्व की अवस्था

(v) कटाई पश्चात् धान के खेत

इसके अतिरिक्त सिंचाई के लिए धान के खेतों के बीच एवं उनके किनारे सिंचाई की नालियाँ रहती हैं, जिनमें निरन्तर पानी का धीमा बहाव रहता है तथा उनके किनारे पर लगे धान तथा कुछ शैवाल आदि की उपस्थिति के परिणामस्वरूप यह भी मच्छरों के प्रजनन का अति उत्तम स्थान हो जाता है।

धान के खेतों एवं सम्बद्ध स्थलों पर निरन्तर पानी भरे रहने के कारण यह सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र मच्छरों के प्रजनन के लिए अति उत्तम स्थल है। अध्ययनों में देखा गया है कि धान के खेतों में कई

प्रकार के मच्छर उत्पन्न होते हैं, जिनमें **एनॉफिलीज़, क्यूलेकन, एडीज़, मैनसोनिया** आदि मुख्य हैं। परन्तु इन मच्छरों का तथा इनकी प्रजातियों का प्रजनन विभिन्न अवस्थाओं पर बदलता रहता है।

धान की नर्सरी में **कई प्रकार** के मच्छर उत्पन्न होते हैं हालांकि पौधों की सघनता के कारण इस स्थान पर मलेरिया का प्रमुख रोगवाहक **एनॉफिलीज़, क्युलिसिफ़ेलीज़** कम ही पनपता है। नर्सरी में मुख्य रूप से **एनॉफिलीज़ सबपिक्टस, एनाफिलीज़ बंगस, एनॉफिलीज़ एब्युलेटिस, एनॉफिलीज़ टेसीलसेटस** तथा **एनॉफिलीज़ नाइजेरिमान** का प्रजनन होता है। **क्युलेक्स** वर्ग के मच्छरों में **क्युलेक्स विश्नुई** उपवर्ग के मच्छरों का प्रजनन अत्यधिक पाया जाता है।

धान के खेतों को सिंचाई के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली नालियों (irrigation channels) में निरन्तर धीमे-धीमे एवं स्वच्छ पानी के बहाव के कारण मलेरिया का रोगवाहक **एनॉफिलीज़ क्युलिसिफेलीज़** यहाँ प्रचुर मात्रा में पनपता है। इसके अतिरिक्त **एनॉफिलीज़ सब्पिक्टस, एनॉफिलीज़ बार्बिरोस्ट्रिस**, तथा **एनॉफिलीज़ नाइजेरिमान** का प्रजनन भी इनमें होता रहता है।

धान के खेतों में पाए जाने वाले रोगवाहक मच्छर	
मलेरिया	**एनॉफिलीज़ क्युलिसिफिलीज़, एनॉफिलीज़ फ्लुवियाटिलिस, एनॉफिलीज़ स्टीफेन्साई**
फाइलेरिया रोग	**क्युलेक्स क्विंकीकोसिएटस**
जापानी मस्तिष्क शोथ	**क्युलेक्स विश्नुई, क्युलेक्स ट्राइनियोरिंकस, क्यूलेक्स जेलीइस**
अन्य विषाणु संक्रमण	**एडीज़, एनिप्यई मैंसोनिया यूनिफॉर्मिस**

धीमे-धीमे, जैसे-जैसे पौधों की ऊंचाई बढ़ती है तथा 30 से 60 सेमी० तक पहुँचती है एवं पानी भी पुराना हो जाता है, इन खेतों में कुछ शैवाल तथा अन्य वनस्पतियां भी पनपना शुरू कर देती हैं। पौधों में हुई वृद्धि के कारण दो पौधों के बीच की दूरी कम तथा हवादार स्थिति उत्पन्न होने लगती हैं। पौधों में लगातार होती वृद्धि एवं घटती अन्तःस्थल दूरी के साथ-साथ **एनॉफिलीज़ क्यूलिसिफिलीज़** एवं **एनॉफिलीज़ सबपिक्टस** जैसे मच्छरों के प्रजनन में गिरावट आनी शुरू हो जाती है तथा यह जातियाँ दूसरी छाया पसन्द मच्छरों की जातियों द्वारा विस्थापित हो जाती हैं। ऐसे खेतों में **एनॉफिलीज़ एब्युलेटिस, एनॉफिलीज़ एकोनिटस, एनॉफिलीज टेसीलेटस** जैसे मच्छरों का प्रजनन होता है तथा बढ़ते समय के साथ-साथ **एनॉफिलीज़ नाइजेरिमान** तथा **एनॉफिलीज़ बार्बिरोस्ट्रिस** जाति के मच्छरों का प्रजनन भी शुरू हो जाता है। क्युलेक्स वर्ग के मच्छरों में जापानी मस्तिष्क शोथ के रोगवाहक **क्युलेक्स विश्नुई, क्युलेक्स ट्राइटीनियोरिंकस, क्युलेक्स जेलीइस** के अतिरिक्त **क्युलेक्स बाइटीनियोरिंकस**, एवं **मैंसोनिया** जाति के मच्छरों का प्रजनन भी इस अवस्था तक शुरू हो जाता है।

पौधों में निरन्तर जारी वृद्धि एवं बढ़ती फ़सल अब इस अवस्था पर पहुँच जाती है कि धान के पौधों पर बालियां आ जाती हैं। इस अवस्था को पुष्पण अवस्था कह सकते हैं।

इन खेतों में **एनॉफिलीज़ नाइजेरिमान** तथा **एनॉफिलीज़ बार्सिरोस्ट्रिस** का प्रजनन सर्वाधिक मात्रा में होता हैं। **एनॉफिलीज़ सबपिक्टस** कम मात्रा में पाया जाता है। **क्युलेक्स बिश्नुई** वर्ग के मच्छरों का प्रजनन भी इस समय जारी रहता है। इसके अतिरिक्त **मैंसोनिया यूनिफार्मिस, फाइकेलिबना**, तथा **माइगोमिया** जाति के मच्छर भी पनपते रहते हैं। इन खेतों में **एनॉफिलीज़ नाइजेरिमान** तथा **एनॉफिलीज़ बार्बिरोस्ट्रिस** का प्रजनन सर्वाधिक होता है तथा **क्युलेक्स विश्नुई** वर्ग के मच्छरों का प्रजनन जारी रहता है। कई जगह पर खेतों में से पानी को निकाल दिया जाता है, परन्तु कहीं-कहीं पर निचले हिस्सों में, जहाँ नहर का रिसाव रहता हो वहाँ पानी खेतों में अन्त तक तथा फसल की कटाई के बाद भी भरा रहता है, जो मच्छरों के प्रजनन में सहायक होता है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य मच्छर जैसे **एनाफिलीज़ स्टीफेन्साई, एनॉफिलीज़ फ्लुफिमाटिलिस** जो मलेरिया के रोगवाहक हैं तथा **एनॉफिलीज़ पेलीडस, एनॉफिलीज़ जेमिसाई** आदि भी समय-समय पर धान के खेतों में प्रजनन करते रहते हैं। धान के खेतों में मच्छरों का प्रजनन उस क्षेत्र में उपस्थित मच्छरों की जातियों की उपस्थिति तथा उनकी प्रजनन वरीयता पर निर्भर करता है जो स्थान एवं समय के अनुसार परिवर्तित हो सकता है तथा पौधों की ऊँचाई के बीच एक विपरीत सह-सम्बन्ध पाया गया है। पौधों की ऊँचाई में वृद्धि के साथ डिंभकों की सघनता में गिरावट देखी गई जबकि पौधों के बीच की दूरी के साथ इसमें सकारात्मक सम्बन्ध देखा गया। इसके अतिरिक्त धान के खेतों में कीटनाशकों का प्रयोग भी मच्छरों के प्रजनन को प्रभावित करते हुए देखा गया है।

धान के काटने के पश्चात् सिंचाई वाले विस्तार में कुछ निचले हिस्सों में फ़सल की कटाई के बाद भी खेतों में पानी भरा रहता है, जहाँ कटे हुए पौधों के तने सड़ते रहते हैं तथा अन्य कई जलीय वनस्पतियाँ जैसे शैवाल, **लेम्ना, अज़ोला** आदि की उपस्थिति मच्छरों के प्रजनन में सहायक होती है। इन खेतों में **एनॉफिलीज़ एन्युलेरिस, एनॉफिलीज़ पैलीडास, एनॉफिलीज़ सब्पिक्टस** तथा **एनॉफिलीज़ नाइज़ेरिमान** के अतिरिक्त **क्युलेक्स विश्नुई** उपवर्ग के मच्छर बहुतायत में पाए जाते हैं।

धान के खेतों में मच्छरों के प्रजनन को रोकने के लिए विभिन्न प्रयोग किए गए हैं। इनमें से एक तरीका है कि खेतों में रुक-रुक कर सिंचाई की जाए। अधिक निचले हिस्सों, जहाँ पानी का संग्रह नियमित रहता है, वहाँ प्रारम्भिक अवस्था में गम्बूशिया तथा गप्पी जैसी लार्वाभक्षक पद्धतियों का प्रयोग उपयोगी हो सकता है, हालांकि बाद की अवस्था में पौधों में वृद्धि एवं जलीय वनस्पतियों के पनपने के कारण उनकी प्रभावशीलता प्रभावित हो सकती है। कुछ स्थानों पर जैवनाशी (biocides) जिसमें **बैसिलस स्फेरिकस** तथा **बैसिलस थूरिंजिएन्सिस** शामिल हैं, प्रभावी हो सकते हैं। अगर धान के खेतों को निवास-स्थल से दूर रखा जाए तो भी मच्छरों की संख्या में गिरावट आ सकती है। हाल में एक जलीय वनस्पति **अज़ोला** का उपयोग भी मच्छर नियंत्रण में किया गया है। चूंकि यह एक नील-हरित शैवाल (Blue green algae) **एनाबीना अजोली** के साथ सहजीविता (Symbiotic relationship) दर्शाती है इसलिए इसके प्रयोग से नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen Fixation) के कारण उत्पादन में भी वृद्धि हो सकती है। नवीन अनुसंधानों के अन्तर्गत धान के खेतों में मच्छरों के प्रजनन पर नियंत्रण पाने के लिए नीम की ख़ली तथा नीम आवरित यूरिया (Neem Coated Urea) का प्रयोग भी उपयोगी पाया गया है।

कृषि हमारे जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है, परन्तु इतना ही महत्वपूर्ण है हमारा स्वास्थ्य। इसलिए अगर उचित जल-प्रबन्ध एवं मच्छरों के नियंत्रण को ध्यान में रखकर सिंचाई तथा खेती की जाए तो मलेरिया, फाइलेरिया, जापानी मस्तिष्क-शोथ जैसे अन्य संचारी रोगों पर नियंत्रण रखकर हम स्वस्थ एवं सुखी जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

–भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्,
नई दिल्ली-110029

विज्ञान परिषद् प्रयाग शीघ्र ही एक **लघु अवधि विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रम** आरम्भ करने जा रहा है। राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, नई दिल्ली द्वारा **समर्थित इस** पाठ्यक्रम का पूर्ण विवरण हम अगले अंक में प्रकाशित करेंगे ।

– प्रधान मंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

मार्को पोलो और विज्ञान

संकलनकर्ता: डॉ० शिवगोपाल मिश्र

मार्को पोलो का जन्म 1254 ई० में वेनिस में हुआ। वह 1271 में अपने पिता के साथ चीन गया जहाँ 1277 में सिविल सर्विस में उसकी नियुक्ति हो गई। इसी पद पर रह कर उसने बर्मा, सीलोन तथा भारत की यात्राएँ कीं और 1292 में पुनः चीन वापस गया। 1295 में वेनिस जाकर उसने अपनी यात्राओं का वृत्तान्त लिखा। उसकी पहली भारत यात्रा 1284-85 में हुई।

मार्को पोलो में बचपन से ही वस्तुओं को जानने की प्रबल इच्छा हिलोरे ले रही थी। उसके यात्रा वृत्तान्तों के कुछ रोचक अंश, जिनका विज्ञान से सम्बन्ध है, पाठकों के मनोरंजनार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

ऐल्केमी : खाकान ने एक प्रकार से उस रहस्य को खोज निकाला था जिसका चिरकाल से सारे रासायनिक पता लगा रहे थे– सोना बनाने की विधि। कुबलाई कागज़ की मुद्रा का उपयोग करता था और इन नोटों से वह मनमाना सोना खरीद सकता था।

जिस राजदूत मंडल का अध्यक्ष बनकर मार्को पोलो लंका गया था, उसको आदेश मिला था कि वह उस लालमणि को भी प्राप्त करे जो वहाँ के राजा के पास थी। वह लिखता है कि "यह लालमणि राजा अपनी मुट्ठी में रखे था जिसे वह आँखों और मुँह से छुआ रहा था। लगता है कि यह **जादू का पत्थर** था जिसके छूने से यौवन लाभ होता था।"

मार्को पोलो ने भारत के योगियों के विषय में लिखा है कि वे **रसायन** के विशेषज्ञ हैं। इस प्रकार के लोग रासायनिक सोना बनाने का प्रयास नहीं करते थे किन्तु जीवन के रसायन की खोज में रहते थे। यह रसायन दो प्रकार का था– वह जो अमरत्व देता है और जो जीवन को दीर्घत्व देता है। योगी दूसरों से अधिक काल तक, 150-200 वर्ष तक, जीवित रहते थे। वे जहाँ चाहें चल कर जा सकते थे।

कुछ योगी रासायनिक थे जो वनों में एकान्त में साधना करते थे। वे तरल पदार्थ पी जाते थे जिसमें **गंधक और पारे** का योग रहता। मिश्रण में उन तरलों का सही अनुपात एवं रहस्य बना हुआ था। राज्यों में बहुत से शासक गलत मिश्रण पीकर मर भी गये। फारस के मंगोल अलखान अरगन शहजादे ने रसायन का आठ महीने का क्रम लिया जिससे वह मर गया।

मिट्टी का तेल : बाकू के पास फौव्वारे की भाँति निकलते हुए तेल का उल्लेख करते हुए उसने लिखा, "यह तेल खाने के लिए नहीं किन्तु जलाने के लिए ठीक रहता है और जिन ऊँटों को खुजली हो जाती है उन्हें भी लगाया जाता है।"

घेघा रोग : ताशकंद, काशगर तथा यारकन्द के निवासी घेघा से पीड़ित थे जिसका कारण पीने के पानी में किसी विकार की उपस्थिति है।

कोयला : चीन में एक प्रकार के बड़े **काले पत्थर** पाये जाते हैं जो लकड़ियों की तरह जलते हैं। ये पत्थर मकान बनाने के काम में नहीं लाये जा सकते।

साबूदाना (सैगो) : एक बड़ा पुराना पेड़ है जो आटा देता है। यह आटा तने के अन्दर रहता है। पाने के लिए पेट को फाडते हैं। पोले तनों में ढेरों आटा रहता है। इसे पहले नादों में भिगोते हैं तो आटा तली पर बैठ जाता है जिसे निकाल कर रोटी बनाई जाती है।

कागज़ : चीनी लोग कागज का उपयोग हान के समय से करते आ रहे थे। सब देशों को मिलाकर जितनी पुस्तकें छपी होंगी उससे अधिक अकेले चीन में छपी थीं।

बन्दर : बौनों की तरह के बन्दर मिलते हैं जिनके मृत शवों की बिक्री होती है।

वज्रमणि : खोतान तथा चाचान के बीच के प्रदेश में बज्रमणि की खानें हैं जो सूर्यकान्तमणि या कैल्सिडोनी की हैं।

गैंडा : सुमात्रा में **एक सींग का घोड़ा** पाया जाता है।

सूचना तकनीक में हिन्दी की पहुँच

रामचन्द्र मिश्र

21वीं सदी सूचना प्रौद्योगिकी की सदी है। सूचना-शक्ति राष्ट्र की शक्ति है। सूचना एक उपभोक्ता अधिकार भी है। देश-विदेश और खासकर भारत में सूचना प्रौद्योगिकी की धूम मची हुई है। व्यापार-वाणिज्य में त्वरित सफलता के लिए सूचना प्रौद्योगिकी को मूलमंत्र स्वीकारा गया है। पूरे विश्व में तथाकथित "साइबरकैपिटलिज्म" की ओर रुझान बढ़ रहा है। सारा विश्व व्यापार कंम्प्यूटर-जाल "इंटरनेट पर हो, इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास हो रहे हैं और आवश्यक मसौदे व करार तैयार किए जा रहे हैं। केंद्र में अलग से सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय का गठन इस बात का सूचक है कि भारत सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा प्रदत्त अवसर का पूरा लाभ उठाना चाहता है और उसके लिए उत्पन्न चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये सुदृढ़ व्यवस्था खड़ी करेगा।

सूचना प्रौद्योगिकी का माध्यम हिन्दी

सूचना प्रौद्योगिकी विषयक हिन्दी की क्षमता से बेखबर या उसे नजरअंदाज करते हुए हाल ही में कुछ हिन्दी विरोधियों ने मांग की है कि साइबर कैपिटलिज्म में स्पर्धा हेतु "भारत में हिन्दी को नहीं, अंग्रेजी को बढ़ावा देने वाला द्रुत-कार्यक्रम चलाया जाए", जबकि सच यह है कि अंग्रेजी का सूरज स्वयं चमक रहा है तो दीपक दिखाना अनावश्यक है। विचारणीय यह है कि सूचना का रूप भाषिक होता है और इसका सीधा सम्बन्ध उन भाषा-भाषियों से है जो उसके संभावित उपयोगकर्ता या लाभकर्ता होंगे। अतः सूचना प्रौद्योगिकी की खातिर कोई भी राष्ट्र अपनी राष्ट्रभाषा का परित्याग नहीं करेगा, बल्कि उसे सूचना प्रौद्योगिकी हेतु सक्षम बनाएगा, कंप्यूटर - योग्यता हेतु प्रोन्नत करेगा, उसे तकनीकी तौर पर समृद्ध करेगा, उसमें 'बिट-बाइट" जैसे तमाम शब्दों को पचाएगा जिनका ताल्लुक सूचना प्रौद्योगिकी से है। अतः द्रुत प्रचार कार्यक्रम की सही हकदार हिन्दी है, न कि अंग्रेजी।

विचारणीय यह भी है कि विश्व-व्यापार में सफलता पाने के लिए ज्यादातर दारोमदार हमारी औद्योगिक, आर्थिक एवं व्यापारिक मजबूती एवं उच्च प्रौद्योगिकी पर है, भले ही भाषा व्यापार का माध्यम है। साथ ही, भारत का व्यापार मात्र अंग्रेजी-विश्व से नहीं होता, बल्कि एशिया, अफ्रीका, रूस और खासकर खाड़ी के देशों के साथ चल रहा है जो हमारी भाषा से उतना परहेज नहीं करते जितना स्वयं भारतीय अंग्रेजी-परस्त करते हैं। इस वकालत का यह मतलब है कि सूचना प्रौद्योगिकी हेतु हिन्दी को प्रोन्नत करना अत्यावश्यक है।

सूचना प्रौद्योगिकी में भारत

सूचना प्रौद्योगिकी कोई नितांत नई बात नहीं है, कोई हौव्वा नहीं है, जैसा सामान्यतः एहसास किया जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी वस्तुतः पेचीदगी नहीं, सरलता का नाम है। सूचना प्रौद्योगिकी का सूत्रपात तभी हो गया था जब विश्व का प्रथम लिखित शास्त्र यानी चार वेदों की पांडुलिपि महर्षि व्यास और गणेशजी द्वारा बोली और लिखी गई थीं एवं लेखनी टूटने पर दांत निकाल कर शब्द अंकित किए गए थे। अब दांत नहीं, कम्प्यूटर हाजिर है। सूचना प्रौद्योगिकी तब भी थी जब प्राचीन भारत में मात्र हस्तलिखित साहित्य का ही पठन-पाठन होता था, प्रतिलिपिकारों की दृष्टि क्षीण हो जाती थी, पीठ व गर्दन अकड़ जाती थी। तब अंग्रेजी में नहीं, हिन्दी की जननी संस्कृत में सूचना प्रौद्योगिकी विकसित हुई थी। वही काम आज

परम कम्प्यूटरों द्वारा बिल्कुल आसान हो गया है। भारत पहले से ही गणित एवं अभियांत्रिकी में प्रवीण रहा है, भौतिकी में आगे रहा है और आज भी इन विषयों में, जो सूचना प्रौद्योगिकी की रीढ़ है, अग्रणी है। अब तो भारत सामान्य से परम कम्प्यूटर तक पहुँच गया है, पूर्णीकृत देवनागरी कम्प्यूटर भी बन गया है।

भारत में सालाना 3,000 करोड़ रुपये मूल्य के अधुनातम कम्प्यूटर निर्मित हो रहे हैं और 10,000 करोड़ रु० के सॉफ्टवेयर एवं 4,500 करोड़ रु० के पुर्जे बनते हैं। सॉफ्टवेयरों का 30 फीसदी हिस्सा दूसरे देशों को बेचा जाता है। संचार क्रांति में, जो सूचना क्रांति की सहगामी है, भारत बहुत आगे है और इस प्रकार 21वीं सदी में यह देश सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक विश्व-शक्ति बनेगा।

सूचना प्रौद्योगिकी की बदौलत सूचना का तीव्र एवं सक्षम संग्रहण, वैधता-सत्यापन, संचयन, पुनः प्राप्तिकरण, विश्लेषण, प्रसार तथा उपयोग किया जाता है। पहले कम्प्यूटर का उपयोग सिर्फ स्थानिक था और संचारण से अलग। अब अन्य उपादानों के साथ कम्प्यूटर का विश्वव्यापी अंतरजाल इंटरनेट उपलब्ध है जिसके उपयोग असीमित है। घर बैठे विश्व के किसी भाग से सूचना का आदान-प्रदान, विचार-विमर्श, खरीद-फरोख्त के सौदे आदि इंटरनेट पर संभव है। 21वीं सदी में कम्प्यूटर सूक्ष्म से सूक्ष्मतम किंतु ज्यादा बुद्धिशाली होगे। कम्प्यूटर में अनुवाद शुरू हो गया है, यद्यपि इसमें परिनिष्ठता आनी बाकी है और इस प्रकार कम्प्यूटर द्वारा किसी भी भाषा में संपर्क या व्यवहार संभव होगा। इतिहास के एक लंबे दौर में एक सार्वभौम भाषा विकसित होगी किंतु तब भी राष्ट्रभाषाओं का महत्व यथावत रहेगा।

हिन्दी हार्डवेयर/सॉफ्टवेयर

संस्कृत, हिन्दी तथा समान वर्णमाला की अन्य भारतीय भाषाएं विश्व की अनेक भाषाओं की अपेक्षा वाक्य विज्ञान, ध्वनि विज्ञान एवं रैखिक रूप से अधिक सुनियोजित है और कम्प्यूटर प्रोग्राम हेतु सर्वथा समर्थ। हिन्दी में शब्द संसाधनन (अंकीय निरूपण, कुंजीयन, मुद्रण) भाषा संसाधनन का प्रथम सोपान है। शब्द संसाधनन एवं इसके लिए आवश्यक डेटा संसाधनन की सुविधा हिन्दी में सुलभ है। भारतीय भाषाओं में डॉस परिवेश के अंतर्गत शब्द संसाधनन हेतु कई बहुभाषी पैकेज उपलब्ध हैं, जैसे अक्षर, शब्दमाला, शब्दरत्न, आलेख, भारती ब्राइक्रिस्ट, मल्टीवर्ड आदि। डेटा संसाधनन हेतु हार्डवेयर व सॉफ्टवेयर दो विकल्प हैं। पहले में जिस्ट प्रणाली के अंतर्गत जिस्ट कार्ड और जिस्ट टर्मिनल की सुविधा प्राप्त है जिसके द्वारा रोमन के सभी सामान्य पैकेजों का भारतीय भाषाओं के लिए द्विभाषिक रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिस्ट कार्ड आई बी एम पी सी कम्प्यूटरों पर शब्द संसाधनन और रोमन के प्रचलित सभी पैकेजों द्वारा डेटा संसाधनन कार्य किया जाता है, जब कि यूनिक्स/जेनिक्स परिचालन प्रणालियों के लिए जिस्ट टर्मिनल का उपयोग होता है। यह सुविधा सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है।

दूसरे विकल्प, यानी सॉफ्टवेयर विधि के अंतर्गत कम्प्यूटर में बिना किसी परिवर्तन के फ्लॉपी डिस्क के रूप में दो प्रकार के पैकेज उपलब्ध हैं, पहला डी बेस-III प्लस का द्विभाषी संस्करण ''देवबेस'' समर्पित सॉफ्टवेयर पैकेज है और दूसरा सामान्य उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर परिवेश (रोमन के पैकेज डी बेस, लोटस, ओरॅकल, सॉफ्टबेस, फॉक्सप्रो, क्लिपर आदि)। इसे परिवेश द्वारा बेसिक, कोबोल, पास्कल आदि भाषाओं के प्रोग्रामों के माध्यम से भी हिन्दी में डेटा संसाधनन किया जाता है। इसके लिए सुलिपि नामक सॉफ्टवेयर बना है जो जिस्ट जैसे ही समान उद्देश्यीय है। भारत सरकार के इलेक्ट्रॉनिकी विभाग द्वारा अधिकांश सॉफ्टवेयर व हार्डवेयरों के लिए 8-बिट इस्की कोड को अपनाया गया है जिसके लिए लिप्यंतरण होता है। इसकी मात्र एक कुंजी दबा कर देवनागरी पाठ का किसी भारतीय भाषा में लिप्यंतरण हो जाता है। जिस्ट के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में परस्पर लिप्यंतरण हेतु अब ध्वन्यात्मक स्क्रिप्ट कुंजीपटल प्रचलित है।

मुद्रण के क्षेत्र में डी टी पी की द्विभाषी सुविधा रोमन के वेंचुरा सॉफ्टवेयर पर आधारित 'प्रकाशक',

'वीनस' आदि पैकजों के रूप में विंडोज परिवेश में पेजमेकर (इंडिका, इज्म, ऐस्ट्रिक्स, सुलेजर आदि) में इसका प्रयोग हो सकता है जो कोरल ड्रा तथा फोटो शॉप जैसे पैकेजों में हिन्दी सुविधा प्रदान करते हैं। 'लिप्स' नामक प्रणाली द्वारा फिल्मों के उप-शीर्षक, रेलवे आरक्षण, गाड़ियों एवं विमानों के आगमन-प्रस्थान की सूचनाएं टी वी मानीटर के जरिए हिन्दी में प्रदर्शित की जाती है।

हिन्दी इंटरनेट

कम्प्यूटर द्वारा हिन्दी सिखाने के लिए विंडोज परिवेश के अंतर्गत ''लीलाप्रबोध'' नामक बहुमाध्यम स्वयंशिक्षक पैकेज बनाया गया है जिसके द्वारा हिन्दी शब्दों और वाक्यों का प्रामाणिक उच्चारण और वाचन सुना जा सकता है। यह विधि बड़ी रोचक और प्रभावी है।

डॉस की अपेक्षा विंडोज का प्रचलन बढ़ा है जिसके लिए लीप ऑफिस 2.0 नामक इंटरफेस बनाया गया है। इसके द्वारा वर्ड, एक्सेल, पावर पॉइंट, पेजमेकर, सुविंडोज, अक्षर फॉर विंडोज, आकृति आदि में सभी भारतीय भाषाओं के माध्यम से कार्य किया जा सकता है। इन पैकेजों में हिन्दी ई-मेल और वैब प्रकाशन की सुविधा सुलभ है। इस प्रकार कम्प्यूटर में हो रहे विकास के साथ-साथ हिन्दी की कम्प्यूटर-विषयक क्षमता में भी उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है। आवश्यकता है इन सुविधाओं के व्यापक प्रयोग करने की ताकि हिन्दी की नई क्षमता सार्थक हो सके। अनुमानतः भारत में साठ लाख कम्प्यूटर कार्यरत हैं। भारत सरकार के आदेशों के अनुसार इन्हें द्विभाषी बनाने के लिए हिन्दी में शब्द संसाधन और डेटा संसाधनन दोनों सुविधाएं लगाना अपेक्षित है।

हिन्दी में सूचना प्रौद्योगिकी के विविध उपस्करों का प्रयोग अभी आरंभिक अवस्था में हैं, सतत् प्रयोग द्वारा इसमें परिनिष्ठा अवश्य आएगी और तब हिन्दी संभवतः अंग्रेजी को पीछे छोड़ जाती है। प्रसन्नता की बात है कि पहली हिन्दी इंटरनेट सेवा का शुभारंभ हो चुका है जिसकी बदौलत अंग्रेजी न जानने वालों को सूचना का महामार्ग मिल गया है।

सशक्त प्रयोग

भारत की अधिकांश जनता अंग्रेजी से अनभिज्ञ है और अगर हिन्दी माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी का विकास नहीं हुआ तो वह इसके असीम फायदों से वंचित रह जाएगी, परंपरागत व्यापारी समृद्धि के हकदार नहीं हो पाएंगे और इस प्रकार एक बार पीछे छूट जाने पर दौड़ने का हौसला घट सकता है एवं कालांतर में दौड़ से बाहर हटने की प्रवृत्ति हावी हो सकती है।

कहते हैं कि सोवियत संघ के टूटने का एक कारण यह भी था कि वह सूचना प्रौद्योगिकी में अमेरिका से पीछे था जिसके कारण रूस पर सांस्कृतिक सूचनाओं के हमले होते रहे और असंतोष भड़कने पर टूटन की स्थिति आ गई। इसीलिए स्वभाषा के माध्यम से सूचना प्रौद्योगिकी में मजबूती लाना एक राष्ट्रीय अपरिहार्यता है।

भारत में लोकतंत्र मजबूत है किंतु इसमें भ्रष्टाचार तथा दुरुपयोग की संभावनाएं बढ़ी हैं। इसीलिए प्रशासन में पारदर्शिता सर्वथा वांछनीय है। अब तक सूचना के भंडार शासक वर्ग की मुट्ठी में समाए होते थे परंतु सूचना प्रौद्योगिकी की बदौलत पारदर्शिता का स्वप्न साकार होने में अब देर नहीं होगी और इससे सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में अवश्य सुधार होगा।

सूचना प्रौद्योगिकी संभवतः सत्ताकामी भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को भी रास्ते पर लाने में सहायक होगी। यह कैसे हो सकता है कि यह सब काम मात्र अंग्रेजी में हो जाए या सूचना प्रौद्योगिकी की खातिर हिन्दी का परित्याग कर दिया जाए ? ऐसा न हो, इसके लिए हिन्दी कार्यकर्ताओं को सतत संघर्ष तो करना ही पड़ेगा। दूसरी ओर यदि हम हिन्दी में प्राप्त ज्ञान के रत्नों को दुनियाँ में बांटने चाहें और विदेशी भाषाओं में संचित कम्प्यूटरीकृत ज्ञान को हिन्दी माध्यम से ग्रहण करना चाहें तो उसके लिए हिन्दी इंटरनेट एक अनिवार्य आवश्यकता है।

हिन्दी का कल्पवृक्ष

अंतर्राष्ट्रीय व्यवहार में कोई भी भाषा देशी घी जैसी विशुद्ध नहीं रह गई है, विश्व की सभी भाषाएँ तकनीकीकरण के दौर में दोगली हो गई हैं। सूचना

प्रौद्योगिकी-योग्य हिन्दी शब्दावली समृद्ध हो, इसके लिए हमें हिन्दी में बहुत से विदेशी शब्दों को पचाना होगा। हमारी अखिल भारतीय तकनीकी शब्दावली में आठ लाख से भी ज्यादा शब्द शामिल किए जा चुके हैं जो अब कम्प्यूटरीकृत राष्ट्रीय शब्दावली बैंक में केंद्रीकृत हैं। इसे राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र की निकनेट उपग्रह सेवा से जोड़ कर इसका देशव्यापी प्रचार होगा और व्यवहारतः हिन्दी का आधुनिकीकरण हो सकेगा। शब्दावली का व्यवहार किए बगैर लोग शिकायत करते हैं कि यह कृत्रिम है, वास्तविकता से परे हैं, क्लिष्ट या दुरूह है। इसके उत्तर में सिर्फ इतना ही कहना है कि सतत प्रयोग द्वारा दुरूहता का वैयक्तिक अनुभव समाप्त हो जाता है, अन्यथा अप्रयोग ही दुरूहता का पर्याय होता है। यह समझना बहुत जरूरी है कि विश्व का समस्त शब्द भंडार तीन उत्कृष्ट क्लासिकी भाषाओं-संस्कृत, लैटिन तथा ग्रीक की अनेकानेक धातुओं, प्रत्ययों एवं उपसर्गों से निर्मित हुए हैं तथा यह क्रिया अब भी जारी है। संस्कृत के बगैर कोई भी भारतीय भाषा समृद्ध नहीं हो सकती और न ही उसका आधुनिकीकरण हो सकता है। संस्कृतनिष्ठ शब्दों से परहेज निस्संदेह अज्ञान का प्रतिफल है। शब्दावली का संशोधन तथा सरलीकरण ठोस भाषा-वैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर ही हो सकता है और इस काम को भाषाविदों एवं विषय- विशेषज्ञों पर छोड़ देना है। शब्दावली से छेड़छाड़ या बेवजह अड़ंगाबाजी करने से हिन्दी में अराजकता ही पैदा होगी।

ज्ञातव्य है कि शब्दावली वस्तुतः भाषा का कल्पवृक्ष होती है, उससे जो मांगे, मिलेगा। लेकिन अगर कुछ मांगे ही न तो इच्छापूर्ति का सवाल ही नहीं उठता। राष्ट्रीय शब्दावली के सतत् प्रयोग द्वारा ही हिन्दी में वांछित क्षमता आएगी। सफल शब्दावली ही पूर्ण भाषा बनाती है और पूर्ण भाषा ही सफल होती है। राष्ट्रीय सामंजस्य और सक्रिय संकल्प द्वारा ही हम एक अखिल भारतीय हिन्दी शब्दावली की उपादेयता को स्वीकार पायेंगे। वर्तमान में शक्ति का स्रोत सुविज्ञता हो गई है जिसका व्यवहार में पर्याय है सूचना प्रौद्योगिकी। हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा है और उसके माध्यम से सुविज्ञता बढ़ती है तो हम राष्ट्र की बौद्धिक-नैतिक शक्तियों एवं विकास की अभिलाषाओं की सशक्त अभिव्यक्ति कर पायेंगे।

अभी जब हमने हिन्दी में सूचना प्रौद्योगिकी की बात की है तो हिन्दी की मंजिल, उसकी रुकावटें या कठिनाइयों का जायजा मिला है। सूचना प्रौद्योगिकी का संबल पा कर हम जागृत व क्रियाशील हों और हिन्दी को उसके योग्य, सक्षम बनाएं, यह संदेश राष्ट्रभाषा प्रचारकों के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाना है जो हिन्दी की सच्ची सेवा होगी।

--भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान
मुंबई

सम्मान

नई दिल्ली में 16-17 जून 2000 को सम्पन्न इण्डियन साइंस राइटर्स एसोसिएशन के वार्षिक अधिवेशन में विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री **डॉ० शिवगोपाल मिश्र** तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली के महानिदेशक **डॉ० रघुनाथ अनन्त माशेलकर** को वर्ष 2000 के लिए एसोसिएशन की **मानद फेलोशिप** प्रदान कर सम्मानित किया गया।

प्रौद्योगिकी दिवस

शिवगोपाल मिश्र

विज्ञान का व्यावहारिक पक्ष ही प्रौद्योगिकी है। प्रौद्योगिकी का अर्थ है किसी एक अथवा सभी सम्प्रयुक्त विज्ञानों का काम में लाया जाना जिनका व्यावहारिक अथवा औद्योगिक उपयोग हो। हर प्रकार की प्रौद्योगिकी में दैनिक जीवन में विज्ञान तथा उसके नियमों का प्रयोग निश्चित रहता है इसीलिए प्रौद्योगिकी को सम्प्रयुक्त विज्ञान कहा जाता है।

मानव समाज के उत्थान में प्रौद्योगिकी का अत्यधिक योगदान रहा है। चाहे अग्नि का उपयोग हो, खेती करना हो या पशुपालन हो– सभी में प्रौद्योगिकी इस्तेमाल में आती रही है। पहले का शिल्पशास्त्र और प्रौद्योगिकी बहुत कुछ एक हैं। आज तो प्रौद्योगिकी अनेक नामों से मुखर हो रही है– सूचना प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी। यही नहीं भाषा प्रौद्योगिकी भी। स्वच्छ प्रौद्योगिकी, पर्यावरण मित्र प्रौद्योगिकी जैसे शब्द भी गढ़े गये हैं। 'स्वदेशी' तथा 'लघु' (Small) जैसे शब्दों की भी भरमार है। क्या औद्योगिक क्रान्ति प्रौद्योगिकी का विकास नहीं था ?

3 मार्च 1983 को तिरुपति में साइंस कांग्रेस के अवसर पर श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा प्रौद्योगिकी नीति की घोषणा की गई। अब 'जय विज्ञान' के ही एक नारे के फलस्वरूप 11 मई को प्रौद्योगिकी दिवस मनाने के आयोजन हो रहे हैं।

प्रौद्योगिकी के मूलभूत दो गुण हैं : (1) हर नवीन प्रौद्योगिकी मनुष्य की जीवन शैली तथा उसकी कार्यक्षमता को बदलती है। (2) हर प्रौद्योगिकी किसी न किसी क्षेत्र में विकास की दर को बढ़ाती है।

कहा गया है कि एक प्रौद्योगिकी अन्य प्रौद्योगिकी को जन्म देती है। उदाहरणार्थ जेम्स वाट के वाष्प इंजन की सफलता से प्रेरित होकर वैज्ञानिकों ने ऊष्मा तथा ऊर्जा के सम्बन्ध में नये सिद्धान्तों की खोज की। इसी तरह दूरबीन की खोज के बाद खगोल विज्ञान और राकेट युग का सूत्रपात हुआ।

प्रौद्योगिकी का विकास : 1000 ई० पू० से आज तक के 3000 वर्षों में प्रौद्योगिकी का जिस तरह विकास हुआ उसे हम तीन कालखण्डों में रख सकते हैं–

(1) 1000 ई० पू० से 1800 ई० तक का काल : 1500 ई० में वैज्ञानिक विधि का प्रतिपादन होने पर ही प्रौद्योगिकी के विकास में तेजी आई।

(2) 1800 से 1900 तक का काल : इन सौ वर्षों में विज्ञान ने जो प्रगति की उससे प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ। ऊर्जा के नये स्रोत उपलब्ध होते ही योरप तथा अमेरिका में उद्योगों की भरमार हो गई यथा इस्पात उत्पादन, वस्त्र उद्योग आदि। इस काल को औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी गई। औद्योगिक क्रान्ति ने विश्व भर के लिए नये वातायन खोल दिये।

(3) बीसवीं सदी (1900 के बाद का काल) : अब इसे भी 100 वर्ष हो गये। इस काल को द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति कहा गया है।

अब एक प्रौद्योगिकी तेजी से दूसरी का स्थान लेती जा रही है। उदाहरणार्थ गोबर की खाद के स्थान पर उर्वरक, बैलगाड़ी के स्थान पर आटोमोबाइल, रेल या मोटर के स्थान पर वायुयान चल रहे हैं। ट्रांजिस्टर के आविष्कार से नये सस्ते छोटे रेडियो सेट उपलब्ध हो गये हैं।

अब तो सूचना प्रौद्योगिकी का युग आ गया है। कम्पयूटर पीछे चले गये। इंटरनेट, ई-मेल, ई कामर्स जैसी प्रौद्योगिकियाँ उभार पर हैं। किन्तु नई प्रौद्योगिकियों से प्रदूषण बढ़ा है अतः एक ओर प्रौद्योगिकी मानवता के लिए वरदान है तो दूसरी ओर अभिशाप भी।

हम चाहे विज्ञान दिवस मनायें या पृथ्वी दिवस, चाहे पर्यावरण दिवस मनायें या प्रौद्योगिकी दिवस– हम विज्ञान के सम्प्रयोग और दुरुपयोग से विश्व को आगाह करना चाहते हैं।

– प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

सिक्के का दूसरा पहलू

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

आजकल की प्रौद्योगिकी को दक्षता की दृष्टि से देखें तो इसकी उपलब्धियाँ निःसंदेह उत्कृष्ट हैं। यही नहीं, आज समाज के ऊपर तकनीकों का प्रभुत्वपूर्ण प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। प्रौद्योगिकी हमारे जीवन में इस प्रकार रच-बस गई है कि इससे अलग रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्रौद्योगिकी ने मानव जीवन के ऐशो-आराम के अनेकानेक साधन जुटाये हैं।

यदि तकनीकी प्रगति यात्रा के इतिहास पर नज़र दौड़ायें तो ज्ञात होता है कि 19वीं शती के मध्य से ही इसकी प्रशंसा के स्वर मुखर हो रहे थे।

लन्दन में 1851 में ''क्रिस्टल पैलेस'' में तकनीकी से संबंधित एक विशाल प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी से प्रकृति विज्ञानी फ्रांसिस बेकन की भविष्यवाणी मूर्तरूप ग्रहण कर रही थी। बेकन ने भविष्यवाणी की थी कि एक दिन मानव प्रकृति पर आधिपत्य जमा लेगा। और तो और, मार्क्स और एंजेल्स ने तो विरोधी राजनीतिक विचारधारा के बावजूद प्रौद्योगिकी की प्रगति का स्वागत किया क्योंकि उनकी दृष्टि में सामाजिक स्वामित्व और उद्योगों पर नियंत्रण समय की माँग थी। इसी प्रकार जूल्स वर्न (Jules Verne) और एच० जी० वेल्स (H. G. Wells) जैसे विज्ञान गल्प लेखक भी बढ़ती हुई प्रौद्योगिकी के प्रति आशावान् थे। एडवर्ड बेल्लामी (Edward Bellamy) ने 1888 में प्रकाशित अपने उपन्यास ''लुकिंग बैकवर्ड'' (Looking Backward) में इस बात की कल्पना की है कि सन् 2000 में ऐसा सुनियोजित समाज होगा जिसमें प्रौद्योगिकी की धनात्मक भूमिका होगी। लार्ड टेनिसन (Lord Tennyson) और रुडयार्ड किपलिंग (Rudyard Kipling) ने अपनी कविताओं में प्रौद्योगिकी के आकर्षण को स्वीकार किया है।

किन्तु इसी बीच प्रौद्योगिकी द्वारा प्रदत्त आनन्द के विरोध में भी स्वर मुखर होने प्रारंभ हो गये। राल्फ वाल्डो इमरसन (Ralf Waldo Emerson) ने यह मत व्यक्त किया कि हो लगता है कि मानव प्रकृति पर विजय के अभियान में नियंत्रण खो बैठे और प्रौद्योगिकी मनुष्य पर हावी हो जाये।

उपन्यासकार सेमुएल बटलर (Samual Butler) ने 1872 में ''इरीहॉन'' (Erewhon) नामक उपन्यास में यह विचार व्यक्त किया कि सारी मशीनों को कूड़े के ढेर पर फेंक देना चाहिए। विलियम मॉरिस (Willian Morris) ने एक ऐसे समाज की कल्पना की है जो पूर्णरूपेण मशीनरीविहीन होगा।

एच० जी० वेल्स जैसे लेखक, जिन्होंने प्रारंभ में अपनी पुस्तकों के माध्यम से प्रौद्योगिकी की प्रगति की प्रशंसा की, उन्होंने भी पश्चिमी देशों की प्रौद्योगिक प्रगति के दुष्परिणामों को देखते हुए अपनी अंतिम पुस्तक ''माइण्ड एट द एण्ड ऑव इट्स टेथर''(Mind At The End of Its Tether), जो 1945 में लिखी गई उसमें बढ़ती प्रौद्योगिकी के प्रति चिंता व्यक्त की है। एक अन्य उपन्यासकार अल्ड्स हक्सले (Aldous Huxley) ने 1932 में प्रकाशित अपने उपन्यास ''ब्रेव न्यू वर्ल्ड'' (Brave New World) में तकनीकी प्रगति के प्रति मोहभंग व्यक्त किया है। हक्सले इस नतीजे पर पहुँचे कि तकनीकी प्रगति ने मानव को शारीरिक सुख तो प्रदत्त किया, किन्तु उससे उसकी सुन्दरता, रचनात्मकता, स्वतंत्रता छीन ली।

(शेष पृष्ट 5 पर)

आनंद पंछी निहारन का : लेखक : विश्व मोहन तिवारी

प्रकाशक : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग), भारत सरकार, पश्चिमी खण्ड-7, राम कृष्ण पुरम, नई दिल्ली-4 **पृष्ठ संख्या** : 220, मूल्य : 85 रुपये

आज तथाकथित पाँच सितारा जिंदगी की चाह में ऊहापोह से भरी अंधी दौड़ दौड़ती सभ्यता को कहाँ फुर्सत है कि वह क्षण भर को ठहर कर प्रकृति में बिखरे अनन्य प्रेम और आनंद की भाषा को सुने, समझे, और उसका आह्लाद प्राप्त करे। पक्षियों की सरसराहट, आवाजें, कलरव वातावरण में सुरम्य संगीत घोलते हैं– एक ऐसा अद्भुत संगीत जो मन की गहराइयों में झंकृत होने लगता है। आवश्यकता है, उस अनमोल संगीत की भाषा समझने की, पक्षियों की भाषा समझने की, उनमें रम जाने की; केवल तभी पंछी श्रवण और पंछी निहारन का आनंद लिया जा सकता है।

यदि आप पक्षियों की पहचान करना चाहते हैं, उनके भारतीय नाम जानना चाहते हैं, उनकी अनोखी आदतों और व्यवहार की जानकारी चाहते हैं, उनके रहन-सहन, आहार-विहार का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, और तो और, विभिन्न पक्षियों से जुड़ी ऐतिहासिक बातें और किंवदंतियों के बारे में जानने की जिज्ञासा है, तो फिर निश्चित रूप से आप पक्षियों से प्यार कर सकते हैं, उनके संगीत और निहारन का आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

एयर वाइसमार्शल विश्व मोहन तिवारी ने न केवल उक्त सभी बातों की जानकारी देने वाली, और पंछी निहारन की ओर प्रेरित करने वाली किताब ''आनंद पंछी निहारन का'' लिखी है, बल्कि पंछी निहारन की सांस्कृतिक परंपरा को आत्मसात किया है और जिया है, पक्षियों के साथ रहे हैं, जंगलों में भटके हैं, उपलब्ध पुस्तकों और ग्रंथों की खाक छानी है, शोध कार्य किया है, लोगों से सारगर्भित चर्चाएं की हैं, और तब कहीं जा कर हिन्दी भाषा में संभवयतया अपने प्रकार की इस मौलिक कृति को लिपिबद्ध किया है, चित्र और आंकड़े जुटाए हैं, और तब वर्षों के प्रयासों के बाद यह कृति सामने आई है जो लेखक के बहुआयामी अनुभव और व्यक्तित्व को सहज ही परिलक्षित करती है। शिक्षा से इंजीनियर, पेशे से उच्च वायुसेना अधिकारी, और परम्परा से कला, साहित्य और हिन्दी के लेखक, विश्व मोहन तिवारी ने अपनी कल्पना शक्ति, विशद अनुभव और रोचक लेखन प्रतिभा को पुस्तक में यत्र तत्र सर्वत्र समायोजित किया है और खगों की भाषा समझने और समझाने के लिहाज से वह स्वयं खग बन सके हैं।

''आनंद पंछी निहारन का'' पुस्तक में कोई पांच अध्याय हैं जिनमें एक के बाद एक 99 पक्षियों के बारे में रोचक और प्रामाणिक जानकारी प्रदान की गई है। इसके अलावा पुस्तक का करीब आधा भाग विभिन्न रुचियों और परिशिष्टों से बना है, जिनमें विभिन्न पक्षियों की सूची, उनका वर्णन, उनके अंग्रेजी एवं हिन्दी नामों की सूची, सामान्य शब्दावली, पंक्षियों के अंगों और उपांगों का वर्णन और उपयुक्त शब्दार्थ, तथा पंक्षियों के विभिन्न रंगों की वर्णनाओं, आभाओं की विस्तृत जानकारी दी गई है, जो कि किसी पंछी निहारक के लिए बेहद जरूरी हैं, और यह जानकारी किसी सामान्य अभिरुचि के व्यक्ति को भी सफल पंछी निहारक बना पाने में सक्षम हो सकती है।

किताब की उल्लेखनीय विशेषता है इसमें प्रस्तुत भारतीय नामों का वर्णन, जिनमें से ज्यादातर नाम लेखक ने स्वयं गढ़े हैं। उदाहरण के लिए सिर्फ बगुला की ही अनेक किस्में हमारे देश में पाई जाती हैं, इसलिए सभी को बगुला कह देने से काम नहीं चलेगा। इसलिए लेखक ने उनके आकार-प्रकार, अंगों

और उपांगों की बनावट और रंगों के अनुसार नाम गढ़े हैं, जो प्रथम दृष्टि में तो कठिन लगते हैं, लेकिन जब उनकी महत्ता पता चलती है, तो आभास होता है कि वे कितने आवश्यक और उपयुक्त हैं, और उनके बिना पंछी निहारन का मज़ा अधूरा रह जाएगा क्योंकि आप अलग-अलग प्रजातियों में भेद नहीं कर पाएंगे। इसके लिए लेखक ने डॉक्टर रघुवीर के शब्दकोश से लेकर, सालिम अली और न जाने कितने विद्वानों के काम की जांच-परख और विश्लेषण किया, और तब स्वयं अपने कार्य हेतु खुद के मार्गदर्शक सिद्धान्त बनाए हैं, जिनके अनुसार विभिन्न पक्षियों के भारतीय नाम गढ़े गए और यही इस पुस्तक की उत्कृष्टता है।

पाठकों की सुविधा के लिए पुस्तक में विभिन्न रंगों की पट्टिकाएं प्रकाशित की गई हैं और साथ में रंगों के नाम भी दिए गए हैं, ताकि पाठक अगर किसी रंग का पंछी कहीं देखें तो किताब में दिए गए रंगों से मिलान करके उसकी पहचान सुनिश्चित कर सकता है।

हिन्दी विज्ञान लेखन के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए लेखक को भारत सरकार, गृह मंत्रालय के इंदिरा गांधी राष्ट्रीय राजभाषा पुरस्कार, तथा केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के डॉ० आत्माराम पुरस्कार आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

–डॉ० मनोज पटैरिया
25/3, सेक्टर- I, पुष्प विहार, साकेत,
नई दिल्ली - 110017

पत्रिका : जिज्ञासा (वार्षिक वैज्ञानिक पत्रिका) प्रथम वर्ष 1999

सम्पादक मण्डल : डॉ० पूर्णिमा भार्गव (मुख्य सम्पादक), डॉ० घनश्याम स्वरूप, डॉ० रमेश कुमार अग्रवाल, डॉ० शशि सिंह, श्री आर चन्द्रशेखर।

प्रकाशक : कोशिकीय एवं आण्विक जीव विज्ञान केन्द्र (सी सी एम बी) उत्पल रोड, हब्सी गुडा, हैदराबाद - 500007

कोशिकीय एवं आण्विक जीव विज्ञान केन्द्र (हैदराबाद) देश का प्रतिष्ठित शोध संस्थान है। यहाँ से 'जिज्ञासा' का प्रकाशन अच्छा लगा। पाठकों को सरल भाषा में, राष्ट्र भाषा में, देश में सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा में प्रामाणिक वैज्ञानिक साहित्य को सुलभ करने के उद्देश्य में यह पत्रिका शत प्रतिशत सफल है।

48 पृष्ठों की इस पत्रिका में सम्पादकीय सहित कुल 17 रचनायें सम्मिलित हैं। इसमें ललित लेख, (मेढ़क देवता), कहानी (ईनाम), कविता (नव वर्ष; मजदूर की व्यथा; सच्चा-झूठा; असली मोती; तुम हारे तो मन क्यों हारे हो ?) चुटकले, बूझो तो जाने जैसे स्तम्भों से लेकर विशुद्ध शोध विषयक उच्चस्तरीय साहित्य (क्लोंनिग, जीन तकनीक और वनस्पति जगत, इंटरनेट, वियागरा गुण एवं दोष, उल्का वर्षा कुछ तथ्य, घरेलू बिजली चालित उपस्करों की सावधानी) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त भी पत्रिका में बहुत उपयोगी रचनायें शामिल हैं। इस प्रकार यह प्रवेशांक 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करता है।

रंग-बिरंगा आकर्षक मुखपृष्ठ, साफ-सुथरा मुद्रण, फोटोग्राफिक प्लेट पर छपाई, सी० सी० एम० बी० के मुख्य भवन और प्रयोगशालाओं के नयनाभिराम चित्र पत्रिका में चार-चाँद लगाते हैं। कुल मिलाकर पत्रिका पठनीय एवं संग्रहणीय है। इस पत्रिका को स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की लायब्रेरियों में अवश्य ही रहना चाहिए।

–प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
सी० एम० पी० डिग्री कॉलेज
इलाहाबाद - 211002

विज्ञान वार्ता

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

1. बाबा आमटे को गांधी शांति पुरस्कार

गत जनवरी 2000 में बाबा आमटे को अपने पूरे जीवन शांति और न्याय के लिए समर्पित भाव से निरंतर जूझते रहने के लिए वर्ष 1999 के ''गाँधी शांति पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया है। यह पुरस्कार भारत के राष्ट्रपति महामहिम के० आर० नारायणन ने प्रदान किया। बाबा आमटे ने महाराष्ट्र में ''आनन्द वन'' की स्थापना द्वारा समाज के निर्धन वर्ग के लोगों, विशेषरूप से कुष्ठ रोगियों, की सेवा के लिए अपना जीवन होम कर दिया। बाद में उन्होंने नर्मदा बाँध के विरोध में आन्दोलन का नेतृत्व करके आम लोगों में पर्यावरण चेतना पैदा की। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद के भारत में जनजागरण के लिए उन्होंने गांधी जी के आदर्शों और जीवनमूल्यों का ही अनुसरण किया।

2. बाघों की शोचनीय स्थिति

मध्य प्रदेश को ''बाघों का राज्य'' की संज्ञा दी जाती है किन्तु पिछले दिनों प्राप्त समाचारों के अनुसार जंगलों की ठीक से देखभाल न होने के कारण शिकार-चोरों और तस्करों की बन आई है और वे बेरोकटोक बाघ परिवार के प्राणियों का अवैध शिकार और जंगल के वृक्षों की अवैध कटाई करते रहे हैं। इसका जीता-जागता प्रमाण है जंगली जानवरों की भारी मात्रा में खालों का पकड़ा जाना । इस प्रकार जंगलों के सफाये के कारण भारत के राष्ट्रीय पशु बाघों की दशा चिंताजनक हो गई है। उनकी संख्या कम होती जा रही है। वर्ल्ड वाइड फण्ड फॉर नेचर-इंडिया (W.W.F-India) के नव- निर्वाचित अध्यक्ष श्री एन० गोदरेज के अनुसार डब्लू डब्लू एफ-इण्डिया के लिए बाघों को संरक्षण प्रदान करना वरीयता क्रम में पहले स्थान पर है, पर इसी के साथ अन्य वन्यजीवों को भी सुरक्षा दी जायेगी। खुशहाल भारत के निर्माण में वन्य जीवों और पेड़-पौधों के सभी तरह के नैसर्गिक निवासों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

3. राष्ट्रीय पक्षी मोर को कीटनाशी से ख़तरा

पिछले दिनों हरियाणा राज्य के महिन्द्रगढ़ ज़िले में मोरों की संख्या में गिरावट के समाचार मिले हैं किन्तु चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय के शोधार्थियों ने इसका कारण ढूँढ़ लिया है। मोरों ने ऐसे खेतों में खाद्यान्नों को खाया जिनमें कृषकों ने कीटों से फ़सल की सुरक्षा के लिए कीटनाशियों का प्रयोग किया था। ऐसे दूषित खाद्यान्नों को खाने के बाद मोर अतिसार और श्वास रोगों से ग्रस्त हो जाने के कारण इतने कमजोर हो जाते हैं कि इन लक्षणों के प्रकट होने के 48 घंटे बाद मर जाते हैं। इससे एक बात जो स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है वह यह है कि खेतों के निकट निवास करने वाले मोरों को कीटनाशी रसायनों से जीवन के लिए निश्चित रूप से ख़तरा उत्पन्न हो गया है।

4. फ्रांस में झंझावात से वृक्षों का विनाश

''द फ्रेंच नेशनल फॉरेस्ट्री ऑफिस'' की एक सूचना के अनुसार दिसम्बर 1999 के अंत में फ्रांस में आये एक तूफान में लगभग 270 मिलियन वृक्ष या तो जड़ से ही उखड़ गए अथवा टूट गए। यह तूफान 200 किलोमीटर प्रति घंटे की तेज़ गति से आया। एक अनुमान के अनुसार जंगल पुनर्स्थापित होने में लगभग 200 वर्षों की लम्बी अवधि लग जायेगी।

5. तितली और कीटनाशी

ब्रिटेन से प्राप्त एक समाचार के अनुसार कृषि एवं जंगलों की बदली हुई परिस्थितियों के कारण, जो घातक कीटनाशियों के कारण उत्पन्न हुई, तितिलियों की 4 प्रजातियाँ तो विलुप्त ही हो गईं और 30 प्रजातियों की

संख्या में गिरावट देखी गई है। इसका प्रमुख कारण रहा है विभिन्न प्रकार के प्राणियों और वनस्पतियों के नैसर्गिक आवास-क्षेत्रों का सिमटते जाना।

6. वानरों की तीन प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर

प्रसिद्ध वानर अनुसंधानकर्ता जेन गुडाल ने चेतावनी दी है कि यदि समुचित उपाय न किए गए तो अफ्रीकी वानरों (apes) की तीन प्रजातियाँ सदा के लिए इस धरती से विलुप्त ही हो जायेंगी।

ऐसा संकेत मिला है चिम्पांज़ी और गोरिल्ला की संख्या में गिरावट की वजह है मनुष्य द्वारा वानरों के निवास का हथियाया जाना और मांस के लिए इनका शिकार। जहाँ 20वीं शती में चिम्पांज़ियों की संख्या अफ्रीका के जंगलों में 2 मिलियन थी, वहीं अब यह संख्या घटकर 2 लाख हो गई है। इसी प्रकार अफ्रीका के जंगलों में अब मात्र 300 गोरिल्ला बचे हैं। गुडाल महोदय का निश्चित मत है कि यदि वानरों को बचाने के लिए प्रयास न किए गए तो 10 से 20 वर्षों में ही अफ्रीका के जंगलों से वानरों की उपरोक्त प्रजातियों के विलुप्त हो जाने की आशंका है।

– पूर्व संपादक, 'विज्ञान'

डॉ० यतीश अग्रवाल को दोहरा सम्मान

नई दिल्ली के डॉ० यतीश अग्रवाल को वर्ष 1999 का विज्ञान लेखन का प्रतिष्ठित डॉ० आत्माराम पुरस्कार प्रदान किया गया। डॉ० अग्रवाल ने चिकित्सा विज्ञान के अनेक गूढ़ विषयों पर हिन्दी में कई पुस्तकें सरल व रोचक भाषा में लिखकर विज्ञान लोकप्रियकरण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् नई दिल्ली ने भी वर्ष 1999 का विज्ञान लोकप्रियकरण पुरस्कार प्रदान कर डॉ० अग्रवाल को सम्मानित किया है।

डॉ० माथुर सम्मानित

विज्ञान परिषद की ज़ोधपुर शाखा के उपाध्यक्ष इंजि० के० एम० एल० माथुर को इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस ने '**मैन ऑफ एचीवमेन्ट, 1999**' सम्मान से अलंकृत किया है। श्री माथुर ने जल प्रबंधन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है।

मिर्जापुर में पत्रकारिता प्रशिक्षण कार्यशाला सम्पन्न

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् नई दिल्ली द्वारा समर्थित एवं 'विकास' नैनी इलाहाबाद द्वारा आयोजित विज्ञान लेखन तथा प्रत्रकारिता प्रशिक्षण कार्यशाला 20 से 23 मई 2000 तक मिर्जापुर के प्रेमभवन में सम्पन्न हुई। इस कार्यशाला में स्थानीय छात्रों, पत्रकारों एवं विज्ञान लेखकों ने उत्साहपूर्वक भाग लेकर विभिन्न विधाओं में प्रशिक्षण प्राप्त किया।

विभिन्न समूहों में इलाहाबाद विश्विद्यालय के भौतिकी विभाग के प्रोफेसर डॉ० चन्द्रमोहन भंडारी ने **वैचारिक निबंध**, भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति के सचिव डॉ० अरविंद मिश्र ने **विज्ञान कथा**, विज्ञान परिषद् प्रयाग के देवव्रत द्विवेदी ने **विज्ञान कविता एवं साक्षात्कार**, 'विकास' के निदेशक श्री एस० के० सिंह ने **रिपोर्ट, समाचार लेखन** एवं श्री आर० के० शर्मा ने **चित्रांकन** के विविध आयामों से प्रतिभागियों को अवगत कराया। इस कार्यशाला में कुल 46 प्रतिभागी उपस्थित रहे। कार्यशाला का सफल संयोजन श्री राजेन्द्र प्रसाद मिश्र ने किया।

– देवव्रत द्विवेदी
विज्ञान परिषद् प्रयाग

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग,

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

अगस्त 2000

यह प्रति 5 रु0

अप्रैल 1915 से प्रकाशित
हिन्दी की प्रथम वैज्ञानिक पत्रिका

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915

वर्ष 86 अंक 5
अगस्त 2000

मूल्य : आजीवन 500 रु० व्यक्तिगत
1,000 रु० संस्थागत

त्रिवार्षिक : 140 रु०, वार्षिक : 50 रु०

प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक
अरुण राय
दी कम्प्यूटर कम्पोजर
7 बेली एवेन्यू, इलाहाबाद-211002
Phone : (0532) 640854
E-mail : arunraj@nde.vsnl.net.in

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : (0532) 460001

विषय-सूची

आज़ादी के बाद भारतीय विज्ञान

- गुणाकर मुले

आज जहां हम आज़ादी के बाद की पिछले करीब आधे शतक की अपनी अन्य अनेक क्षेत्रों की उपलब्धियों की मीमांसा कर रहे हैं, वहां विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र की प्रगति का परीक्षण भी अपरिहार्य है। भारतीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी के भविष्य के नियोजन के लिए भी विगत आधी शताब्दी की प्रगति की पड़ताल परमावश्यक है। जिन्होंने आज़ादी के पहले की भारत की दशा को स्वयं देखा-भोगा है या ठीक से जाना है, वे ही आज नज़र आने वाली विशिष्ट उपलब्धियों का भलीभांति मूल्यांकन कर सकते हैं। भारतीय विज्ञान उतार-चढ़ाव के कई दौरों के बाद ही आज की अवस्था पर पहुंचा है। आज़ादी के बाद की वैज्ञानिक प्रगति को ठीक से समझने के लिए पहले के उन दौरों पर भी एक नज़र डालना उपयोगी होगा।

आज़ादी के बाद भारतीय विज्ञान के आयोजन और आरंभिक विकास में जिस व्यक्ति ने सबसे महत्व की भूमिका अदा की वह थे जवाहरलाल नेहरू (1889-1964)। आज़ादी मिलने के आठ साल पहले जे० डी० बर्नाल ने लिखा था कि भारतीय वैज्ञानिकों की वास्तविक लड़ाई वहां के राजनीतिज्ञ लड़ रहे हैं। बर्नाल ने यह बात नेहरू को ध्यान में रखकर ही कही होगी।

विज्ञान व प्रौद्योगिकी के बारे में नेहरू का दृष्टिकोण उनके समकालीन राजनीतिज्ञों से, गांधीजी से भी, काफी भिन्न रहा है। नेहरू की मान्यता थी कि भारत के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है : (1) भारी इंजीनियरी व मशीन-निर्माण उद्योग, (2) वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान, और (3) विद्युत् शक्ति। उसी का यह परिणाम था कि उन्हें सन् 1943 में आयोजित भारतीय विज्ञान कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया था। देश के आजाद होने पर सन् 1947 में उन्हें पुनः भारतीय विज्ञान कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने समाज के प्रति वैज्ञानिकों के दायित्व और वैज्ञानिकों के प्रति सरकार के कर्तव्य को इन शब्दों में स्पष्ट किया था :

> ''भूखे आदमी या भूखी स्त्री के लिए सत्य का कोई अर्थ नहीं है। उसे भोजन चाहिए। और भारत भूखा है। भुखमरी से ग्रस्त देश के लाखों-करोड़ों लोगों के सामने सत्य, ईश्वर और जीवन की बेहतरीन बातों की चर्चा करना उनका उपहास करने-जैसा है। हमें उन्हें कपड़े, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि अनेक आवश्यक चीजें मुहैया करानी हैं। जब ये चीजें पूरी हो जाएंगी, तब हम फलासफी की बातें कर सकते हैं, ईश्वर के बारे में सोच सकते हैं। इसलिए विज्ञान को हमेशा इस देश के 40 करोड़ लोगों का ध्यान रखना होगा। स्पष्ट है कि वैज्ञानिकों को भी इसी के अनुरूप सोचना होगा और व्यापक स्तर की योजनाएं तैयार करनी होंगी। ..... इसके लिए वैज्ञानिकों को सरकार के सहयोग की अपेक्षा रखने का अधिकार है। मौजूदा भारत सरकार के एक सदस्य के नाते-शायद अंशतः अपने साथियों की ओर से परंतु मुख्यतः अपनी ओर से - मैं कहना चाहता हूं कि भारत में विज्ञान को विकसित करने में हमारी बहुत ज्यादा दिलचस्पी है और वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए यथाशक्ति हम पूरी कोशिश करेंगे।''

प्रमुखतः नेहरू के प्रयासों से ही स्वतंत्र भारत में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के लिए कई तरह की नई गतिविधियाँ शुरू हुईं। पंचवर्षीय योजनाओं को अपनाया गया। नेहरू ने सबसे पहले अपने अधीन 'वैज्ञानिक अनुसंधान और प्राकृतिक संसाधन मंत्रालय' का सृजन किया। भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद्, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सी०

एस० आई० आर०) आजादी मिलने के पहले ही अस्तित्व में आ गई थीं। नेहरू के प्रधानमंत्री बनने पर तीन नए संगठनों का निर्माण किया गया--परमाणु ऊर्जा विभाग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और रक्षा अनुसंधान संगठन।

सी० एस० आई० आर० और परमाणु ऊर्जा विभाग से नेहरू का सीधा संबंध रहा। सी० एस० आई० आर० के विकास की जिम्मेदारी डॉ० शांति-स्वरूप भटनागर को सौंपी गई। नेहरू की ओर से भरपूर सहयोग पाकर भटनागर ने देश में फटाफट कई सारी राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं स्थापित कर दीं। अब इनकी संख्या 40 के ऊपर पहुंच गई है। भव्य भवनों और खूब साज-सज्जा वाली इन प्रयोगशालों के बारे में नेहरू का कथन था कि ''ये मातृभूमि की सेवा के लिए निर्मित नए भारत के मंदिर हैं।''

परमाणु ऊर्जा विभाग की जिम्मेदारी डॉ० भाभा को सौंपी गई। यह एक नया विभाग था और ''टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च'' (मुंबई) का भौतिकीय अनुसंधान समूह इसका आधार था। बाद में परमाणु ऊर्जा विभाग के अंतर्गत ही अंतरिक्ष अनुसंधान का कार्यक्रम बना।

प्रशांतचन्द्र महालनोबिस, जिन्होंने सन् 1931 में 'इंडियन स्टेटिस्टिकल इंस्टिट्यूट' की स्थापना की थी, योजनाओं में सांख्यिकी की जरूरत के कारण नेहरू के नज़दीक आए। तदनंतर 'केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन' की स्थापना हुई। रक्षा अनुसंधान का कार्य भौतिकीविद डॉ० दौलत सिंह कोठारी ने संभाला। मगर रक्षा अनुसंधान और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से नेहरू का कोई प्रभावकारी सरोकार नहीं रहा।

स्वतंत्र भारत में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास के लिए नेहरू जी की ओर से भरपूर सहयोग मिला, वैज्ञानिक समुदाय को प्रेरणाएं मिलीं। यह प्रमुखतः उन्हीं के प्रयासों का परिणाम था कि संसद ने सन् 1958 में देश के लिए एक वैज्ञानिक नीति का प्रस्ताव मंजूर किया। नेहरू जी के नेतृत्व में देश में विज्ञान व प्रौद्योगिकी के विकास का एक नया युग शुरू हुआ।

बढ़ती आबादी

स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक विकास की कोई भी बात हमारी बढ़ती आबादी को ध्यान में रखकर ही की जा सकती है। सन् 1920 तक, अकालों, महामारियों और युद्धों के कारण भारत की आबादी बहुत धीमी रफ्तार से बढ़ती रही। सन् 1921 में आज की सीमाओं वाले भारत की आबादी लगभग 25 करोड़ थी। सन् 1931 में यह 28 करोड़ और सन् 1941 में 32 करोड़ पर पहुंच गई। सन् 1947 में, विभाजन के बाद स्वतंत्र भारत की आबादी 35 करोड़ के आसपास रही होगी। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 84.6 करोड़ थी, जो अब एक अरब पर पहुँच गई है।

आज भारत की आबादी की वार्षिक वृद्धि-दर 2 प्रतिशत के आसपास है। देश में प्रति मिनट 50 शिशु पैदा होते हैं। देश की जनसंख्या में प्रतिवर्ष करीब 1.8 करोड़ की वृद्धि होती है। दुनिया की कुल आबादी का 16 प्रतिशत भारत में है, जबकि भारतभूमि का क्षेत्रफल केवल 2.4 प्रतिशत ही है। बढ़ती आबादी की समस्या का एकमात्र समाधान है - संतति-नियमन।

हरित क्रांति

भारतीय इतिहास में सूखों के और अकालों के उल्लेखों की कमी नहीं। जिन विशिष्ट घटनाओं की पृष्ठभूमि में भारत ने आज़ादी हासिल की उसमें से एक थी सन् 1942-43 का बंगाल का भीषण अकाल, जिसमें लगभग 30 लाख लोगों की जानें गईं। उसी अकाल को ध्यान में रखकर सन् 1946 में गांधी जी ने कहा था :

''भूखे आदमी के लिए रोटी ही भगवान है। ... आजाद भारत में इस बात की पक्की व्यवस्था करनी होगी कि प्रत्येक व्यक्ति अपना रोज का भोजन प्राप्त कर सके।''

इन्हीं सब बातों के कारण सन् 1948 के आरंभ में जवाहरलाल नेहरू को कहना पड़ा : ''दूसरी सारी चीजें इंतज़ार कर सकती हैं, कृषि नहीं।''

परिणामतः सिंचाई के साधनों, उर्वरकों के उत्पादन और कृषि-अनुसंधान पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। मगर जैसे-जैसे मृत्यु-दर घटने लगी और आबादी बढ़ती गई, वैसे-वैसे खाद्यान्न का संकट गहराता गया। पचास के दशक में हमें बाहर से अनाज आयात करना पड़ा। विदेशी विशेषज्ञ भविष्यवाणी करने लगे कि सन् 1975 तक भारत के लोग भूख से तड़पकर उसी तरह मृत्यु के मुँह में पहुँचते जाएंगे जिस तरह भेड़-बकरे बूचड़खाने में पहुंचते हैं।

मगर सन् 1966-67 से स्थिति बदलती गई। श्रीमती इंदिरा गांधी और सी० सुब्रमण्यम् जैसे शासकों के सहयोग से और डॉ० बी० पी० पाल और डॉ० एम० एस० स्वामीनाथन् जैसे योग्य कृषि वैज्ञानिकों के प्रयासों से किसानों को उच्च-उत्पादक किस्में उपलब्ध कराने का कार्यक्रम अस्तित्व में आया। मेक्सिको से बौने गेहूँ के बीज आयात किए गए। उनमें से उपयुक्त किस्मों का चुनाव करके उनका विकास किया गया। गेहूँ की 'कल्याण सोना' और 'सोनालिक' किस्में बहुत लोकप्रिय हुईं। गेहूं की पैदावार में बढ़ोत्तरी हुई। सन् 1965-66 में देश में केवल 1 करोड़ 4 लाख टन गेहूँ पैदा हुआ था। सन् 1967-68 में गेहूँ का उत्पादन 1 करोड़ 65 लाख टन हुआ। इस तरह 'हरित क्रांति' का युग शुरू हो गया।

केवल उत्पादन ही नहीं बढ़ा, अपितु अनाज, फलों, सब्ज़ियों आदि की नई किस्में भी जारी की गईं। सोयाबीन की खेती का विस्तार हुआ। पौधों की विविध किस्मों के जीन संचित रखने के लिए 'नेशनल जीन बैक' की स्थापना की गई। कृषि में जैव-तकनीकी के बढते महत्व को ध्यान में रखकर सन् 1986 में एक पृथक् जैव-प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना की गई। पौधों के ऊतक संवर्धन (टिश्यू कल्चर) के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय सफलताएं मिलीं। देश में दूध का उत्पादन इतना बढ़ा कि उसे 'श्वेत क्रांति' का नाम दिया गया।

इस तरह हरित क्रांति की पिछले करीब तीन दशकों की उपलब्धियों ने भारत को भिखारी बने रहने से बचा लिया। मगर भविष्य चिंताजनक है। बढ़ती आबादी के अनुपात में कृषियोग्य भूमि उपलब्ध नहीं हो रही है। उत्पादन के मौजूदा साधनों से भूमि, पानी, वन, जैव-विविधता आदि को भारी क्षति पहुंच रही है। हरित क्रांति में भी थकावट दृष्टिगत हो रही है।

स्वास्थ्य

आज से पचास साल पहले, मेरे बचपन में भारत में चिकित्सा के साधनों की दशा बड़ी दयनीय थी, विशेषकर देहात में। तपेदिक (टी बी), मलेरिया, हैजा, चेचक और प्लेग जैसी व्याधियों से जनता त्रस्त थी। अब स्थिति काफी बदल गई है। चेचक का पूर्ण उन्मूलन हो गया है। तपेदिक व हैजा अब असाध्य रोग नहीं रह गए हैं। सन् 1965 में लग रहा था कि देश से मलेरिया का भी सफाया हो जावेगा मगर इसका फैलाव पुनः बढ़ता जा रहा है। काला-आज़ार का भी यही हाल है।

मगर कुल मिलाकर देखा जाए तो स्वास्थ्य-सेवा के साधनों में काफी प्रगति हुई है। देश में ओषधियों के विकास और निर्माण का दायरा काफी विस्तृत हुआ है। पिछले दो दशकों में ही लगभग 100 नई ओषधियों के उत्पादन की देशी प्रौद्योगिकियां अस्तित्व में आई हैं। सभी सामान्य रोगों के लिए अब दवाएं देश में ही उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, विटामिन बी6 पहले बाहर से आयात किया जाता था, परंतु अब इसका उत्पादन देश में ही होता है।

आयुर्वेद चिकित्सा में इस्तेमाल होने वाली जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों के बारे में अब देश में अनुसंधान-कार्य शुरू हो गया है। सर्पगंधा से प्राप्त किया गया रेसेरपाइन एल्कलाइड रक्तचाप कम करने वाला और उन्मादशामक है। गुग्गुल के गोंद-रेज़िन से रक्त-कोलेस्ट्रॉल कम करने वाली गुगुलिपिड नामक ओषधि तैयार की गई है। इसी तरह, ब्राह्मी से स्मृति-वर्धक औषध और सदाबहार से कैंसर-उपचार की दवा खोजी गई है। देश में नीम पर भी काफी व्यापक अनुसंधान हो रहा है। इलाज के हमारे इन परंपरागत साधनों को लेकर एक बड़ा भारी ख़तरा भी हो गया है। इन्हें विदेशों में पेटेंट किया जा रहा है।

इसलिए हमारे वैज्ञानिकों को इस क्षेत्र में अपने अनुसंधान-कार्य को तेज गति देनी होगी।

पोलियो और तपेदिक जैसी व्याधियों के लिए टीके अब देश में बनते हैं। जीन-इंजीनियरी से हेपाटाइटिस-बी के लिए भी टीके देश में बन रहे हैं। सी० डी० आर० आई० (लखनऊ) ने सहेली नामक गर्भ-निरोधक गोली बनाई है। जयपुर फुट स्वदेशी तकनीक की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। आंखों संबंधी रोगों के इलाज के मामले में, विशेषकर मोतियाबिंद के ऑपरेशनों के मामले में, देश ने काफी तरक्की की है। बड़े शहरों में साधन-सम्पन्न अस्पतालों की संख्या बढ़ी है, मगर देश के गाँवों में जो स्वास्थ्य साधन उपलब्ध हैं वे काफी अधूरे हैं।

परमाणु ऊर्जा

भारत में परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम की नींव होमी जहांगीर भाभा (1909-66) ने रखी। भाभा का लक्ष्य था, परमाणु ऊर्जा के विविध उपयोगों के बारे में भारत को आत्मनिर्भर बनाना। सन् 1944 में, अमेरिका द्वारा प्रथम एटम बम का परीक्षण किए जाने के पहले, भाभा ने एक अनुसंधान संस्थान की स्थापना के लिए अनुरोध करते हुए टाटा ट्रस्ट को लिखा था :

''जब नाभिकीय ऊर्जा से बिजली पैदा करने में सफलता मिल जायेगी, तब विशेषज्ञों के लिए भारत को विदेशों की ओर नहीं देखना पड़ेगा, वे भारत में ही तैयार मिलेंगे।''

इसी तथ्य को ध्यान में रखकर सन् 1948 में भाभा की अध्यक्षता में परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना हुई थी। भारत में पहला रिएक्टर (अप्सरा) सन् 1956 में बना। देश में यूरेनियम की न्यूनता और थोरियम की प्रचुरता को ध्यान में रखकर डॉ० भाभा ने 1959 में परमाणु ऊर्जा से बिजली पैदा करने का एक दीर्घकालीन कार्यक्रम बनाया था। सबसे पहले संवर्धित यूरेनियम का उपयोग करने वाले दो रिएक्टर अमेरिका से खरीदकर तारापुर में स्थापित किए गए। मगर आगे जो परमाणु बिजलीघर बने उनके रिएक्टरों में प्राकृतिक यूरेनियम और भारी पानी का ही इस्तेमाल होता है। इसलिए हमारे देश में यूरेनियम ईंधन और भारी पानी तैयार करने के कारखाने बने। रिएक्टरों में बनने वाली 'राख' से प्लूटोनियम पृथक करने के साधन भी अस्तित्व में आए। प्रथम पीढ़ी के ये रिएक्टर कैनाडा के 'कंडू' रिएक्टरों के आधार पर बने हैं। मगर कल्पक्कम् में जिस फास्ट ब्रीडर रिएक्टर की स्थापना की गई है वह हमारे वैज्ञानिकों ने अपने बल-बूते पर बनाया है। इस रिएक्टर का निर्माण भी भारत की एक बड़ी उपलब्धि है।

भारत में तीसरी पीढ़ी के रिएक्टरों में थोरियम का उपयोग होगा। केरल के समुद्रतट की बालू में थोरियम पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। ब्रीडर रिएक्टर में थोरियम को यूरेनियम-233 में बदला जा सकता है। फिर तीसरी पीढ़ी के रिएक्टरों में यूरेनियम - 233 से बिजली प्राप्त की जाएगी। इसके लिए हमारे देश में 'पूर्णिमा -2' नामक एक परीक्षण रिएक्टर बनाया गया है और कल्पक्कम् में 30 किलोवाट का 'कामिनी' रिएक्टर स्थापित किया गया है।

चीन ने सन् 1964 में अपने पहले एटम का परीक्षण किया, तब डॉ० भाभा ने कहा था : ''यदि सरकार से आदेश मिल जाए, तो हम 18 महीनों में अपना एटम बम तैयार कर दे सकते हैं।'' मगर उस समय न तो सरकार का वैसा कोई इरादा था, न ही भाभा का। पहली बार परमाणु विस्फोट पोकरण में सन् 1974 में किया गया। उसके कारण जो विदेशी प्रतिबंध लगे उससे हमारा लक्ष्य बहुत दूर चला गया। आज हम मुश्किल से 2000 मेगावाट परमाणु बिजली पैदा कर पा रहे हैं, जो देश के कुल बिजली-उत्पादन का पाँच प्रतिशत भी नहीं है। अब मई 1998 में पुनः जो पाँच परमाणु विस्फोट पोकरण में किए गए और तदनंतर जो नए प्रतिबंध लगे हैं उनसे वैज्ञानिक विकास के हमारे कई कार्यक्रमों पर असर पड़ेगा। संतोष की बात है कि रिसर्च रिएक्टरों का उपयोग करके भारत ने रेडियो-आइसोटोप, नाभिकीय उपचार, लेसर आदि के मामलों में काफी प्रगति की है।

अंतरिक्ष अनुसंधान

आधुनिक राकेटों का विकास यूरोप और अमेरिका में हुआ। सन् 1963 में भारत में थुंबा केंद्र से

'नाइक-एपोचे' नामक जिन छोटे राकेटों को वायुमंडलीय अन्वेषण के लिए ऊपर छोड़ा गया था वे अमेरिका से प्राप्त किए गए थे। उसी के साथ भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान का कार्यक्रम शुरू हुआ। जिम्मेदारी डॉ० विक्रम साराभाई को सौंपी गई। फिर भारत सरकार ने सन् 1972 में अंतरिक्ष आयोग और अंतरिक्ष विभाग की स्थापना की। उसके बाद ही भारत में उपग्रहों और राकेटों के विकास का कार्यक्रम शुरू हुआ।

उपग्रहों के निर्माण के मामले में भारत ने उल्लेखनीय सफलताएं हासिल की हैं। भारत में सन् 1975 में बना वैज्ञानिक उपग्रह 'आर्यभट' था, जिसे एक सोवियत राकेट से अंतरिक्ष में छोड़ा गया था। फिर भारत में बने प्रायोगिक दौर के भूसर्वेक्षण उपग्रह 'भास्कर'-1' 'भास्कर-2' अंतरिक्ष में छोड़े गए। भारत में बना पहला संचार उपग्रह था 'एप्पल', जिसे एक विदेशी राकेट से जून 1981 में भूस्थिर कक्षा में छोड़ा गया था।

सुपर कंप्यूटर

आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटरों का विकास, प्रमुखतः सैनिक उपयोग के लिए, दूसरे महायुद्ध के दौरान हुआ। भारत को आज़ादी मिलने के एक साल बाद ''ट्रांजिस्टर' उपकरण का आविष्कार हुआ और तब दूसरी पीढ़ी के कम्प्यूटर अस्तित्व में आए। उसके बाद ही सन् 1955 में कलकत्ता के स्टेटिस्टिकल इंस्टिट्यूट में भारत का पहला इलेक्ट्रॉनिक कंप्यूटर स्थापित हुआ। फिर सन् 1974 में चौथी पीढ़ी के पी० सी० कंप्यूटरों का युग शुरू हुआ, तभी देश के कुछ संस्थानों में भारतीय भाषाओं के लिए कंप्यूटर टेक्नोलॉजी और दूसरे कई साफ्टवेयरों के जरिए भारत की सभी लिपियों/भाषाओं में कंप्यूटर पर कार्य करना संभव हो गया है। आरक्षण, बैंकिंग, संचार-प्रणाली आदि अनेक क्षेत्रों में कंप्यूटरों का उपयोग बढ़ता जा रहा है।

सुपर कंप्यूटरों पर अमेरिका का एकाधिकार रहा है। अपमानजनक शर्तों को स्वीकार करके बड़ी मुश्किल से मौसम के अन्वेषण के लिए अमेरिका से एक 'क्रे-एक्स एम पी- 14' सुपरकंप्यूटर प्राप्त हुआ। तब भारतीय वैज्ञानिकों ने अपने ही प्रयासों से सुपर कम्प्यूटरों का विकास करने का निश्चय किया। सबसे पहले सन् 1986 में बेंगलूर के राष्ट्रीय वैमानिकी संस्थान ने समांतर संसाधन (पैरेलल प्रोसेसिंग) के स्थापत्य पर आधारित 'फ्लोसाल्वर मार्क -1' नामक सुपर कम्प्यूटर तैयार किया। फिर पुणे के सी-डैक संस्थान ने 'परम' नामक सुपरकंप्यूटर बनाया। साफ्टवेयर के विकास में भी भारत काफी महत्व की भूमिका अदा कर रहा है।

अन्य उपलब्धियाँ

तो ये हैं विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र की हमारी कुछ विशिष्ट उपलब्धियां। विज्ञान और प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए शासन की ओर से कई सारे प्रयास व प्रयोग हुए हैं। नेहरू के समय में सन् 1958 में शासन ने एक 'वैज्ञानिक नीति प्रस्ताव' पास किया था। फिर सन् 1983 में स्वदेशी प्रौद्योगिकी के विकास के लिए एक 'प्रौद्योगिकी नीति वक्तव्य' को अपनाया गया।

स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, कृषि अनुसंधान परिषद्, आयुर्विज्ञान परिषद् जैसे संगठनों का बहुत अधिक विस्तार हुआ है। मौसम विभाग की स्थापना सन् 1975 में ही हो चुकी थी, मगर इसका अधिक विकास पिछले कुछ वर्षों में उपग्रहों की सेवाएं उपलब्ध हो जाने के बाद ही हुआ है। समुद्री विज्ञान के चतुर्दिक विकास के लिए शासन ने सन् 1981 में महासागर विकास विभाग की स्थापना की और इसकी ओर से प्रतिवर्ष अंटार्कटिक अभियान भेजे गए, अंटार्कटिक के अन्वेषण के लिए वहां स्थायी केन्द्र स्थापित किए गए। देश में खगोल के अध्ययन के लिए भी बेहतर साधन अस्तित्व में आए। कावलूर वेधशाला में एशिया की सबसे बड़ी प्रकाश-दूरबीन और पुणे के पास एक शक्तिशाली रेडियो-दूरबीन स्थापित हुई। डॉ० सालिम अली (1896-1987) ने प्रकृति और पक्षियों के अध्ययन का इतना विस्तृत कार्य किया कि उन्हें बीसवीं सदी का एक महान जीवविज्ञानी माना जाता है।

(शेषांश पृष्ठ 9 पर)

लवणसहिष्णु फ़सलें एवं कृषि जैव-प्रौद्योगिकी

सुभाष दोंदे

जलीय पर्यावरण में हर एक जीवित कोशिका के लिए "परासरण दाब" नियमन करना अनिवार्य होता है, और इस कार्यपूर्ति के लिए, उन्हें बड़े पैमाने पर अपनी जैविक ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। यदि जल में लवणों की मात्रा कोशिकांतर्गत लवणों के परिमाण से अधिक हो जाये, या जलीय परासरण दाब कोशिकीय परासरण दाब से अधिक हो जाये, तो अधिकांश परासरण दाब संवेदी कोशिकायें जल खोना शुरू कर देती हैं, और कुछ ही समय उपरांत संकुचित हो जाती हैं। जल की मात्रा घटने से अधिकांश प्रकिण्व (Enzyme) कार्य करना बंद कर देते हैं। परिणामस्वरूप कोशिकाओं के उपापचय और विभाजन में बाधा आती है। इसी कारण से पृथ्वी पर 71 प्रतिशत समुद्री जल उपस्थित होने के बावजूद हम उसे फसलों की सिंचाई के लिए उपयोग में लाने में आज तक असमर्थ रहे हैं किन्तु कृषि जैव-प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदमों के आधार पर क्या हम आशा करें कि भविष्य में फसलों की ऐसी नस्लों का विकास हो जाये जो वर्षा ऋतु पर निर्भर होने के बजाय समुद्रीय जल से फलें-फूलें ?

लवण सहिष्णुता का जैव-रासायनिक आधार

लवण सहिष्णु सूक्ष्मजीवों, पादप एवं कवकों के जैव-रासायनिक अध्ययन से यह बात सिद्ध हुई है कि इन जीवों की कोशिकायें कुछ गिने-चुने कार्बनिक संयोग जैसे "बिटेन" (चतुष्क अमोनियम यौगिक), "प्रोलीन" (एमीनो अम्ल), ट्रेहेलोज (डाइसैकरोज शर्करा), मैनीटॉल, सोरबिटॉल, ग्लिसरॉल" (पॉलीहाइड्रॉक्सी एल्कोहॉल) का संश्लेषण एवं संचय करती हैं। जलीय पर्यावरण में लवणों की मात्रा में बढ़ोत्तरी या ह्रास की क्रिया के अनुसार ही इन कार्बनिक पदार्थों के कोशिकांतर्गत संचय का परिमाण या तो बढ़ जाता है या घट जाता है। लवण निर्मित "जलप्रतिबल" से ये परासरणीदाब सुसंगत पदार्थ कोशिकाओं के विभिन्न प्रकिण्व एवं प्लाज्मा झिल्ली का संरक्षण करते हैं। लवण सहिष्णु जीवों की यह "संरक्षण प्रणाली" क्या लवणसंवेदी (परासरण दाब संवेदी) फसलों में स्थानांतरित कर सकते हैं ?

आज विश्व में कृषि जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों में जिस तरह एक बीजपत्री फसलों में नाइट्रोजन जैव-यौगिकीकरण प्रक्रिया स्थानांतरित करने में या पीड़कनाशी फसलों के निर्माण में जिस तरह से एक स्पर्धा चल रही है, ठीक उसी तरह लवण सहिष्णु एवं जलाभाव सहिष्णु फसलों के निर्माण में भी विश्व की कई प्रयोगशालाओं में तेजी से कार्य चल रहा है। लवण सहिष्णुता एवं जलाभाव सहिष्णुता दो भिन्न प्राकृतिक अवस्थाएँ होने पर भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों भौतिक कारक जीवित कोशिकाओं के लिए एक समान परासरणदाब संबंधी समस्याएँ उत्पन्न करते हैं और समस्त लवणसहिष्णु एवं जलाभाव सहिष्णु कोशिकाओं की जैवरासायनिक अनुक्रिया एक जैसी ही होती है। बिटेन, प्रोलीन और ट्रेहॅलोज जैसे परासरण दाब सुसंगत पदार्थ सिर्फ लवण सहिष्णु कोशिकाएँ ही संश्लेषित नहीं करते अपितु जलाभाव सहिष्णु कोशिकाएँ भी उन्हीं पर निर्भर रहती हैं। उच्च तकनीकी वर्णलेखी विश्लेषण द्वारा लवणसहिष्णुता का एक समान जैव-रासायनिक आधार लगभग सिद्ध हो गया है।

ओ एस एम जीन

ओस्मोटिक स्ट्रेस प्रोटेक्शन जीन का संक्षिप्त रूप है-ओएसएम जीन। परासरण दाब सुसंगत यौगिकों का

कोशिकांतर्गत संश्लेषण नियंत्रित करने वाले जीन को ओ एस एम जीन कहते हैं। जीवाणु के अणुजैविकी अध्ययन से प्रोलीन और बिटेन के जैव-संश्लेषण में कार्यरत विविध जीन समूहों की जानकारी प्राप्त हुई है। इन जीन समूहों की विशेषता यह है कि केवल परासरण दाब बढ़ने से या बने रहने से जीन कार्यशील रहते हैं, अन्यथा अभिव्यक्त नहीं होते हैं।

प्रोलीन जैविक विश्व के 20 एमीनो अम्लों में से एकमात्र ऐसा विशिष्ट ऐमीनो अम्ल है, जो पर्यावरणीय जलाभाव में कोशिकीय प्रकार्यात्मक प्रोटीन जैसे प्रकिण्व और प्लाज्मा झिल्ली में मौजूद संरचनात्मक प्रोटीन के स्थायित्व और विलयशीलता के गुणधर्मों को बरकरार रखने में सक्षम हैं। प्रोलीन की निर्मिति ''ग्लुटामेट'' नामक अन्य पूर्वगामी ऐमीनो अम्ल से होती है।

सर्वप्रथम ''ग्लुटामेट'' का रूपान्तर गॉमा ग्लुटामेट फॉस्फेट में होता है। इस चरण में ''प्रो बी'' नामक जीन गॉमा ग्लुटामील कायनेज'' नामक प्रकिण्व निर्माण करता है, जो इस संश्लेषण प्रक्रिया के प्रथम चरण को उत्प्रेरित करती है। ''प्रो-ए''जीन गामा ग्लुटामिल फॉस्फेट ''रिडक्टेज'' नामक प्रकिण्व का निर्माण करता है, जो ''डेल्टा पायरोलीन-4 कार्बोक्सीलेट'' नामक द्वितीय मध्यवर्ती यौगिक का निर्माण करता है। अंत में ''प्रो-सी'' जीन पायरोलीन 4-कार्बोक्सीलेट रिडक्टेज'' नामक प्रकिण्व का निर्माण करते हुये प्रोटीन जैव-संश्लेषण के अंतिम चरण में उत्प्रेरण की मुख्य भूमिका निभाता है। जलाभाव सहिष्णु कोशिकाओं में ''प्रो-बी'' जीन निसर्गतः उत्परिवर्तित होने की वजह से प्रोलीन की निर्मिति बड़े पैमाने पर होती है, परिणामस्वरूप जलीय लवणों की मात्रानुसार प्रोलीन की मात्रा संश्लेषित होती रहती है।

परासरणी सुसंगत यौगिकों में बिटेन सर्वाधिक सामर्थ्यशील यौगिक के रूप में उभर कर आया है। इस चतुष्क अमोनियम यौगिक की निर्मिति ''कोलीन'' नामक पूर्वगामी से केवल दो चरणों में होती है।

सर्वप्रथम कोलीन का रूपांतर ''बिटेन एल्डिहाइड'' नामक एकमात्र मध्यवर्ती यौगिक में होता है। संश्लेषण प्रक्रिया के इस चरण को 'कोलीन मोनोऑक्सीजेनेज' नामक प्रकिण्व उत्प्रेरित करता है। बिटेन ऐल्डिहाइड डिहाइड्रोजेनेज'' नामक अन्य प्रकिण्व संश्लेषण प्रक्रिया के अंतिम चरण में बिटेन का निर्माण करता है। इन दो प्रकिण्वों का निर्माण दो ''जीन'' नियंत्रित करते हैं। प्रायोगिक आधार पर पालक की एक लवणसंवेदी प्रजाति में बिटेन संश्लेषण नियंत्रित करने वाले जीन समूह का स्थानान्तरण करके उसमें लवण सहिष्णुता बहाल करने में डॉ० ए० डी० हेन्सन नामक अमेरिकी कृषि वैज्ञानिक सफल रहे हैं। निकट भविष्य में एक बीजपत्री फसलों में भी परासरण बल सहिष्णुता प्रदान करने में वैज्ञानिक निश्चित रूप से सफल होंगे।

निजी फसलों के अलावा भी इन परासरणी बल सुसंगत यौगिकों का एवं उन्हें नियंत्रित करने वाले जीन समूहों का अन्य क्षेत्रों में लाभ उठाया जा सकता है। **एनाबीना** नामक नीलहरित शैवाल की प्रजाति एवं अन्य नाइट्रोजन जैव-यौगिकीकरण करने वाले जीवाणु मृदा में उपस्थित लवणों के प्रति अतिसंवेदनशील होते हैं। नाइट्रोजेनेज नामक प्रकिण्व की कोशिकायें उपस्थिति एवं कार्यप्रणाली की वजह से इन जीवों को वायुमंडल के निष्क्रिय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने का वरदान प्राप्त है, परन्तु जलाभाव एवं लवणग्रस्त मृदा में नाइट्रोजेनेज का संदमन होता है। परिणामस्वरूप यौगिकीकरण की क्षमता घट जाती है। धान की खेती में **एजोला, एनाबीना** जैसे जैविक उर्वरक लोकप्रिय हो रहे हैं। क्या जैविक उर्वरकों का शत-प्रतिशत लाभ पाने की दृष्टि से उसे परासरण बल सहिष्णुता बहाल करना लाभप्रद सावित नहीं होगा ?

तटवत समुद्रीय पर्यावरण में अपरिष्कृत तेल के प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए ''सुपरबग'' का निर्माण हुआ। यह सुपरबग **स्यूडोमोनास** जीवाणु की प्रजाति है। प्रायोगिक आधार पर भले ही सुपरबग अपरिष्कृत तेल का निम्नीकरण करने में सफल रहा हो किन्तु समुद्रीय जल में लवण सहिष्णुता के बगैर क्या ये जीवाणु अपना कार्य भलीभाँति कर पायेंगे ?

(शेषांश पृष्ठ 19 पर)

रेडियो तरंग के आकाशीय स्त्रोत : क्वासर

सुलेखा कुमारी तथा कृषिचयन

ब्रह्माण्ड में रेडियोतरंगों के अनेक स्त्रोत पाये जाते हैं जो आकाशगंगाएं या इसी आकाशगंगा में उपस्थित धूल के बादल होते हैं। रेडियोतरंगे जो तारों से आती हैं वे काफी कमजोर होती हैं तथा रेडियो खगोलिकी में अदृश्य रहती हैं। सन् 1960 ई० में इस क्षेत्र में एक नया अध्याय जुड़ा जब एक प्रबल रेडियो स्त्रोत की उपस्थिति का पता चला जिसे 3C-48 नाम से जाना गया (3C का अर्थ है - तीसरा कैम्ब्रिज कैटलॉग रेडियो स्त्रोत)। इस 3 सी-48 रेडियो स्त्रोत की आकारिक संरचना एक नीले तारे के समान प्रतीत हुई। खोज के दौरान सबसे चमकीले स्त्रोत को 3 सी 273 के नाम से जाना गया जिसे प्रारंभ में क्वासी स्टेलर आब्जेक्ट्स (Quasi Stellar Objects) (Q. S. O.) कहा गया। इसे ही आजकल क्वासर (Quasar) के नाम से जाना जाता है। क्वासर की पहचान 1963 ई० में कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी के एम० श्मिट (M. Schmidt), आस्ट्रेलिया के सी० हजार्ड (C. Hazard) और अन्यों के द्वारा किया गया। आज तक एक हजार से अधिक क्वासरों की खोज की जा चुकी है।

अनुसंधान से क्वासर से सम्बन्धित अनेक रहस्यमय गुण सामने आये हैं। क्वासर की खोज खगोलविदों के लिए एक बहुत बड़ी सफलता थी और इसकी खोज, खगोल इतिहास में अपना एक विशिष्ट महत्व रखती है।

क्वासर से प्राप्त रेडियो तरंगों के स्पेक्ट्रोदर्शी अध्ययन करने पर यह पता चला है कि क्वासर के स्पेक्ट्रमों में द्युतिमान उत्सर्जन और अवशोषण रेखाएँ दोनों ही पायी जाती हैं तथा इनके स्पेक्ट्रम के गुण अन्य किसी भी तारों से प्राप्त स्पेक्ट्रम से भिन्न हैं। बाद में यह भी पाया गया कि क्वासर से प्राप्त स्पेक्ट्रमों में कुछ रेखाएँ हाइड्रोजन रेखाएँ होती हैं जिनमें लाल विस्थापन (Red Shift) बहुत ही अधिक पाया जाता है। इस घटना के तुरंत बाद यह स्पष्ट हो गया था कि इस प्रकार का लाल विस्थापन सभी क्वासरों से प्राप्त स्पेक्ट्रमों में पाया जाता है। स्पेक्ट्रमों में इस प्रकार के लाल विस्थापन की घटना की व्याख्या करते हुए अनेक सिद्धान्त तथा कारण बताये गये हैं।

कुछ खगोलज्ञों का मानना है कि यह लाल विस्थापन डॉप्लर शिफ्ट के सिद्धान्त से सम्बन्धित है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस पिंड से प्रकाश निकल रहा होता है वह एक विशाल द्रव्यमान तथा घनत्व वाला पिण्ड होता ही होगा तथा वह बहुत अधिक गति से हमसे दूर जा रहा होगा।

क्वासर के स्पेक्ट्रमों के अध्ययन से कुछ खगोलज्ञों का मानना है कि क्वासर में ये रेखाएं अधिक तीक्ष्ण हैं जिस कारण यह लाल विस्थापन गुरुत्व प्रभाव के कारण नहीं हो सकता है।

डॉप्लर शिफ्ट के कारण यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि क्वासर की दूरी हमसे बहुत अधिक गति से बढ़ रही है। 3C -273 क्वासर प्रकाश की गति की अपेक्षा 0.16 गुणा गति से तथा 3C -48 प्रकाश की गति से 0.37 गति से दूर जा रहा है। कुछ क्वासरों का लाल विस्थापन इतना अधिक है कि इससे उनकी गति प्रकाश की गति का 0.9 गुणा होने का संकेत मिलता है। ब्रह्माण्डीय परिकल्पना (Cosmological hypothesis) के अनुसार क्वासर की गति ब्रह्माण्ड के प्रसार के कारण होती है। इस परिकल्पना तथा हब्बल के नियम का प्रयोग करके हम क्वासरों की दूरी का मापन कर सकते हैं। यह पाया गया है कि एक क्वासर, एक आकाश गंगा अर्थात् किसी भी गैलेक्सी

से 100 गुणा अधिक ज्योतिवान होता है। अतः हम कह सकते हैं कि क्वासर ब्रह्माण्ड में पाये जाने वाले दूरस्थ पिंडों में से एक है जिसकी चमक तीव्र होती है।

रेडियो निरीक्षण से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि क्वासरों से आने वाला प्रकाश स्थिर नहीं होता है अर्थात् जब हम किसी समयांतराल में इसके प्रकाश का अध्ययन करते हैं तो इसमें समय के अनुसार अंतर दिखाई देता है। रेडियो निरीक्षण यह भी दर्शाता है कि न केवल क्वासर की ज्योति बल्कि इसके रेडियो स्पेक्ट्रम और ध्रुवण भी बदलते रहते हैं। अब वैज्ञानिकों के सामने यह एक पहेली बन गयी है कि कोई पिंड जिसका आकार किसी आकाश गंगा के दस लाखवें भाग के बराबर है तथा उसकी ऊर्जा उत्पादन दर आकाशगंगा से 100 गुणा से भी अधिक हो सकती है ?

एफ० हॉयल और विलियम फॉउलर ने 1963 में इस विषय से संबंधित एक सिद्धान्त दिया कि जिस प्रकार से आकाशगंगा के नाभिक क्षेत्र में ऊर्जा उत्पन्न होती है, जिसे सिनक्रोट्रॉन विकिरण क्रिया से समझाया गया है, उसी प्रकार क्वासर में भी ऊर्जा उत्पन्न होने की क्रिया सिनक्रोट्रॉन विकिरण की क्रियाविधि से संबंधित है।

हॉयल तथा फॉउलर के सुझाव के अनुसार जब कोई आकाशगंगा निपात की स्थिति में इतना संपीड़ित हो जाती है कि यदि आकाशगंगा की क्रोड का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 10 करोड़ गुणा अधिक हो जाय तो ऐसी आकाशगंगा एक सुपरतारा का रूप ले लेती है, जिसकी ज्योति क्वासर की ज्योति के बराबर होती है।

– द्वारा डॉ० चतुर्भुज साहू
अध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग
गिरिडीह कॉलेज, गिरिडीह - 815301(बिहार)

(पृष्ठ 5 का शेषांश)

आज़ादी के बाद देश में नए-नए मेडिकल कॉलेज व इंजीनियरिंग कॉलेज खुले। विज्ञान के विशिष्ट अध्ययन के लिए आई० आई० एस० (बेंगलूर) और आई० आई० टी० संस्थान अस्तित्व में आए। स्वतंत्र भारत में शिक्षा का तो एक तरह से विस्फोट ही हो गया है। इसी का यह परिणाम है कि वैज्ञानिकों और टेक्निशियनों की संख्या के मामले में भारत को संसार का एक अग्रणी देश माना जाता है। मगर इस शक्ति का हम समुचित उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। सुविधाओं के अभाव में आज भी हमारे बहुत-से तरुण वैज्ञानिक विदेश चले जाते हैं। 'बुद्धि' का यह पलायन देश की बहुत बड़ी क्षति है। विज्ञान के क्षेत्र में भारत अभी तक केवल एक ही नोबेल पुरस्कार हासिल कर पाया है और वह भी आज़ादी के पहले, सन् 1930 में। डॉ० सुब्रह्मण्यम् चंद्रशेखर और डॉ० हरगोविन्द खुराना को मिले नोबेल पुरस्कार अमेरिका के हिस्से गए हैं।

दूसरे महायुद्ध के समय से, भारत को आज़ादी मिलने के बाद से, विज्ञान और प्रौद्योगिकी का स्वरूप बड़ी तेज़ी से बदलता गया है। अब वैज्ञानिक अनुसंधान व प्रगति प्रमुखतः सरकारी सहयोग पर निर्भर हैं ; हम यह भी कह सकते हैं कि काफी हद तक शासकीय सोच और दखलअंदाज़ी पर आश्रित है।

– साभार (अंशतः)

प्रकृति का वरदान : लाख

डॉ० दीपक कोहली

वृक्षों पर खेती-- है न आश्चर्यजनक तथ्य, मगर यह सत्य है कि पेड़ों पर खेती आदिकाल से चली आ रही है और वह है लाख की खेती, जो वृक्षों पर की जाती है।

लाख एक प्राकृतिक राल है। बाकी सब राल कृत्रिम हैं। इसी कारण इसे ''प्रकृति का वरदान'' कहते हैं। लाख कीट अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं तथा अपने शरीर से लाख उत्पन्न करके हमें आर्थिक सहायता देते हैं। वैज्ञानिक भाषा में लाख को **लेसिफर लाखा** कहा जाता है। ''लाख'' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के ''लक्ष'' शब्द से हुई है, संभवतः इसका कारण मादा कोष से अनगिनित शिशु कीड़ों का निकलना है। लगभग 34,000 'लाख' के कीड़े एक किग्रा. **रंगीन लाख** तथा 14,400 ''लाख'' के कीड़े एक किग्रा० **कुसुमी लाख** पैदा करते हैं। **अथर्ववेद** में भी लाख की चर्चा है। महाभारत काल में लाक्षागृह का वर्णन है जो पाण्डवों को मारने के लिए पूर्णतः लाख से बनाया गया था, क्योंकि लाख की जल्दी जलने की प्रवृत्ति होती है। मुगल सम्राट अकबर के ''आइने-अकबरी'' में भी लाख के गुणों का उल्लेख मिलता है।

भारत में लाख की खेती मुख्यतः बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बंगाल, उत्तर प्रदेश और असम में होती है, परन्तु थोड़ी मात्रा में राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में भी लाख की खेती होती है। लाख की खेती वनों में रहने वाले आदिवासी और गैर-आदिवासी निवासी करते हैं। भारत में लाख की खेती का प्रमुख केन्द्र बिहार है, विशेषतः छोटा नागपुर प्रमण्डल ही लाख की खेती के लिए विख्यात है। छोटा नागपुर सम्पूर्ण भारत के लाख उत्पादन में 50 से 60 प्रतिशत योगदान देता है।

लाख के कीट सभी पेड़ों पर नहीं पलते हैं। जिन पेड़ों पर लाख की खेती होती है उन्हें पोषक पेड़ कहते हैं। इनमें प्रमुख हैं, पलास (**ब्यूटिया मोनोस्पर्मा**), बेर (**जिजीफस मोरसियाना**) और कुसुम (**श्लाईकेरा ओलियोसा**)। लाख की दो प्रजातियाँ हैं (1) कुसुमी तथा (2) रंगीनी। इन दोनों में कुसुमी को उत्तम माना जाता है।
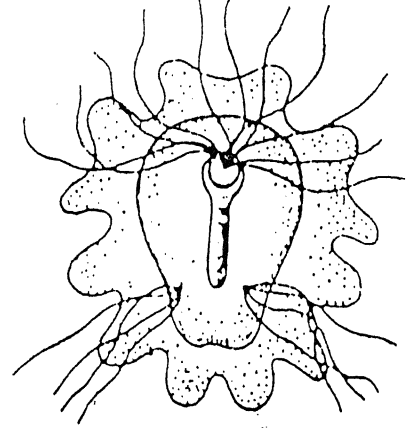
मादा कीट
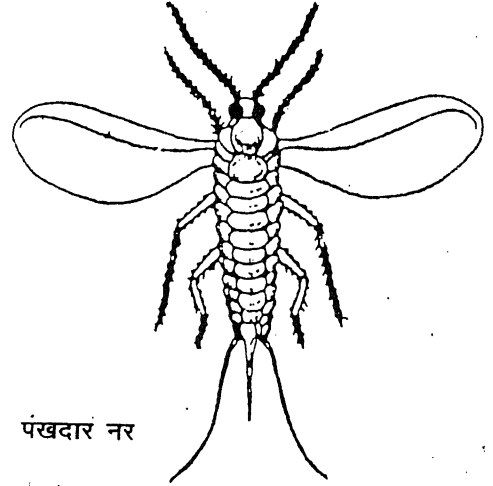
पंखदार नर

कुसुमी प्रजाति के कीड़े कुसुम वृक्षों पर पाले जाते हैं। प्रत्येक प्रजाति साल में दो बार अपना जीवन-चक्र पूरा करती है मगर इनके जीवन-चक्र का समय

भिन्न-भिन्न होता है। कुसुमी प्रजाति का जीवन-चक्र छः-छः महीने का होता है (1) अगहनी फसल - इस फसल के लिए कुसुम के पेड़ों पर जून-जुलाई महीने में बीहन लाख लगाये जाते हैं तथा जनवरी-फरवरी में फसल को काटा जाता है। (2) जेठवी फसल - इस फसल के लिए कुसुम के पेड़ों पर अक्टूबर-नवम्बर महीने में बीहन लाख लगाये जाते हैं और मई-जून में फसल को काट लिया जाता है। रंगीनी प्रजाति से भी दो फसलें होती हैं (1) **बैसाखी**-इस फसल के लिए सितम्बर -अक्टूबर में बेर और पलास वृक्षों पर बीहन लाख उगाया जाता है और जून-जुलाई में फसल काट ली जाती है। यह फसल तैयार होने में आठ माह का समय लेती है। (2) **केतकी** - फसल के लिए पोषक पेड़ों पर जून-जुलाई में बीहन लाख लगाये जाते हैं और सितम्बर - अक्टूबर में फसल काट ली जाती है। यद्यपि कुसुम लाख उत्तम होती है पर इसका उत्पादन कम और रंगीनी का ज्यादा होता है। सम्पूर्ण लाख उत्पादन में रंगीनी 4/5 भाग तथा कुसुमी 1/5 भाग है। लाख के कीड़े नरम तथा नई डाली पर बैठना पसंद करते हैं। पुरानी तथा कठोर डाली पर ये अपना भोजन चूस नहीं पाते हैं और मर जाते हैं।

लाख तथा लाख के कीड़ों को उनके शत्रु 40 प्रतिशत खा जाते हैं जिसके कारण लाख उत्पादन तथा उसके गुणों पर प्रभाव पड़ता है। इन शत्रु-कीटों को परजीवी या परभक्षी कीट कहते हैं। यों तो शत्रु कीड़े अनेक हैं, मगर इनमें मुख्यतः नुकसान पहुँचाने वालों में **युल्लेमा, एमाब्लीस, हल्कोसेरा, पुल्येरिया** तथा **क्राईसोपा** जाति सम्मिलित हैं। रसायन **थायोडान** का छिड़काव इन शत्रु कीड़ों से लाख की फसल की रक्षा करता है। काटी गयी फसल से छिला लाख मिलता है। छिले हुए लाख को कारखाने में शुद्ध करके लाख तथा चपड़ा बनता है जो विभिन्न उद्योगों में प्रयुक्त होता है। इनमें हस्तकला, फार्मेसी, छपाई स्याही, विद्युत् इन्सुलेशन, रबर, चूड़ी उद्योग आदि प्रमुख हैं। लाख उत्पादन का एक बड़ा भाग विदेशों को निर्यात किया जाता है जिससे हमें विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। थाइलैण्ड लाख उद्योग में हमारा प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी है। फिर भी अमेरिका, इंग्लैण्ड, अरब देश, रूस आदि देशों को भारत से लाख निर्यात होता है।

लाख उद्योग का अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है परन्तु वर्तमान में लाख का भविष्य संघर्षशील है। इसका कारण है कृत्रिम राल का उत्पादन। फिर भी लाख की बहुपयोगिता उसे कृत्रिम राल से हर क्षेत्र में आगे ही रखती है। लाख उद्योग इसके मूल्य में उतार-चढ़ाव के कारण काफी प्रभावित होता है। लाख उद्योग के उत्थान के लिए आवश्यक है कि लाख पर आधारित छोटे-बड़े उद्योगों के लिये मजदूर, यातायात की सुविधा तथा उत्पादित वस्तुओं की उचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि वनों में रहने वाले लाख के कृषकों को लाख का उचित मूल्य और प्रोत्साहन मिले। जंगलों में खेती के लायक भूमि कम है। वृक्षों पर लाख की खेती करके सामाजिक अर्थव्यवस्था को सन्तुलित किया जा सकता है।

– प्र० व० स०, उ० प्र० शासन,
ई-2652 राजाजीपुरम्, लखनऊ, 226017

(पृष्ठ 15 का शेषांश)

अधिक समय तक सिने-दर्शकों को पुराने घिसे-पिटे फॉर्मूलों पर आधारित फिल्में दिखाकर नहीं बहलाया जा सकता। शायद यही कारण कि विदेश में बनी विज्ञान फिल्में भारत में भी अपार सफलता हासिल कर रही हैं। युवा दर्शकों के बीच तो ये खासी लोकप्रिय हैं। युवा दर्शक खास तौर से बाह्य अंतरिक्ष के प्राणियों यानी एलियंस पर बनी फिल्में देखने को उत्सुक रहते हैं। अतः अब समय है कि भारतीय फिल्मकारों को भी विज्ञान फिल्में बनाने की दिशा में ठोस कदम उठाने चाहिए। यह भारत में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तकनीकी विकास की दृष्टि से तो उपयोगी है ही, भारतीय सिनेमा उद्योग को पश्चिमी सिनेमा के आक्रमण से बचाए रखने की दृष्टि से भी आवश्यक है।

(साभार)

मानव का वंशाणु कोश तैयार है

मार्च 2000 तक आदमी के 23 गुण सूत्रों की माला में मनकों की तरह पिरोये 3 अरब समाधारों (Bases) वाला वंशाणु-कोश पूरा करने का लक्ष्य रखा गया है। यह कार्यक्रम 'मानव जीनोम परियोजना' के अधीन शुरू किया गया था। चार अक्षरों की रासायनिक भाषा से बने शब्दों के सार्थक वाक्यों, यानी वंशाणु का पता लगाना सचमुच बड़े जीवट का काम था। ये चार अक्षर हैं एडीनिन, ग्वैनिन, साइटोसिन और थाइमिन जो कि ए. जी. सी. टी., से दर्शाए जाते हैं और महारसायन डीऑक्सीराइबो-न्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) इन्हीं से बनता है। इनका सम्पूर्ण क्रम पता करके इस वंशाणु-कोश के 23 खंड कंप्यूटर में भर दिये गये हैं। इससे पहले बाइसवें गुणसूत्र के सभी अक्षरों का क्रम पढ़ लिया गया था। दिसम्बर 1999 में इसकी घोषणा की गई थी।

इस 'प्लान फॉर मैन' को जान लेने के बाद वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीविद् इस समस्या से जूझ रहे हैं कि इसका मानव-कल्याण के लिए कैसे उपयोग करें। इसने एक नये विज्ञान को जन्म दिया है, जिसे 'जीनोमिक्स' अर्थात् जीनोमिकी कहा जा रहा है।

पिछले दिनों ब्रिटेन में चिकित्सा अनुसंधान के लिए दान देने वाली सबसे बड़ी स्वयंसेवी संस्था वैलकम ट्रस्ट ने सांगर सेंटर को 10 करोड़ पाउण्ड, यानी लगभग 700 करोड़ रुपयों का अनुदान दिया है। सांगर सेंटर विश्व के अनेक अन्य केन्द्रों की तरह वंशाणुकोश बनाने में लगा है। यह पूर्वी इंग्लैण्ड में केम्ब्रिज के निकट स्थित है। दान की इस राशि से सताने वाली मधुमेह, हृदय-विकार और सिस्टिक फाइब्रोसिस जैसी बीमारियों से मानवजाति को छुटकारा दिलाने की कोशिश की जायेगी।

सांगर सेंटर में मानव जीनोम परियोजना के लिए वंशाणु-क्रम ज्ञात करना मात्र एक ही काम नहीं है। वहाँ अन्य जीवों के वंशाणुकोश बनाने का भी काम चल रहा है, जैसे कि बैक्टीरिया का। बैक्टीरिया, यानी जीवाणुओं के वंशाणुकोश बनाने से नयी दवाएं और नये टीके बनाने में मदद मिलेगी।

'सक्रिय जीनोमिकी' के क्षेत्र में इस तरह यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहल है। पहला मुद्दा यह है कि वंशाणु-क्रम ज्ञात करने के बाद उसे व्यवहार में कैसे लाया जाये। दूसरा मुद्दा है बड़े पैमाने पर जैव-सामग्री का संकलन। इसके तहत ब्रिटेन से ही 5 लाख लोगों के खून के नमूने एकत्र किये गये। तीसरा मुद्दा है बायोइन्फोर्मेटिक्स का, जिसके अंतर्गत मानव जीनोम परियोजना में इकट्ठे हुए विपुल ज्ञान के संकलन, प्रबंधन तथा विनिमय के आसान तरीके खोजे जायेंगे।

इस दृष्टि से सक्षम बनाने वाली तकनीकों में से एक है स्लाइड पर डी एन ए के बिन्दु जमाना। इस तरह के सूक्ष्म-विन्यास से एक स्लाइड पर 4,000 तक डी एन ए बिन्दु जमाए जा सकते हैं। प्रत्येक डी एन ए बिन्दु एक वंशाणु का द्योतक होगा। कुछ जीवाणुओं में 4,000 से अधिक वंशाणु होते ही नहीं है। इस तरह उनका वंशाणुकोश केवल एक ही स्लाइड पर आ जायेगा।

स्लाइडों पर बनाये गये ये माइक्रोएरे (सूक्ष्म-विन्यास) बड़े काम के साबित होंगे। उदाहरण के लिए शोधकर्ता यह जानते हैं कि किसी संक्रमण में लिप्त जीवाणु के कौन से वंशाणु विकार पैदा करने के दोषी हैं। वे ऐसे जीवाणु का आर एन ए लेकर सम्पूर्ण जीवाणुकोश की स्लाइड पर छोड़ देंगे।

आर एन ए यानी राइबोन्यूक्लिक एसिड डी एन ए के निर्माण में संदेशवाहक का काम करता है। अतः आर एन ए अपने डी एन ए से जुड़ जायेगा। इस तरह रोग का निदान रोग पैदा होने से बहुत पहले ही किया जा सकेगा।

इसके अलावा चूंकि आर एन ए केवल सक्रिय वंशाणु के डी एन ए से जुड़ता है, अतः जीवाणु के जीवन-चक्र में कब कौन-सा जीवाणु सक्रिय है, यह पता लगाना आसान हो जायेगा।

अनेक प्रकार के कैंसर भी वंशाणु की असामान्य क्रिया से पैदा होते हैं। इसी प्रकार वंशानुगत रोग भी जीन, यानी वंशाणु की गड़बड़ी से पैदा होते हैं। सूक्ष्मविन्यास तकनीक से ऐसे मामलों में गड़बड़ी पैदा करने वाले वंशाणु को ढूढ़ निकालना बाँये हाथ का खेल हो जायेगा।

मानव-जीनोम में कुछ ऐसे वंशाणुओं का पता चला है, जो सामान्य वंशाणु से छोटे होते हैं, लेकिन जिनकी वजह से कई तरह के रोग लगने की संभावना बढ़ जाती है। यही कारण है कि जहां चारों ओर जुकाम-खांसी फैली होती है, वहां कुछ लोग चैन की सांस ले रहे होते हैं, क्योंकि वे रोग की संभावना बढ़ाने वाले वंशाणुओं से मुक्त होते हैं। इन वंशाणुओं का पता लगाने के लिए काफी बड़ी संख्या में लोगों के वंशाणुओं की जांच करनी होगी।

इसी दृष्टि से ब्रिटेन में 5 लाख लोगों के वंशाणुओं का अध्ययन किया जा रहा है। 'द यूके पॉपुलेशन बायोमेडिकल कलेक्शन' इस प्रकार का सबसे बड़ा सर्वेक्षण है। इससे पता चलेगा कि मधुमेह, कैंसर, अल्जमीर रोग और अस्थमा आदि पैदा करने में किन वंशाणुओं का हाथ है। इस आनुवंशिक अध्ययन को अब तक का इस तरह का सबसे बड़ा अनुसंधान माना जा रहा है। इसके बाद जो जानकारी मिलेगी उसके आधार पर सर्वेक्षित आबादी से उन लोगों का पता चल सकेगा जिनमें कैंसर, हृदय-विकार या मधुमेह आदि पैदा होने की आशंका हैं। समय रहते पता चल जाने से इन रोगों की रोकथाम के लिए और ठोस कदम उठाये जा सकेंगे। साथ ही विशिष्ट और उचित दवाओं का विकास करना भी आसान हो जायेगा।

बाइसवें गुणसूत्र में मौजूद सभी वंशाणुओं में रासायनिक अक्षरों का क्रम पता कर लेना इस क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की सफलता का एक अनुकरणीय उदाहरण है। इस अनुसंधान में साथ दिया था सांगर सेंटर, अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑव ओकलाहोमा और जापान के टोक्यो विश्वविद्यालय ने। इस गुणसूत्र पर मौजूद वंशाणु जन्मजात हृदय-विकार और रक्त कैंसर (ल्यूकीमिया) के लिए दोषी पाये गये हैं। साथ ही संक्रमण के विरुद्ध प्रतिरक्षण संबंधी प्रतिक्रिया भी इसी गुणसूत्र (क्रोमोसोम) पर मौजूद वंशाणु नियंत्रित करते हैं।

लेकिन इस गुणसूत्र का भी कोश अभी पूरा नहीं माना जा सकता। इसके कुछ भागों में कोई वंशाणु नहीं है। 'क्या गुणसूत्र के ये अंश मानवदेह में किसी काम आते हैं,' यह पता करना बाद के लिए छोड़ दिया गया है। शोधकर्ताओं को यह कसौटी भी तय करनी है कि कब किसी गुणसूत्र का कोश पूरा हुआ, ऐसा मान लिया जायेगा। अन्य गुणसूत्रों पर काम पूरा होने को है और उन पर यह कसौटी लागू होगी।

सांगर सेंटर में 'सिक्वेंसिंग' अर्थात् क्रम-निर्धारण की ऐसी तकनीकें विकसित कर ली गई हैं, जिनसे यह काम बड़ी तेज़ी से पूरा कर लिया जाता है। इसीलिए मानव जीनोम परियोजना लक्ष्य से पहले ही पूरी हो रही है। एक तिहाई मानव वंशाणु-कोश मार्च 2000 तक छप जाना था।

बाईसवें गुणसूत्र तथा बाकी गुणसूत्रों के वंशाणु-कोश मुक्त रूप से प्रकाशित किये जायेंगे, ताकि चिकित्सा संबंधी अनुसंधानों में उनका उपयोग सभी वैज्ञानिक स्वतंत्र रूप से और तेज़ी से कर सकें।

वैलकम ट्रस्ट अपने 'फंक्शनल जीनोमिक्स इनीशिएटिव' के अंतर्गत् मानव-वंशाणु-कोश के उपयोग के लिए आवश्यक तकनीकें और उपकरण उपलब्ध कराने के लिए तैयार हैं।

इस तरह विधाता या प्रकृति ने मानव के निर्माण की जो योजना बनाकर डी एन ए के रूप में सबकी कोशिकाओं में रख दी थी, उसका पूरा रहस्य पहली बार खुल रहा है और उसके साथ ही खुल जायेगा प्राणरक्षक दवाओं और टीकों का पिटारा।

(ब्रिटिश समीक्षा से साभार)

आवश्यकता है विज्ञान फिल्मों के निर्माण की

राजीव सक्सेना

एक बार फिर भारत ने अंतर्राष्ट्रीय फिल्मोत्सव का आयोजन किया। सिने प्रेमियों को इसमें कला फिल्मों के साथ-साथ उन्मुक्त सेक्स और मारधाड़ के दृश्यों से भरपूर अनेक देशी-विदेशी फिल्में देखने को मिलीं, किंतु विज्ञान फिल्मों के नाम पर इस समारोह में कुछ नहीं दिखा। ऐसा नहीं है कि आयोजक विज्ञान फिल्में प्रदर्शित नहीं कर सकते थे या विदेश में विज्ञान फिल्में बनती नहीं हैं। सही बात तो यह है कि फिल्म समारोह को सफल बनाने और ज्यादा से ज्यादा दर्शक जुटाने के उद्देश्य से ही आयोजकों ने विज्ञान फिल्मों को तिलांजलि दी। सवाल यह है कि भारतीय दर्शकों हेतु क्या विज्ञान फिल्मों का प्रदर्शन जरूरी नहीं था ? क्या फिल्म समारोह के आयोजक अभी भी अपने सिने दर्शकों हेतु विज्ञान फिल्मों का प्रदर्शन गैर जरूरी समझते हैं ? क्या दर्शकों की रुचि का परिष्कार किया जाना उनकी समझ के अनुसार आवश्यक नहीं है ? दरअसल, ये वे सवाल हैं जिनमें न केवल भारत की विज्ञान फिल्मों का, बल्कि सिनेमा उद्योग का भविष्य भी निहित है।

इसमें दो राय नहीं हो सकती कि सिनेमा यथार्थ न होकर भी समाज का ही जीवंत प्रतिबिंब है, जिसके जरिये हमारी सोच और प्रवृत्तियां उजागर होती हैं। सिनेमा आज भी एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जो हमारे मानस को कहीं गहराई तक आंदोलित करता है और सामाजिक परिवर्तन का औजार बन सकता है। सिनेमा के इसी महत्त्व को ध्यान में रखते हुए आज सार्थक सिनेमा की चर्चा जोरों पर है। किंतु भारतीय सिनेमा की सार्थकता क्या है और फिल्मकारों द्वारा इस सार्थकता का कितना उपयोग किया जा रहा है ? सही बात तो यह है कि भारतीय फिल्में, विशेषकर हिंदी फिल्में, सेक्स, रोमांस और हिंसा का पर्याय बन गई हैं, जिनके कल्पनालोक में दर्शक कुछ समय के लिए अपनी समस्याएं भूलकर विचरण अवश्य करते हैं, किंतु अंत में वही समस्याएँ मुंह बाए खड़ी नज़र आती हैं और उनके मूल प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते हैं। सामाजिक परिवर्तन के नाम पर हिंदी फिल्में भोंडे प्रेम, हिंसक प्रवृत्तियों या अपसंस्कृति का प्रचार-प्रसार करती हैं, जिनका भारत की मूल संस्कृति या जीवन पद्धति से कोई लेना-देना नहीं है। यह फिल्मों का ही प्रभाव है कि भारतीय समाज में तेजी से अराजकता व्याप्त हो रही है, लोगों में प्रेम या आपसी सद्भाव की जगह वैमनस्य बढ़ रहा है और युवक सफलता के शॉर्टकट पर आधारित एक ऐश्वयपूर्ण जीवनशैली में विश्वास करने लगे हैं। क्या यही हिंदी सिनेमा या भारतीय सिनेमा की सार्थकता है ? आज भारत में लगभग एक हजार फिल्में प्रतिवर्ष बनती हैं। इनमें सेक्स, प्रेम, रोमांस, हिंसा या दूसरे सामाजिक विषयों पर आधारित फिल्मों की प्रधानता है। ऐतिहासिक और धार्मिक पृष्ठभूमि पर बनने वाली प्रेरणादायक फिल्में कभी की हाशिये पर चली गई हैं। किंतु सबसे दुखद स्थिति विज्ञान फिल्मों की है। भारत में हिंदी सहित किसी भी भारतीय भाषा में विज्ञान फिल्में बनाने की कोई परंपरा नहीं है। भारतीय सिनेमा के पिछले सौ वर्ष के इतिहास में एक भी विज्ञान फिल्म ऐसी नहीं है, जिसे उल्लेखनीय कहा जा सके। सही बात तो यह है कि हमारे फिल्मकारों ने विज्ञान फिल्मों की आवश्यकता पर कभी विचार ही नहीं किया है। अब जब भारत नई सहस्त्राब्दी में प्रवेश कर चुका है, विज्ञान और वैज्ञानिक खोजें हमारे जीवन का अविभाज्य अंग बन चुकी हैं, तब क्या देश को विज्ञान फिल्मों की आवश्यकता नहीं है ? क्या रूढ़ियों और अंधविश्वासों में जकड़े लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करने के लिए विज्ञान फिल्में बेहतर माध्यम नहीं हो सकतीं ?

पश्चिम में विज्ञान फिल्मों के महत्व को बहुत पहले ही समझ लिया गया था। अकेले हॉलीवुड में ही अब तक सैकड़ों विज्ञान फिल्में बन चुकी हैं, जिन्होंने बॉक्स आफिस पर सफलता के अनेक कीर्तिमान स्थापित किए हैं। बाह्य अंतरिक्ष की जटिल समस्याओं

या अंतरिक्ष युद्ध की परिकल्पना पर बनी **स्टार वार्स** जैसी फिल्म तो किंवदंती बन चुकी है। आधुनिक समय में भी **इंडिपेंडेंस डे, द थर्ड काइंड, द फिफ्थ एलिमेंट और स्टार वार्स : एपीसोड वन** जैसी विज्ञान फिल्में करोड़ों-अरबों डॉलर का मुनाफा अर्जित कर पिछले सभी रिकार्ड ध्वस्त कर चुकी हैं। आज स्थिति यह है कि हॉलीवुड में बनने वाली **हर तीसरी फिल्म विज्ञान फिल्म** है। अमेरिका और पश्चिमी देशों के फिल्मकारों की विज्ञान फिल्में बनाने मे गहरी रुचि है। हॉलीवुड या पश्चिम में विज्ञान फिल्मों की इस अपार सफलता के क्या कारण हैं ? सबसे बड़ी बात तो यह है कि पश्चिम के सिनेदर्शक रोमांस और हिंसा की फिल्में देखकर इस बुरी तरह ऊब चुके हैं कि अब नई कल्पनाओं और नए कथानकों पर आधारित विज्ञान फिल्मों से ही उनका मनोरंजन हो पाता है। फिल्मकारों ने अपने दर्शकों की रुचि का इतना परिष्कार कर दिया है कि हल्के-फुल्के कथानकों पर आधारित फिल्मों के लिए कोई जगह नहीं रह गई है। फिर पश्चिमी लोगों के जीवन में विज्ञान इतना रच-बंस गया है कि वे फिल्मों को भी इससे अलग करके नहीं देख सकते।

क्या कारण है कि हॉलीवुड में तो धड़ल्ले से विज्ञान फिल्में बन रही हैं और जबरदस्त सफलता भी अर्जित कर रही हैं, जबकि बॉलीवुड में विज्ञान फिल्मों की चर्चा तक नहीं है ? भारतीय फिल्मकारों का कहना है कि हमारे सिनेदर्शक औसत रुचि के हैं, जो प्रायः जीवन की समस्याओं से जुड़ी मर्मस्पर्शी या भावप्रवण फिल्में देखना पसंद करते हैं। अधिकांश फिल्मकार यह रोना रोते नजर आते हैं कि उन्हें फिल्म बनाते समय दर्शकों की रुचि का ध्यान रखते हुए पेड़ों के इर्द-गिर्द नाचते, गाना गाते नायक-नायिका के प्रेम दृश्य, अंग उघाड़ू कैबरे नृत्य, मारधाड़ या डायलॉगबाजी के दृश्य जबरन ठूँसने पड़ते हैं। दरअसल यह धूर्त व्यवसायिकता का मामला है। वास्तविकता यह है कि भारतीय फिल्मकार फिल्म बनाते समय दर्शकों की रुचि से कहीं ज्यादा अपने मुनाफे का ध्यान रखते हैं। उनके मानस में यह बात गहराई तक बैठ गई है कि सेक्स और हिंसा से भरपूर दृश्यों के प्रस्तुतीकरण के जरिये फिल्म की बॉक्स ऑफिस पर सफलता की गारंटी बढ़ जाती है। अतः ऐसे दृश्यों को फिल्म में शामिल किया जाना जरूरी है, फिर कथानक चाहे जैसा हो। वे यह भी मानते हैं कि भारतीय दर्शकों की अपनी कोई खास रुचि नहीं होती, उन्हें जो भी दिखाया जाएगा, वे देख लेंगे। यह बात कुछ हद तक सही भी है, लेकिन दर्शकों की रुचि को विकृत करने के लिए फिल्मकार ही उत्तरदायी हैं। आखिर सिने- दर्शक तो फिल्म बनाते नहीं। अब यदि विज्ञान पर आधारित मनोरंजक फिल्में भारत में निर्मित की जाएँ, तो निश्चित ही दर्शक इन्हें भी देखना चाहेंगे। अतः यह कहना फिजूल है कि दर्शक केवल प्रेम, हिंसा या सेक्स पर आधारित फॉर्मूला फिल्म ही देखना पसंद करते हैं। यदि ऐसा होता, तो भारतीय सिनेमाघरों में तहलका मचा देने वाली और हिंदी में डब की गई **जुरासिक पार्क** जैसी विज्ञान फिल्में औंधे मुंह गिर गई होतीं।

यदि भारत में भी फिल्मकार सिनेदर्शकों की रुचि में बदलाव लाने की गंभीर कोशिश करें, तो कोई कारण नहीं कि बड़ी संख्या में लोगों में विज्ञान फिल्मों के प्रति आकर्षण उत्पन्न नहीं किया जा सकता। आरंभ में इसमें अनेक कठिनाइयां आएंगी। फिल्मकार कह सकते हैं कि विज्ञान फिल्मों के लिए कोई फाइनेंसर अपनी पूंजी फंसाने के लिए तैयार नहीं है या अच्छे कथानक या उन्नत तकनीक उपलब्ध नहीं है। किंतु एक बार फिल्मकार निश्चय कर लें, तो ये सभी कठिनाइयाँ सुलझाई जा सकती हैं। सूचना तकनीक के उद्योग की भांति सरकार सिनेमा उद्योग को भी विज्ञान फिल्मों के निर्माण के लिए धन मुहैया करा सकती है। देश में विज्ञान लेखकों की भी कमी नहीं है। हिंदी सहित दूसरी भारतीय भाषाओं में काफी मात्रा में उत्कृष्ट विज्ञान साहित्य रचा जा रहा है, अतः विज्ञान फिल्मों हेतु एक से एक नायाब कथानक जुटाए जा सकते हैं। जहाँ तक तकनीक की बात है, मुंबई में आज हॉलीवुड से प्रशिक्षित नई पीढ़ी के अनेक निर्देशक कार्य कर रहे हैं, जो फिल्मांकन की अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग कर रहे हैं। फिर विज्ञान फिल्मों के लिए हॉलीवुड के तकनीशियनों का सहयोग भी प्राप्त किया जा सकता है।

मल्टीमीडिया, इंटरनेट और सेटेलाइट चैनलों के मिले-जुले प्रभाव के परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस और सिनेदर्शकों की रुचि में भारी बदलाव दृष्टिगोचर हो रहा है। विश्वधारा से जुड़े लोग अनायास विज्ञान फिल्मों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। सही बात तो यह है कि अब

(शेषांश पृष्ठ 11 पर)

रामसर स्थल

डॉ० सतीश कुमार शर्मा तथा सोहन लाल सैनी

नम क्षेत्रों का जैव-वैज्ञानिक, पारिस्थितिकीय, आर्थिक एवं सांस्कृतिक महत्व किसी से छुपा नहीं है। ये क्षेत्र बाढ़ तथा मृदा-क्षरण को नियंत्रित करते हैं तथा भूगर्भीय जलस्तर को ऊँचा रखने में मदद करते हैं। समुद्र के किनारे के नम क्षेत्र समुद्री तूफानों का प्रभाव सहन कर मुख्य भूमि को संरक्षण प्रदान करते हैं जिससे जन-जीवन का तूफानों से बचाव होता है। मछली सहित अनेक आर्थिक उत्पाद भी नम क्षेत्रों से मिलते हैं। जलीय प्राणी व वनस्पति नम क्षेत्रों में ही अपना आवास पाते हैं। नम क्षेत्रों को बचाने के अनेकानेक प्रयास हो रहे हैं। रामसर सम्मेलन के बाद इन प्रयासों में और भी तेजी आई है।

वर्ष 1971 में नम क्षेत्रों के संरक्षण हेतु ईरान के **रामसर** शहर में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के नम क्षेत्रों की पहचान व उनकी सुरक्षा हेतु संभागी देशों व संस्थाओं में सहमति बनी। जिन क्षेत्रों को सहमति के आधार पर पहचाना गया उन्हें आज **''रामसर स्थल''** के नाम से जाना जाता है। हमारे देश में पाँच राज्यों के छः नम क्षेत्रों को **''रामसर स्थल''** होने का गौरव मिला। राजस्थान से सर्वाधिक दो स्थल, केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान भरतपुर एवं साँभर झील, उड़ीसा से चिल्का झील, जम्मू एवं कश्मीर से वूलर, मणिपुर से लोकटक तथा पंजाब से हरिके बाँध को रामसर स्थल को सूची में रखा गया।

विभिन्न कारणों से नम क्षेत्रों पर मंडराते खतरों को देखते हुए उनके संरक्षण की विश्वव्यापी चेतना व चिन्ता प्रकट होने लगी है। पूर्व घोषित क्षेत्रों के अलावा नये क्षेत्रों को भी रामसर स्थल घोषित किये जाने की माँग उठती रही है। वर्ष 1996 में ब्रिसबेन (आस्ट्रेलिया) में छठें दौर की बैठक में ''रामसर स्ट्रेटेजिक प्लान 1997-2002'' को संभागियों ने स्वीकार किया। इस प्लान के अनुच्छेद 6 में यह प्रावधान रखा गया है कि नये रामसर स्थल कोरल रीफ, मैंग्रूव वन, समुद्री घास एवं पीट लैण्ड जैसे आवासों से भी चयनित किये जावें।

रामसर स्थल चयन प्रक्रिया

रामसर स्थल चयन की प्रक्रिया ''रामसर सूचना प्रपत्र'' (RIS-Ramsar Information Sheet) से प्रारम्भ होती है। इस प्रपत्र को ''रामसर ब्यूरो'' ने तैयार किया है। जिस भी नये क्षेत्र को रामसर स्थल घोषित कराया जाना होता है उसकी सम्पूर्ण जानकारी रामसर सूचना प्रपत्र में भर कर नक्शे सहित रामसर ब्यूरो को भेजना पड़ता है। यदि चयनित क्षेत्र का क्षेत्रफल 10,000 हेक्टेयर तक होता है तो उसका नक्शा 1:25,000 या 1:50,000 पैमाने पर बनाया जाता है। यदि क्षेत्रफल 1,00,000 हेक्टेयर तक होता है तो नक्शा 1:100,000 पैमाने पर बनाया जाता है। यदि क्षेत्र इससे भी बड़ा होता है तो नक्शा 1:2,50,000 पैमाने पर बनाया जाता है।

स्विट्जरलैण्ड स्थित ब्यूरो को भेजी गई समस्त सूचना ''रामसर डेटाबेस'' में दर्ज कर दी जाती है। यदि स्थल रामसर स्थल घोषित किये जाने हेतु निर्धारित प्रावधानों को पूरा करता है तो उसे रामसर स्थल घोषित कर दिया जाता है।

रामसर सूत्र (Ramsar Criteria)

रामसर ब्यूरो की जल/नम क्षेत्रों के वर्गीकरण की अपनी पद्धति है। आमतौर पर तीन तरह के नम क्षेत्र समुद्री व समुद्र-तटीय, आन्तरिक जलीय एवं मानव निर्मित को रामसर स्थल बनाया जाता है। रामसर

ब्यूरो ने समुद्री व समुद्र तटीय जलस्त्रोतों/नमक्षेत्रों की कुल 11 उप किस्में निर्धारित की हैं जिन्हें A, B, C, D, E, F, G, H, I, J, एवं K क्रमांक दिये हैं। इसी तरह आन्तरिक जल क्षेत्र में कुल 20 उपकिस्में पहचानी गई हैं जिन्हें L, M, N, O, P. Q, R, Sp, Ss, Tp, Ts, U, Va, Vt, W, Xf, Xp, Y, Zg एवं Zk क्रमांक दिये गये हैं। मानव-निर्मित जल व नम क्षेत्रों की कुल 9 उप किस्में पहचानी गई हैं जिन्हें 1, 2, 3, 4, 5; 6, 7, 8 एवं 9 क्रमांक दिये गये हैं। ब्यूरो द्वारा तैयार किये सूचना प्रपत्र में मुख्य किस्म, उप किस्म आदि का विवरण देते हुये स्थिति (देश, प्रान्त आदि), निवास करने वाली सजीव जातियों का विवरण, खास तौर से दुर्लभ व संकटापन्न जातियों का विवरण, आवास को क्षति पहुँचाने वाले कारकों आदि की सम्पूर्ण जानकारी दर्ज की जाती है। सूचना प्रपत्र तैयार करते समय निम्न चार रामसर सूत्रों की भी पूर्ण जानकारी देती पड़ती है जिससे जल या नम क्षेत्रों की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्ता सिद्ध होती है।

सूत्र 1 : इस सूत्र में कुल 4 उपसूत्र हैं। इस सूत्र के अन्तर्गत् यदि क्षेत्र का जल-वैज्ञानिक, जीव-वैज्ञानिक, पारिस्थितिकीय एवं जैव-भौगोलिक दृष्टि से महत्व हो, क्षेत्र विशिष्ठ आवासीय स्थित में पड़ता हो, नदियों के बेसिन, समुद्री तटों आदि पर स्थित हो तो उसको रामसर स्थल बनाया जा सकता है।

सूत्र 2 : इस सूत्र में कुल 4 उपसूत्र हैं। इस सूत्र के अनुसार क्षेत्र यदि दुर्लभ, संकटापन्न पौधों/प्राणियों की जाति / उपजाति या जातियों / उपजातियों की शरणस्थली हो, जैव-विविधता एवं पारिस्थिति-कीय विविधता की स्थली हो, या कोई विशिष्ट आवास वहाँ विद्यमान हो, या एन्डेमिक पौधों/प्राणियों की आवास स्थली हो तो ऐसे क्षेत्र को रामसर स्थल घोषित किया जा सकता है।

सूत्र 3 : इस सूत्र में कुल 3 उपसूत्र हैं। इस सूत्र के अनुसार क्षेत्र में निरन्तर 20000 जलीय पक्षी (Waterfowl) शरण पाते हों या किसी जलीय पक्षी जाति/उपजाति की सम्पूर्ण संख्या का 1 प्रतिशत भाग वहाँ शरण पाता हो तो उस क्षेत्र को रामसर स्थल का दर्जा मिल सकता है।

सूत्र 4 : इस सूत्र के कुल 2 उपसूत्र हैं। इस सूत्र के अनुसार क्षेत्र में स्थानीय मछलियों की विविधता हो तथा इनके प्रजनन-संवर्धन हेतु क्षेत्र महत्वपूर्ण हो तो उसे रामसर स्थल बनाया जा सकता है।

यदि कोई स्थल इन चार सूत्रों की शर्तों को पूर्ण करता है तो उसे रामसर स्थल घोषित किया जा सकता है।

वर्तमान में रामसर मसौदे को 114 संभागी देश स्वीकार कर चुके हैं जिनमें भारत भी एक है। 10 से 18 मई 1999 को **कोस्टारीका** में सातवें दौर की वैठक में भारत ने अपने भू-भाग से 20 और नये रामसर स्थल घोषित करने की मंशा ज़ाहिर की है। नम क्षेत्रों के संरक्षण हेतु निश्चय ही यह एक सराहनीय पहल है। आशा है आने वाले वर्षों में देश के अन्य महत्वपूर्ण जलीय व नम स्थल भी रामसर स्थल के रूप में चिन्हित हो जायेंगे जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनको पहचान मिलेगी फलतः न केवल इन नम क्षेत्रों को ही सुरक्षा मिलेगी बल्कि उनमें निवास करने वाले जीवों के संरक्षण के प्रयासों में भी गति आ सकेगी।

—क्षेत्रीय वन अधिकारी
(नाहरगढ़ जैविक उद्यान)
2, सुरेश नगर, दुर्गापुरा, जयपुर – 302018

भूल सुधार

जुलाई 2000 अंक के पृष्ठ 29 पर 'आनंद पक्षी निहारन का' पुस्तक के प्रकाशक का नाम नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली के स्थान पर वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली छप गया है। प्रेस की इस त्रुटि के लिये हमें खेद है।-

– संपादक मंडल

महान रसायनज्ञ बर्ज़ीलियस

[डॉ० कपूर ने यह लेख अपनी मृत्यु से 5-6 मास पूर्व ''विज्ञान'' में प्रकाशनार्थ भेजा था। इसे हम उनकी स्मृति स्वरूप प्रकाशित कर रहे हैं]

स्व० डॉ० रमेश चन्द्र कपूर

आधुनिक रसायन के प्रमुख स्तम्भ जोन्स जैकब बर्ज़ीलियस का जन्म 1779 में स्वीडेन के एक निर्धन परिवार में हुआ था। विद्यालयों के पाठ्यक्रम में बहुधा बर्ज़ीलियस का नाम एक ऐसी परिकल्पना के साथ जुड़ा रहता है जो बाद में गलत सिद्ध हुई थी। यह अभाग्यवश है क्योंकि रसायन विज्ञान में बर्ज़ीलियस का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तत्वों को अक्षर संकतों के रूप में चित्रित करना उनका सर्वश्रेष्ठ योगदान माना जायेगा।

बर्ज़ीलियस को बचपन से ही रसायन से बहुत लगाव था। उपसाला विश्वविद्यालय में उन्होंने आयुर्विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी जहाँ विज्ञान पाठ्यक्रम में तो उन्हें अच्छी योग्यता मिली परन्तु अन्य चिकित्सा विषयों में वे सामान्य या निम्न श्रेणी में रहे। बड़ी कठिनता से 1802 में वे आयुर्विज्ञान की डिग्री प्राप्त कर सके। तुरन्त ही स्टाकहोम में उनकी चिकित्सा, वनस्पति तथा भेषजी पढ़ाने के लिए सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति हो गई। परन्तु वे समय बचा कर रसायन में प्रयोग करते रहे। 1807 में उनकी प्रोफेसर के रूप में पदोन्नति हो गई और 1808 में उन्हें विज्ञान रॉयल अकादमी का सदस्य चुन लिया गया। 1808 में वे अकादमी के स्थाई सचिव नियुक्त हो गये। 1815 से 1832 तक स्टाकहोम स्थित केरोलीन चिकित्सा शल्य-संस्थान में बर्ज़ीलियस रसायन के प्रोफेसर पद पर आसीन रहे थे।

सर्वप्रथम बर्ज़ीलियस ने वैद्युतरसायन के क्षेत्र में शोधकार्य किया था। तत्पश्चात् 1810 से वैश्लेषिक रसायन में शोध के प्रकाशन आरम्भ किये। 1814 में इंगलैण्ड की शोध पत्रिका (Annals of Philosophy) में उनका लेख प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था– ''Essays on the Cause of Chemical Proportions, and Some Circumstances Relating to them together with a Short and Easy Method of Expressing them''.

इस लेख में बर्ज़ीलियस ने तत्वों तथा यौगिकों के वर्णन के लिये अक्षरों का उपयोग करने की सिफारिश की और उसकी विधि भी प्रस्तुत की थी।

बर्ज़ीलियस के अनुसार प्रत्येक तत्व के नाम का प्रथम अक्षर ही उसका प्रतीक होना चाहिये। यदि एक से अधिक तत्वों के नाम के प्रथम अक्षर समान हों तो उसके प्रथम तथा द्वितीय अक्षरों को संकेत के रूप में उपयोग किया जाय। यदि इससे भी काम न चले तो प्रथम अक्षर तथा पश्चात् प्रयुक्त प्रथम व्यंजन को जोड़ा जाय। यौगिकों के चित्रण के लिये उसने अन्य विधि रखी। उदाहरण के लिए जल को $2H + O$ के रूप में तथा कॉपर सल्फेट को $CuO + SO^3$ के रूप में प्रस्तुत किया गया था। ध्यान देने योग्य बात है कि उस काल में तत्वों को विभिन्न निराले चित्रों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था।

बर्ज़ीलियस के सिद्धान्त को उस समय लगभग उपेक्षित सा कर दिया गया था। आंशिक रूप से कुछ वैज्ञानिकों ने उसे धीरे-धीरे अपनाया। अधिकांश रसायनज्ञ अपने अपने तरीके चलाते रहे। उपेक्षा का मुख्य कारण रासायनिक सिद्धान्तों में उपस्थित अनिश्चितता ही थी। कालांतर में British Association for the Advancement of Science ने

1836 में बर्ज़ीलियस के सुझावों को अपना लिया और उसके पश्चात् सतत् उपयोग की संस्तुति की गई। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल तक यौगिकों के चित्रण में इसका चलन कम ही रहा। धीरे-धीरे यौगिकों के संकेत बनाते समय उसमें किसी उपस्थित तत्व के परमाणुओं की संख्या को अधोलिखित रूप में लिखने का व्यापक चलन हो गया। केवल फ्रांस में परमाणुओं की संख्या को ऊपरी स्थान पर बहुत काल तक लिखते रहे। शनैः शनैः बर्ज़ीलियस के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को विश्व भर में अपना लिया गया। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि बर्ज़ीलियस द्वारा दिये गये तत्वों के प्रतीक लगभग उसी रूप में आज भी प्रयुक्त होते हैं।

प्रतीकों के महत्वपूर्ण योगदान के अतिरिक्त बर्ज़ीलियस ने अनेक खोजें की थीं जिनका रासायनिक जगत पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। क्लेपरॉथ तथा हिसिंजर के सहयोग से उन्होंने अनेक तत्वों की खोज की जिनमें सीरियम, सेलीनियम, सिलिकन तथा थोरियम उल्लेखनीय हैं। समावयवता (Isomerism) तथा उत्प्रेरण (Catalysis) का उन्होंने गूढ़ अध्ययन किया था और ये नाम उन्हीं के दिये हुए हैं। अनेक तत्वों के परमाणु भारों को उन्होंने सूक्ष्मता के साथ निर्धारित किया था और 1828 में उन्होंने 49 तत्वों के परमाणु भार की सारणी प्रकाशित की। यदि हम उपस्थित कुछ सैद्धांतिक त्रुटियों को छोड़ दें तो उस सारणी में दिये परमाणु भार आज की सूक्ष्मतम विधियों द्वारा आंके गये परमाणु भारों के अति निकट दिखाई देंगे। उस काल के अपरिष्कृत उपकरणों द्वारा इतने सही परमाणु भार ज्ञात करना अत्यन्त प्रशंसनीय योगदान माना जाएगा।

बर्ज़ीलियस ने 1808 में रसायन पर पुस्तक प्रकाशित की थी जिसके अनेक संस्करण हाथों हाथ बिक गये। । पुस्तक इतनी उपयोगी थी कि उसका जर्मन तथा फ्रांसीसी भाषाओं में अनुवाद किया गया था। 1822 में उन्होंने Jahres Bericht नामक एक अनुसंधान पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था जिसमें उनके तथा अन्य विद्वानों के लेख छपते रहते थे।

यही नहीं, बर्ज़ीलियस ने डेसीकेटर, ऊष्मक, धावन बोतल , फिल्टर पेपर, रबड़ नली जैसे अति उपयोगी उपकरणों का निर्माण तथा प्रयोग आरम्भ किया था। रासायनिक क्षेत्र में बर्ज़ीलियस के योगदान चिरस्मरणीय रहेंगे।

– जोधपुर (राजस्थान)

(पृष्ठ 7 का शेष भाग)

हर एक पाँच हेक्टेयर सिंचाई में लायी गयी जमीन में से एक हेक्टेयर क्षेत्र लवणग्रस्त मृदा है। इसी प्रकार हमारे देश की हजारों मिलियन हेक्टेयर उपजाऊ जमीन की उत्पादकता घट गयी है। अनुमान है कि 36 प्रतिशत लवणग्रस्त मृदा सिंधु एवं गंगा नदियों के क्षेत्र में है, जहाँ से मुख्य रूप से हमें अनाज प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, हमारी अधिकांश फसलें जैसे धान, गेहूँ, मक्का, सोयाबीन इन मृदा में बढ़ते लवणों की मात्रा के प्रति अतिसंवेदनशील हैं। इसीलिए आशा करें कि कृषि जैव-प्रौद्योगिकी के इस क्षेत्र में होने वाले अनुसंधान और विकास से हमारे देश में ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य कृषिप्रधान देशों में भी बढ़ती जनसंख्या के अनुसार अनाज उत्पादकता की माँग पूरी होने में मदद मिलेगी।

– प्राध्यापक, कीर्ति महाविद्यालय
दादर, (प०) मुंबई-400027

बोतलबंद शीतल पेयों की बढ़ती खतरनाक परंपरा

विजय चितौरी

आजकल गर्मी के मौसम में बोतलबन्द शीतलपेयों की बहार है। शहर ही नहीं इनकी पहुँच अब कस्बे और गांवों तक हो गयी है। सबसे खतरनाक बात तो यह हो गयी है कि ये शीतल पेय अब आदमी के स्तर का पैमाना बनते जा रहे हैं। स्वागत-सत्कार की भारतीय परंपरा का तेजी से लोप हो रहा है और उसका स्थान ऐसी परंपरायें ले रही हैं जो न केवल हमारे स्वास्थ्य और अस्तित्व के लिये खतरनाक हैं वरन् राष्ट्रीय हित में भी नहीं हैं।

हमारे यहाँ फलों, सब्जियों और अन्य खाद्य पदार्थों की बहुतायत रही है। हर मौसम में अलग-अलग खाद्य। प्रकृति ने हर मौसम में जिन फलों या सब्जियों को पैदा किया है वे फल और सब्जियाँ मौसम के कुप्रभावों से बचाने के गुणों से युक्त होती हैं। गर्मियों का मौसम तकलीफदेह होता है लेकिन प्रकृति ने इससे बचने के लिये इस मौसम में एक से बढ़कर एक फल-फूल तैयार किया है जिसके सेवन से मौसम के कुप्रभाव तो दूर होंगे ही, आदमी का स्वास्थ्य और सौंदर्य भी बढ़ेगा। आम, बेल, फालसा, खरबूज, तरबूज आदि ऐसे ही नायाब फल हैं। इसके अलावा हमारे पूर्वजों ने अपने अनुभवों के आधार पर अनेक तरह के पेय तैयार करने की विधियां खोजी थीं जिनकी तुलना आज भी दुनिया का कोई पेय नहीं कर सकता। फालसा और बेल का शर्बत, आम का पना तथा ठंडाई आदि शीतल पेय के रूप में प्रयोग किये जाते रहे हैं। इनसे एक ओर जहाँ तुरन्त गर्मी से राहत मिलती है वहीं दूसरी ओर आवश्यक पोषण और कैलोरी की प्राप्ति होती है।

जैसे बेल के फल को ही लें। बेल के सौ ग्राम गूदे में 61 ग्राम पानी तथा 32 ग्राम कार्बोहाइड्रेट या शर्करा पायी आती है। इसके सौ ग्राम गूदे में 131 कैलोरी ऊर्जा मिलती है। साथ में कैरोटिन, थायमिन, नियासिन और रिबोफ्लेविन विटामिन आदि भी पाए जाते हैं। फालसे का शर्बत भी गुणों की खान है। इससे शरीर को तरावट मिलती है, हड्डियाँ और दांत मजबूत होते हैं। इसके उपयोग से लू लगने का भय जाता रहता है। फालसा में मैग्नीशियम होता है जो दिल के रोगों में फायदेमन्द है। सौ ग्राम फालसा से प्रायः 92 कैलोरी ऊर्जा भी मिलती है।

नींबू का शर्बत चीनी, खांड, राब या किसी भी मीठे पदार्थ से बनाया जा सकता है, हमारे घरों में अतिथियों के स्वागत के लिये इस तरह के शर्बत पेश करने की आज भी परंपरा है। शहद का शर्बत आम बात तो नहीं है लेकिन इसे आम प्रचलन में लाया जा सकता है। एक गिलास ठंडा पानी लेकर उसमें दो चम्मच शहद मिलाने से पौष्टिक, विटामिन युक्त शर्बत तैयार हो जाता है जिसके पीने से तुरन्त ऊर्जा मिलती है। क्योंकि शहद में प्री-डाइजेस्टेड (पूर्व पचित) शर्करा रहती है जिसे पचाने के लिये पाचन संस्थान को मेहनत नहीं करनी पड़ती।

गर्मी में होने वाले फलों के राजा आम के गुणों से कौन परिचित नहीं है। आम केवल स्वादिष्ट फल ही नहीं अपितु ओषधि भी है। कच्चे आम को भूनकर फिर इसके गूदे को पना बनाकर पीना गाँव में एक परंपरा रही है। यह पेय लू की रामबाण दवा मानी गई है। पका फल कार्बोहाइड्रेट और विटामिनों का खजाना है। बाजारों में लस्सी और गन्ने का रस आज भी लोकप्रिय है। अनेक दुकानों पर ये चीजें बिकती हैं। लेकिन शीतल पेयों के जबरदस्त हमले में ये चीजें भी ज्यादा दिन टिक पाएँगी, इसमें शंका है। बाजारों में बिकने वाली ठंडाई का रिवाज भी कम हो रहा है। ठंडाई वास्तव में कई चीजों, जैसे गुलाब का फूल,

खरबूजे का बीज, सौंफ आदि का मिश्रण होता है जिन्हें घोंट-पीसकर फिर शर्बत बनाकर पिया जाता है। लेकिन 'रेडीमेड फूड' के जमाने में अब लोग यह सब झंझट वाला काम समझने लगे हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में ग्रामीण लोग सत्तू का उपयोग प्राचीन काल से कर रहे हैं। चने और जौ को भूनकर बनाया गया यह सत्तू बहुत ही स्वादिष्ट और शीघ्र ही पचने वाला 'रेडीमेड फूड' है। बिहार में गर्मियों में लोग सत्तू को घोलकर उसमें थोड़ा नमक डालकर वैसे ही पीते हैं जैसे दूध पिया जाता है। सत्तू का यह गर्मी के लिये अत्यन्त हितकर है और पूरे दिन भर शरीर में तरावट रखता है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि गर्मीनाशक विविध फलों एवं पेय पदार्थों वाले इस देश में आज ऐसे बोतल-बन्द पेय तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं जिससे शरीर को फायदा तो कुछ नहीं होता, उल्टे हानि ही होती है। यही नहीं, हमारी मेहनत की कमाई भी विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तिजोरी में सिमटती जा रही है। आइये देखें ये बोतलबंद पेय हैं क्या ?

बोतलबंद पेयों का चलन पश्चिम के देशों से शुरू हुआ। वहाँ इस तरह के खाद्य पदार्थों की आवश्यकता भी थी। बोतलबंद फलों के जूस के अलावा वहाँ कार्बोहाइड्रेट वाटर या 'कोल्ड ड्रिंक्स' ज्यादा लोकप्रिय हुए। इन्हें 'सोडा वाटर' भी कहते हैं। सोडावाटर की खोज प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रीस्टले ने की थी। यह अधिक दाब पर जल में कार्बन डाइ-ऑक्साइड को घोलकर बनाया जाता है। बाद में इस पेय में कृत्रिम मीठे और तरह-तरह की सुंगध डालकर अनेक ब्रांड नामों के पेय बनाये गए। इनका विशेष स्वाद शुरू में कुछ अजीब जरूर लगता है लेकिन शीघ्र ही यह जीभ को ऐसा पसंद आ जाता है कि लोग इसे चाव से पीने लगते हैं। पश्चिम से शुरू हुए इस तरह के शीतल पेयों की पहुँच आज पूरी दुनियां में हो चुकी है। अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ पानी में कार्बनडाइऑक्साइड को घोलकर और कृत्रिम मीठा और सुगंध मिलाकर सारी दुनिया को लूटकर मालामाल हो रही हैं। इस तरह की कंपनियों में ''कोका कोला'' और ''पेप्सी कोला'' प्रमुख हैं। ''कोका कोला'' को तो 1977 में निकाल दिया गया गया था किन्तु बाद में अपनी तिकड़म के बल पर ''कोका कोला'' ही नहीं ''पेप्सी'' भी देश में प्रवेश कर गयी। आज ये दोनों कंपनियाँ न केवल खुले आम देश को लूट रही हैं वरन् यहाँ की समृद्ध खान-पान परंपरा को भी तहस-नहस किए जा रही हैं।

शीतल पेय किसी भी दृष्टि से मानव स्वास्थ्य के लिये उपयोगी नहीं हैं। कुछ वर्षों पूर्व ही अपने देश के शीतल पेयों में बी० वी० ओ० (B. V. O.) नामक पदार्थ मिले होने या न होने पर बड़ा बवाल मचा था। इस सम्बन्ध में पेप्सी और अन्य शीतल पेय निर्माता कंपनियों ने एक दूसरे पर दोषारोपण किया था। बी० वी० ओ० में ब्रोमिन (क्लोरीन की तरह का जहरीला तत्व) मिला होता है। जापान, केन्या, ब्रिटेन तथा स्वीडेन सहित विश्व के 129 देशों में बी० वी० ओ० के प्रयोग पर पाबन्दी है। परीक्षणों में पाया गया कि बी० वी० ओ० के सेवन से पाचन तंत्र, हृदय रोग, प्रजनन शक्ति व याददाश्त कमजोर हो सकती है। यही नहीं, इससे कैंसर का भी खतरा बढ़ जाता है। भारत में 1 पी० पी० एम० (p. p. m.) तक बी० वी० ओ० की मिलावट की छूट दी गई है। ऐसा इस आधार पर किया गया है कि कार्बोनेटेड और साइट्रस की महक वाले शीतल पेयों में बी० वी० ओ० मिलाने से पेय में प्रयुक्त तेल और पानी आपस में अच्छी तरह मिल जाते हैं।

कृत्रिम रंग और कृत्रिम मिठास की खोज ने तो शीतल पेयों की दुनियाँ में तहलका मचा दिया। फलों के जूस का कारोबार मँहगा पड़ने लगा फलतः इस क्षेत्र में लगी कम्पनियों ने मानव स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए कार्बोनेटेड जल में कृत्रिम मिठास और फलों की कृत्रिम खुशबू डालकर असली फलों जैसा जूस तैयार कर दिया। वैज्ञानिक परीक्षणों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि सभी कृत्रिम रंग स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। अनेक तो ऐसे हैं जिनसे कैंसर जैसी बीमारियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। आजकल शीतल पेयों में कृत्रिम मिठास के रूप में सैक्रीन का उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है जबकि सैक्रीन भी संदेह के घेरे वाला पदार्थ है। सैक्रीन में कुछ ऐसे तत्व पाये गए हैं जिनसे कैंसर हो सकता है। अमेरिका में सैक्रीन युक्त खाद्य पदार्थों के लेबल पर

सैक्रीन की उपस्थिति सम्बन्धी सूचना लिखना जरूरी है लेकिन हमारे देश में किसी भी शीतल पेय की बोतल पर न तो कृत्रिम मीठे का नाम लिखा मिलता है और न यह जानकारी ही मिलती है कि पेय कब भरा गया तथा यह कब तक प्रयुक्त हो सकता है। आज दवाओं के क्षेत्र में दवा के निर्माण और प्रयोग की अवधि सम्बन्धी सूचना अनिवार्य रूप से लिखी जाती है। फिर यही नियम शीतल पेयों पर क्यों नहीं लागू हो रहा है ? आश्चर्य का विषय है क्योंकि जनस्वास्थ्य की दृष्टि में शीतल पेयों पर ये सूचनाएं लिखना ज्यादा जरूरी है।

शीतल पेयों में हानिकारक अम्लों की भरमार रहती है जिससे पाचन क्रिया में गड़बड़ी आ जाती है। फॉस्फोरिक एसिड अति आवश्यक पोषणतत्व को ग्रहण कर लेता है। ऐसी स्थिति में शरीर में कैल्सियम-फॉसफोरस का संतुलन गड़बड़ा जाता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार देखा गया है कि प्रति गिलास शीतल पेय में औसतन डेढ़ दो चम्मच चीनी होती है, विशेषज्ञों के मुताबिक अधिक मात्रा में और बार-बार शीतल पेय लेने वालों के दाँतों के लिये यह चीनी हानिकारक हो सकती है, क्योंकि चीनी की उपस्थिति से जीवाणुओं को क्रिया के फलस्वरूप एक तरह का अम्ल उत्पन्न होता है जिससे दांत घुलने लगते हैं। अमेरिका की एक प्रयोगशाला में शीतल पेय कोकाकोला पर अनेक प्रयोग किए गए। एक प्रयोग में देखा गया कि कोकाकोला में मानव दाँत को दो दिनों तक रखने पर दाँतों की ऊपरी चमकीली चिकनी परत घुल गयी।

आजकल के चमत्कारी विज्ञापन अब व्यवसाय के अभिन्न अंग बन चुके हैं। विज्ञापनों की बदौलत खराब से खराब और सड़ी गली चीज भी आसानी से उपभोक्ताओं के घर भेजी जा सकती हैं और उनसे मनचाही रकम वसूली जा सकती है। खाद्य पदार्थों सम्बन्धी विज्ञापनों की आज यही स्थिति है। विज्ञापन के बल पर देशी-विदेशी कंपनियों ने केवल शीतल पेयों ही नहीं खाद्य पदार्थों की अनगिनत किस्मों से पूरे बाजार को पाट दिया है। रंग-बिरंगे और आकर्षक पैकिंग करने वाले ये खाद्य पदार्थ कितने हानिकारक हैं इस सम्बन्ध में तो उपभोक्ता जानता नहीं। वह तो दूरदर्शन के पर्दे पर बड़े-बड़े अभिनेता-अभिनेत्रियों द्वारा प्रस्तुत विज्ञापन के झांसे में आकर उसका गुलाम बन जाता है। इस तरह अनजाने में ही वह परंपरागत लेकिन अत्यन्त उपयोगी खाद्य पदार्थों से लागातार कटता जा रहा है।

– घूरपुर,-इलाहाबाद-212110

(पृष्ठ 30 का शेषांश)

पश्चिमी देशों में 'स्मार्ट' या समझदार टी-शर्ट भी बनने-बिकने लगी है। इन्हें आधुनिक 'फाइबर ऑप्टिक्स' (आजकल इनका इस्तेमाल टेलीफोन के सिग्नल भेजने के लिए किया जाता है) और अपने में बिजली प्रवाहित करने योग्य धागों के मेल से बनाया जाता है। टी-शर्ट में पेजर के आकार का एक छोटा-सा प्रॉसेसर लगा होता है, जो प्राप्त होने वाली जानकारी को लगातार एकत्र करता रहता है। इस जानकारी को डिजिटल रूप में बदलकर उपग्रह तक पहुँचाया जाता है, जो इसे उपभोक्ता तक पहुंचा देता है। इस करामाती टी-शर्ट के जरिये ही इंटरनेट से संपर्क साध सकते हैं। दूसरी ओर यदि मालिक ने अपने नौकर को यह टी-शर्ट पहना रखी है तो वह अपने कम्प्यूटर के जरिये नौकर पर लगातार निगाह रख सकता है। अमेरिका के प्रसिद्ध मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में धोने-पहनने लायक कम्प्यूटर बनाने की परियोजना पर जोर-शोर से काम जारी है। इसके तहत कम्प्यूटर आपकी शर्ट के रूप में बुन दिया जाएगा। इस कपड़े को 'सिल्वर क्लॉथ' का नाम दिया गया है। इस शर्टनुमा कम्प्यूटर में शर्ट का मुख्य हिस्सा की- बोर्ड का काम करेगा, जबकि कॉलर स्पीकर बन जाएंगे। जेबों में छोटी-छोटी डिस्क ड्राइव रखी होगी। बस खतरा यही होगा कि बस में चढ़ते-उतरते कहीं कोई आपके कम्प्यूटर के साथ छेड़छाड़ न कर दे।

--('सम्प्रेषण' फीचर सेवा से साभार)

पर्यावरण संरक्षण

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

पिछले 50 वर्षों में जो तथ्य उभर कर हमारे सामने आये हैं, वह चौंकाने वाले हैं। विश्व की लकड़ी की खपत दुगनी, पानी के इस्तेमाल की तिगुनी और जीवाश्म ईंधन की खपत चौगुनी हो गई है। एक अनुमान के अनुसार संसार की समस्त प्रजातियों का 30 प्रतिशत विलुप्त हो चुका है। अधिकतर पर्यावरण विज्ञानी एकमत हैं कि ''हरित पौध गृह प्रभाव'' (ग्रीन हाउस इफेक्ट) कल्पना नहीं, वास्तविकता है और स्थिति और भी खराब होगी यह निश्चित है। पर्यावरण जटिल प्रणाली है। पर्यावरण में मानव और सभी नैसर्गिक घटक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं और इसी प्रकार धरती नामक इस ग्रह को टिकाऊ और पर्यावरण-मित्र बनाने के लिए खोजे जा रहे तरीके भी बहुत से हैं। प्राकृतिक सम्पदाओं का संरक्षण विश्वव्यापी चुनौती है। इसलिए सुरक्षित भविष्य के लिए नयी युद्ध योजनायें ढूँढ़ना समय की पुकार है। अतएव विश्व में ''पर्यावरण : परिदृश्य और मौसम'' से सम्बन्धित आज यदि अनेक परियोजनायें चल रही हैं तो इसमें आश्चर्य क्या ? फिर चाहे यूगाण्डा में पर्वतीय गोरिल्लों के निवास की बात हो, या फिर लाओस में वनीकरण की योजना अथवा कोलम्बिया में शीशे के पुनर्चक्रण की परियोजना। सभी का उद्देश्य प्रकृति की सम्पदा की अपूरणीय क्षति को कम करना और जैव-विविधता का संरक्षण है। आज यदि हम जंगलों, गाँवों और शहरों का भ्रमण करें तो निश्चित रूप से इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि मनुष्य ही पर्यावरण के लिए उत्तरदायी है। और संभवतः ''पर्यावरण दिवस'' मनाने का उद्देश्य भी यही है कि हम अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रहें।

प्राकृतिक सम्पदा के मामले में प्रकृति अपने देश भारत के ऊपर बहुत कृपालु रही है। 'वर्ल्ड कंजरवेशन मॉनिटॅरिंग सेन्टर' (WCMC) के अनुसार भारत के 3,287,263 वर्ग किलोमीटर भू-क्षेत्र में 3,560 स्तनपायियों, 1,224 पक्षियों, 450 सरीसृपों, 197 उभयचर जीवों, 197 मछलियों और 15,000 पुष्पी पादपों की प्रजातियाँ निवास करती हैं। इसके साथ ही कीटों के अन्य रीढ़विहीन प्राणी भी जैव-विविधता में शामिल हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषकों को सिंचाई के लिए मुख्य रूप से वर्षा पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यह वर्षा कभी समय से नहीं आती। कभी समय से पहले, तो कभी बाद में आती है। इसका कारण है जंगलों का काटना। अतएव कृषकों को यह बात समझानी होगी कि जंगल मानसून को संतुलित करते हैं। जंगल धरती को उर्वरा शक्ति प्रदान करते हैं और जलवायु को संतुलित रखते हैं। जंगल नदियों को जल से परिपूर्ण रखते हैं और साथ ही तटबंध भी बनाते हैं। समुद्रतट भी जंगलों से ही सुरक्षित रहते हैं। स्मरण रहे कि जंगल बनते तो लाखों वर्षों में हैं और नष्ट एक दिन में हो सकते हैं। बाघ, हाथी और अन्य वन्यप्राणियों और वनस्पतियों के आवास होने के कारण वन जैव-विविधता को भी सुरक्षित रखते हैं।

1970 के दशक में भारत में 'संरक्षण अभियान' 'बाघ परियोजना' बड़े जोर-शोर से प्रारम्भ हुई। वास्तव में बाघ तो प्रतीक मात्र है, बाघ बचाने का अर्थ है वनों को उनकी जैव-विविधता के साथ बचाना। संरक्षण की दिशा में बड़ी सफलता अभी भी मीलों दूर है।

वर्षों पूर्व ''साइलेंट स्प्रिंग'' (Silent Spring) नाम से रोशेल कार्सन (Rochel Carson) की पर्यावरण से सम्बन्धित ऐतिहासिक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में कीटनाशियों के दूरगामी परिणामों के प्रति चेतावनी दी हुई थी, किन्तु भारत सरकार का स्वास्थ्य विभाग अभी भी डी डी टी (D D T) के इस्तेमाल के प्रति सावधान नहीं है। और तो और, अंतःस्रावी ग्रन्थियों को हानि पहुँचाने वाले ऑर्गेनोक्लोरीन और ऑर्गेनोफॉस्फेट जैसे रसायनों का उपयोग कम करने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। हमारे वैज्ञानिक ज्ञान और उसके उपयोग में यह कैसा विरोधाभास है ? कैसी विडम्बना है ?

किन्तु संतोष की बात है कि हमारी बड़ी-बड़ी वैज्ञानिक संस्थायें इस दिशा में जाग्रत हैं। वैसे यह दूसरी बात है कि जितनी सफलता अब तक मिल जानी चाहिए थी वह अभी मिलनी शेष है।

पर्यावरण संरक्षण की अंतर्राष्ट्रीय संस्था

इण्टरनेशनल यूनियन फॉर द कंजरवेशन ऑव नेचर (IUCN) का जन्म 1948 में हुआ था। आज यह विश्व का सबसे पुराना और सबसे बड़ा संगठन है। इसमें 181 देशों के 10,000 वैज्ञानिक और विशेषज्ञ, 700 से अधिक गैर सरकारी संगठन और 111 सरकारी एजेन्सियाँ कार्यरत हैं।

इस संस्था का कार्य विश्वस्तर पर प्रकृति और प्राकृतिक सम्पदाओं की जाँच-परख, नियंत्रण, बिगड़ते पर्यावरण की रोकथाम के प्रति कटिबद्धता है। इस संस्था ने 50 से अधिक देशों की पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित नीतियों के निर्धारण में सहायता की है।

संस्था ने विभिन्न कमीशन बना रखे हैं जो संरक्षण से सम्बन्धित मामलों की देखभाल करते हैं। उदाहरण के लिए स्पीशीज़ सरवाइवल कमीशन (SSC)जैव-विविधता अर्थात् वन्य जीवों, वनस्पतियों आदि पर शोध करके संकटापन्न प्रजातियों को बचाने के उपाय सुझाता है। इनवायर्नमेंटल इकोनामिक एण्ड सोशल पॉलिसी कमीशन (CEESP) प्राकृतिक सम्पदा और जैव-विविधता का आर्थिक-सामाजिक पक्ष देखता है, कमीशन ऑन इकोसिस्टम मैनेजमेंट (CEM) पारिस्थितिक तंत्रों के प्रबंधन से सम्बन्धित है। कमीशन ऑन एजूकेशन एण्ड कम्युनिकेशन (CEC) पर्यावरणीय शिक्षा से सम्बन्धित है, कमीशन ऑन एनवायरॉनमेंटल लॉ (CEL) कानून से सम्बन्धित है। इसी प्रकार और भी कमीशन हैं जो संरक्षण से सम्बन्धित अलग-अलग पक्षों की देखभाल के लिए बनाये गए हैं।

पारिस्थितिक तंत्रों पर विषैले रसायनों के प्रभावों की जाँच-परख और नियंत्रण (Monitoring) के लिए भारत में मुम्बई स्थित वैज्ञानिक संस्था ''सालिम अली सेंटर फॉर ऑरिन्थॉलोजी एण्ड नेचुरल हिस्ट्री'' (Salim Ali Centre for Orinthology and Natural History–SACON) हाल ही में सक्रिय हुई है। यहाँ के वैज्ञानिक संकटापन्न प्रजातियों और ख़तरे से घिरे क्षेत्रों से सम्बन्धित परियोजनायें तैयार कर रहे हैं। गैर सरकारी संगठन डब्ल्यू डब्ल्यू एफ - इण्डिया (WWF - India) बाघ संरक्षण परियोजना पर अपनी पकड़ और मज़बूत करने के साथ ही साथ संरक्षण की युद्धस्तर पर तैयारी कर रही है। समूचे भारत के पर्यावरणविद् न केवल आवाज़ उठा रहे हैं वरन् ख़तरे भी उठा रहे हैं। इस अभियान में कुछेक सरकारी तंत्र के लोग भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह शुभ लक्षण है, किन्तु हरित पौध गृह प्रभाव, ओज़ोन परत क्षय, धरती के बढ़ते ताप जैसी विश्वव्यापी समस्याओं से जूझने और नियंत्रण के लिए विश्व-स्तर के सहयोग की अपेक्षा है।

आज यह किसी से छिपा नहीं है कि गढ़वाल के हिमालय क्षेत्र में गंगोत्री हिमनदी प्रतिवर्ष एक किलोमीटर की दर से पीछे हट रही है और चक्रवात जल्दी-जल्दी आ रहे हैं। इस समस्या से निपटने के लिए भी वैज्ञानिकों, पर्यावरण कार्यकर्ताओं और विभिन्न देशों की सरकारों की भूमिका महत्वपूर्ण होगी। इस दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित अंतर्राष्ट्रीय संस्था-''इण्टरनेशनल यूनियन फॉर द कंजरवेशन ऑव नेचर'' (International Union for the Conservation of Nature -IUCN) के माध्यम से भारत अपनी भूमिका का निर्वहन सुचारु रूप से कर सकता है। ऐसे समय में ''आई यू सी एन,'' अत्यन्त प्रभावी होगा जबकि ''विश्व व्यापार संगठन'' (World Trade Organisation- WTO) हमारी नष्ट होती प्राकृतिक सम्पदा के प्रति उदासीन है।

अतएव अब एकजुट होकर हमें न केवल बिगड़ते पर्यावरण के प्रति चिंता व्यक्त करनी है, वरन् संरक्षण के उपायों को ढूँढना और उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करना होगा। इसी में हमारा हित है और हमारे लिए यही श्रेयस्कर है।

– पूर्व संपादक 'विज्ञान'

खनिज भंडारण और वैज्ञानिक खोज

डॉ० अतुल आदित्य पाण्डेय

आदिकाल से ही मानवजाति को खनिज के भंडारों को तलाशने में दिलचस्पी रही है। यों तो धातुओं के निष्कर्ष तथा उनकी उपयोगिता पुराने ग्रंथों में भी लिखित पायी जाती है लेकिन इनकी खोज के किसी संघटित प्रयासों की चर्चा कम पढ़ने-सुनने को मिलती है। फिर भी यह तो माना ही जाता है कि प्राचीन युग में भी खनिज भण्डारों की खोज के लिए हमारे पुरखों के पास भी कुछ न कुछ साधन अवश्य ही उपलब्ध थे।

आज किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में खनिजों पर आधारित उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतवर्ष में संघटित रूप से खनिजों की खोज का कार्य 1851 में भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण की स्थापना के साथ शुरू हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धातुओं तथा अयस्कों की खपत बढ़ने लगी और इनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वैज्ञानिक खोज को प्रोत्साहित करना जरूरी हो गया। हमारा देश कई प्रकार के खनिजों से परिपूर्ण है और वार्षिक रूप से करीब 50 से अधिक महत्वपूर्ण खनिजों का उत्पादन करता है।

खनिज भंडार के वैज्ञानिक खोज को हम दो प्रकार के क्रिया-कलापों में विभक्त कर सकते हैं। पहला है पूर्वेक्षण जिसमें हम उपयुक्त खनिजों के लक्ष्य का चुनाव करते हैं तथा दूसरा है अन्वेक्षण जिससे हम निर्धारित लक्ष्य को साबित करते हैं। परन्तु इन दोनों प्रक्रियाओं के पहले यह जरूरी है कि हम खनिज-बहुल क्षेत्रों का निर्धारण करें। इसके लिए पहला कदम है क्षेत्र विशेष की भूवैज्ञानिक जानकारियों को इकट्ठा करना। इस तरह की जानकारी भू-वैज्ञानिक विवरण, संस्मरण, रपट या रिपोर्ट के रूप में मिल सकती है। क्षेत्रों के नक्शे या मानचित्र भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण या अन्य खान एवं भूतत्व विभाग या फिर निजी संस्थानों के द्वारा भी समय-समय पर प्रकाशित किए जाते हैं। जिला स्तर के राजस्व विभाग के पास भी आँकड़े उपलब्ध रहते हैं जिसे जिला कमिश्नरी से प्राप्त किया जा सकता है। आँकड़ों से वैज्ञानिकों को क्षेत्र विशेष की स्थलाकृति, भूवैज्ञानिक आँकडे तथा साथ ही साथ इलाके का मौसम, जनजीवन इत्यादि की जानकारी भी प्राप्त हो जाती है।

इस प्रक्रिया के बाद भू-वैज्ञानिकों को क्षेत्रीय परीक्षण के लिए उस स्थान पर जाना होता है जहाँ के आँकड़े इकट्ठे किए गए हैं। क्षेत्रों में जा कर सबसे पहले एक आवीक्षण की आवश्यकता होती है जिसमें चट्टानों के अनावरण को देखना प्रमुख कार्य है। इस कार्य के पश्चात् एक भूवैज्ञानिक को खनिजों के संभावित भंडारण की प्रारंभिक जानकारी तो जरूर ही मिल जाती है।

इसके बाद खनिजों की खोज के क्रम में क्षेत्र का प्रत्यक्ष प्रमाण देखा जाना चाहिए। नदियों के बहाव से चट्टानों का टूटना-फूटना जारी रहता है जो अंततः विमुलक अयस्क के रूप में नदियों के तल में इकट्ठे हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में हर संभव यह प्रयास किया जाना चाहिए कि आखिर उन अयस्कों का वास्तविक स्रोत क्या है ? यह नदियों की धारा के विपरीत दिशा में माला रेखा से प्राप्त किया जा सकता है। सोना और लोहा के कई खनिज भंडारों को इसी विधि से खोजा गया है जिसमें कर्नाटक के बेलारी क्षेत्र के लोहा का भंडार भी शामिल है।

क्षेत्रों की स्थलाकृतियों से भी खनिजों के विषय में जानकारी प्राप्त हो जाती है। राजस्थान के खेत्री तांबा पट्टी में लोहे के विषय में इस विधि से ही जानकारी मिल पायी। चूना पत्थर तथा डोलोमाइट वाले इलाके सपाट स्थलाकृति को जन्म देते हैं। आंध्र प्रदेश के कलाडगी तथा कडप्पा की चट्टानों में इस तरह की स्थलाकृतियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं।

परतदार चट्टानों में खनिजों का उनके स्तर विन्यास से पता किया जाता है। लोहा के खनिज अक्सर ही मैंगनीज के साथ पट्टी के रूप में पाए जाते हैं।

शैल लक्षणों के द्वारा भी कई बार खनिजों के विषय में पता किया गया है। वैज्ञानिक विधि से अब यह स्पष्ट हो चुका है कि कुछ खास खनिजों का विशेष चट्टानों से ही सम्बन्ध होता है। क्रोमाइट तथा प्लैटिनम अत्यंत सिलिसिक चट्टानों के साथ ही पाए जाते हैं। उसी तरह चांदी के खनिज चूना-पत्थर के साथ तथा हीरा केवल किम्बरलाइट के साथ और अभ्रक पेगमाटाइट के साथ ही पाया जाता है।

कई बार खनिजों के भंडारण का पता करने के लिए काफी बड़े क्षेत्रों का सर्वेक्षण करना पड़ता है जिसमें आज वायव-फोटोग्राफी का महत्वपूर्ण स्थान है। इस कार्य में हवाईजहाज तथा उपग्रहों में लगे कैमरे पृथ्वी की सतहों के फोटो खींचते हैं जिससे भूवैज्ञानिक निर्माण रचना को पहचानने में काफी सहायता मिलती है। इस विधि से कम समय में मानचित्र तैयार किया जाता है। वायव फोटोग्राफी वाले मानचित्रों खनिजों का सीधा-सीधा अन्वेषण तो नहीं हो पाता लेकिन काफी बड़े क्षेत्र का काफी कम समय में मानचित्र तैयार किया जाता है। वायव फोटोग्राफी वाले मानचित्रों को भारतीय वैज्ञानिक भूसर्वेक्षण, राष्ट्रीय भूवैज्ञानिक शोध संस्थान तथा भारतीय रिमोट सेन्सिंग एजेन्सी से प्राप्त किया जा सकता है। भारतवर्ष के विशाल पूर्वी तट पर बॉक्साइट के भंडारण को निर्धारित करने में वायव फोटोग्राफी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिमालय जैसे अगम्य स्थानों के लिए ऐसे सर्वेक्षण काफी लाभप्रद हो सकते हैं।

भू-रासायनिक नमूनों के मानचित्रण का कार्य भी खनिजों के भंडारों के विषय में जानकारी देने में सक्षम है। सबसे पहले क्षेत्र विशेष की मिट्टी, जल तथा पत्थर के टुकड़ों के वैज्ञानिक तरीके से नमूने इकट्ठा किये जाते हैं, और उनके रासायनिक गुणों की जानकारी प्राप्त की जाती है। यूरेनियम, जस्ता तथा तांबा के कई खनिज भंडारों को इसी विधि से जाना जा सका है।

भू-वानस्पतिक सर्वेक्षण से भी खनिजों के भंडारण का पता चलता है। भू-वानस्पतिक मानचित्र तैयार करने के दौरान करीब 5 वर्ग किमी० का क्षेत्र चुना जाता है। उस क्षेत्र में पाए जाने वाले दुर्लभ प्रजाति के पौधों के विषय में जानकारी मिलने के पश्चात् आँकड़े प्राप्त किए जाते हैं। तांबा, जस्ता, मैंगनीज, निकल, फास्फोरस, चांदी इत्यादि खास-खास पौधों के लिए काफी लाभदायक होते हैं और उनके विकास को समृद्ध करते हैं।

भू-भौतिक सर्वेक्षण पृथ्वी की सतहों में छिपे खनिजों के भौतिकीय गुणों पर आधारित है। गुरुत्व विधि से क्षेत्रों की गुरुत्व असंगति को निर्धारित किया जाता है। अधिक घनत्व वाली जगहों पर उपकरणों में विक्षेप दिखाई देता है जिससे यह पता चल पाता है कि नीचे स्थूल सल्फाइड अयस्क, लोहे के अयस्क इत्यादि हो सकते हैं। इस विधि में ग्रैवीमीटर का इस्तेमाल किया जाता है। चुम्बकीय विधि में चट्टानों के चुम्बकीय गुणों को परखा जाता है। लोहे के एक प्रमुख अयस्क मैगनेटाइट के भंडारण वाले इलाकों की खोज के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त विधि है।

विद्युत् विधि खनिजों के लिये सर्वाधिक उपयोगी है। इस विधि में खनिजों में व्याप्त विद्युत ऊर्जा को मापा जाता है। अलग-अलग चट्टानों की प्रतिरोधक क्षमता भिन्न-भिन्न होती है जिससे खास खनिजों के भंडारण का पता किया जा सकता है। खनिज भंडारण के विषय में जानकारी के लिए कृत्रिम भूकम्पों के जरिये तरंगों को पैदा किया जाता है। परावर्तन के आधार पर सतह के नीचे के पदार्थों के गुणों का पता किया जाता है। वैज्ञानिक पक्ष के अलावा खनिजों की खोज करते वक्त कुछ अन्य बातों पर भी ध्यान दिया जाना आवश्यक है जैसे

- विक्रेय खनिज उत्पादों की उचित मात्रा में उपस्थिति
- स्थानीय मांगों की सुलभता
- नए उद्योगों को विकसित करने की आवश्यकता
- बाजारों की निकटता
- यातायात के साधनों की उपलब्धता।

आज खनिज के भंडारण की खोज एक व्यावसायिक क्रिया बन चुकी है जिसके लिए विशेष दक्षता की आवश्यकता है।

– व्याख्याता, भूविज्ञान विभाग,
साइंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना

एक और कारगिल

संजीव मिश्रा

दुश्मन ने कारगिल से भी सबक नहीं सीखा था। वह फिर चोरी छिपे एक नये हमले की तैयारी में लगा हुआ था, लेकिन इस बार हमारा खुफिया विभाग बेसुध नहीं था। सीमा पर चल रही गतिविधियों की हमें पल-पल की जानकारी मिल रही थी।

अभी जाड़े का मौसम आने में कुछ समय बाकी था, और इससे पहले कि सक्रिय घाटियाँ बर्फ से आच्छादित हो जायें, दुश्मन अपनी घुसपैठ बना लेना चाहता था, इसी कारण दुश्मन के सैनिकों का भारी जमाव नियंत्रण रेखा के पास हो रहा था। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुये गोरखा रेजिमेन्ट के ब्रिगेडियर बिजेन्द्र थापा ने हाट लाईन पर इसकी जानकारी रक्षा मंत्री को देना उचित समझा-

''सर मैं ब्रिगेडियर थापा ....''

''हा, थापा बोलो क्या समाचार है ? सब ठीक तो है ?'' ''यस सर, सब कुछ ठीक है, लेकिन सर नियंत्रण रेखा पर फिर से सैनिकों का जमाव हो रहा है'' ब्रिगेडियर ने उत्तेजित होते हुये कहा-

''तो फिर आपकी क्या स्ट्रेटजी है ?'' रक्षामंत्री ने बेलौस सवाल किया।

''हमला सर, हमला बस यही एक रास्ता है। क्योंकि यदि बर्फ जमने से पहले हमने उनको हटाया नहीं तो उनको हटा पाना अत्यंत कठिन हो जायेगा, फिर जो युद्ध होगा उसमें भयंकर रक्तपात होगा और फिर कारगिल ने जो हमें सबक सिखाया हमें नहीं भूलना चाहिये, इसलिये सर हमें परमिशन दीजिये कि हम दुश्मन पर हमला कर सकें।'' यह कहते हुये ब्रिग्रेडियर थापा भावावेश में आ गया था। ''ओ० के० थापा, चौकसी बनाये रखो और मेरे जवाब का इन्तजार करो।'', और लाइन बन्द हो गयी।

× × ×

भारत के रक्षा विभाग के कार्यालय के एक महत्वपूर्ण गोपनीय बैठक चल रही थी जिसमें दुश्मन द्वारा भारत पर दुबारा हमले की स्थिति को देखते हुये वैज्ञानिक, रक्षाविद् और गुप्तचर सेवा के उच्च अधिकारी आपसी विचार-विमर्श में तल्लीन थे।

''हमें तत्काल हमला कर देना चाहिये सर, हम इस बार दुश्मन को ऐसे कुचल डालेंगे कि वह दुबारा फन उठाने के काबिल ही नहीं रहेगा, बल्कि हमें तो यह परमिशन चाहिये कि हम कारगिल से करांची तक पहुँच कर वहाँ भारत का झण्डा लहरा सकें, हमारे सैनिक तैयार हैं और हमारी तोपें आग के गोले उगलने को तत्पर ....।'' यह कहते हुये थल सेनाध्यक्ष शशांक सेन का चेहरा गुस्से से लाल हो गया था। इस सुझाव पर सेना के अन्य कमाण्डरों ने अपनी सहमति जतायी।

प्रधानमंत्री जी बहुत ही तन्मयता से चल रही सभी कार्यवाही को देख-सुन रहे थे।

अब बोलने की बारी उनकी थी। अपनी चिर-परिचित गम्भीर आवाज में कहना शुरू किया-

''आप सभी की बातें मैंने सुनीं। आज हम एक और कारगिल की विभीषिका झेलने जा रहे हैं, अब दुश्मन की नादानी को मैं क्या कहूँ। काश ! उसने कारगिल के भयंकर रक्तपात से सबक लिया होता। मैं रक्तपात से देश की मिट्टी को रंगना नहीं चाहता। भारत हमेशा से अहिंसा का पुजारी रहा है, क्या ऐसा कोई तरीका नहीं हो सकता कि बिना रक्तपात के ही दुश्मन पर विजय प्राप्त की जा सके ? क्योंकि अगर इस बार युद्ध हुआ तो फिर से लाखों औरतें विधवा होंगी कितनी बहनों की राखियाँ जलेंगी और कितने बच्चे अपने बचपन को खो देंगें और फिर ये विजय हमें काफी महंगी पड़ेगी।''

''क्या हमारे रक्षा वैज्ञानिक इस बारे में कुछ कहेगें ?''

प्रधानमंत्री की पुरजोर आवाज का असर लोगों पर ही नहीं वहाँ के वातावरण में भी दिखायी दिया।

सभी रक्षा वैज्ञानिक डॉ० डोंगरा के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

किन्तु डॉ० डोंगरा का उत्तर काफी संक्षिप्त था ''प्रधानमंत्री जी, इस विषय में मैं अपनी रिपोर्ट व्यक्तिगत तौर पर कल दूंगा'' और इसके साथ ही बैठक समाप्त हो गयी।

× × ×

आज रक्षा अनुसंधान विकास के शिमला स्थित कार्यालय में कुछ वैज्ञानिक एक गोपनीय वार्ता में लगे थे।

''क्यों डॉ० पुष्कर, क्या वह रसायन तैयार हो गया या अभी देर है ?'' रक्षा वैज्ञानिक डॉ० डोंगरा ने पूछा।

''यस सर, वह तैयार भी हो गया और मैंने उसका परीक्षण भी कर लिया''-डॉ० पुष्कर उत्साह से बोले।

''तो फिर देर किस बात की। चलो प्रधानमंत्री जी को हम अपनी सफलता की जानकारी दें। उन्होंने मुझे आज बुलाया भी है, दिल्ली के लिये हमारा प्लेन तैयार है।''

उसी दिन शाम को डॉ० पुष्कर प्रधानमंत्री को अपनी खोज के बारे में बता रहे थे। ''सर हमने ऐसे रसायन की खोज कर ली है जिसकी सूक्ष्म मात्रा से ही पशु-पक्षी और यहां तक की मानव में भी आक्रामकता समाप्त हो जाती है। लड़ते हुये जानवर इसके सम्पर्क में आते ही लड़ना छोड़कर शिथिल हो जाते हैं और मधुर व्यवहार करते हैं ....''

''सर इस गैस की प्रेरणा मुझे नाईट्रस आक्साइड यानी लाफिंग गैस से मिली थी।''

इससे पहले ही डॉ० पुष्कर अपने अनुसंधान की और भी विस्तार से चर्चा करते प्रधानमंत्री ने सायास रोका-

''क्या इस रसायन की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध है और हम कारगिल पर इसका प्रयोग कर सकते हैं ?''

''यस सर, क्यों नहीं हमारे पास पर्याप्त भण्डार है। आप आदेश दें।'' और प्रधानमंत्री से यह संक्षिप्त मुलाकात समाप्त हो गयी।

× × ×

दुश्मनों ने अचानक हमला कर दिया। चारों तरफ से युद्ध का समाचार आ रहा था, प्रधानमंत्री ने आपातकालीन बैठक बुलायी और रक्षा वैज्ञानिक डॉ० डोंगरा से कहा ''डोंगरा, अब वक्त आ गया है आपको अपने रसायन का कौशल दिखाने का। जाइये और जितना ज़ल्दी हो सके कीजिये क्योंकि हमारे पास समय का अभाव है, अब हम और रक्तपात नहीं चाहते।''

डॉ० डोंगरा ने कहा ''यस सर'', और बैठक समाप्त हो गयी।

× × ×

हमारे सैनिक उस रसायन का प्रयोग हथियार के रूप में कर रहे थे और उस क्षेत्र के सभी सैनिक शिथिल होते जा रहे थे। जो भी उस रसायन के सम्पर्क में आता, रसायन के प्रभाव से बच न पाता और अपनी आक्रामकता छोड़कर असामान्य ढंग से शिथिल पड़ जाता।

हमारे सैनिक इस हथियार को पाकर बहुत जोश से भरे हुये थे और उसका प्रयोग सफलता पूर्वक कर रहे थे।

''इस युद्ध का नजारा ही कुछ और था। न कहीं पर रक्त के छींटे नजर आ रहे थे, न कहीं पर तोप से निकले गोलों से ध्वस्त हुयी लाशें। और हमारा मिशन पूरी तरह कामयाब रहा .... हम विजयी हुये, हमने एक बार फिर दुश्मनों को परास्त किया लेकिन यह कारगिल युद्ध पहले के कारगिल युद्ध से अलग ही नजर आ रहा था। हम पहली बार गाँधी जी के सपने को साकार कर रहे थे।

भारत ने इस रसायन का आविष्कार करके सारे विश्व में अपना झण्डा गाड़ दिया था और अपनी अहिंसावादी छवि को बरकरार रख सका।

— वासलीगंज, मिर्जापुर

दुनिया पर छा रहा है डिजिटल

जगदीप सक्सेना

टॉयलेट में दाखिल होते ही जानी-पहचानी दुर्गंध की जगह भीनी-भीनी खुशबू नें आपका स्वागत किया। पश्चिमी डिजाइन की सीट का ढक्कन अपने आप खुल गया। बैठने पर न तो सीट की ठंडक ने कचोटा और न ही कोई तपिश महसूस हुई। आरामदेह सीट पर बैठकर आप नित्यकर्म से निवृत हुए। गर्म हवा के स्वचालित 'ब्लोअर' ने पलक झपकते हाथ सुखा दिये। आप तरोताजा होकर बाहर आ गए। परंतु टॉयलेट अभी भी आपकी सेवा में जुटा है। दरअसल टॉयलेट की सीट में मल-मूत्र की कुछ महत्वपूर्ण जांच तुरन्त और अपने-आप होने की व्यवस्था है। मसलन मधुमेह (डायबिटीज) से पीड़ित रोगी हर रोज अपनी देह में शर्करा का स्तर जानने के लिए मूत्र की जांच करवाना चाहते हैं। टॉयलेट की सीट से जुड़ी स्वचालित व्यवस्था यह काम बड़ी आसानी से कर देगी। जांच की रिपोर्ट भी तैयार हो जाएगी। सबसे मजे की बात तो यह है कि जांच रिपोर्ट आपके घरेलू कंप्यूटर के जरिये आपके पारिवारिक चिकित्सक के कम्प्यूटर में पहुँच जाएगी। यदि कोई गड़बड़ी हुई तो चिकित्सक आपको तुरंत आगाह कर देगा।

यह कोई कल्पना की उड़ान नहीं। जापान की कोई एक-चौथाई आबादी हर रोज सुबह ऐसे 'समझदार' टॉयलेट में नित्यकर्म निपटा रही है। वहां इन आधुनिक टॉयलेटों को 'वाशलेट' का नाम दिया गया है। समझदारी का यह सारा कमाल उस तकनीक की बदौलत है, जो दुनिया भर में 'डिजिटल तकनीक' के नाम से मशहूर है। कम्प्यूटर के साथ उभरी यह तकनीक अब केवल कम्प्यूटरों तक सीमित नहीं है। टीवी, कैमरा, फोन, वाशिंग मशीन, माइक्रोवेव ओवेन जैसे तमाम घरेलू इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के अलावा अब कपड़े भी डिजिटल तकनीक के चंगुल में है। **डिजिटल का मतलब है किसी भी तरह के सिग्नलों को अंकों के रूप में बदलना।** ये सिग्नल संगीत की धुनों से लेकर कैमरे की तस्वीरों और टी वी के दृश्यों तक के हो सकते हैं। चूंकि अंक में कोई रंग या भार नहीं होता, इसलिए इन्हें रोशनी की रफ्तार से कहीं भी भेजा जा सकता है। हजारों किलोमीटर की यात्रा के बावजूद इनमें न तो कोई विकृति उत्पन्न होती है और न ही कोई अन्य बदलाव आता है। इसलिए सिग्नलों की शुद्धता बनी रहती है और हमें सामग्री ठीक मूल स्वरूप में ही मिल जाती है। उदाहरण के तौर पर डिजिटल तकनीक में किसी रंगीन तस्वीर के असंख्य 'शेडों' को शून्य से 200 तक अंक दिये जा सकते हैं। अंकों के रूप में प्राप्त सिग्नल जब पुनः तस्वीर बनाएंगे तो ठीक पहले ही जैसे रंग मिल जायेंगे। सिग्नलों को अंकों के रूप में बदलने की करामात के कारण ही अब तमाम घरेलू इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों आदि को कंप्यूटर से जोड़ कर चमत्कारी रूप देना संभव हो गया है।

डिजिटल जादू का रंग सबसे पहले टी वी पर चढ़ा है। कुछ अंतर्राष्ट्रीय ब्रांडों के टी वी डिजिटल तकनीक से युक्त हैं। पर डिजिटल तस्वीर और आवाज पाने के लिए टी वी के सिग्नलों का प्रसारण भी डिजिटल रूप में ही होना चाहिए। यूरोप और कुछ पश्चिमी देशों में यह 'हाई-क्वालिटी' प्रसारण शुरू हो गया है। डिजिटल टीवी की तस्वीरों में आप समाचार वाचिका की ठुड्डी पर बना काला तिल भी स्पष्ट रूप से देख सकेंगे। साथ ही आवाज इतनी साफ होगी जैसे वह आपके साथ बैठी बातचीत कर रही हो। हम भारतीय दर्शकों को इस आनंद के लिए शायद कुछ वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़े। वीडियो कैमरों में भी डिजिटल तकनीक अपनायी जाने लगी है। इस कैमरे से प्राप्त डिजिटल तस्वीरों को कम्प्यूटर के जरिये पलक झपकते हजारों किलोमीटर दूर भेजा जा सकता है।

इसके अलावा कम्प्यूटर पर तस्वीरों की कटाई-छंटाई भी की जा सकती है। तस्वीर से अनचाहे अंशों को हटाया जा सकता है। यहां तक कि आप तस्वीर से किसी व्यक्ति को भी गायब कर सकते हैं। गौरतलब है कि इस खूबी के कारण इस तकनीक का दुरुपयोग भी शुरू हो गया है।

डिजिटल तकनीक का फायदा उठाते हुए कुछ विश्व प्रसिद्ध अभिनेताओं के डिजिटल क्लोन तैयार कर लिये गये हैं। अब ग्रेगरी पैक और टाम क्रूस जैसे अभिनेता कम्प्यूटर की 'हार्ड डिस्क' में उपलब्ध हैं। आप इनसे जैसे चाहें वैसे काम ले सकते हैं और वह भी बिना कोई पारिश्रमिक दिये। कम्प्यूटर नेटवर्क पर डिजिटल किताबें भी उपलब्ध हैं, जिन्हें आमतौर पर 'ई-बुक्स' कहा जाता है। ये किताबें नेटवर्क के डेटाबेस में उपलब्ध रहती हैं। इन्हें आप अपने पीसी पर पढ़ सकते हैं या फिर पूरी किताब 'डाउनलोड' करके प्रिंट भी निकाल सकते हैं। किताबों की तर्ज पर तमाम अवसरों के लिए डिजिटल बधाई कार्ड भी बनाये गये हैं। इसी तरह डिजिटल अखबार भी 'प्रकाशित' किए जा रहे हैं। ग्राहक बनने पर ये अखब्रार हर सुबह आपके कम्प्यूटर पर उपलब्ध होंगे। विशेष बात यह है कि इनमें आपकी निजी दिलचस्पी का ध्यान रखा जाएगा। या यों कहिए कि आपके कम्प्यूटर पर उपलब्ध डिजिटल अखबार केवल आपके लिए प्रकाशित किया जाएगा। आप चाहें तो कम्प्यूटर नेटवर्क पर डिजिटल अखबारों तथा पत्रिकाओं की दुकान भी खोल सकते हैं।

बच्चों के लिए कम्प्यूटर नेटवर्क पर तमाम रोमांचक डिजिटल गेम्स उपलब्ध होने के अलावा अंतर्राष्ट्रीय स्तर के कुछ खिलौने भी तैयार किए हैं। इस कारण खिलौने भी समझदार हो गये हैं। अब ऐसे रोबोट खिलौने उपलब्ध हैं, जो संगीत की अलग-अलग धुनों पर अलग-अलग तरह से नाच सकते हैं। इसी तरह हाथी, शेर, घोड़े वगैरह तेज रोशनी से अपने-आप दूर भाग जाते हैं। फर्राटा भरने वाली मोटर-कारें फर्नीचर आदि से टकराती नहीं, बल्कि बचकर निकल जाती हैं। इस खिलौनों को बच्चे अपनी पसंद और जगह के हिसाब से 'प्रोग्राम' भी कर सकते हैं। कुछ ऐसी ही डिजिटल समझदारी घरेलू उपकरणों में भी डाल दी गयी है। डिजिटल माइक्रोवेव ओवेन व्यंजन बनाने की विधि याद रख सकती है। वाशिंग मशीन कपड़ों की गंदगी को देखते हुए अपने-आप डिटर्जेंट की मात्रा तथा धुलाई का समय तय कर लेगी। जरूरत के मुताबिक अपने-आप तापमान नियंत्रित करने वाले फ्रिज भी बना लिये गये हैं। डिजिटल तकनीक से युक्त होने के कारण इन सभी उपकरणों को आप अपने पी सी से जोड़ सकते हैं। इसके लिए बाजार में कई साफ्टवेयर उपलब्ध हैं। मसलन दफ्तर से चलने से पहले आप माइक्रोवेव ओवेन को खाना गर्म करने का आदेश दे सकते हैं। वाशिंग मशीन को कपड़े धोने का हुक्म दे सकते हैं, और वी सी आर को अपना मनपसंद टी वी कार्यक्रम रिकार्ड करने के लिए चालू कर सकते हैं। डिजिटल वाद्य-यंत्रों को कम्प्यूटर से जोड़कर चमत्कारी संगीत प्रभाव उत्पन्न किए जा रहे हैं। अब एक ही वाद्य-यंत्र से अलग-अलग किस्म की ध्वनियां निकालना मुमकिन हो रहा है। मंच पर संगीत प्रदर्शन के लिए इनका खूब उपयोग हो रहा है।

चिकित्सा से जुड़े अनेक छोट-बड़े उपकरणों में डिजिटल तकनीकी आजमायी जा रही है। कम सुनने वाले करोड़ों लोगों के लिए डिजिटल 'हियरिंग एड' बनाये गये हैं ये आसपास के माहौल और आवाज की तीव्रता के अनुसार काम करते हैं यानी इनकी शक्ति घट या बढ़ सकती है। ये पृष्ठभूमि के शोर का भी सफाया कर देते हैं। बेहद तेज और कुशल डिजिटल थर्मामीटर बनाये गये हैं। ये पलक झपकते सेल्सियस और फारेनहाइट, दोनों ही पैमानों पर तापमान बताते हैं। इनमें किसी भी द्रव या हवा का तापमान मापा जा सकता है। किसी भी व्यंजन या सामग्री के भीतरी तापमान को आंका जा सकता है। मसलन यदि आप यह जानना चाहते हैं कि आपको बर्गर केवल ऊपर से गर्म करके दिया गया है या भीतर तक गर्म है तो डिजिटल थर्मामीटर मदद करेगा। अभी इनका तापमान मापने का 'रेंज' 40 से 300 डिग्री फारेनहाइट है, जिसे बढ़ाने की कोशिशें की जा रही हैं।

(शेषांश पृष्ठ 22 पर)

पर्यावरण संरक्षण पर विचार गोष्ठी सम्पन्न

गत 5 जून 2000 को ''विश्व पर्यावरण दिवस'' के अवसर पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी की अध्यक्षता में ''पर्यावरण संरक्षण'' विषय पर एक विचार गोष्ठी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। इस विचार गोष्ठी में लगभग एक दर्जन विद्वानों और वैज्ञानिकों ने अपने विचार व्यक्त किए।

विचार गोष्ठी का शुभारंभ अध्यक्ष डॉ० तिवारी के माल्यार्पण द्वारा स्वागत से हुआ। माल्यार्पण श्री देवव्रत द्विवेदी ने किया। संयोजक एवं संचालक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने विषय प्रवर्तन करते हुए दूषित हवा, दूषित पानी, दूषित मिट्टी और प्लास्टिक प्रदूषण का उल्लेख किया।

पहले वक्ता डॉ० प्रभाकर द्विवेदी ''प्रभामाल'' ने कहा कि आज की भौतिकवादी संस्कृति के प्रभाव से मानव के आचार-विचार एवं व्यवहार प्रदूषित हो गए हैं। हमें पहले अपने मानसिक प्रदूषण को दूर करना होगा एवं ''सादा जीवन उच्च विचार'' की राह पर चलना होगा, तभी पर्यावरण भी प्रदूषणमुक्त होगा। उन्होंने जोर देकर कहा कि हमारी कथनी और करनी में भेद नहीं होना चाहिए।

श्री दर्शनानन्द जी ने वायु प्रदूषण, पॉलीथीन प्रदूषण और कूड़े-कचरे से उत्पन्न हानियों की चर्चा करते हुए ऐसे सभी कारणों से बचने की सलाह दी और नई तकनीकी के इस्तेमाल से प्रदूषण न फैलाने वाले पॉलीथीन को बनाने पर बल दिया।

डॉ० भुवनेश्वर सिंह गहलौत ने ''महाभारत'' का उद्धरण देते हुए बताया कि प्राचीन काल में पर्यावरण के संरक्षण पर काफी कुछ लिखा गया है। लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना थी। पॉलीथीन प्रदूषण की चर्चा करते हुए बताया कि इसके खाने से प्रति दिन 5-7 गाय-भैंसों की मृत्यु हो रही हैं।

श्री हरिमोहन मालवीय ने बताया कि भारतीय संस्कृति में उत्सर्ग और उपभोग की बात कही गई है। इन दिनों उपभोग पर अधिक जोर है। उन्होंने बताया कि इलाहाबाद में ''अशोक स्तम्भ'' पर उत्कीर्ण आलेख में पर्यावरण संरक्षण का व्यापक उल्लेख है। उन्होंने प्रकृति के साथ तादात्म्य बनाने पर बल दिया।

डॉ० सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव ने बताया कि पर्यावरण के सम्बन्ध में दो तलों पर कार्य होता है। एक तो चिंतन के तल पर और दूसरा कर्म के रूप में। उन्होंने बताया कि पर्यावरण संबंधी (यातायात) एक परियोजना से जुड़े रहकर खागा से वाराणसी तक राष्ट्रीय राजमार्ग-2 का वैज्ञानिक/पर्यावरणीय अध्ययन किया और अपने अनुभव से सुझाव दिया कि विज्ञान परिषद् जैसी जगह पर एक साथ सभी शोधार्थी विचार-विमर्श करके कुछ ठोस कदम उठायें। छिट-पुट शोध का प्रभाव कम पड़ता है। डॉ० सुप्रभात मुकर्जी ने बताया कि विज्ञान परिषद् इस दिशा में पहल कर चुकी है और पर्यावरण से सम्बन्धित अलग से एक समिति भी गठित हुई थी। उसे और अधिक सक्रिय करने की आवश्कता है।

डॉ० किरण कुमार ने कहा कि समय के साथ वैज्ञानिक प्रगति बढ़ी है और प्राकृतिक सम्पदाओं का उपयोग भी बढ़ा है। जनसंख्या और उपभोग को कम करके ही हम कुछ सुधार कर सकते हैं।

श्री आनन्द मालवीय ने आन्दोलन द्वारा सरकार के ऊपर दबाव बढ़ाने पर जोर दिया। वृक्षारोपण पर

बल देते हुए उन्होंने कहा कि मरने पर एक व्यक्ति अपने साथ एक वृक्ष की लकड़ी ले जाता है। इसलिए कम से कम दो वृक्ष हर व्यक्ति को लगाना चाहिए।

डॉ० सुनील कुमार पाण्डेय ने वृक्षों के कटने पर चिंता व्यक्त करते हुए सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी और वनीकरण पर बल दिया और सुझाव दिया कि वननीति को ठीक से लागू करना चाहिए।

डॉ० शुकदेव प्रसाद ने चिपको आन्दोलन से लेकर अब तक के पर्यावरणीय आन्दोलनों की चर्चा करते हुए कहा कि इस क्षेत्र में सुयोग्य वैज्ञानिकों को कार्य करना चाहिए और हमें भी चाहिए कि समस्याओं के वैज्ञानिक समाधान के लिए उनके विचारों को कार्य रूप में परिणित होने में सहायक हों। पर्यावरण जटिल विषय है और विशेषज्ञों पर ही समाधान ढूँढने का कार्य छोड़ देना चाहिए।

श्री देवव्रत द्विवेदी ने पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ स्वरचित दोहे सुनाये।

इसी कार्यक्रम में ''विज्ञान'' पत्रिका के जून 2000 अंक (पर्यावरण-प्रदूषण विशेषांक) तथा डॉ० दिनेश मणि की पुस्तक - ''पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन'' का विमोचन डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी ने किया।

डॉ० दिनेश मणि ने दूषित पर्यावरण पर चिंता व्यक्त करते हुए बताया कि उन्हें पुस्तक लिखने की प्रेरणा विज्ञान परिषद् से ही मिली।

डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने पर्यावरण-मित्र प्रौद्योगिकियों के ढूँढे जाने की आवश्यकता बतलाई। पर्यावरण प्रदूषण कम करने के लिए पर्यावरण के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी बढ़ानी होगी। नदियों में जानवरों को नहीं नहलाना चाहिए। पॉलीथीन की थैलियों का इस्तेमाल कम करें। उन्होंने विज्ञान परिषद् को और अधिक सक्रिय बनाने पर बल दिया।

डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी ने अपने अध्यक्ष-पदीय उद्बोधन में कहा कि शून्य पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति लाने की बात तो संभव नहीं किन्तु ऐसी वस्तुओं का उपयोग कम करें जो प्रदूषण फैलाते हैं। हर बार पॉलीथीन की थैली में सामान लाने की जगह अपनी जेब में पॉलीथीन की एक थैली रखें और उसी में सामान लें। उन्होंने पर्यावरण को कम से कम क्षति पहुँचाने वाली तकनीकी के विकास पर बल दिया। उन्होंने आशा व्यक्त की कि वैज्ञानिकों को अवश्य सफलता मिलेगी।

अंत में विचार गोष्ठी के संचालक प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने आशा व्यक्त की कि आज के विचार मंथन से जो ''अमृत'' निकला है उससे निश्चित रूप से निकट भविष्य में कुछ सफलता हाथ आयेगी। उन्होंने सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की।

— प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
पूर्व सम्पादक, 'विज्ञान'

विज्ञान लेखन कार्यशाला

विज्ञान परिषद् प्रयाग और सेवा फाउन्डेशन, जसरा के संयुक्त तत्वावधान में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, नई दिल्ली के सहयोग से सितम्बर 2000 में 'लोक-कला माध्यमों के लिये विज्ञान लेखन' विषयक 5 दिवसीय कार्यशाला आयोजित की जा रही है। भाग लेने के इच्छुक लोक-कलाकार विज्ञान परिषद् प्रयाग या सेवा फाउन्डेशन, जसरा से सम्पर्क करें।

— प्रधानमंत्री

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से

1. रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में केवल कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2. रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर भी विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन के दरें निम्नवत् हैं :

भीतरी पूरा पृष्ठ 1000 रू०, आधा पृष्ठ 500 रू०, चौथाई पृष्ठ 250 रू०

आवरण द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ 2500 रू०

भेजने का पताः

प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग,

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान पत्रकार बनने का एक सुनहरा अवसर

त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण डिप्लोमा

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के समर्थन एवं सहयोग से एक लघु त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण डिप्लोमा पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया जा रहा है। इस पाठ्यक्रम की समाप्ति पर प्रशिक्षुओं को राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, भारत सरकार द्वारा एक प्रमाणपत्र प्रदान किया जाएगा।

इस पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण लेने हेतु आवेदन-पत्र आमंत्रित है। इच्छुक अभ्यर्थी विज्ञान परिषद् प्रयाग के कार्यालय से आवेदन-पत्र मात्र 50 रुपये नगद जमा कर के प्राप्त कर सकते हैं। भरे हुए आवेदन-पत्र जमा करने की अंतिम तिथि 15 सितंबर 2000 है।

अवधि	: 3 माह
अर्हता	: इंटरमीडिएट (10 + 2) विज्ञान/ कृषि विषयों के साथ
कुल स्थान	: 30
प्रशिक्षण शुल्क	: रु० 200/- मात्र
वांछनीय	: विज्ञान लेखन ब पत्रकारिता में अभिरुचि

प्रशिक्षुओं के प्रवेश हेतु विज्ञान परिषद् का निर्णय अंतिम होगा ।

- प्रधानमंत्री

विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानंद मार्ग, इलाहाबाद - 211002 (उ० प्र०)

दूरभाष - (0532) 460001

ISSN : 0373-1200

सितम्बर 2000

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
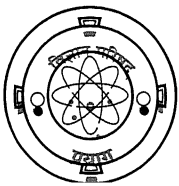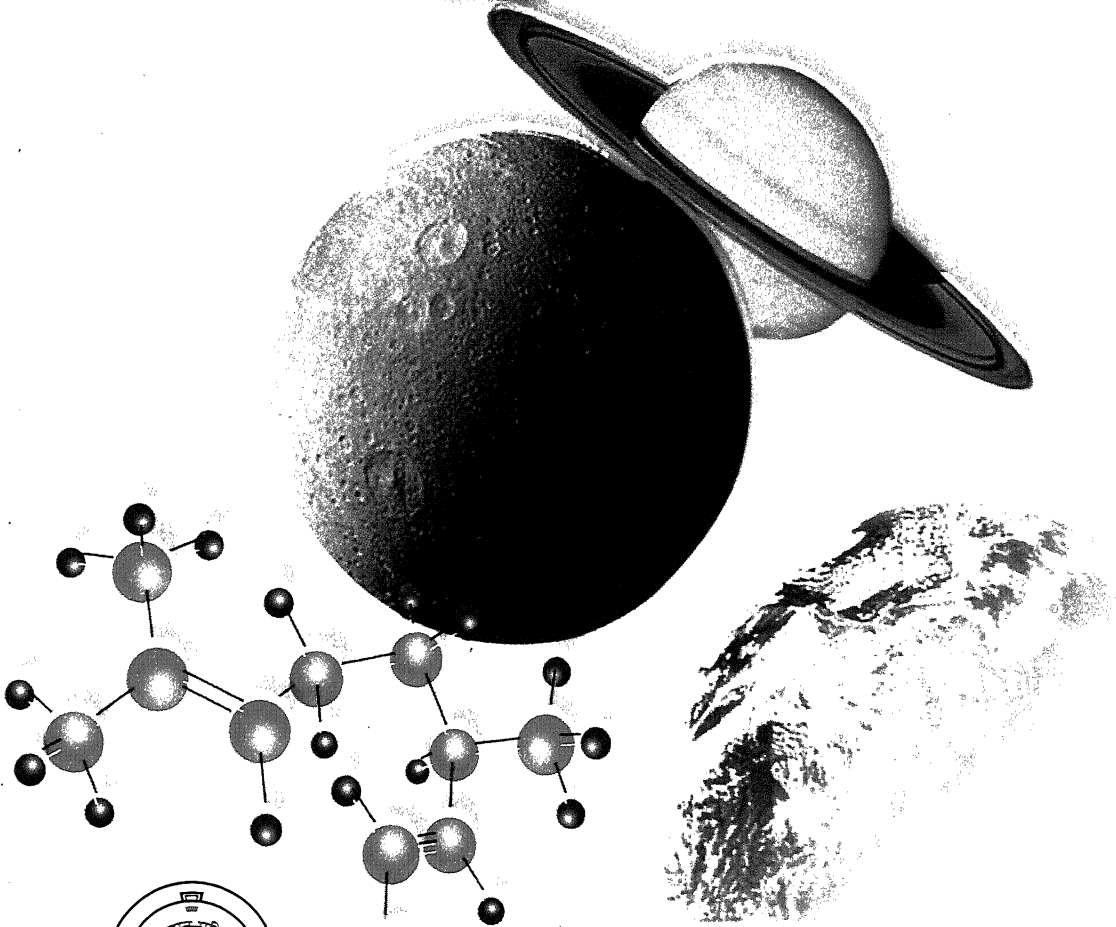
विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 86 अंक 6
सितम्बर 2000

मूल्य

आजीवन व्यक्तिगत : 500 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 140 रुपये
वार्षिक : 50 रुपये

प्रकाशक

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक

ग्रफिक आफसेट
186/5 टैगोर टाउन, इलाहाबाद
फोन : 465016, 465274

कम्प्यूटर कम्पोजिंग

विजय कुमार शर्मा

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001

विषय सूची

जीन तकनीक और वनस्पति जगत

✍ डॉ0 लालजी सिंह

"जीन तकनीक" आज जैविक विज्ञान की सर्वाधिक उपयोगी तकनीकों में से एक है । इसकी उपयोगिता प्राणी जगत के साथ–साथ वनस्पति जगत में भी सिद्ध हो चुकी है । वनस्पति जगत में जीन तकनीक की उपयोगिता संबंधी कुछ जानकारी यहाँ दी जा रही है ।

आज की हमारी सबसे बड़ी समस्या है दुनिया की बढ़ती आबादी और उसी के अनुपात में पैदावार में बढोत्तरी जिससे सभी व्यक्तियों को जीवित रखने के लिए पर्याप्त मात्रा में अनाज उपलब्ध हो सके । आज की दुनिया की आबादी 5.9 अरब के करीब है और वैज्ञानिक अनुमान के हिसाब से अगले दो दशकों यानी सन् 2020 तक 7.0 अरब तक हो जाने की संभावनां है । इसका अर्थ है, हमें करीबन 1.1 अरब ज्यादा लोगों के लिए पर्याप्त खाने का प्रबन्ध करना होगा जो अगले कुछ ही वर्षों में जो सिर्फ पैदावार बढ़ाने से संभव हो पाएगा इसके लिए हमें अभी से बहुत महत्वपूर्ण कदम उठाने की जरूरत है, वरना हम इस भावी विपत्ति का सामना नहीं कर पायेंगें । आइये देखते हैं कि इस संदर्भ में अपेक्षित पैदावार के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हमारे सामने क्या विकल्प उपलब्ध हैं, और हमें क्या करना है ।

पैदावार के लिये सबसे अहम जमीन है। सामान्य तौर पर यह माना जा सकता है कि पैदावार बढ़ाने का सबसे सीधा और सरल विकल्प है, ज्यादा से ज्यादा· जमीन का खेती के लिये उपयोग । जितनी अधिक जमीन में खेती होगी, उसी अनुपात में पैदावार भी बढ़ेगी । परन्तु क्या यह विकल्प संभव है ? जैसा कि सर्वविदित है, हम पहले से ही अधिकतम संभव जमीन को खेती के लिये इस्तेमाल कर रहे हैं, और ऐसे में और अधिक जमीन को खेती के लिये उपलब्ध कराना संभव नहीं है । अगर हम बहुत कोशिश करें भी तो ज्यादा अंतर नहीं ला सकते हैं । अतः पैदावार बढ़ाने के लिये खेती योग्य भूमि में बढ़ोत्तरी एक विकल्प नहीं हो सकता । ऐसी परिस्थिति में, हमारे पास उपज बढ़ाने के लिये एक ही विकल्प रह जाता है, जो संभव भी है और कारगर भी, वह है पौधों की ऐसी उन्नत किस्मों का विकास जिनकी उत्पादन क्षमता आज की उपयोग में लाई जा रही किस्मों से कहीं ज्यादा हो । परन्तु, नई किस्मों के बीज विकसित करने की प्रकिया में अभी तक जिन वैज्ञानिक प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है वे इतनी धीमी हैं कि अपेक्षित पैदावार के लिए जरूरी विकास हमारे पास उपलब्ध समय (लगभग दो दशकों का) में संभव नहीं है । इस संदर्भ में आज की नवीनतम विकसित जीन तकनीक बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है । सबसे महत्वपूर्ण लाभ होगा, अपेक्षित पैदावार बढ़त के लिये जरूरी विकास का उपलब्ध समय में पूरा हो पाना । जीन तकनीक के प्रयोग से हम सक्षम होंगे बीजों की ऐसी नवीन किस्मों के विकास में जो प्रति हेक्टेयर ज्यादा उपज देती हो (High Yielding varieties), और दूसरी ऐसी किस्में जिनमें विभिन्न जैवकीय (Biotic) एवं अजैवकीय (Abiotic) प्रकोपों से प्रतिरोध की यानी कि उनसे होने वाले नुकसान से बचने की (Resistant varieties) क्षमता हो । साथ ही, इस तकनीक के उपयोग से इस संपूर्ण विकास प्रक्रिया की गति को बढ़ाया जा सकेगा ।

जीन क्या है ?

दुनिया के सभी जीव जीवित इकाइयों से बने होते हैं । इस जीवित इकाई को कोशिका कहते हैं । मानव के शरीर में करीब 10 खरब कोशिकायें होती है । इसके केन्द्रक के अन्दर धागे जैसे आकार की संरचनायें होती हैं जिन्हें क्रोमोसोम या गुणसूत्र कहा जाता है । इन्ही क्रोमोसोमों में छिपी रहती है वह सारी जानकारी जो किसी भी जीव (पौधों, जीवजन्तुओं) की व्याख्या निश्चित करती है– वनस्पति हो या पशुपक्षी या मानव, क्रोमोसोम हर जीव में होते है। केवल इनके आकारों और संख्या में विभिन्नता होती है ।

क्रोमोसोम की संरचना कई प्रकार के रासायनिक पदार्थ से होती है जिनमें सबसे अहम डी.एन.ए. (D.N.A., Deoxyribo-nucleic acid) होता है। यह डी.एन.ए. चार मुख्य इकाइयों, एडिनीन (Adenine=A),गुआनीन (Guanine = G), थाईमीन (Thymine

= T) और साइटोसीन (Cytosine = C) से बना होता है जिन्हें बेस (Bases) कहते हैं । ये बेस डी. एन. ए. में एक निश्चित क्रम में पाये जाते हैं । बेसों का यह क्रम ही इनके कार्य को निर्धारित करता है । दूसरे शब्दों में, बेसों के एक निश्चित क्रम के लिए एक विशेष कार्य सुनिश्चित रहता है । इसे ही जीन कहते हैं । अतः जीन डी.एन.ए. के उस टुकड़े को कहते हैं जो बेसों के क्रम के आधार पर कोशिका को विशेष आर.एन.ए. और प्रोटीन बनाने के लिये आदेश देता है । इससे यह जानकारी मिलती है कि, अगर इन बेसों के क्रम में परिवर्तन कर दिया जाये तो संबंधित जीन से सुनिश्चित कार्य परिवर्तित किया जा सकता है । मनुष्य की किसी भी कोशिका में करीब एक लाख ऐसे जीन होते है, जो हमारे रंग, रूप व गुणों को निर्धारित करते हैं । पेड़–पौधों में भी इसी प्रकार के जीन पाये जाते हैं। कोशिका में पाये जाने वाले संपूर्ण डी.एन.ए. का कुछ प्रतिशत ही कार्यरत अवस्था में रहता है जिसे 'फंक्शनल जीन्स' तथा बॉकी को 'जंक' या बेकार माना जाता है। ऐसा इसलिये है क्योंकि हमें अभी तक इस तथाकथित जंक डी.एन.ए. की कार्यक्षमता का ज्ञान नहीं हो पाया है।

दुनिया में भोजन के लिये इस्तेमाल किये जाने वाले अनाजों में से सबसे प्रमुख है 'चावल'। वैज्ञानिक अनुमानों के मुताबिक, चावल की कोशिकाओं में मौजूद डी.एन.ए. का लगभग 60% हिस्सा 'कार्यान्वित जीन' या फंक्शनल जीन्स और बाकी का 40% जंक या बेकार है। इसके मुकाबले में, मानव कोशिकाओं के ज्यादातर डी.एन.ए. (लगभग 95%) को जंक और केवल 5% डी.एन. ए. को ही 'कार्यान्वित या फंक्शनल जीन्स' माना जाता है। इससे पता चलता है कि चावल में 'फंक्शनल जीन्स' की मात्रा अधिक है। इन फंक्शनल जीन्स में परिवर्तन करके हम ज्यादा पैदावार देने वाली नई किस्मों का विकास कर सकते हैं। जीन परिर्वतन की इस प्रक्रिया को जेनिटिक इंजीनियरिंग कहते हैं। इसके लिये जैविक विविधता (Biodiversity) का होना बहुत आवश्यक है। जैविक विविधता के महत्व का एहसास वैज्ञानिकों को सन् 1970 में तब हुआ जब अमेरिका में 'सदर्न कार्न लीफ ब्लाईट' (Southern corn leaf blight) नामक पौधों की एक घातक बीमारी फैली जिसकी वजह से वहां पर उगाई गई मक्के की सारी की सारी फसल बर्बाद हो गई। इस बीमारी के इतने बड़े पैमाने पर घातक होने का प्रमुख कारण यह था कि वर्षों के शोध से विकसित मक्के की जो किस्में वहां उगाई जा रही थीं वो सब फंक्शनल जीन्स के स्तर पर लगभग एक जैसी थीं।

ऐसी परिस्थिति में, जब एक बीमारी फैलती है तो उपलब्ध किस्मों में रोग प्रतिरोधन में सक्षमता प्रदान करने वाले जीन्सों में विभिन्नता न होने से, सारी की सारी फसल बीमारी का शिकार होकर पूरी तरह से नष्ट हो सकती है। इसी एहसास से, अमेरिकी वैज्ञानिकों ने निर्णय लिया मक्के की ऐसी किस्मों को ढूंढने का जो कथित बीमारी से लड़ने में सक्षम हों। कालांतर में, प्रयत्न करने पर वैज्ञानिक जंगली मक्के की एक ऐसी प्रजाति को ढूँढने में सफल हुये जो सामान्य तौर पर उगाई नहीं जाती थी परन्तु 'सदर्न कार्न लीफ ब्लाईट' रोग से प्रभावित नहीं होती थी। इससे उन्होंने अनुमान लगाया कि इस जंगली मक्के में कोई ऐसा नया जीन है जो पौधों को बीमारी के प्रतिरोधन में सक्षम बनाता है, और अगर हम इस अनुमानित 'जीन' को मक्के की खेती के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली विकसित किस्मों में जेनेटिक इंजीनियरिंग द्वारा प्रत्यारोपित कर सकें तो–परिवर्तित किस्में बीमारी से होने वाले नुकसान से बच जायेंगी। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने यही किया और उन्हें अत्यधिक सफलता मिली। जिसकी वजह से आज खूब मक्का उगाया जाता है। उस समय एहसास हुआ कि जीन विविधता वनस्पति जगत में विभिन्न प्रजातियों को बनाए रखने में कितनी महत्वपूर्ण साबित हो सकती है। अगर आज वह जंगली मक्का नहीं होता तो हम लोगों को उस जीन की जानकारी भी न हो पाती और फसल बचाने में सफलता भी नहीं मिलती।

इसी प्रकार दो और उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक तो है, चावल का उदाहरण जिसमें वर्षों के शोध कार्य के उपरान्त हमें सफलता मिली है। लेकिन जितनी पैदावार होती है उससे वर्ष 2020 की आबादी के लिए पर्याप्त अन्न नहीं उगाया जा सकेगा। अतः जरूरी हो जाता है कि इसकी पैदावार की क्षमता में वृद्धि करें। लेकिन यह संभव कैसे होगा? चावल की पैदावार का बढ़ाने के लिए अकसर हम दो प्रजातियां लेते हैं। जिस प्रजाति की उपज ज्यादा होती है उसे क्रास कर के हाइब्रिड बनाते हैं और यह आशा करते हैं कि हाइब्रिड की पैदावार में वृद्धि होगी। वैज्ञानिकों ने देखा कि इस विधि से पैदावार में बहुत अधिक वृद्धि नहीं होती है। वैज्ञानिकों को खुद आश्चर्य हुआ जब एक अमेरिकी वैज्ञानिक टेस्ले ने सबसे अधिक पैदावार होने वाली चावल की फसल, जो कि चीन में होती है, उसे उन्होंने मलेशिया में एक जंगली चावल से जो कि बहुत कम उपज देती है, क्रास किया और हाइब्रिड बनाकर सबसे अधिक पैदावार देने वाली प्रजाति बनायी जो 40 प्रतिशत अधिक उपज देने लगी थी। पहली बार यह एहसास हुआ कि ऐसे भी पौधे जिनकी

(शेषांक पृष्ठ 5 पर)

मछलियों में फेरोमोन्स : जैविक संचार के माध्यम

✍ अमरेश चन्द्र पाण्डेय

किसी जन्तु के शरीर से निकलने वाली गंध उस जन्तु के जीन (गुण बिन्दु), लिंग, आयु आदि पर निर्भर होती है। जैविक संचार में प्रयुक्त होने वाले अंतः प्रजाति (इन्ट्रास्पेसीफिक) रसायनों को 'फेरोमोन्स' कहते हैं। एक मछली के शरीर से उत्पन्न फेरोमोन जलीय वातावरण में मिल जाते हैं, तत्पश्चात् ये उसी प्रजाति या समूह के दूसरी मछलियों के क्रिया–कलाप को विभिन्न स्नायुओं के माध्यम से प्रभावित करते हैं। रासायनिक संरचना की दृष्टि से फेरोमोन्स अमिनों अम्ल, स्टीरायड्स, प्रोस्टाग्लैंडिस तथा पित्त अम्ल से बने होते हैं। गत 30 वर्षों के शोध परिणामों से ज्ञात हुआ है कि अन्य जन्तुओं की भांति मछलियों में भी व्यक्तिगत पहचान, सामूहिक एकरसता, अभिभावक एवं संतति पहचान, क्षेत्र सीमांकन, लैंगिक आकर्षण, भ्रमण (माइग्रेशन) आदि जैविक क्रियायें फेरोमोन्स द्वारा ही नियंत्रित होती हैं। वातावरण में उपस्थित अनेक फेरामोन्स (भोजन के अतिरिक्त) मछलियों के "मध्य घ्राण ट्रैक्ट" के माध्यम से मस्तिष्क को सूचना देते हैं, जबकि "लैटरल ऑलफैक्टरी बन्डलेट्स" भोजन सम्बन्धी सूचनाओं को ग्रहण करते हैं। जैविक क्रियाओं के नियंत्रण/प्रभाव के आधार पर फेरोमोन्स को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

1. चेतावनी (अलार्म) फेरोमोन्स

जैसा कि नाम से स्पष्ट है ये फेरोमोन्स संभावित खतरे के प्रति सजातीय मछलियों को सावधान करने में सहयोग करते हैं। इस फेरोमोन्स के प्रभाव से मछलियों में विभिन्न सुरक्षात्मक प्रतिक्रियायें होती हैं, जैसे : तीव्रता से जल को डाकना, शरीर को अर्धचन्द्रकार घुमाव देना, छिपना, अचल होकर निर्जीव–सदृश्य हो जाना, सम्बन्धित स्थान से हट जाना आदि। मछलियों की त्वचा में विशेष प्रकार की कोशिकायें पायी जाती हैं, जो इन अलार्म फेरोमोन्स का निर्माण करती हैं। किसी प्रकार घायल होने तथा त्वचा के कट जाने के परिणामस्वरूप इन कोशिकाओं से फेरोमोन्स बाहर निकल कर जल में घुल जाते हैं। तत्पश्चात् सजातीय मछलियों द्वारा ग्रहण किये जाने पर अन्य सदस्य खतरे के प्रति सावधान हो जाते हैं तथा सुरक्षात्मक उपाय अपनाते हैं। इसके फलस्वरूप रक्त में कार्टीसॉल, शर्करा, पोटैशियम, सोडियम आदि की मात्रा बढ़ जाती है। अलार्म फेरोमोन्स के प्रति मछलियों में प्रतिक्रिया जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही उत्पन्न हो जाती है। फोक्सिनस फोक्सिनस प्रजाति के अलार्म फेरोमोन्स का आणविक भार लगभग 1100 पाया गया है तथा रासायनिक संरचना की दृष्टि से यह हाइपोजैन्थिन–3–(एन) ऑक्साइड पदार्थ है।

2. मादा फेरोमोन्स

उपलब्ध अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चैनल कैटफिश तथा साल्मों प्रजातियों के नर पिंजड़े में बन्द सजातीय वयस्क मादा मछलियों के समीप झुण्ड में एकत्रित हो जाते हैं। अलवण जल को बोथीगोवियस सोपोरेटर प्रजाति के वयस्क नर सजातीय मछलियों में लिंग विभेद कर सकते हैं। साथ ही साथ नर मादा के प्रजनन छिद्र से स्रवित होने वाले फेरोमोन्स के आधार पर अवयस्क मादाओं में अन्तर करने में सक्षम होते हैं। प्रयोगों से प्रमाणित हुआ है कि मादा की अनुपस्थिति में अंडाशय (ओवरी) का घोल मात्र ही नर में प्रणय–क्रीड़ा (कोर्टशिप प्ले) प्रारम्भ करने के लिए पर्याप्त है। पेट्रोमाइजान मेरीनस (लैम्प्रे) के वयस्क मादा के अण्डाशय में एक प्रकार का फेरोमोन निर्मित होता है जो सजातीय नर मछलियों को मादा की ओर आकर्षित करने में सहायता करता है। मादा की ओर आकर्षित होने के लिए नर के शरीर में एन्ड्रोजेन नामक नर हारमोन का न्यूनतम मात्रा में विद्यमान होना आवश्यक पाया गया है अन्यथा मादा का फेरोमोन नर को आकर्षित नहीं कर पाता है। लेबिस्टिस रेटीकुलेटस के मादा में "हेक्जेस्ट्राल डाइप्रोपियोनेट" तथा गोल्ड फिश, पाइमेफेल्स प्रोमेलस एवं मिसगुरनस एन्गुइलीकाडेटस प्रजातियों में 15–अल्फा–कीटो–13, 14 डाइहाड्रो–15 अल्फा–कीटो नामक नर को आकर्षित करने वाले फेरोमोन्स पाये गये हैं।

कराशियस आरेटस, साल्मो सालार, साल्मो गेयाईनेरी, स्केलकार्प आदि प्रजातियों की वयस्क मादायें 17, 20–डाइहाइड्रॉक्सी–4–प्रिग्नीन–3–ओन सल्फेट या ग्लूकोरोनिड

फेरोमोन के रूप में उत्पन्न करती हैं जो कि मादा के मूत्र के माध्यम से जल में मिल जाता है। तत्पश्चात् यह सजातीय नर के शरीर में 15–30 मिनट के अन्दर गोनैडोट्रॉपिन की मात्रा बढ़ाता है तथा वीर्य में वृद्धि करता है। इस कार्य के लिए फेरोमोन की अत्यल्प मात्रा (10^{9}–10^{12} मिलीमोल्स) ही पर्याप्त है तथा यह नर के घ्राण के माध्यम से शारीरिक क्रियाओं को प्रभावित करता है।

3. नर फेरोमोन्स

उपरोक्त खण्ड में वर्णित मादा नर फेरोमोन्स की भाँति मछलियों की कुछ प्रजातियों के नर में भी फेरोमोन्स पाये गये हैं। ब्लेनियम पैवो प्रजाति के नर में जनन छिद्र के समीप त्वचा में क्यूटेनियस एनल ग्रंथियाँ पायी जाती हैं, प्रजनन काल में वयस्क नर इन ग्रन्थियों से स्रावित फेरोमोन मादा को नर की ओर आकर्षित करता है। इसी प्रकार पोयसिलिया रेटीकुलेटा के नर से स्रवित फेरोमोन मादा को प्रणय–क्रीड़ा हेतु उत्तेजित करता है।

फ्रांस में मादा लैम्प्रे को पकड़ने के लिए प्रजाति के वयस्क नर को पिंजड़े में कैद कर देते हैं, पिंजड़े के पास ढेर सारी मादायें आकर्षित होकर एकत्रित हो जाती हैं। वयस्क नर लैम्प्रे के मूत्र में टेस्टोस्टीरॉन समूह का रसायन पाया गया है। नर क्यूपिया हैरेन्गस पलासी के वीर्य में प्रोस्टाग्लैडिन सल्फेट/ग्लूकोरोनिड नामक रसायन फेरोमोन का कार्य करता है। इसी प्रकार गोवियस जाजो के नर में इटीयोकोलेनोलोन ग्लूकोरोनिड नामक फेरोमोन पाया जाता है। नर फेरोमोन्स प्रणय हेतु मादा को आकर्षित एवं उत्तेजित करने का कार्य करते हैं।

वयस्क नर जेब्राफिश में 5–अल्फा–एन्ड्रोस्टीन–3 अल्फा, 17 बीटा–डाइओल एवं कोलेस्ट्रॉल का ग्लूकोरोनिड मादा को अण्डजनन हेतु प्रेरित करता है। अफ्रीकन मांगुर के नर में 5 बीटा–प्रिग्निन–3 अल्फा, 17 अल्फा–डाइओल–20–ओन ग्लूकोरोनिड एवं 5 बीटा–एन्ड्रोस्टीन–3 अल्फा, 17 बीटा–डाइओल फेरोमोन मादा को प्रजनन काल में आकर्षित करता है। इन फेरोमोन्स की मात्रा पाले गये नर की अपेक्षा प्रकृति में पायी जाने वाली अफ्रीकी मांगुर में 20 गुना अधिक थी। नर अफ्रीकन मांगुर का फेरोमोन मादा में गोनैडोट्रापिन की मात्रा बढ़ा कर अण्डों की वृद्धि तथा अण्डजनन में सहायता करता है। पालतू मछलियों में प्रजनन न होने का कारण सम्भवतः इन फेरोमोन्स की कमी भी हो सकती है।

नर गौरामी (टाइकोगैस्टर टाइकोप्टेरस) के एक्वेरियम के जल को मादा गौरामी में प्रविष्ट कराने पर मादा के मस्तिष्क में गोनैडोट्रॉपिन एवं प्लाज्मा में 11–कीटोटेस्टोस्टीरॉन, 17 बीटा–स्ट्राडाइओल आदि की मात्रा में वृद्धि तथा अण्डों में विकास पाया गया।

4. अंतः लैंगिक उत्तेजक तथा समूह फेरोमोन्स

अपने द्वारा घरौंदा (नेस्ट) की गंध को सूंघ कर नर गैस्टीरोस्टीयस आकूलिएटस उत्तेजित होता है। इसी प्रकार हिप्सोब्लेनियम प्रजातियों के नर स्वयं के फेरोमोन्स को सूंघ कर प्रणय–क्रीड़ा के लिए उत्तेजित होते पाये गये हैं। इसके विपरीत यदि (बिना नर के) मादा मछलियों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया जाये तो अण्डाशय का विकास अवरुद्ध हो जाता है, परन्तु सजातीय नर की उपस्थिति से अण्डाशय का सामान्य विकास होता रहता है। जेब्रा फिश तथा लेम्प्रे के दोनों लिंगों की मछलियों में नर–2 एवं मादा–2 लैंगिक आकर्षण फेरोमोन्स पाये गये हैं, जो सजातीय नर तथा मादा मछलियों को समूह बनाकर रहने को प्रेरित करते हैं। ये फेरोमोन्स "थिन लेयर क्रोमैटोग्राफी" के कोलेस्ट्रॉल–एस्टर खण्ड (आर.एफ. 0.94) में पाये गये हैं।

5. व्यक्तिगत पहचान फेरोमोन्स

येलो बुलहेड प्रजाति की मछलियाँ अपने समूह के सदस्यों को त्वचा कें‌म्यूकस में उपस्थित फेरोमोन्स को सूँघ कर पहचान लेती हैं। गुफा कार्प तथा साल्मोनिड्स सजातीय समूह द्वारा उपयोग किये गये एक्वेरियम के जल में उपस्थित फेरोमोन्स को सूँघ कर जल की ओर आकर्षित होती देखी गयी हैं। यहाँ तक कि वयस्क अपने शिशुओं को भी फेरोमोन गंध के आधार पर पहचान लेते हैं। मिदास सिचलिड के शिशु अपने माता एवं पिता की पहचान मूत्र की गंध के आधार पर कर लेते हैं। आर्कटिक चार के मल में उपस्थित बाइल (पित्त) लवणों के आधार पर सजातीय मछलियों की व्यक्तिगत पहचान होती है। प्राप्त सूचना के अनुसार यूरोफाइसिस के स्राव तथा मूत्र का प्रयोग कुछ प्रजातियाँ स्थल को चिन्हित करने में उपयोग करती हैं। ब्राउन बुलहेड तथा सियामिज फिश जैसी उग्र स्वभाव वाली मछलियों में उग्रता–निरोधक फेरोमोन्स पाये गये हैं।

6. प्रव्रजन (माइग्रेशन) फेरोमोन्स

साल्मो के विभिन्न जातियों पर गहन अध्यन से पता चला है कि प्रव्रजनकारी मछलियों के शरीर से प्रजाति–विशिष्ट

फेरोमोन्स निकलते हैं, जोकि प्रव्रजन मार्ग को चिन्हित करने में योगदान करते हैं। इन फेरोमोन्स के चिन्ह (गन्ध) की सहायता से यह प्रव्रजन प्रक्रिया अनवरत पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलती रहती है। यूरोपियन ईल के बच्चे उसी जल–मार्ग से आते हैं जिससे होकर उनके सजातीय वयस्क गये थे। उपलब्ध नवीनतम परिणामों से ज्ञात हुआ है कि आर्कटिक चार के प्रव्रजन फेरोमोन स्मोल्ट्स के मल में स्रवित होते हैं तथा रसायनिक संरचना की दृष्टि से ये टारोलीथीकोलेट, टारोलीथोकोलिक सल्फेट, सल्फोटारोलीथोकोलेट अथवा टारोकेनोडी ऑक्सीकोलेट हो सकते हैं। उनकी गंध घ्राणेन्द्रिय के मध्य मार्ग से होती हुई मस्तिष्क तक पहुँचती है।

7. पर्यावरण प्रदूषण एवं फेरोमोन्स

प्रत्येक फेरोमोन के संदेश को ग्रहण करने के लिए मस्तिष्क में विशेष ग्रहण केन्द्र (रीसेप्टर्स) पाये गये हैं। विभिन्न फेरोमोन्सकी अत्यल्प मात्रा (10^7–10^{13} मिलीमोल्स) इन ग्रहण केन्द्रों को उत्तेजित एवं क्रियाशील वनाने के लिए पर्याप्त होती है।

प्राप्त सीमित परिणामों से पता चलता है कि जल को प्रदूषित करने वाले विभिन्न कारकों (डिटरजेंट, तांवा, पारा, निकल, जिंक, कैडमियम, नीला थोथा) से प्रभावित मछलियों में फेरोमोन्सके स्राव तथा इनके द्वारा नियंत्रित जैविक क्रियाओं पर भी हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
नरेन्द्र नगर, कुमारगंज
फैजाबाद–224 229 (उ.प्र.)

पृष्ठ 2 का शेष भाग

खुद की पैदावार ज्यादा नहीं होती उनमें कुछ ऐसे जीन छुपे होते हैं जिनको कि हम दूसरी ज्यादा उपज वाली फसल में प्रत्यारोपित कर पैदावार बढ़ा सकते हैं।

इस प्रक्रिया में जीन तकनीक की आवश्यकता होती है, जिसमें डी.एन.ए. तकनीक या डी.एन.ए. मार्कर का उपयोग होता है (डी.एन.ए. मार्कर उसे कहते हैं जो कि यह बता सके कि फलाँ जीन कहाँ है) जैसे कि पहले चावल का उदाहरण दिया था उसमें क्रास करने पर F1 पैदा होती है और इसमें दो प्रकार के जीन मौजूद रहते हैं। इसके बाद F1 का अधिक पैदावार देने वाली प्रजाति के साथ, दोबारा क्रास कर (Bicross) F2 वंशावली प्राप्त होती है। F2 वंशावली में जंगली प्रजाति से आए जीन की मात्रा कम हो जाती है और इस प्रकार के हजारों पौधे F2 वंशावली में होंगे। कुछ ऐसी प्रजातियां जिनमें अधिक पैदावार होती है उनमें इस जीन के अतिरिक्त अन्य जीन भी रहेंगी। लेकिन हमें और जीन को निकाल कर केवल अधिक पैदावार देने वाली जीन को रखना है। अतः ऐसे पौधों में जहां पर यह मार्कर मिलता है केवल उसका चयन कर F3 वंशावली बनाते हैं। इस प्रकार तीन या चार वंशावलियों में हा उस जीन को अलग कर सकते हैं जिसका उपयोग नहीं रहता। अंत में वही जीन रह जाता है जिससे पैदावार में वृद्धि होती है। इस प्रकार दूसरी जीन, जिसको रोग प्रतिरोधक के रुप में माना गया है, जिसका जिक्र इसमें पूर्व मक्के की फसल का उदाहरण देते हुए किया गया है, क्रास और बाइक्रास करके F2, F3 में डी.एन.ए. मार्कर का उपयोग करके हम पा सकते हैं जो कि फसल के रोग प्रतिरोध के लिए उपयोगी है। इस प्रकार पैदावार बढ़ाने और फसल को रोगों से बचाने के लिए हम जीन तकनीक का उपयोग कर सकते हैं।

यह भी आवश्यक हो गया है कि हमारे वनस्पति जगत में जो विभिन्नता है उनका जो जर्मप्लाज्म है, उसे भी सुरक्षित रखने के लिए हम जर्मप्लाज्म के भंडार बनाएं। भारत में दिल्ली में इस तरह के भंडार है जिसमें हजारों जर्मप्लाज्मों को संग्रह कर सुरक्षित रखा गया है। हमें जब भी जरूरत पड़ेगी हम उस जर्मप्लाज्म को निकाल करके जीन को स्थानांतरित या प्रत्यारोपित कर सकेंगे।

–'जिज्ञासा'–से–साभार

बुढ़ापे को जीतने की ओर बढ़ते कदम

✍ सुश्री रूफ़िया ख़ान

वृद्धावस्था यानी जीवन का वह काल जब शरीर की क्रियाशीलता कम हो जाती है, अनेक प्रकार की व्याधियां धर दबोचती हैं और मौत जिन्दगी के दरवाजे पर दस्तक देने लगती है। यदि देखा जाये तो वृद्धावस्था के लक्षण 50 वर्ष की आयु हो जाने के बाद ही परिलक्षित होते हैं, लेकिन शरीर की शिथिलता 25 वर्ष की आयु के बाद ही आरम्भ हो जाती है, क्योंकि शरीर की उपापचयी क्रियाएं धीरे-धीरे इसी समय घटना शरू, हो जाती हैं। आश्चर्य की बात तो है कि 25 वर्ष की आयु के बाद शरीर की लम्बाई भी घटने लगती है लेकिन बहुत धीमी गति से, लगभग 20 वर्ष में एक इंच के आठवें अंश से भी कम और इसका कारण है आयु बढ़ने के साथ-साथ कशेरूक दंड के शल्कों का निकट आना। यही नहीं, यह क्रिया वृद्धों के शरीर में कूबड़ तक को जन्म दे डालती है। बुढ़ापे के विज्ञान को जेरेंटोलॉजी नाम दिया गया है और भारत सहित विश्व के बहुत से विश्वविद्यालयों में इसे प्राणिविज्ञान के स्नातक व स्नातकोत्तर स्तरों पर पढ़ाया जा रहा है।

प्रोफेसर एतिएन एमिले बाऊलियु नामक एक फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने सल्फेट मॉलीक्यूल डी.एच.ई.ए. नामक एक ऐसी ओषधि विकसित करने का दावा किया है जो वृद्धावस्था की तकलीफों को दूर करेगी। इससे पूर्व साठ के दशक में बाऊलियु ने गुर्दे में उपस्थित एक ग्रन्थि का पता लगाया था जो प्राकृतिक तौर पर सल्फेट डी. हाइड्रोपी एंड्रोस्टेरोन पदार्थ की एक निश्चित मात्रा रक्त में निस्तारित करती है, फलस्वरूप बुढ़ापे में ऐंठन व दर्द जन्म लेते हैं। प्रोफेसर बाऊलियु के अनुसार आयु बढ़ने के साथ जैसे-जैसे खून में डी. एच. ई. पदार्थ की मात्रा घटती जाती है, ओषधि खून में इसके सान्द्रण को स्थिर बनाये रखती है।

रूसी वैज्ञानिकों ने बुढ़ापे को रोकने के लिए शरीर की थाइमस ग्रन्थि को दुबारा सक्रिय बनाने में सफलता हासिल की है। शरीर की रोगों से प्रतिरक्षा में सहायक यह ग्रन्थि उम्र ढलने पर कमजोर पड़ जाती है और बुढ़ापा आ घेरता है, जिसके लिए वैज्ञानिकों ने टी. एक्टिविन नामक स्राव विकसित किया है जिसके इंजेक्शन से कमजोर थाइमस ग्रन्थि फिर से सक्रिय हो जाती है और बुढ़ापा दूर भागने लगता है।

इधर अपने ही देश में लम्बे समय तक युवावस्था को बरकरार रखने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। प्रो० एम. एस. कानूनगो ने अपने 25 वर्षों के अनुसंधान के आधार पर बताया कि कैंसरकारी आन्कजीन वृद्धावस्था में अधिक क्रियाशील हो जाती है, जो आगे चल कर कैंसर और ट्यूमर जैसी बीमारियों का कारण बनती है लेकिन हार्मोनों द्वारा जीन की क्रियाशीलता को नियन्त्रित किया जा सकता है। इसी सम्बन्ध में प्रो० एस..एन. सिंह ने चूहों पर किये गये अपने अनुसंधानों के आधार पर बताया कि वृद्धावस्था में चूहों के शरीर में लैक्टेड डिहाइड्रिटेज समूह का एन्जाइम का समरूप एम-4 एन्जाइम हृदय की ऑक्सीजन की आवश्यकता को नियंत्रित करता है और एम-4 एन्जाइम की कमी हो जाने पर हृदय कार्य करना बन्द कर सकता है। लेकिन चूहों में स्टाडायोल नामक हार्मोन की सुई लगाकर उसमें एम-4 एन्जाइम की उपयुक्त मात्रा बरकरार रखी जा सकती है।

वैसे इस क्षेत्र की अब तक की सबसे उपलब्धि उन जीनों की खोज है, जिनसे शुक्राणुओं की पूंछ की रिपेयरिंग हो सकती है। दरअसल, शुक्राणुओं की पूंछ यानी टेलोमेरेज ही बुढ़ापा लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। टेलोमेरेज कोशिकाओं के विखण्डन के साथ छोटे होते चले जाते हैं। विज्ञान पत्रिका "नेचर" के अनुसार मसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) ने बुढ़ापे को रोकने की दिशा में एक महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है। पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार खमीर में पाया जाने वाला बुढ़ापारोधी (एंटीएजिंग) जीन एक एंजाइम है। यह एंजाइम किसी जीव के बूढ़े होने की प्रक्रिया को बहुत धीमा करने में सक्षम है। एम आई टी में जीव विज्ञान के प्रोफेसर लिओनार्ड पी. गारंटे, शोध छात्र शिन-इशिरो इमाइ और एम. एस-सी. के छात्र क्रिस्टोफर एम.आर्मस्ट्रांग ने अपने इस अध्ययन में यह भी पता लगाया है कि यदि मेटाबोलिज्म की दर धीमी हो जाती है तो बुढ़ापे की प्रक्रिया भी धीमी हो जाती है। इससे पहले हुए प्रयोगों से यह पता चला था कि यदि सामान्य स्तर के मुकाबले सिर्फ 70 फीसदी कैलोरी ही ली

(शेषांक पृष्ठ 9 पर)

मानव रोगों में पालतू पशुओं की भूमिका

✍ भानु प्रताप सिंह एवं राम स्वरूप सिंह चौहान

मनुष्य अपने जीवन के लिए पालतू पशओं या उनके उत्पादों पर निर्भर करता है। हम बिना पशु उत्पादों के जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। मुख्य रूप से दूध, चीज, पनीर, खोया, क्रीम व क्रीम से बने पदार्थ, ऊन, चमड़े आदि हमारे रोजमर्रा की कुछ वस्तुएँ हैं जिनका हम उपयोग करते हैं। क्या कभी हमने सोचा है कि इन उत्पादों के प्रयोग में थोड़ी सी असावधानी से हमें रोग लग सकता है। यदि ये उत्पाद किसी ऐसे पशु से आ रहें हैं जो किसी रोग से ग्रसित है तो स्वाभाविक है कि उसका कुछ अवशेष तो इसमें आयेगा ही। यहां पर यह भी जान लेना आवश्यक है कि हम जिन पशुओं के सम्पर्क में आते हैं उनसे भी हमें रोग लग सकते हैं। जैसे ग्रामीण/शहरी क्षेत्रों में गाय, भैंस, बकरी, भेड़, मुर्गी आदि से। आधुनिक परिवेश के परिवारों में कुत्ता, बिल्ली आदि रखना एक फैशन हो गया है। इन पालतू पशुओं से भी मनुष्य को रोग लग सकते हैं।

पशु से मनुष्य में रोग के स्थानान्तरण को जूनोसिस रोग कहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अब तक लगभग 300 ऐसे विभिन्न रोगों का पता चला है जो पशु–पक्षियों से मनुष्य में हो सकते हैं। यहां हम कुछ ऐसे जूनोसिस रोगों के विषय में वर्णन कर रहे हैं जो हमारे देश में सामान्यतया देखने को मिलते हैं।

1. क्षय रोग (टी.बी.)

क्षय रोग मायकोबैक्टीरियम नामक जीवाणु की ट्यूबरकुलोसिस तथा बोविस प्रजातियों द्वारा होता है। रोग के जीवाणु रोगग्रस्त पशु द्वारा सम्पर्क या दूध से मनुष्य में चले जाते हैं। आमतौर पर रोगग्रस्त पशु के दूध में इन जीवाणुओं की उपस्थिति देखी गयी है। यदि दूध या उसमें बने पदार्थ पूरी तरह जीवाणुविहीन नहीं किये गये हैं तो यह रोग मनुष्य में हो सकता है। आमतौर पर ग्वालों, पशु सेवकों, पशुचिकित्सक या सहायकों में यह रोग देखा गया है। मगर बिना उबला/पाश्चराइज किया दूध पीने या दूध से बने पदार्थों जैसी चीज, क्रीम आदि से मनुष्य में संक्रमण फैलता है। आमतौर पर माना जाता है कि आइसक्रीम, फ्रूटक्रीम, पेस्ट्री या केक पर लगी क्रीम में संक्रमणकारी जीवाणु रह जाते है और ये मनुष्य को रोगग्रस्त कर सकते हैं। इसी प्रकार कम पकाया कच्चा मांस खाने वाले लोगों में भी यह रोग हो सकता है। आमतौर पर उन व्यक्तियों में क्षय रोग होने की संभावना अधिक होती है जो दूध/मांस के सम्पर्क में रहतें हों जैसे–कुक, रसोईये, महिलाएं, मांस काटने वाले लोग आदि। यदि कच्चा मांस या दूध प्रयोग किया जा रहा है व हाथों में कहीं चोट है या थोड़े भी कटे फटे हैं तो उसके द्वारा भी क्षय रोग के जीवाणु व्यक्तियों में प्रवेश कर सकते हैं।

इस रोग के होने की सम्भावना उन व्यक्तियों में और अधिक हो जाती है जिनमें विटामिन ए तथा सी की कमी होती है। क्षय रोग का संक्रमण आंत की लसिका गांठों में पड़ा रहता है व व्यक्ति सामान्य रहता है मगर जब ऐसे व्यक्तियों की रोगरोधी क्षमता किसी भी कारण से कमजोर हो जाती है तो जीवाणु अपना असर दिखाना शुरू कर देते हैं तथा रोग के लक्षण उत्पन्न करते है जिनमें हल्का बुखार (99–100^0 फा.), कमजोरी, थकान, काम करने के प्रति अनिच्छा, चिड़चिड़ापन, खिन्नता, किसी भी काम में मन न लगना आदि प्रमुख हैं। ऐसे व्यक्तियों के रक्त परीक्षण में ई. एस. आर. बढ़ा हुआ मिलता है। यदि समय रहते रोग का उपचार न कराया जाय तो ये जीवाणु शरीर को खोखला कर देते हैं। इस रोग से स्त्रियों में गर्भाशय/बच्चेदानी का क्षय होने से बांझपन हो सकता है। रोग के उपचार के लिए रिफेम्पिसिन, आयसोनियाजिड, एथमब्यूटोल या पैराअमीना सैलीसिलिक एसिड आदि दवायें चिकित्सक की सलाह से लेनी चाहिए। साथ में पौष्टिक भोजन व ताकत की दवाएँ जैसे विटामिन, खनिज लवण आदि लें।

2. ब्रुसैलोसिस

यह ब्रुसैला जीवाणु की कई प्रजातियों जैसी एबॉर्टस तथा मैलीटैन्सिस से होता है जो पालतू पशुओं से दूध या मांस या इनसे बने पदार्थों द्वारा मनुष्य में आ सकते हैं। इनमें से ब्रुसैला की मैलीटैन्सिस प्रजाति ज्यादा खतरनाक होती है। यह प्रजाति अधिकतर बकरी या भेड़ के दूध में मिलती हे और इसके द्वारा मनुष्यें

में पहुंचती है। इस रोग से प्रभावित मनुष्य में जोड़ों में दर्द, गर्दन में दर्द (स्पोंडिलोसिस), पीठ दर्द, हल्का बुखार, अण्डकोश की सूजन, रात्रि में पसीना आना, काम में मन नहीं लगना व निश्चेष्ट पड़े रहना आदि प्रमुख लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त महिलाओं में यह जीवाणु गर्भपात कर सकता है व बच्चेदानी और डिम्बवाहिनी की सूजन कर बांझपन उत्पन्न करता है।

इस रोग के निदान के लिए रोगी व्यक्ति का रक्त परीक्षण किया जाता है। उपचार के लिए किसी योग्य चिकित्सक की सलाह से टैट्रासाइक्लिन या सिप्रोफ्लाक्सिन दवाएँ कम से कम एक माह तक लें।

3. क्यू ज्वर

यह रोग एक प्रकार के सूक्ष्म जीव रिकैट्सिया द्वारा होता हैं। यह सूक्ष्मजीव साधारणतया पशु से मनुष्य में संक्रमित दूध या मांस से पहुंचता है व रोग उत्पन्न करता है। इस रोग में रोगी व्यक्ति को बुखार आता है व उसके बाद ठन्ड लगती है। रोगी अपने दैनिक कार्यों के प्रति उदासीन रहने लगता है। सामान्यतया ऐसे रोगी व्यक्ति आराम महसूस नहीं करते तथा उन्हें भूख भी कम लगती है। पैर की मांस पेशियों में दर्द रहना, सिर दर्द, नींद न आना, जिगर व तिल्ली की सूजन बढ़ जाना आदि इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। इस रोग के सूक्ष्मजीव पाश्चराइजेशन ताप पर भी दूध में जीवित रह जाते हैं।

इस रोग के निदान के लिए रक्त के नमूने का परीक्षण किया जाता है तथा उपचार एन्टीबायोटिक दवाओं द्वारा किया जाता है जिसमें टेट्रासाइक्लिन प्रमुख है। यह दवा चिकित्सक की सलाह से लेना चाहिए। दवाओं का सेवन कम से कम 15 दिन तक अवश्य करें।

4. सालमोनैलोसिस (टाइफाइड/मियादी बुखार)

यह रोग एक प्रकार के जीवाणु सालमोनैला से होता है। जो संक्रमित पानी ,दूध, मांस, अण्डे आदि से मनुष्य में रोग उत्पन्न कर सकता है। यह जीवाणु मुर्गी के मांस तथा अण्डों में बहुतायत से होता है। जो व्यक्ति अधपका/कच्चा अण्डा या मांस खाते हैं या इनके सम्पर्क में रहते हैं उनमें यह रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। इस रोग में रोगी वयक्ति को बुखार रहता है व आंतों में गड़बड़ी रहती है। कमजोरी, थकान, दस्त आदि इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। यदि उचित इलाज़ न किया जाय जो यह जानलेवा भी हो सकता है। रोग के पूर्ण निदान के लिए भविडाल परीक्षण किया जाता है। उपचार के लिए एन्टीबायोटिक दवाएँ लम्बे समय तक लेनी होती है जो कि योग्य चिकित्सक की देखरेख में ताकत की दवाओं के साथ लेनी चाहिए।

5. अलर्क रोग

यह रोग एक बहुत ही खतरनाक विषाणु से होता है जो अक्सर पागल कुत्तों के काटने से मनुष्यों में रोग उत्पन्न करता है। वैसे नेवला भी यह रोग फैला सकते हैं। कुत्ते के काटने के 10 दिन से 3 वर्ष तक कभी भी यह रोग हो सकता है। सामान्यता 2 महीने के अन्दर काटे गये व्यक्ति में पागलपन के लक्षण प्रकट हो सकते है। रोगी व्यक्ति पानी नहीं पीता व पानी से डरता है क्योंकि पानी पीते ही रोगी के गले में दर्द होने लगता है। रोगी व्यक्ति की गर्दन ऐंठ जाती है तथा मुंह से लार गिरती है, मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है व रोगी को पक्षाघात हो जाता है। रोगी की मृत्यु 10–20 दिनों में हो सकती है। एक बार रोग के लक्षण प्रकट होने पर इस रोग का उपचार संभव नहीं है अतः कुत्ते के काटते ही इसके प्रतिरोधी टीके लगवाना चाहिए। रोग के बचाव के लिए कुत्तों को भी टीका लगवाना चाहिए।

6. टोक्सोप्लाज्मोसिस

यह रोग एक प्रोटोजोआ परजीवी से होता है जिसे टोक्सोप्लाज्मा गोन्डाई कहते हैं। यह रोग मनुष्य में प्रायः संक्रमित कुत्तों व बिल्लियों से फैलता है। इस रोग से ग्रसित होने पर रोगी व्यक्ति के शरीर पर फुन्सी निकल आती है व ल्यूकीमिया के लक्षण प्रकट होते हैं। गुर्दों व जिगर की सूजन हो जाती है। गर्भवती स्त्री में गर्भपात या मरे हुए बच्चे के पैदा होने की संभावना रहती है। महिलाओं में गर्भपात या बांझपन का उपचार/निदान करते समय इस रोग का परीक्षण भी किया जाता है। रोगी बच्चों में इस रोग से प्रभावित होने पर मिर्गी के दौरे पड़ते हैं। उपचार के लिए सल्फोनेमाइड या पाइरीमिथीमीन दवाएं दी जाती हैं जो योग्य चिकित्सक की देखरेख में लेनी चाहिए।

7.हाइडेटिक सिस्ट रोग

यह रोग फीताकृमि परजीवी के बच्चे इकाइनोकोकस या सिस्टीसरकस से होता है जो पशुओं के मल से दूषित खाद्य पदार्थों, शाकसब्जी, धूल, पानी आदि द्वारा मनुष्यों में पहुंच कर रोग उत्पन्न करते हैं। मांस में विशेष रूप से ये सिस्ट पाये जाते हैं जिन्हें

खाने स रोग और तीव्र गति से होता हैं इस रोग के सिस्ट शरीर के जिस अंग में बनते हैं उसी प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं। रक्त परीक्षण करने पर पता चलता है कि रोगी व्यक्तियों में इयोसिनोफिल कोशिकाएं बढ़ी हुई हैं। इस रोग का उपचार काफी कठिन है फिर भी मैवेन्डेजोल दवा दी जाती है जिससे कुछ फायदा होता है। यह दवा हमेशा चिकित्सक की सलाह से लें।

पशुजन्य रोगों से बचाव के उपाय

1. पशुओं के सम्पर्क के बाद हाथ साबुन या कीटनाशक दवाओं से साफ करने चाहिए।
2. दूध उबालकर पीना चाहिए, दूध को कम से कम 5 मिनट तक उबालना चाहिए।
3. क्रीम या उससे बने पदार्थ लेने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि ये पाश्चराइज क्रीम के हों।
4. कुत्तों से सावधान रहना चाहिए। सुबह-शाम घूमते समय छड़ी लेकर घूमना चाहिए।
5. अपने पालतू कुत्तों को समय-समय पर टीके लगवाते रहना चाहिए तथा इन्हें सड़कछाप कुत्तों से दूर रखना चाहिए। कुत्ता घुमाते समय छडी लेकर निकलें ताकि गली-मोहल्ले के कुत्तों से आपका पालतू कुत्ता झगड़ा न करे।
6. खाने पीने की वस्तुएं ढक कर रखें-घर में चूहे हो तो उनके मारने की दवा का प्रयोग करना चाहिए।
7. बीमारी होने पर योग्य चिकित्सक की सलाह लें व दवा का पूरा कोर्स लें। दवा बीच में न छोड़ें अन्यथा बीमारी दुबारा हो सकती है।

विकृति विज्ञान विभाग
पशु चिकित्सा महाविद्यालय
गो.ब.पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
पंतनगर-263145 (उ.प्र.)

पृष्ठ 6 का शेष भाग

जाये तो इससे जीवन लम्बा हो सकता है। प्रयोग खमीर, कीड़ों व चूहों पर किये गये थे। अब गारंटे के अध्ययन से भी इसकी पुष्टि हो रही है।

मनुष्य को एक नया हथियार मिला है- वृद्धि हारमोन (ग्रोथ या सोमैटोट्रॉपिक हारमोन)। छठे दशक के आखिरी सालों में वृद्धि हारमोन का पता चला था। यह मस्तिष्क के बीचों-बीच में स्थित पीयूष ग्रन्थि (पिट्यूटरी ग्लैंड) में बनता है। शुरू-शुरू में इसे मानव शवों से निकाला जाता था और यह बहुत थोड़ी मात्रा में उपलब्ध था। इस कारण दुनिया भर के चिकित्सकों में यह आम सहमति बनी कि इसका उपयोग सिर्फ उन बच्चों के इलाज में किया जायेगा जो इसे खुद अपने शरीर में नहीं बना पाते।

चीनी वैज्ञानिकों ने एक दवा बनाने का दावा किया है जिसके असर से आदमी देर से बूढ़ा होता है। इस दवा का परीक्षण एक पंडे पर किया गया। पाया गया 29 साल की उम्र में भी यह पंडा बिल्कुल स्वस्थ और खुश है। वह किसी युवा पंडे की तरह उछल कूद करता रहता है जबकि इस उम्र के पंडे 80 साल के आदमी की उम्र के समतुल्य होती है। एस. आई. आई. सी. मेडिकल इंस्टीट्यूट के विज्ञानी इस दवा को गोलियों के रूप में बाजार में उतारने की योजना बना रहे हैं। मुख्य शोधकर्ता जुओ पू [illegible] बताते हैं कि दवा में केवल प्राकृतिक चीजों का इस्तेमाल किया गया है। फिलहाल उन्होंने इन चीजों का नाम नहीं बताया है। बुढ़ापे की दस्तक को अनसुना कर जवानी को अधिक दिनों तक बरकरार रखने की वैज्ञानिकों की मुहिम जारी है।

21वीं सदी में क्या वैज्ञानिक बुढ़ापे पर विजय हासिल कर पायेंगे ? वैसे इस प्रश्न का उत्तर तो भविष्य के गर्भ में है किन्तु जिस प्रकार के उच्चस्तरीय शोध हो रहे हैं उन्हें देखते हुए ऐसी आशा है कि निकट भविष्य में ही वैज्ञानिकों को बड़ी सफलता प्राप्त हो जायेगी।

सांइस टाइम्स न्यूज एण्ड व्यूज
67, अण्टा, शाहजहांपुर-242001

संभव हुई मौसम की निगरानी

✍ सूर्यभान सिंह 'सूर्य'

प्रकृति के पहरेदार क्या कानाफूसी कर रहे हैं, यह बात हमारी समझ से हमेशा बाहर रही है। मौसम का रुख कब अचानक बदल जाएगा और पूरा का पूरा देश सूखा या बाढ़ से तबाह हो जाएगा अथवा भूकम्प या चक्रवात के व्यूह में फंसकर चकनाचूर होने लगेगा, इसकी जानकारी किसी को नहीं रहती। यहां तक कि आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित वेधशालाओं और शोधशालाओं में बैठकर प्रकृति और दूर मौसम की रहस्यमय दुनिया में लगातार निगहबानी कर रहे मौसम वैज्ञानिक भी चकमा खा जाते हैं। पिछले साल से कई बार भारतीय मौसम विज्ञानियों ने धोखा खाया। पिछले से पूर्व वर्ष जाड़े में सावन–भादों सी बारिश हुई तब उन्हें कोई पूर्व जानकारी नहीं मिली जबकि गत वर्ष ज्यादा बारिश की भविष्यवाणी निराधार साबित हुई और कुछ ही समय उपरान्त सूखा व अकाल ने अपना तांडव शुरू कर दिया। अब देख लीजिए जनाब, न जाने कहां से अचानक मानसून इतना पहले आ टपका! बारिश शुरू हो गयी। कहने का तात्पर्य यह कि यदि मौसम के बदलते मिजाज का पूर्वानुमान संभव हो जाए तो प्राकृतिक आपदाओं से बचाव हेतु समुचित प्रबंधन किया जा सकता है।

मौसम के बदलते मिजाज और प्राकृतिक उतार–चढ़ाव के संबंध में पहले ही जान लेना काफी मुश्किल और आश्चर्यजनक काम है। समय के गर्भ में कौन–कौन सी रहस्यमय घटनाएं छिपी होंगी, पता नहीं चलता है। देश–दुनिया में स्थापित मौसम पूर्वानुमान केन्द्रों और अभी तक विकसित विज्ञान एवं तकनीक से कुछ समय आगे संभावित घटनाओं की ही जानकारी मिल पाती है और कभी–कभार वह भी मिथ्या साबित होती है। किन्तु, विश्व–समुदाय इस बात से काफी हतप्रभ और आशान्वित है कि आने वाले समय में एक दशक आगे का मौसम भी हमारी जानकारी में रहेगा। वैज्ञानिकों का एक अंतर्राष्ट्रीय शोध–समूह इस संबन्ध में अपनी सफलता के एलान का बेसब्री से इंतजार कर रहा है। सोचिए मिशन में सफलता मिलने के पश्चात् जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदा–सूखा, बाढ़, चक्रवात, भूकम्प इत्यादि की भविष्यवाणी कितनी हैरतअंगेज होगी !

मौसम के तुनकमिजाजी तेवरों का निशान प्रायः हरेक देश में होता रहा है। आज दुनिया का प्रत्येक देश मौसम के गर्भ में झांकने की कोशिश में जुटा है और इसे एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में देखा जाता है। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में एशियाई देशों के लोग प्राकृतिक आपदाओं के सीधे निशाने पर रहे हैं। 1995 में महाराष्ट्र के लातूर जिले में विनाशकारी भूकम्प आया। इसकी तस्वीर दिलों से गायब भी नहीं हुई थी कि उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में सैकड़ों लोग भूकम्प के झटकों में जान से हाथ धो बैठे। इसके पश्चात् हाल ही में उड़ीसा में आए भीषण चक्रवाती तूफान और सूखा तथा अकाल की विभीषिका के बारे में तो कुछ बताने की जरूरत ही नहीं महसूस होती। जापान में भूकम्प इतने अधिक आते हैं कि उसे भूकम्पों का देश ही कहा जाता है। एक प्रचलित जापानी लोककथा के अनुसार पृथ्वी एक विशाल मकड़े पर स्थित है। यह मकड़ा जब टांगें चलाता है तो भूकम्प की स्थितियां पैदा हो जाती हैं। इसी तरह भारतीय लोककथाएं ऐसी मान्यता प्रदान करती हैं कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी है और इसके फन हिलाने से भूकम्प आते हैं। कुछ इसी तरह की मान्यताएं अन्य प्राकृतिक आपदाओं–सूखा और बाढ़– के संबंध में भी प्रचलित हैं।

इन मौसम गुत्थियों को सुलझाने के लिए अब पूरा विश्व समुदाय प्रयास कर रहा है। भारत में इस समय करीब पांच दर्जन वेधशालाएं इस कार्य में लगी हैं जबकि सन् 1983 में ही योजना आयोग ने अपनी रिपोर्ट में 103 वेधशालाएं स्थापित करने की सिफारिश की थी। हालांकि, इनकी संख्या तो काफी है, किन्तु यहां दिनरात शोधरत भारतीय मौसम विज्ञान विभाग के वैज्ञानिक तथा राजधानी दिल्ली स्थित मौसम विज्ञान कार्यालय भी इस संबंध में कोई पुख्ता निष्कर्ष पर नही पहुंच सका है। पूर्वानुमान तो बड़ी दूर की बात है फिर भी अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक दल को मिली सफलता आशा की किरण लेकर आयी है। अभी तक चली आ रही विचार धारा कि प्राकृतिक घटनाएं एवं मौसम पूरी तरह से अज्ञात और अव्यवस्थित चीजें है और इनका कोई निश्चित तौर–तरीका या रास्ता नहीं होता, तोड़ते हुए वैज्ञानिकों ने यह कहा है कि मौसम का भी निश्चित और नियमित चालोचलन होता है। यह अंतर्राष्ट्रीय

शोध कार्यक्रम लगभग दो वर्ष पूर्व पेरिस में प्रारंभ किया गया था। उस समय इसमें 60 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। 'क्लाइमेट वैरिएशन'' यानी ''क्लाइवर'' नामक इस ,शोध कार्यक्रम में लगे वैज्ञानिकों को विश्वास है कि शीघ्र ही इस मिशन में कामयाबी मिल जाएगी और इसके उपरान्त दस वर्ष आगे तक मौसम की स्थिति क्या रहेगी, यह बताना कठिन नहीं होगा।

कुछ समय पूर्व यूनेस्को मुख्यालय में हुई वैज्ञानिकों की बैठक में इस मान्यता को खुलकर स्वीकार किया गया कि मौसम की दशाओं का भी एक निश्चित पैटर्न होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि मौसम के परिवर्तन का जनक समुद्र है। यदि समुद्र की गहराई में होने वाली हलचल का पूर्वानुमान लगाया जा सके तो मौसम की भविष्यवाणी करना कठिन नहीं होगा। यही सोचकर अब 'क्लाइवर' के शोधार्थियों ने मानसून, अलनीनो और समुद्री दोलनों की आवृत्ति, क्षमता व तीव्रता पर नजरें गड़ा रखी हैं। इसके सहारे वे यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि सूखा, बारिश, भूकम्प व उष्ण कटिबंधीय तूफानों का क्या कारण है।

इस मिशन में उन्हें काफी हद तक सफलता मिल चुकी है। वे जानते हैं कि समुद्री ताप व समुद्री धाराओं में उतार–चढ़ाव वायुमंड़ल की तुलना में काफी धीरे–धीरे होता है। किन्तु ऊष्मा एवं जलवायु के आदान–प्रदान से सब पानी में उसी तरह संभव है जैसा हवा में। वैज्ञानिकों ने समुद्री निरीक्षण नौकाओं को जब प्रशांत महासागर में छोड़ा तो नौकाओं ने समुद्री सतह के नीचे कुछ अति गर्म स्थानों का पता लगाया। कम्प्यूटर मॉडल इसे अलनीनों की पूर्व सूचना ही मान रहे हैं। इन परिणमों से शोधकर्ताओं में नई आशा एवं विश्वास का संचार हुआ है। इसी तकनीक के सहारे वे अब तक उत्तरा अटलांटिक दोलन जैसी अन्य जलवायु कलाओं को जानने का प्रयास कर रहे हैं। ज्ञात हो चुका है कि उत्तरी अटलांटिक दोलन की उत्पत्ति उत्तरी अटलांटिक पर दबाव से होती है। यह सूखा, वर्षा, तूफान, बाढ़ व पश्चिमी यूरोप में होने वाले अधिकाश जलवायु परिवर्तनों के लिए जिम्मेदार है।

'क्लाइवर' का शोध–समूह इस नतीजे पर पहुंचा कि यह दोलन सप्ताह–दर–सप्ताह बदलता रहता है और इसके दीर्घकालीन पैटर्न होते हैं। इस दिलचस्प पूर्वानुमान कार्य में लगे वैज्ञानिकों को विश्वास है कि समुद्री धाराओं से इस पैटर्न का पता लगा लिया जाएगा। मौसम व समुद्रवैज्ञानिकों का यह प्रयास आशा जगाता है कि अब शीघ्र ही यह मालूम करने में कामयाबी मिल जाएगी कि मौसम के बदलते तेवरों के पीछे क्या रहस्य है और एक दशक आगे का मौसम पता चल जाया करेगा। 'क्लाइवर' के योजनाकार सिएटल विश्वविद्यालय के समुद्र वैज्ञानिक एंड साराचिक का कहना है, ' अब हम भविष्य को दूर तक देख सकते हैं।' कल्पना कीजिए उस समय की जब टेलीविजन और रेडियो स्टेशनों से 'आज का मौसम' की जगह 'और अब दस साल बाद का मौसम' बताया जाएगा। काश, यह शोधकार्य कुछ पहले शुरू हुआ होता! चक्रवात में फंसकर और अकाल में झुलसकर भारत की कई करोड़ आबादी अस्तित्व के मुहाने पर नहीं पहुंचती, हालांकि, इस कल्पनातीत सफलता का दास्तान अभी शोधशालाओं के भीतर ही कैद है। जन–साधारण के लिए इसका उपयोग होने लगे तो वरदान ही साबित होगी।

डी–1/7, न्यू कोंडली
दिल्ली–96

भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद 'डीम्ड विश्वविद्यालय' घोषित

डॉ0 मुरली मनोहर जोशी, केन्द्रीय मंत्री, मानव संसाधन विकास, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी एवं महासागर विकास ने 12 अगस्त 2000 को भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद के प्रथम स्थापना दिवस के अवसर पर संस्थान को 'डीम्ड विश्वविद्यालय' की मान्यता प्रदान करने की घोषणा की। इस संस्थान ने सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा एवं शोध का केन्द्र बन कर एक वर्ष की अल्प अवधि में ही अपनी विशिष्ट पहचान बना ली है। इस संस्था के विशेष कार्य अधिकारी डॉ0 एम. डी. तिवारी के अथक परिश्रम से ही ऐसा संभव हो सका है।

इस अवसर पर प्रो. एम. जी. के. मेनन, प्रो. अजित राम वर्मा, प्रो. ए. एस. निगवेकर, प्रो. सी. एल. खेत्रपाल, प्रो. अशोक कुमार गुप्ता आदि ने कार्यक्रम को संबोधित किया।

– देवव्रत द्विवेदी

वैज्ञानिक अनुसंधान : उत्तरदायित्व तथा पारदर्शिता

✍ डॉ० मनोज पटैरिया

स्वाधीनता के बाद भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान और विकास कार्यक्रमों को काफी महत्व दिया गया और एक सुविचारित विज्ञान नीति की घोषणा की गई जिसके अनुसार निःसंदेह गत आठ पंचवर्षीय योजनाओं में हमने विज्ञान और प्रौद्योगिकी, कृषि, स्वास्थ्य, पर्यावरण, अंतरिक्ष और परमाणु विज्ञान के क्षेत्रों में आशातीत सफलताएं प्राप्त की हैं, जिन पर हमें गर्व होना स्वाभाविक है। सीमित साधनों, बाह्य और आंतरिक प्रभावों, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों और औपनिवेशिक प्रबंधन प्रणाली तंत्र के बावजूद हमारी सफलता पूरी दुनिया को चकित कर देने वाली है। इससे विगत 50 वर्षों में देश की वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगति संभव हो सकी है तथा विकास की एक स्थाई आधारशिला रखी जा सकी है।

परन्तु अभी ऐसे क्षेत्र हैं, जिन पर बुनियादी स्तर पर शोध और विकास की आवश्यकता है। पीने का पानी, सफाई, कचरे का निपटान, पानी और हवा का प्रदूषण तथा अंधविश्वास और कुरीतियाँ आदि ऐसी प्राथमिक समस्याएं हैं, जिनके विरुद्ध वैज्ञानिक संघर्ष हमारी पहली जिम्मेदारी है। वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में उत्तरदायित्व और पारदर्शिता को लेकर कई बार प्रश्न उठाए गए हैं। सबसे बड़ा प्रश्न आत्मावलोकन का है। आमतौर पर बताएं जाने वाले कारणों में वैज्ञानिकों की कार्य शैली, सोच और तरीकों पर प्रश्नचिन्ह तो लगाए जाते हैं, पर इस बात पर गौर शायद नहीं किया जाता है कि हर वैज्ञानिक का यह मूलभूत उत्तरदायित्व है कि वह अपने कार्य के बदले में, जितना शासन या समाज से प्राप्त करता है, कम से कम उतना तो उसे लौटाए। इसलिए किसी अन्य द्वारा निगरानी या समीक्षा किए जाने की अपेक्षा किए बगैर, वैज्ञानिकों को आत्म नियंत्रण, आत्म विवेचन और संयम से काम लेना होगा। इससे स्वतः ही विज्ञान जगत में उत्तरदायित्व और पारदर्शिता की वृद्धि होगी।

आजादी के बाद काफी समय तक वैज्ञानिक अनुसंधान का क्षेत्र एक आदर्श क्षेत्र माना जाता रहा है, और वैज्ञानिक समाज का एक सम्मानित व्यक्ति। परन्तु पिछले कुछ समय से स्थितियां बदली हैं और शायद राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक मूल्यों में होने वाले ह्रास का प्रभाव विज्ञान क्षेत्र पर पड़ा प्रतीत होता है। कुछ एक उदाहरण ऐसे भी हैं, जिनमें तथाकथित वैज्ञानिकों नें गलत तथ्य बता कर सस्ती लोकप्रियता या आर्थिक सहायता हासिल करने की कोशिश की। अनुसंधान परियोजनाओं में स्वेच्छाचारिता, साधनों का दुरुपयोग, अपव्यय आदि कुछ ऐसे पहलू हैं, जिनके निराकरण के लिए वैज्ञानिक कामकाज में और अधिक उत्तरदायित्व और पारदर्शिता का आना बहुत जरूरी है।

एक ओर वैज्ञानिक अनुसंधान में पारदर्शिता लाकर, जनता को वैज्ञानिक जानकारी देने की बात है तो दूसरी ओर बाकायदा नियमों और कानूनों की आड़ में इस पर प्रतिबंध लगाए गए हैं। जहां तक राष्ट्रीय सुरक्षा और जनहित का प्रश्न है, ये प्रतिबन्ध उचित हैं, लेकिन हर स्थान पर इनके सहारे लोगों को जानकारी प्राप्त करने के उनके मौलिक अधिकार से वंचित नहीं रखा जा सकता। दूसरी ओर चूंकि ज्यादातर वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य सरकारी क्षेत्र में हैं, इसलिए वैज्ञानिक भी सूचनाएं देने, अखबारों में लेख लिखने से कतराते हैं, जबकि ज्यादातर वैज्ञानिक शायद इस बात से अनभिज्ञ हैं, कि केन्द्रीय सेवा आचार अधिनियमों के अंतर्गत वैज्ञानिक विषयों पर लेखन, प्रकाशन और प्रसारण की छूट दी गई है। हालांकि कुछ संगठनों ने अपने यहाँ होने वाले अनुसंधानों की जानकारी संचार माध्यमों को देने पर रोक लगा रखी है, और यह अधिकार मात्र संस्थान के प्रमुख को दिया गया । इस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान में उत्तरदायित्व और पारदर्शिता एक संवेदनशील विषय है और इस पर बहुआयामी विचार विमर्श आवश्यक है। आइए इस संबन्ध में कुछ मूलभूत पहलुओं पर गौर करें।

बुनियादी आवश्यकताएं

आजादी के 50 वर्षों में हम लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाए हैं, जैसे साफ पीने का पानी, स्वच्छ हवा, रहने योग्य साफ सुथरा परिवेश आदि। इसलिए वैज्ञानिक समुदाय की एक मौलिक जिम्मेदारी है कि वे आम लोगों के बीच जा कर, उनके साथ मिल बैठकर उनकी स्थानीय स्तर की तकनीकी आवश्यकताओं

और रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़ी मुश्किलों को खोज निकालें तथा उन पर योजनावद्व,समयबद्ध और क्रमबद्व तरीके से काम करें। मैं कुछ वैज्ञानिकों को जानता हूँ, जिन्होंने समूह बना कर कुछ गांव, स्थान, क्षेत्र और आबादियां चुनी हैं, और वे उनके उत्थान के लिए काम कर रहे हैं, हालांकि यह कार्य उनकी निर्धारित कार्य सूची में सम्मिलित नहीं हैं। इस प्रकिया को बढ़ाया जाए। ज्यादा से ज्यादा वैज्ञानिक समाज और लोगों से जुडें, तभी विज्ञान का लाभ तेजी से लोगों तक पहुंच सकेगा। इस प्रकार समाज की बुनियादी आवश्यकताओं के तकनीकी समाधान प्रस्तुत करना, वैज्ञानिकों का एक प्रमुख उत्तरदायित्व होना चाहिए।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

21 सितंबर, 1995 को जब मूर्तियों द्वारा दूध पीने की कथित घटना हुई, तब आम लोग तो दूर, अनेक वैज्ञानिक यह मानने को तैयार नहीं थे कि मूर्तियों द्वारा दूध पीना सिर्फ एक भ्रम के सिवा कुछ नहीं और उस प्रक्रिया की पूरी वैज्ञानिक व्याख्या उपलब्ध है। जब दूध पिलाने वालों की कतारें बढती जा रही थीं, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग में एक समिति बनाई गई, जिसमें मैं भी था। हम लोगों ने तुरंत अनेक स्थानों पर जा कर स्थिति का बारीकी से अवलोकन किया, और पाया कि इसमें चमत्कार जैसी कोई चीज नहीं है। दूरदर्शन समाचारों में मैंने व मेरे एक साथी वैज्ञानिक ने घटना की पूरी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की, तुरंत प्रेस विज्ञप्ति जारी की, और संचार माध्यमों के द्वारा लोगों तक सच्चाई समय पर पहुंचाने के फलस्वरूप दूध पिलाने की होड़ में लगी लोगों की कतारें छंटने लगीं। इस प्रकार समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना भी वैज्ञानिकों का समाज के प्रति एक महान उत्तरदायित्व है। आमतौर पर माना जाता है कि विज्ञान की जानकारी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण होने से अनेक प्रकार की समस्याओं से निपटा जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, जैसा कि हम जानते हैं, और कुछ नहीं, सोचने, काम करने का एक तरीका है। जिज्ञासा, सूक्ष्म अवलोकन, जानकारी प्राप्त करना, प्रयोग द्वारा सत्यापन, विश्लेषण करना और तब किसी निष्कर्ष पर पहुंचना, यही है वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मूल तत्व। आमतौर पर देखा गया है कि अनेक वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयोग करते समय तो वैज्ञानिक विधि अपनाते हैं, लेकिन जब जीवन के अन्य पहलुओं की बात आती है, उनका नजरिया बदल जाता है। एक सर्वेक्षण में पाया गया है कि अंधविश्वासों, रूढ़ियों, पारंपरिक मान्यताओं से स्वयं वैज्ञानिक ही मुक्त नहीं हो पाए हैं। अतः आवश्यकता स्वयं में वैज्ञानिक सोच को जगाने की है, और उसे आम लोगों में फैलाने की। यह हमारी मैलिक जिम्मेदारी है। इतना निश्चित है कि यदि हमने इस जिम्मेदारी का निर्वाह सफलतापूर्वक कर लिया, तो अनेक समस्याएं खुद ब खुद मिट जाएंगी। यह पाया गया है कि वैज्ञानिक सोच होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि किसी ने विज्ञान का अध्ययन किया हो। कई विज्ञान पढ़े–लिखे और प्रयोगशालाओं में काम करने वाले वैज्ञानिकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी हो सकती है, जबकि दूसरी ओर कोई अनपढ़ सामान्य व्यक्ति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण हो सकता है, यह तो नजरिये और तौर तरीके पर निर्भर करता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग में, राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एनसीएसटीसी) ने देश में फैले कोई डेढ़ सौ अंधविश्वासों, चमत्कारों, करतबों का ब्यौरा तैयार किया है, जिनकी वैज्ञानिक व्याख्याएं उपलब्ध हैं। देश के विभिन्न इलाकों में प्रदर्शन, सह प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, ताकि जादू और तथाकथित चमत्कारों के द्वारा युगों से ठगी जाने वाली भेली–भाली जनता को जागरूक बनाया जा सके। पहले मजमा लगाकर चमत्कार दिखाए जाते हैं और बाद में चमत्कारों के पीछे जुगत का खुलासा किया जाता है और वैज्ञानिक ढंग से उनकी व्याख्या की जाती हैं। अंधविश्वास मिटाने और वैज्ञानिक सोच फैलाने में इस कार्यक्रम से काफी मदद ली जाती है।

वैज्ञानिक जानकारी

प्रायः वैज्ञानिक को समाज से अलग–थलग सा मान लिया जाता है और वैज्ञानिक भी आम जनता से संभवतया पर्याप्त रूप से जुड़ नहीं पाते। इस प्रकार उनके शोध कार्य से संबंधित जानकारियां सीधे लोगों में नही पहुंच पातीं। बहुत कम वैज्ञानिक हैं, जो वैज्ञानिक खोजों के बारे में आम लोगों के सामने, आम लोगों की भाषा में व्याख्यान देते हैं। इसी प्रकार समाचार पत्र–पत्रिकाओं, जिन्हें आम लोग पढ़ सकते हैं में वैज्ञानिक बहुत कम लिखते हैं। सिर्फ नई खोज करना या नई तकनीक विकसित करना ही पर्याप्त नहीं होता, जब तक कि उपयुक्त स्थान तक न पहुंचाया जाए। यह जानकारी हस्तांतरण से ही संभव है। अतः वैज्ञानिकों को स्वयं विज्ञान लेखन करने के साथ ही, विज्ञान लेखकों और पत्रकारों को इसके लिए सहयोग करना चाहिए। शोध कार्य के साथ–साथ शोध की वांछित जानकारी को लोगों तक पहुंचाना भी उनका एक विशेष उत्तरदायित्व है।

शोध परियोजनाएं

एक समय था जब वैज्ञानिक अकेले शोध कार्य किया

करते थे लेकिन अब टीम में शोध कार्य करने की परंपरा है, जो बहुआयामी और बड़ी शोध परियोजनाओं के लिए एक आवश्यकता बन गई है। लेकिन इसकी कुछ अपनी समस्याएं हैं। इसमें कुछेक लोगों को काम न करने के बावजूद परियोजना का श्रेय लेने का मौका मिलना ज्यादा आसान होता है। कुछेक विश्वविद्यालयों में तो अनुप्रयुक्त तथ्यों के आधार पर लाभ प्राप्त करने के प्रयास सामने आए हैं। फिर शोध परियोजना एक बार आरम्भ होने के बाद उसे निर्धारित समयावधि में पूरा करना, और उन उद्देश्यों को प्राप्त करना, जिनके लिए कोई परियोजना आरम्भ की गई थी, उसमें संलग्न वैज्ञानिकों का नैतिक कर्तव्य है। इसके लिए योजना निर्माण के स्तर से ही प्रयास करने होंगे।

नींव/ निर्माण

भारतीय विज्ञान को अधिक पारदर्शी और उत्तरदायी बनाने के लिए उपयुक्त नींव/निर्माण की आवश्यकता है। अतः वैज्ञानिक पदों पर चयन के समय ही अत्यधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, ताकि उपयुक्त व्यक्ति उपयुक्त स्थान पर पहुंचें। प्रो0 यशपाल ने इसके लिए बहुत अच्छा तरीका बताया है कि विशिष्ट पदों के लिए वैज्ञानिकों की पहचान करके, फिर उन्हें किसी संस्था को विकसित करने देना चाहिए न कि पहले संस्था सृजित कर के, उसमें फर्नीचर उपकरणों की भांति तथाकथित वैज्ञानिक भर लेने चाहिए। इसी प्रकार विज्ञान क्षेत्र में प्रशासन तंत्र के उच्च पदों पर वैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति होने से कहीं अधिक सुचारु व्यवस्था चल सकेगी, क्योंकि वैज्ञानिक पृष्ठभूमि वाला व्यक्ति, अन्य की तुलना में, वैज्ञानिकों की समस्याओं को ज्यादा ठीक प्रकार समझ सकेंगे। इसी प्रकार विज्ञान में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व लाने के लिए उपयुक्त नींव तैयार करनी जरूरी है। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि पुरानी गलतियां न दोहराई जाएं और तत्काल सुधारात्मक कार्यवाही करते हुए नए चरणों पर पर्याप्त तार्किकता बरती जाये।

संचार माध्यम और वैज्ञानिक पारदर्शिता

आज संचार माध्यमों अर्थात् समाचार पत्र–पत्रिकाओं, आकाशवाणी और दूरदर्शन आदि के पत्रकार आमतौर पर वैज्ञानिकों पर कटाक्ष करतें हैं कि वैज्ञानिक शोध की जानकारियां देने से कतराते हैं। और कई बार तो पत्रकार वार्षिक रिपोर्टें भी न मिल पाने की शिकायत करते हैं। वे स्वदेशी विज्ञान की कम कवरेज के लिए वैज्ञानिक संगठनों द्वारा पर्याप्त सूचनाएं न मिलने के कारण को जिम्मेदार ठहराते हैं। दरअसल यहां कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि क्या वैज्ञानिक वास्तव में ऐसा करते हैं, और दूसरा यह कि क्या उनके सामने कुछ प्रतिबंध हैं? आमतौर पर रक्षा मामलों को छोड़ कर वार्षिक रिपोर्ट आदि देने पर कोई प्रतिबंध नही हैं, और पत्रकारों को अपनी रिपोर्टों में उनका उपयोग करने की छूट है। लेकिन जहां तक ऐसी परियोजनाओं की जानकारी जो अभी पूरी नहीं हुई हैं, या जहां आवश्यकतानुसार पेटेण्ट नहीं लिया गया है, के बारे में वैज्ञानिक जानकारी नहीं दे सकते हैं। दूसरी ओर कुछ संस्थानों में प्रेस को जानकारी देने का अधिकार सिर्फ संस्थान के प्रमुख को होता है। ऐसी स्थित में भी वैज्ञानिक अपनी शोध परियोजनाओं पर जानकारी देने में असमंजस की स्थिति में पड़ जाते हैं। लेकिन वे अपनी या संस्थागत वे जानकारियां तो दे ही सकते हैं जो संस्थान के प्रकाशनों में प्रकाशित हो चुकी हैं। या फिर वे अन्य वैज्ञानिक विषयों पर लोकप्रिय लेख लिख सकते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक पारदर्शिता लाने के लिए वैज्ञानिकों को पहल करनी होगी तथा प्रशासनिक नियमों और विनियमों को भी अधिक उदार और युक्ति–संगत बनाना होगा।

दूसरा पहलू है पत्रकार वर्ग का, जिनसे वैज्ञानिक प्रायः नाखुश देखे गए हैं। वैज्ञानिक प्रायः आरोप लगाते हैं कि कुछ पत्रकार और लेखक अपुष्ट खबरें छापते हैं, या अपूर्ण परियोजनाओं पर सनसनीखेज समाचार बना कर छाप देते हैं, जिससे उन्हें (वैज्ञानिकों को) दुविधा का सामना करना पड़ता है। इसलिए वैज्ञानिक समुदाय के बीच अपनी साख और प्रतिष्ठा तथा विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए पत्रकारों और लेखकों को भी खबरों को चटपटा व मजेदार बनाने के चक्कर में वैज्ञानिक समाचारों और रिपोर्टों को तोड़ मरोड़कर पेश नहीं करना चाहिए और न ही अपुष्ट या अधूरी परियोजनाओं पर लिखना चाहिए और असल उद्देश्य पाठकों को विज्ञान की सही जानकारी देना होना चाहिए।

एन.सी.एस.टी.सी. की भूमिका

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधी जानकारी आम लोगों तक पहुंचाने तथा लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने के क्षेत्र में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एन.सी.एस.टी.सी.) की विषेश भूमिका है। विभिन्न शोधशालाओं में जो अनुसंधान और विकास कार्य हो रहा है, वह तब तक उपयोगी नहीं बन सकता जब तक कि उसकी जानकारी उपयोगकर्ताओं तक न पहुंचे। एन. सी. एस. टी.सी. ने सभी संचार माध्यमों के जरिए यह जानकारी लोगों तक पहुंचाने का बीड़ा उठाया है। समाचार पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो और टेलीविजन, नुक्कड़ नाटकों, कठपुतली प्रदर्शनी, लोक कलाओं

(शेषांक पृष्ठ 20 पर)

अब होने लगेगी रुद्राक्ष की खेती

✍ प्रमोद नारायण मिश्र

रुद्राक्ष से हम सभी परिचित हैं। इसके धारण करने से आशातीत सफलता प्राप्त होती है। पहले रुद्राक्ष को साधु, महात्मा तथा तांत्रिक ही धारण करते थे क्योंकि इसकी चुम्बकीय शक्ति के कारण धारक को धैर्य और शान्ति मिलती है। धीरे–धीरे आम आदमी भी रुद्राक्ष को धारण करने लगे क्योंकि हृदय रोगों एवं रक्तचाप में यह रामबाण सिद्ध होने लगा। इसमें चुम्बकीय शक्ति है जो हृदय को प्रभावित करती है। अब विदेशों में भी हृदय रोग विशेषज्ञ रुद्राक्ष धारण करने की सलाह देने लगे हैं। रुद्र का अर्थ भगवान शिव से है तथा अक्ष का अर्थ आंसू है। यानि रुद्राक्ष भगवान शिव के आंसू से बना है। कहा जाता है कि भगवान शिव द्वारा त्रिपुरासुर का वध किये जाने पर देवताओं के विजयोल्लास में स्वयं भगवान शिव भी हंसने लगे थे। हंसी के दौरान उनकी आंखों से आंसू गिरे उन्हीं से रुद्राक्ष का वृक्ष उत्पन्न हुआ।

रुद्राक्ष के धार्मिक एवं वैज्ञानिक महत्व को देखकर तुलसी के पौधों की तरह लोग अपने बगीचे में या घर के आसपास रुद्राक्ष के वृक्ष को लगाना चाहते हैं किन्तु इसके लिए पौधे उपलब्ध नहीं हैं। रुद्राक्ष के वृक्ष नेपाल, असम तथा अरुणाचल के जंगलों में पाये जाते हैं। अभी तक यह जंगली उत्पादन माना जाता है अतः घरेलू वृक्ष के रूप में विकसित नहीं हो सका है। जंगलों में इसके वृक्ष की देखभाल नहीं हो पा रही है। पशु–पक्षियों द्वारा फल खाने के दौरान रुद्राक्ष बर्बाद भी हो जाते हैं। इन्हीं सब भावनाओं से प्रेरित होकर ही बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के वनस्पति विज्ञान विभाग के प्रोफेसर डॉ0 लक्ष्मी नारायण शुक्ला ने प्रयोगशाला में टीश्यू कल्चर के माध्यम से रुद्राक्ष के वृक्ष का प्रोटोकोल तैयार करने की बात सोची और अपना प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार कर बायोटेक्नोलोजी विभाग, भारत सरकार के पास भेजा। वहां डॉ. शुक्ला के प्रोजेक्ट की सराहना की गयी और मई, 1998 से बिहार विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में "माइक्रो प्रोपेगेशन ऑफ रुद्राक्ष टीश्यू कल्चर" के नाम से शोधकार्य प्रारंभ हुआ। शुरू में डॉ0 शुक्ला को बड़ी कठिनाई हुई क्योंकि रुद्राक्ष का वृक्ष बिहार में कहीं मिल नही रहा था तथा बहुत कम लोग इसे पहचान रहे थे। वृक्ष के अभाव में शोध प्रारंभ कठिन था। वे दिन रात खोज में लगे रहे और अंततः सीतामढ़ी के एक चिकित्सक पदाधिकारी के बगान में तीनमुखी रुद्राक्ष का वृक्ष उन्हें प्राप्त हो गया। उसी वृक्ष के टीश्यू से अपने चार सहयोगी डॉ0 मंजू कुमारी, मनोज कुमार, जयदीप चौधरी तथा अरविन्द कुमार गुप्ता तथा फोटोग्राफर सुभाष चन्द्र सिंह के सहयोग से शोध शुरू कर दिया। एक साल में वे सफलता की ओर अग्रसर हैं।उनको विश्वास है कि वे नियत अवधि तीन साल के भीतर प्रयोगशाला में टीश्यू कल्चर विधि से रुद्राक्ष का प्रोटोकोल तैयार कर लेंगे। फिर बड़े पैमाने पर पौधे तैयार कर इसकी खेती की जा सकेगी। उनकी मान्यता है कि बिहार की उपजाऊ धरती में रुद्राक्ष की खेती सफलतापूर्वक होगी। इससे शुद्ध रुद्राक्ष की प्राप्ति कर लोग अपनी धार्मिक भावना की तुष्टि तो करेंगे, ही कई असाध्य रोगों से मुक्त भी होंगे तथा आर्थिक लाभ भी होगा। चूंकि रुद्राक्ष की मांग विदेशों में अत्याधिक है अतः बडे पैमाने पर रुद्राक्ष सप्लाई करने से देश को विदेशी मुद्रा भी प्राप्त हो सकेगी। डॉ. शुक्ला कहते हैं कि आज उनके पास तीनमुखी रुद्राक्ष उपलब्ध है तो बड़े पैमाने पर तीनमुखी रुद्राक्ष के पौधे तैयार किये जा सकेंगें किन्तु उन्हें यदि एकमुखी रुद्राक्ष का वृक्ष कहीं मिल गया तो इसी विधि से बड़े पैमाने पर वह एकमुखी रुद्राक्ष के पौधे तैयार कर सकेंगे। ज्ञातव्य हो कि सर्वश्रेष्ठ तथा दुर्लभ रुद्राक्ष एकमुखी है। इसका एक बार दर्शन करने से ही सारे पाप तथा कष्ट दूर हो जाते हैं। इसे सुख–सौभाग्यदायक तथा कुंडलिनी को जागृत करने वाला रुद्राक्ष माना गया है। इस संबन्ध में डॉ. शुक्ला ने असम एवं अरुणाचल के वन विभाग को लिखा है। रुद्राक्ष पर इस तरह का शोध पूरे देश में पहली बार मुजफ्फरपुर में ही डॉ. शुक्ल के कुशल नेतृत्व में शुरू हुआ है। यदि यह शोध सफल होता है तो सचमुच बिहार के लिए गौरव की बात होगी।

डॉ. शुक्ला के अनुसार पूर्ण विकसित आठ साल पुराने रुद्राक्ष की लम्बाई 40 फीट तथा परिधि 10–15 फीट होती है। इसमें लम्बे कम चौड़ाई के हरे पत्ते

(शेषांक पृष्ठ 17 पर)

पदार्थवाद

✍ श्री बालकृष्ण भट्ट

हम अपने चारो ओर जो कुछ देखते भालते हैं वह सब पदार्थ (मैटर) है। पदार्थ सकल तीन प्रकार के हैं। चेतन, अचेतन और उद्भिज। जैसे कोयला और महारानी के मुकुट में प्रकाशमान हीरा एवं महापंकिल दश हाथ की गहराई के नीचे मैला पानी और ऊंचे पवर्तों की चोटी पर सुशोभित तुषार राशि एक ही पदार्थ हैं। किन्तु उन दोनों की अवस्था भेद से उनके भिन्न-भिन्न नाम पड़ गये हैं।

इसी तरह से हमारे चारों ओर समस्त वस्तुयें आदि पदार्थ इस एक नाम से व्यवहृत हो सकते हैं। परन्तु अवस्था भेद से चेतन, अचेतन और उद्रिज इसकी भिन्न संज्ञा हो गई। यदि कहो, एक वृक्ष और उसी की एक शाखा जो वृक्ष से काट कर अलग कर दी गई है, दोनों एक ही उपादान कारण से निर्मित हैं, उन दोनों में बड़ा अन्तर है। शाख जो वृक्षों से काट कर अलग कर दी गई है, वह न बढ़ेगी; और वृक्ष नित्य-नित्य बढ़ता जायेगा। सुतराम कटी हुई शाखा और वृक्ष दोनों न केवल एक पदार्थ ही हैं वरन् वृक्ष में पदार्थ के अतिरिक्त कुछ और भी हैं जिससे इसमें वृद्धि और जीवन होता है, जिसे हम ईश्वरीय शक्ति कहेंगे, जो पदार्थ से भिन्न है। यही अंग पंचभूतात्मक पदार्थ निर्मित मनुष्य से लेकर कीट पतंग प्राणी मात्र में है। क्योंकि प्राणी का शरीर यद्यपि पदार्थों के संयोग से बना है परन्तु पदार्थ भिन्न जीवन जो एक ईश्वरीय शक्ति है इसके बिना प्राणी वर्ग का चलना-फिरना और अपनी इच्छा के अनुसार काम करना इत्यादि नहीं हो सकता।

हां यह सत्य है पर यदि यह तुम्हें स्पष्ट कर दिखा दिया जाय कि पदार्थ अवस्था विशेष से अपना निर्माण आप ही कर लेते हैं। अपनी गति भी अपने ही बल से अपने सम्पादन कर सकते हैं, तो ईश्वरीय शक्ति यह कल्पित करने का क्या प्रयोजन है। प्रत्यक्ष प्रमाण छोड़ अनुमान करने की आवश्यकता क्या है? स्फटिक को बनाते समय जिसने प्रारम्भ से अन्तलों ध्यानपूर्वक देखा है, वह भली भांति समझ सकता है कि किस प्रकार इसका आरम्भ होता है। कैसे उसकी वृद्धि हो जाती है, और फिर किस तरह स्फटिक (क्रिस्टल) बन कर समाप्त हो जाता है।

हमारे पाठकों में बहुतेरों ने मिश्री बनते देखा होगा। उसका बनना भी ठीक स्फटिक के समान है। लोन का एक टुकड़ा दो चार बूंद पानी में घोलो। कुछ देर तक रखने पर जब वाष्प रूप होकर उड़ जायेगा। शेष द्रव्य पदार्थ में परस्पर आकर्षण होना प्रारम्भ हो जायेगा। देखते-देखते उसमें एक, दो, तीन – क्रम क्रम से असंख्य छोटे-छोटे अंकुर हो आवेंगे और चारों ओर इकट्ठा होने लगेंगे। परिणाम में वे ही एक-एक स्फटिक (क्रिस्टल) हो जायेंगे। और उन्हें अनुवीक्षण यंत्र से यदि देखो तो त्रिकोण, चतुष्कोण, पंचकोण, आदि ज्यामिति के अनेक आकार जो कल्पित हो सकते हैं, सब प्रकार के स्फटिक दिखाई पड़ेंगे। किसने उन स्फटिकों में प्रत्येक रवों को मिला कर इकट्ठा कर दिया है। और उन रवों को किसने पैदा किया है। सिवा इसके कि पदार्थ की अवस्था विशेष में अपना निर्माण आप ही कर लेते हैं।

एक बीज बोवो। कुछ काल में अपने अनुकूल गर्मी पाकर बीज मिट्टी से अंकुर आता है। और सूरज के घाम की सहायता से वायु के द्वारा अपने वृद्धिनोपयोगी द्रव्यों को ग्रहण करने लगता है। कुछ दिनों में वही अंकुर एक छोटा सा पेड़ हो कर अन्त में फूल-फल से लदकर अपूर्व शोभा धारण करता है। स्फटिक की उत्पत्ति से उसकी तुलना करो तो दोनों का जन्म ठीक एक ही तरह का पाओगे। स्फटिक में भी जैसा पहले लिख आये हैं अनुकूल गर्मी पाकर पहले अंकुर या रवे जम आते हैं। धीरे-धीरे वे ही रवे टुकड़े होकर स्फटिक बन जाते हैं। स्फटिक जैसे दो या दो से अधिक द्रव्य में से अपने निर्माण की उपयोगी वस्तु को ढूंढ कर अपने को आप ही गढ़ लेता है। वृक्ष भी उसी प्रकार के अनेक पदार्थों में वायु के द्वारा (कारबन) अंगार (हाइड्रोजन) जल कर अपने प्रयोजन की वस्तु से अपना निर्माण आप ही कर लेता है। अनेक तरह के स्फटिक का जैसे नाना प्रकार का भिन्न-भिन्न आकार होता है वैसे ही वृक्ष के भी डील-डौल भिन्न-भिन्न तरह के होते हैं।

यह लेख साहित्य प्रदीप के दिसम्बर 1877 अंक में प्रकाशित हुआ था। एक शुद्ध साहित्यकार द्वारा विज्ञान विषयक लेखन समुचित प्रशंसनीय है।

प्राणी के शरीर का भी ठीक यही हाल है। वृक्ष जैसे वायु से सब ओर घिरा हुआ होकर वायु के द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म अणुओं से अपना शरीर पुष्ट करता है, प्राणी भी इसी तरह सम्पूर्ण शरीर में रक्त संवाहिनी शिराओं से वेष्टित होकर उसी से अपना पुष्टि साधन करते हैं। और रक्त खाद्य द्रव्य से रासायनिक क्रिया से बल उत्पन्न होता है। इस कारण मनुष्य को लोहू पैदा करने वाले पदार्थ अधिक भोजन करना चाहिये और मिरचा आदि रक्त शोषक तीक्ष्ण पदार्थों को त्यागना चाहिये। विज्ञान के द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भिन्न–भिन्न प्राणियों के शरीर विविध प्रकार के वाष्पीय यंत्र (स्टीम इंजन) हैं। जैसे, जल और अग्नि से वाष्प उत्पन्न होकर वाष्पीय यंत्र में गति का कारण होता है, वैसे ही जो वस्तु हम खाते हैं उसका परिपाक रूप रसायनिक क्रिया से (केमिकल आपरेशन से) ताप की उत्पत्ति होती है। और शरीर में ताप अर्थात् गरमी ही के होने से हम चल फिर सकते हैं।

परिश्रम करने से भूख क्यों बढ़ती है? इसी से कि परिश्रम से शरीर का संचालन होता है। शरीर जितना अधिक संचालित होगा उतना ही अधिक ताप अर्थात् शरीर की गर्मी का शोषण होगा। वह वाष्प रासायनिक क्रिया से उत्पन्न होता है और रासायनिक क्रिया खाद्य द्रव्य का परिपाक है। सुतराम शरीर का जितना ही अधिक संचालन होगा उतना ही खाद्य द्रव्य का अधिक परिपाक होगा। जब परिपाक अधिक हुआ तो भूख भी बढ़ेगी। व्यायाम करना इसी से शरीर की पुष्टि करता है, क्योंकि व्यायाम करने से शरीर का संचालन बहुत होता है जो अन्न के परिपाक का मुख्य हेतु है। केवल शरीर ही के संचालन से भोजन का परिपाक नहीं होता किन्त मानसिक व्यापार से भी यह हो सकता है। इस समय के डाक्टरों ने यह निश्चय किया है कि मानसिक व्यापार के द्वारा मस्तिष्क (दिमाग) में एक प्रकार का संचालन होता है जिससे ताप का शोषण हो सकता है।

इस सब हमारे लेख का तात्पर्य यह है कि चेतन, अचेतन और उद्‌भिज जो तीन प्रकार की सृष्टि हम ऊपर लिख आये हैं वह सब पदार्थों के अणु समष्टि से उत्पन्न हैं। इन तीनों प्रकार की सृष्टि में चेतन सृष्टि सबों में उत्तम है और चेतन में भी मनुष्य। अब यहां पर यह शंका उठती है कि ये सब पदार्थ जिनकी समष्टि का फल सम्पूर्ण सृष्टि है कहां से उत्पन्न हुये हैं और किसने उन्हें छोटे–छोटे अणुओं में विभक्त कर दिया है, और किसने उन अणुओं में आकर्षण–वियोजन आदि की शक्ति दी है। इसका उत्तर तो विज्ञान के द्वारा ही नहीं दिया जा सकता क्योंकि विज्ञान आप ही इस विषय में अंध के समान है। ईश्वरवादी आस्तिक झट इसका उत्तर यही देंगे कि यह सब साठ या पैंसठ तत्व जो विज्ञानियों ने अब प्रगट किये हैं सम्पूर्ण ईश्वर के सृष्टि किये हुये हैं। यदि उनसे यह पूछा जाय कि ईश्वर को किसने भेजा है तो इसका उत्तर वे यही देंगे कि ईश्वर स्वयंभू है। किन्तु यदि जान लेने में ही सब बात का निपटारा है तो ईश्वर को स्वयंभू मान सृष्टि का अभाव दूर किया जा सके तो हम यही क्यों न मान लें कि यह सब तत्व जिन्हें हम पदार्थ कहते हैं, आप ही आप पैदा होते हैं। सुतराम पदार्थवादियों के मत से ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करना युक्तिसंगत किसी तरह से नहीं है।

(पृष्ठ 15 का शेष भाग)

होते है जो पकने पर सुर्ख लाल हो जाते हैं और झड़ जाते हैं। इस वृक्ष में पूर्ण पतझड़ नहीं होता है। इसमें फूल लगने का समय नवम्बर से फरवरी माह है। इसके फूल मंजर में लगते हैं और इसमें रेसिमॉस संरचना होती है। यानि सबसे पुराने नीचे, कम पुराना इसके बाद में। फल लगने का समय अप्रैल माह है। इसके फल लीची की तरह गुच्छे में होते हैं। पकने पर भी फल हरे ही रहते हें किन्तु मुलायम होतें है और दबाने पर दब जाते हैं। इस फल को पक्षी तथा चमगादड़ बड़े चाव से खाते हैं। खाने में फल मीठा होता है। फल के अंदर का बीज ही रुद्राक्ष है जिसे लोग धारण करते है। इसमें धारियां बनी होती है जिन्हें मुंह कहते हैं। धारियों के अनुसार रुद्राक्ष 30 मुखी तक होते है।

अपनी सफलता के करीब पहुँचने में डॉ0 शुक्ल बायोटेक्नोलॉजी विभाग के अधिकारियों, बिहार विश्व विद्यालय के कुलपति डॉ. एस. एन. सिंह, कुलसचिव डॉ. एस.बी. सिंह तथा अन्य अधिकारियों के अलावा देश के टीशू कल्चर में महारत हासिल करने वाले विद्वानों की सलाह, प्रोत्साहन तथा सहयोग मान रहे हैं। इससे लगता है कि बहुत जल्द वे रुद्राक्ष का प्रोटोकोल तैयार कर लेंगें फिर बड़े पैमाने पर रुद्राक्ष की खेती हो सकेगी।

तहसीलदार
डलमऊ, रायबरेली

हिन्दी हस्तलेख और विज्ञान

✍ पं. सुधाकर पाण्डेय

महामहोपाध्याय पं. गंगानाथ झा और उनके परिवार, विशेषकर पं. अमरनाथ झा और आदित्यनाथ झा का शिक्षा, संस्कृत, हिन्दी और मैथिली भाषा पर ऐसा ऋण है जो कालजयी है। उनकी स्मृति में आयोजित इस व्याख्यानमाला में मुझे अपनी वाणी को पवित्र करने का अवसर विज्ञान परिषद् ने दिया है, एतदर्थ मैं ऋणी हूं। विज्ञान परिषद् उन वैज्ञानिक सपूतों की तपस्या का परिणाम है जिन्होंने हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक सृजन की सृष्टि करने का संकल्प लिया था और अपने तप से उसे मंगलमूलक बनाया था। हिन्दी विश्वकोष के संयोजक के नाते मैं विज्ञान परिषद् का कृतज्ञ हूं कि हिन्दी के इन सपूतों ने इस क्षेत्र में हमारी सहायता प्राणपण से की । इसके संस्थापक स्वामी जी महाराज की सभा और मुझ पर सदैव विशेष कृपा थी तथा हमेशा उन्होंने हिन्दी के विकास क्रम को विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ाने में सभा को सहयोग दिया। उनकी उस तपस्यामूलक वृत्ति को डॉ0 शिवगोपाल मिश्र केवल जीवित ही नहीं रखे हुए हैं अपितु आज की परिस्थिति में जाग्रत और जीवंत भी रखे हुए हैं, इसके लिए मैं उनका अभिनंदन करता हूं।

हिन्दी में विज्ञान के साहित्य की कमी है, इसमें दो राय नहीं है। किन्तु तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर मैंने एक सूची तैयार कराई थी जिसमें ढाई हजार से अधिक वैज्ञानिक पुस्तकें, अनुवाद के अतिरिक्त, हिन्दी में स्वतंत्रता के उपरान्त प्रकाशित हुई थीं जो भारतीय भाषाओं की दृष्टि से उच्चतम शिखर है। उसके बाद भी बराबर विज्ञान की किताबें हिन्दी में लिखी जा रही हैं।

हमारे मन में यह धारण कूट–कूट कर भरी है कि विज्ञान लेखन के लिए हिन्दी भाषा उपयुक्त नहीं है और अंग्रजों की गुलामी के पहले भी विज्ञान का साहित्य हमारे पास नहीं के बराबर था। जब कोई सिद्ध प्रशासन किसी के ऊपर अधिकार करता है और किसी राष्ट्र को अपना गुलाम बनाता है तो वह बार–बार परतंत्र लोगों के मन में यह भाव भरता है कि वे सैन्यशक्ति में ही नहीं , वह सभी दृष्टियों से कमजोर और अशक्त हैं इसीलिए उनके हाथ से शासन गया। ऐसा सब नहीं मानते पर शक्ति का उन्मेष विशेष परिस्थितियों में इसे मानने के लिए विवश कर देता है। जब से इस देश में मुद्रण प्रणाली का विकास हुआ है, भारत के लोग पुस्तकें लिखकर बराबर इस दिशा में महत्वपूर्ण अवदान करते रहे हैं। हमारे भीतर इस भाव का बीज बोया गया कि यह देश साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में तो अवश्य अग्रणी रहा है पर विज्ञान की दिशा में इसकी गति नगण्य रही है।

अंग्रेजी के प्रतिष्ठित होने के पूर्व तक इस देश में किसी भी प्रकार की रचना के प्रकाशन का आधार पाण्डुलिपियाँ रही हैं। पाण्डुलिपियाँ हाथ से लिखी जाती रही हैं। सामाजिक व्यवस्था के कारण तथा देश की परिस्थिति के कारण लेखन का यह कार्य बिना आश्रय के संभव नहीं था और आश्रयदाता की शक्ति और रुचि के अनुसार लेखन को भी जीवन प्राप्त होता था। हमारे यहां अनेक सम्राट ऐसे हुए हैं जिनकी अभिरुचि विज्ञान में रही है। जहां ज्ञान की पिपासा होगी, वहां विज्ञान निश्चित रूप से उपस्थित होगा क्योंकि विशेष ज्ञान के बिना ज्ञान का काल खंडित हो जाता है। भारतवर्ष में श्रेष्ठ प्रशासन मुगलों की देन है। शेरशाह सूरी से लेकर औरंगजेब तक विज्ञान का द्वार खुला हुआ था और निरंतर वैज्ञानिक रचनाएं होती रहीं। मुगल केवल साहित्य, कला और संस्कृति के उपासक नहीं थे, वे विज्ञान की दिशा में भी अग्रगामी चिंतक थे। अकबरनामा और जहाँगीरनामा में इसके पुष्ट प्रमाण हैं। जहाँगीर जहां एक ओर गंगाजल के जीवन पर प्रयोग करता है वहीं दूसरी ओर आसमान से गिरी हुई बिजली से छड़ी बनवा कर उसकी शक्ति एवं सामर्थ्य का ज्ञान प्राप्त करता है। पशु–पक्षियों के जीवन का सूक्ष्मदर्शी वैज्ञानिक अध्ययन भी तपस्यापूर्वक करता है। जीवन भर संघर्ष में लिप्त इन बादशाहों ने बड़े–बड़े प्रासाद खड़े किये और युद्ध के लिए इन्होंने अपने बड़े–बड़े कारखाने स्थापित किये, गोले–बारूद बनाये और दिनोत्तर उसमें परिष्कार और सुधार किया। यह बिना विज्ञान के ज्ञान के सतत् प्रयोग के असंभव था। केवल इनके समय की बात नहीं उनके पूर्व भी भारतीय सम्राटों ने इन क्षेत्रों में काम किया था और उस समय का सारा विज्ञान भी हस्तलेखों में संरक्षित

30 अप्रैल 2000 को विज्ञान परिषद् प्रयाग में 'पंडित गंगानाथ झा स्मृति व्याख्यान' के अंतर्गत दिया गया भाषण

है। उस युग में ज्ञान को गोपनीय बनाये रखने के लिए विशेष प्रयत्न होता था और आज भी विज्ञान का महान ज्ञान एक बहुत बड़ी सीमा तक गोपनीय रखा जाता है। प्रारम्भ में संस्कृत और फारसी का प्रयोग इस दिशा में किया जाता रहा किन्तु बहुत दूरदर्शी राजाओं और महाराजाओं ने अपने देश की भाषा में वैज्ञानिकों के कृतित्व को लिखित कराकर संरक्षित रख लिया था। ये हस्तलेख राजदरबारों के पुस्तकालयों में और जनता में जिज्ञासु व्यक्तियों के पास सुरक्षित रखे थे। कुछ बेठनों में कीड़े–मकोड़ों का आहार बन गए और कुछ को पुण्यकार्य समझकर गंगा–यमुना की गोद में बहा दिया गया।

जब अंग्रेज स्थायी रूप से यहां का शासक बन गया तो उसने यह प्रयत्न किया कि उनकी इस संपदा का ज्ञान प्राप्त किया जाय और उन्होंने अपने देश के सिद्धान्तों पर विशाल संस्थाओं की स्थापना की। ज्ञान की मंगलमूर्त इन संस्थाओं में उसने साहित्य, कला और संस्कृति के हस्तलेखों को एकत्र करने का कार्य प्रारम्भ कराया। एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता का इस क्षेत्र में अत्यधिक ऋण है।

इस प्रसंग में जो हस्तलेख एकत्रित किए जाते थे, वे सारे संस्कृत, फारसी और स्थानीय भाषाओं के थे, हिन्दी के लिए वहां कोई स्थान नहीं था। सन् 1993 में नागरी प्रचारिणी सभा ने सरकार के माध्यम से और सीधे भी इस संस्था से संपर्क साधकर बराबर यह प्रार्थना की कि इस खोज में हिन्दी की जो पुस्तकें मिलती हैं, उनका विवरण प्रकाशित किया जाय। सन् 1994 में केवल इतनी स्वीकृति मिली कि हिन्दी पुस्तकों की मात्र 'नाम' की सूची छाप दी जाय। वह एक साल छपी भी, उसके बाद उसका छपना बंद हो गया। डॉ0 श्यामसुन्दर दास बराबर यह प्रयत्न करते रहे पर असफल होने पर उन्होंने स्वयं नागरीप्रचारिणी सभा के माध्यम से इस कार्य को करने की अनुमति इस शर्त पर प्राप्त कर ली कि रिपोर्ट सभा अंग्रेजी में तैयार करेगी, सरकार उसे स्वीकृत करेगी, तब वह अंग्रेजी सरकार के प्रेस से ही प्रकाशित होगी। इसके लिए सभा को ढाई सौ रुपये वार्षिक अनुदान मिलना निश्चित हुआ। सभा दत्तचित्त से इस काम में लग गयी और सभी जिलों में क्रम पूर्वक अपने प्रतिनिधियों को भेजकर इसका विवरण तैयार कराना आरम्भ किया और इस तरह इसका वार्षिक विवरण प्रकाशित होना प्रारंभ हुआ। अब तक पचास वर्षों का विवरण प्रकाशित हो चुका है।

इन खोज रिपोर्टों में केवल साहित्य की पुस्तकों को ही नहीं अपितु विज्ञान विषयक भी जो ग्रंथ प्राप्त हुए उनको भी स्थान दिया गया। इस प्रकार इन पचासों विवरणों में कई हस्तलेख ऐसे हैं जो विज्ञान के विषयों से संबंधित हैं।

आज का विज्ञान ज्ञान की दिशाओं में पुराने ज्ञान से अपने को आगे मानकर चल रहा है। एक सीमा तक यह बात सत्य भी है किन्तु कुतुबमीनार के प्रांगण में स्थित लौह स्तंभ द्वारा आज भी विज्ञान की दिशा में भारत की इतनी उच्च स्थापना है कि यह नहीं कहा जा सकता कि पहले जो ज्ञान था वह निरर्थक था। पुराने ज्ञान में भी कुछ बातें ऐसी बिखरी पड़ी हैं जो आज के ज्ञानियों को भी दान कर सकती हैं। जीवन से संबंधित विषयों पर इन हस्तलेखों में जो ज्ञान है उसमें बहुत कुछ आज के काम का है इससे इंकार नहीं किया जा सकता। पर इस देश का दुर्भाग्य है कि जीवन से संबद्ध विषयों में चाहे वह शुद्ध विज्ञान हो चाहे अर्थ विज्ञान, हम पश्चिम से ही प्रारम्भ करते हैं। पठन–पाठन में इसके उपयोग के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका परिणाम यह निकल रहा है कि हम आत्मबोध की स्वसत्ता पर केन्द्रीभूत न हो कर पश्चिम की गुरुता पर नतमस्तक हैं जबकि आज पश्चिम के लोग भी उस ज्ञान की खोज कर रहे हैं। जिन वैज्ञानिक विषयों के हस्तलेख हैं वे हैं – आयुर्वेद, गणित, काम विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, भूगोल, ज्योतिष, समुद्र शास्त्र, स्वर ज्ञान, भाषा विज्ञान, कौतुक विज्ञान, चिकित्सा, वास्तु विज्ञान आदि।

भारतीय पद्धति से पढ़े गणित शास्त्र के आचार्य महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी की इस क्षेत्र में ऐसी सत्ता थी जो विदेशी विद्वानों को भी उनके चरणों में बैठने की प्रेरणा देती थी। हमारे यहां ज्ञान विज्ञान के सभी विषयों की चर्चा है उसमें नाड़ी विज्ञान से लेकर नारी विज्ञान तक है। उसकी प्रतिच्छाया हिन्दी के इन हस्तलेखों में सर्वत्र मिलेगी। आजकल पश्चिम में वास्तु विज्ञान ने या भवन निर्माण की पद्धति ने ऐसा जोर मचाया है कि अनेक पुस्तकें उनके आधार पर प्रकाशित हो रही हैं और अनेक बड़े बड़े वैज्ञानिक इस दिशा में भारत की ओर देख रहे हैं। ज्योतिष के संबंध में तो यहां के अदने ज्योतिषी भी विदेशों के बल पर लक्ष्याधिपति बन गये हैं। वह ज्ञान इन हस्तलेखों में व्यापक रूप से हैं। इन हस्तलेखों में केवल प्राचीन ग्रंथों का अनुवाद मात्र नहीं अपितु उनके भीतर कुछ मौलिक अनुभव और प्रयोग भी हैं। जहां तक आयुर्वेद की बात है भारतीय दवाएं और औषधि पदार्थ विदेशों में धड़ल्ले से निर्मित होकर बाजारों में छा रहे हैं जिसका ज्ञान इन पुस्तकों में और ऐसा है कि पूर्णतः विज्ञान पर आधारित है। रस,

रसायन, अरिष्ट आदि हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं जहां अभ्रक से लेकर हीरा तक को दवा के रूप में बनाने का विधान है और उसका उपयोग भी है। केवल आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में ही नहीं पशु विज्ञान के क्षेत्र में यह ज्ञान इन पांडुलिपियों में है जो विशेष महत्व का है। फल और कृषि के क्षेत्र में भी हमारे पूर्व अनुभवों का सार–संग्रह इन ग्रंथों में है और आज हमें मौसम विज्ञान के क्षेत्र में भी इन ग्रंथो से सहायता मिल सकती है। कौतुहल मनोरंजन के क्षेत्र में भी इतने वैज्ञानिक प्रयोग इन ग्रंथों में हैं कि मनोरंजन विज्ञान की दिशा में हम अनुकूल कार्य कर सकते हैं।

भारत से बहुत अधिक संख्या में हस्तलेख विदेश जा चुके हैं किन्तु इतनी बड़ी संख्या में इस देश में अब भी वे सकुशल संरक्षित हैं जिनका अध्ययन विज्ञान के क्षेत्र में कुछ अभिनव करने की प्रेरणा देगा। किन्तु सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जो विज्ञान जानता है उसे हिन्दी में अभिरुचि नहीं है और जिसे हिन्दी में अभिरुचि है वह विज्ञान नहीं जानता है। सरकार ने इस दिशा में कुछ काम किया है किन्तु सारे हस्तलेखों में से कला, साहित्य और संस्कृत के हस्तलेखों को ही विद्वान और वह मान्यता देते हैं जिसका परिणाम यह हो रहा है कि जो हस्तलेख संरक्षित हैं वे भी काल की कृपा से उसका आहार बनते जा रहे हैं। विज्ञान की शिक्षा प्रारंभिक स्तर पर अनिवार्य है पर उस ज्ञान के दाता भारतीय विज्ञान के ज्ञान से अपरिचित हैं जो आलमारियों, बेठनों, राजाओं–महाराजाओं के पुस्तकालयों तथा संग्रहालयों में बंद हैं। सैकड़ों विद्वानों और शोधार्थियों से प्रतिवर्ष मेरा संपर्क होता हैं। इनसे नये नये आविष्कारों का पता चलता है किन्तु जो आविष्कार हमारे हैं उन्हें वे अपना न मानकर विदेशों की देन मानते हैं। इसका सबसे लोकप्रिय दिलचस्प प्रकरण है संख्या के संबंध में। संविधान और ज्ञान के अनुसार अंग्रेजी के अंक भारतीय अंक से ही उद्भूत होकर अरब के माध्यम से अंग्रेजी भाषा में प्रग्रहीत हुए। यह सोच केवल मेरी ही नहीं तिलक से लेकर आज तक के लोक निर्माताओं की रही है कि हमें भारतीय ज्ञान–विज्ञान को उद्घाटित करना चाहिए और उसका उद्घाटन तब तक संभव नहीं जब तक कि इन पांडुलिपियों पर गंभीरता से अध्ययन प्रस्तुत कर कुछ अभिनव उपहार विश्व विज्ञान के क्षेत्र को न दिया जाय। इन हस्तलेखों में विज्ञान भरा हुआ है जो शुद्ध भारतीय है और भारत भूमि में जो पैदा हुआ तथा भारतीय पद्धति से पैदा हुआ उसे इस पर शिवसाधना करने की आवश्यकता है और भारत की ज्ञान की मनीषा के पास यह शक्ति संरक्षित है कि अणु को भी पराग बना दें। यह संभव तभी है जब हम स्वार्थ से अलग हट कर अपने ज्ञान की महिमा का ज्ञान नियामक रूप में करें और वित्त की प्रवृत्ति को ज्ञानाश्रयी बनायें।

मुझे विश्वास है कि निश्चय ही यह कामना अपनी मंगलमय शक्ति के कारण मरुस्थल में साज्ज्वल की सुषमा बनेगी।

आप लोगों ने मुझे जो अवसर दिया उसके लिए हृदय से कृतज्ञ हूं, विशेषकर भाई शिवगोपाल और यहां के कार्यकर्ताओं का।

–प्रधानमंत्री
नागरी प्रचारिणी सभा
वाराणसी

पृष्ठ 14 का शेष भाग

संगोष्ठियों आदि के माध्यम से परिषद् देशभर में विभिन्न भारतीय भाषाओं के माध्यम से विज्ञान के प्रचार–प्रसार का कार्य करती है, और साथ ही इन कार्यो को प्रोत्साहन और सहायता देती है। भारत जन विज्ञान जत्था–87, राष्ट्रीय बाल विज्ञान कांग्रेस, चमत्कारों की वैज्ञानिक व्याख्या कार्यक्रम, फीचर सेवा–स्रोत, विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण कार्यशालाएं, रेडियो धारावाहिक–विज्ञान विधि (13 कड़ियों और 16 भाषाओं में प्रसारित) तथा मानव का विकास (18 भाषाओं और 144 कड़ियों में प्रसारित) तथा दूरदर्शन धारावाहिक भारत की छाप (13 कड़िया) और क्यों और कैसे (12 कड़ियों) आदि परिषद् के कुछ उलेखनीय कीर्ति स्तंभ हैं जिनके माध्यम से देशभर में पिछले करीब डेढ़ दशक से विज्ञान के प्रचार प्रसार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिला और वैज्ञानिक क्षेत्र में अधिक पारदर्शिता और उत्तरदायित्व का मार्ग प्रशस्त हुआ। अन्य वैज्ञानिक विभाग भी विज्ञान लोकप्रियकरण के इस कार्यक्रम में सम्मिलित हो कर वैज्ञानिक जन जागरण के राष्ट्रव्यापी अभियान में अपना योगदान कर सकते हैं, इस प्रकार निश्चय ही वैज्ञानिक क्षेत्र में वांछित पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को सुनिश्चित किया जा सकेगा।

–प्रधान वैज्ञानिक अधिकारी
राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
टेक्नोलॉजी भवन, नया महरौली मार्ग
नई दिल्ली – 110016

विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी की स्थिति

✍ डॉ0 ओम प्रभात अग्रवाल

वर्ष 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब तक विज्ञान किसी भी देश की उन्नति का मूलमंत्र और आधुनिकता की शर्त बन चुका था। परमाणु संरचना की पर्तें खुल चुकी थीं और उसके केन्द्र में स्थित न्यूक्लियस में संग्रहित अपरिमित ऊर्जा का रहस्य उद्घाटित हो चुका था। चेचक जैसी कई महामारियों पर विजय प्राप्त की जा चुकी थी और महान वैज्ञानिक मनीषी आंइस्टाइन का सापेक्षवाद का सिद्धान्त मानव के ज्ञान चक्षुओं में नया प्रकाश भर रहा था। स्वतंत्रता संग्राम के उत्तर काल में प्रबुद्ध समाज के एक वर्ग ने यह देख लिया था कि आने वाले स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक मानसिकता के प्रसार एवं विज्ञान के पठन, पाठन तथा शोध के क्षेत्र में विश्व के शीर्ष पर पहुँचने के लिये हिन्दी का प्रयोग आवश्यक होगा क्योंकि किसी भी प्रकार की शिक्षा का सर्वोत्कृष्ट माध्यम स्वभाषा ही हो सकती है। 1937 में प्रस्तुत की गई ज़ाकिर हुसैन रिपोर्ट ने इसी सिद्धांत की सिफारिश की थी तथा 1931 से ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इसी उद्देश्य से अपने वार्षिक अधिवेशनों में "विज्ञान परिषद्" का आयोजन कर रहा था जिसका सिलसिला अनवरत रुप से 1950 तक चलता रहा था। 1935 की विज्ञान परिषद में डॉ0 गोरख प्रसाद ने हर्ष प्रकट किया था कि हाई स्कूल में हिन्दी को विज्ञान परीक्षाओं का माध्यम स्वीकार कर लिया गया था तथा 1940 में डॉ0 सत्य प्रकाश ने अपने अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट किया था कि तब तक हिन्दी में कुल मिला कर पन्द्रह सौ पृष्ठों का वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध हो चुका था।

1950 में भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने "वैज्ञानिक शब्दावली आयोग" का गठन कर अंततः विज्ञान की सभी शाखाओं के लिये उपयुक्त शब्दावलियाँ तैयार करवा कर प्रकाशित कर दीं। कतिपय विश्वविद्यालयों ने भी हिन्दी को विज्ञान की शिक्षा का माध्यम सिद्धांत रुप में स्वीकार कर लिया और विद्यार्थियों को परीक्षा में अपने उत्तर हिन्दी में लिखने की छूट दे दी।

तब लगने लगा कि गाड़ी ठीक दिशा में चल पड़ी है और शीघ्र अपने गंतव्य पर पहुँच जायेगी। परन्तु धीरे-धीरे विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी की प्रगति कछुए की चाल जैसी हो गई बावजूद इसके कि 1948 की ताराचन्द कमेटी रिर्पोट, 1949 में गठित राधाकृष्णन आयोग की रिर्पोट तथा 1964 में गठित कोठारी आयोग की रिपोर्ट-सभी में शिक्षा के क्षेत्र से अंग्रेजी के शीघ्र विस्थापन की आवश्यकता को रेखांकित किया गया था। इसीलिये 38 वर्षों के अंतराल के बाद 1988 में प्रयाग में सम्पन्न अपनें 44 वें अधिवेशन के अवसर पर सम्मेलन ने एक बार फिर विज्ञान परिषद् की बैठक बुलाकर मेरे संयोजकत्व में एक गोष्ठी का आयोजन किया – जिसका विचारणीय विषय था "विज्ञान की शिक्षा का माध्यम अविलम्ब हिन्दी और प्रादेशिक भाषायें हो जानी चाहियें। "गोष्ठी को अनेक वैज्ञानिकों का उत्साहजनक सहयोग प्राप्त हुआ तथा उसकी कार्यवाही अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपी। प्रयाग से ही प्रकाशित "विज्ञान" ने तो अपने एक अंक (अगस्त 1988) में गोष्ठी की आद्योपांत कार्यवाही भी प्रकाशित की। गोष्ठी ने महत्वपूर्ण संस्तुतियां की थीं। किंचित संतोष का विषय है कि उनमें से कुछ का आंशिक कार्यान्वयन हो चुका है।

हिन्दी का स्थिति थोड़ी ही सही, सुधरती अवश्य गई। आज की उसकी स्थिति पर एक दृष्टि डालना समीचीन होगा।

ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में किसी भाषा की स्थिति का सबसे अच्छा बैरोमीटर उस भाषा में उपलब्ध तत्संबंधी साहित्य होता हैं। इसीलिये हिन्दी में उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य का उल्लेख प्रासंगिक होगा।

आज हिन्दी में स्नातक कक्षा तक के लिये तो ज्ञान का प्रचुर साहित्य उपलब्ध है ही, अधिक उच्च स्तर की पुस्तकें भी उपलब्ध हैं। पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार द्वारा सभी राज्यों में हिन्दी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना एवं उनके द्वारा वैज्ञानिक पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद एवं मौलिक विरचन की व्यवस्था के लिये 6 करोड़ की सहायता ने इस कार्य को काफी आगे बढ़ा दिया था। भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने इन अकादमियों द्वारा आयुर्विज्ञान तथा भेषजी, कृषि, पशु चिकित्सा विज्ञान, गणित, सांख्यिकी, इंजीनियरी, भौतिकी, रसायन, प्राणि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, भूगोल, भू-विज्ञान एवं गृह विज्ञान की 551 पुस्तकों की एक सूची 1984 में प्रकाशित "विश्वविद्यालय

स्तर की हिन्दी पुस्तकें" में दी है। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् का प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय भी विज्ञान पुस्तकों की ऐसी सूचियां समय-समय पर प्रकाशित करता रहा है। ऐसे साहित्य की ऐसी तीसरी नवीनतम "हिन्दी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रकाशन निदेशिका" में 1981-90 की अवधि में रचे गये 1213 प्रकाशनों के बारे में उनके शीर्षक, लेखक, अनुवादक, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ एवं मूल्य संबंधी जानकारी संकलित है। कृषि विषयक पुस्तकों के लेखन एवं प्रकाशन में पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय का "अनुवाद एवं प्रकाशन निदेशालय" अग्रणी है। अब तक 150 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने भी कृषि विज्ञान पर अब तक 300 पुस्तकें, बुलेटिन एवं रिपोर्ट प्रकाशित की हैं। परिषद् "खेती एवं फल फूल" पत्रिकायें भी नियमित रूप से प्रकाशित करता है। 'विज्ञान' के अप्रैल 1999 के अंक में प्रो0 शिवगोपाल मिश्र ने महान वैज्ञानिकों की 25 पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों की तिथिवार सूची दी है और बताया है कि 1960-70 का दशक हिन्दी में अनुवाद का सबसे समृद्ध काल रहा है।

हिन्दी में विश्वकोष का निर्माण हो चुका है। विश्व उच्चारण कोष भी श्री कृष्ण कुमार भार्गव द्वारा तैयार हो कर छप चुका है। हिन्दी में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा प्रकाशित एक अन्यतम अनुवाद है "भारत की संपदा"। ग्यारह खण्डों में प्रकाशित एवं स्वामी सत्य प्रकाश तथा प्रो0 शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित यह अनुवाद हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की अमूल्य थाती है। इस वृहत कार्य में वैज्ञानिकों ने बड़ी संख्या में योगदान दिया जिनमें यह लेखक भी सम्मिलित है। संगणकों का हिन्दी साफ्टवेयर, भारतीय वैज्ञानिकों एवं तकनीकी विशेषज्ञों ने तैयार कर लिया है तथा टाटा, आइ.बी.एम. ने हिन्दी में पर्सनल कम्प्यूटर डिस्क आंपरेटिंग सिस्टम (PCDOS) का विकास कर लिया है जिसका उद्घाटन 15.09.1997 को तत्कालीन रक्षा मंत्री श्री मुलायम सिंह यादव ने किया।

विज्ञान में हिन्दी का सर्वाधिक प्रवेश लोकप्रिय विज्ञान के क्षेत्र में हुआ है। विज्ञान में आम जनता की बढ़ती रुचि को पहचानते हुये हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने 15-20 वर्ष पूर्व से ही विज्ञान संबन्धी लेख देने प्रारम्भ कर दिये थे। वैज्ञानिक मानसिकता के प्रसार में यह कदम अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ । कुछ पत्रिकायें तो केवल लोकप्रिय विज्ञान को समर्पित रहीं। उदाहरण हैं- जिज्ञासा, विज्ञान परिचय, वैज्ञानिक, उद्यम, विज्ञान प्रगति, आविष्कार आदि। विज्ञान परिषद् प्रयाग तो 1915 से ही एक ऐसी मासिक पत्रिका "विज्ञान" का नियमित प्रकाशन करता रहा है। केन्द्रीयं सचिवालय हिन्दी परिषद् भी एक ऐसी ही त्रैमासिक पत्रिका "विज्ञान गंगा" प्रकाशित करता है। इन सभी में अपने उच्च स्तर के कारण "आविष्कार" ने विशेष ख्याति अर्जित की है।

कुछ पत्रिकायें उच्चस्तरीय विज्ञान को समर्पित रहीं। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित "विज्ञान गरिमा सिंधु" एक ऐसी ही पत्रिका है। दावा तो इस पत्रिका का शोध पत्रों के प्रकाशन का था, परन्तु यह दावा कभी भी कसौटी पर खरा नहीं उतर सका फिर भी यह एक स्तरीय पत्रिका है। एक और ऐसी ही स्तरीय पत्रिका "रसायनी" थी जो कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय से लगभग 20 वर्ष पूर्व निकली (पहला अंक-1973) परन्तु शीघ्र ही बंद हो गई। इसी विश्वविद्यालय से "जीवंती" बराबर निकल रही है।

1988 के सम्मेलन के विज्ञान परिषद् की एक संस्तुति यह थी कि वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, C.S.I.R., द्वारा अविलम्ब एक शोध जर्नल का हिन्दी में प्रकाशन प्रारम्भ किया जाना चाहिये। प्रसन्नता का विषय है कि कालांतर में यह संस्तुति क्रियान्वित हुई और एक अत्यंत उच्चस्तरीय जर्नल "भारतीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान पत्रिका" का प्रकाशन जून 1993 से प्रारम्भ हुआ। यह जर्नल अर्धवार्षिक है और इसके वर्तमान सम्पादक मंडल में यह लेखक भी है। सम्पादक डॉ0 बी.एस. अग्रवाल हैं। 1958 से विज्ञान परिषद्, प्रयाग भी एक त्रैमासिक शोध जर्नल "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" का प्रकाशन बराबर कर रही है। 'इंस्टीट्यूट आंफ इंजीनियर्स' भी एक शोध जर्नल का प्रकाशन हिन्दी में करता है। कृषि के क्षेत्र में एक शोध जर्नल "कृषि चयनिका" का भी प्रकाशन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा किया जाता है। इन शोध जर्नलों में छपे शोध पत्रों का सारांश, अंर्तराष्ट्रीय जर्नलों में होता है और इस दृष्टि से इन्हें अंर्तराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है, परन्तु फिर भी वैज्ञानिकों का अपेक्षित सहयोग इन्हें नहीं मिल पा रही है तथा सदस्य संख्या भी अत्यंत सीमित है। राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित एक अत्यंत उपयोगी और अपनी तरह का एकमात्र हिन्दी शोध समीक्षा जर्नल "रसायन समीक्षा" तो काफी लम्बे समय तक निकलने के बाद नब्बे के दशक में इसी कारण से बंद ही हो गया।

इस समय स्नातक कक्षा तक के विद्यालयों में हिन्दी का प्रयोग विज्ञान के पठन-पाठन के लिये थोड़ा बहुत हो रहा है। यहां

विद्यार्थियों को प्रश्नोत्तर हिन्दी में देने की छूट है। परन्तु फिर भी देखा गया है कि प्रतिभाशाली विद्यार्थी इस दूर का लाभ उठाने से कतराते हैं, क्योंकि व्यावहारिक रूप में स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी का प्रयोग नहीं के बराबर है। यह सब इसके बावजूद कि इस समय स्नातक कक्षा तक के विद्यालयों में हिन्दी का प्रयोग विज्ञान के पठन–पाठन के लिये थोड़ा बहुत हो रहा है। यहां विद्यार्थियों के प्रश्नोत्तर हिन्दी में देने की छूट मिली हुई है। परन्तु फिर भी देखा गया है कि प्रतिभाशाली विद्यार्थी इस दूर का लाभ उठाने से कतराते हैं, क्योंकि व्यावहारिक रूप में स्नातकोत्तर स्तर पर हिन्दी का प्रयोग नहीं के बराबर है। यह सब इसके बावजूद कि अनेकों विश्वविद्यालयों ने विज्ञान के शोध प्रबंधों को हिन्दी में लिखने की छूट दे रखी है कुछ शोध प्रबन्ध हिन्दी में प्रस्तुत भी किये गये हैं। उदाहरण है– इंडियन इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलांजी के श्री श्याम रूद्र पाठक (अभियांत्रिकी), इलाहाबाद विश्वविद्यालय के श्री मुरली मनोहर जोशी (भौतिकी) जो आज भारत सरकार के वरिष्ठ मंत्री हैं तथा श्री राजकुमार बंसल (रसायन), हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के श्री लक्ष्मीशंकर शुक्ल (रासायनिक अभियांत्रिकी), श्री राय अवधेश कुमार (भूविज्ञान), तथा श्री सच्चिदानन्द सिंह (पर्यावरण), एवं गढ़वाल विश्वविद्यालय के श्री विजयेन्द्र कुमार (गणित), रमेशदत्त शर्मा तथा मनोज कुमार पटेरिया।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जहां स्नातकोत्तर कक्षाओं में पठन–पाठन में हिन्दी का उपयोग नहीं के बराबर है तथा प्रोफेसरों द्वारा इस माध्यम का मुखर विरोध किया जाता है, वहीं शोध के स्तर पर उपलब्धियां है। ऊपर शोध प्रबंधों की चर्चा की गई है। इसी परिप्रेक्ष्य में शोध गोष्ठियां भी उल्लेखनीय हैं। मार्च 1989 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्वावधान में तथा मेरे संयोजकत्व में हिन्दी माध्यम का पहली शोध गोष्ठी, "संकुल रसायन–विभिन्न आयाम" सम्पन्न हुई। इसे पूरे देश के रसायनज्ञों का अभूतपूर्व सहयोग मिला तथा प्रस्तुत किये गये शोध पत्रो का संकलन "विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका" के एक विशेष अंक में प्रकाशित किया गया। इन सभी का अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर सारांशण भी हुआ। सम्मेलन द्वारा ऐसी दो और गोष्ठियों का आयोजन 1991 और 1993 में क्रमशः रोहतक और कुरूक्षेत्र में किया गया। रोहतक की गोष्ठी भौतिकी से संबन्धित थी और विषय था, "द्रव्य की ठोसावस्था" तथा कुरूक्षेत्र की गोष्ठी गणित के क्षेत्र में थी। कुछ अन्य आयोजित गोष्ठियां इस प्रकार हैं– 1992 में राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगशाला, जमशेदपुर द्वारा आयोजित "धातु संरक्षण से संघर्ष–कल आज और कल", 1993 में राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पुणे में आयोजित– "पर्यावरण" जिसका उद्‌घाटन आज के C.S.I.R. के निदेशक प्रो0 माशेलकर ने किया तथा जिसमें 100 वैज्ञानिकों ने भाग लिया, एवं दिसम्बर 1995 में भारत सरकार के कृषि अनुसंधान विभाग व शिक्षा विभाग के सहयोग से दिल्ली में आयोजित गोष्ठी– "बदलते परिवेश में कृषि अनुसधान एवं विकास के नये आयाम"। अस्सी और नब्बे के ही दशकों में हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ने "विज्ञान की दिशायें" तथा "विज्ञान एव प्रौद्योगिकी के नये आयाम" शीर्षकों से गोष्ठियां आयोजित की जिनमें अत्युच्चस्तरीय वैज्ञानिक वार्तायें हुईं। ये बड़े ही अच्छे और सफल प्रयास थे। ऐसी ही कुछ गोष्ठियां भाभा परमाणु अनुसधान केन्द्र मुम्बई ने भी आयोजित की हैं। नब्बे के दशक में राजस्थान और मध्य प्रदेश की सरकारों के सहयोग से कई विश्वविद्यालय द्विभाषिक (हिन्दी और अंग्रजी) शोध गोष्ठियां आयोजित करते रहे हैं यद्यपि इन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई है। वर्ष 1999 में विज्ञान परिषद् प्रयाग ने जैव–प्रौद्योगिकी के विविध आयाम पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया।

ऊपर दिये गये आंकड़ो से स्थिति संतोषजनक लग सकती है परन्तु वस्तुस्थिति सर्वथा भिन्न है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की किसी भी शाखा का उच्चस्तरीय अध्ययन केवल अंग्रेजी माध्यम से ही हो रहा हैं। इनकी प्रवेशिका परीक्षाओं तक में अंग्रेजी का ही वर्चस्व है, यद्यपि कहीं–कहीं हिन्दी माध्यम की छूट है, परन्तु व्यवहार नहीं के बराबर है। विज्ञान विषयों में स्तरीय साहित्य का भी घोर अभाव है, संदर्भ ग्रंथ तो है ही नहीं। शोध जर्नलों की संख्या नगण्य सी है और उनमें भी शोध पत्रों का अकाल सा ही रहता है। शोध प्रबन्धों का प्रवाह तो अवरूद्ध सा हो गया लगता है। हिन्दी की सही स्थिति एक उदाहरण से बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी। इंडियन सांइस कांग्रस के जनवरी 1999 के अधिवेशन में मैं रसायन खण्ड का अध्यक्ष था। इसकी तैयारी की पहली बैठक कलकत्ता में हुई। मैंने खड़े हो कर अपना अध्यक्षीय भाषण हिन्दी में पढनें की अनुमति मांगी। बैठक में सन्नाटा छा गया, यद्यपि बाद में बाहर मुझे कुछ बधाइयाँ मिलीं। थोड़ी देर पश्चात सामान्य अध्यक्ष ने लगभग विनती के स्वरों में कहा कि अधिकार तो आप को है, परन्तु परम्परा अंग्रेजी की है तथा अधिवेशन चेन्नई में होना है, अतः प्रार्थना है कि अवसर की संवेदनशीलता को समझते हुये आप अंग्रेजी का ही व्यवहार करें। और मुझे यही करना पड़ा।

– प्रोफेसर रसायन
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124001

विज्ञान की भाषा: स्वरूप और विकास

✍ डॉ0 हरिमोहन कृष्ण सक्सेना

वैज्ञानिकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सरल भाषा का प्रयोग करें। किन्तु भाषा की सरलता का प्रश्न वैज्ञानिक भाषा के स्वरूप के साथ जुड़ा है। अतः वैज्ञानिक अंग्रेजी या वैज्ञानिक हिन्दी की सरलता–जटिलता के पहलू पर विचार करने से पहले विज्ञान की भाषा की प्रवृत्ति और उनकी विशेषताओं को जानना अपेक्षित है। विज्ञान की भाषा के एक विशेषज्ञ टी. एच. सेवरी (T.H. Savory) ने भाषा के दो प्रमुख स्वरूप बताए हैं। भाषा का सूचनापरक या (Symbolic) प्रतीकात्मक स्वरूप और भाषा का रागात्मक या भावात्मक (Emotive) स्वरूप। विज्ञान की भाषा हमें तथ्यात्मक जानकारी देती है, तथा ज्ञान प्रदान करती है। इसके विपरीत साहित्य की भाषा का प्रमुख उद्देश्य मनोविनोद के साथ–साथ शिक्षा या उपदेश बताया जाता है। विज्ञान की भाषा विषय सापेक्ष होती है, साहित्यिक भाषा की तरह व्यक्ति सापेक्ष नहीं। जाने–माने अंग्रेजी साहित्यकार एल्डस हक्सले ने साहित्य की भाषा की चर्चा करते हुए इसकी एक विशेषता " विविधरूपता" पर बल दिया है। साहित्य मे भाषा–शैली की विविधता आम बात है। किन्तु वैज्ञानिक भाषा में इसका कोई स्थान नहीं। किसी भी वैज्ञानिक विषय की भाषा–शैली लगभग एक जैसी ही होती है।

वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ वैज्ञानिक भाषा का भी विकास होता है। नए आविष्कारों और खोज होने पर उनके नाम करण की आवश्यकता होती है। उनको कोई नाम देने के लिए या तो कोई नया शब्द गढ़ लिया जाता है या फिर पहले से मौजूद किसी शब्द का नये अर्थ में प्रयोग किया जाता है। आधुनिक विज्ञान का विकास मुख्यतः पाश्चात्य देशों में ही हुआ है। अतः वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण में भी पाश्चात्य वैज्ञानिकों की ही प्रमुख भूमिका रही है। वैज्ञानिक शब्दावली के स्वरूप और सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने के लिए संसार के कुछ अग्रणी वैज्ञानिकों द्वारा निर्मित कुछ अग्रणी शब्दों का विवेचन यहाँ किया जा रहा है। अठारहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी वैज्ञानिक लावाजिए रसायन के क्षेत्र में काफी सक्रिय थे। उन्हें रासायनिक नामकरण का जनक माना जाता है। आजकल के बहुचर्चित शब्द 'आक्सीजन' और 'हाइड्रोजन' उन्हीं की देन है। जिस गैस के लिए आजकल आक्सीजन नाम प्रचलित है उसे सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वाइटल एयर (Vital air) यानी प्राण वायु कहा जाता है। यह नाम सही एवं सार्थक था क्योंकि यह गैस हमारे जीवन के लिए, सांस लेने के लिए जरूरी है। अपने प्रयोगों के आधार पर लावाजिए इस निष्कर्ष पर पहुचें कि यह गैस अम्ल (एसिड) का आवश्यक घटक है। इस धारणा पर उन्होंने इस गैस का नाम "आक्सीजन" रख दिया। यह दो ग्रीक शब्दों से बना है जिनका शब्दार्थ है,अम्ल–जनक। शीघ्र ही एक ब्रिटिश वैज्ञानिक हम्फ्रे डेवी ने यह सिद्ध कर दिखाया कि हाइड्रोक्लोरिक एसिड में आक्सीजन तत्व (Element) नही है। अतः यह नाम सही नहीं कहा जा सकता। फिर भी वैज्ञानिक जगत ने इसे स्वीकार कर लिया और किसी ने भी इसे बदलनें की मांग नही की। स्वयं हम्फ्रे डेवी ने भी नाम बदलने का आग्रह नहीं किया। आक्सीजन शब्द से गढ़े कई अन्य शब्द – ऑक्सीडेशन, ऑक्साइड, डाईऑक्साइड, ऑक्सीजेनेशन आदि, रसायन की भाषा में प्रयुक्त हो रहें हैं। विज्ञान की भाषा–शब्दावली की एक प्रमुख विशेषता है संक्षिप्तता और संहतता (Conciseness) छोटे संक्षिप्त शब्दों से नए शब्द आसानी से गढ़े जा सकते है और वे प्रयोग में भी सुविधाजनक होते है। नाइट्रोजन (नत्रजन) और पोटाश शब्द आज किसान की भाषा में पहुँच गए हैं। उसके दैनिक जीवन से जुड़ गए हैं। लेकिन उसके लिए ये दोनो शब्द केवल दो रासायनिक खादों के नाम हैं। किस किस्म की फसलों में इनकी कितनी मात्रा की जरुरत होती है केवल इतनी ही जानकारी किसानों को चाहिए। ये दोनो पदार्थ रासायनिक तत्व हैं या यौगिक, इनकी भौतिक और रासायनिक विशेषताएं क्या हैं, ये गैस, द्रव या ठोस हैं– ये सब बातें विषय पढ़ने पर ही समझ में आती हैं। पोटाश शब्द की उत्पत्ति हमें मालुम हैं लेकिन मूल अर्थ से तकनीकी अर्थ पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। पोटाश शब्द से हम्फ्रे डेवी ने "पोटेशियम" तत्व का नामकरण किया। अपने प्रयोगों के दौरान लोहे के एक बर्तन (Pot) में बची हुई राख (Ash) में इस तत्व का सुराग मिला। Pot+Ash से Potassium शब्द हम्फ्रे डेवी की देन हैं। ऑक्सीजने

तथा पोटेशियम के मूल अर्थ (शब्दार्थ) और विषयगत अर्थ समझने में कोई परेशानी नहीं होती क्योंकि विज्ञान की भाषा में तकनीकी शब्दों का अर्थ व्युत्पत्ति से नहीं बल्कि परिभाषा–व्याख्या से जाना समझा जाता है। लेकिन शब्दावली में ऐसे सार्थक शब्द भी मिलते है जहॉ शब्दार्थ और संकेतार्थ से अनुरूपता देखी जाती है। स्वीडेन के प्रकृति वैज्ञानिक लिनीअस (Linnaeus) जीवधारियों के द्विपद नामकरण पद्धति (Binomial System of Nomenclature-1758) के प्रणेता माने जाते हैं। अंग्रेजी में प्राणी विज्ञान से संबंधित दो शब्द "डिप्टेरा" (Diptera) और "राइनोसेरोस यूनीकार्निस" (Rhinoceros unicornis) उन्ही की देन हैं। डिप्टेरा शब्द का मूल अर्थ है "दो पंख वाला"। यह कीटों के एक वर्ग का नाम है। जिसमें मच्छर जैसे दो पंख वाले कीट आते हैं। हिन्दी में हम जिस जानवर के लिए गैंडा शब्द का प्रयोग करते हैं अंग्रेजी में में उसे राइनोसेरास कहते है। ये दो ग्रीक शब्दों से बना है जिनका अर्थ है "नाक" और "सींघ"। गैंड़े के नासा क्षेत्र में के उपर एक सींघ जैसी संरचना होती है। भारतीय गैंडे में ऐसा एक ही सींघ होता है। यूनीकार्निस का ग्रीक भाषा में मतलब है एक सींघ। इस प्रकार गैंडे का द्विपद नाम "राइनोसोरास यूनीकार्निस" कितना सार्थक है।

विज्ञान की भाषा में एक तीसरे प्रकार के शब्द भी चलते हैं जो अर्थ शून्य होता है। वैज्ञानिकों के नाम पर आधारित ऐसे शब्दों को एपोनिम (Eponym) अर्थात व्यक्तिमूलक शब्द कहते है। शेक्सपियर ने अपने एक मशहूर नाटक "रोमियो और जूलियट" में एक जगह कहा है :– "नाम में क्या धरा है। जिस फूल को हम रोज (Rose) कहते है, अगर उसे कोई और नाम दे दिया जाए तो भी उस फूल में उतनी ही अच्छी सुगंध आएगी। एक साहित्यकार का यह कथन वैज्ञानिक भाषा में कितना सटीक बैठता है इसका जीता–जागता उदाहरण है 'सेल्सियस' शब्द जिसे हम रोज ही समाचारों में पढ़ते–सुनते है। तापमान का एक मात्रक है सेल्सियस। इस संकल्पना का नाम पहले "सेन्टीग्रेट" था। यह शब्द तकनीकी अर्थ को स्पष्ट रुप से संकेतित करता है। इस मात्रक में पानी का जमाव बिन्दु यानी हिमांक 0 डिग्री है और पानी उबालने का बिन्दु यानी क्वथनांक 100 डिग्री है। इस तरह सेन्टीग्रेड (शाब्दिक अर्थ 100 अंश) शब्द एक सार्थक नाम है। किन्तु कुछ दशक पहले नाप तोल के एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन (International Conference on weights and measures) में यह निर्णय लिया गया कि सेन्टीग्रेड के स्थान पर सेल्सियस ही मानक प्रयोग है। इस प्रक्रिया को संस्थागत मानकीकरण कहते है। विज्ञान की भाषा में निर्देशात्मक विधि से मानकीकरण होता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्द–कोश हमें केवल मानक प्रयोगों की ही जानकारी देते हैं। सामान्य कोशों में किसी शब्द के वे सभी अर्थ दिये जाते है जिनमें उनका प्रयोग हो रहा है। वैज्ञानिक जगत ने एक सार्थक शब्द (सेन्टीग्रेड) के स्थान पर एक अर्थ शून्य शब्द (सेल्सियस एक वैज्ञानिक का नाम है) को मानकीकृत कर स्वीकार कर लिया। इससे स्पष्ट है कि वैज्ञानिक शब्दावली में शब्दार्थ की पारदर्शिता का कोई विशेष महत्व नहीं है। मानकीकरण की प्रक्रिया में पहले वैज्ञानिक संकल्पना का अर्थ सुनिश्चित किया जाता है परिभाषा से, फिर उसे कोई नाम दिया जाता है। पहले तीन गैसों की खोज हुई, उनके कुछ गुणों या लक्षणों का पता लगाया गया जिनके आधार पर उनकी पहचान हो सके, फिर उन्हें ऑक्सीजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन नाम दिये गए। बैक्टीरिया और जीवाणु शब्दों से हम सभी परिचित हैं। ये दोनो शब्द एक ही वैज्ञानिक संकल्पना के नाम हैं। यह संकल्पना क्या है? इसकी जानकारी विषय पढ़ने से होती है। यह सूक्ष्म जीवों का एक वर्ग है जिनमें तीन तरह की आकृति वाले जीव आते हैं– दण्डाकार, गोलाकार और सर्पिलाकार। बैक्टीरिया का शाब्दिक अर्थ है "छोटी दण्डी या छड़ी"। इस आधार पर केवल दण्डाकार वर्ग के सूक्ष्मजीवों के लिए यह नाम शुद्ध है, शेष दोनों आकृति के जीवों के लिए अशुद्ध। इन सूक्ष्म जीवों की पहचान अनेक लक्षणों से होती है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं– ये सूक्ष्म जीव केवल सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) से ही देखे जा सकते है; इनमें स्पष्ट कोशिकाभित्ति होती है; इनमें सुस्पष्ट केन्द्रक (न्यूक्लियस) नहीं होता, ये विषमपोषी होते हैं; सामान्यतः एककोशिक हैं, अलैंगिक विधि से ही गुणन करते है, अधिकांशतः परजीवी या मृतोपजीवी होते हैं। बैक्टीरिया ; जीवाणु या किसी भी शब्द में इतने लक्षणों का समावेश नहीं किया जा सकता। एक या दो लक्षणों के आधार पर ही नामकरण किया जाता है। इस तरह वह नाम शीघ्र ही किसी वैज्ञानिक वस्तु, पदार्थ या संकल्पना का संकेत, प्रतीक या पहचान चिन्ह बन कर रह जाता है। अर्थबोध की दृष्टि से वैज्ञानिक शब्दों को अपूर्ण, अशुद्ध या दोषपूर्ण ठहराने का कोई औचित्य नहीं हैं। सही–गलत या फिर सरल–कठिन के वाद–विवाद में उलझने का प्रमुख कारण यह है कि वैज्ञानिक शब्दावली को समझने में परिभाषा की भूमिका की तरफ हमारा ध्यान नहीं जाता। वैज्ञानिकों के साथ–साथ भाषाविद् भी परिभाषा के महत्व पर जोर नहीं देते हैं। सुविख्यात अमेरिकी भाषाविद् ब्लूमफील्ड (Bloomfield) ने विज्ञान के भाषायी पक्ष की चर्चा करते हुए कहा :– " तकनीकी शब्द लम्बे वाक्यांश या व्याख्यात्मक

विवरण की जगह ले लेते हैं और इनका अर्थ सर्वसम्मत परिभाषा से सुनिश्चित होता है। केवल उसी परिभाषित अर्थ में ही वैज्ञानिक जगत में सर्वत्र उसका प्रयोग होता है।" वैज्ञानिक शब्दावली के संदर्भ में हमें "परिभाषा द्वारा मानकीकरण" की प्रक्रिया को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचन से विज्ञान की भाषा और वैज्ञानिक शब्दावली के बारे में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। विज्ञान की भाषा की चाहे वैज्ञानिक हिन्दी हो या वैज्ञानिक अंग्रेजी, तीन प्रमुख विशेषताएं होती हैं– अर्थ की निश्चितता, स्पष्टता और संक्षिप्तता। निश्चितार्थता और संक्षिप्तता आती है वैज्ञानिक शब्दावली के प्रयोग से। जब हम कोई विषय पढ़ते हैं तभी हमें उस विषय से जुड़े तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं आदि की जानकारी होती है और उनके लिए प्रयुक्त शब्दावली का भी ज्ञान हो जाता हैं। हिन्दी शब्दावली के संदर्भ में हम उल्टे रास्ते पर चलने का प्रयास करते हैं अर्थात् तकनीकी शब्दों से विषय की जानकारी की अपेक्षा करते हैं। हमें विज्ञान की भाषा और इसकी तकनीकी शब्दावली को सही परिप्रेक्ष्य में सोचने–समझने का प्रयास करना चाहिए।

–उपनिदेशक (सेवानिवृत्त)
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
417/1, निवाजगंज लखनऊ–3 फोन :– 254543

हिन्दी जाओ भूल

परभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
ए–बी–सी–डी याद कर, हिन्दी जाओ भूल।
हिन्दी जाओ भूल, बनो अंग्रेजी भालू।
गोरे गए विदेश, यहाँ पर रह गए कालू।
काली–काली देह है, घिसते हैं दिन–रात।।
कब गोरी काया मिलै, सुधर जाए हर बात।।
बाहर–बाहर इंडियन, भीतर हैं–अंग्रेज।
गर हिन्दी रोती मिले, भाग लेहु अति तेज।

राज्य–राज्य में खुल गए हिन्दी के संस्थान।
लेकिन हिन्दी के लिये कही नहीं स्थान।
कहीं नहीं स्थान, रो रही हिन्दी टीचर।
अंग्रेजी बाबू हैं, हिन्दी वही फटीचर।
इंग्लिश सरसर दौड़ती, चलती है सरकार।
चार शब्द इंग्लिश पढ़ो, होगा बेड़ा पार।।

चौड़ा सीना तानकर गिटपिट इंग्लिश बोल।
बरस–बरस छिप जाएंगी, तेरी पोलमपोल।
अंग्रेजी का राज्य ही चलता है चहुं ओर।
हिन्दी फिर प्यासी खड़ी, डूबा लोटा–डोर।

गांधी जी थे चाहते, हिन्दी करे विकास।
लेकिन हिन्दी मर गई, जमी कब्र पर घास।
जमी कब्र पर घास, आ गए पंडित–पंडे।
खाते हिन्दी बेच, देख इनके हथकंडे।
जनभाषा हिन्दी रही, राज करे कोई और।
बोया हिन्दी बीज था, फूटा इंग्लिश बौर।।

गली–गली में खुल रहे अंगरेजी स्कूल।
अनुशासन की बात क्या, चलता है पटरूल।
बिल्ली माने "कैट" कुत्ता माने "डाग"।
अंग्रेजी पीछे लगी, हिन्दी रहती भाग।
हिन्दी रहती भाग, पढ़ाते सच्ची शिक्षा।
हिन्दुस्तानी खींच रहे अंग्रेजी रिक्शा।
अंग्रेजी नेकर पहन, निकले छोटे लॉट।
अंग्रेजी घोंटी–पढ़ी, हो गई बुद्धि सपाट।
माता–पिता निहाल हैं, देख मनोहर रूप।
बेटा इंग्लिश पढ़ रहा, पीता इंग्लिश सूप।।

हिन्दी घाटे का गणित, सोलह दूनी आठ।
सोलह दूनी आठ, पढ़ रहे हिन्दी बच्चे।
ये कल के चपरासी हैं, किस्मत के कच्चे।
इसीलिए तो भर गए इंग्लिश के स्कूल।
परभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

कृष्णा दुनिया देखती, गीता कौन पढ़ाए।
रामा–भरता के लिए लल्लू नीर बहाए।
योगा चलता जोर का, योग भला क्या चीज?
इंग्लिश के पेशंट है, हिन्दी बनी मरीज।
प्रेमचंद भूखे मरे, मर गए दास कबीर।
तुलसी–सूरा के लिए कौन बहाए नीर।

–अनुरूप मिश्र
"अमर उजाला" से साभार

वैज्ञानिक एवं तकनीकी हिन्दी अनुवाद समस्या एवं समाधान

✍ दिलीप भाटिया

अनुवाद के लिए स्रोत भाषा का ज्ञान, लक्ष्य, भाषा का ज्ञान, शब्दावली का उपयोग एवं संदर्भ विषय की जानकारी आवश्यक है। इन सबके अतिरिक्त निरन्तर अभ्यास प्राथमिक आवश्यकता है प्रारंभ में वाक्य, फिर पैराग्राफ, फिर पूर्ण आलेख से होते हुए लम्बे आलेखों के अनुवाद करने से अभ्यास सार्थक होता है, एवं अनुवाद में परिपक्वता आती है। शब्द के स्थान पर शब्द रखना हो तो अनुवाद विज्ञान कहलाता है, परन्तु अर्थ एवं भाव को बनाए रखकर अगर सृजन हो रहा है, तो अनुवाद कला का रूप ले लेता है। विज्ञान से कला तक की यात्रा अथक श्रम, समय एवं समर्पित भावना से ही सम्भव हो पाती है। सूचना प्रधान जानकारी के अनुवाद में तथ्य एवं अर्थ प्रमुख रहता है।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुवाद को एक जटिल कार्य समझा जाता है, परन्तु यथार्थ में ऐसा नहीं है। साहित्य हो या इतिहास, भौतिक शास्त्र हो या कानून, जीव विज्ञान हो या परमाणु ऊर्जा, अनुवाद एक भाषा की सूचना का दूसरी भाषा में रूपान्तर है। जिस विधा का भी अनुवाद करना हो, उस विधा में पारंगत होना, प्रवीण होना एवं दक्ष होना अच्छे परिणाम देता है। अनुवाद की सफलता का मापदण्ड है कि अनुवाद को पढ़ते समय मौलिक कृति जैसी अनुभूति हो। अनुवादक अपने कार्य में प्रवीण हो तो अनुवाद मूलकृति से भी अधिक प्रभावशाली बन जाता है, पाठक को बांधे रखता है, एवं मौलिक सृजन के सभी गुण उस अनुवाद में समा जाते हैं।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पश्चिमी खण्ड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066 से सम्पर्क करके इच्छित विषय की पारिभाषिक शब्दावली मंगवा लेनी चाहिए। यह संदर्भ शब्दावली अनुवाद में बहुत सहायक सिद्ध होगी।

हिन्दी में प्रकाशित होने वाली विज्ञान पत्रिकाएं पढ़ते रहना चाहिए। इनमें कुछ प्रमुख हैं–

1. 'वैज्ञानिक' हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद् भामा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे–मुम्बई–400085
2. 'विज्ञान', विज्ञान परिषद् प्रयाग महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
3. 'विज्ञान प्रगति' सी.एस.आई.आर., डॉ0 कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली–12
4. 'आविष्कार'
5. 'विज्ञान गरिमा सिन्धु' वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पश्चिमी खण्ड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–66

इनको पढ़ते रहने से वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली का ज्ञान बढ़ेगा एवं सरल सहज रूप से हिन्दी में वैज्ञानिक सामग्री किस प्रकार प्रस्तुत की जाती है, उसकी जानकारी मिलेगी। अच्छी साहित्यिक पत्रों एवं पत्रिकाओं में भी एकाध लेख विज्ञान से सम्बन्धित होते हैं, उन्हे भी पढ़ते रहना चाहिए। इन विज्ञान पत्रिकाओं के निरन्तर अध्ययन से अनुवाद में निखार–सुधार स्वतः ही दृष्टिगोचर होने लगेगा।

परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में अनुवाद करने के लिए परमाणु ऊर्जा से सम्बन्धित परमाणु ऊर्जा विभाग एवं न्यूक्लीयर पावर कारपोरेशन की पत्रिकाओं को पढ़ने से इन पत्रिकाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी लेखों से बहुत ही उपयोगी जानकारी मिलेगी । इस समय प्रमुख पत्रिकाओं में परमाणु, अणुशक्ति, अणुभारती, अणुबिहार, अणुमाला, प्रगति संकेत, गुरुजल भारती, परमाणु, अणुतारा इत्यादि प्रमुख हैं । इन पत्र पत्रिकाओं में वैज्ञानिक तथा तकनीकी आलेखों की भाषा से यह समझ में आयेगा कि किस प्रकार सरल सहज रूप से वैज्ञानिक अनुवाद हिन्दी में करना सम्भव है । जब इनमें से अधिकांश आलेख मौलिक रूप से हिन्दी में ही लिखे गए हैं तो फिर अन्य भाषा से हिन्दी में अनुवाद करना इतना कठिन नहीं है जैसी धारणा बन गई है। क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए । प्रचलित शब्दों को वैसे ही देवनागरी लिपि में लिख देना चाहिए एवं कोष्ठक में पारिभाषिक हिन्दी शब्द भी लिख देना चाहिए । राजस्थान परमाणु बिजली घर, भारी पानी संयंत्र (कोटा), नाभिकीय ईंधन सम्मिश्र की वैज्ञानिक संगोष्ठियों की आलेख पुस्तिकाओं

एवं परमाणु ऊर्जा विभाग, नई दिल्ली की वैज्ञानिक संगोष्ठी की आलेख पुस्तिका का भी अध्ययन कर इस विषय से सम्बन्धित शब्दावली का ज्ञान बढ़ाया जा सकता है । संदर्भ विषय में हमारा शब्दभण्डार जितना व्यापक होगा, उतना ही अनुवाद सही होगा एवं मूल कृति के निकटतम होगा ।

अलग–अलग अनुवादकों के अनुवाद में भिन्नता हो सकती है । पूर्णतया समतुल्य अनुवाद प्रारम्भ में सम्भव नहीं है फिर भी सूचना एवं अर्थ को रखते हुए अगर अनुवाद किया गया है तो अनुवाद स्वीकार्य होगा । मूल आलेख का लेखक उपलब्ध हो तो उसे अनुवाद पढ़ा देने से कई गलतियां दूर हो जाएंगी एवं अर्थ का अनर्थ होने से भी बचा जा सकेगा ।

मन में यह भ्रम नहीं रखना चाहिए कि तकनीकी अनुवाद कठिन है । कई बार साहित्यिक कृति का अनुवाद करना कठिन होता है । वहाँ पर शैली, लालित्य इत्यादि प्रधान हो जाते हैं जब कि अधिकांश तकनीकी आलेख सूचनाप्रधान होते हैं। अनुवादक अगर मौलिक सृजन की विद्या में भी पारंगत है तो उसे अनुवाद प्रक्रिया में अधिक कठिनाई नहीं आएगी एवं उसके द्वारा किया हुआ अनुवाद कला से अधिक समीप होगा एवं ऐसा अनुवादक अपनी विशिष्ट पहचान बना लेगा ।

अनुवाद से सम्बन्धित अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए । केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो की पत्रिका 'अनुशीलन' भी पढ़ना चाहिए । संस्थान के राजभाषा विभाग की लाइब्रेरी में ये पुस्तकें उपलब्ध हो सकती हैं । अनुवादक जितना अधिक पढ़ेगा एवं जितना अधिक अभ्यास करेगा, उसका किया हुआ अनुवाद उतना ही परिपक्व होता चला जायेगा ।

संक्षेप में कुछ बातों की ओर पुनः ध्यान दिलाया जा रहा है–

1. अभ्यास से समस्याएं सुलझती चली जाएंगी ।
2. सक्षम व्यक्ति का मार्गदर्शन प्रभावी रहेगा ।
3. विज्ञान पत्रिकाओं के पाठक बनने से बहुत लाभ रहेगा ।
4. अनुवाद के साथ मौलिक सृजन अपनाने से सुखद परिणाम मिलेंगें ।
5. देवनागरी लिपि में स्रोत भाषा के शब्द लिख देने में कोई आपत्ति नहीं है ।
6. संदर्भ विज्ञान या तकनीकी विषय का अच्छा ज्ञान होना अनिवार्य है ।
7. सक्षम व्यक्ति से जानकारी लेने में संकोच नहीं होना चाहिए ।
8. निकटतम समतुल्य अनुवाद करने का प्रयास करना चहिये ।
9. सूचना एवं अर्थ वही रहें, इसका पूरा ध्यान रखा जाए ।
10. खाली समय में वैज्ञानिक सामग्री का खूब अध्ययन करना चाहिए ।

– राजस्थान परमाणु बिजलीघर
अणुशक्ति–323303 (कोटा)

सम्मान

1. डॉ0 अक्षय कुमार वर्मा, खंडवा मध्यप्रदेश को एसोसिएशन ऑफ मेडिकल सांइसेज, नई दिल्ली का डॉक्टर ऑफ द मिलेनियम अवार्ड' प्राप्त हुआ।
2. डॉ0 अमरेश चन्द्र पाण्डेय, विभागाध्यक्ष, मत्स्य विज्ञान विभाग, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज फैजाबाद को नेचर केजर्वेटर' संस्था की ओर से वर्ष 2000 का 'कौटिल्य स्वर्ण पदक' प्रदान किया गया।
3. डॉ0 आई. सी. गुप्ता, विभागाध्यक्ष, प्राकृतिक संपदा एवं पर्यावरण काजरी, जोधपुर को इंडियन सोसाइटी ऑफ सैलिनिटी रिसर्च सांइटिस्ट्स् की फेलोशिप प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त आपको एस. पी. उनवाला स्मृति पुरस्कार भी प्रदान किया गया।
4. प्रसिद्ध खगोलविज्ञानी डॉ0 जयंत विष्णु नार्लीकर को इस वर्ष का छत्रपति साहू जी महाराज पुरस्कार के लिए चुना गया है।
5. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर तथा विज्ञान संकाय के अधिष्ठाता डॉ0 जे.एस. यादव को पर्यावरण के क्षेत्र में किए गए विशेष योगदान के लिए पर्यावरण विज्ञान की प्रतिष्ठित परिषद् 'नेचर कंजरवेटर्स द्वारा मानद फैलोशिप (एफ.एन. सी.–एच.) प्रदान कर सम्मानित किया गया है।

हिन्दी विलुप्त कैसे हुई

✍ यज्ञ शर्मा

एक–एक करके हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित पत्र बंद हो गए। लेकिन हिन्दी का भविष्य बहुत उज्जवल है। दूधवालों, पानवालों, केलेवालों की समझी जाने वाली भाषा को एक दिन संसार के बड़े–बड़े विशेषज्ञ पढ़ा करेगें, जैसे कि आज ब्राह्मी लिपि या मिस्र की चित्रलिपि को पढ़ा जाता है। संसार से लुप्त होने वाली भाषाओं में हिन्दी का स्थान प्रमुख रहेगा। बड़े–बड़े विद्वान शोध ग्रंथ लिखेगें कि हिन्दी लुप्त कैसे हुई? जो शोध अन्य लोग बाद में करेगें, वह मैने पहले ही कर लिया है। प्रस्तुत है इस शोध के कुछ अंश :

इस देश में हिन्दी भाषी प्रजाति सबसे अधिक है। लेकिन इस प्रजाति में पाठी उपजाति सबसे कम है। बोलने में साक्षर बहुत हैं, पढ़ने में निरक्षर बहुत हैं। अन्य भाषा वाले मानते हैं कि हिन्दी अनपढ़ लोगों की भाषा है। सही समझते हैं। जो लोग पढ़ते नहीं, वे अनपढ़ ही तो हुए। अगर पढ़ते तो हिन्दी की अनेक पत्र पत्रिकाएं क्या बंद हो जाती? आज भी कई ऐसी पत्रिकाएं और अखबार हैं, जिन पर खतरा मंडराता रहता है। चंद हिन्दी प्रेमी लोग यदा–कदा काफी चिंतित भी हो जाते हैं और चिंतन की परंपरा का निर्वहन कर लेते हैं। जब लोग पढ़ते ही नहीं, तो प्रकाशन का धंधा तेजड़ियों का तो हो नही सकता । जो प्रकाशन मिशन के रूप में शुरू किए थे, वे धीरे–धीरे मुनाफे के माध्यम में बदल गए। मिशन में मुनाफा नहीं देखा जाता और धंधा मुनाफे के बिना किया नहीं जाता। वैसे दुनिया का हर काम सिर्फ मुनाफे के लिए नहीं किया जा सकता। हिन्दी लेखक का घर लिखने से नहीं चलता। वह लिखने के लिए लिखता है, रोटी कमाने के लिए दूसरा कोई काम करता है। वह अगर ऐसा नही करेगा, तो वह जिंदा नहीं रह सकता। कलम और रोटी के दो अलग अलग मोर्चों पर उसे कमर कसना होता है।

हिन्दी भाषा में लिखने के लिए बहुत से लेखकों ने बड़े त्याग किए, तो बहुतों ने भाषा का सत्यानाश भी किया। उन्होंने पिछली पीढ़ी के लेखन की रूमानियत के विरोध में भाषा को सपाट बनाया। सपाट बयानी के उत्साह में भाषा को ऐसा घिसा गया कि भाषा का फर्श एकदम चिकना हो गया। पढ़ने की कोशिश करने वालों के पांव फिसलने लगे। पाठक फिसल–फिसल के लुढ़कने लगे। डर के मारे पाठकों ने पढ़ना बंद कर दिया। जो लोग रूमानियत को नष्ट करने निकले थे, उन्होंने भाषा की रोचकता को नष्ट कर दिया। इन लेखकों ने यह नहीं सोचा कि पत्र पत्रिकाएँ पाठ्य–पुस्तक नहीं होती कि फेल होने के डर से छात्रों को जबरन पढ़नी पड़े, हालॉकि लेखक इस बात को स्वीकार नहीं करते, लेकिन जो लेखन पढ़ा नहीं जाता, उसमें पाठक नहीं, लेखक फेल होता है।

जब निराश होकर पाठकों ने पढ़ना बंद कर दिया तो लेखकों का आपस में समझौता हो गया। एक दूसरे को पढ़ने की शर्त तय हो गई। सभी ने एक दूसरे से कहा कि तुम मेरी पीठ सहलाओं, मैं तुम्हारी पीठ थपथपाऊगां। तुम मेरी जय–जय करो, मैं तुम्हारी जय–जय करूँगा। हिन्दी लेखक समाज में राग जैजैवंती बहुत लोकप्रिय है।

आंदोलन से भाषा का विकास होता है। इसलिए जो लेखक संपादक बन गया, वह अपना आंदोलन अलग चलाने लगा। हरेक का अपना अभियान था, हरेक की अपनी सेना थी। हर आंदोलनकारी संपादक, घुड़सवार सेनापति था। भाषा एक घोड़े अलग–अलग। हर घोड़े की दिशा अलग। भाषा घोड़ों से घिर गई। जब एक ही समय पर दस घोड़े दस दिशा में खींचेगें, तो भाषा कहां जाएगी? भाषा भी वहीं पड़ी रही, घोड़े भी वही खड़े रहे। सब अपने–अपने मसीहा बन गए, भाषा का उद्धार किसी से नहीं हुआ। हो जाता, तो हिन्दी इतने सारे प्रकाशन बंद हो सकते थे क्या?

संसार में हिन्दी शायद एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसमें आलोचक लेखक से बड़ा होता है, हिन्दी में जितने गुट आलोचकों ने बनाए, उतने लेखकों ने नहीं बनाए। जिन्होंने कभी रचनात्मक लेखन नहीं किया, वे लेखन को दिशा देने लगे। ऐसे में भाषा भटक गई, तो अचरज क्यों करना? पाठकों का पढना बंद करवाने में आलोचना का भी बहुत बड़ा योगदान है।

जब भी कोई हिन्दी प्रकाशन बंद हो रहा होता है, तो सब लोग प्रकाशकों को भाषा के प्रति उनके दायित्व का उपदेश देते हैं। पर क्या पाठकों और लेखकों ने अपनी जिम्मेदारी निभाई है? फिर जिसके पैसे डूब रहें हैं, उसे दोष क्यों देना? वैसे फिक्र की कोई बात नहीं हैं। हिन्दी का सम्मान कम नहीं होने वाला। संसार की लुप्त भाषाओं में उसका बड़ा सम्मान हुआ करेगा। लेकिन भविष्य में उसका अध्ययन करने वाले विशेषज्ञ यह आश्चर्य जरूर करेगें कि हिन्दी भाषियों की संख्या इतनी बड़ी थी, फिर भी वे अपनी भाषा को बचाकर नहीं रख पाए।

'अमर उजाला' से साभार

पुस्तक समीक्षा

(1) पुस्तक : <u>अपशिष्ट प्रबंधन,</u>

लेखक : डॉ0 दिनेश मणि, डी.एस.सी.

प्रकाशक : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग), भारत सरकार, पश्चिमी खण्ड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066, पृष्ठ संख्या : 54, वर्ष : 1997, मूल्य :17 रुपये

समीक्ष्य पुस्तक 'अपशिष्ट प्रबंधन' विद्वान लेखक डॉ0 दिनेश मणि की वर्षों के अध्ययन, संगोष्ठियों में भागीदारी और अपशिष्ट प्रबन्धन की दिशा में कुछ ठोस साहित्य आम लोगों के लिए उपलब्ध कराने के सद्प्रयास का सुपरिणाम है। पुस्तक में कुल 6 अध्याय हैं – प्रस्तावना, अपशिष्ट क्या है?, अपशिष्ट उत्पादन: वर्तमान स्थिति, अपशिष्टों के संभावित उपयोग, अपशिष्टों का प्रबन्ध और उपसंहार।

इन दिनों जिधर निकल जाइए, कूड़े के ढेर दिखाई देते हैं। इनमें अनेक प्रकार की बीमारियां भी उत्पन्न होती हैं और पर्यावरण दूषित होता है। फिर भी कूड़े–कचरे के निपटान की समस्या बनी हुई है। ऐसी स्थिति में 'अपशिष्ट प्रबन्धन' के प्रकाशन का स्वागत है। पुस्तक कॉलेजों और विश्वविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों–शिक्षकों के लिए तो उपयोगी है। पुस्तक की भाषा सरल है। शैली प्रवाहपूर्ण और रोचक है।

पुस्तक के अंत में दिये गए 2 चित्र, 6 सारणियां, संदर्भ–सूची, हिन्दी–अंग्रेजी शब्द सूची पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाती हैं।

(2) पुस्तक : <u>पर्यावरणीय प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन</u>

लेखक : डॉ0 दिनेश मणि, डी.एस.सी.

प्रकाशक : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय(शिक्षा विभाग), भारत सरकार, पश्चिमी खण्ड–7, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली – 110066

पृष्ठ संख्या : 154, वर्ष : 1998, मूल्य : 23 रु0 25 पैसे

भारत सरकार के वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा प्रकाशित डॉ0 दिनेश मणि द्वारा लिखी गई उनकी यह दूसरी पुस्तक है। वर्तमान में पर्यावरण पर काफी कुछ लिखा गया है। पर्यावरण पर लिखना फैशन जैसा है। वैज्ञानिक, पर्यावरणविद्, साहित्यकार,जिसे देखिए पर्यावरण पर लिखे जा रहा है। इस प्रकार बहुत सा अवैज्ञानिक साहित्य भी रचा गया है। किन्तु समीक्ष्य पुस्तक पूर्णरूपेण वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है।

सुविधा के लिए पूरी पुस्तक को 16 अध्यायों में बांटा गया है। पर्यावरण का अर्थ और परिभाषा से प्रारंभ करते हुए पर्यावरण की वर्तमान स्थिति, विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों के स्रोत, प्रकार, कारण, प्रभाव रोकने अथवा कम करने के उपाय और पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न घटकों पर प्रदूषण के प्रभाव और प्रबंध पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है।

परिशिष्ट के रूप में संदर्भ, पारिभाषिक शब्दावली (हिन्दी–अंग्रेजी और अंग्रेजी–हिन्दी दोनों) पुस्तक की उपादेयता बढ़ाते हैं। किन्तु चित्रों का अभाव खटकता है। भाषा सरल, सुबोध और ग्राह्य है। शैली आकर्षक है।

इसे स्नातक और स्नात्कोत्तर स्तर के विद्यार्थी और शिक्षक भी पसंद करेंगे। मूल्य कम होने के कारण इसे विद्यार्थी और अध्यापक खरीद सकते हैं। पुस्तक के प्रकाशन से जुड़े सभी व्यक्ति साधुवाद के पात्र हैं।

–प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव
अवकाशप्राप्त अध्यक्ष, वनस्पति विभाग
सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद–2

परिषद् का पृष्ठ

1. स्वामी सत्यप्रकाश स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

इस वर्ष का स्वामी सत्यप्रकाश स्मृति व्याख्यान 29 जुलाई 2000 को विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के अवकाशप्राप्त न्यूरोसर्जन डॉ0 पी. एन. टण्डन ने 'हमारा मस्तिष्क' विषय पर रोचक व्याख्यान देते हुए कहा कि मानव का मस्तिष्क एक जटिल और सूक्ष्म संरचना है। मानव द्वारा किये जाने वाले विभिन्न कार्य मस्तिष्क के अलग–अलग भागों द्वारा नियंत्रित होते हैं। स्लाइडों की सहायता से उन्होंने दर्शाया कि इन अलग–अलग संवेदनों को मस्तिष्क आपस में जोड़ कर एक समग्र चित्र तैयार करता है और उसके अनुसार आवश्यक निर्देश देता है। उन्होंने बताया कि किसी भी भाषा को सीखना कम उम्र के बच्चों के लिये आसान होता है अतः बच्चों को शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही दी जानी चाहिये।

कार्यक्रम की अध्यक्ष, विज्ञान परिषद् की सभापति डॉ0 (श्रीमती) मंजु शर्मा ने डॉ0 टण्डन के योगदानों की चर्चा करते हुए कहा कि उनकी अपूर्व मेधा का कुशल उपयोग करने के लिए उन्हें भारत सरकार द्वारा गठित 'ब्रेन सेल' का अध्यक्ष बनाया गया है।

कार्यक्रम के आरम्भ में डॉ0 पी.एन. टण्डन तथा डॉ0 मंजु शर्मा ने स्वामी सत्यप्रकाश जी के चित्र पर माल्यार्पण किया। डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' ने सरस्वती वन्दना प्रस्तुत की। परिषद् के कोषाध्यक्ष डॉ0 अशोक कुमार गुप्त एवं संयुक्त मंत्री डॉ0 सुनील कुमार पाण्डेय ने माल्यार्पण द्वारा अतिथियों का स्वागत किया। कार्यक्रम के संचालक श्री प्रेमचंद्र श्रीवास्तव ने डॉ0 टण्डन का परिचय प्रस्तुत किया। कार्यक्रम के अंत में उपसभापति डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी ने सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया।

इस अवसर पर प्रो. सी. एल. खेत्रपाल, प्रो. एम.जी.के. मेमन, प्रो. उमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ0 वी.पी. शर्मा, डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, डॉ0 एम. डी. तिवारी आदि विद्वान उपस्थित थे।

2. डॉ0 आत्माराम स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

30 जुलाई 2000 को विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित डॉ0 आत्माराम स्मृति व्याख्यान के अन्तर्गत मलेरिया अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली के पूर्व निदेशक डॉ0 वी.पी. शर्मा ने 'भारत में मलेरिया' विषय पर व्याख्यान देते हुए बताया कि मलेरिया के उन्मूलन के लिये जन सहभागिता आवश्यक है। प्रतिवर्ष 25 से 30 लाख लोग इस बीमारी से मरते हैं। मच्छरों की कुल साढ़े तीन हजार प्रजातियों में से मात्र 37 ही मलेरिया की वाहक हैं, जिनमें से 6 प्रजातियां भारत में पाई जाती हैं। मलेरिया से बचाव के लिये गंदे पानी से भरे गड्ढों को बन्द करना चाहिये। 'ट्रीटेड' मच्छरदानी का प्रयोग सबसे सरल उपाय है। नीम के तेल का प्रयोग भी बहुत कारगर सिद्ध हुआ है।

विज्ञान परिषद् की सभापति डॉ0 मंजु शर्मा ने भी अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में सामुदायिक सहभागिता पर जोर दिया और कहा कि प्रयोगशाला में किये गये शोधकार्यों का लाभ आम लोगों तक पहुँचाने के प्रयास किये जाने चहिये।

इस अवसर पर प्रोफेसर एम.जी.के. मेनन द्वारा वर्ष 1999 के गोरख प्रसाद पुरस्कार के प्रमाण–पत्र श्री अजय कुमार एवं श्री देवव्रत द्विवेदी को प्रदान किये गये।

कार्यक्रम का आरम्भ डॉ0 आत्माराम के चित्र पर माल्यार्पण द्वारा हुआ। डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। संचालक श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने आगंतुकों का स्वागत किया एवं परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने व्याख्यानदाता का परिचय दिया। अंत में उपसभापति डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी ने सभी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया। इस अवसर पर राजर्षिटण्डन मुक्त विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. सान्याल, डॉ0 सी.एल. खेत्रपाल, डॉ0 पी.एन. टण्डन, डॉ0 उमाशंकर श्रीवास्तव, डॉ0 प्रमिला गुप्ता आदि प्रमुख रूप से उपस्थित थे।

3. हिन्दुस्तानी एकेडेमी में डॉ0 हरिमोहन स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

29 जुलाई 2000 को हिन्दुस्तानी एकेडेमी सभागार में आयोजित डॉ0 हरिमोहन व्याख्यानमाला में भारत सरकार के जैव-प्रौद्योगिकी विभाग की सचिव एवं विज्ञान परिषद् प्रयाग की सभापति डॉ0 मंजु शर्मा ने कहा कि विकासशील देशों को जैव-प्रौद्योगिकी की ज्यादा जरूरत है।

उन्होंने कहा कि आज सारे विश्व में जैव-प्रौद्योगिकी पर वात हो रही है। यह विज्ञान मनुष्य के ज्यादा करीब है। जैव-प्रौद्योगिकी से हम रोजगार और भोजन के साथ-साथ वातावरण को भी शुद्ध रख सकते हैं। हम अपनी अथाह प्राकृतिक संपदा से रोजगार बढ़ाने के साथ-साथ प्रदूषण पर भी नियंत्रण कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि 1953 में वाटसन, क्रिक के आविष्कार के पश्चात वैज्ञानिकों ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। तब से इस क्षेत्र में लगातार प्रगति हुई। विकासशील देशों में भुखमरी, कुपोषण के साथ मलेरिया, एड्स, ट्यूबरकुलोसिस, हेपिटाइटिस-बी जैसी बीमारियों के बढ़ने पर उन्होंने चिन्ता व्यक्त की। साथ ही यह भी कहा कि बायोटेक्नालोजी के जरिए ही इन बीमारियों की दवाइयां और टीके पैदा किये जा सकते हैं। वैज्ञानिकों को चाहिए कि बीमारियों को पहचानने के साधन और वैक्सीन का आविष्कार करें।

उन्होंने कहा कि मृदा का उपजाऊपन घट गया है।जल स्तर काफी नीचे चला गया है। ऐसी स्थिति में एक बिलियन आबादी हेतु अन्न पैदा करने के लिए हमें नये जीन्सों की खोज करनी चाहिए। हमें मालूम होनो चाहिए कि हम क्या और कितना पैदा कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि जेनिटिक इंजीनियरिंग गलत नहीं हैं। इसे बताने की जरूरत है। किसानों को अच्छे बीज देने चाहिए।

इस व्याख्यानमाला की अध्यक्षता कर रहे प्रो. हनुमान प्रसाद तिवारी ने कहा कि वैज्ञानिकों को पिछली गलतियों से बचना होगा और विज्ञान का सही दिशा में प्रयोग करना होगा। उन्होंने कहा कि विज्ञान का दुरुपयोग हमेशा राजनीतिक दबाव से होता है। वैज्ञानिकों को चाहिए कि बिना किसी दबाव में आये विज्ञान का उपयोग मानव कल्याण के लिए करें। इस अवसर पर डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, डॉ0 पी.एन. टंडन, प्रो. एम.जी.के. मेनन, एवं राजर्षिटंडन मुक्त विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. सान्याल इत्यादि मुख्य रूप से उपस्थित थे। संचालन हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय ने किया।

4. प्रो. नंदलाल सिंह स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

1 अगस्त 2000 को विज्ञान परिषद् प्रयाग की वाराणसी शाखा द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग के एस. एन. बोस सभागार में प्रो. नंदलाल सिंह स्मृति व्याख्यान आयोजित किया गया। इस अवसर पर चिकित्सा विज्ञान संस्थान के अवकाश प्राप्त प्रोफेसर डॉ0 हरिवल्लभ नेमा ने 'लेसर दृष्टि' विषय पर बोलते हुए कहा कि आजकल लेसर पुंज का उपयोग नेत्र चिकित्सा में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसमें लेसर प्रकाश के तीन विशिष्ट गुणों का लाभ उठाया जाता है;
1. प्रकाश स्कंदन (Photo coagulation) 2. प्रकाशीय विदरण (Disruption) 3. प्रकाशीय अपक्षरण (Adlation)
इन क्रियाओं के लिये क्रमशः रूबी और डायोड लेसर, Na-Yag और एर्बियम लेसर तथा इक्जाइमर लेसर का प्रयोग किया जाता है।

इस अवसर पर प्रो. नंदलाल सिंह की स्मृति में प्रकाशित जर्नल आफ साइंटिफिक रिसर्च, 1998 अंक का लोकार्पण कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रो. वी. पी. सिंह द्वारा किया गया। संकाय अध्यक्ष डॉ0 एस.एन. ठाकुर ने अथितियों का स्वागत किया तथा वाराणसी शाखा के अध्यक्ष डॉ0 रतन दास गुप्ता ने धन्यवाद ज्ञापित किया। कार्यक्रम का संचालन डॉ0 श्रवण कुमार तिवारी ने किया। इस अवसर पर विज्ञान परिषद् प्रयाग के संयुक्तमंत्री डॉ0 सुनील कुमार पाण्डेय तथा देवव्रत द्विवेदी भी उपस्थित थे।

5. डॉ0 मेनन द्वारा कम्प्यूटर कक्ष का उद्घाटन

विज्ञान परिषद् प्रयाग के पुस्तकालय में नवनिर्मित कम्प्यूटर कक्ष का उद्घाटन 12 अगस्त 2000 को देश के प्रख्यात वैज्ञानिक तथा पूर्व केन्द्रीय मंत्री प्रो. एम.जी.के. मेनन के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर प्रो. मेनन ने कहा कि आज सूचना क्रान्ति के दौर में विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रही संस्थाओं को एक दूसरे के नवीन शोधों तथा अनुभवों का लाभ उठाना चाहिये। इस दिशा में इंटरनेट का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है।

विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने प्रो0 मेनन का स्वागत करते हुए उन्हें परिषद् की गतिविधियों से अवगत कराया। इस अवसर पर परिषद् के उपसभापति डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी, प्रो. हरिश्चन्द्र खरे, प्रो. उमाशंकर श्रीवास्तव, श्री प्रेमचंद्र श्रीवास्तव, डॉ0 ए.के. गुप्ता, डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी, श्री हरिमोहन मालवीय, डॉ0 दिनेश मणि, डॉ0 सुनील कुमार पाण्डेय, देवव्रत द्विवेदी, विजय कुमार शर्मा, चन्द्रभान सिंह आदि उपस्थित रहे।

– देवव्रत द्विवेदी

त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रम

विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार के समर्थन एवं सहयोग से एक त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण लेने हेतु आवेदन–पत्र आमंत्रित हैं। इच्छुक अभ्यर्थी विज्ञान परिषद् प्रयाग, महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद – 211002 से पूर्ण विवरण सहित आवेदन–पत्र 50 रूपये नगद जमा कर प्राप्त कर सकते हैं ।

अर्हता :– इंटरमीडिएट (10+2) विज्ञान / कृषि विषयों के साथ
कुल स्थान :– 30
प्रशिक्षण शुल्क :– 200रुपये
अंतिम तिथि :– 15 सितंबर 2000

प्रशिक्षुओं के प्रवेश हेतु विज्ञान परिषद् का निर्णय अंतिम होगा।

– प्रधानमंत्री,
विज्ञान परिषद् प्रयाग

डॉ० आत्माराम स्मृति व्याख्यान देते हुए डॉ० वी०पी० शर्मा व साथ में डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा एवं प्रो० एम०जी०के० मेनन

स्वामी सत्य प्रकाश स्मृति व्याख्यान के अवसर पर डॉ० पी०एन० टण्डन, डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा, डॉ० श्रीकृष्ण जोशी तथा धन्यवाद ज्ञापित करते डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी

पं० गंगा नाथ झा स्मृति व्याख्यान के अवसर पर डॉ० शिव गोपाल मिश्र, डॉ० रजनीश प्रसाद मिश्र, पं० सुधाकर पाण्डेय तथा डॉ० डी०डी० पंत

ISSN : 0373-1200

अक्टूबर 2000

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
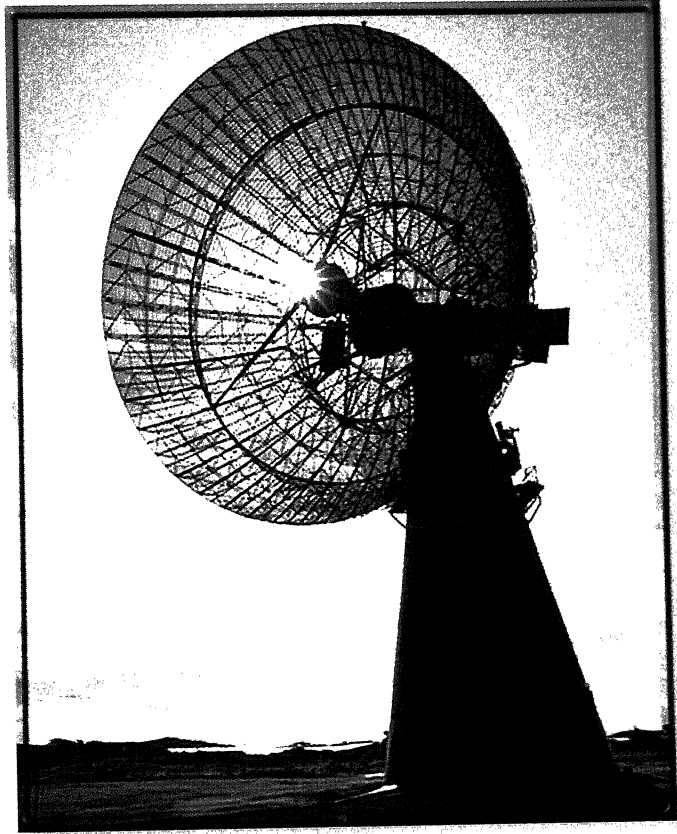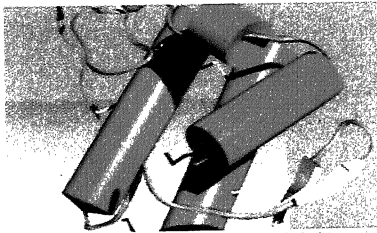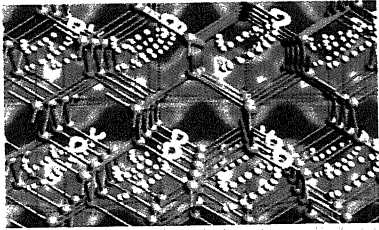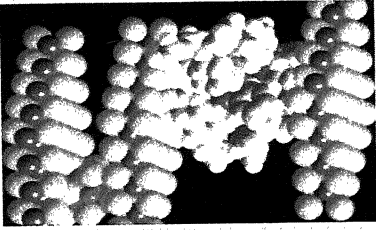
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 86 अंक 7
अक्टूबर 2000

मूल्य

आजीवन व्यक्तिगत : 500 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 140 रुपये
वार्षिक : 50 रुपये
यह प्रति : 7 रुपये

प्रकाशक

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

सम्पादक मण्डल

मुद्रक

ग्राफिक आफसेट
186/5 टैगोर टाउन, इलाहाबाद
फोन : 465016, 465274

कम्प्यूटर कम्पोजिंग

विजय कुमार शर्मा

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@nde.vsnl.net.in

विषय सूची

जैव-प्रौद्योगिकी: उपलब्धियां एवं चुनौतियां

✍ सिद्धनाथ उपाध्याय

जैव–प्रौद्योगिकी शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ब्रिटेन की लीड्स नगर की नगर–परिषद् ने 1920 में किया था। इसी समय वहां जैव–प्रौद्योगिकी संस्थान की स्थापना हुई। लगभग पॉच दशक पूर्व महान वैज्ञानिक हाल्डेन ने आधुनिक जैव–प्रौद्योगिकी की कल्पना की थी जब उन्होंने कहा था –

हम रसायनों के निर्माण की जहमत क्यों उठाएँ जब जीवाणु यह कार्य बखूबी कर सकते हैं। पिछले दो दशकों से इस क्षेत्र में ज्यादा कार्य प्रारम्भ हुआ है तथा विश्व के सभी राष्ट्र अपने संसाधनों के समुचित विकास एवं सुविचारित उपयोग तथा उन्नति हेतु इस प्रौद्योगिकी के विकास पर धन खर्च कर रहे हैं। जापानियों ने इसे शताब्दी की आखिरी प्रमुख औद्योगिक क्रान्ति की संज्ञा दी है।

वास्तव में जैव–प्रौद्योगिकी किसी न किसी रूप में हजारो वर्षों से हमारे काम में आती रही है। आसव व अरिष्ट का निर्माण, सोम रस का निर्माण, दही बनाना आदि जैविक क्रियाओं के फलस्वरूप ही संभव हैं। सन् 1970 के दशक में इसे प्रमुखता प्राप्त हुई। आणविक जीव विज्ञान के अनुप्रयोग के कारण आठवें दशक के मध्य में इसको अधिक गति मिली और प्रयोगशाला की अनेक खोजों के आधार पर औद्योगिक स्तर पर उत्पादन संभव हो पाया। आज जैव प्रौद्योगिकी ऊर्जा एवं ईंधन, खाद्य, औद्योगिक रसायन, चिकित्सा एवं अवशिष्ट संशोधन आदि सभी क्षेत्रों में योगदान करने में सक्षम है। ठोस वैज्ञानिक एवं अभियांत्रिकी के सिद्धान्तों पर आधारित खोजों ने इस दिशा में काफी सहयोग किया है। प्रोटीन अभियांत्रिकी, जीवाणु–मार्गपथ अभियांत्रिकी, उच्चस्तरीय प्रोटीन स्रवण प्रक्रमों आदि में हुई प्रगति विशेष उल्लेखनीय है। इनकी मदद से विशिष्ट रसायनों का उत्पादन संभव हो गया है।

जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विगत 300 वर्षों में हुए विकास के चरणों को कालक्रमानुसार तालिका–1 में सूचीबद्ध किया गया है। इस तालिका से यह स्पष्ट है कि आने वाले वर्षों में अनेक नये क्षेत्रों में भी जैव–प्रौद्योगिकी का योगदान होने वाला है।

तालिका–1 जैव–प्रौद्योगिकी की प्रगति मंजिलें

6000 ईसा पूर्व	शराब एवं मदिरा बनाने में प्रकिण्व का उपयोग
4000 ईसा पूर्व	प्रकिण्व की मदद से डबल रोटी का उत्पादन
2838 ईसा पूर्व	चीनियों द्वारा सॉस बनाने की विधि की खोज
1670 से पूर्व	सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा ताँबे का उत्पादन
1674	वैज्ञानिक लियुवेनहॉक द्वारा सूक्ष्म–जीवाणु को देखने के लिए नए सूक्ष्मदर्शी का निर्माण
1876	लुई पास्चर द्वारा मदिरा किण्वन की विफलता के लिए उत्तरदायी बाह्य सूक्ष्म–जीवाणुओं की खोज
1890	मोटर गाड़ियों में एल्कोहल का प्रयोग
1897	एडुआर्ड बुकनर द्वारा प्रकिण्व से प्राप्त एन्जाइम की सहायता से शर्करा का ऐल्कोहल में रूपान्तरण
1910	सूक्ष्म–जीवाणुओं के प्रयोग द्वारा बृहद् पैमाने पर अवजल शुद्धीकरण प्रक्रम की स्थापना
1912–14	सूक्ष्म–जीवाणुओं द्वारा तीन मुख्य औद्योगिक रसायनों (ऐसिटोन, ब्यूटेनॉल एवं ग्लिसरॉल) की प्राप्ति एवं बृहद् पैमाने पर उत्पादन
1928	एलैक्जैण्डर फ्लेमिंग द्वारा पेनिसिलिन प्रतिजैविक की खोज
1944	बृहद् पैमाने पर पेनिसिलिन का उत्पादन
1953	डीएनए के डबल हेलिक्स (भ्रमिपथ) आकार का ज्ञान
1954–58	सिफैलोस्पोरिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन आदि कई नये प्रतिजैविकों का निर्माण
1962	कनाडा में सूक्ष्म–जीवाणुओं की सहायता से यूरेनियम का उत्खनन

1973	ब्राजील सरकार द्वारा पेट्रोल के स्थान पर मोटर गाड़ियों में ऐल्कोहल का प्रयोग
1973	आनुवंशिक अभियांत्रिकी का सफल प्रयोग
1975	हाईब्रिडोगा तकनीक द्वारा एक कृत्तिकीय ऐण्टीबाडी का उत्पादन
1975	संयुक्त रा. अ. में आनुवंशिक अभियांत्रिकी की नई दिशाओं का ज्ञान
1976	सं.रा.अ. के राजकीय चिकित्सा संस्थान द्वारा आनुवंशिक अभियांत्रिकी की नई दिशाओं का प्रस्तुतीकरण
1980	रैन्क होविस, मैक डीगल को ब्रिटेन में मानव उपयोग के लिए कवकीय खाद्य सामग्री बेचने की अनुमति
1980	सं.रा.अ. में न्यायालय द्वारा आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा प्राप्त सूक्ष्म-जीवाणुओं का एकस्वकृत (पेटेन्ट) कराने का निर्णय
1981	एक कृत्तिकीय ऐन्टी बाडी का रोग निदान में प्रयोग के लिए अनुमोदन
1981	सं.रा.अ. के सेटस नामक जैव-प्रौद्योगिकी प्रतिष्ठान द्वारा 1940 लाख डालर के मूल्य के शेयरों की बिक्री का रिकार्ड
1982	सं.रा.अ. एवं ब्रिटेन में आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा प्राप्त इन्सुलिन का मधुमेह रोग के इलाज में प्रयोग का अनुमोदन
1984	पशुओं के रोगों की प्रतिरक्षा के लिए पशु इन्टरफेरॉन के प्रयोग का अनुमोदन
अस्सी के दशक का मध्य	ड्वार्फिज्म के उपचार के लिए आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा प्राप्त वृद्धि हारमोन के उपयोग का अनुमोदन, विषाणु रोगों के उपचार के लिए इन्टरफेरॉन का उपयोग। एक कृत्तिकीय ऐन्टीबाडी का रोग निदान में बृहद् उपयोग, कोशिका एकीकरण द्वारा नये एन्टीबायोटिक का उत्पादन, कवक से रंग एवं औद्योगिक रसायनों का बृहद् उत्पादन, कैंसर अथवा दूसरे रोगों से प्रतिरक्षा के बढ़ाने के लिए एक-कृत्तिकीय ऐन्टीबाडी का प्रयोग
अस्सी के दशक का उत्तरार्ध	सूक्ष्म-जीवाणुओं द्वारा प्लास्टिक उद्योग के लिए कच्चे माल की प्राप्ति, कई प्रकार के कैंसर का इन्टरफेरॉन के प्रयोग द्वारा उपचार, सूक्ष्म-जीवाणुओं द्वारा और औद्योगिक रसायनों का उत्पादन, आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा प्राप्त अधिक सक्षम सूक्ष्म-जीवाणुओं की सहायता से कच्चे माल की निकासी
नब्बे का दशक	औद्योगिक अवशिष्टों से प्राप्त धातुओं को निकालने में सूक्ष्म-जीवाणुओं का प्रयोग, जीवाणुओं से लघु पैमाने पर हाइड्रोजन का उत्पादन, आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा सूखा रोग रोधी तथा स्वउर्वरक निर्माण में सक्षम फसलों का विकास

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक मनुष्य को यह ज्ञान नहीं था कि बीयर, मदिरा, दही आदि के बनने में जीवणुओं अथवा एन्जाइमों का हाथ होता है, फिर भी वह खाने-पीने के अनेक पदार्थों का स्वाद जीवाणुओं की सहायता से प्राचीन काल से ही बदलता आया है। यह सारी प्रौद्योगिकी अनुभव पर आधारित थी। इस पूरे काल को जैव-प्रौद्योगिकी का प्रथम युग कहते हैं।

सन् 1674 में लियुवेनहॉक द्वारा सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार एवं सन् 1765 में स्पालन्जानी द्वारा स्वतः प्रजनन के सिद्धान्त के खण्डन के साथ ही सूक्ष्म-जीव विज्ञान का विकास प्रारंभ हो गया। लगभग दस दशक उपरान्त यह सत्यापित हो पाया कि अगर सभी प्राचल एवं परिस्थितियाँ अपरिर्वनीय हों तो जैवीय प्रक्रियायें पुनरुत्पादक हो सकती हैं। सन् 1815 में गे-लुजैक द्वारा इथेनॉल एवं सन् 1897 में लुई पॉश्चर द्वारा लैक्टिक अम्ल का किण्वन इन्हीं साक्ष्यों के आधार पर सत्यापित हो सका। सन् 1881 में शुद्ध जीवाणु समूहों के संवर्धन एवं स्ट्रेन के संरक्षण के तरीकों की जानकारी के साथ ही औद्योगिक सूक्ष्म-जैविकी को गति मिली एवं जैव-प्रौद्योगिकी के दूसरे युग का सूत्रपात हुआ। जैवीय क्रियाओं के पुनर्जनन एवं जीवाणु समूहों के परिरक्षण के ज्ञान ने उत्पादन प्रक्रियाओं के विकास एवं अभिकर्मक के निर्माण को गति प्रदान की । इन जानकारियों के आधार एवं उचित अभियांत्रिकी के इस्तेमाल द्वारा सन् 1881 में लैक्टिक अम्ल का उत्पादन, सन् 1914-16 के दौरान

खमीर उत्पादन के लिए लोहे से बने अभिकर्मकों का विकास, एवं सन् 1912–14 के दौरान ब्यूटेनॉल तथा ऐसिटोन का औद्योगिक उत्पादन प्रारंभ हो पाया।

किण्वन से प्राप्त कुछ प्रमुख उत्पाद तालिका 2 में दिये गये हैं। ये सभी उत्पाद ऐसे वातावरण में उत्पादित किए जाते हैं जो जीवाणुओं के लिए कठोर होता है। साथ ही इन उत्पादों के जीवाणु–निरोधी होने के कारण उत्पादन के लिए प्रयुक्त स्ट्रेन भी इनके प्रतिरोधी होते हैं अतः वायु या जीवाणु–पोष पदार्थ को विसंक्रमणित करने की खास आवश्यकता नहीं होती है।

तालिका 2: किण्वन के कुछ उत्पाद

उत्पाद का प्रकार	उदाहरण
एल्कोहल	इथेनॉल, ब्यूटेनॉल (+ ऐसिटोन)
अमिनो अम्ल	ग्लुटामिक अम्ल, लाइसिन
एन्टीबायोटिक	पेनिसिलिन, टेट्रासाइक्लीन
एन्जाइम	प्रोटिएज, एमाइलेज
हार्मोन	इन्सुलिन, मानव–वृद्धि हार्मोन
कीटाणुनाशक	थुरिन्जिएन्सीज
मीथेन	बायोगैस
कार्बनिक अम्ल	साइट्रिक अम्ल, एसीटिक अम्ल
पालीसैकराइड्स	डेक्सट्रान, जैन्थान
शोधित अवजल	बीओडी में कमी, नाइट्रोजन में कमी
एककोशीय प्रोटीन	खमीर (चारा)
स्टार्टर कल्चर	नानबाई का यीस्ट, लैक्टिक स्टार्टर
स्टेरायड रूपान्तरण	कार्टिसोन
वैक्सीन	टिटनेस का टीका

पेनिसिलिन के उत्पादन की प्रक्रिया के विकास के साथ जैव–प्रौद्योगिकी के तीसरे युग का प्रारंभ हुआ। पेनिसिलिन उत्पादक जीवाणु को सामान्य पी एच, अधिक वायु व उर्वर-जीवाणु–पोष की आवश्यकता हुयी। इनके कारण प्रचलित प्रौद्योगिकी का प्रयोग संभव नहीं हो सका। जीवाणु–पोष पदार्थ व वायु की भारी मात्रा के विसंक्रमण एवं लसीले द्रव के सक्षम आलोड़न तथा उसमें समुचित आक्सीजन के स्थानान्तरण के तरीकों को विकसित करना पड़ा। अधिक उत्पादन देने के लिए जीवाणु की नस्ल को उन्नत करने की पद्धतियां विकसित की गयीं। पेनिसिलिन को शुद्ध अवस्था में प्राप्त करने के नये सक्षम तरीके भी खोजे गये। नई जानकारियों ने उत्पाद की खोज एवं व्यापारिक स्तर पर उसके उत्पादन एवं उपयोग के अन्तराल को कम करने में सहायता की। उदाहरणस्वरूप पेनिसिलिन की खोज सन् 1928 में हुयी पर उसका उत्पादन सन् 1941 में संक्रमणरहित वातित व मिश्रित किण्वकों में संभव हो पाया। लेकिन इसके बाद के वर्षों में समय का अन्तराल घटता गया और जैसे ही जैवीय उत्पादों, उनके गुण–धर्म एवं उपयोग की जानकारी हुयी, उत्पादन भी प्रारंभ हो गया। ऐसीटिक अम्ल का निमज्जित संवर्धन विधि द्वारा उत्पादन (1949), फलक मिश्रकों एवं दोहरी यांत्रिक सील का प्रयोग (1949), साइट्रिक अम्ल का निमज्जित संवर्धन विधि द्वारा तरलीकृत किण्वकों क़ा विकास (1967) तथा एककोशिकीय प्रोटीन उत्पादन के लिए बृहद आकार के वायु उत्थापक किण्वकों का उपयोग (1984) ऐसे त्वरित विकास के उदाहरण हैं।

जैव–प्रौद्योगिकी के चौथे युग का अभी प्रारंभ हुआ है। अणु–जैविकी एवं आनुवंशिकी के क्षेत्रों में हुयी वैज्ञानिक क्रांति ने इसका सूत्रपात किया है। नये उत्पादों की प्राप्ति इनका पहला अनुप्रयोग था। हाईब्रिडोमा तकनीक द्वारा एककृत्तिकीय ऐन्टीबाडी की प्राप्ति संभव हुयी तो आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा मानव वृद्धि हार्मोन व इन्सुलिन की। अस्सी के दशक में विश्व भर के औद्योगिक संस्थानों में इस प्रकार के उत्पादों की प्राप्ति के लिए होड़ सी लग गयी। नूतन जैव–प्रौद्योगिकी के उपकरणों के निर्माण को अणु–जैविकी के क्षेत्र में हुए विकास से बल मिला। डी एन ए की खोज सन् 1869 में मेईशर द्वारा की गयी परंतु इस खोज का औद्योगिक अनुप्रयोग सन् 1953 में वाटसन व क्रिक द्वारा इसकी संरचना एवं सन् 1971 में आर्बट, स्मिथ व नाथन्स द्वारा इसमें परिवर्तन की तकनीक की खोज के उपरांत ही संभव हो पाया। जेनेटिक इन्जिनियरिंग के तरीकों के विकास एवं विभिन्न उद्योगों में उनके अनुप्रयोग के चलते नये कानूनों की आवश्यकता पड़ी। इन कानूनों पर खरा उतरने के लिए किण्वक प्रौद्योगिकी में उचित सुधार किए गए। इन खोजों ने जीवाणु के पेटेंट कराने की समस्या व उनसे सुरक्षा जैसे प्रश्नों को खड़ा किया जिनका प्रभाव जैव–अभिकर्मक के अभिकल्पन पर भी पड़ा।

औद्योगिक सूक्ष्म–जैविकी एवं अणु–जैविकी के क्षेत्र की जानकारियों का उपयोग स्तनी कोशिका संवर्धन में किया जाने

लगा। सन् 1967 के पूर्व स्तनी कोशिकाओं को जीवित अवस्था में रखना संभव नहीं था। इसके उपरान्त "लम्बित बूंद" एवं "बोतल संवर्धन" के द्वारा इन कोशिकाओं को प्रयोगशाला में जीवित रखा जा सका। प्रथम स्तनी कोशिका का संवर्धन "रोलर बोतल" में किया गया। इस पद्धति को आज भी प्रयोग में लाते हैं। स्तनी कोशिकाओं की संवेदनशीलता के कारण उनके संवर्धन के लिए नये अभिकर्मकों के अभिकल्पन की आवश्यकता महसूस हुयी, साथ ही शोधकर्मी कम संवेदनशील स्तनी कोशिकाओं के विकास पर भी कार्यरत रहे जिसके चलते कोहॅलर व मिलस्टीन (1975) ने ऐसी हाईब्रिडोम कोशिकाओं के विकास में सफलता प्राप्त की जिन्हें मिश्रित टैंक अभिकर्मकों में संवर्धित किया जा सका।

जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विगत दशक में काफी प्रगति हुई है। कई तकनीकी बाधाएँ या तो पूर्णरूपेण दूर कर ली गई हैं अथवा आंशिक रूप से हल कर ली गई हैं। कई नये उत्पाद विकास की अन्तिम अवस्था में हैं। जैव-प्रौद्योगिकी के उत्पादन का बाजार भी काफी बढ़ा है। उदाहरणस्वरूप आर डी एन ए प्रौद्योगिकी की सहायता से उत्पादित औषधियों की बिक्री 1986 के वर्ष में 40 करोड़ रुपये के लगभग थी। सन् 2000 तक ऐसी संभावना है कि उस प्रौद्योगिकी की मदद से उत्पादित रसायनों का कुल मूल्य 28 अरब के ऊपर होगा। विशेषज्ञों के आकलन के अनुसार 1996–98 के अन्त तक ऐसे उत्पादों का बाजार काफी बढ़ा तथा इनका उत्पादन व्यापक पैमाने पर प्रारंभ हुआ (तालिका–3)। कई देशों में रूढ़ रसायन निर्माण करने वाली कम्पनियों ने जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी पूँजी निवेश प्रारंभ किया है! इन सबके बावजूद इस प्रौद्योगिकी के सफलतापूर्वक दोहन के लिए जीव विज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के क्षेत्र में और अधिक समन्वय की अभी भी आवश्यकता है।

तालिका 3

आधुनिक जैव–प्रौद्योगिकी के उत्पादों का अनुमानित बिक्री मूल्य

उत्पाद	बिक्री, करोड़ रुपए में
आरडीएनए भैषज	5200
प्रतिकार नैदानिक	4600
अन्तः स्थानिक नैदानिक	600
मोनोक्लोनल ऐन्टीबाडी भेषज	1400
कुल	11800

जैव–प्रौद्योगिकी के विकास का मुख्य उद्देश्य नये उत्पादन एवं विक्रय है। अगर उत्पादन की बिक्री कठिन या असंभव हो तो प्रौद्योगिकी व उत्पादन पद्धति दोनों को छोड़ दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप प्रथम युद्ध के बाद ग्लीसरीन एवं तेल संकट के पश्चात् एककोशिकीय प्रोटीन का उत्पादन स्थगित करना पड़ा था। परन्तु जैसे ही किसी उत्पाद का बाजार भाव व क्षेत्र बढ़ता दृष्टिगोचर होता है उत्पादन की प्रक्रिया तेज कर दी जाती है। उदाहरण के लिए मोनोक्लोनल ऐन्टीबॉडी के चिकित्सकीय एवं प्रयोगशालीय विश्लेषण व औषधि के रूप में बढ़ते उपयोग से सस्ते एवं अधिक उत्पादन को गति मिली।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि सभी विकास उपरोक्त वर्णित कारणों के चलते ही नहीं हुए हैं। कुछ में सामान्य तर्क शक्ति व अर्न्तदृष्टि ने भी सहायता की है। ये आविष्कार विलक्षण थे परन्तु जैव–प्रौद्योगिकी में इनके योगदान को उचित रूप से आँका नहीं गया है। आसव–प्रवाह प्रणाली, वायु **फिल्टर** करने की पद्धति, वाल्व, आदि इसके उदाहरण हैं।

इतना सब विकास होने के बावजूद नये विकास की आज भी आवश्यकता है। जिन क्षेत्रों में विकास कार्य हो सकते हैं उनमें से विलक्षण जीवाणु, विलक्षण उत्पाद, कोशिका संवर्धन की विलक्षण प्रक्रिया, नये पदार्थ, एवं वर्तमान उपकरणों/उपस्करों के नूतन अनुप्रयोग आदि प्रमुख हैं।

रसायन अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विभाग
प्रौद्योगिकी संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221 005

क्या है ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट ?

✍ डॉ0 विजय कुमार उपाध्याय

ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट एक बृहत, अब तक की सर्वाधिक खर्चीली तथा सर्वाधिक महत्वाकांक्षी जीव वैज्ञानिक परियोजना है। इस परियोजना के अर्न्तगत किये जाने वाले प्रयोगों से प्राप्त निष्कर्ष आनुवंशिकता (हेरेडिटी) के रहस्यों की गुत्थी को सुलझाने के साथ-साथ रोगों के स्रोत के संबंध में उपयोगी सूचनायें प्रदान करेंगे। इस परियोजना पर अब तक 13 वर्षों का समय तथा लगभग 25 करोड़ अमेरिकी डालर (लगभग 11 अरब रुपये) की राशि खर्च की जा चुकी है। इस परियोजना के अन्तर्गत छः प्रमुख देशों की 16 विभिन्न प्रयोगशालाओं में लगभग 1100 वैज्ञानिक गहन शोध कार्य में संलग्न हैं। इस बृहत शोध परियोजना का लक्ष्य मनुष्य की प्रत्येक कोशिका में मौजूद डी एन ए के सही रासायनिक अनुक्रम की जानकारी प्राप्त करना है।

ह्यूमन जीनोम हमारे जीवन का अभिलेख है। यह एक ऐंठी लड़ी के रूप में हमारे शरीर में मौजूद है। इसमें मानव के निर्माण तथा विकास से संबंधित सारी सूचनायें समाहित रहती हैं। इस जीवन अभिलेख में किसी प्रकार की अशुद्धि आ जाने पर तरह-तरह के रोग पैदा होते हैं। यह ह्यूमन जीनोम अनेक क्रोमोसोमों का एक ऐसा समुच्चय है, जिनमें मानव के आनुवंशिक गुण समाहित रहते हैं। यही ह्यूमन जीनोम हमारे शरीर में मौजूद लगभग 60 खरब कोशिकाओं की दैनिक क्रिया प्रणाली को नियंत्रित करता है। साथ ही साथ यह भ्रूण के विकास को निर्देशित कर उसे एक पूर्ण विकसित मानव शिशु के रूप में परिवर्तित होने में सहायता करता है।

ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट विभिन्न देशों में स्थित एकेडेमिक प्रयोगशालाओं का एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ है। इस संघ का उद्देश्य है ह्यूमन जीनोम का सिलसिलेवार तथा विस्तृत अध्ययन। इस संघ से संबद्ध रौसवेल पार्क कैंसर इंस्टिच्यूट के वैज्ञानिकों ने ह्यूमन जीनोम के अध्ययन हेतु सन् 1997 में न्यूयार्क क्षेत्र के बफैलो नामक स्थान के एक निवासी के डी एन ए का अध्ययन प्रारम्भ किया। इसके लिये उस व्यक्ति के रक्त तथा वीर्य को लिया गया। कुछ समय बाद इस अध्ययन के अर्न्तगत नौ अन्य व्यक्तियों के डी एन ए को भी शामिल किया गया। इन वैज्ञानिकों ने जितने भी व्यक्तियों के डी एन ए के नमूने अध्ययन में शामिल किये वे सभी पुरुष थे, क्योंकि पुरुषों में दो भिन्न किस्म की डी एन ए लड़ियां पायी जाती हैं जिन्हें गुणसूत्र (क्रोमोसोम) कहा जाता है। ये क्रोमोसोम भ्रूण के लिंग का निर्धारण करते हैं। पुरुषों में मौजूद इन दो प्रकार के क्रोमोसोम को X तथा Y क्रोमोसोम कहा जाता है; जबकि स्त्रियों में सिर्फ X क्रोमोसोम मौजूद रहता है। यौन समागम के दौरान स्त्री के डिम्ब में मौजूद X क्रोमोसोम यदि पुरुष के वीर्य में मौजूद X क्रोमोसोम से संयोग करता है तो इसमें निर्मित भ्रूण से लड़की पैदा होती है। इसके विपरीत स्त्री के डिम्ब में मौजूद X क्रोमोसोम यदि पुरुष के वार्य में मौजूद Y क्रोमोसोम से संयोग करता है तो इस प्रकार निर्मित भ्रूण से लड़का पैदा होता है।

इस परियोजना के अन्तर्गत वैज्ञानिकों ने अध्ययन की शुरुआत सिर्फ एक व्यक्ति के शरीर से प्राप्त डी एन ए के नमूने से की । इससे किसी एक व्यक्ति के जेनेटिक अभिलेख में उपस्थित लगभग तीन अरब रासायनिक इकाइयों के अनुक्रम को पढ़ने में आसानी हुई। इसके फलस्वरूप एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के बीच मौजूद अन्तर के कारण वैज्ञानिकों द्वारा निकाले गये निष्कर्ष में भ्रम या गलती की कोई संभावना नहीं थी, क्योंकि हम लोगों में से प्रत्येक के शरीर में एक ही प्रकार के लगभग 50 हजार जीन मौजूद हैं जिनमें मामूली अन्तर के कारण हमलोग एक दूसरे से थोड़ा-थोड़ा भिन्न दिखाई देते हैं। इस मामूली अन्तर को बहुरूपता (पॉलिमोर्फिज्म) कहा जाता है।

ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट से संबद्ध वैज्ञानिकों के अलावा ह्यूमन जीनोम का अध्ययन करने की दिशा में प्रमुख भूमिका निभायी है अमेरिकी कम्पनी 'सिलेरा जीनोमिक्स' ने। इस कम्पनी में कार्य करने वाले वैज्ञानिकों ने ह्यूमन जीनोम के अध्ययन हेतु विभिन्न नस्लों के छः व्यक्तियों से डी एन ए के नमूने एकत्र किये, जिनमें दो आर्य नस्ल के यूरोपीय, एक हब्शी, एक जापानी, एक

चीनी तथा एक लैटिन अमेरिकी शामिल थे। इन छः व्यक्तियों में चार पुरुष तथा दो महिलायें थीं।

ह्यूमन जीनोम अध्ययन से जुड़े उपर्युक्त संगठनों के वैज्ञानिकों ने मानव जेनेटिक कोड को समझने की दिशा में पहला चरण पूरा कर लिया है। वस्तुतः मानव द्वारा इस शताब्दी में की गयी यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज है। हमारे अस्तित्व तथा आनुवंशिक गुणों के रहस्य अपने में छुपाये इन डी एन ए लड़ियों को निर्मित करने वाली लगभग तीन अरब इकाइयों को माप कर तथा उनके अनुक्रम को निर्धारित कर वैज्ञानिकों ने जीवन के अभिलेख को पढ़ लिया है। अध्ययन से संबंधित एक शोधपत्र हाल ही में " अमेरिकन जोर्नल ऑफ ह्यूमन जेनेटिक्स" नामक पत्रिका में प्रकाशित किया गया है। जीवन के रहस्यों से संबधित इस अभिलेख को पढ़ तथा समझ लेने के बाद अब वैज्ञानिक लोग डी एन ए में समाहित लगभग 50 हजार जीन की कार्यप्रणाली को अच्छी तरह समझ सकते हैं। ये ही जीन हमारे शरीर की जैविक कार्यप्रणाली को नियंत्रित करने के साथ–साथ हमारे शरीर में पैदा होने वाले विभिन्न रोगों के लिए भी जिम्मेदार माने जाते हैं। यदि वैज्ञानिक लोग जीन के निर्माण, प्रतिस्थापन तथा मरम्मत में सफल हो जाते हैं तो वे इस की भविष्यवाणी कर सकते हैं कि हमारा पैदा होने वाला बच्चा कैसा होगा। वह कुशाग्र बुद्धि का होगा या कुन्द बुद्धि ? वह कैंसर के प्रति संवेदनशील होगा या मधुमेह (डायबिटीज) के प्रति ? इतना ही नहीं; जीन के प्रतिस्थापन या मरम्मत द्वारा हम मनचाही संतान पैदा कर सकते हैं जो देखने में सुन्दर शरीर से स्वस्थ तथा दिमाग से मेधावी होगा। जीनोम संबंधी जानकारी कैंसर तथा अन्य रोगों की चिकित्सा की दिशा में काफी अधिक सहायक साबित होगी। अमेरिकन कैंसर सोसायटी के अध्यक्ष डॉ0 जौन स्टीवेन्स का विचार है कि जीनोम संबंधी जानकारी कैंसर चिकित्सा में क्रान्ति ला देगी।

हाल ही में जी–8 देशों की एक विशेष बैठक में यह निर्णय लिया गया है कि ह्यूमन जीनोम से संबंधित प्राथमिक जानकारी तथा ऑकड़ों को संसार के सभी देशों को निर्बाध रूप से उपलब्ध कराया जायेगा। इस बैठक में जी–8 देशों के अलावा भारत, चीन, मेक्सिको तथा ब्राजील भी विशिष्ट अतिथि के रूप में शामिल किये गये थे।

ह्यूमन जीनोम संबंधी अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग सबसे अधिक चिकित्सा क्षेत्र तथा औषधि निर्माण उद्योग में होने की आशा की जा रही है। इस जानकारी के उपयोग की दिशा

डॉ0 मालती लक्ष्मीकुमारन्

वनस्पितियों का जीनोम कोड तैयार करने में भारतीय वैज्ञानिक डॉ0 मालती लक्ष्मीकुमारन् ने कई सफलताएं हासिल की हैं। मालती को उनके इस काम के लिए पहला राष्ट्रीय युवा जैव वैज्ञानिक पुरस्कार भी मिल चुका है। उनके काम की महत्ता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि बासमती पेटेंट के मामले में भारत को मालती द्वारा तैयार किए गए डी.एन.ए. फिंगरप्रिंटिंग की वजह से ही जीत हासिल हुई।

मालती का जन्म तमिलनाडु के एक गांव में हुआ था। उनके पिता रक्षा लेखा सेवा में हैं। और मां एक गृहिणी। चार भाइयों के बीच पली–बढ़ी मालती बचपन से ही पढ़ाई में अव्वल रही। विज्ञान की तो जैसे उन्हें धुन ही सवार थी। उन्होंने बचपन से ही ठान रखा थ कि बड़ी होकर वह वैज्ञानिक बनेंगी। माता–पिता ने भी मालती को पूरा सहयोग व समर्थन दिया। 12वीं में उनके काफी अच्छे अंक आए और उन्होंने 1972 में पुणे के फर्ग्यूसन कालेज में प्रवेश लिया। उन्होंने एनसीईआरटी की राष्ट्रीय प्रतिभा खोज परीक्षा भी पास की, लिहाजा उन्हें नेशनल साइंस टैलेंट स्कॉलरशिप भी मिलनी शुरू हो गई। 1974 में उन्होंने बीएससी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पुणे विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। 1976 में वहां से एमएससी करने के बाद मालती ने रिसर्च स्टूडेंट के रूप में नेशनल केमिकल लैबोरेटरी में काम शुरू किया। 1980 में उन्हें पीएचडी की उपाधि मिली। इसके बाद उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के बीपी चेस्ट इंस्टीट्यूट में रिसर्च एसोसिएट के रूप में तीन साल तक काम किया। दरअसल यहां उन्हें अपने मन का काम नहीं मिला, लिहाजा उन्होंने यहां से निकलने का मन बनाया। 1983 में लेडी इरविन कालेज में प्रवक्ता के रूप में उनका चयन हुआ। मालती ने तुरन्त चेस्ट इंस्टीट्यूट छोड़कर नई नौकरी ज्वाइन कर ली। लेकिन मालती ने कुछ और ही ठान रखा था। उनकी धुन तो थी विज्ञान के क्षेत्र में कुछ नया करने की। वह मौके की तलाश में थीं और उन्हें यह मौका मिला 1985 में। मालती टाटा इनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट (टेरी) के जैव संसाधन व जैव प्रौद्योगिकी विभाग में फेलो नियुक्त हुईं।

टेरी में मालती ने विशेष तौर पर प्लांट मॉलिक्यूलर बॉयोलोजी के क्षेत्र में काम किया। उन्होंने प्लांट मॉलिक्यूलर बॉयोलोजी की प्रयोगशाला भी स्थापित की। मालती की यह प्रयोगशाला अपने क्षेत्र में देश की शुरूआती प्रयोगशालाओं में से एक है। प्रयोगशाला स्थापित करने के बाद मालती ने देश की जैव संपदा की कोडिंग का काम शुरू किया। उन्होंने नीम, बाँस, चावल आदि के डी.एनए. प्रिंट तैयार किए और इनके जीन को श्रेणीबद्ध किया। विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व में आने के बाद देश की जैव संपदा पर अपनी मिल्कियत बरकरार रखने में उनका यह काम बहुत मददगार साबित हो रहा है। उनके द्वारा तैयार किए गए डी.एन.ए. प्रिंट इस बात का पुख्ता प्रमाण हैं कि संबंधित वनस्पति हमारी ही है। बासमती चावल को विदेश में पेटेंट कराए जाने के मामले में भारत को जीत मालती के इन्हीं डी.एन.ए. प्रिंट की वजह से हुई। यही नहीं, उनके शोध की मदद से चावल की कई नई प्रजातियां भी विकसित की गई हैं। ये प्रजातियां ज्यादा स्वादिष्ट, खुशबूदार व पौष्टिक गुणों से भरपूर हैं। मालती का शोध विभिन्न पेड़–पौधों को घातक बीमारियों से बचाने में भी सहायक सिद्ध हो रहा है। मालती आजकल चावल के जीन पर ही काम कर रही हैं। उनकी कोशिश एक ऐसी संकर प्रजाति विकसित करने की है, जो बेहतर गुणों के साथ–साथ ज्यादा उपजाऊ भी हो ।

मालती सिर्फ प्रयोगशाला तक ही सीमित नहीं हैं, वह अपने शोधों को व्यवहार्य बनाने के लिए किसानों के साथ सीधा संवाद भी बनाए रखती हैं। इसके लिए वह कार्यशालाएं आयोजित करती हैं, जिसमें किसान और वैज्ञानिक शामिल होते हैं। अभी हाल में उन्होंने कोयंबटूर और दिल्ली में ऐसी कार्यशालाएं आयोजित कीं। उनका कहना है कि इन कार्यशालाओं के जरिए हम किसानों को अपने शोध कार्यों से अवगत कराते हैं और साथ ही उनकी परेशानियां भी समझते हैं।

मालती देश–विदेश के कई महत्वपूर्ण वैज्ञानिक संगठनों से जुड़ी हुई हैं। इंटरनेशनल सोसायटी ऑफ प्लांट मॉलिक्यूलर बॉयोलोजी, अमेरिकन सोसायटी ऑफ एग्रोनोमी, क्रॉप सोसायटी ऑफ अमेरिका, इंडियन सोसायटी ऑफ सेल बॉयोलोजी, इंडियन साइंस कांग्रेस और एसोसिएशन फॉर प्रमोशन ऑफ डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिंग एंड अदर डी.एन.ए. टेक्नोलॉजीज जैसी संस्थाओं ने मालती को अपना सदस्य बना रखा है। –वीरेन्द्र सिंह

(अमर उजाला से साभार)

में भारतीय वैज्ञानिक भी काफी उत्साहित हैं। इस जानकारी के प्राप्त कर वे कुछ जीवाणुओं (वेक्टीरिया) के विरुद्ध प्रभावी दवा के निर्माण हेतु लक्ष्य निर्धारित करने के प्रयास में लगे हुए हैं। ह्यूमन जीनोम डाटा को प्राप्त कर वे कुछ विशेष प्रकार की स्नायु गड़बड़ियों को सुलझाने का प्रयास कर रहे हैं। सेंटर फॉर बायोकेमिकल टेकनोलॉजी के विभागाध्यक्ष एस. के. ब्रह्मचारी तथा उनके साथी जीनोम सीक्वेंस में परिवर्तन तथा उनसे संबंधित रोगों के ऊपर अनुसंधान में जुटे हुए हैं। ह्यूमन जीनोम अनेकता (Diversity) पर किये जाने वाले अनुसंधान से प्राप्त आंकड़े बता सकेंगे कि मनुष्यों में विभिन नस्लों की उत्पत्ति कैसे हुई तथा भारत में 4635 मानवजातियाँ कैसे बनीं। साथ ही 324 भाषाओं तथा 25 लिपियों का विकास कैसे हुआ। इस दिशा में भारत का जैव–प्रौद्योगिकी विभाग (बायोटेक्नोलॉजी डिपार्टमेंट) शोध चला रहा है। इस बीच सेंटर फॉर बायोकेमिकल टेकनोलॉजी ने इस बात का पता लगाने हेतु शोध शुरू कर दिया है कि हमारी जेनेटिक संरचना किन रोगों के प्रति संवेदनशील है।

वैज्ञानिकों द्वारा ह्यूमन जीनोम संबंधी क्रान्तिकारी खोज एवं रहस्योद्घाटन के बाद जहां आज सभी देशों के वैज्ञानिकों एवं जनसाधारण के बीच खुशी की लहर दौड़ रही है, वहीं कुछ प्रश्न भी खड़े हुए हैं। इन प्रश्नों में शामिल हैं–

1. मानव के पूर्ण जेनेटिक कोड का कार्यकारी प्रारूप गरीब देशों एवं गरीब जनता को किस प्रकार लाभ पहुँचायेगा ?
2. क्या पेटेंट कानून तथा लाभ कमाने वाली बायोटेक कंपनियां जीनोम संबंधित उपयोग को इतनी महंगी नहीं बना देंगी जिससे ये सिर्फ धनकुबेरों को लाभ पहुंचा सकें तथा गरीब लोग पूर्णतः वंचित रह जायें ?

उपर्युक्त प्रश्नों के अलावा भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। जीनोम संबंधी जानकारी के फलस्वरूप मनचाही संतान (Designer baby) को उत्पन्न करने की संभावनायें पैदा हो जायेंगी। इससे सामज में विषमता बढ़ेगी, क्योंकि मनचाही संतानें सामान्य संतानों की तुलना में अधिक सक्षम तथा समर्थ होंगी तथा वे हर क्षेत्र में प्रमुख पदों पर आसीन होकर सामान्य संतानों पर हावी हो जायेंगी। इस प्रकार समस्या को ध्यान में रख कर अमेरिकी में कांग्रेस ने एक कानून बनाया है जो इस प्रकार की समस्या से निबटेगा ।

हालांकि वैज्ञानिक लोग अभी जीनोम संबंधी जानकारी के लाभों की व्याख्या करने में लगे हुए हैं, परन्तु उनका विचार है कि

इस जानकरी से समाज को लाभान्वित होने में अभी कई वर्षों का समय लग सकता है। उदाहरणार्थ आज से लगभग दस वर्षों के बाद ही कोई चिकित्सक किसी व्यक्ति के जीनमैप को देख कर बता पायेगा कि वह व्यक्ति किन–किन रोगों से ग्रस्त हो सकता है।

ऐसा लगता है कि जीनोम संबंधी जान्कारी प्राप्त हो जाने पर मानव के हाथ में वह सामर्थ्य आ जायेगी जो अभी तक ईश्वर या कुदरत के पास है। अतः अधिकांश नैतिकतावादियों का विचार है कि जीनोम संबंधी जानकारी को उपयोग में लाने से पूर्व यह आवश्यक है कि इस प्रौद्योगिकी को सुरक्षित तथा सबों के लिये लाभदायक बनाने का प्रयास किया जाय। यह भी आवश्यक है कि विज्ञान के द्वारा निभायी जाने वाली भूमिका तथा समाज के द्वारा निभायी जाने वाली भूमिका के बीच समुचित संतुलन बनाने का प्रयास किया जाय। जहां विज्ञान को हमें भौतिक जगत के विश्लेषण तथा उसे समझने में सहायता प्रदान करता है; वहीं समाज वैज्ञानिक जानकारी के संबंध में समुचित निर्णय लेने में सहायता करता है। अतः यह आवश्यक है कि जहां विज्ञान अपनी भूमिका निभाने में रुकावट नहीं आने देना चाहिए, वहीं समाज को भी अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से अपना काम करना चाहिए। सुना गया है कि कुछ कंपनियां तथा विशिष्ट वैज्ञानिक जीनोम संबंधी जानकारी को पेटेंट कराने का प्रयास कर रहे हैं। यह एक अवांछनीय कदम है। वस्तुतः ऐसी जानकारी पर पूरी मानवता का अधिकार होना चाहिए। कुछ कंपनियों का तर्क है कि पेटेंट ही एकमात्र उपाय है जिसके द्वारा नये जेनेटिक चिकित्सा संबंधी अनुसंधान पर निवेशित रकम को वसूला जा सकता है। परन्तु इस बात की क्या गारंटी है कि उपयुर्क्त कंपनियां तथा उनसे संबंधित सरकारें इस जानकारी को जैविक अस्त्रों के निर्माण हेतु उपयोग में नहीं लायेंगी तथा इनका उपयोग किसी नस्ल या देश को समाप्त करने के लिये नहीं किया जायेगा ?

इसके अलावा इस प्रौद्योगिकी का अविवेकपूर्ण उपयोग हमारे समाज पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। जीन आधारित प्रौद्योगिकी के उपयोग द्वारा आयु बढ़ाने या बुढ़ापे की रफ्तार कम करने से परिवार का आन्तरिक समीकरण गड़बड़ा सकता है। इसके फलस्वरूप मानव का सक्रिय जीवन काल बढ़ जायेगा। ऐसी स्थिति में क्या हम बढ़ती आबादी के लिये रोजगार तथा आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं को जुटा पायेंगे ? इसी प्रकार इस प्रौद्योगिकी के कारण किसी व्यक्ति या नस्ल की जेनेटिक गोपनीयता पर प्रहार हो सकता है, जिसके कारण समाज में भेद–भाव की स्थति पैदा हो सकती है। अतएव इस प्रकार के शोधों में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने की नितांत आवश्यकता है।

प्राध्यापक–भूगर्भ, इंजिनियरी कॉलेज
भागलपुर – 813210

सम्मान

1. विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधान मंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र को 16 सितंबर 2000 को सहस्राब्दी विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर दिल्ली के राजेन्द्र भवन में "राष्ट्रीय हिन्दी सेवा सहस्राब्दी सम्मान से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर डॉ0 विष्णु दत्त शर्मा (गाजियाबाद) तथा श्री पृथ्वीनाथ पांडे(इलाहाबाद) भी सम्मानित हुए।
2. मलेरिया अनुसंधान केन्द्र के पूर्व निदेशक डॉ0 वी.पी. शर्मा को मलेरिया नियंत्रण के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए प्रतिष्ठित डॉ0 भीमराव अम्बेदकर शताब्दी पुरस्कार प्रदान किया गया है।
3. विज्ञान परिषद् प्रयाग की जोधपुर शाखा के उपाध्यक्ष इं. के.एम.एल. माथुर को अमेरिकन बायोग्राफिकल इंस्टीट्यूट केलिफोर्निया यू.एस.ए. द्वारा वर्ष 2000 के लिए रिसर्च बोर्ड ऑफ एडवाईजर में मानद नियुक्ति की गई है।
4. मोतीलाल नेहरू मेडिकल कालेज इलाहाबाद में रीडर डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्र को गैस्ट्रोएंटरोलाजी के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए वर्ष 1998 के बसंती देवी अमीर चंद पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

जैवसूचना विज्ञान (बायोइन्फार्मेटिक्स)

✍ रेहाना आबिदी, एम.अब्बास, अमित मिश्र

जीवन तत्वों की धारणा सभी दार्शनिकों ने की है। गीता में कहा गया है कि

महाभूतान्याहकारों बुद्धिर्व्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।

(क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, दस इन्द्रियां, मन, बुद्धि, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, और महत्प्रकृति, इन 24 तत्वों से आत्म स्वरूप का निर्माण हुआ है)

वैज्ञानिकों ने भी अमीनो एसिड, फैटी एसिड, कार्बोहाइड्रेट आदि को जीवन तत्व के रूप में स्वीकार किया है। इनमें जो तत्व शरीर द्वारा बनाये जाते हैं, उनके उत्पादन के लिए तथा जो तत्व भोजन द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, उनके उपयोग के लिए शरीर के अंदर अनगिनत 'रासायनिक प्रक्रियायें' सतत चलती रहती हैं। इन सबके पीछे जो 'सूचना तंत्र' कार्यरत है, उसको समझने का प्रयास वैज्ञानिक शुरू से करते रहे हैं।

कार्यात्मक रूप से शरीर की सबसे छोटी इकाई को कोशिका (Cell) माना गया है। हम सब की उत्पत्ति एक कोशिका से हुई है। शरीर के भीतर कोशिकायें पैदा होती रहती हैं, अपना पूर्व निर्धारित कार्य करती रहतीं हैं, विभाजित होती रहती हैं और फिर अन्त में नष्ट हो जाती हैं। किसी भी कोशिका की सारी अन्य क्रियायें एक सूचना प्रणाली पर आधारित होती हैं। ये सूचनायें मूलतः, 'रासायनिक रूप' में होती हैं, तथा डी.एन.ए. के रूप में कोशिकाओं में मौजूद रहती हैं। अधिकांशः डी.एन.ए. कोशिका के केन्द्रक के गुणसूत्रों में समाविष्ट होती हैं। किसी कोशिका के अन्दर उपस्थित कुल डी.एन.ए. को संयुक्त रूप से 'जीनोम' कहते हैं।

डी.एन.ए. और आर.एन.ए.

हर जीव की रासायनिक क्रिया संरचना में RNA,और (कुछ विषाणुओं को छोड़ कर) DNA नामक दो बहुलक (Polymers) शामिल हैं। यह बहुचर्चित रसायन केवल चार प्रकार की इकाइयों को जोड़ कर बनाते हैं। ये इकाइयां अपने रासायनिक नामों के पहले अक्षर से ही जानी जाती हैं। A, T, G, C । इन इकाइयों के एक पंक्ति या लड़ी इस प्रकार हो सकती है :–

---GGC AAT TAT ACC ATG GAT TAC GTA ACT TTG GCA TGC GTA CAA AAT TTA GGG GG..

RNA की श्रृंखलाएं DNA की श्रृंखलाओं से एक इकाई के अंतर से भिन्न होती हैं। RNA में T स्थान पर U होता है। अतः RNA की श्रृंखला ऊपर के उदाहरण के अनुरूप इस प्रकार बनती है–

... GGC AAU UAU ACC AUG GAU UAC GUA ACU UUG GCA UGC GUA CAA AAU UUA GGG GG

एक RNA श्रृंखला में 1000 से 10000 तथा DNA श्रृंखला में लाखों करोड़ों इकाइयां होती हैं।

DNA श्रृंखला के बारे में एक रोचक बात और है, कि इसकी संरचना 'दोहरी लड़' के रूप में होती है। दोहरी लड़ का निर्माण होता है 'पूरकता, के सिद्धांत के अनुसार। असल में A.T.G.C एक दूसरे से अगल बगल जुड़ कर एक सीधी लड़ी तो बनाते ही हैं, पर इसमें अधिक महत्वपूर्ण बात है इन इकाइयों का वह गुण जिससे वे एक लड़ी से दूसरी लड़ी को समान्तर दिशा में जोड़ पाती हैं। ऐसा इसलिये संभव है क्योंकि A और T तथा G और C यदि अगल-बगल के बजाय आमने-सामने स्थित हों, तो वे एक-दूसरे से बंध बनाते हैं। फलतः यदि एक लड़ी इस प्रकार हो :–

CCC CCC CCC CCC CCC CCC C
या
TTT TTT TTT TTT TTT TTT T

तो यह श्रृंखलाएं अपनी पूरक श्रृंखलाओं के साथ बंध बना कर दोहरी लड़ बना सकती हैं :–

CCC CCC CCC CCC CCC CCC C
||| ||| ||| ||| ||| ||| |
GGG GGG GGG GGG GGG GGG G
या
TTT TTT TTT TTT TTT TTT T
||| ||| ||| ||| ||| ||| |
AAA AAA AAA AAA AAA AAA A

जीव जगत में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक के गुण-धर्मों की यात्रा जारी रखने के लिए इस तरह की पूरक श्रृंखलाएं ही इस्तेमाल होती हैं। जब एक पैतृक कोशिका को सन्तान उत्पन्न करनी होती है, तो वह अपने 'रूप' से सम्बंधित सभी जानकारी की एक प्रति बनाती है। भौतिक स्तर पर ऐसा करने के लिये उसे अपनी DNA की एक 'टू-कॉपी' तैयार करनी पड़ती है। ऐसी नकल तैयार करने के लिए पूरकता का सिद्धान्त बहुत काम आता है। पैतृक कोशिका की DNA की दोनो लड़ियाँ खुलकर अलग-अलग हो जाती हैं और कोशिका में उपस्थित एन्जाइमों व रसायनों को इस्तेमाल करते हुये अपनी-अपनी पूरक लड़ियां बना लेती हैं। पैतृक DNA की दोनों लड़ियाँ साँचे की तरह इस्तेमाल होती हैं, तथा सन्तान कोशिका में पहुँचाने वाली DNA की लड़ी पैतृक कोशिका से ज्यों की त्यों प्राप्त होती है और दूसरी नव-निर्मित होती है। अतः DNA का काम है रूप के विषय में जानकारी को संग्रहीत रखना और अगली पीढ़ी को यह जानकारी उपलब्ध करना।

DNA में निहित जानकारी से भौतिक रूप का निर्माण करने का काम प्रोटीनों का होता है। पूरकता के सिद्धान्त के आधार पर DNA से RNA का निर्माण होता है। जैसा कि हम कह चुके है, RNA में T के स्थान पर U लगता है। DNA की एक साँचा लड़ी के आधार पर RNA की नई लड़ी तैयार होती है। पहले DNA की दोहरी लड़ी एक स्थान से खुल जाती है। DNA की दोनों लड़ियों में से एक अब 'साँचा-श्रृंखला' का काम करती है, और उपयुक्त एन्जाइमों की मदद से RNA श्रृंखला का निर्माण शुरू हो जाता है। RNA श्रृंखला में T के स्थान पर U होने के कारण, नव निर्मित RNA की श्रृंखला DNA की साँचा-श्रृंखला के साथ बंध नहीं बना पाती है, और DNA से अलग होकर कोशिका में अपना काम करने चल देती है। RNA के कई काम हैं, जिनमें से एक है प्रोटीन के निर्माण के निर्देश कोशिका में उपस्थित प्रोटीन निर्माण की मशीनरी तक पहुँचाना। DNA, RNA और प्रोटीनों के इस रिश्ते पर प्रकाश पड़ा था जेम्स वॉट्सन की सोच के फलस्वरूप।

इतना तो हमें मालूम हो गया कि एक डी.एन.ए. के कई कामों में से एक है किसी एक विशेष प्रोटीन का संश्लेषण करना। डी.एन. ए. सीधे प्रोटीन का संश्लेषण नहीं करता। यह प्रक्रिया दो काफी जटिल चरणों में पूरी होती है, जिन्हे ट्रान्सक्रिप्शन तथा ट्रासलेशन कहते हैं। ट्रान्सक्रिप्शन में एक खास तरह के आर.एन. ए. (जिसे m RNA कहते हैं) का संश्लेषण होता है। इसके बाद 'प्रोटीन संश्लेषण' के कोड को लेकर mRNA केन्द्रक के बाहर आ जाता है। बाहर मौजूद 'रिबोसोम्स' उस कोड को पढ़ने और समझने के बाद उचित अमीनो एसिड' की श्रृंखला तैयार कर देते हैं। यहाँ पर आकर ट्रान्सलेशन पूरा हो जाता है। अमीनो एसिड की इस श्रृंखला को प्रोटीन का 'प्राथमिक चरण' माना जा सकता है। इसके बाद एक जटिल प्रक्रिया से गुजरकर एक तीन आयाम की संरचना वाला प्रोटीन बनता है। किसी भी प्रोटीन का कार्य उस समय के तीन आयामी संरचना पर आधारित होता है।

इस प्रकार हमने पाया कि एक 'जीवित प्राणी' का दारोमदार उसकी कोशिका/कोशिकाओं में मौजूद जीनोम पर होता है। किसी भी जीव के जीनोम में मौजूद सभी जीन के 'बेस अनुक्रम' का पता लगाना वैज्ञानिकों के लिए एक अत्यन्त चुनौतीपूर्ण काम था। डी.एन. ए. से पहले कुछ दूसरे जैव रासायनिक बहुलकों की इकाइयों के क्रम प्राप्त करने की विधि विकसित की गयी। इसका शुभारम्भ 1951 में सेंगर तथा टुपी द्वारा 'इसुलिन बी-चेन' के बेस अनुक्रम के कार्य से हुआ। 1965 में होले आदि ने एक विशेष t RNA के अनुक्रम का पता लगाया। 1977 में मैक्सन तथा गिलबर्ट एवं सेंगर आदि ने डी.एन.ए. के बेस अनुक्रम का पता लगाने की तकनीक विकसित की। अब तो बहुत ही उन्नत किस्म की 'स्वचालित विधियां' विकसित हो चुकी हैं, जिनके द्वारा किसी डी.एन.ए. का 'बेस अनुक्रम' प्राप्त करना एक आम बात हो गयी है।

जैवसूचना

एक अनुमान के अनुसार एक 'मानव कोशिका' में कुल डी.एन.ए में उपस्थित बेसों (A-T-C-G) की संख्या 6 बिलियन हो सकती है, जो कि पूरकता के सिद्धान्त के अनुसार आपस में जुड़कर 3 बिलियन 'बेसपेयर' का सृजन कर सकते हैं। ये सब मिला कर एक लाख जीन को जन्म देते हैं। इतने सारे जीन क्या काम करते

हैं तथा उस काम को कैसे करते हैं, यह सब पता लगाना अत्यन्त जटिल कार्य है। फिर भी इस दिशा में काफी तेजी से शोधकार्य चल रहा है। शोधकर्ताओं को एक-एक जीन को पहचानना होता है, फिर उन्हें अलग करना होता है और उन सबका 'बेस अनुक्रम' पता करना होता है, यानी एक जीन में संलग्न A-C-T-G की लम्बी श्रृंखला का पता लगाया जाता है। फिर उस जीन की अभिव्यक्ति को समझना पड़ता है। तत्पश्चात एक 'अमीनोऐसिड श्रृंखला' क्या थ्री डाइमेंशनल रूप धारण करेगी यह जानने का प्रयास किया जाता है।

मुख्य रूप से National Centre For Biotechnology Information (NCBI), United States; European Molecular Biology Laboratory (EMBL), UK तथा DNA Data Bank Of Japan (DDBJ) के आपसी सहयोग से डी.एन. ए. के 'बेस अनुक्रम' का संकलन कंप्यूटर डेटाबेस के रूप में किया गया है। इसी प्रकार 'प्रोटीन सीक्वेंस' एवं स्ट्रक्चर' का डेटाबेस बनाया गया है।

अब तो बाकायदा 'The National Human Genome Research Institute' के नाम से एक संस्था , मानव जीनोम पर किये गये शोध को संकलित करती है। इसके अलावा बहुत सारी प्राइवेट संस्थायें भी इस काम में लगी हुई हैं। मानव जीनोम में मौजूद 'न्युक्लियोटाइड बेसों' की केवल एक साधारण सी सूची यदि बनायी जाये, तो एक औसत दर्जे की टेलीफोन डायरेक्टरी' के मुकाबले 200 गुना लम्बी होगी। फिर, पहले से ही 'बैक्टेरियल जीनोम', आदि के सीक्वेंस का डेटाबेस मौजूद है। इस तरह हम पाते हैं कि 'सीक्वेंस डेटाबेस' के रूप में जो जैवसूचना हमारे पास उपलब्ध है, वह मानव जाति के लिये अनमोल खजाना है। इस सूचना के आगमन ने 'जीव-विज्ञान' में एक क्रांति ला दी है।

इन सारी सूचनाओं के संबंध में दो बातें उभर कर सामने आयी हैं।

- पहली यह कि 'सूचना धमाका' इतना जबर्दस्त हुआ है कि उसका रखरखाव, उसका सजाना-संवारना बगैर किसी उपकरण' के संभव नहीं रह गया है।
- दूसरे यह कि इस सूचना रूपी महासागर में से कुछ बुनियादी सवालों के जवाब रूपी मोती निकालना मानव मस्तिष्क के बस की बात नहीं है, इसके लिए कुछ उपयुक्त औजारों की आवश्यकता है।

बायोइन्फार्मेटिक्स क्या है ?

जैव सूचना के प्रसंग में ऊपर हमने जिस उपकरण की जरूरत पर बल दिया है, उस उपकरण का नाम है बायोइन्फार्मेटिक्स। बायोइन्फार्मेटिक्स, जीव विज्ञान का एक नया क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत जैव सूचना का अर्जन (Acquisition) भंडारण (Storage), संसाधन (Processing), वितरण, विश्लेषण, एवं व्याख्या आदि कार्य आते हैं। इस कार्य में जीवविज्ञान, सूचना तकनीक तथा गणित की तकनीकें उपयोग में लायी जाती हैं।

बायोइन्फार्मेटिक्स के अपेक्षित साधन

बायोइन्फार्मेटिक्स में निम्नलिखित साधन अपेक्षित हैं :-

- कंप्यूटर एवं अन्य हार्डवेयर
- इंटरनेट कनेक्शन
- वर्ल्ड-वाइड-वेब एवं अन्य साधन
- डेटाबेसेज
- उपयुक्त साफ्टवेयर

कुछ महत्वपूर्ण डेटाबेसेज

यहां हम तीन प्रकार के डैटाबेसेज की चर्चा करेंगे।

1. न्यूक्लीइक एसिड सीक्वेंस डेटाबेसेज
   - EMBL Nucleotide Sequence Database
   - NCBI Gene Bank
   - DDBJ
2. प्रोटीन सीक्वेंस डेटाबेसेज
   - SWISS PROT
   - PIR
   - MIPS
3. प्रोटीन स्ट्रक्चर डेटाबेसेज
   - Protein Data Base

कुछ महत्वपूर्ण साफ्टवेयर

इंटरनेट के अलग-अलग सर्वर पर, बायोइन्फार्मेटिक्स संबंधित बहुत सारे साफ्टवेयर उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ है-

	विषय	कंप्यूटर प्रोग्राम
1.	डेटाबेस सर्च	WAIS
		SFGATE
		GETENTRY
		PUBMED
		ENTREZ
2.	होमॉलोजी सर्च	BLAST
		FASTA
		SMITH-WATERMAN
3.	सीक्वेंस एनालिसिस	DNA to AA
		PROSCAN
		Signal Scan
		SSPN
		GENE FEATURE
		ORF FINDER
		TFSEARCH
		MOTIF
		BLOCK
		MEME
		CLUSTALW
		PI/MW
4.	प्रेडिक्शन ऑफ सेकेंड्री स्ट्रक्चर	2nd Structure Prediction
		Predictprotein

बायोइंफार्मेटिक्स से आशायें

बायोइंफार्मेटिक्स ने जैविकी के क्षेत्र में शोध करने के अंदाज को ही बदल दिया है। प्रायोगात्मक उपमार्ग के बजाय अब किसी भी शोध का प्रारम्भ कंप्यूटर पर उपलब्ध डेटाबेसेज की उपयुक्त साफ्टवेयर द्वारा तलाश एवं तुलना से होता है। किसी वैज्ञानिक द्वारा एक जीन के 'बेस अनुक्रम' को प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसकी किसी डेटा बेस पर पहले से मौजूद किसी सीक्वेंस से तुलना की जा सकती है। दोनों सीक्वेंस में कितनी समानता है; इस आधार पर नये जीन की कार्यशैली या उत्पत्ति पर प्रकाश डाला जा सकता है।

बायोइंफार्मेटिक्स से निम्नलिखित क्षेत्रों में क्रांतिकारी बदलाव आने की आशायें हैं –

1. किसी जानलेवा बीमारी के लिए जिम्मेदार 'जीन–समूह' का पता लगाना
2. औषधि निर्माण के लिए एक लक्ष्य को निश्चित करना
3. उस लक्ष्य को hit करने के लिए उपयुक्त अणुओं (लिगेंड्स) की डिज़ाइन तैयार करना
4. एक उपयुक्त औषधि को उसके वैध प्राप्तकर्ता (रिसेप्टर) तक आसानी और शीघ्रता से पहुँचाना
5. किसी पौधे के किसी जीन में इस तरह फेरबदल करना कि पुनर्योजी प्रोटीन (Recombinant Protein) का उपयोग मानव कल्याण में हो सके।
6. इस तरह के पशुओं का जन्म, जिनके विभिन्न अंग मानव शरीर में प्रत्यारोपित किये जा सकें, आदि।

एन.बी.एफ.जी.आर. लखनऊ
सी.डी.आर.आई. लखनऊ

त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का शुभारम्भ 10 अक्टूबर 2000 से

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, भारत सरकार के समर्थन से विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा आयोजित प्रथम त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का उद्घाटन, डॉ0 मनोज पटैरिया, प्रधान वैज्ञानिक अधिकारी, रा.वि.प्रौ.सं.प. द्वारा 10 अक्टूबर 2000 को किया जाएगा।

इस पाठ्यक्रम हेतु प्रशिक्षुओं की चयन प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी है।

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
पाठ्यक्रम संयोजक

सूचना प्रौद्योगिकी के नये आयाम

✍ संजीव अग्रवाल, रमेश चन्द्र जोशी

सूचना प्रौद्योगिकी मुख्यतः सुचारु रूप से सूचना की प्राप्ति, उसके विश्लेषण, संचयन तथा स्थानान्तरण से सम्बन्धित है। वर्तमान समय में इसका संबंध उपकरण तथा अभिकलित्र (कम्प्यूटर), अभिकलित्र जाल, उपग्रह संचार, रोबोट तथा सहायक निर्माण तंत्रों के प्रयोगों से है। सूचना प्रौद्योगिकी का मुख्य लक्ष्य उन तंत्रों के प्रयोग से है जिनके द्वारा हम सूचना का स्थानांतरण, संचयन, प्रोसेसिंग तथा प्रस्तुतीकरण समाज के उपयोग तथा उत्थान के लिये करते हैं।

इंटरनेट के नाम से आज हम सब परिचित हैं। यह सूचना प्रौद्योगिकी का एक विशिष्ट उदाहरण है। यह अभिकलित्रों का संसार में फैला हुआ जाल है जिसमें अभिकलित्र, संचार तंत्र, दूरभाष जाल, मोडेम तथा उपग्रह संचार सम्मिलित हैं। इसके द्वारा संसार में कहीं भी बात की जा सकती है तथा चित्र भी भेजे जा सकते हैं। इसके द्वारा समाचार, मौसम की जानकारी, शिक्षण, वित्तीय तथा भौगोलिक आंकड़े अतिशीघ्र घर बैठे प्राप्त किए जा सकते हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी में सम्मिलित मुख्य तंत्र चित्र–1 में दर्शाए गए हैं। इस चित्र से स्पष्ट है कि सभी तंत्रों में अभिकलित्र का समावेश अनिवार्य है। यदि यह कहा जाए कि सूचना प्रौद्योगिकी में हुआ विकास मुख्यतः अभिकलित्र प्रौद्योगिकी तथा विज्ञान में हुए विकास का परिणाम है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अभिकलित्र आधुनिक इलेक्ट्रॉनिकी पर आधारित, तेज गति से कार्य करने वाला, सभी डेटा प्रोसेसिंग प्रयोगों के लिए उपयुक्त उपकरण है। पिछले दशक में अभिकलित्र प्रौद्योगिकी में अत्यधिक विकास हुआ है तथा अभिकलित्रों के आकार में बहुत कमी आयी है। अभिकलित्र प्रौद्योगिकी में विकास मुख्यतः उसके कार्य करने की गति तथा उसकी स्मृति (मेमोरी) क्षमता से हुआ है। 32 बिट तथा 64 बिट के माइक्रोप्रोसेसर के उत्पादन से अभिकलित्रों के नए उपयोग सामने आने लगे हैं। कम्प्यूटर जाल तथा चित्र संचार तकनीकी पी.सी. (Personal Computer - PC) द्वारा संभव हो सकी। तीव्र गति (100&200 MHz) तथा गीगाविट Gigabit की स्मृति पताभिगमन (Memory Addressingh) क्षमता ने आज पी.सी. (PC) को सभी कार्यो के लिए सक्षम बना दिया है। चित्र–2 में पी.सी. द्वारा किए जाने वाले कार्यों को दर्शाया गया है। RISC आधारित अभिकलित्रों द्वारा अत्यधिक गति (40-80 MEGAFLOPS) प्राप्त की जा सकती है। मेमोरी क्षमता में हुये विकास से आज 64 MB के DRAM उपलब्ध हैं। महाअभिकलित्र (Supercomputer) तथा न्यूरल कम्प्यूटर के प्रादुर्भाव से मौसम विज्ञान तथा अन्य उपयोगों में एक क्रान्ति आ गयी है। समान्तर प्रोसेसिंग द्वारा जटिल अभिकलित्रीय कार्य भी अब सुगमता से किए जा सकते हैं। CD-ROM तथा WORM (write - once - read - many) मेमोरी के उपलब्ध होने से सूचना संग्रहण तथा पुनःप्राप्ति में एक नया आयाम स्थापित हो चुका है।

सूचना प्रौद्योगिकी का दूसरा मुख्य तंत्र संचार प्रौद्योगिकी है। यदि हम सूचना प्रौद्योगिकी को अभिकलित्र–संचार प्रौद्योगिकी (Communication Technology) कहें तो यह सूचना प्रौद्योगिकी को संपूर्ण रूप से प्रदर्शित करता है। संचार प्रौद्योगिकी के विकास को निम्नलिखित बिंदुओं द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है :–

1. आवाज, चित्र व आंकड़ों का संक्रमण तथा अधिग्रहण
2. चल दूरभाष का विकास
3. दृश्य दूरभाष का विकास
4. तन्तु प्रकाशीय प्रौद्योगिकी का विकास

LAN प्रौद्योगिकी, जिसमें विभिन्न अभिकलित्र एक जाल में जुड़े हुए होते हैं, के विकास से विभिन्न अभिकलित्रों में सूचना का आदान–प्रदान तीव्र गति से (साधारणतया 10Mb/s) संभव हो सका है। उपग्रह संचार तथा VSAT के उपलब्ध होने से LAN प्रौद्योगिकी में क्रान्ति आ गयी है। अतुल्यकालिक स्थानांतर प्रणाली
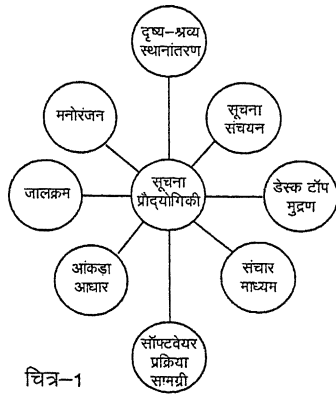
चित्र–1

(ATM- Asynchronous Transfer Mode) प्रौद्योगिकी का विकास अभी अपने शैशव काल में है परन्तु इसके मानकीकृत होने पर निस्संदेह LAN प्रौद्योगिकी एक नए आयाम को स्थापित करेगी। ए.टी.एम. प्रौद्योगिकी द्वारा विभिन्न अभिकलित्र जाल में एक दूसरे से पूर्ण रूपेण जुड़कर द्रुत गति से (150 Mb/s) आवाज, चित्र तथा आंकड़ों का अदान–प्रदान कर सकते हैं। सन् 2000 तक यह अपेक्षित है कि सूचना के आदान–प्रदान को 100 Mb/s की गति से सुचारु रूप से किया जा सकेगा।

सूचना प्रौद्योगिकी में हुए विकास में प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) का महत्वपूर्ण योगदान है। जैसा कि पहले वर्णित किया गया है कि सूचना प्रौद्योगिकी मुख्यतः संचार तथा अभिकलित्र प्रौद्योगिकी के समन्वय का परिणाम है, परन्तु सॉफ्टवेयर के बिना यह समन्वय असंभव है। अभिकलित्र सॉफ्टवेयर का मुख्य उद्देश्य अभिकलित्र प्रौद्योगिकी में हुए विकास को सुचारु रूप से प्रयोग में लाने योग्य बनाना तथा उस पर आधारित तंत्रों का विकास है। आज जब अभिकलित्र का प्रयोग ऐसे कार्यों के लिए किया जा रहा है जो अत्यधिक अभिकलन तथा विशाल डेटा प्रोसेसिंग पर आधारित हैं तब वितरित प्रोसेसिंग का महत्व बहुत बढ़ जाता है। वितरित प्रोसेसिंग में अभिकलित्र तथा संचार माध्यम मिल कर किसी कार्य को वितरित कर अत्यधिक शीघ्रता से कर सकते हैं। इस कार्य में मुख्यतः उपयुक्त सॉफ्टवेयर का उपयोग आवश्यक है। सॉफ्टवेयर की मदद से किसी भी जटिल तंत्र को साधारण मनुष्य के उपयोगार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसा करने में अभिकलित्र ग्राफिक का मुख्य योगदान है जिसके द्वारा एक साधारण उपयोगकर्ता अपना कार्य अभिकलित्र को चित्रों द्वारा बटन दबाकर बता सकता है। अभिकलित्र प्रोग्राम तकनीक अब संबंधपरक प्रोग्रामन से हट कर अभिकलित्र प्रोग्रामन (OOP) पर जा रही है। OOP में सारा प्रोग्राम अभिलक्षित के रूप में होता है तथा ये अभिलक्ष्य अपना सारा डेटा अपने पास ही रखते हैं तथा अपनी ही विधियों द्वारा उसका संसाधन करते हैं। बाहर से किसी अभिलक्ष्य के डाटा को उसकी विधियों द्वारा ही संचालित किया जा सकता है। इस प्रोग्राम तकनीक के आने से जटिल प्रोग्रामों को तैयार करना अति सुगम हो गया है। यदि किसी प्रोग्राम में बदलाव की आवश्यकता हो तो अभिलक्ष्य प्रोग्रामन में यह कार्य अति सुगमता से शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। अभिलक्ष्य प्रोग्रामन वितरित तंत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है क्योंकि इनमें उपलब्ध संदेश पारण विधियां अभिलक्ष्य के LAN पर संचार में अत्यधिक सहायक हैं। अभिलक्ष्य प्रोग्रामन पर आधारित आँकड़ा–आधार तंत्रों द्वारा विशेषज्ञ तंत्र CAD तथा बहुमाध्यम अनुप्रयोग के लिए सॉफ्टवेयर अधिक सुगमता से बनाए जा सकते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का एक मुख्य उद्देश्य वितरित आँकड़ा आधार प्रबंधन तंत्र का विकास करना है जिसमें आँकड़ा–आधार विभिन्न स्थानों पर अभिकलित्रों में रखे रहते हैं तथा ये अभिकलित्र एक LAN द्वारा आपस में जुड़े रहते हैं। इस तंत्र की मुख्य विशेषता यह है कि यह तंत्र इतना बुद्धिमान है कि आपके द्वारा चाही सूचना को अपने आप जहाँ भी वह उपलब्ध है, वहां से ला सकता है। सूचना प्रौद्योगिकी का विकास किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित करता है तथा विकास की ओर ले जाने में सहायक है। आज के युग में सूचना के महत्व से हम भलीभांति परिचित हैं तथा समय पर सही सूचना की उपलब्धता सफलता की कुंजी है। सूचना प्रौद्योगिकी का विकास इसी दिशा में एक कदम है। भारत जैसे विशाल देश में सूचना प्रौद्योगिकी ग्रामीण विकास, बाजार समन्वयन तथा आधारभूत सेवाएं प्रदान करने में अपना विशिष्ट योगदान दे सकती है। VSAT के प्रयोग से ऐसे क्षेत्रों को, जो सुगमतापूर्वक संचार माध्यमों से जोड़े जा सकते, देश के बाकी हिस्सों से आसानी से जोड़ा जा सकता है। कंम्प्यूटर शिक्षा के प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी अहम् भूमिका निभा सकती है। CAD, CIM तथा CAD/CAM का
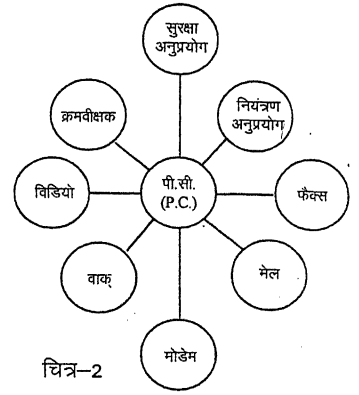
चित्र–2

(शेष भाग पृष्ठ 30 पर)

सुरक्षित रहेगा नश्वर शरीर का प्रत्येक पुर्जा

✍ सूर्यभान सिंह 'सूर्य'

शवों को सुरक्षित रखने का काम हजारों वर्ष पहले शुरू हो गया था। वैसे तो मृत शरीर को सामान्य अवस्था में दो दिन से अधिक रख पाना मुमकिन नहीं है, परन्तु इसके लिए तरह-तरह की तकनीकें इस्तेमाल की जाती हैं। संरक्षित किए गए इन मृत शरीरों को ममी कहा जाता है। प्राचीन मिस्र के पश्चिमी रेगिस्तान में एक ही स्थान पर लगभग दस हजार ममी होने का पता चला है, जो अनुमानतः 330 ईसा पूर्व से 400 ईसवी सन् के दौरान यहां रखी गयीं। इसके अलावा कई देशों में मानव के कई अन्य महत्वपूर्ण अंगों के संग्रहालय स्थापित किए गए हैं। इग्लैंड के विकफोर्ड नामक शहर में स्थापित निक कोर्सेलिस संग्रहालय दुनिया में अब तक ज्ञात सबसे बड़ा मानव मस्तिष्क संग्रहालय है। यहां विश्व के लगभग 8000 व्यक्तियों के मस्तिष्क सुरक्षित रखे गये हैं।

मानव शरीर के इस रहस्यमय पुर्जे का दूसरा सबसे बड़ा जखीरा अमेरिका के पास मौजूद है। यहाँ के दो ब्रेन बैंक विश्व में अपना खास स्थान रखते हैं। इसी तरह कुछ अन्य जीवधारियों को भी मनोरंजन अथवा अध्ययन के दृष्टिकोण से सुरक्षित रखा जाता है।

मनुष्य के शवों को सुरक्षित रखने के लिय अब तो कई देशों के बीच एक होड़ सी शुरू हो गयी है। अमेरिका पिछले दो-तीन वर्षों से मृत मानव शरीरों का आयात भी कर रहा है। इससे उसे तरह-तरह के शव मिल जाते हैं- स्वस्थ भी, रोगग्रस्त भी। यहाँ इन शवों से प्राप्त मानव शरीर के विभिन्न कलपुर्जों की पहचान करके संग्रहालयों में सजाया जाता है। स्वस्थ पुर्जो को अलग और अस्वस्थ अंगों को अलग। इसके अतिरिक्त समूचे इंसानी शव भी संग्रहीत किए जाते हैं-छोटे-मोटे, दुबले-पतले, लंबे, हर तरह के। वैसे तो इंसानी लाशों का यह आयात काफी छोटे पैमाने पर होता है, लेकिन इस पर विवाद भी खड़े हो रहे हैं। कुछ भी हो, कारोबार है तो आखिर इंसानी लाशों का।

अब आपको तो यह पता चल ही गया होगा कि इसी तरह मानव शरीर के प्रत्येक पुर्जे को सुरक्षित रखकर एक संग्रहालय तैयार किया जा सकता है, और ऐसा हो भी रहा है। लेकिन यह सब संभव कैसे हुआ? पूर्व की कई सदियों की तुलना में हाल के दो वर्षों में इस दिशा में आयी क्रान्ति और सफलता का कारण क्या है? कारण यह है कि पूर्व की अपेक्षा अब इन शवों और मृत अंगों को संरक्षित रखने की प्रौद्योगिकी काफी परिष्कृत हो गयी है। यह क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिखाया है प्लास्टिनेशन प्रौद्योगिकी ने। संरक्षण की पारंपरिक विधियों से यह तकनीक कहीं ज्यादा बेहतर साबित हुई है। इसके जरिए संरक्षित किए गए मानव शरीर के अंग व समूचे जिस्म गंधहीन, सूखे व लंबी अवधि के लिए सुरक्षित हो जाते हैं। प्लास्टिनेशन तकनीक द्वारा संरक्षित लाशों को प्लास्टिक शरीर के नाम से जाना जाता है। यह तकनीकी अभी सिर्फ दो वर्ष पूर्व विकसित की गयी थी, अतः विश्व के कुछ गिने-चुने देशों में ही प्रचलित है।

शवों को सुरक्षित रखने के लिए प्लास्टिनेशन का इस्तेमाल इस समय अमेरिका व जर्मनी में बड़े पैमाने पर होने लगा है। यहाँ मृत शरीरों को संग्रहालयों में सजाया जाता है और समय-समय पर इनकी प्रदर्शनी लगायी जाती है। जर्मनी में एक ओर जहाँ समूचे शवों का संग्रह एवं प्रदर्शन प्रमुखता से किया जाता है वहीं अमेरिका में शवों के साथ-साथ विभिन्न मानव अंगों यथा गुर्दा, दिल, फेफड़ा इत्यादि का संग्रह भी होता है। यहां लगने वाली प्रदर्शनियों का गणित दूसरा है। कुछ इस तरह समझ लीजिए कि एक प्रदर्शनी में एक स्वस्थ मनुष्य की लाश रखी गई है। बगल में एक कैंसरग्रस्त फेफड़ा रखा गया। इस तरह देखने वाले लोग दोनों में अंतर समझ सकते हैं। इस दृष्टि से शैक्षिक उपयोगिता समझी जा सकती है। इसीलिए यहाँ किसी प्रकार की बाधाएं नहीं हैं, जबकि हाल ही में जर्मनी के मैनहाइम शहर में 'ह्यूमन बॉडी वर्ल्ड्स' नाम से लगने वाली एक प्रदर्शनी को भारी विरोध का सामना करना पड़ा। लोगों की दलील थी कि मरणोपरान्त व्यक्ति की लाशों का प्रदर्शन उनकी तौहीन है जिसे कदापि उचित ठहराया ही नहीं जा सकता।

खैर, आपको यह भी बता दूँ कि मुर्दों का प्लास्टिनेशन किया कैसे जाता है। इसके चार चरण हैं। पहला–शव को कड़ा करने का, जिसके कारण ये सड़ने से बच जाते हैं। जैव–संग्रहालयों में हम तरह–तरह के जीव–जंतु–चूहा, मेढ़क, गिलहरी इत्यादि के शव सही सलामत पानी जैसे किसी द्रव में तैरते हुए देखते हैं। यह फार्मेल्डीहाइड होता है। फार्मेल्डीहाइड में डालने पर शव के अंग सिकुड़ जाते हैं और कड़ापन आ जाता है। पारंपरिक तौर पर इसी के जरिए मृत शरीरों को संग्रहित किया जाता रहा है। प्लास्टिनेशन तकनीक में दूसरा चरण है डिहाइड्रेशन या निर्जलीकरण। शव को किसी ऐसै विलायक में डाला जाता है जो इसका सारा पानी सोख ले। यह विभिन्न अंगों में मौजूद चर्बी को पूरी तरह घुलाकर बाहर निकाल देता है। विशेष तौर पर यह विलायक ऐसा होना चाहिए जो आसानी से वाष्पित हो जाए। अब तक एसीटोन ही सबसे आदर्श विलायक है। उक्त प्रौद्योगिकी का तीसरा चरण है तरल पॉलीमर डालने का। इस पॉलीमर में धीमी अभिक्रिया करने वाला एक 'क्रास लिंकर' भी मिलाया जाता है। यह क्रास लिंकर पॉलीमराइजेशन प्रक्रिया को उत्प्रेरित करता है। फिर पॉलीमर समेत शरीर को निर्वात में रखा जाता है, जिससे एसीटोन उड़ जाता है और धीरे–धीरे पॉलीमर उसकी जगह ले लेता है। अब पतले टुकड़ों में कटी लाश को शीशे की दो पतली प्लेटों के बीच दबाकर पॉलीमर के जरिये मूल सूरत में ढालना पड़ता है। संरक्षित किए जा रहे शव को मूल आकार–प्रकार मिलने पर पॉलीमर को पुनः कड़ा किया जाता है। पॉलीमर की प्रकृति के अनुसार गैसीय उत्प्रेरक या पराबैंगनी किरणों और ताप का इस्तेमाल किया जाता है। यहां इस्तेमाल होने वाला पॉलीमर अमूमन सिलिकॉन का होता है, क्योंकि यह शरीर को लचीला और प्राकृतिक सी अवस्था में रखता है। शरीर के विभिन्न अंगों यथा दिमाग के टुकड़ों और दिल को सुरक्षित रखने के लिए इपॉक्सी रेजिनों का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए पॉलीएस्टर का प्रयोग दिमाग के मामले में होता है।

इतना सब जानने के उपरान्त आपके मन में यह जिज्ञासा जरूर पैदा हो रही होगी कि आखिर वह महानुभाव थे कौन और कहां के रहने वाले थे, जिनके दिमाग में मुर्दों की सुरक्षा का विचार आया। तो ये महाशय थे जर्मनी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गुंथर वॉन हैगेंस। इतना ही नहीं, जर्मनी में लगी जिस 'ह्यूमन बॉडी वर्ल्डस' नामक प्रदर्शनी का व्यापक विरोध पिछले दिनों हुआ, उसके जनक भी यही महानुभाव हैं। जर्मनी के मैनहाइम शहर में यह प्रदर्शनी 1998 में लगी थी, जबकि प्लास्टिनेशन प्रौद्योगिकी की खोज उन्होंने सन् 1978 में की थी। यह खोज वास्तव में बड़ी दिलचस्प और महत्वपूर्ण है। जिस हाड़–मांस के शरीर को हम हमेशा नश्वर और चलायमान कहते रहे हैं, अब उसका प्रत्येक पुर्जा सदियों तक सुरक्षित रह सकता है। इन्हें हम विभिन्न संग्रहालयों में एक जगह रखा हुआ पाएगें।

किसी अजूबे से कम नहीं मस्तिष्क संग्रहालय

समूचे मानव शरीरों की ही भांति इंग्लैण्ड में मानव मस्तिष्कों का संग्रहालय स्थापित किया गया है। इंग्लैंड का एक शहर है विकफोर्ड। विकफोर्ड द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हवाई हमलों से बचाव हेतु दक्षिणी इंग्लैंड का सुरक्षित केन्द्र रहा है। लेकिन आज यहां एक ऐसा अजूबा संग्रहालय मौजूद है जहाँ सुरक्षित हैं लगभग 8000 मानव मस्तिष्क। निश्चित तौर पर यह दुनिया में अपने किस्म का अनोखा संग्रहालय है और यहां जमा दिमागों में दुनिया के तमाम अनसुलझे रहस्य भी सुरक्षित हैं।

इस संग्रहालय को कोर्सेलिस संग्रहालय कहा जाता है। इसका नामकरण इसके संस्थापक प्रो. निक कोर्सेलिस के नाम पर हुआ है। इस समय डॉ. क्लाइव बर्टन इसके व्यवस्थापक हैं। डॉ. क्लाइव बताते हैं कि पिछले चार दशक से यहां मस्तिष्कों का संग्रह किया जा रहा है। इन्हें काँच के बर्तनों में संरक्षण द्रव फार्मेल्डीहाइड या रेफ्रीजरेटरों अथवा दक्षिणी इंग्लैंड की ऐसेक्स कार्डरी स्थित रनवेल साइकाट्रिक अस्पताल में प्रयोगशाला की स्लाइडों पर सुरक्षित रखा जाता है। संग्रहालय में रखे अधिकांश मस्तिष्क तो खुद रोगियों या उनके रिश्तेदारों ने दान में दिए हैं।

डॉ. क्लाइव का कहना है कि अलजाइमर जैसे रोगों के कारण मरने वाले रोगियों के रिश्तेदार मृतक का मस्तिष्क दान करने के लिए उत्सुक रहते हैं। वे चाहते हैं कि इस रोग के बारे में यथाशीघ्र जानकारी हो जाए ताकि आगे से कोई मरीज इसका शिकार न हो। खैर, यहाँ आज कई दिमागी बीमारियों पर गहन शोध–अध्ययन जारी है। कई रोगों के संबंध में प्राथमिक जाँच रपट तैयार की गयी है। क्लाइव के हवाले से पिछले दिनों एक विदेशी पत्रिका में कहा गया था कि संग्रहालय से संबद्ध वैज्ञानिकों ने ही एक दशक पहले यह साबित कर दिखाया था कि सीजोफ्रीनिया के रोगी का दिमाग असामान्य होता है। इसके पूर्व तो इसे सिर्फ कार्य

की गलती के रूप में लिया जाता था। यहाँ मस्तिष्क रोगों के संबंध में तमाम शोधार्थियों के लिए कई-कई सालों तक काम करने का पूरा सामान उपलब्ध है। इस अस्पताल के व्यवस्थापकों और ब्रितानी चिकित्सा शोध परिषद् को दो साल का समय तमाम तरह के दिमागों की सूची तैयार करने में ही लगा था।

इन दिनों यहाँ आनुवंशिक, आपराधिक व तंत्रिका-तंत्र की गड़बड़ियों के सन्दर्भ में मानव मस्तिष्क पर व्यापक शोधकार्य चल रहा है। डॉ. क्लाइव इन दिनों एक ब्रितानी जेल अस्पताल की ओर से मनुष्य की आपराधिक प्रवृत्तियों पर शोधरत हैं। उनका कहना है कि आनुवंशिक मस्तिष्क क्षति या फिर ढांचागत मस्तिष्क क्षति के कारण लोगों में आपराधिक प्रवृत्तियां घर कर लेती है।

विशेषज्ञों का मानना है कि यह संग्रहालय मानव मस्तिष्क और मस्तिष्क के विभिन्न पुर्जों के मामले में दुनिया का सबसे वृहद् भंडार है। पूरे विश्व के वैज्ञानिकों के लिए दिमागी बीमारियों पर शोध-अध्ययन करने का यह एक सुनहरा मौका है। बीमारी चाहे चोटजनित हो या फिर आनुवंशिक। यह भूमिगत अजूबा संग्रहालय अब तक कई अजूबे हल कर चुका है। सन् 1973 में यहां पहली बार अंतर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय स्तर के 15 मुक्केबाजों के मस्तिष्क प्रदर्शित किए गए और इस खेल के साथ मिलने वाली दिमागी हानि को स्पष्ट किया गया। संग्रहालय की रपट के कारण ही मुक्केबाजी संगठनों को अपने नियमों में बदलाव लाना पड़ा। कई विश्व चैंपियनशिप प्रतियोगिताओं में राउंड्स की संख्या 15 से घटाकर 12 कर दी गयी।

कुछ भी हो, दिमागी रहस्यों को सुलझाने की दिशा में यह अभूतपूर्व प्रयास है। मानव शरीर की इस अजूबी संरचना को संग्रहालय में सजाकर रखना (इतनी बड़ी तादात में) भी अब तक का सबसे बड़ा अजूबा है। परन्तु, यह सब नई प्लास्टिनेशन प्रौद्योगिकी की सहायता से अब आसान हो चला है।

शव संग्रह की मिसाल है 'वैली ऑफ ममीज'

पिरामिडों के लिए मिस्र का नाम दुनिया भर में विख्यात है। मिस्र का प्राचीन इतिहास भी कम दिलचस्प नहीं है। परन्तु, कुछ साल पहले यहां एक ऐसे अजीबोगरीब संग्रहालय का पता चला है, जिसकी कोई मिसाल नहीं। यह संग्रहालय है, इंसानी शवों का, लेकिन अभी तक यह पता नहीं कि इसका निर्माण आखिर किसने और क्यों कराया होगा?

मानव शरीरों का यह विशाल संग्रह मिला है मिस्र के पश्चिमी रेगिस्तान के समीप। विशेषज्ञों का कहना है कि इस जगह पर लगभग दस हजार ममी (मानव लाशें) होने का अनुमान है। बस इसी खूबी के चलते इस स्थान का नाम "वैली ऑफ ममीज" यानी "ममी की घाटी" रख दिया गया है। ममी घाटी की सुरक्षा व्यवस्था काफी चुस्त-दुरुस्त कर दी गयी है और सरकार इसकी पूरी देख-रेख भी कर रही है।

इस ममी घाटी की खोज कैसे हुई? यह अत्यंत रोचक बात है। पहले कई बार सुना गया कि आविष्कार अचानक होते हैं या दुर्घटनावश, परन्तु यकीन आसानी से नहीं होता। लेकिन वैली ऑफ ममीज की खोज भी एक दुर्घटना ही है। पुरातत्ववेत्ताओं की एक टीम यहाँ से गुजर रही थी कि इनका सामान लादने वाला गधा अचानक फिसल गया। यह दल पहले से ही काफी परेशान था। अब एक और मुसीबत गले में पड़ गयी। पुरातत्ववेत्ताओं का दल अभी अपने काम में फिसड्डी ही रहा था। खैर, गधे को उठाया गया। इतने में यहां कुछ कच्चे-पक्के प्राचीन ढांचे नजर आए। पास ही में एक नखलिस्तान की सफाई की गयी तो खोजी दल की खुशी चार गुनी हो गयी। प्राचीन काल से सुरक्षित रखी ममीज का यहाँ विशाल समुद्र सा दिखायी पड़ा।

मिस्र के अधिकारियों का मानना है कि ये ममीज 330 ईसा पूर्व से 400 ईसवी के मध्य की हैं। अधिकांश में तो शराब के देवता 'बेस' के चिन्ह हैं और यहां बेस देवता का एक मंदिर भी मिला है। कई ममीज के मुखौटै सोने के हैं। ममीज के साथ मिट्टी के बरतन, तांबा, वाहन और अंतिम संस्कार में प्रयुक्त होने वाले अन्य सामान भी पाये गये हैं। सरकार ने समस्त ममीज को बहरिया व काहिरा के अजायबघरों में सुरक्षित रखने का निर्णय किया है।

कुछ भी कहें, लेकिन हजारों साल तक इन हजारों मानव शवों (ममी) का इस भांति रेत के बियावान में सुरक्षित रहना एक मिसाल है। इससे प्राचीन मिस्रवासियों की उन्नत प्रौद्योगिकी का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

सम्पादक, 'कृषि दस्तक'
डी-1/7, न्यू कोंडली
दिल्ली-96

जल प्रबन्धन देश की अनिवार्यता

✍ डॉ0 डी.डी. ओझा एवं इंजी. एस.बी. माथुर

जल विश्व का सबसे विलक्षण द्रव है। विश्व में उपलब्ध पदार्थों में मात्र जल ही एक ऐसा पदार्थ है जो तीन रूपों –ठोस (बर्फ), द्रव (पानी), एवं गैस (जल वाष्प) में पाया जाता है। जल को जीवन की संज्ञा भी दी गई है तथा इसके अभाव में किसी भी जीव का जीवित रह पाना असंभव है। हमारे वैदिक ग्रंथों में जल को अन्न की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ माना गया है। इस कारण विश्व की सम्पूर्ण प्राचीन एवं विकसित सभ्यताएँ नदियों के किनारे पर विकसित हुईं। भू–मण्डल में जल की उपलब्धता 1 अरब 46 करोड़ घन किलोमीटर है जिसमें 97.25 प्रतिशत जल सागरों/महासागरों में, 2 प्रतिशत बर्फ के रूप में उपलब्ध है। शेष जल जिसका प्रतिशत 0.75 है पीने योग्य है।

मानव अपने प्रादुर्भाव काल से ही जल का उपयोग विविध कार्यों हेतु करता रहा है। वस्तुतः विचार करने पर विदित होता है कि हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य जल पर आधारित है तथा हमें जन्म से मृत्युपर्यन्त जल की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश में जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि में होता है। आंकड़े दर्शाते हैं कि 85 से 90 प्रतिशत जल की खपत कृषिकार्यों में होती है। एक किलोग्राम गेहूँ उत्पादन करने के लिए 500 लीटर और एक किलो चावल उत्पादन के लिए 1900 लीटर जल की आवश्यकता होती है। उद्योगों के लिए भी जल परम आवश्यक है। बढ़ते हुए शहरीकरण तथा जनसंख्या–वृद्धि के कारण जल की माँग बढ़ रही है तथा मानवीय प्रक्रियाओं के कारण जल स्तर में निरन्तर गिरावट आ रही है।

संयुक्त राष्ट्र ने विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों से यह बताने को कहा था कि इक्कीसवीं शताब्दी में मानव जाति के सामने क्या गंभीर समस्याएं आएँगी। वर्ष 1998 में प्रकाशित इस प्रतिवेदन में मृदु जल की समस्या गंभीर चुनौतियों की सूची में दूसरे स्थान पर है, जबकि प्रथम स्थान पर निर्बाध गति से बढ़ती जनसंख्या है। पानी की समस्या विश्वव्यापी है। विकासशील देश ही नहीं वरन् विकसित देश भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं। विश्व के लगभग 1.2 अरब व्यक्ति स्वच्छ पीने योग्य पानी के अभाव में हैं, जबकि 2.6 अरब आबादी के बीच स्वच्छता का आभाव है। गंदे पानी के उपयोग के कारण प्रतिवर्ष 40 लाख बच्चे विभिन्न बीमारियों से मर जाते हैं। पिछले कई वर्षों से भारत, जहाँ सौ से अधिक स्वतंत्र नदियाँ तथा हजारों सहायक नदियाँ बहती हैं और अपेक्षाकृत अच्छी वर्षा होती है, पानी के संकट से जूझ रहा है। भू–जल के अत्यधिक दोहन ने इस संकट को और भी गहरा बना दिया है। यदि पानी के उपयोग और प्रबंध के मामले में हमने अपना रवैय्या नहीं बदला तो यह संकट आने वाले समय में विकराल रूप धारण कर लेगा।

हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 40 करोड़ हेक्टेयर मीटर वर्षा होती है। यदि इतने पानी को देश की सम्पूर्ण सतह पर फैलाया जाय तो पानी की गहाराई एक मीटर होगी। परन्तु यह वर्षा न तो समय की दृष्टि से और न ही स्थान की दृष्टि से ठीक से वितरित रहती है। भारत की भू सतह पर गिरने वाले 4000 घन किलोमीटर जल का आधे से दो–तिहाई तक हिस्सा बेकार बह जाता है। हमारें देश में जल संचयन की प्राचीन परम्परा रही है। विशेषकर, उत्तर–पूर्व के राज्यों में तथा राजस्थान में इसकी भूमिका अभी तक महत्वपूर्ण एवं प्रेरणास्पद बनी हुई है। राजस्थान में स्थापत्य कला के प्रेमी राजा–महाराजाओं तथा सेठ–साहूकारों ने अपने पूर्वजों की स्मृति में प्रदेश के विभिन्न भागों में कलात्मक बावड़ियों, तालाबों, कुओं, झालरों एवं कुंडों का निर्माण करवाया। अनेक वर्षों तक ये जल स्रोत जल की आपूर्ति करने में सक्षम रहे तथा इनके समुचित रख–रखाव की व्यवस्था भी थी किन्तु आधुनिक एवं अधिक सुविधाजनक तकनीक आने से प्रायः पारम्परिक जलस्रोतों की उपेक्षा हो रही है जो चिन्तनीय विषय है। हमें इस बात की ओर ध्यान देना होगा कि इन परम्परागत जल स्रोतों का रख–रखाव एवं जीर्णोद्धार किया जाय क्योंकि जल प्रबन्ध में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

राजस्थान के प्रवासी विशेषतः मरुस्थलीय क्षेत्रों के लोग, जल की समस्या से अभ्यस्त भी हैं क्योंकि उनको सूखा एवं अकाल से सामना करना पड़ता रहता है। यहां तक कि इन क्षेत्रों के पशु–पक्षी एवं वनस्पतियों ने भी अपने आपको पारितंत्र के अनुरूप ढाल लिया है। राजस्थान के किले न केवल पर्यावरण की दृष्टि से उपादेय हैं वरन् इनका जल–प्रबन्धन देखने योग्य है। मरुक्षेत्र के पुराने घरों में वर्षा जल संग्रहण की अद्भुत व्यवस्था व्याप्त है।

सदियों से यहाँ ऊपरी छत से वर्षा के जल को घरों में कुंड के रूप में संग्रह किया जाता रहा है तथा सफाई रखकर इसे संदूषण से मुक्त रखा जाता है। इन कुंडों द्वारा परिवार की जलापूर्ति भी होती है। वस्तुतः यह एक बहुत अच्छी व्यवस्था है जो अपनाने योग्य है। इससे वर्षा जल का अपव्यय रोका जा सकता है तथा भू जल की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। इससे भू जल पुनर्भरण की क्षमता में भी बढ़ोत्तरी होती है। हमारी सरकार भी इस कार्य में प्रोत्साहन दे रही है। तालाबों, बावडियों एवं कुंडों के निर्माण में स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान भी सराहनीय रहा है।

भू जल के अनियंत्रित एवं अत्यधिक दोहन के कारण आज राजस्थान सहित देश के अन्य प्रान्तों में जल की समस्या उग्र बन चुकी हैं जिसके परिणामस्वरूप जल स्तर में गिरावट आई है, फलतः कुएं एवं नलकूप सूख गए है, अथवा ढाचें को और अधिक गहरा करना पड़ रहा है जिसके कारण पंपिंग लागत में बढोत्तरी, सीवर प्रणाली से रिसाव एवं औद्योगिक तथा शहरी क्षेत्र में समुद्री जल और ताजे जल का सम्मिलन होता है।

भू जल विकास कार्यक्रम को सुनिश्चित बनाएं रखने तथा सुरक्षित जल प्रणाली उपलब्ध कराने के लिए यह आवश्यक है कि संसाधन के विकास को नियमित करने के साथ–साथ कृत्रिम पुनर्भरण के माध्यम से भूमिगत जल भण्डार का संयोजन किया जाए। केन्द्रीय भूमिगत जल मण्डल एवं राज्य के भू जल विभाग ने सुव्यवस्थित प्रणाली तथा तकनीकी को विकसित करने तथा इन उपायों की आर्थिक व्यवहार्यता का मूल्यांकन करने के लिए भू जल विभाग के संरक्षण तथा कृत्रिम पुनर्भरण सम्बन्धी अनेक अध्ययन किए हैं। राज्य के भू जल विभाग ने कई अधस्तल रोधिकाएं (Subsurface barriers) बनाकर भू जल के कृत्रिम पुनर्भरण द्वारा भू जल स्तर में वृद्धि प्रेक्षित की है तथा इस कार्य के उत्साहवर्द्धक परिणाम देखे गये हैं। भू जल विभाग द्वारा क्षेत्रों में परम्परागत जल स्रोतों की गुणवत्ता का अध्ययन किया गया है।

मानसून के दौरान परिस्रवण कुंड सतह के बहाव को रोकने में अत्यन्त प्रभावी होते हैं और निचले स्तर के पुर्नभरण के लिए उसी जल को सुरक्षित रखने में सहायक साबित हुए हैं। कृषि में सर्वाधिक जल के हो रहे अपव्यय को रोकने के लिए टपकन एवं फव्वारा सिंचाई का प्रयोग करने से जल की मात्रा में काफी बचत की जा सकती है। बढते हुए शहरीकरण एवं औद्योगिकरण के कारण अनेक नगरों एवं महानगरों के आसपास मलजल (सीवेज) तथा उद्योगों द्वारा निष्कासित प्रदूषित जल के निपटान की गंभीर समस्या है। देश के कई अनुसंधान संस्थानों ने इस समस्या पर कार्य करके मलजल से सब्जियों का उत्पादन एवं वृक्षारोपण का कार्य भी किया है। जल के पुनर्चक्रण की भी जल प्रबंधन में महती भूमिका है तथा इससे भी हरियाली लाई जा सकती है।

एक आकलन के अनुसार हमारे देश में 16.25 प्रतिशत घरेलू उपयोग में, 63 प्रतिशत सिंचाई में, 20 प्रतिशत उद्योग में, 25 प्रतिशत निर्माण कार्यों में तथा 10 प्रतिशत वाणिज्यिक कार्यों में जल का अपव्यय होता है। यदि हम अपने दैनिक जीवन की क्रियाओं की ओर दृष्टिपात करें तो हमें स्वतः ही विदित हो जायेगा कि आदतन हम प्रातःकाल से रात्रिपर्यन्त सैकड़ों लीटर जल का अपव्यय करते हैं तथा हमारे जीवन की शैली भी बदल चुकी है जो प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अधिक करती है। अतः हम मात्र अपनी आदतों में सुधर लाकर जल के अपव्यय को रोकने में सहायक हो सकते हैं। ऐसी आदतें हमारी दैनिक जीवनचर्या से ही सम्बन्धित हैं तथा इनमें मात्र अभ्यास द्वारा ही परिवर्तन लाकर हम जल की बचत कर सकते हैं।

भूमिगत जल संसाधन के संवर्धन के कार्यक्रम को उपभोक्ताओं की परस्पर भागीदारी के माध्यम से तेज करने की आवश्यकता है। मानसून के दौरान सतह पर फैले जल को रोकने तथा उसके बेहतर उपयोग के लिए आवश्यक साधन प्रयुक्त किए जाने के प्रयास किए जाने चाहिए। इसके लिए भवन निर्माण कानून में संशोधन किया जाना श्रेयस्कर कदम होगा। राजस्थान सरकार ने अभी हाल ही में 500 वर्गमीटर से बड़े भू–खण्ड़ों व सरकारी विभागों में वर्षा के संग्रहण की अनिवार्यता लागू कर बहुत ही सराहनीय कार्य किया है।

भूमिगत जल प्रणाली की सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि इसके अत्यधिक दोहन के विरुद्ध सुरक्षात्मक उपायों की पहल की जाए और इस महत्वपूर्ण प्रकृतिप्रदत्त संसाधन के समान वितरण को सुनिश्चित किया जाए। इस बहुमूल्य संसाधन के अत्यधिक उपयोग को नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त भू–जल अधिनियम बनाए जाएँ। संगोष्ठियां तथा श्रव्य–दृश्य माध्यमों के द्वारा जन मानस में जल चेतना जागृत की जाय। आज कल शिक्षा की महती आवश्यकता है। अतः सतत् विकास के लिए जल की समस्या को समझना होगा तथा न केवल सरकार वरन् प्रत्येक नागरिक को जल संरक्षण जैसे पुनीत कार्य में अपना योगदान देना होगा।

ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा, जोधपुर

कचरे का महत्व

✍ शिवेन्द्र कुमार पांडे

भारत में बड़े पैमाने पर नगरीकरण और उपभोक्ता संस्कृति (उपयोग करो, फेंक दो) के उद्भव के फलस्वरूप शहरी कचरा उत्पादन में वृद्धि भयानक रूप धारण करने लगी है, जिसे सँभालना दिन पर दिन दूभर होता जा रहा है। एक दृष्टि से, यह एकतरफा क्रिया हो गई है जिसके अन्तर्गत महानगरों से लेकर छोटे शहरों तक में, खाद्य पदार्थ एवं अन्य उपभोक्ता सामग्री बाहर से आयात की जाती है और प्रतिदिन का कचरा नगरपालिका व नगरनिगम द्वारा शहर के बाहर भूमिभरण के लिए फेंक दिया जाता है। लेकिन कचरा सफाई में लगे कर्मचारियों की अकार्यकुशलता और लापरवाही के कारण सभी भारतीय नगरों में गंदा/प्रदूषित कचरा सर्वत्र फैला दिखाई देता है। यह कचरा मानव स्वास्थ्य को हानि पहँचाने के अलावा दुर्गन्ध भी फैलाता है। फिर कुछ काल पश्चात् कचरा सड़ने पर उसमें से निकले तरल दूषित रसायन, भूमि में रिस कर भूजल भंडार को दूषित करने लगते हैं।

शहरों की आबादी निरंतर बढ़ते रहने के कारण, जहाँ कचरे की मात्रा में प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, वहीं नगर–पलिकाओं/निगमों द्वारा वर्षों पूर्व स्थापित मल–जल निकासी व्यवस्था चरमराने लगी है। इसके फलस्वरूप कई बीमारियाँ बढ़ने लगी हैं। इसलिए इन समस्याओं का पर्यावरण–संगत समाधान ढूँढ़ निकालना एक महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। इसके अलावा, आर्थिक विकास के साथ–साथ औद्योगिक कचरा (अधिक प्रदूषित) उत्पादन भी बढ़ता जा रहा है, जिसे संसाधित कर, उसमें विद्यमान विषैले प्रदूषक तत्वों को पर्यावरण अनुकूलन मापदंडों के अनुरूप निम्नतर स्तर पर लाकर निपटान के लिए प्रौद्योगिकी विकसित करना भी वर्तमान में एक नियमित प्रक्रिया बन चुकी है।

कचरा निपटान की समस्या, केवल भारत जैसे विकासशील देश की ही समस्या नहीं है, विश्व के विकसित देश भी इसका पर्यावरण–संगत समाधान ढूढ़ने का प्रयत्न गम्भीरता से करने में लगे हुए हैं। अंतर है तो केवल उनके दृष्टिकोण में कि यह निपटान किस रूप में किया जाये। विकसित देशों में बिजली पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, उनकी मुख्य समस्या है औद्योगिकरण के फलस्वरूप बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम। इसलिए उनका प्रथम लक्ष्य है प्रौद्योगिकी विकास द्वारा कचरे की मात्रा कम करते हुए, उनके कुशल निपटान की विधि खोजते रहना, क्योंकि पर्यावरण सुरक्षा के प्रति जागरूकता के साथ–साथ इन समृद्धि देशों में नित नए व कठोर कानून पर्यावरण संरक्षण के लिए पारित हो रहे हैं। इसके विपरीत, भारत में बिजली की भारी कमी है, इसलिए सुरक्षित कचरा निपटान कार्यवाही से जूझते हुए कचरे के माध्यम से बिजली उत्पादन को प्राथमिकता मिली है। अब चूँकि, सार्वभौम (ग्लोबल) पर्यावरण के अन्तर्गत, इस प्रकार के दूषित कचरे को बिना प्रदूषण व पारिस्थितिकी संतुलन अस्तव्यस्त किए ग्रहण करने की क्षमता सीमित है, इसलिए पर्यावरण संरक्षण–प्रतिबद्धता में जागरूकता बढ़ाने से विश्व के सभी देशों में कचरा निर्मूलन के लिए कुशल–सुरक्षित–वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के विकास की ओर ध्याान दिया जाने लगा है। हाल के वर्षों में इसके सुरक्षित निपटान के लिए प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है, जिनके माध्यम से, न केवल कचरा प्रजनन की मात्रा कम करना व उनकी विषाक्त गुणता को पर्यावरण धारणयोग्य स्तर पर लाकर निपटान संभव होने लगा है, बल्कि कचरे को ऊर्जा स्रोत के रूप में उपयोग कर, विकेन्द्रीय स्तर पर बिजली उत्पादन भी किया जाने लगा है।

भारत सरकार द्वारा इस क्षेत्र में प्रौद्योगिकी विकास कार्यक्रम जून 1995 से आरम्भ किए गए हैं। वर्तमान में इसके लिए बायोमिथेनाइजेशन, पैलिटाइजेशन, गैसीकरण, पाइरोलेसिस, भस्मीकरण, स्वास्थ्यकर भूमिभरण, आदि जैसी तकनीकें, एकल व मिलेजुले रूप में अपनाई जा रही हैं और इनके माध्यम से भारत में बिजली उत्पादन भी लेने लगा है।

केन्द्रीय सरकार के 'अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय' द्वारा वर्ष 1999–2000 में एक अनुमान लगाया गया है कि भारत में शहरी क्षेत्रों के घरों और व्यावसायिक कार्यालयों से प्रति वर्ष 3 करोड़ टन ठोस अपशिष्ट और 440 करोड़ घन मीटर द्रव अपशिष्ट

निकलता है। इसके अलावा औद्योगिक प्रतिष्ठानों में भी अपशिष्ट उत्पन्न होता है। फिर इन अपशिष्टों की मात्रा में प्रति वर्ष वृद्धि होती रहती है। इसी आकलन के अंतर्गत, भारत में अपशिष्ट उपलब्धता और वर्तमान तकनीकी ज्ञान के आधार पर यह अनुमान भी लगाया गया है कि इस स्रोत से 1700 मेगावाट बिजली उत्पादन संभव है (सारणी–1)। अब चूँकि यह प्रौद्योगिकी आधारित प्रक्रिया का परिणाम है, इसलिए इस क्षेत्र में प्रौद्योगिकी विकास के साथ, अपशिष्टों से बिजली उत्पादन वृद्धि की प्रबल संभावना दिखाई पड़ती है।

सारणी –1
शहरी व औद्योगिक अपशिष्टों की बिजली उत्पादन क्षमता

क्र.सं.	स्रोत	प्रारूप	बिजली (मेगावाट)	
1.	शहरी (नगर पालिका व नगर निगम)	ठोस	900	1000
		द्रव	100	
2.	औद्योगिक	खाद्य तथा फल	40	700
		लुग्दी एवं कागज डेयरी, टेनरी, आदि	140	
		चीनी (प्रेसमड)	220	
		डिस्टिलरी	300	
		कुल	1700	

सभी प्रकार के अपशिष्टों का उपयोग कर ऊर्जा प्राप्ति की दिशा में वर्ष 1999–2000 को भारत में एक निर्णायक उपलब्धि वर्ष माना जा सकता है। इसके पूर्व, 1996–97 से 1998–99 तक विभिन्न प्रौद्योगिकिओं का उपयोग करते हुए मात्र 2 मेगावाट बिजली उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष स्थापित की जा सकी थी। लेकिन वर्ष 1999–2000 में इन परियोजनाओं को गति मिलने के कारण 8.4 मेगावाट बिजली उत्पादन संयंत्र स्थापित करना संभव हुआ है (सारणी–2)।

सारणी – 2
अपशिष्टों से ऊर्जा परियोजनाओं की वर्ष–वार स्थापना प्रगति

वर्ष	बिजली उत्पादन (मेगावाट)
1996–97	2.75
1997–98	2.00
1998–99	2.00
1999–2000	8.40
कुल	15.15

वर्ष 1900–2000 की उपलब्धि के बावजूद, उल्लिखित सारणियों (1 और 2) की विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि कचरा निपटान के क्षेत्र में भारतीय प्रयास अभी प्रारंभिक चरण में हैं और अभी बहुत कुछ करना शेष है।

औद्योगिक बहिःस्राव (Effluent) के निपटान में मुख्यतः 'जल प्रदूषण नियंत्रण' को प्राथमिकता दी जाती है और इसके लिए भारत सारकार ने कई नियम भी बनाए हैं, जिनके अंतर्गत प्रत्येक औद्योगिक इकाई को अपने निष्कासन योग्य बहिःस्राव का उपचार निपटान के पूर्व करना अनिवार्य है, ताकि भूजल प्रदूषण को रोका जा सके। लेकिन यह कार्य खर्चीला होने से कई बार भारतीय कारखानों के मालिक इन नियमों का उलंघन करते देखे जाते हैं।

औद्योगिक बहिःस्राव उपचार खर्च को कम करने के उद्देश्य से भारत के औद्योगिक क्षेत्रों में, जहाँ कई प्रकार की उत्पादन इकाइयां कार्यरत हों, 'सामूहिक बहिःस्राव अभिक्रिया संयंत्र' स्थापित किए जा रहे हैं, ताकि उस क्षेत्र में कार्यरत इकाइयों को एकल रूप में कम आर्थिक बोझ वहन करना पड़े। लेकिन इस प्रकार की सामूहिक परियोजना में शामिल प्रत्येक इकाई के लिए यह अनिवार्य होता है कि अपने बहिःस्राव को, सामूहिक संयंत्र प्रक्रिया से गुजरने के पूर्व, एक नियत स्तर तक संसाधित करके ही उनका निष्कासन करे। सामूहिक बहिःस्राव अभिक्रिया संयंत्र के कुशल संचालक के लिए इस प्रकार का पूर्व–संसाधन तकनीकी दृष्टि से एक आवश्यक क्रिया है, क्योंकि उससे जुड़ी इकाइयां भिन्न–भिन्न प्रकार के उत्पादनों में संलग्न होती हैं और उनका बहिःस्राव भी रासायनिक भिन्नता लिए होता है।

भारत में इस प्रकार का सबसे बड़ा संयंत्र 'वापी' (गुजरात) में कार्यरत है, जिसमें लगभग 800 असमान औद्योगिक (रंजक, रसायन, दवाई, उर्वरक, आदि निर्माण करने वाली) इकाइयों के बहिःस्राव को 'गुजरात प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड' के मापदण्डों के अनुरूप संसाधित किया जा रहा है। इस प्रकार के कई संयंत्र चमड़ा, कागज, पेन्ट, केमिकल, आदि उत्पादक उद्योग के बहिःस्राव संसाधन के लिए भारत में स्थापित किए जा चुके हैं।

भारत में इस प्रकार के सामूहिक संयंत्रों के डिजाइन, निर्माण व संचालन विशेषज्ञों की कोई कमी नहीं है। कमी है, तो केवल थोड़ा खर्च बचाने के लिए पर्यावरण संरक्षण के प्रतिबद्धता न होना व पर्यावरण कानूनों को दृढ़ता से न लागू कर पाना।

लेकिन भारत में पर्यावरण संरक्षण व प्रदूषण नियंत्रण परियोजनाओं को सफल बनाने में सबसे बड़ी बाधा जो देखने में आती है, वह है– 'ठोस अपशिष्टों के निपटान प्रबंधन का घटिया स्तर'। इसे समझने के लिए, आइए देखते हैं कि कुछ प्रमुख भारतीय नगरों से औसतन कितना कचरा उत्पादन व निपटान होता है (सारणी–3) और इस कचरे का गुण कैसा होता है।

सारणी – 3
भारतीय नगरों में प्रति दिन कचरा उत्पादन एवं निपटान आँकड़े (मैट्रिक टन)

क्र.सं.	नगर	उत्पादन	क्र.सं.	नगर	उत्पादन	टिप्पणी
1	पाण्डीचेरी	270	5	अहमदाबाद	1600	भारत में इनका 80
2	ग्वालियर	360	6	चेन्नई	3500	प्रतिशत भाग
3	भोपाल	500	7	कलकत्ता	3500	इकठ्ठा ही नहीं
4	बरेली	500	8	दिल्ली	3800	किया जाता है।
			9	मुम्बई	5800	

यद्यपि जापान और अमेरिका जैसे विकसित देशों में औसतन प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से क्रमशः 1 व 2 किलोग्राम और भारत में 400–500 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन शहरी कचरा उत्पादन होता है, लेकिन भारत में अधिक जनसंख्या के कारण शहरी कचरे की कुल मात्रा बहुत अधिक होती है। इस अंतर के अलावा विकसित देशों के कचरे में मात्र 25 प्रतिशत भाग जैव विघटनीय होता है, तो भारतीय कचरे में 80 प्रतिशत। जिसमें 50–55 प्रतिशत आर्द्रता, 35–45 प्रतिशत बायोमास पदार्थ (फल, फूल, सब्जी, पत्ते, खाद्य सामग्री, आदि) और 8–15 प्रतिशत अजैव पदार्थ (प्लास्टिक, काँच, पत्थर, धातु, आदि) होते हैं। अर्थात् भारतीय शहरी कचरे का मूल स्वरूप (अधिकतर भाग) मुलायम–गूदेदार व निम्न कैलोरी मान (800–1400) लिए होता है।

भारतीय शहरी कचरे के उल्लिखित गुणों को देखते हुए, उसका उपयोग बिजली उत्पादन करने के बजाए उसे कार्बनिक खाद में रूपान्तरित करना ज्यादा आकर्षक प्रतीत होता है। कुछ भारतीय निजी संस्थानों ने इस दिशा में कार्य भी आरम्भ कर दिया है और वे भारी सफलता का प्रदर्शन कर रहे हैं।

मुम्बई के प्रतिष्ठित औद्योगिक प्रतिष्ठान 'एक्सल इन्डस्ट्रीज लिमिटेड' ने शहरी कचरे से कार्बनिक खाद निर्माण के लिए अभूतपूर्व प्रौद्योगिकी का विकास किया है जिसे अपनाने के लिए 12 राज्यों की नगरपालिकाएं रुचि दिखा रही हैं।

इस प्रकार के शहरी कचरे को संसाधित करने के लिए हमारे पास दो विकल्प हैं –

1. सूक्ष्मजीवाणुओं की सक्रियता बढ़ा का कार्बनिक खाद निर्माण करें और
2. केंचुए उत्पादन कर भूमि सुधार द्वारा उर्वरता वृद्धि करें

यह दूसरी विधि मुख्यतः सब्जी बाजार के कचरे में कारगर होती है और इसके माध्यम से भूमिसुधार में दो वर्ष तक का समय लग जाता है। इसके अलावा केंचुआ प्रजनन क्रिया सक्रिय बनाए रखने के लिए छांव तले कचरा रखना आवश्यक है क्योंकि केंचुए धूप नहीं सहन कर सकते हैं और शहरों में जहां कहीं कचरा फेंका जाता है, वहाँ पेंड़ की छांव उपलब्ध नहीं होती है।

इन तथ्यों से अवगत एक्सल ने व्यवहारिकता अपनाते हुए कार्बनिक खाद निर्माण के लिए प्रथम विकल्प को चुना है। एक्सल द्वारा विकसित शहरी कचरा संसाधन की सम्पूर्ण प्रक्रिया तीन चरणों में की जाती है–

1. शहर के जिस किसी भाग में कचरा इकठ्ठा हो, उसके ऊपर 'सेलोरिच मिश्रण' का छिड़काव। इस छिड़काव के एक घंटे के भीतर सूक्ष्मजीवाणु सक्रिय हो कर कचरे की दुर्गन्ध समाप्त कर देते हैं। फिर सूक्ष्मजीवाणुओं की क्रिया से कचरे में उष्माक्षेपी ताप 70° सेन्टिग्रेड तक बढ़ाने पर सभी प्रकार की बीमारी फैलाने वाले कीटाणुओं का नाश हो जाता है और मक्खी/मच्छर की समस्या से भी छुटकारा प्राप्त हो जाता है। इस क्रिया को तीव्रता प्रदान करने के लिए अधिक सांद्रण युक्त छिड़काव अपना कर जैव विघटन प्रक्रिया कुछ सप्ताहों में पूरी हो जाती है। अब इस उपचारित कचरे को ट्रकों में भरकर 'कचरा अभिक्रिया संयंत्र' तक पहुँचाया जाता है। दुर्गन्धरहित कचरा होने के करण नगरवासियों को भान भी नहीं होता कि कचरे से भरा ट्रक उनके मोहल्ले से गुजर रहा है।
2. अभिक्रिया संयंत्र स्थल पर कचरा पहुँचने के पश्चात, रद्दी इकट्ठा करने वाले उसमें से अजैव पदार्थों (प्लास्टिक, काँच, धातु, इत्यादि) को छाँट कर पुनः चक्रित करने के लिए ले जाते हैं। इस प्रकार के कचरे से माल छाँटने में उन्हें एक स्वस्थ दुर्गन्धरहित पर्यावरण उपलब्ध होने के साथ–साथ बीमारियों का भी भय नहीं रहता।
3. इतना कुछ करने के पश्चात् बचे हुए कचरे को अभिक्रिया संयंत्र में संसाधित कर कार्बनिक खाद या मृदा सुधारक में परिवर्तित

(शेष पृष्ठ 24 पर)

स्पांडिलाइटिस

✍ प्रेमा राय

जहां आधुनिक चिकित्सा विज्ञान आज कई असाध्य रोगों का सफल इलाज करनें में सक्षम है, वहीं हमारी आधुनिक जीवन–शैली हमारी सेहत को नुकसान पहुंचाने में काफी हद तक जिम्मेदार रही है। कुर्सी–मेज पर काम करने वालों, कंधे से टेलीफोन लगाए बात करने वालों या टेलीफोन आपरेटरों या फिर कंप्यूटर के स्क्रीन पर देर तक आंखे गड़ाए रखने वालों को बाँहों, छाती या गर्दन या शरीर के दूसरे हिस्सों में दर्द की शिकायत रहती है। कभी–कभी तो दर्द इतना बढ़ जाता है कि रोजमर्रा के काम करना मुश्किल हो जाता है। विभिन्न कार्यालयों में काम करने वालों में यह शिकयत आम होती जा रही है। चिकित्सा विज्ञान की भाषा में इसे सरवाइकल स्पांडिलाइटिस कहते हैं। वैसे आम तौर पर इस बीमारी को लोग स्पांडिलाइटिस के नाम से जानते हैं।

गर्दन में दर्द या गर्दन का जकड़ना सामान्यतः सिर दर्द और भारीपन भी लाता है। इससे एक या दोनों बाहों में ऐसा दर्द लगातार होता रहता है, जिससे हल्का काम करना भी मुश्किल हो जाता है। बाहों के इस दर्द से वे इतने असहाय हो जाते हैं कि उन्हें अपनी उंगलियों से कलम पकड़ने या अपने चेक पर दस्तखत करने में भी परेशानी होने लगती है। इंद्रप्रस्थ अपोलो के होलिस्टिक मेडिसिन के विभागाध्यक्ष डॉ0 आर.के. तुली बताते हैं कि यह दर्द सिर, गर्दन, चेहरे या छाती के किसी भी हिस्से में हो सकता है। जब इन हड्डियों में क्षय होने लगे, या हड्डी बढ़ जाए तो गर्दन में दर्द होने, चक्कर आने या बाजू और कंधे में दर्द होने की शिकायत बढ़ जाती है। छाती में दर्द उठता है, जिसे प्रायः एंजाइना या दिल का दौरा समझने की भूल कर ली जाती है। एक तिहाई मामलों में ही यह शिकायत सही साबित होती है। इतने ही मामलों में इसका संबंध स्पांडिलाइटिस और पेट की गड़बड़ी से भी होता है। स्पांडिलाइटिस की शिकायत शहरी आबादी में अधिक है। विशेष कर दफ्तर में काम करने वाले 80 प्रतिशत लोगों पर इसका कुछ न कुछ असर जरूर होता है। स्पांडिलाइटिस होने का प्रमुख कारण हमारी गलत जीवन शैली है, जिसमें उठने–बैठने, चलने–फिरने तथा सोने की दोषपूर्ण आदतें, विभिन्न किस्म के दबाव तथा व्यायाम करने की आदत का न होना है। अच्छे–से–अच्छे इलाज के बावजूद बीमारी धीरे–धीरे बढ़ती ही जाती है और वे तमाम दर्दनिवारक, मांसपेशियों को आराम देने वाली दवाएं, ट्रांक्वेलाइजर तथा फिजियोथेरिपी बेकार सिद्ध होती है, जबकि इसके सफल इलाज के लिए इसकी जड़ को पकड़ने की जरूरत होती है। फिलहाल सर्जरी के जरिए स्पांडिलाइटिस का जो इलाज संभव है, उसकी खामियां भी हैं, जिसमें आमतौर पर लोग सर्जरी कराने में हिचकते हैं।

डॉ0 तुली ने होलिस्टिक चिकित्सा से कम समय और कम खर्चे में सरल और प्राकृतिक तरीके से इलाज कर दिखाया। डॉ0 अहलूवालिया एलोपैथिक न्यूरोसर्जरी के विकल्प के रूप में एक्यूपंचर तथ अन्य होलिस्टिक पद्धतियों के प्रचार–प्रसार पर जोर देते हैं। डॉ0 तुली बताते हैं कि एक्यूपंचर आधारित होलिस्टिक चिकित्सा पद्धति से उस बंबू स्पाइन या एंकीलूजिंग स्पांडिलाइटिस का भी इलाज संभव है, जो अधिक पीड़ादायक है और असाध्य माना जाता है।

चिकित्सा के क्षेत्र में नीम–हकीमों की भरमार को देखते हुए डॉ0 तुली स्पांडिलाइटिस के किसी भी स्तर के मर्ज के लिए इस पद्धति में विशेष प्रशिक्षणप्राप्त डॉक्टरों से इलाज कराने पर जोर देते हैं, क्योंकि नीम–हकीमों से इलाज कराना बीमारी दूर भगाने के बजाए मरीजों में एड्स और हिपैटाइटिस जैसे रोगों तथा कई तरह की जटिल समस्याओं को निमंत्रण देना हैं।

यह भी देखा गया हैं कि स्पांडिलाइटिस के मरीज जब डॉक्टर के पास जाते हैं, तो अकसर उन्हें तकलीफ से राहत तो मिल जाती है, लेकिन रोग से छुटकारा नहीं मिलता। डॉक्टर मरीज को फिजियोथिरेपिस्ट के पास भेज देता है। शिकायत न तो दवा से दूर होती है न ही सेंक और न ही सर्जरी से। यह इलाज अस्थायी साबित होता है। कभी–कभी तो दर्दनिवारक दवाओं से एसिडिटी बढ़ने और मानसिक–शारीरिक कमजोरी बढ़ जाने की शिकायत हो

जाती है। स्पांडिलाइटिस के इलाज में होलिस्टिक चिकित्सा और एक्यूपंचर का इस्तेमाल उपयोगी पाया गया है। इलाज की अवधि के बारे में पूछे जाने पर तुली ने कहा कि यह बीमारी पर निर्भर है। इस मामले में हर मरीज का अनुभव अलग–अलग होता है। वैसे सामान्यतः मरीज को चार से छह सप्ताह में सुधार नजर आने लगता है। मरीज को वार्ड में दाखिला नहीं लेना पड़ता है। आउटपेशेंट की तरह आना पड़ता है। सर्जरी के मुकाबले सिर्फ 20 प्रतिशत लागत आती है। इलाज के बाद फिर दवा की जरूरत नहीं पड़ती। स्वतः अभ्यास और संयमित जीवन–शैली से रोग फिर से उभरने की आंशका नहीं रहती । सावधानी यह बरतनी चाहिए कि लोग गलत सलाह से बचें। इसके लिए आगाह करते हुए डॉ0 तुली बताते हैं कि वह स्वयं एलोपैथी के विशेषज्ञ हैं लेकिन इस पद्धति की प्रभावोत्पादकता के कारण ही इसकी ओर आकृष्ट हुए और होलिस्टिक एप्रोच का ही यह परिणाम है कि नियमित योगाभ्यास करने वाले और पेशे से डॉक्टर भी अपनी शिकायत दूर करने के लिए इलाज की इस पद्धति को अपना रहे हैं।

स्पांडिलाइटिस के इलाज में एक्यूपंचर पद्धति के तहत विशेष किस्म की बाल जितनी पतली सुइयों का इस्तेमाल होता है। ये सूइयां उन खास जगहों पर लगाई जाती हैं, जिन्हें एक्यूपंचर प्वांइट कहते हैं, ताकि शरीर में 'ची' के प्रभाव को नियंत्रित किया जा सके। विभिन्न आकारों, रूपों और मोटाई वाली सूइयां बाजार में उपलब्ध हैं। स्पांडिलाइटिस के इलाज के दौरान एक्यूपंचर प्वाइंट को सक्रिय करने के लिए एक खास किस्म की घास का इस्तेमाल करते हैं, जिसे आर्टिमेसिया वल्गेरिस कहते हैं। इस प्रक्रिया में इस घास की सूखी पत्तियों को जलाते हैं। एक्यूपंचर पद्धति की इस पारंपरिक पूरक प्रक्रिया को मोक्सीबशन कहते हैं। इलाज के दौरान अपनायी जाने वाली अन्य पारंपरिक या आधुनिक तकनीकों में इलेक्ट्रोस्टीमुलेशन, टेन्स, लेसर, प्लम–ब्लॉसम, टैपिंग, वैक्यूम कपिंग, मैगनेटोथेरेपी, रिफ्लेक्सोलॉजी एक्यूप्रेशर, शियात्सु, इम्बेडिंग, सू–जोक आदि हैं।

डॉ0 तुली बताते हैं कि चिकित्सा की अन्य विधियों की तरह ही एक्यूपंचर की भी अंतर्निहित सीमाएं हैं। इसीलिए आपात स्थिति में मरीज को तत्काल जीवनदायी सर्जरी की जरूरत है, तो वैसी आवश्यक चिकित्सा उपलब्ध कराना जरूरी हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में एक्यूपंचर आधुनिक चिकित्सा के बाद बीमारी के अंतिम नतीजे में अपेक्षित सुधार को लाने तथा बीमारी के बचे हुए तथा क्रानिक हिस्से का इलाज करने में सहायक सिद्व होता है।

'अमर उजाला' से साभार

(पृष्ठ 22 का शेष भाग)

किया जाता है।

लेकिन वर्तमान आर्थिक परिदृश्य के अंतर्गत कचरा संसाधित कर ऊर्जा प्राप्त करने का खर्च, परंपरागत व्यवसायिक स्रोतों से ऊर्जा प्राप्ति खर्च से कहीं ज्यादा होता है–

1. कचरे से बिजली उत्पादन का खर्च 8 करोड़ रुपए प्रति मेगावाट पड़ता है, तो दूसरी ओर एक परंपरागत थर्मल संयंत्र से बिजली उत्पादन में 4 करोड़ रुपये प्रति मेगावाट खर्च आता है।
2. कचरा अभिक्रिया संयंत्र स्थापना में 2.5 से 6 करोड़ रुपया पूँजी निवेश (आकार के अनुसार) होता है। इसलिए इनके माध्यम से प्राप्त खाद का मूल्य रासायनिक खाद से कहीं ज्यादा होता है।
3. इसी प्रकार औद्योगिक बहिःस्राव से जल प्रदूषण निम्न करने का खर्च भी बहुत अधिक होता है। एन.टी.पी.सी. ने अपने तालचिर संयंत्र (उड़ीसा) में 12 करोड़ रुपए खर्च कर एक 'जीरो डिस्चार्ज' प्लान्ट स्थापित किया है ताकि ताप संयंत्र में उपयोग किए गए पनी को कृषि/पीने योग्य स्वच्छ बनाकर ब्राह्मणी नदी में प्रवाहित किया जा सके।

यद्यपि कचरा संसाधन तकनीकें तात्कालिक आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं हैं, लेकिन इनके दूरगामी अप्रत्यक्ष लाभों को देखते हुए भारत सरकार इनकी स्थापना को बढ़ावा देने के लिए अनुदान भी देती है।

छवि निकुंज, बांस बंगलो कम्पाउन्ड
चौथी क्रासिंग, रांची रोड, पुरुलिया
(पं. बंगाल), पिन –723101

फूलोपचार: नई दिशा

✍ रामचन्द्र मिश्र

वृक्षों पर लदे हुए लहलहाते–इठलाते फूलों में जब हम प्रकृति की सजीव मुस्कान देखते हैं तो मन सम्मोहित हो जाता है और शरीर की पीड़ा तथा मन की व्यथा उन क्षणों भूल जाती है। शाल्मली एवं टेंसू की शाखों पर सुर्ख अंगार जैसी लाली, पारिजात तथा मौलश्री से उत्सर्जित मादक सुगंध का हवा में हौले–हौले प्रवेश, और हरसिंगार द्वारा बिछाई गई गंधमान चादर से भला कौन आह्लादित नहीं होता ? चाहे देवार्चना हो या कामायनी की रूपसज्जा, फूलों के साथ होने के मनोवैज्ञानिक प्रभाव का अश्वयमेव अनुभव होता है। प्राचीन विज्ञानियों ने सुवासित कमनीय पुष्पों में औषधीय गुणों को पहचाना था और साथ ही उनमें सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की अनुभूति भी पाई थी। उस समय न तो विज्ञान और न ही लेखन एकांगी था। आखिर हम प्रथमतः मानव हैं और तत्पश्चात् विज्ञानी हो सकते हैं। यहाँ इन उल्लेखों का मंतव्य यह है कि फूल की उपर्युक्त भूमिकाएँ प्रथम स्थान पर आती हैं और विज्ञानियों ने फूल के जिन भौतिक उपयोगों को अब सिद्ध किया है और जिनका वर्णन इस लेख में किया जाएगा, वे द्वितीयक हैं।

आज के जीवन में भी पूजा से लेकर भोजन, औषधि या श्रृंगार में यानी धर्म, अर्थ व काम में फूलों की एक विशिष्ट भूमिका होते हुए भी हम फूलों की मोहक मुस्कान के कायल हैं। प्रथम कोटि की राष्ट्रीय चेतना के महाकवि माखन लाल चतुर्वेदी ने फूलों की अभिलाषा को अभिव्यक्ति देकर फूलों को एक महान 'आत्मा' प्रदान की – ......'मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक/मातृभूमि को शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।' फूलों पर इस व्यापक दृष्टिकोण को प्राप्त करते हुए आइए हम 'फूलोपचार' की एक नई दिशा को पहचानें।

प्राचीनकाल से ही फूलों से सुगंधित एवं सुमधुर द्रव्यों के निर्माण की कला प्रचलित रही है। कालान्तर में आधुनिक विज्ञान द्वारा फूलों से विविध ऐरोमेटिक यौगिकों का निष्कर्षण संभव हुआ। यह कि कभी फूल हमारे शरीर के लिए आंतरिक शक्ति का स्रोत भी बनेंगे, हाल में साबित हुआ है। ज्ञात हुआ है कि फूलों से ऊर्जायुक्त स्पंदन का विकिरण होता है जिनमें कई भावनात्मक समस्याओं जैसे उन्माद, विषाद, सदमा, भय चिन्ता, विश्वास में ह्रास, बेचैनी आदि का शमन एक विशिष्ट 'फूलोपचार' क्रिया द्वारा हो सकता है। यह रोमांचक प्रयोग है जिसके देश–विदेश में उपयोग होने की संभावना बढ़ी है। तथाकथित फूलोपचार (Flower remedy) वस्तुतः प्रथम विश्व युद्ध के बाद एक अंग्रेज चिकित्सक डॉ0 एडवर्ड बैच द्वारा खोजी गई थी जो विकसित होकर अब भी बैच फूलोपचार के रूप में जानी जाती है। इस विधि में सूर्य की उपस्थिति में क्वथन द्वारा चुने हुए प्रातःकालीन फूलों के विशिष्ट सत्व बनाए जाते हैं जिनमें नैसर्गिक स्पंदनीय एवं सार ईथरीय ऊर्जा होती है। इन्ही सत्वों एवं उनके सम्मिश्रणों में विविध रोगहर क्षमताएँ पाई गई हैं।

विशिष्ट सत्वों की चार–पांच बूंदें दिन में कई बार सीधे जीभ पर डाली जाती हैं जिनका मन पर भावात्मक प्रभाव पड़ता है। यह मूलतः ऊर्जोपचार है और विभिन्न स्तरों पर विविध रूप से प्रभावित करता है। गत दशक में फूलोपचार पर आधिक प्रयोग हुए हैं जिनके अंतर्गत परंपरागत फूलों के अलावा अनेक जंगली और पहाड़ी फूलों के ईथरीय सत्व तैयार किए गए हैं। कुछ भावात्मक रोगों के अलावा प्रत्यूर्जता (एलर्जी), अम्लीयता, रक्तचाप, भ्रम, मासिक धर्म संबंधी अनियमितताएं, रजोनिवृत्ति–पूर्व क्लेश,वृक्कशोथ आदि के उपचार में यह पद्धति प्रभावी पाई गई है। फूलोपचार का प्रबल एवं शीघ्रगामी प्रभाव पाया गया जो एक आशातीत उपलब्धि है। ये प्रभाव बिना किसी दुष्प्रभाव के स्वयं संतुलित होते हैं और सभी उम्र के स्त्री–पुरुषों हेतु निरापद पाए गए हैं। इस विधि के संबंध में प्रयोग अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया,फ्रांस, भारत और नीदरलैंड में किए गए हैं। वस्तुतः भारत में पुष्प–प्रजातियों की विशाल धरोहर होने से फूलोपचार की व्यावहारिक संभावनाएं उत्साहजनक हो सकती हैं। साथ ही फूलोपचार को भारतीय चिकित्सा प्रणालियों से जोड़ने की अच्छी संभावना है। फिलहाल इसकी विस्तृत वैज्ञानिक जानकारी तथा तकनीकी विवरण संबंधित प्रयोगशालाओं एवं चिकित्सकों तक निहित हैं और व्यापक रूप से अनुपलब्ध होने से इसका प्रचार आगे

नहीं बढ़ पाया है।

कथित फूलोपचार हेतु विभिन्न भारतीय पुष्पों के गुण और रोगहर प्रभाव निम्नलिखित हैं–

अशोक : यह नाम लेते ही रक्तवर्णीय पुष्प–गुच्छों से लदे कमनीय पल्लवयुक्त उस वृक्ष का चित्र आंखों के आगे साकार हो जाता है जिसकी छत्र–छाया में माता सीता ने लंका–प्रवास के समय अपने शोक का समय काटा था। तभी से आवेग–आनन्द का प्रतीक अशोक शोक का सहभागी माना जाने लगा। प्राचीन साहित्य में अशोक का नाम वसंत ऋतु और वसंत के देवता कामदेव से जोड़ा गया है। 'अशोक–षष्ठी' के दिन पुत्रवती स्त्रियां अशोक की कलियों से युक्त जल को पीती व फूल खाती हैं। अशोक के वैद्यकीय गुणों के कारण इसको महत्वपूर्ण माना जाता है।

अशोक के साथ मानव के संबंध जितने अंतरंग हैं उतना ही ज्यादा लाभदायक है अशोक द्वारा फूलोपचार। मानसिक अभिघात, उदासी या व्यथा, मानसिक असमन्वय, अनुताप, सामान्य अस्वस्थता, विविक्ति, आक्रांति आदि के शमन की क्षमता अशोक के फूलों में पायी गयी है। इसके सत्व के प्रभाव से मन में आह्लाद का प्रवाह होता है, सुखाभास एवं शांति का अनुभव होता है।

नीम : नीम यानी निम्ब, 'पिचुमर्ट', 'पिचमंद', 'पारिभद्र'.... आदि का नाम कैकेयी रानी के साथ वैसे ही जुड़ा है जैसे सीता के साथ अशोक। कड़वाहट ही जिसकी शक्ति है उसके लिए कहा जाता है कि 'नीम का चढ़ा' कड़वाहट का भी अतिक्रमण। नीम के मोती जैसे नन्हें फूलों के गुच्छे वृक्ष को दूधिया श्वेत परिधान प्रदान कर खिली हुई कसैली किन्तु मीठी महक हवा में घोल देते हैं। कहां है नीम के तुल्य सौरभ जिसका रसास्वादन प्रेम की तरह की मधुरता देता हो? आम–तुलसी की तरह आम–नीम के विवाह की प्रथानुसार 'युगादि' पर्व पर नीम के फूल, इमली व गुड़ से 'षट्रस' पेय बनाया जाता था जिसमें नीम की कड़वाहट भी प्रिय लगती थी। वायुशोधन, कीट–नाशक, रक्त, चर्म–शोधन आदि गुणों से युक्त भारतीय धरती का सर्वाधिक पहचाना वृक्ष है नीम। तोते के झुंड नीम के फूलों की विशिष्ट महक से सम्मोहित हो खासकर गर्मियों में नीम पर अपना घोसला बनातें हैं तो दूसरी ओर नीम से फूलोपचार के क्या लाभ हैं, इसे जानें।

नीम का सत्व हृदय को सुख प्रदान करने वाला 'एसंस ऑफ हार्ट' कहलाता है। इसके द्वारा विशेषतः प्रमस्तिष्कीय बुद्धिजीवियों में परानुभूति एवं अनुराग पैदा होता है। सामान्यतः के द्वारा फूलोपचार द्वारा प्रेममय व्यवहार, सहजबुद्धि, क्षमाशीलता और समझदारी की अभिवृत्ति पैदा होती है।

कमल : भारत की पाँच हजार वर्ष पुरानी संस्कृति के इतिहास में एक अक्षय नाम है– कमल जो सौंदर्य एवं चिन्मयता के साथ विशालता एवं पूर्णता का द्योतक है और इसका संबंध पौराणिक गाथाओं एवं धार्मिक अनुष्ठानों से अंतरंग रूप में जुड़ा हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण को 'कमलनयन' कहा गया है जिसके साथ अक्षय सौंदर्य का दिव्य अर्थ जुड़ा हुआ है:

'त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम्'

भारतीय संस्कृति में शुभ कार्य 'करकमलों' द्वारा होते रहे हैं। यह भाव कि कीचड़ में कमल खिलता है, दार्शनिक अवलंब प्रदान करता है। कमल की भीनी सुगंध दिव्यता एवं हर्ष का अनुभव प्रदान करती है। कमल द्वारा फूलोपचार से समान प्रभाव प्राप्त करना स्वाभाविक होगा। कमल वस्तुतः 'आध्यात्मिक–अमृत' जैसी क्रिया करने वाला माना जाता है। इसके सत्व से मानसिक उद्दीपन, शान्ति और संकेंद्रण प्राप्त होता है। शरीर के सभी 'चक्रों' (सूक्ष्म ऊर्जा केंन्द्रों) के संयोजन, ऊर्जाकरण एवं शुद्धि में इस सत्व की भूमिका पाई गई है।अतः इसे 'सुसंगत–सत्व माना गया है।

गुड़हल : वाटिका के हाशिये पर अक्सर सजावट के रूप में उगाया जाने वाला चटक लाल फूल है, गुड़हल या जस्वंद (मराठी) जिसे 'देवी–फूल' भी कहा जाता है। दलित साहित्य में जस्वंद को 'गरीबों का गुलाब' कहा गया है। अपनी आराध्य देवी की अर्चना करती हुई एक पुजारिन कहती है कि उसके पास गुलाबी और गेंदा नहीं है, देवी उससे 'जस्सा' (जस्वंद) के फूल स्वीकार करें। यह रोचक बात है कि प्राचीन काल से ही लाल गुड़हल के वैद्यकीय एवं आर्थिक महत्व के उपयोग ज्ञात हैं और अब यह फूलोपचार में भी लाभदायक पाया गया है।

गुड़हल के फूल में तापहर एवं मृदुकारी गुण हैं और इसकी पंखुड़ियों से बने फाण्ट का उपयोग शमक रूप में किया जाता है। पत्तियों में मृदुकारी, वेदनाहर एवं मृदु–विरेचक के गुण होते हैं। जड़ों से कफनाशक चाशनी बनाई जाती है। चीन में गुड़हल की पंखुड़ियों का उपयोग जूते की काली पालिश बनाने में किया जाता था। अतः इसे 'जूता–पुष्प' नाम दिया गया था।

(शेष पृष्ठ 28 पर)

किसानों पर कहर बरपाती नील गाय

कुछ जनपदों में नीलगाय इतना उत्पात मचाती है कि किसानों की पूरी पूरी फसल चौपट हो जाती है। नीलगाय का विवरण एवं उत्पात को रोकने के उपायों पर उपयोगी सामग्री प्रस्तुत है।

✍ डॉ0 भास्कर मिश्र

नीलगाय अत्यन्त हानिकर, कुरूप तथा घोड़े की आकृति जैसा उदास चेहरे वाला जानवर है। इसके शरीर का अग्रभाग घोड़े के स्कंध प्रदेश जैसा तथा पिछला भाग नीचा होता है। इसे हिन्दी में नील, नीलगाय, रोझ, रोज, घड़रोज, रोजरा आदि अनेक स्थानीय नामों से पुकारते हैं। अंग्रेजी में 'ब्लू बुल' (Blue Bull) कहते हैं। इसका जैविकीय नाम बोसेलाफस ट्रगोकैमेलस (पैलेस) (*Boselaphus trogocamelus (Pallas)*) है। नर नीलगाय साधारणतः 130–140 से.मी. ऊँचा होता है। वैसे इसकी ऊँचाई 150 से. मी. तक भी हो सकती है। मादा नीलगाय अपेक्षाकृत काफी छोटी होती है। सींगों की औसत लम्बाई 20 से.मी. तथा अधिकतम लम्बाई 29.8 से.मी. रिकार्ड की गयी है। यह भारतीय प्रायद्वीप में हिमालय की तलहटी से लेकर मैसूर तक पाया जाता है। किन्तु पूर्वी बंगाल, आसाम या मालाबार तटों पर नहीं पाया जाता।

ये घने जंगलों में नहीं रहते। इनका अड्डा विरल वृक्षों वाली पहाड़ियां, घासों तथा झाड़ियों से ढके ऊँचे–नीचे मैदानी क्षेत्र है। ये स्वतंत्रतापूर्वक खेतों में घुस जाते हैं तथा फसल खाने के साथ–साथ उसे रौंद कर तहस–नहस भी कर देते हैं। वे सुबह देर तक तथा शाम को जल्दी ही खेतों में घुस कर फसलों को खाते हैं। दिन के अत्यधिक गर्म समय में ये छाया में विश्राम करते हैं। बेर की पत्तियों, फलों तथा अन्य पौधों के कोपलों को चाव से खाते और साथ ही साथ उन्हें नष्ट भी करते हैं। बाग में महुआ के दरख्तों से चू रहे फूलों की मदमाती गंध इन्हें काफी आकृष्ट करती है, जिसके वशीभूत होकर ये बागों में महुआ खाते–खाते खेतों में भी घुस जाते हैं। ये लम्बे समय तक बिना पानी पिये रह जाते हैं तथा गर्म मौसम में भी इन्हें बराबर पानी पीने की आवश्यकता नहीं होती है। 4–10 की सामान्य संख्या में ये एक साथ देखे जाते हैं। कभी–कभी तो 20 या उससे भी अधिक की संख्या में एक साथ विचरते देखे गये हैं। नर- मादा, बच्चे, प्रौढ़ तथा जवान नील गायें सभी एक साथ रहते हैं। इनकी गर्भावधि 8–9 महीने की होती है।

खाद्यान्नोत्पादन स्तर का बढ़ता हुआ ग्राफ कायम रहे, इसके लिए हमारे कृषि वैज्ञानिक, किसान तथा सरकार सभी जागरूक हैं। लेकिन इस सब के बावजूद जानवरों, पशु –पक्षियों, कीटों–व्याधियों से रख–रखाव का पहलू इतना लचीला है कि कभी–कभी किसानों को भारी क्षति उठानी पड़ जाती है। उनके स्वर्णिम सपने टूटने लगते हैं तथा भविष्य अंधकारमय होने लगता है। नील गाय इसी तरह की ऐसी दुरूह और दुःसाध्य समस्या किसानों के लिये बन गयी है कि इसका कोई सार्थक हल आज तक सरकार एवं जनता दोनों को नहीं सूझ सका है जिससे कि इस संत्रास से त्राण पाया जाय।

ज्ञातव्य है कि वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर नील गाय का गाय से कहीं दूर–दूर का भी रिश्ता नहीं है। फिर भी मिथ्या धारणा एवं अंधविश्वास की गहरी जड़ ग्रामीण समुदाय के मन में जमी है, और नीलगाय को गाँवो के लोग गाय ही मानते हैं।

ऐसी विषम परिस्थिति में किसान फसलों की रक्षा तथा फसल पद्धति में परिवर्तन करने हेतु अपने वैकल्पिक उपाय अपनाये हैं। प्रस्तुत है, किसानों के अनुभवजनित कुछेक वैकल्पिक उपाय।

1. प्रक्षेत्र के चारों तरफ यदि करौंदे की बाड़ लगा दी जाय तो नीलगाय क्या हाथी तक नहीं घुस सकता । करौंदे से अतिरिक्त आय भी संभव है।
2. सड़ी मछली के पानी का फसलों पर छिड़काव कर देने से उसकी दुर्गन्ध नीलगायों को पास नहीं फटकने देती और इस तरह फसल की रक्षा होती है साथ ही साथ मछली के पानी के जरिये जमीन को फास्फोरस भी मिलता है।
3. भयाक्रान्त करने के लिए वैज्ञानिक "कैप्टिव गन" के प्रयोग का सुझाव देते हैं, जिससे नीलगाय भयभीत होकर भाग जायेगी, लेकिन मरेगी नहीं।

4. चन्द्र शूर (Lepidium sativum) जो क्रुसिफेरी परिवार का पौधा है, उसे नीलगायें नहीं खातीं। यह औषधीय फसल होने के कारण अच्छी आय देती है। कम लागत एवं कम समय में अधिक लाभ देने वाली फसल है।

5. सूरन, जिसे ओल, कान, जिमीकन्द आदि नामों से जानते हैं, उसकी खेती काफी लाभदायक है। एक एकड़ सूरन की खेती से शुद्ध 50,000–60,000 हजार रुपये का लाभ किसानों को मिल सकता है। सूरन की फसल को नीलगाये नहीं खाती हैं। देहली बाजार (सुलतानपुर) के सन्निकट ग्राम दयनो के बलगर तिवारी ने (जिनके खेत पर श्री कन्हैया सिंह नाम शोध छात्र ने सूरन का प्रयोग संचालित किया था) उससे प्रभावित होकर अपनी पूरी जोत सूरन फार्म के रूप में परिवर्तित कर दिया है क्योंकि उन्हें इससे काफी अच्छी आय मिली। उनकी आर्थिक स्थिति में काफी सुधार आया। उनका अनुकरण क्षेत्र के कई किसान कर रहे हैं।

6. गाँव–घर खेत की रखवाली कुत्ते बड़ी मुस्तैदी से करते हैं। प्रायः गाँव घर तक ही वे सीमित रहते हैं। खेत की कटाई के समय तथा खलिहान में वे अपने मकान मालिकों या परिवार के सदस्यों के साथ आते-जाते और फसल की रखवाली करते हैं। लेकिन यदि नीलगाय से आक्रान्त क्षेत्रों के किसान खेत/प्रक्षेत्र पर झोपड़ी डालकर वहाँ रहें तो उनके पालतू कुत्ते खेतों की रक्षा नीलगायों के आक्रमण से पूरी तरह करेंगे।

किसानों पर कहर बरपाती नीलगाय सरकार, वैज्ञानिक तथा कृषक समुदाय के लिए एक गम्भीर चुनौती है। एक बात और– नीलगाय को गधे या खच्चर की तरह पालतू और उपयोगी बनाने की दिशा में भी प्रयास करना आवश्यक है। अतएव सभी को मिलकर समाधान का मार्ग अविलंब ढूंढ़ना होगा।

अध्यक्ष, प्रसार शिक्षा विभाग
नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, फैजाबाद (उ.प्र.)

(पृष्ठ 26 का शेष भाग)

गुड़हल के सत्व द्वारा परस्पर संबंधों में संगतता, प्रतिसंवेदन एवं भावप्रवणता उत्पन्न करने में उत्प्रेरण मिलता है। इन कारणों से इस सत्व द्वारा कामोत्तेजना भी प्राप्त होती है। गुड़हल प्रथम फूल है जिसके उपयोग से फूलोपचार आरंभ हुआ था।

फूलोपचार हेतु जिन विदेशी फूलों को लाभदायक पाया है उनका वर्णन निम्नांकित है:'मिमुलस' (भयनिवारक, दर्दहर), 'ऐस्पन' (मनोवैज्ञानिक चिंताओं का प्रशामक), 'रेड–चेस्टनट' (पर–सरोकार संबंधी चिंता एवं भय), 'रॉकरोज' (तीव्र संत्रासहर), 'चेरी– प्लम' (तनाव, अनियंत्रण, उन्माद दूर करने वाला)।

विचारणीय है कि फूलोपचार संबंधी जाँच कार्यों में 'वेगा मशीन, 'इक्लोजन मशीन', 'किर्लियन फोटोग्रफी' आदि का प्रयोग किया गया है और फूलोपचार की उपयोगिता की पुष्टि की गई है।

फूलों का सौंदर्यशास्त्र तथा फूलोपचार का विज्ञान, इन दोनों का एक साथ अध्ययन करना वांछनीय है क्योंकि एक के बिना दूसरा एकांगी होगा। आवश्यकता है फूलों के साथ प्यार भरा संबंध बनाने की, फूलोपचार हेतु आवश्यक फूल ही कहीं खत्म न हो जाएं। फूलोपचार के संबंध में अंतिम विचार यह ध्यान में आता है कि हम फूलों से नये–नये रिश्ते जोड़ते रहें, फूलों जैसे खिले रहें!

–भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान
मुम्बई – 400078

विज्ञान और टेक्नोलॉजी की प्राथमिकताएं

✍ जी. पद्मनाभन

हम सभी को अपने उन आई.आई.टी. धारकों पर गर्व है जो अमेरिका या भारत में सूचना टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में कार्यरत हैं तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की शोभा बढ़ा रहे हैं, परन्तु हमारे पास ऐसे इंजीनियरों का घोर अभाव है जो सचमुच में टेक्नोलॉजीविद बने हों। जब सूचना टेक्नोलॉजी दुनिया पर हावी हो तो इसमें जुड़े पेशेवरों पर सवाल खड़े करना शायद कुफ़्र कहा जाएगा। माना सूचना टेक्नोलॉजी हमारे जीवन को बदल डालेगी; यह संचार, शिक्षा, जानकारी तक हमारी पहुंच आदि क्षेत्रों में क्रांति ला देने वाली है। मैं मानता हूँ कि यह टेक्नोलॉजी हमें ज्यादा सक्षम बनाने की सामर्थ्य रखती है। सारे पेशेवर लोग निहायत सहजता से अपने पर्सनल कंप्यूटर के सामने बैठकर हर चीज–ब्रह्माण्ड से लेकर तेज गति की बॉलिंग के एक्शन तक–का मॉडल बनाते हुए सुकून महसूस करते हैं। सवाल यह है कि हम हार्डवेयर में कितने दक्ष हैं? मैंने अक्सर कई वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों के मुखियाओं को कहते सुना है कि हम एक छोटे से पुर्जे के लिए अटके हैं और इसे पा लेना अपने आप में एक उपलब्धि बन जाती है। दूसरी चिन्ता है कि क्या हम इसी में संतुष्ट रहेंगे कि समय में 12 घण्टे के अन्तर का फायदा उठाकर अमेरिकी कम्पनियों के लिए रोज–ब–रोज बैलेंस शीट बनाते रहें? क्या ऐसे लोगों की जरूरत नहीं है जो हार्डवेयर बना सकें? क्या ऐसे लोगों की जरूरत नहीं है जो सचमुच के बांध बनाएंगे, सचमुच की दवाइयां और सचमुच की मशीनरी तैयार करेंगे? क्या सिविल, मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल व अन्य इंजीनियरी और रसायनविदों, भौतिकविदों, जीव वैज्ञानिकों की जरूरत नहीं है जो सचमुच की प्रयोगशालाओं में चीजें बनाएं और प्रयोग करें?

क्या हम मैदानी काम को अर्द्धसाक्षरों पर छोड़कर दोयम दर्जे के माल से संतुष्ट रहना चाहते हैं? क्या हम सोचते हैं कि प्रोग्राम्ड रोबोट इंसानों की जगह लेगें? मैं नहीं जानता कि सूचना टेक्नोलॉजी की धूम कब तक रहेगी, परन्तु एक राष्ट्र के रूप में हम एक ही टेक्नोलॉजी को सारी समस्याओं का रामबाण नुस्खा मानने की भूल नहीं कर सकते। सूचना टेक्नोलॉजी एक सामर्थ्यजनक टेक्नोलॉजी है और उसका उपयोग खाद्यान्न सुरक्षा, अच्छी सेहत और साक्षरता जैसे उद्देश्यों के लिए किया जाना चहिए। ऐसा उपयोग करने के लिए हमें विभिन्न विषयों से जुड़े वैज्ञानिक व टेक्नोलॉजीविद चाहिए। रक्षा अनुसंधान इस देश की प्राथमिकता तो होनी ही चाहिए, परन्तु अस्त्र टेक्नोलॉजी की मंजिल क्या होगी? क्या हमारे पास इन्टरकान्टिनेंटल बैलिस्टिक मिसाइलें, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रॉन बम वगैरह होना चाहिए? क्या प्रत्येक के मात्र दो–दो नग से कम चल जाएगा? या क्या हमारी अर्थव्यवस्था ऐसे हथियारों के जखीरे की अनुमति देती है? क्या हमें डर है कि पाकिस्तान दिल्ली पर काबिज हो जाएगा या 'रोकथाम' की, यह अवधारणा बेरोकटोक चलती ही चली जाएगी? क्या अपने पड़ोसियों के साथ शान्ति बनाए रखने का यही एकमात्र तरीका है और किस कीमत पर?

परमाणु ऊर्जा का शान्तिपूर्ण इस्तेमाल तो ऊर्जा की समस्या को तनिक भी नहीं छूता। परमाणु बिजली हमारी कुल जरूरत का अत्यन्त छोटा–सा अंश है। अंतरिक्ष अनुसंधान ने अवश्य ही संचार व मनोरंजन में काफी सुधार किए हैं तथा आगे और उम्मीदें की जा सकती हैं, परन्तु देखने में यह आता है कि उपग्रहों के जरिए जो विस्तृत जानकारी एकत्रित की जाती है, उसका कोई ग्राहक नहीं होता। दूसरी ओर देखें, तो समाज में सूचना–संचार इतना तेज हो गया है कि गणेश ने देश भर में लगभग एक साथ दूध पीना शुरू कर दिया था। हमारी वास्तविक प्राथमिकताएं खाद्यान्न सुरक्षा, स्वास्थ्य और शिक्षा हैं। पहले दो क्षेत्रों में कुछ भी हासिल करने के लिए कृषि व चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान की जरूरत है। सभी इस बात से सहमत हैं कि जीव विज्ञान अनुसंधान की इक्कीसवीं सदी पर हावी रहेगा। हमारे देश में अभी भी यह गलतफहमी व्याप्त है कि जीव विज्ञान अनुसंधान जीव वैज्ञानिकों का एकाधिकार है। वस्तुस्थिति यह है कि इसके लिए जीव वैज्ञानिकों, रसायनज्ञों, भौतिक शास्त्रियों और इंजीनियरों के बीच सघन सहयोग जरूरी है। आज औषधि की खोज का

बुनियादी ढांचा ही बदल चुका है। आधुनिक टीकों के विकास के क्षेत्र में क्रांति आ चुकी है। जीन चिकित्सा आज कई जेनेटिक गड़बड़ियों के उपचार का आश्वासन दे रही है। जीन स्थानांतरण की टेक्नोलॉजी के जरिए फसलों को कीटों से बचाना तथा उनकी पौष्टिकता बढ़ाना सम्भव हो रहा है, अतः खाद्यान्न सुरक्षा के लिए एक समेकित टेक्नोलॉजी जरूरी है। पर्यावरण व जैव विविधता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण वैज्ञानिक चुनौतियां सामने हैं। अनुसंधान का एक और अहम् क्षेत्र पदार्थ–विज्ञान व टेक्नोलॉजी का है। सूक्ष्मीकरण, अतिसूक्ष्म टेक्नोलॉजी तथा आणविक इलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में तेजी से तरक्की हो रही है। इसकी बदौलत बीमारियों के निदान व उपकरणों के क्षेत्र में प्रमुख बदलाव होंगे। यह सब कहने का मतलब यह है कि सैद्धान्तिक शोध का कोई महत्व नहीं है। गणित व सैद्धान्तिक भौतिकी के क्षेत्र में पारम्परिक रूप से भारत का स्थान रहा है। ये वे क्षेत्र हैं जिनमें देश विश्वव्यापी वैज्ञानिक नेतृत्व प्रदान कर सकता है। शक्तिशाली कंप्यूटर होने से इस क्षेत्र में बहुत काम हो सकता है। कम से कम कुछ वैज्ञानिकों को तो ऐसे 'ऊलजुलूल' विचारों पर काम करने की अनुमति मिलनी ही चाहिए जिनका शायद कोई व्यावहारिक उपयोग नजर न आए।

यह भी जरूरी है कि विज्ञान व टेक्नोलॉजी के इस्तेमाल सम्बंधी समाजोन्मुखी लक्ष्य निर्धारित किए जाएं। यदि मेरा बस चले तो अगले दशक के लिए विज्ञान व टेक्नोलॉजी का लक्ष्य होगा गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों में कुपोषण की समाप्ति व संक्रामक रोगों से सुरक्षा। यह लक्ष्य हासिल किया जा सकता है। इसके लिए जरूरत होगी भोजन की गुणवत्ता बढ़ाने, साफ पेय जल मुहैया कराने, बच्चों के लिए आधुनिक कारगर टीकों का उत्पादन करने में अनुसंधान करने व विकास के सघन प्रयासों की। प्रोटीन–कैलोरी कुपोषण, लौह तत्व व विटामिनों की कमी प्रमुख समस्याएं हैं। आणविक जीव वैज्ञानिकों, पोषणविदों और खाद टेक्नोलॉजीविदों को इस पर युद्ध स्तर पर काम करना चाहिए। अमेरिका शिशु रोग अकादमी ने बच्चों के लिय 10 टीकों का एक क्रम बनाया है। हमें भी इसकी जरूरत है। पुरानी टेक्नोलॉजी की जगह आधुनिक टीका टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। 'दोपहर का भोजन' व टीकाकरण के राष्ट्रीय कार्यक्रमों की जरूरत है। इन सभी मामलों में सफलता के लिए मूलभूत व समाज वैज्ञानिकों, गैर–सरकारी संगठनों और राजनैतिक तंत्र के बीच सहयोग अनिवार्य है।

विज्ञान टेक्नोलॉजी के बजट में से यदि रक्षा, परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष अनुसंधान का बजट घटा दिया जाए तो नागरिक अनुसंधान के लिए अत्यल्प राशि का बजट मूलतः प्राथमिक शिक्षा व निरक्षरता हटाने के लिए है। इस प्राथमिकता पर तो कोई दो मत नहीं हो सकते, परन्तु उच्च शिक्षा को अपने भरोसे छोड़ दिया गया है। ऐसे में 'जय विज्ञान' की पताका कौन उठाए? भारत में शोध को एक कैरियर के तौर पर बढ़ावा देने सम्बन्धी नीति होनी चाहिए। अनुसंधान के मजबूत आधार के बगैर यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि किसी भी क्षेत्र में मौलिक टेक्नोलॉजी उभरेगी। अभी कुल मिलाकर परिणाम यह होता है कि ज्यादातर छात्र अमेरिका में बसने के लिए तैयार किए जाते हैं। यदि इनमें से 10–15 प्रतिशत भी देश में शोध पेशा अपना लेंगे तो फर्क पड़ेगा। ज्यादा जरूरी यह है कि शोध कैरियर को धन, इन्फ्रास्ट्रक्चर व माहौल के लिहाज से आकर्षक बनाया जाए। यह भी जरूरी है कि बड़े औद्योगिक घराने बुनियादी शोध के केन्द्र शुरू करें। सबसे महत्वपूर्ण बात यह होगी कि विश्वविद्यालयों को वैज्ञानिक शोध का आधार माना जाए और वहां एक सृजनात्मक माहौल तैयार किया जाए। यदि हम अपनी अनुसंधान प्राथमिकताएं सही ढंग से निर्धारित नहीं करते, तो भारत बीमारी, भूख और निरक्षरता का काला महाद्वीप बना रहेगा। हां, इस अंधकार में यदा–कदा बमों, मिसाइलों, उपग्रहों और सूचना टेक्नोलॉजी के पेशेवरों की बिजलियां जरूर गिरती रहेंगी।

'दैनिक जागरण से' साभार

(पृष्ठ 14 का शेष भाग)

उत्पादन में विशिष्ट महत्व है तथा आज के युग में विशाल औद्योगिक इकाइयों में इनके बिना उत्पादन असंभव है। तालिका नियंत्रण में सूचना प्रौद्योगिकी का अत्यंत महत्व है क्योंकि समय पर कच्चा माल न आने पर सारा उत्पादन रुक सकता है। इसी प्रकार शिक्षा व अनुसंधान में सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा विश्व में रहे नवीनतम अनुसंधान की जानकारी सुगमता से प्राप्त की जा सकती है।

इलेक्ट्रोनिकी एवं अभिकलित्र अभियांत्रिकी विभाग
रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की
(विज्ञान गरिमा सिंधु से साभार)

पुस्तक समीक्षा

मानव क्लोन तथा तृतीय विश्व युद्ध : डॉ0 हरीश गोयल

विवेक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण 1999,
पृष्ठ संख्या 100, मूल्य 90/–रु0

श्री हरीश गोयल वरिष्ठ विज्ञान कथा लेखक हैं। 'मानव क्लोन तथा तृतीय विश्व युद्ध' उनका नवीन कथा संग्रह है जिनमें 8 विज्ञान कथाएँ गुम्फित हैं – देशभक्त, मानवक्लोन तथा तृतीय विश्व युद्ध, प्रेतात्मा, सूनी कोख, दूसरी सुधा, नवाबपोश, टैलीपैथी तथा सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी। चूँकि क्लोनिंग सर्वथा नवीन विषय है अतः इसके प्रति कहानीकार विशेष रूप से आकृष्ट हुए हैं। हरीश गोयल की कहानियाँ क्लोनिंग को केन्द्र बनाकर लिखी गई हैं। इससे पाठकों का मनोरंजन हो सकेगा, ऐसी आशा है। किन्तु कहानी कला की दृष्टि से इन कहानियों में जो सपाटबयानी है और क्लोनिंग विधि की जिस तरह व्याख्या की गई है उससे कहानी के बजाय उनमें निबन्ध ा के तत्व अधिक मुखर हैं। कई कहानियों में एक ही दृश्य–कुल्लू मनाली का उसी रूप में दिया गया है। छापे की भी अनेक भूलों से पढ़ते समय गतिरोध होता है।

हम आशा करते हैं कि गोयल जी जैसे वरिष्ठ लेखक विज्ञान कथा के शिल्प में ऐसा परिष्कार लावेंगे जिससे विज्ञान कथाएँ साहित्यिक कथाओं से होड़ ले सकें।

लोक प्राणि विज्ञान : डॉ0 सतीश कुमार शर्मा

हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998,
पृष्ठ संख्या 147, मूल्य 350 रु0 (सचित्र)

डॉ0 सतीश कुमार शर्मा विगत 15 वर्षों से हिन्दी में विज्ञान लेखन करते आ रहे हैं। उनके अनेक शोधपत्र विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका में छापने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे जितने अनुसंधान के बाद कोई शोध पत्र लिखते हैं वह श्लाघ्य है। प्रस्तुत पुस्तक प्राणि विज्ञान के एक सर्वथा नवीन पक्ष पर प्रकाश डालती है जिसे लोक प्राणि विज्ञान कहते हैं। डॉ0 शर्मा ने राजस्थान में घूम–घूमकर लोक प्रचलित प्रथाओं तथा किंवदन्तियों में जो सत्य निहित है उसे ही अपनी पुस्तक का कथ्य बनाया है। राजस्थान ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं जैव वैज्ञानिक सम्पदा से भरापुरा है। आवश्यकता है उस सम्पदा के उद्घाटन की। डॉ0 शर्मा ने वन्य प्राणियों की सुरक्षा, दैनिक जीवन में उनके उपयोग, कृषि की उनसे सुरक्षा, शिकार विधियाँ, कृन्तक नियन्त्रण, मत्स्य आखेट विधियाँ, वन्य प्राणी एवं लोक चिकित्सा, वन्य प्राणी एवं लोक साहित्य, मुर्गी पालन, पशुपालन तथा वन्य प्राणी प्रबन्ध एवं आदिवासी–शीर्षक 12 अध्यायों में परिपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की है। स्थान स्थान पर चित्र भी दिये गये हैं। पुस्तक के अन्त में 2 महत्वपूर्ण परिशिष्टियाँ हैं जिनमें प्राणियों और वनस्पतियों की सूचियाँ हैं। वन्य प्राणी एवं लोक चिकित्सा के अन्तर्गत सारणी 8.1 तथा 8.2 में पशुओं से प्राप्त उत्पादों का मानव रोगोपचार में उपयोग दिया हुआ है जो अत्यन्त सूचनाप्रद हैं। लोक में पशुओं से कितने प्रकार के रोग ठीक किये जाते हैं यह इसका प्रमाण है कि राजस्थान के आदिवासी तथा अन्य लोग किस तरह प्रयोग एवं अनुभव से चिकित्सा ज्ञान संकलित करते रहे हैं।

डॉ0 शर्मा का यह प्रयास अनूठा है और इसका सभी क्षेत्रों में स्वागत होना चाहिए। हिन्दी में ऐसी पुस्तक पहले–पहल प्रकाशित हुई है। यह संग्रहणीय है। हाँ, मूल्य कुछ अधिक है।

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद–211002

परिषद् का पृष्ठ

1. स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जन्म दिवस समारोह सम्पन्न

विज्ञान परिषद् सभागार में दिनांक 24.08.2000 को स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी का 96 वाँ जन्म दिवस श्रीमती माधुरी श्रीवास्तव, अवकाशप्राप्त आई.ए.एस. की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद, डॉ0 ईश्वर चन्द्र शुक्ल, श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ0 दिनेश मणि, डॉ0 विमलेश, श्री आनन्द जायसवाल, डॉ0 सुनील कुमार पाण्डेय, आदि ने स्वामी जी के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा आर्य समाज, विज्ञान परिषद् प्रयाग तथा वैज्ञानिक हिन्दी लेखन को उनके योगदान की चर्चा की। कार्यक्रम का संचालन डॉ0 सुनील कुमार पाण्डेय ने किया

2. डॉ0 नील रत्न धर स्मृति व्याख्यान सम्पन्न

2 सितम्बर 2000 को इलाहाबाद कृषि संस्थान के रसायन विभाग के सभागार में डॉ0 नील रत्नधर स्मृति व्याख्यान आयोजित किया गया। इस अवसर पर भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अवकाशप्राप्त वैज्ञानिक डॉ0 ए.सी. गौड़ ने 'कार्बनिक खेती', विषय पर रोचक व्याख्यान देते हुए विभिन्न स्लाइडों के माध्यम से कार्बनिक कृषि की महत्ता एवं उपयोगिता प्रतिपादित की। उन्होंने भारत व विश्व में इस दिशा में किए जा रहे अनुसंधानों एवं प्रसार के अन्य प्रयासों के बारे में विस्तार से वर्णन किया।

इस अवसर पर संस्थान के कुलपति डॉ0 आर.बी. लाल, डीन डॉ0 एस.एस. सिंह, रसायन विभाग के अध्यक्ष डॉ0 ए.के. गुप्ता, विज्ञान परिषद् के प्रधान मंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, तथा डॉ0 एम. एम. राय आदि प्रमुख रूप से उपस्थित थे।

3. लोक कला माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन कार्यशाला सम्पन्न

विज्ञान परिषद् प्रयाग तथा सेवा फाउण्डेशन इलाहाबाद के संयुक्त तत्वावधान में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, भारत सरकार द्वारा समर्थित एवं उत्प्रेरित कार्यशाला "लोककला माध्यमों के लिए विज्ञान लेखन", विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में 10 से 14 सितंबर 2000 तक सम्पन्न हुई। इस आवासीय कार्यशाला में 37 लोक कलाकार प्रतिभागियों ने भाग लिया तथा नौटंकी, नुक्कड़ नाटक, लोक गीत, आदि विधाओं में विज्ञान के प्रचार–प्रसार करने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रतिभागियों द्वारा कार्यशाला के दौरान 36 विभिन्न रचनाओं का निर्माण किया गया जिनमें से कुछ उत्तम रचनाओं का मंचन भी कार्यशाला के अंतिम दिन प्रतिभागियों द्वारा किया गया।

कार्यशाला का उद्घाटन उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद के निदेशक श्री नवीन प्रकाश (आई.ए.एस.) द्वारा 10 सितंबर 2000 को किया गया। डॉ0 एम.एस. राय ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। डॉ0 रमेश चन्द्र तिवारी (वाराणसी), श्री नरेश मिश्र (इलाहाबाद) तथा श्री रवीन्द्र खरे (जबलपुर) ने विशेषज्ञ के रूप में कार्यशाला के प्रतिभागियों को प्रशिक्षण दिया। कार्यशाला संयोजक डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, सह संयोजक श्री विजय चितौरी, डॉ0 ए.के. गुप्ता, डॉ सुनील पाण्डेय, देवव्रत द्विवेदी, श्री उदय, सौरभ खरे, राजेश कुमार, एवं अमित राय ने कार्यशाला को सफल बनाने में विशेष योगदान दिया।

इस अवसर पर प्रतिभागियों ने एक दिन ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के पर्यटन स्थल श्रृंगवेरपुर का भ्रमण किया। कार्यशाला के समापन के अवसर पर इलाहाबाद संग्रहालय के निदेशक श्री उदयशंकर तिवारी ने प्रतिभगियों को प्रमाण पत्र वितरित किये। डॉ0 हनुमान प्रसाद तिवारी (उप सभापति विज्ञान परिषद् प्रयाग) ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की।

4. शब्दावली कार्यशाला का आयोजन

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार के तत्वावधान में 16–17 अक्टूबर 2000 को विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में एक कार्यशाला का आयोजन किया जा रहा है जिसका विषय होगा 'इंजीनियरी शब्दावली तथा भारतीय भाषाएँ'। इस कार्यशाला में देश के विभिन्न शहरों से तथा स्थानीय लगभग 100 प्रतिभागियों के भाग लेने की संभावना है।

–देवव्रत द्विवेदी

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1- रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।

2- रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।

3- अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।

4- रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।

5- नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।

6- हमें चिन्तनपरक, विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।

7- पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :-
भीतरी पूरा पृष्ठ 1000रु०, आधा पृष्ठ 500रु०, चौथाई पृष्ठ 250रु०,
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु०, आवरण चतुर्थ 4000रु०

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं.: (0532) 460001
ई-मेल : vigyan1@nde.vsnl.net.in

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रांगण में प्रो० एम०जी०के० मेनन
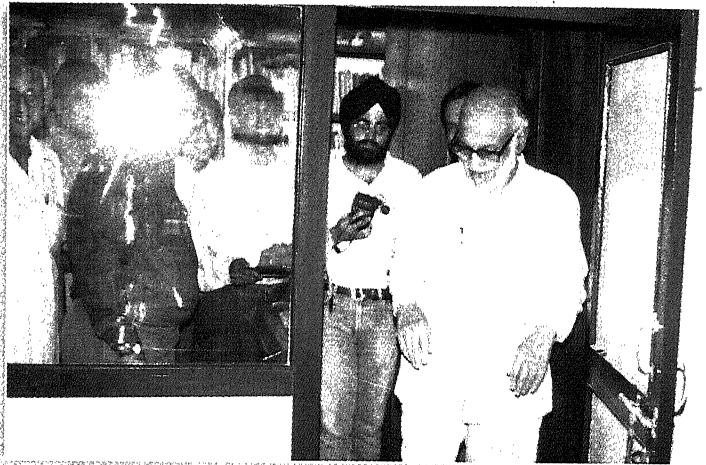
कम्प्यूटर कक्ष का उद्घाटन करते प्रो० एम०जी०के० मेनन
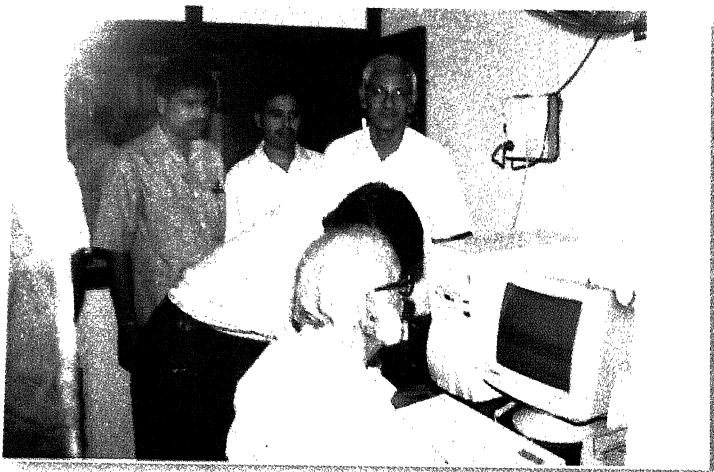
परिषद् के सभ्यों की सूची देखते हुए प्रो० एम०जी०के० मेनन

SSN : 0373-1200

नवम्बर 2000

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

मूल्य 7 रुपये

विज्ञान

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका

व-प्रौद्योगिकी

जीन-इंजीनियरी

माध्यमों द्वारा

विज्ञान संचार

कोलेस्ट्राल

रंगों की दुनिया

कैसे बनते हैं ?

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 86 अंक 8
नवम्बर 2000

मूल्य

आजीवन व्यक्तिगत : 750 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,500 रुपये
त्रिवार्षिक : 210 रुपये
वार्षिक : 75 रुपये
यह प्रति : 7 रुपये

सभापति

डॉ0 (श्रीमती) मंजु शर्मा

प्रकाशक

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक

ग्राफिक आफसेट
186/5 टैगोर टाउन, इलाहाबाद
फोन : 465016, 465274

कम्प्यूटर कम्पोजिंग

विजय कुमार शर्मा

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@nde.vsnl.net.in

विषय सूची

विशेष लेख

भारतीय वैज्ञानिकों का आह्वान

✍ डॉ. मुरलीमनोहर जोशी

भारतीय वैज्ञानिकों को अपनी दृष्टि, अपने अनुसंधानों का सम्बन्ध भारत की वर्तमान समस्याओं से और भारत की परम्पराओं से जोड़ना चाहिए। रासायनिक क्षेत्र में हमारी उपलब्धियाँ बहुत हैं, मैं आज उनका उल्लेख नहीं करना चाहता। अगर आप भारत के प्राचीन रसायनशास्त्र के इतिहास को देखेंगे तो आपको स्वयं बड़ा गर्व होगा कि हमने आज से एक हजार साल पहले, कुछ मामलों में दो हजार साल पहले, कितनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी और हमें यह विचार करना होगा कि अगर हम दो हजार साल पहले विश्व में प्रतिस्पर्धा कर सकते थे और हमारी उपलब्धियाँ विश्वमान्य थीं तो आज दो हजार सालों बाद क्यों नहीं, किस मात्रा में हैं और अधिक कैसे हो सकती हैं। मुझे प्रसन्नता है कि कुछ मामलों में इस प्रयोगशाला ने ऐसी समस्याओं की ओर ध्यान दिया है। स्वच्छ पेयजल लोगों को मिल सके, इसके लिए जो आपके यहाँ काम हो रहा है, वह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लेकिन ऐसे अनेक क्षेत्र और हैं जो भारतीय उद्योगों और भारतीय सामान्य नागरिक के जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं और हमारी दृष्टि उधर जानी चाहिए। मैं नहीं समझता कि इस मामले में सभी प्रयोगशालाओं के निदेशकों की कोई आपसी चर्चा होती है या नहीं, या आपकी अपनी प्रयोगशाला में कभी कोई ब्रेन स्टॉर्मिंग इस मामले में होता है या नहीं कि हमारे देश की कौन सी प्रमुख समस्याएँ हैं – औद्योगिक क्षेत्र की और बाकी के क्षेत्रों की जिसकी ऐसी आवश्यकता है कि नई वैज्ञानिक और टेक्नोलॉजिकल उपलब्धियों से उसका सुधार किया जा सकता है। मैं चाहूँगा कि आप इस बारे में अपनी प्रयोगशाला में गहन विचार करें और ऐसे विषयों का निर्धारण करें, ऐसी समस्याओं का निर्धारण करें, ऐसी टेक्नोलॉजी का निर्धारण करें जो इस देश के लिए तत्काल या आने वाले दस–पाँच सालों में उपयोगी हो सकती है। अच्छा हो कि प्रयोगशाला की ओर से उन उद्योगों से जीवित सम्बन्ध रखा जाए और उसे अधिक सघन किया जाए जहाँ आपकी टेक्नोलॉजी कारगर हो सकती है। आप टेक्नोलॉजी का आविष्कार करते हैं, उनका परिष्कार करते हैं लेकिन अगर उनका विस्तार नहीं हुआ, उनका फैलाव नहीं हुआ, वह बाजार में नहीं गई तो जितना लाभ उनसे मिलना चाहिए उतना लाभ नहीं मिलेगा। इसलिए प्रयोगशालाओं को अनुसंधान के साथ–साथ मार्केटिंग के लिए भी प्रयत्न करने होंगे। अगर आप मार्केटिंग नहीं कर पाएँगे तो बढ़िया टेक्नोलॉजी का लाभ नहीं मिल सकेगा और आपका परिश्रम भी सार्थक नहीं हो सकेगा और आर्थिक दृष्टि से भी आप लाभान्वित नहीं होंगे। मैंने देखा है कि विश्व की अनेक प्रयोगशालाएँ अब मार्केटिंग की तरफ ध्यान दे रही हैं। अभी मैं पिछले दिनों रूस गया था। वहाँ की कई प्रयोगशालाओं से और वहाँ के वैज्ञानिकों से काफी गहन विचार हुआ और उनके सामने भी यही समस्याएँ थीं। वे कहते थे कि हमारे पास टेक्नोलॉजी तो है मगर उसे बाजार में हम नहीं ले जा सके। पिछले सालों में हमारे देश में यह कमी रही है कि जहाँ टेक्नोलॉजी का उपयोग है वहाँ मार्केटिंग करना हमारी प्रयोगशालाओं के पास व्यवस्था के अभाव में नहीं हो सका। सी.एस.आई.आर. को साधारण तौर पर और जो हमारी महत्वपूर्ण प्रयोगशालाएँ हैं उनको खास तौर पर टेक्नोलॉजी के मार्केटिंग का विकास करना होगा। इस सम्बन्ध में आप अगर कोई सुझाव रखते हैं, कोई योजना रखते हैं तो उसको हम अवश्य बहुत ही सहानुभूति के साथ और सहायता के साथ क्रियान्वित करेंगे। प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है इसलिए इसमें बहुत जागरूक रहने की जरूरत है। अब केवल नए आए हुए छात्रों से या जो पी–एच.डी. के लिए काम कर रहे हैं, उनसे काम नहीं चलेगा। वरिष्ठ वैज्ञानिकों को स्वयं निरंतर प्रयत्नशील रहना होगा। एक कमी जो मैं अपने देश के विश्वविद्यालयों में और अधिकांश प्रयोगशालाओं में देखता हूँ, वह यह है कि एक समय के बाद हमारे वरिष्ठ वैज्ञानिक स्वयं काम करना कम कर देते हैं और कुछ मामलों में तो बन्द कर देते हैं। विश्वविद्यालयों में तो अक्सर यही होता है। छात्र काम करता है और उसका सुपरवाइजर आराम करता है और शोधपत्र दोनों के नाम से प्रकाशित होते रहते हैं। लेकिन मैं दुनिया में जहाँ भी जाता हूँ और जा रहा हूँ, पहले भी जाता रहा हूँ वहाँ मैंने देखा है कि वरिष्ठ वैज्ञानिक, नोबल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में रात–रात भर काम करते हैं; बैठे रहते हैं, छात्रों की समस्याओं को हल करते हैं और सतत प्रयत्नशील रहते हैं, जागरूक रहते हैं। हमें इस अच्छी बात को उनसे सीखना चाहिए। एक बड़ी कमी जो अपनी प्रयोगशालाओं में प्रतीत होती है वह यह कि हमारे मूर्धन्य वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं से अपना सम्बन्ध कम कर देते हैं विश्वविद्यालयों में भी और प्रयोगशालाओं में भी। अब अगर ऑटोनोमी

एन.सी.एल. पुणे के कर्मियों के समक्ष दिया गया भाषण

का नतीजा यह निकले कि बिल्कुल ही काम बंद हो जाए तो क्या फायदा होगा? ऑटोनामी के साथ–साथ एकाउंटेबिलिटी भी जरूरी है और वैज्ञानिक की एकाउंटेबिलिटी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि आज ऐसे अनुसंधान निरंतर हो रहे हैं जो न केवल उद्योगों को और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करेंगे बल्कि जो नैतिक आध्यात्मिक प्रश्न भी खड़े कर रहे हैं। ह्यूमन जीनोम से सम्बन्धित जेनेटिक्स से सम्बन्धित ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिन्होंने बड़े गहरे प्रश्न सामने खड़े कर दिए हैं, नैतिकता के प्रश्न खड़े कर दिए हैं। क्या क्लोनिंग होनी चाहिए? क्या मनुष्य की क्लोनिंग की जानी चाहिए? क्या कोई मल्टीनेशनल क्लोनिंग के द्वारा अपनी आवश्यकता के लिए बिल्कुल एक से कर्मचारी पैदा करे और काम निकल जाने के बाद उनमें से कुछ को कब्रगाह में पहुँचा दे क्योंकि वह कहेगा कि यह मेरी क्लोनिंग है, मेरी प्रॉपर्टी है, मैं इसको रखूँ या फेंकूँ, इससे आपको क्या मतलब है– क्या ऐसा समाज और ऐसी व्यवस्थाएँ हितकारी हैं? आज ये प्रश्न बड़े गहरे खड़े हो रहे हैं और इसीलिए अनुसंधान के क्षेत्र में और वैज्ञानिक आविष्कारों के क्षेत्र में कोई नैतिकता रहनी चाहिए या नहीं रहनी चाहिए, जीवन मूल्य रहने चाहिए या नहीं रहने चाहिए, सांइस न्यूट्रल रहे वैल्यू के क्षेत्र में, वैल्यू न्यूट्रल हो या साइंस के कुछ वैल्यूज होने चाहिए? पिछले साल यूनेस्को में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में इस पर विचार हुआ था। हमने वहाँ यह कहा था कि विज्ञान में जीवन मूल्य होने चाहिए। बहुतों का ख्याल यह है कि हाँ वैल्यू तो होनी चाहिए, मगर फाइनैंशियल वैल्यू होनी चाहिए, एकॉनॉमिक वैल्यू होनी चाहिए। मेरा मतलब उस वैल्यू से नहीं हैं, जीवन मूल्यों से है। नैतिकता के, सामाजिक व्यवहारों के मानव समाज के कुछ प्राकृतिक नियम हैं। क्या हम उनका उल्लघंन कर सकते हैं? क्या उसकी आजादी मिलनी चाहिए? इन प्रश्नों पर भी हमें सतत विचार करते रहना होगा कि हमारे द्वारा किए गए अनुसंधानों से कैसा समाज बन रहा है। इसलिए आज सवाल उठ रहे हैं कि केमिकल वेपन्स के मामले में रसायनशास्त्रियों की जिम्मेदारी बहुत है। क्या ऐसे आविष्कार होने चाहिए कि जिससे व्यापक रूप में नरसंहार किया जा सके? क्या यह उचित होगा? क्या सरकारों के हाथ में ऐसे वैज्ञानिक हथियार दिए जा सकते हैं जो समूचे मानव समाज के लिए संकट का कारण बन जाएँ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर बराबर हमें विचार करते रहना चाहिए और भारतीय वैज्ञानिकों को तो विशेषकर के विचार करना चाहिए। क्योंकि हम मानव समाज को दूसरी दृष्टि से देखते हैं। आज से ठीक सौ साल पहले जगदीशचन्द्र बसु ने कुछ प्रयोग किए थे और उसमें उन्होंने यह सिद्ध किया था कि मानव माँसपेशियों में जैसी थकान होती है या उसमें जिस प्रकार की संवेदनाएँ होती हैं, हर्ष और विषाद का प्रभाव होता है, विष का प्रभाव होता है उसी तरह से अनेक संवेदनाएँ निर्जीव कही जाने वाली धातुओं में भी होती हैं और उन्होंने ये प्रयोग दिखाए थे कि धातुओं की थकान और प्राणियों की माँसपेशियों की थकान का ऑसिलोग्राफ में एकजैसा ही चित्र आता है। वनस्पतियों के साथ भी यही व्यवहार होता है। तब उन्होंने कहा था कि यह कहना मेरे लिए बड़ा कठिन है– Where the physical ends and the physiological begins. Where the physiological ends and the psychological begins. भारत की दृष्टि यही रही है कि हम सभी पदार्थों में या यह कहें कि विश्व के छोटे कण से लेकर बड़े से बड़े ब्रह्मांड तक में एक चेतना का अस्तित्व मानते रहे हैं। भौतिकशास्त्र के कुछ प्रयोग इसी दिशा की तरफ बढ़ रहे हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इस ब्रह्मांड का हर एक कण प्रत्येक दूसरे कण से चाहे वह कितने ही प्रकाश वर्ष दूरी पर क्यों न हो, जुड़ा हुआ है। क्वांटम भौतिकी इस तरफ संकेत कर रही है। पश्चिम के अनेक विद्वान इस बारे में भारतीय विद्वानों से चर्चा करना चाहते हैं। वे अध्ययन कर रहे हैं हमारे बहुत से दार्शनिक ग्रंथों का। हिज़ेनबर्ग जैसे भौतिकशास्त्री से पूछा जाता था कि जब कभी आप विचारों की रिक्तता अनुभव करते हैं तो आप क्या करते हैं? तो उनका उत्तर था मैं तब भारतीय ग्रंथों की तरफ देखता हूँ। श्रोडिंजर जिन्होंने क्वांटम भौतिकी का सूत्रपात किया, वे निरंतर उपनिषदों का अध्ययन करते रहते थे और आज भी बौद्ध दर्शन और वेदान्त दर्शन के बारे में पश्चिम के वैज्ञानिक गंभीर अध्ययन करते हैं। विश्व और ब्रह्मांड को समझने के लिए, मानव को समझने के लिए, मानव और पर्यावरण के सम्बन्ध को समझने के लिए मूल कणों से, फंडामेंटल पार्टिकल से लेकर ब्लैक होल तक सबको समझने के लिए भौतिकशास्त्र एक नई दृष्टि की तरफ आगे बढ़ रहा है। भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र मिले हुए हैं, एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। ब्रह्मांड के रहस्यों को सुलझाने के लिए भी, उन्हें समझने के लिए भी हमें एक नई दृष्टि की जरूरत है। इस तरफ भी भारतीय वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। विज्ञान अब केवल प्रयोगशाला तक या छोटे प्रयोगों तक सीमित नहीं है। धीरे–धीरे दर्शन और विज्ञान–ये भी एक दूसरे के निकट आ रहे हैं। इसलिए हमारे जो मूर्धन्य वैज्ञानिक हैं उन्हें अपने अध्ययन की परिधि भी बढ़ानी होगी, समस्याओं को ठीक ढंग से पारिभाषित करने के लिए भी व्यवस्था करनी होगी और इस दृष्टि से जो भी आवश्यक स्वायत्तताएँ हैं वे वित्तीय और प्रशासन दोनों की हैं। मैं उन पर विचार कर रहा हूँ।

–केन्द्रीय मंत्री, मानव संसाधन विकास,
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा महासागर विकास

जैव-प्रौद्योगिकी : परिभाषा तथा वर्गीकरण

✍ सिद्धनाथ उपाध्याय

शब्द–कोश के अनुसार "प्रौद्योगिकी" शब्द के कई अर्थ हैं। इनमें से दो औद्योगिक प्रौद्योगिकी के गुण–धर्म को व्यापक रूप से प्रकट करते हैं। प्रथम अर्थ के अनुसार व्यावहारिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु ज्ञान के क्रमबद्ध अनुप्रयोग को ही प्रौद्योगिकी कहते हैं। उन सभी मान्य तरीकों (विधियों) का समूह जिससे मानव समाज का कोई घटक अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है प्रौद्योगिकी है। इन दोनों ही परिभाषाओं में व्यावहारिक पक्ष पर जोर है और औद्योगिक स्तर की प्रक्रिया अन्तर्निहित है। जैव–प्रौद्योगिकी को परिभाषित करते समय प्रौद्योगिकी शब्द के इन्हीं पक्षों को आत्मसात् करने का प्रयास किया गया है।

जैव–प्रौद्योगिकी को विभिन्न संगठनों एवं व्यक्तियों ने अपनी–अपनी अभिरुचि एवं पूर्वाग्रहों के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है। इनमें से कुछ परिभाषाएँ तालिका–1 में दी गयी हैं।

तालिका–1 जैव–प्रौद्योगिकी की परिभाषाएँ

1. जैव–प्रौद्योगिकी का संबन्ध जैविक गतिविधियों का तकनीकी एवं औद्योगिक उत्पादन में उपयोग से है। इसमें सूक्ष्म–जैविकी, जैव–रसायन विज्ञान, प्रौद्योगिक रसायन विज्ञान (अथवा रसायन अभियांत्रिकी) और प्रक्रम–अभियांत्रिकी का समावेश होता है।
   –डेकेमा, जर्मनी (1976)
2. जीवाणुओं, जैविक तंत्रों अथवा जैविक प्रक्रमों का औद्योगिक उत्पादन एवं लोकसेवी उद्योगों में अनुप्रयोग–जैव–प्रौद्योगिकी है।
   –संयुक्त कार्यकारिणी समिति का प्रतिवेदन, ब्रिटेन (1980)
3. जीवाणुओं, पादपों अथवा प्राणि–कोशिकाओं अथवा उनके घटकों का उत्पादन एवं लोक–सेवा हेतु उपयोग–जैव–प्रौद्योगिकी है।
   –कनाडा के लिए विकास कार्यक्रम (1981)
4. जीवाणुओं एवं अन्य जैव–रासायनिक कारकों द्वारा वांछित उत्पादों की प्राप्ती एवं लोक–सेवा से संबंधित विज्ञान।
   –विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के लिए मूल्यांकन एवं भविष्यवाणी उप–कार्यक्रम–शोध क्रियाकलाप(1981)
5. जैव–रसायन विज्ञान, सूक्ष्म–जैविकी तथा अभियांत्रिकी के समन्वित उपयोग से सूक्ष्म जीवाणुओं अथवा संवर्धी ऊतक, कोशिकाओं और उनके घटकों की क्षमता का औद्योगिकी स्तर पर उपयोग।
   –यूरोपीय जैव–प्रौद्योगिकी संगठन (1981)
6. जैव–रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, सूक्ष्म–जैविकी एवं रसायन अभियांत्रिकी का औद्योगिक प्रक्रमों एवं उत्पादों हेतु अनुप्रयोग।
   –अन्तर्राष्ट्रीय शुद्ध एवं प्रयुक्त रसायन संघ (1981)
7. अभियांत्रिकी एवं विज्ञान के सिद्धान्तों के प्रयोग द्वारा जैविक कारकों की सहायता से पदार्थों की प्राप्ति एवं लोक–सेवा।
   –जैव प्रौद्योगिकी : अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्ति एवं परिप्रेक्ष्य
   – आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (1982)
8. औद्योगिकी प्रक्रमों में जीवाणुओं अथवा उनकी जैविक क्रियाओं का अनुप्रयोग ही जैव–प्रौद्योगिकी है।
   –कृषि विभाग, सं.रा. अमेरिका (1988)
9. भौतिक विज्ञान, प्राणि विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के समन्वित प्रयोग द्वारा ऐसी शक्तिशाली प्रक्रियाओं एवं ऐसे साधनों का विकास जिनसे उद्योगों में औद्योगिक प्रक्रमों की सहायता से व्यापारिक उत्पादों की प्राप्ति हो सके।
   –अमेरिकी रसायन संस्था (1988)
10. ऐसी कोई भी तकनीक जिसमें जीवाणुओं अथवा उनके घटकों द्वारा उत्पादों का निर्माण अथवा रूपान्तरण एवं पादपों और जीवधारियों में सुधार होता है अथवा विशेष उपयोग हेतु नये जीवाणुओं का विकास किया जाता है, जैव–प्रौद्योगिकी है।
    –अमेरिकी रसायन संस्था (1988)
11. औद्योगिक प्रक्रमों में जीवाणुओं अथवा उनके घटकों का प्रयोग –प्रयुक्त आनुवंशिकी का सूक्ष्म जीवाणुओं, पादपों और जीवों पर प्रभाव।
    –प्रौद्योगिकी मूल्यांकन विभाग, सं.रा.अ. कांग्रेस की रिपोर्ट (1981)
12. प्रयुक्त जैविक प्रक्रियाओं का विज्ञान अथवा जीवाणुओं और उनके सक्रिय घटकों अथवा उच्च वर्ग के जीवधारियों की कोशिकाओं एवं ऊतकों पर आधारित प्रक्रमों का विज्ञान।
    –जैव–प्रौद्योगिकी – डच प्ररिपेक्ष्य (1981)
13. जैविक कारकों जैसे जीवित अथवा मृत कोशिकाओं, और उनके घटकों के नियन्त्रित एवं विवेचित प्रयोग द्वारा लाभप्रद औद्योगिकी उत्पादन एवं लोक–सेवा कार्य।
    –जे.डी. बुलॉक (1987)

इन परिभाषाओं से यही परिलक्षित होता है कि जैव–प्रौद्योगिकी प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जीवाणुओं अथवा उनके घटकों का कार्य क्षेत्र है। आर्थिक लाभ एवं मानवीय कल्याण के लिए जीव विज्ञान का व्यापक प्रयोग इसका मुख्य लक्ष्य है। वस्तुतः यह एक बहुविधायी विषय है जिसमें अनेक विषयों का समावेश हैं (चित्र–1)। जीव विज्ञान, आनुवांशिकी, कोशिका विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, कृषि विज्ञान, विषाणु विज्ञान, जैव–रसायन अभियांत्रिकी, संगणक विज्ञान आदि इसके आधारस्तंभ है। इसके साथ प्रबन्ध शास्त्र, अर्थशास्त्र व समाज एवं राजनीति विज्ञान को भी सम्मिलित करना होगा जो इसके अनुप्रयोगों को विपणन प्रौद्योगिकी में परिवर्तित करने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं तथा जिनके सहयोग के बिना जैव–प्रौद्योगिकी की उचित उपयोगिता नहीं होगी।

चित्र–1: जैव प्रौद्योगिकी एवं अन्य विषयों का अंतःसम्बन्ध
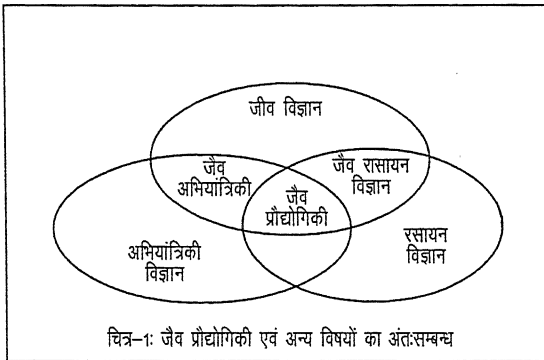
जैव–प्रौद्योगिकी का वर्गीकरण एवं उसके कार्यक्षेत्र

जैव–औद्योगिक क्रांति जैव–प्रौद्योगिकी का सर्वोच्च लक्ष्य व उद्देश्य है। प्लास्टिक, रंग रोगन, कृत्रिम रेशम बनाने के लिए कच्चा माल प्राप्ति के नये साधन, जीवाणुओं की सहायता से तेल निकालना, ऐसी फसल पैदा करना जो अपना उर्वरक स्वंय तैयार कर सके आदि जैव–प्रौद्योगिकी के मुख्य कार्यक्षेत्र हैं।

जैव प्रौद्योगिकी को हम औद्योगिकी क्षेत्र, परिमाण एवं मूल्य तथा प्रौद्योगिकी के स्तर के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं (तालिका–2)। प्रथम वर्ग का आधार उत्पादनों का रासायनिक स्वरूप है जबकि दूसरे वर्ग का आधार उत्पाद का परिमाण एवं उसका लागत मूल्य है। तीसरा वर्ग प्रौद्योगिकी की सुगमता व क्लिष्टता पर आधारित है।

अब हमें विभिन्न कार्यक्षेत्रों में जैव–प्रौद्योगिकी का संभावित योगदान किस प्रकार का होगा अथवा किस प्रकार का योगदान अब तक हो रहा है आदि पर विचार करना उचित होगा।

कृषि एवं खाद्य

कृषि एवं खाद्य में जैव–प्रौद्योगिकी विशेष योगदान कर सकती है। इसकी सहायता से निम्नलिखित लाभ संभव हैं–

- कृषि कार्यों से होने वाले प्रदूषण को रोककर प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता का संरक्षण
- कृषि उत्पादन की लागत में कमी
- कृषि उत्पादन में वृद्धि
- उन्नत बीजों एवं पशु नस्लों का विकास
- कृषि उत्पादों के विक्रय से अधिक लाभ
- स्वास्थ्यकर एवं संतुलित आहार एवं खाद्य पदार्थों का संरक्षण पैरों एवं मुँह की बीमारियों से पशुओं को बचाने के लिए टीके पशुओं की वृद्धि को बढ़ाने वाले पदार्थ
- ऊसर, खारी एवं शुष्क भूमि में हो सकने लायक फसलों का विकास

भविष्य में इसकी सहायता से तम्बाकू के बेहतर व अहानिकर विकल्प की खोज, टिक्का के लिए एककोशीय कोलाजन का विकास, अद्भुत व नूतन फूलों के पौधों का विकास, मनुष्य पर नये भोजन अथवा नई दवाओं के प्रभाव का आकलन व विश्लेषण आदि संभव हैं। भारत जैसी अधिक जनसंख्या वाले देश के लिए इन सबका विशेष महत्व है।

नाइट्रोजन–स्थिरीकरण में भी जैव–प्रौद्योगिकी योगदान कर सकती है। फसल में वायुमण्डल से प्राप्त नाइट्रोजन–स्थिरीकरण की क्षमता को बढ़ाने से न सिर्फ नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक खाद की बचत होगी बल्कि नाइट्रेट द्वारा होने वाले प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है। इसी प्रकार बीजों में प्रोटीन की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है। जैसे–अधिक प्रोटीनयुक्त गेहूँ की पैदावार प्राप्त की जा सकती है; फसलों की संक्रामक रोगों से बचने की

तालिका-2 जैव-प्रौद्योगिकी का वर्गीकरण

आधार	प्रकार	उत्पाद
1. औद्योगिक	रसायन	एसीटोन, ब्यूटेनाल, इथेनॉल, कार्बनिक अम्ल, एन्जाइम, सुगंध, बहुलक, धातुएँ
	ओषधि	एन्टीबायोटिक, निदान कारक, एन्जाइम अवरोधक, स्टेरॉयड, टीके
	ऊर्जा	जैव पदार्थ, एल्कोहल, मीथेन (बायो गैस)
	खाद्य पदार्थ	अमीनो अम्ल, पेय पदार्थ, नानबाई का यीस्ट (प्रकिण्व), नये खाद्य पदार्थ, मशरूम, स्टार्च, ग्लूकोज, उच्च फ्रक्टोज सिरप, जीव-विष अपनयन / निवारण
	कृषि	पशु आहार, साइलो-संरक्षण, कम्पोस्टिंग, नाइट्रोजन ,स्थिरीकरण, पशु टीके, जैविक कीट नाशक, पादप कोशिका एवं ऊतक संवर्धन, आनुवंशिक रूपान्तरण
	लोक-सेवा	विश्लेषण के उपकरण, अपशिष्ट निस्तारण, जल संशोधन,अपशिष्ट प्रबंधन
2. परिमाण एवं मूल्य	अधिक परिमाण, कम मूल्य	पशु आहार, जैव पदार्थ, एल्कोहल, मीथेन, जल संशोधन, अवजल संशोधन,
	अधिक परिमाण, मध्यवर्ती मूल्य	अमीनों एवं कार्बनिक अम्ल, ऐसिटोन, ब्यूटेनॉल, खाद्य पदार्थ, नानबाई का यीस्ट, धातुएँ, बहुलक
	कम परिमाण, अधिक मूल्य	एन्टीबायोटिक एवं अन्य स्वास्थ्यरक्षक एन्जाइम, विटामिन
3. प्रौद्योगिकी का स्तर	उच्च स्तर	खाद्य संयोजी, मानव खाद्य, स्वास्थ्य रक्षक
	माध्यमिक स्तर	किण्वित खाद्य, पेय, जैव-उर्वरक, कीटाणुनाशक, एन्जाइम
	निम्न स्तर	प्रदूषण नियंत्रण, स्वच्छता, ईंधन, पशु आहार

क्षमता को बढ़ाया जा सकता है तथा जैव-कीटनाशकों के प्रयोग द्वारा रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कम किया जा सकता है एवं उनके दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है।

ईधंन एवं ऊर्जा

ईंधन एवं ऊर्जा की बढ़ती कमी को विश्व स्तर पर अनुभव किया जा रहा है तथा इसके बचने के लिए ऊर्जा संरक्षण, वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों के विकास आदि पर बल दिया जा रहा है। जैव-प्रौद्योगिकी इस क्षेत्र में काफी योगदान कर सकती है। ब्राजील में वैज्ञानिकों ने एल्कोहल का मोटरगाड़ियों में ईंधन की तरह सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। बायोगैस (मीथेन) को भी ईंधन की तरह प्रयोग में लाया जाता है। उपयुक्त जैव-प्रौद्योगिकी की सहायता से शहरी मल-मूत्र व कूड़ा-कचरा, कृषि कार्यो से प्राप्त ठोस अवशिष्ट, कागज, चीनी मिलों आदि से उत्पन्न अवशिष्ट पदार्थों से बायोगैस प्राप्त की जा सकती है।

अब तक उपलब्ध प्रौद्योगिकी द्वारा भूमिगत कच्चे खनिज तेल का 40-50 प्रतिशत भाग ही निकाला जा सकता है। जैव-प्रौद्योगिकी की मदद से अब शेष बचे तेल को निकाला जा सकता है। प्रचलित सामान्य तरीकों द्वारा भूमिगत कच्चे तेल की लगभग 40-50 प्रतिशत मात्रा ही प्राप्त की जा सकती है। शेष तेल को माध्यमिक तेल निष्कर्षण विधियों द्वारा प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इन विधियों में विशिष्ट रसायनों के जलीय घोल को भूमि के नीचे भेजा जाता है। इस घोल के दबाव एवं रसायनों के प्रभाव से चट्टानों के रन्ध्रों में फँसा तेल बाहर निकल आता है। इनमें से कुछ रसायन (जैन्थान गोंद) जीवाणुओं की मदद से प्राप्त किए जा सकते हैं। वैज्ञानिक ऐसी प्रक्रियाओं के विकास में लगे हैं जिनकी मदद से जीवणुओं को तेल के कुओं में प्रविष्ट कराकर उनके द्वारा उसी स्थान पर (*in situ*) कच्चे तेल की निकासी में उपयोगी रसायनों को प्राप्त किया जा सकेगा। इन विधियों द्वारा 70-80 प्रतिशत के ऊपर तेल की प्राप्ति हो सकती है।

जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा प्राप्त हो सकने वाली ऊर्जा का सबसे अच्छा उदाहरण हाइड्रोजन है जो कि जल के जैव-प्रकाशीय विखण्डन से प्राप्त हाइड्रोजनयुक्त हाइड्रोजीनेज एन्जाइमों के संयोग से संभव होता है (चित्र-2)। इस प्रक्रिया में किसी प्रकार का प्रदूषण या प्रदूषित पदार्थ उत्पन्न नहीं होते हैं।

पौधे प्रकाशीय–संश्लेषण के द्वारा अपनी वृद्धि करते हैं। इस क्रिया में पत्तियों में विद्यमान क्लोरोफिल उनकी सहायता करती है। क्लोरोप्लास्ट में विद्यमान क्लोरोफिल प्रकाश की उपस्थिति में उत्पन्न इलेक्ट्रॉन एवं हाइड्रोजीनेज एन्जाइम की सहायता से हाइड्रोजन आयन (H^+) को हाइड्रोजन गैस में परिवर्तित कर देता है। इस

चित्र–2: प्रकाशीय संश्लेषण उपकरण द्वारा हाइड्रोजन का उत्पादन
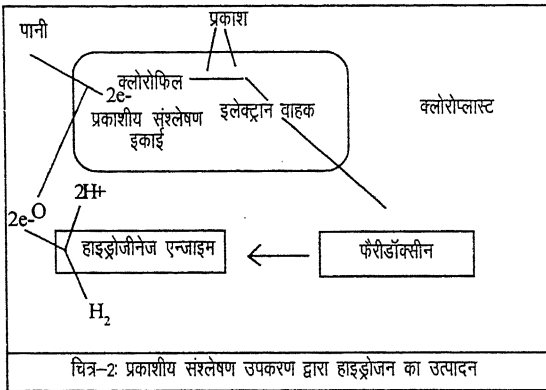
प्रक्रिया में हाइड्रोजीनेज एन्जाइम जीवाणुओं (जैसे क्लोस्ट्रीडियम ब्यूटिरिक अथवा सियानोबैक्टीरिया) से प्राप्त होते हैं एवं एसकार्बेट या फैरीडाक्सिन हार्मोन इलेक्ट्रॉन वाहक का कार्य करते हैं।

अवशिष्ट संशोधन

अवजल संशोधन में जैव–प्रौद्योगिकी का प्रयोग उन्नीसवीं सदी से ही होता है। जैसे–जैसे पर्यावरण समस्याओं के बारे में संवेदनशीलता बढ़ती गयी, जैवीय प्रक्रियाओं के अनुप्रयोग भी बढ़े तथा साथ ही उपकरणों में उचित सुधार भी होते गये।

आजकल के अवजल संशोधन संयंत्र जैव–प्रौद्योगिकी के बृहद् पैमाने पर अनुप्रयोग के अच्छे उदाहरण हैं। इनमें कई प्रकार के सूक्ष्मजीवाणुओं के सम्मिश्रण का प्रयोग होता है जो अवजल में विद्यमान अवशिष्ट उत्पादों को हानिरहित उत्पादों में विखण्डित करते हैं। इसी प्रकार दूसरे अवशिष्ट पदार्थ (कागज उद्योग, चीनी उद्योग) भी उपयोगी पदार्थों में परिवर्तित होते हैं। अवशिष्ट पदार्थों पर जीवाणु पैदा करके पशुओं के लिए एककोशीय प्रोटीन (सस्ता भोजन) भी प्राप्त हो सकता हैं। आने वाले वर्षों में जैव–प्रौद्योगिकी द्वारा वायु प्रदूषण को भी कम किया जा सकता है।

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य

जैव–प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप सुविधाओं में आशातीत सुधार हुआ है। मधुमेह की चिकित्सा के लिए इन्सुलिन (1985), कैंसर के लिए इन्टरफेरॉन (1987), विषाणुरोधी इन्टरफेरॉन (1988), हेपाटाइटिस बी वैक्सीन (1990), वृद्धि हारमोन (1990) आदि इसके उपयोग द्वारा प्राप्त नये उत्पाद हैं। कैंसररोधी इन्टरफेरॉन में ट्यूमर नेक्रासिस फैक्टर (टी0एन0एफ0) के विद्यमान होने से कुछ वैज्ञानिक इसके उपयोग के प्रति शंकालु हैं। रासायनिक रूप से परिवर्तित सूअर के इन्सुलिन पर भी कार्य चल रहा है।

बीते हुए दशक में सर्दी जुकाम के लिए वैक्सीन, उत्तम एवं विश्वसनीय स्वनिदान उपकरण, अधिक सक्षम दवाएँ आदि के विकास के लिए किए गए शोध कार्यों से इनके औद्योगिक स्तर पर उत्पादन की संभावना बढ़ी है। हाईब्रिडोमा प्रक्रिया द्वारा तैयार एक–कृत्तिकीय एन्टीबाडी को कई रोगों के निदान के लिए भी प्रयोग किया जा रहा है।

हृदय रोग एवं रक्तवाहिनियों के रोगों के लिए नये एवं उन्नत इलाज, नये एवं उन्नत प्रतिजैवियों का विकास ताकि ऐसे रोगाणुओं को जिनमें प्रचलित प्रतिजैवियों के प्रति प्रारोध उत्पन्न हो , खत्म किया जा सके, मलेरिया, निद्रा रोग, इन्फ्लूएन्जा आदि रोगों के शीघ्र निदान हेतु उपकरण, अंग मिलान के उन्नत उपाय ताकि अंग–प्रत्यारोपण हो सके तथा शारीरिक रसायन में सुधार के तरीके जिनमें वंशानुगत रोगों जैसे हीमोफीलिया का सही इलाज हो सके आदि पर भी कार्य हो रहा है।

आनुवांशिक अभियांत्रिकी द्वारा भी कुछ रोगों के निदान के लिए उत्पाद प्राप्त हो सकते हैं। इसके द्वारा या तो उपयोगी प्रोटीन के उत्पाद प्राप्त हो सकते हैं अथवा पोषित जीवाणु में महत्वपूर्ण रूपान्तरण हो सकते हैं। इसी प्रकार हारमोन, टीके, एन्जाइम आदि का भी कुछ सूक्ष्म–जीवाणुओं की सहायता से बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव है।

–रसायन अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विभाग
प्रौद्योगिकी संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

जीन इंजीनियरी

✍ जगदीप सक्सेना

"उस जगह तम्बाकू के पौधे जुगनू की तरह रोशनी छोड़ते हैं। ताज्जुब की बात यह है कि उनमें हमारी सेहत को नुकसान पहुँचाने वाला निकोटीन नहीं होता। पास के खेत में नीले गुलाब खिलते हैं। कुछ और फूल हैं जिन्हें जब मर्जी हो खिला लो और एक खेत के पौधों से तो प्लास्टिक मिलता है। वहां की भेड़ों से इतना महीन ऊन मिलता है कि कभी देखा नहीं।"

यह किसी कल्पना लोक या जादू की नगरी का वर्णन नहीं है। जीन इंजीनियरी की कला ने यह सब सच कर दिखाया है। इसकी शुरुआत सन् 1978 में हुई जब स्टैनफोर्ड और कैलिफोर्निया युनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने डी.एन.ए. को काटने-छांटने और फिर जोड़ने की तकनीक विकसित कर ली। यह अनोखी पहल एक बैक्टीरिया में की गई। बैक्टीरिया के एक प्रभेद के डी.एन.ए को काटकर दूसरे प्रभेद के डी.एन.ए. में जोड़ा गया। उल्लेखनीय है कि इसी डी.एन.ए. में हजारों की तादाद में वे करामाती जीन लगे होते हैं, जो जीवों के हर अच्छे-बुरे गुण के जिम्मेदार होते हैं।

बैक्टीरिया से हुई यह पहल जीन के लेन-देन के लिए आज भी बैक्टीरिया की मोहताज है। पौधों में नये जीन रोपने के लिए एग्रोबैक्टीरियम ल्यूमीफेशिएन्स नामक बैक्टीरिया को जीन वाहक बनाया जाता है। पर प्राणियों में यह काम मुश्किल है। इसके लिए विकसित हो रहे भ्रूण की सूक्ष्म सर्जरी करनी पड़ती है। यही वजह है कि वैज्ञानिकों ने जीन के हेर-फेर के ज्यादातर जादू पेड़-पौधों में दिखाये हैं। इनकी पहल कुदरत के सबसे सरल जीव बैक्टीरिया पर ही की गई।

भारतीय मूल के अमेरिकावासी वैज्ञानिक आनंद चक्रवर्ती ने स्यूडोमोनोस नामक बैक्टीरिया के जीन में कुछ इस तरह हेर-फेर किया कि वे तेल खाने लगे। तेल प्रदूषण से त्रस्त समुद्र तटों पर इनका भारी उपयोग है। उन्होंने दुनिया के इस पहले 'कृत्रिम जीव' का पेटेन्ट भी प्राप्त किया। इसके बाद बैक्टीरिया से कई तरह के काम लिए गये। खाने से लेकर कूड़ा-कचरा तक नष्ट करने वाले बैक्टीरिया प्रयोगशालाओं में तैयार किये गये। आस्ट्रेलियन नेशनल युनिवर्सिटी के वैज्ञानिक ऐसे बैक्टीरिया तैयार करने में जुटे हैं, जो मिट्टी की उर्वरता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ा देंगे।

पेड़-पौधों में कुछ बैक्टीरिया के खास गुण भी डाले जा रहे हैं। मसलन एक बैक्टीरिया कुदरती तौर पर प्लास्टिक पॉलीमर तैयार करता है- एक खास जीन की बदौलत। अगर इसी जीन को किसी पौधे में डाल दिया जाय तो वह भी प्लास्टिक बनाने लगेगा। पौधों में बनी यह प्लास्टिक कारखानों में तैयार प्लास्टिक की तरह पर्यावरण के लिए समस्या नहीं बनेगी। इस कल्पना को क्रिस सोमरविले और उनके साथियों ने हाल ही में साकार किया है। जीन इंजीनियरी से तैयार इस पौधे की पत्तियों, बीजों, यहां तक कि जड़ों में भी प्लास्टिक पाया गया।

प्राणियों के जीन भी पेड़-पौधों में रोपे जा सकते हैं। अमेरिका में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने जुगनू में चमक पैदा करने वाला जीन तम्बाकू के पौधे में डाल दिया। फिर जब तम्बाकू के पौधों पर उस जीन से बनने वाला एंजाइम छिड़का गया तो वे रात में 'दप-दप' करने लगे। इस जीन को फूल वाले पौधों में डालने की कोशिश भी की जा रही है। तब आपकी फुलवारी में हर रात दीवाली होगी। इस जीन का इस्तेमाल फसलों में भी किया जा रहा है। इस जीन से युक्त पौधे पर जैसे ही किसी रोग या कीड़े का हमला होगा, यह तुरन्त टिम-टिम करके किसानों को आगाह कर देगा।

जीन इंजीनियरी की मदद से वैज्ञानिक फूलों में ऐसे रंग भरने की कोशिश कर रहे हैं, जो उन्हें कुदरत ने नहीं दिये। मसलन नीला गुलाब, गुलदाउदी वगैरह। हाल ही में आस्ट्रेलिया की कैल जीन पैसिफिक नामक कंपनी ने कुछ नीले फूलों से नीला रंग पैदा करने वाला जीन गुलाबों में डाल दिया। आश्चर्य, उस पौधे में नीले गुलाब खिलने लगे। उम्मीद है अगले साल ऐसे नीले गुलाबों की खेती शुरू हो जायेगी। इससे फूलों के व्यापार में क्रांतिकारी

बदलाव आने की संभावना है।

ब्रिटेन, जर्मनी और अमेरिका में हुई एक अन्य खोज भी फूलों के व्यापार को बदलने का दावा करती है। इन वैज्ञानिकों ने उन जीनों का पता लगा लिया है जो फूल खिलाने का काम करते हैं। इन्हें 'फूलों' का नाम दिया गया है। मजेदार बात यह है कि ये जीन एंटीराइनम के एक ऐसे पौधे से अलग किये गये, जिसमें फूल खिलते ही नहीं थे। फूल खिलाने का काम कुल मिलाकर पांच जीन करते हैं। इन जीनों को कृत्रिम रूप से सक्रिय करके बिना मौसम के भी फूल खिलाये जा सकते हैं। इसी तरह इनमें से कुछ जीनों को ज्यादा सक्रिय और कुछ को निष्क्रिय करके फूलों की पंखुड़ियों की संख्या, रंग और रूप में भी मनचाहा बदलाव लाया जा सकता है। चार-पांच साल के भीतर ही ऐसे 'नकली' फूल आपके गुलदस्ते में होंगे।

जीन में हेर-फेर करके तमाम फसलों को हमारे लिए उपयोगी बनाया जा रहा है। अब जीन में हेर-फेर करके जहरीली खेसारी दाल को खाने योग्य बनाया जा सकता है। तम्बाकू की ऐसी किस्में निकाली गई हैं जिनमें नाममात्र को निकोटीन होता है। ऐसे आलू तैयार किये गये हैं, जिनमें स्टार्च की मात्रा ज्यादा होती है। तेल और प्रोटीन देने वाले पौधों में इनकी मात्रा बढ़ाने के प्रयास जारी हैं। कुछ पौधों से ऐसे रसायन प्राप्त करने की कोशिश की जा रही है, जो हमारे लिए बेहद उपयोगी हैं। मसलन सीरम एल्बुमिन, अनेक उपयोगों वाले एंजाइम वगैरह।

प्राणियों में जीन-इंजीनियरी की कला सबसे पहले चूहों पर आजमायी गयी। इनमें मानव, मुर्गियों, वायरस आदि के जीन प्रवेश कराये गये। पर पहली बड़ी सफलता सन् 1982 में वाशिंगटन और पेनसिलवेनिया युनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों को मिली। इन्होंने बड़े चूहे का बढ़वार वाला जीन छोटी चुहिया में रोप दिया। बस फिर क्या था, चुहिया भी चूहे जैसी हो गयी। इस सफलता का उपयोग भेड़ों में भी किया गया। साथ ही भेड़ों से महीन और ज्यादा ऊन लेने के प्रयास भी किये गये।

चूहे आज भी जीन इंजीनियरों की छेड़-छाड़ के लिए पसंदीदा प्राणी हैं। पिछले साल लंदन के 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल रिसर्च', के वैज्ञानिकों ने चूहे के मादा भ्रूण में एक जीन डालकर उसे नर चूहे में बदल दिया। पर यह नर नपुंसक है। वैज्ञानिकों की राय में वह दिन भी दूर नहीं जब संतानोत्सर्जन योग्य नर चूहा भी प्रयोगशालाओं में तैयार किया जा सकेगा। इस खोज के बड़े दूरगामी और खतरनाक परिणाम भी हो सकते हैं।

दो वर्ष पूर्व एक अन्य प्रयोग में चूहे के शरीर में कैंसर पैदा करने वाला जीन डाल कर एक किस्म का नया चूहा ही तैयार कर दिया गया। इसे वैज्ञानिक 'आनकोमाउस' यानी कैंसर मूषक कह रहे हैं। इसका पेटेन्ट भी करा लिया गया है। इसे मँहगे दामों पर बेचा जाएगा। कैंसर पर खोज कर रहे वैज्ञानिकों के लिए यह चूहा बड़े काम का है। कुदरत के काम में मानव की दखलअंदाजी लगातार बढ़ती ही जा रही है।

(– साभार)

'चेतना' पर राष्ट्रीय सेमिनार सम्पन्न

"चेतना अनुभूति का विषय है। भारतीय दर्शन में सर्वत्र इस अनुभूति की अभिव्यक्ति मिलती है। चेतना के संदर्भ में भारतीय मनीषा के अनुभवों पर आज सभी विषयों के विद्वानों को एक साथ बैठकर विचार करने की आवश्यकता है।" ये उद्गार केन्द्रीय मानव संसाधन विकास, विज्ञान और प्रोद्योगिकी तथा महासागर विकास मंत्री, डॉ0 मुरली मनोहर जोशी ने नेशनल ब्रेन रिसर्च सेंटर, नई दिल्ली, इलाहाबाद संग्रहालय, भारतीय शोध संस्थान, शिमला और नेशनल एकेडमी ऑफ साइंस, इलाहाबाद के संयुक्त तत्वावधान में 12–13 अक्टूबर को आयोजित 'चेतना'(Consciousness) विषयक राष्ट्रीय सेमिनार के उद्घाटन के अवसर पर व्यक्त किये।

जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार की सचिव डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा ने इस अवसर पर कहा कि चेतना पर पश्चिमी देशों में विशेष शोध हो रहे हैं। भारत इस विषय में मौलिक योगदान कर सकता है। प्रो0 पी.एन. टंडन ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि चेतना को समझने के लिये वेदान्त का अध्ययन आवश्यक है। उन्होंने इस सन्दर्भ में रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द के चिन्तन पर विचार करने की सलाह दी। प्रो0 जी.सी. पाण्डेय, प्रो0 राममूर्ति तथा प्रो0 डी.पी. चट्टोपाध्याय ने भी इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त किये। कार्यक्रम का संचालन सुश्री वी. रवीन्द्रनाथ ने किया। इस दो दिवसीय सेमिनार में देश के अनेक प्रख्यात न्यूरोसर्जन, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, भौतिकविद् व आध्यात्मिक क्षेत्र से जुड़े विद्वानों ने भाग लिया।

– देवव्रत द्विवेदी

सांख्य माध्यमों द्वारा विज्ञान संचार

✍ डॉ0 मनोज पटैरिया

देश के कोने–कोने में वैज्ञानिक संदेश और वैज्ञानिक सूचनाओं के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से आम जनता के बीच विज्ञान संचार के लिए विभिन्न संचार माध्यमों का उपयोग किया गया है। इन जन संचार माध्यमों में मुद्रित (समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पुस्तकें, आदि); इलेक्ट्रानिक (रेडियो और टेलीविजन); लोक (नुक्कड़, नाटक, कठपुतली, लोकगीत, नाटक आदि) और पारस्परिक सम्पर्क/भागीदारी (संगोष्ठियां, कार्यशालाएं, प्रदर्शनियां, संग्रहालय, आदि) जैसे माध्यम शामिल हैं। नए सांख्य (Digital) माध्यम के आविर्भाव ने संचार के नए परिदृश्य खोल दिए हैं और चुटकियों में पहुंच, विविधता तथा सूचना की गुणवत्ता के रूप में सभी संचार माध्यमों को पीछे छोड़ दिया है।

सभी माध्यमों की अपनी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ होती हैं। जब टेलीविजन का आगमन हुआ तो लोग इससे बहुत ही उत्तेजित थे क्योंकि यह भी माना जा रहा था कि टेलीविजन के आगमन से रेडियो की पकड़ पूरी तरह समाप्त हो जाएगी। परन्तु बहुत सारे उपग्रह टी वी चैनलों के आ जाने के बाद भी रेडियो की लोकप्रियता कम नहीं हुई है। इसी तरह सांख्य माध्यम को लेकर भी अनेक तरह की आशंकाएँ हैं– क्या इससे पहले से ही प्रचलित जन संचार माध्यमों की लोकप्रियता प्रभावित होगी? पिछले अनुभवों से यह प्रतीत होता है कि कोई भी माध्यम केवल इस वजह से कि वह नया है, पहले से मौजूद माध्यम को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। इसके अतिरिक्त हमारी विविधतापूर्ण सामाजिक–आर्थिक संस्कृति में अधिक प्रभावशाली और अधिक व्यापक रूप से संचार के लिए सभी माध्यमों की साथ–साथ आवश्यकता होती है। नए उभर कर सामने आ रहे सांख्य माध्यम में निहित अपार संभावनाओं को देखते हुए यह आशा की जा सकती है कि अन्य माध्यमों को अधिक सूचनाप्रद, अधिक आधुनिकतम, अधिक सशक्त बनाने तथा लक्षित वर्गों के श्रोताओं/पाठकों/दर्शकों को बेहतर सेवा प्रदान करने के लिए निश्चित ही यह माध्यम दूसरे अन्य माध्यमों के लिए सम्पूरक साबित होगा।

सांख्य प्रौद्योगिकी (**Digital Technology**) और सांख्य माध्यम

बीसवीं शताब्दी ने पारंपरिक संचार माध्यमों को आधुनिक संचार माध्यमों में बदलते हुए देखा है। लोक माध्यमों, मुद्रण और लेखन माध्यम से कुछ कदम आगे रेडियो, टेलीविजन और उपग्रह समर्थित संचार तथा दूर संचार ने संचार के क्षेत्र में मूलतः क्रान्ति ला दी है। प्रारंभ में निर्वात नली ने संचार साधनों के लिए मुख्य प्रौद्योगिकी प्रदान की। इसके पश्चात् ट्रांजिस्टर आया जिसने ठोस अवस्था प्रौद्योगिकी के लिए आधार प्रदान किया। इसके पश्चात् अगले चरण के रूप में एकीकृत परिपथ आए, जिसने आगे चल कर सांख्य प्रौद्योगिकी की वृद्धि में सहायता की। अब इक्कीसवीं सदी का उषाकाल तीव्रगामी, बहुआयामी, और बहुउद्देशीय सांख्य प्रौद्योगिकी के आगमन का साक्षी है।

सांख्य प्रौद्योगिकी सूचना को विद्युतीय स्पन्दन की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के रूप में निरूपित करती है। सांख्य संकेत अधिक खरे होते हैं और सांख्य तकनीक ठोस अवस्था इलेक्ट्रॉनिकी तथा कम्प्यूटर जनित सूचना के लिए बहुत उपयुक्त होती है। अधिकांशतः सांख्य नेटवर्क को सीधे घरों और व्यावसायिक केन्द्रों तक तेज गति से सांख्य (अंकीय) संकेतों को पहुँचाने के लिए एक माध्यम की आवश्यकता होती है। गत दिनों के ताँबे के तार और यांत्रिकीय स्विचिंग रिले को एक ही प्रकार के संकेत जैसे टेलीफोन काल, टेलीग्राम अथवा टेलेक्स संदेश के वहन के लिए बनाया गया था। परन्तु आज के उच्च क्षमता वाले प्रकाशीय तन्तु और परिष्कृत सांख्य कम्प्यूटर आवाज; लिखावट अथवा आकृतियों को कम्प्यूटर जनित सांख्य संकेतों में बदल कर संचारित कर सकते हैं।

संचारण की इस प्रणाली में संकेत शून्य (0) अथवा एक (1) संख्याओं के रूप में आते हैं, इसीलिए इन्हें सांख्य कहते हैं। 'शून्य' संकेतों की अनुपस्थिति और 'एक' संकेतों की उपस्थिति का द्योतक है। इसमें कमजोर अथवा क्षीण संकेतों जैसी कोई बात नहीं है– या तो संख्या 1 के रूप में पूर्ण संकेत होगा अथवा 0 संख्या के

रूप में कोई संकेत नहीं होगा। इससे पाठ्य सामग्री, ऑडियो (श्रव्य) अथवा वीडियो (दृश्य) – (स्थिर अथवा गतिशील) के रूप में आंकड़ों का गुणात्मक संचरण और अभिग्रहण सुनिश्चित होता है। इसके विपरीत एनालॉग प्रौद्योगिकी सूचना संकेतों को सतत् परिवर्ती विद्युत धारा के रूप में निरूपित करती है। इसीलिए इसमें स्पार्क, तड़ित, आदि, अनेक कारकों से व्यवधान पड़ता है जबकि सांख्य संचार में संख्याई रूप से संचारित सूचनाएं/आंकड़े इन व्यवधानों से मुक्त रहते हुए पूर्ण और ठीक रूप से पहुँचते हैं।

सांख्य प्रौद्योगिकी से लैस संचार माध्यम को सांख्य माध्यम के रूप में जाना जा सकता है। कम्प्यूटर से जुड़ी हुई सूचना प्रणाली संचार का अनूठा माध्यम हो गयी है। कम्प्यूटर, डिस्केट्स, सीडी–रोम, मल्टीमीडिया, इलेक्ट्रॉनिक प्रकाशन, इन्टरनेट, आन–लाइन पत्रिकाएं, ई–मेल, होम पेज, बुलेटिन बोर्ड प्रणाली, डिजिटल वीडियो डिस्क आदि लोगों के बीच अधिक से अधिक लोकप्रिय होती जा रही हैं और नई नई उभर कर समने आ रही हैं सांख्य माध्यम की संकल्पना, जो पूर्ण विकसित संचार माध्यम का रूप ले रही है। कम्प्यूटर विज्ञान और प्रकाशीय तन्तु विज्ञान के क्षेत्र में हो रही प्रगति ने इस संचार क्रान्ति को संभव कर दिया है। इसने विश्व को और अधिक समीप लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस क्षेत्र में हो रही इस तरह की प्रगति का विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के संचार में प्रभावपूर्ण ढंग से उपयोग किया जा सकता है।

सांख्य माध्यमों के उपयोग की संभावनाएँ

1. बहुमाध्यम या मल्टीमीडिया

आजकल मल्टीमीडिया शब्द ने अत्यधिक महत्व और नया अर्थ अर्जित कर लिया है। पहले इसे मुद्रण, लोक, रेडियो, टेजीविजन, आदि जैसे संचार के विभिन्न माध्यमों के संयोजन के रूप में जाना जाता था। परन्तु इसका नया अर्थ पूर्ण रूप से अलग है। अब मल्टीमीडिया एक कम्प्यूटर से जुड़ी हुई प्रणाली है जो पठन सामग्री, श्रव्य और दृश्य (स्थिर और गतिशील) के रूप में सूचना प्रदान करने में मदद करती है। यह दोतरफा संचार भी प्रदान करती है। पारस्परिक विचार विमर्शी मल्टीमीडिया पैकेज भी उपलब्ध हैं। यदि हम परिकलन और संचार की प्रवृत्तियों को मिला दें तो हमें कम्प्यूटर प्रणाली द्वारा पारंपरिक रूप से संचालित की जाने वाली पाठ्य सामग्री के स्थान पर मल्टीमीडिया सूचनाओं के भण्डार, संसाधन और संचरण के साधन उपलब्ध हो जाते हैं। रंगीन चित्र, ध्वनि और दृश्यों सहित मल्टीमीडिया में मनोरंजन और पठन की सुविधा सहित यह काफी प्रभावशाली भी है। उपयोगकर्ताओं को निःसंदेह मल्टीमीडिया प्रारूप में सूचनाएं दी जा सकती हैं। भविष्य में मल्टीमीडिया सूचनाओं की माँग की काफी संभावना है।

2. सीडी–रोम

कम्पैक्ट डिस्क (सीडी) सांख्य संचार के इस खूबसूरत संचार की एक और प्रणाली है। एक छोटी सी डिस्क में हजारों पृष्ठ भण्डारित किए जा सकते हैं। आजकल अनेक किताबें, विश्वकोश, प्रकाशन सीडी पर उपलब्ध हैं, जिन्हें कम्प्यूटर स्क्रीन पर या तो पठन सामग्री के रूप में अथवा मल्टीमीडिया के रूप में पढ़ा जा सकता है। सूचनाओं से लबालब डिस्क को सीडी–रोम यानि कम्पैक्ट डिस्क–रीड ओनली मेमोरी कहते हैं। आधुनिक संचार के इस माध्यम का उपयोग करने पर धन तथा भंडारण स्थान–दोनों की बचत की जा सकती है,जिनकी भारी–भारी प्रकाशनों के लिए जरूरत पड़ा करती थी।

3. इन्टरनेट

इन्टरनेट विश्व में फैले हुए असंख्य कम्प्यूटरों के नेटवर्क्स का नेटवर्क है। इसमें केन्द्र में कोर कम्प्यूटर जैसी कोई चीज नहीं है। इन्टरनेट विश्व भर में फैली हुई लाखों कम्प्यूटर प्रणालियों से निर्मित एक संयुक्त सृष्टि है। यह किसी को भी पता नहीं है कि इस कम्प्यूटर जाल से कितने कम्प्यूटर जुड़े हुए हैं। कोई 30 वर्ष पूर्व अमेरिका रक्षा विभाग ने सैन्य अनुसंधानकर्ताओं को एक दूसरे के सम्पर्क में रखने के उद्देश्य से एक प्रयोग के तौर पर ऐसे प्रथम कम्प्यूटर नेटवर्क की रचना की थी और आज इन्टरनेट विश्वभर में करोड़ों उपयोगकर्ताओं को एक दूसरे से जोड़ता है। चुटकियों में वांछित सूचनाओं तक पहुंच की इस 'आन–लाइन' सुविधा ने संचार के नए परिदृश्य खोल दिए हैं। इन्टरनेट को संक्षेप में नेट अथवा वेब भी कहा जाता है तथा नेटवर्कों के विशाल तानेबाने की प्रकृति के कारण इसे वर्ल्ड वाइड वेब अर्थात् विश्व व्यापी जाल (WWW) के नाम से भी जाना जाता है।

इस सारे सप्तक को साइबरस्पेस के नाम से जाना जाता है। इस शब्द को सर्वप्रथम एक विज्ञान–कथा लेखक विलियम गिबसन ने गढ़ा था। साइबरस्पेस शब्द साइबरनेटिक्स से उत्पन्न

हुआ है। साइबरनेटिक्स का अर्थ है– जीवों द्वारा विशिष्ट अथवा बढ़े हुए नियंत्रित कार्य सम्पन्न करने के लिए यान्त्रिक अथवा स्वचालित युक्तियों के साथ जीवों के संयोजन का विज्ञान। अतः साइबरस्पेस एक अभिव्यक्ति है, जो एक इलेक्ट्रॉनिक विश्व में कार्यरत मनुष्यों का वर्णन करती है, जहां वे मोडम द्वारा सांख्य संबंधों के माध्यम से, स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क, व्यापक क्षेत्र नेटवर्क, टेलीफोन तारों, प्रकाशीय तन्तुओं, संचार उपग्रहों, आदि, के माध्यम से आंकड़ों/संकेतों को संचारित तथा दूर की युक्तियों के नियंत्रण के लिए कम्प्यूटर का उपयोग करते हैं।

मोडेम, नियंत्रण अथवा अनियंत्रण के लिए एक इलेक्ट्रॉनिक युक्ति है जो कम्प्यूटर तथा टेलीफोन लाइन के बीच एक सम्पर्क साधन के रूप में काम आती है। स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क सीमित भौगोलिक क्षेत्र में फैले हुए कम्प्यूटरों तथा अन्य कम्प्यूटर उपकरणों, जैसे प्रिन्टर्स और मोडेम का एक तानाबाना है जो संचार सम्पर्कों तथा नेटवर्क सॉफ्टवेयर से जुड़े रहते हैं ताकि किसी भी उपकरण के लिए नेटवर्क के किसी भी कम्प्यूटर से परस्पर संबंध स्थापित करना संभव हो सके। इन्टरनेट को व्यापक क्षेत्र नेटवर्क के नाम से जाना जाता है। प्रकाशीय तन्तु बाल के समान पतले तन्तु होते हैं जिनसे होकर एक समय में हजारों संकेत जाते हैं। यह संख्या माध्यम की बैंडविड्थ पर निर्भर करती है। किसी माध्यम की सूचना वहन क्षमता को बैंडविड्थ कहते हैं, जिसे आमतौर पर बाइट्स प्रति सेकण्ड के रूप में मापा जाता है। बाइट, एक बाइनरी संख्या, आंकड़ों की इकाई होती है, जिसे आमतौर पर 0 अथवा 1 के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। बाइट्स परमाणुओं से भिन्न होती हैं इसलिए अलग प्रकार के नियमों का पालन करती हैं। ये भारहीन होती हैं, आसानी से तथा त्रुटिहीन रूप से इनकी प्रतिकृति तैयार की जा सकती है और लगभग प्रकाश की गति से इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है। साइबरस्पेस के माध्यम से सामान्यतया 5 करोड़ बाइट्स प्रति सेकण्ड तक की गति से सूचना का बहाव होता है और शीघ्र ही गति 2 अरब बाइट्स प्रति सेकण्ड से भी अधिक हो जाएगी। इस तरह से पठन सामग्री, ऑडियो और ग्राफिक्स आदि के रूप में वांछित सूचना/आंकड़ों को द्रुत गति से परिशुद्ध रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजना संभव होगा।

इस रोमांचक तथा अत्यधिक क्षमता वाले माध्यम में विज्ञान संचार के क्षेत्र में काफी अधिक अवसर हैं। आजकल विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक स्थान (Site) उपलब्ध हैं। विभिन्न स्थानों के अपने विशिष्ट पतों के साथ इन्टरनेट पर होम पेज मौजूद हैं, जैसे इन्टरनेट पर 'विज्ञान प्रसार' के होम पेज का पता है http://www.vigyanprasar.com। हाइपर टेक्स्ट ट्रांसमिशन प्रोटोकॉल (http) एक कमाण्ड है जिससे लिखित सामग्री को आन–लाइन संचारित किया जा सकता है। होम पेज इन्टरनेट पर किसी संस्थान अथवा व्यक्ति की साइट का स्थान होता है जहां उस संस्थान अथवा व्यक्ति के बारे में विभिन्न प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध रहती हैं, जैसे उनका विवरण, उत्पादों तथा सेवाओं की जानकारी, आदि। इसे वेब पेज के नाम से भी जाना जाता है। कुछ साइट पारस्परिक सूचना आदान प्रदान वाली होती हैं जिसमें आप प्रश्न पूछकर उनके उत्तर प्राप्त कर सकते हैं, खेल सकते हैं, पहेलियां हल कर सकते हैं तथा सीधे बातचीत एवं ई–मेल के माध्यम से दूरदराज के व्यक्ति से विचारविमर्श कर सकते हैं।

विभिन्न संस्थान जो एक किसी बड़े संगठन के अन्तर्गत आते हैं वे इन्टरनेट के माध्यम से एक दूसरे से जुड़े रहते हैं चाहे वे भौगोलिक रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में स्थित हों। इंटरनेट एक व्यापक क्षेत्र नेटवर्क के भीतर अनेक छोटे नेटवर्क मुहैया कराता है। कोई भी व्यक्ति अपने कम्प्यूटर पर कमांड देकर दूरदराज के क्षेत्र में रखे हुए कम्प्यूटर पर कार्य कर सकता है। टेलनेट एक कमांड है जिसकी सहायता से कोई भी व्यक्ति किसी कम्प्यूटर प्रणाली से जुड़कर उसका उसी प्रकार उपयोग कर सकता है मानो वह उसके सामने बैठा हो। यदि आप इंटरनेट पर किसी अन्य कम्प्यूटर से कोई फाइल प्राप्त करना चाहते हैं तो आप बेनाम एफटीपी का उपयोग कर सकते हैं, जिसका मतलब है फाइल ट्रांसफर प्रोटोकाल।

इंटरनेट अनेक प्रणालियों से विभिन्न सम्पर्कों द्वारा जुड़ा होता है। सेतु दो स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क खण्डों के बीच परिवहन सम्पर्क प्रदान करता है चाहे वे एक ही स्थान अथवा दूरदराज के स्थान में स्थित हों। यह सेतु एक स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क को दो अथवा अधिक खण्डों में विभाजित कर देता है, जिससे सूचना यातायात का समग्र बहाव घट जाता है। रूटर स्थानीय अथवा दूरदराज के स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क को आपस में जोड़ देते हैं। वे एक खण्ड के भीतर आंकड़ों को पृथक करते हैं अथवा उन्हें दूसरे खण्ड तक अग्रसारित कर देते हैं। सेतु एक सम्पर्क के उस पार

केवल एक खण्ड तक अग्रसारित करने का काम कर सकते हैं परन्तु रूटर दो से अधिक खण्डों को एक दूसरे से जोड़ सकते हैं। आमतौर पर नेटवर्क संयोजन के लिए हब का इस्तेमाल किया जाता है जो किसी नेटवर्क के प्रबन्ध और नियंत्रण के लिए केन्द्रीय बिन्दु का काम करते हैं। यह एक संवेदनशील बिन्दु होता है क्योंकि सारा सूचना परिवहन हब से होकर ही गुजरता है। वहाँ त्रुटियों को खोजा जा सकता है तथा सूचनाएं निकाली जा सकती हैं। हबों को अधिक नेटवर्क क्षमता प्रदान करने के लिए किसी भवन की ईंटों के समान आपस में जोड़ा जा सकता है। गेटवेज स्थानीय क्षेत्र नेटवर्क पर वर्क स्टेशनों को मेजबान कम्प्यूटर द्वारा प्रदान किए गए संसाधनों तक पहुंचने की अनुमति देता है। यह मेजबान किसी दूरदराज के स्थान में हो सकता है जिस तक पहुंच के लिए वाइड एरिया नेटवर्क की आवश्यकता हो सकती है।

4. इलेक्ट्रॉनिक/आनलाइन प्रकाशन/पत्रिकाएं

आजकल हमें भारी भारी किताबों को ढोने की आवश्यकता नहीं है। अनेकों प्रकाशन जैसे विश्वकोश, पुस्तकें, जर्नल और पत्रिकाएं कम्प्यूटर डिस्केट, फ्लॉपी अथवा सीडी–रोम के रूप में उपलब्ध हैं जिन्हें कम्प्यूटर पर पढ़ा जा सकता है। यहां तक कि अनेक प्रकाशन इंटरनेट पर आनलाइन उपलब्ध हैं। 'काम–काम' भारत की पहली आनलाइन लोकप्रिय विज्ञान पत्रिका है जो इंटरनेट और विज्ञान प्रसार बुलेटिन बोर्ड सर्विस पर उपलब्ध है। अनेकों और आनलाइन प्रकाशन तेजी से आ रहे हैं।

5. आँकड़ा संग्रह

विश्व भर में अनेकों संस्थानों द्वारा वैज्ञानिक विषयों पर अनेक आँकड़ा संग्रह विकसित किए गए हैं। देश इस समय विभिन्न नेटवर्कों के माध्यम से बड़े पैमाने पर नेटवर्किंग के मार्ग पर अग्रसर है। राविप्रौसंप ने राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र के सहयोग से विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार सॉफ्टवेयर, हार्डवेयर और मानव संसाधन पर एकीकृत राष्ट्रीय आंकड़ा संग्रह विकसित करने के लिए एक प्रायोगिक प्रायोजना प्रारंभ की है। प्रायोगिक अवस्था में इस आंकड़ा संग्रह में दिल्ली और हरियाणा को शामिल किया गया है। इसे पूरे देश में विस्तारित किया जा सकता है। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने प्रेस को परिषद् की प्रयोगशालाओं में हो रहे विभिन्न अनुसंधान एवं विकास कार्यों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने के लिए एक त्वरित सूचना सेवा (क्विक एक्सेस इन्फार्मेशन सर्विस) प्रारंभ की है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण सूचना प्रणाली से पर्यावरण संबंधी विषयों पर और कृषि सूचना प्रणाली से कृषि संबन्धी विषयों पर सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। विज्ञान प्रसार की विप्रिस सेवा से विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से जुड़े विभिन्न विषयों पर सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं।

6. कम्प्यूटर की सहायता से दृश्य संचार

सांख्य माध्यम द्वारा शैक्षिक और विज्ञान संचार के उद्देश्य से इसके उपयोग की अपार संभावनाएं निहित हैं। हमारे दैनंदिन जीवन में कम्प्यूटर जनित चित्रों को अधिक से अधिक संख्या में देखा जा सकता है। जैसे टेलीविजन पर (प्रतीक चिन्हों), व्यावसायिक विज्ञापनों में नाचते हुए फलों और दंत मंजन के ट्यूब, फैंटेसी धारावाहिकों में आश्चर्यजनक प्रतिकृतियों के रूप में। कम्प्यूटर की सहायता से तैयार डिजाइनों, सजीव तस्वीरों, ग्राफिक्स को तैयार करने के लिए अनेक प्रकार की गणितीय तकनीकों अथवा एलगोरिथ्म का विकास किया है। इसकी सहायता से त्रिविम (3 डी) आकृतियां बनाई जा सकती हैं। इन्हें तैयार करने के लिए नन्हें नन्हें बिन्दुओं से एक कम्प्यूटर स्क्रीन की रचना की जाती है। ये बिन्दु किसी साइनबोर्ड पर लगे हुए बिजली के बल्ब के समान काम करते हैं। प्रत्येक सूक्ष्म बिन्दु अथवा पिक्सेल को बल्ब की तरह बहुत तेजी से जलाया बुझाया जा सकता है (एक सेकण्ड में दर्जनों बार) और स्क्रीन एक कैनवास तथा प्रकाश रंग का काम करता है। इस प्रकार पिक्चर ट्यूब की चमकती हुई सतह पर कम्प्यूटर एक प्रतिबिम्ब की रचना करता है। आपको बहुत ही रोमांच से भरपूर विज्ञान कथा 'जुरैसिक पार्क' के बारे में याद होगा जिसे देखने के लिए न केवल शहरी बल्कि अर्द्धशहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों से भारी भीड़ उमड़ पड़ती थी। 'जुरैसिक पार्क' के डायनासोर कम्प्यूटर द्वारा तैयार किए गए थे जो केवल सांख्य प्रौद्योगिकी की सहायता से ही सम्भव हो पाया था। कम्प्यूटर ग्राफिक्स का प्रयोग करके विभिन्न प्रकार की कार्टून फिल्में बनाई जा रही हैं और उन्हें टेलीविजन पर दिखाया जा रहा है।

7. बोलती हुई पठन सामग्री

विकलांग व्यक्तियों, विशेष रूप से दृष्टिवाधितों के बीच संचार हेतु इससे अतिरिक्त लाभ हैं। विभिन्न विदेशी भाषाओं में बहुभाषी टैक्स्ट टु स्पीच माड्यूल उपलब्ध हैं। हाल में सी–डैक, पुणे ने विभिन्न भारतीय भाषाओं में बहुआयामी वाक् प्रणाली का विकास

(शेष पृष्ठ 27 पर)

ऐसे बनेंगे आईटी सुपर पावर?

✍ अजीत कुमार द्विवेदी

भारत की सूचना तकनीक क्रांति की हकीकत क्या है? आज दुनिया भर में भारतीय आईटी पेशेवरों की धूम हैं। भारत का सॉफ्टवेयर निर्यात लगातार बढ़ता जा रहा है और भारत आईटी सुपर पावर बनने की तरफ बढ़ रहा है। लेकिन यह जो हवा बनाई गई है, इसमें कितनी सच्चाई है? इसकी पड़ताल के लिए भारतीय आईटी उद्योग की मात्रात्मक उपलब्धियों का नहीं, बल्कि गुणात्मक उपलब्धियों का मूल्यांकन करना होगा। नए बने सूचना तकनीक मंत्रालय के मंत्री बताते हैं कि भारत अगले दस साल में आईटी का भूमंडलीय खिलाड़ी बन जाएगा। भारत में आईटी क्रांति के दस साल से ज्यादा हो गए, लेकिन भारत के गांवों तक कम्प्यूटर पहुँचने का सपना धरा रह गया। आईटी के क्षेत्र में रोजगार की असीमित संभावनाओं की घोषणा के बावजूद भारत में बेरोजगारों की संख्या में दो फीसदी से ज्यादा का इजाफा हो गया है। दुनिया भर के विशेषज्ञों और सर्वेक्षकों का मानना है कि भारत सिर्फ एक बाजार है और यहाँ सूचना तकनीक को अपनाने वाले लोग सिर्फ उपभोक्ता हैं, जैसा कि वे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के खाद्य पदार्थों, साबुनों, शैंपूओं आदि के उपभोक्ता हैं। भारत में सॉफ्टवेयर कारोबार और निर्यात को नियंत्रित करने वाली संस्था नैसकॉम का मानना है कि भारत में सूचना तकनीक का बाजार 23 फीसदी की दर से बढ़ रहा है और इस साल शहरी क्षेत्रों में सूचना तकनीक का बाजार 15 हजार करोड़ रुपये से ज्यादा का हो जाएगा। लेकिन एक सरकारी तथ्य यह भी है कि भारत की एक अरब आबादी में सिर्फ 14 लाख लोग ही इंटरनेट के उपभोक्ता हैं। भारत के विषय में यह भी एक तथ्य है कि 60 करोड़ से ज्यादा हिन्दीभाषियों के इस देश में हिन्दी की 50 वेबसाइटें भी नहीं हैं। दुनिया भर की साइटों पर 80 करोड़ से ज्यादा वेब पृष्ठ बन चुके हैं, लेकिन हिन्दी के हजार पृष्ठ इंटरनेट पर नहीं मिलेंगे। सूचना क्रान्ति की बात करने वाले किसी आदमी को इसकी चिंता भी नहीं है। क्योंकि इस पूरी क्रांति का ध्यान सिर्फ इस बात पर केन्द्रित है कि किसी तरह से भारत के उच्चवर्ग और उच्च मध्य वर्ग को सूचना तकनीक का उपभोक्ता बना दिया जाए।

भारत में आईटी का खूब इस्तेमाल करने वाले लोग भी शायद कोई साफ्टवेयर इस्तेमाल नहीं करते हैं। भारत के सॉफ्टवेयर उद्योग ने कोई भी आपरेटिंग विंडोज नहीं बनाया है। अभी भी हम विंडोज 95 से लेकर 2000 तक का इस्तेमाल ऑपरेटिंग विंडोज के रूप में करते हैं जिस पर माइक्रो सॉफ्ट का एकाधिकार है। हमारे तमाम ब्राडेड या असेंबल्ड कम्प्यूटरों में माइक्रोप्रोसेसर, इंटेल का या एडवांस्ट माइक्रो डिवाइस (एएमडी) का लगाया जाता है, जिस पर ताईवान का एकाधिकार है। बाकी कोरिया वगैरह देश भी थोड़ा–बहुत माइक्रोप्रोसेसर बना लेते हैं। कम्प्यूटर की बुनियादी चीजें, मसलन रैम, मदरबोर्ड आदि, भी ज्यादातर विदेशी कंपनियों के ही इस्तेमाल किए जाते हैं। भारत में भी चीजें बनती हैं, लेकिन गुणवत्ता के मामले के लिए इंटरनेट एक्सप्लोरर से लेकर ऑटो डायल तक अमेरिकी या जापानी कंपनियां बनाकर देती हैं। इंटरनेट का काम जिस कंप्यूटर की भाषा में होता है, उसका सबसे लोकप्रिय रूप जावा भी हमने अपने यहां विकसित नहीं किया है।

भारत में इंटरनेट का इस्तेमाल करने वाला शायद ही कोई आदमी ई–मेल सेवा के लिए किसी कंपनी की सेवा लेता है। हालांकि ई–मेल सेवा देने का दावा कई भारतीय कंपनियाँ करती हैं लेकिन खुद उन कंपनियों के लोग और भारत में आईटी के आम उपभोक्ता हॉटमेल, याहू, हॉटबॉट ई–मेल आदि कंपनियों की सेवाएं ही लेते हैं। ये सभी कंपनियां अमेरिकी हैं। हम आत्मसंतोष के लिए कह सकते हैं कि हॉटमेल की शुरुआत सुबीर भाटिया ने की थी लेकिन वह शुरुआत अमेरिका में हुई थी और अब उस पर भी माइक्रोसॉफ्ट का अधिकार है। आज जिस इंटरनेट की इतनी बढ़–चढ़कर बातें हो रही हैं, उसके संचालन के लिए हमारे पास पर्याप्त बैंडविड्थ नहीं है, कोई राष्ट्रीय नेटवर्क नहीं है। हम दोयम दरजे का उत्पादन बनाते हैं, दोयम दरजे की सेवा देते हैं, दोयम दरजे के पेशेवर पैदा करते हैं और आईटी का सुपर पावर बनने के मुगालते में जीते हैं। अभी हाल ही में सुबीर भाटिया ने अपने एक

इस लेख पर प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं।

इंटरव्यू में भारत की आईटी क्रांति की पोल खोलकर रख दी है। उन्होंने साफ कहा कि भारत आने का उनका इरादा तो है, लेकिन अभी नहीं। भाटिया ने कहा कि भारत में अभी इंटरनेट के लिये पर्याप्त गेटवे नहीं, व्यवस्थित लिंक नहीं, सबसे ऊपर बुनियादी ढांचा व्यवस्थित नहीं है और भारतीय ई–कॉमर्स के लिए कानून बना रहे हैं। सूत न कपास जुलाहे से लट्ठम–लट्ठ।

भारत इस बात पर इतरा रहा है कि उसके आईटी पेशेवरों की मांग पूरी दुनिया में बढ़ रही है। हमें गर्व है कि अमेरिका की सिलिकॉन वैली का कारोबार भारतीय पेशेवरों के हाथ में है, अब जर्मनी , जापान, इंग्लैंड और यहां तक कि मध्य–पूर्व के देशों में भी भारतीय पेशेवरों की मांग तेजी से बढ़ रही है। लेकिन यहाँ सवाल उठता है कि हमारे पेशेवर दुनिया भर के देशों में जाकर जो कुछ भी कर रहे हैं, उसमें उनकी मौलिकता का कितना योगदान है। सूचना प्रौद्योगिकी के विशेषज्ञ इस बात पर एकमत हैं कि भारतीय पेशेवर अमेरिका या दुनिया के दूसरे देशों में जाकर वहां की सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग में मध्यक्रम में काम करते हैं। वे कुछ ईजाद नहीं करते हैं, बल्कि उनका व्यापक मात्रा में उत्पादन करते हैं।

आज दिल्ली से गुड़गांव की तरफ, फरीदाबाद की तरफ, गाजियाबाद की तरफ, सैकड़ों की संख्या में कंपनियाँ दिखाई देंगी, ये सभी कंपनियाँ हीरो होंडा, मारुति या इसी तरह की दूसरी कंपनी के लिए उत्पाद बनाकर उन्हें आपूर्ति करती हैं। मूल फॉर्मूला या उत्पाद किसी बड़ी कंपनी का होता है और अंततः बाजार पर उसका एकाधिकार होता है। ऐसे ही भारत का सॉफ्टवेयर उद्योग है। भारत और अमेरिका के बीच समय में 12 घंटे का अंतर है। सारा दिन काम करके, जब भारत में सॉफ्टवेयर इंजीनियर और आईटी पेशेवर कुछ तैयार कर रहे होते हैं, उस समय अमेरिका सोया होता है, सुबह होते ही उसे सब कुछ किया–कराया मिल जाता है, जिसे अपनी जरूरत के मुताबिक वह इस्तेमाल कर लेता है। चालू वित्त वर्ष में भारत के आईटी उद्योग का राजस्व 24,350 करोड़ रुपये तक पहुंच जाने की उम्मीद है। इसमें 15,890 करोड़ रुपये निर्यात से आएंगे। इतने रुपये के उत्पाद के निर्यात में 1250 कंपनियां लगी हुई हैं। इन 1,250 कंपनियों में सिर्फ 37 कंपनियां ऐसी हैं, जिनका निर्यात एक सौ करोड़ रुपये का है। भारत के कुल आईटी निर्यात का 29 फीसदी पांच बड़ी कंपनियां करती हैं। इनमें भी टाटा कंसल्टेंसी का नाम सबसे ऊपर है। निर्यात के लिहाज से यह बड़ी रकम है और इसका हिस्सा भारत के कुल निर्यात में 10 फीसदी तक होता है। लेकिन आईटी क्षेत्र के विशेषज्ञों ने इस बात को स्वीकार किया है कि भारत काफी मात्रा में सॉफ्टवेयर निर्यात करता है, जबकि इसके उत्पादों की कोई क्वालिटी नहीं होती है। जितने सॉफ्टवेयर भारत से निर्यात किए जाते हैं, अगर उनकी क्वालिटी अंतरराष्ट्रीय स्तर की होती, तो मौजूदा राजस्व के दोगुने से ज्यादा राजस्व हासिल होता। यदि भारत अपनी गुणवत्ता में सुधार नहीं करता है, तो बाजार में टिकना भी मुश्किल हो जाएगा, सुपर पावर बनना तो दूर की बात है।

भारत के विषय में बुनियादी सच्चाई यह है कि यहां सिर्फ 2.4 फीसदी लोगों के पास टेलीफोन है, एक फीसदी के करीब लोगों के पास कंप्यूटर है और 0.14 फीसदी लोग इंटरनेट के उपभोक्ता हैं। दुनिया में इंटरनेट की क्रांति हुई है, तो उपरोक्त आँकड़े के साथ भारत कैसे इस क्रांति में शामिल हो सकता है? आईटी की तमाम बढ़त और विकास के बावजूद यह सही है कि इसने भारत की अर्थव्यवस्था को विकसित नहीं किया है। इसने भारत में आधे दर्जन अरबपति जरूर पैदा किए हैं, लेकिन गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में कमी इसने नहीं की है। रोजगार के अवसर इसने जरूर पैदा किए हैं, लेकिन इसने बेरोजगारों की संख्या में कमी नहीं की है। भारत में कंप्यूटर साक्षरता बढ़ी है, लेकिन भारत की साक्षरता में इससे कोई बढ़ोत्तरी नही हुई है। इस साल सितंबर में संयुक्त राष्ट्र संघ की सहस्राब्दी बैठक में अमेरिका के एजेंडे में सूचना तकनीकी सबसे ऊपर रहा, लेकिन भारत सहित पूरी तीसरी दुनिया के एजेंडे में भूख, गरीबी, बेरोजगारी, प्राकृतिक आपदा, आतंकवाद और भाषिक–जातीय व क्षेत्रीय हिंसा प्रमुख रही। इसलिए हमारी सरकार का ध्यान इन सब पर ज्यादा होना चाहिए और आईटी का इस्तेमाल इन बुनियादी समस्याओं के समाधान के लिए किया जाना चाहिए, न कि इन सबकी कीमत पर आईटी का विकास सुनिश्चित करना चाहिए।

(–साभार)

ओजोन परत की भूमिका

✍ शिवेन्द्र कुमार पाण्डेय

पृथ्वी में सभी जीवों के जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन (O_2) अनिवार्य है। ऑक्सीजन तीन रूपों में पाई जाती है– ऑक्सीजन परमाणु (O), ऑक्सीजन अणु (O_2) और ओजोन(O_3) । ऑक्सीजन अणु में ऑक्सीजन के दो परमाणु बद्ध रहते हैं और यही ऑक्सीजन पृथ्वी के निचले वायुमंडल में विद्यमान रहती है। ओजोन में ऑक्सीजन के तीन परमाणु बद्ध होते हैं। ऑक्सीजन के समान ओजोन भी एक रंग–विहीन गैस होती है, पर उसमें तीखी गंध होती है।

आरम्भ में, जब पृथ्वी का उद्‌भव हुआ था, उस समय ऑक्सीजन गैस थी ही नहीं। ज्वालामुखियों के लगातार फूटते रहने से सम्पूर्ण वायुमंडल कार्बन डाइऑक्साइड व मीथेन से भरपूर था। कुछ काल पश्चात् समुद्रों के भीतर जीवों का उद्‌भव होने लगा, जो कार्बन डाइऑक्साइड लेकर आक्सीजन निकालने लगे। इस ऑक्सीजन ने पृथ्वी के वायुमंडल के ऊपरी भाग की ओर बढ़ना आरम्भ कर दिया, जहाँ पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में ऑक्सीजन का विभाजन, उसके परमाणुओं में होने लगा। फिर इन परमाणुओं ने संयुक्त हो ओजोन का रूप धारण कर 'समतापमंडल' (स्ट्रैटोस्फियर) में सांद्रित हो 'ओजोन परत' का निर्माण किया (चित्र–1)। कुछ काल पश्चात्

पृथ्वी के वायुमण्डल में ऑक्सीजन मात्रा बढ़ने पर ऑक्सीश्वसन जीव जन्म लेने लगे (जो वर्तमान में सर्वत्र छाए हुए हैं), जिन्हें खतरनाक पराबैंगनी किरणों से बचाने में ओजोन परत एक छलनी समान, सुरक्षा कवच की भूमिका निभाती है।

ओजोन परत पृथ्वी के ऊपर 15 से 50 किलोमीटर ऊँचाई पर स्थित है और इसकी मोटाई लगभग 35 किलोमीटर है। ओजोन का निर्माण सौर विकिरण द्वारा निरंतर होता रहता है, जिसका परिमाण 300 मिलियन टन प्रति दिन है और इतनी ही मात्रा में यह प्रकृतिक रूप में नष्ट भी होती रहती है। इस परत के अंदर ओजोन की मात्रा किसी एक समय में इन दोनों प्रक्रियाओं का शेष भाग होती है और यह 2000 मिलियन टन के लगभग होती है। ओजोन परत के ऊपर ऑक्सीजन परमाणु रूप में रहती है क्योंकि पराबैंगनी किरणों के प्रभाव में उसका विभाजन लगातार होता रहता है। लेकिन ओजोन परत के नीचे ऑक्सीजन आणविक रूप में रहती है।

पृथ्वी के क्षोभमंडल में प्रवेश के पूर्व, सौर विकिरण में उपस्थित 0.30 माइक्रोन से कम और 0.75 माइक्रोन से उच्च तरंग–दैर्ध्यों के एक बड़े भाग का विघटन व अवशोषण समतापमंडल में व्याप्त ओजोन परत द्वारा हो जाता है। इस क्रियाशीलता के फलस्वरूप पृथ्वी पर दिखाई पड़ने वाला सूर्य का प्रकाश एक तरंग–समूह है जिसमें सम्पूर्ण दृश्य स्पेक्ट्रम के अलावा अदृश्य भाग की कुछ किरणों का समावेश होता है। उदाहरण के लिए नजदीकी पराबैंगनी (0.30 से 0.40 माइक्रोन) और नजदीकी इन्फ्रारेड (0.75 से 2.50 माइक्रोन)। यह उन खिड़कियों में से एक है जो अंतरिक्ष की ओर खुलती है। दूसरी खिड़की को सूक्ष्मतरंग खिड़की कहा जाता है जिनमें वे सभी सौर किरणें सम्मिलित होती हैं जिनका तरंग दैर्ध्य परिसर 1 मिलिमीटर से 30 सेन्टीमीटर तक होता है अर्थात् सौर ऊर्जा प्राप्ति का हमारा मुख्य स्रोत, विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम का यही भाग है जो इन दोनों खिड़कियों के माध्यम से छन कर क्षोभमंडल (ट्रोपोस्फियर) में प्रवेश करता है।

ओजोन परत एक सूर्यपट (सनस्क्रीन) के समान कार्य करती है और जैविक दृष्टि से खतरनाक पराबैंगनी–बी (0.28 से 0. 32 माइक्रोन) सौर–तरंगों के बड़े भाग का क्षोभमंडल में प्रवेश रोकने में समर्थ है। पराबैंगनी–बी का वह क्षीण–प्रवाह जो भूसतह के

वायुमंडल तक पहुँचता है, उसके कारण धूप–ताम्रता (सन बर्न), त्वचा कैन्सर, मोतियाबिन्द, आदि जैसी बीमारियाँ फैलती हैं। फिर ऐसे भी प्रमाण मिल रहे कि पराबैंगनी–बी की मात्रा हमारे वायुमंडल में बढ़ने से फसलों का उत्पादन घटने लगता है और बीमारियों से बचने की हमारी प्रतिरोधक क्षमता भी कम होने लगती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यदि समतापमंडल में ओजोन–परत का निर्माण न हुआ होता तो वर्तमान में हमारे आसपास दिखाई देने वाले मनुष्य समेत सारे जीवों का उद्भव शायद ही संभव होता।

लेकिन हाल के वर्षों में अंटार्कटिका के ऊपर, यह ओजोन परत अक्टूबर के महीनों में बड़े नाटकीय ढ़ंग से कुछ पतली होने लगती है और कुछ सप्ताहों के पश्चात् फिर स्वाभाविक स्तर पर पहुँच जाती है। इस क्रिया के दौरान 1999–2000 में इस परत में 60 प्रतिशत तक की कमी देखने में आयी है। अब चूँकि यह कमी पृथ्वी के एक विशिष्ट छोटे स्थानीय भाग में देखने में आई है, इसलिए बोलचाल की भाषा अपनाते हुए इसे 'ओजोन परत में छेद' के नाम से पुकारा जाता है।

ओजोन परत पतली होने की प्रथम जानकारी 1974 में अमेरिकी वैज्ञानिक मेरियो मोलिना और एफ. शेरवुड रोलैण्ड ने अपने शोध पत्रों में प्रस्तुत की थी पर इसका वास्तविक ज्ञान 1985 में ही हुआ। उपलब्ध आँकड़ों से ज्ञात होता है कि 1970 के दशक में अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन परत में छेद प्रकट होने लगे थे। अब तो ये छेद यूरप, अमेरिका, कनाडा, जापान व आस्ट्रेलिया के ऊपर भी प्रकट होने लगे हैं।

वर्तमान ग्लोबल परिदृश्य में ओजोन–परत लगभग सभी क्षेत्रों में पतली होती जा रही है। आस्ट्रेलिया के ऊपर तो 1960 के दशक से ही इसका स्तर 5–9 प्रतिशत दर से कम होता रहा है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से ज्ञात हो चुका है कि समतापमंडल में 1 प्रतिशत ओजोन कम होने पर क्षोभमंडल में पराबैंगनी विकिरण का प्रवेश 1–2 प्रतिशत बढ़ जाता है और ऐसे क्षेत्रों में चर्म रोगों में 5–6 प्रतिशत वृद्धि होने लगती है। इसीलिए विश्व भर में सबसे अधिक चर्म–रोगी आस्ट्रेलिया में पाए जाते हैं, जहाँ के दो–तिहाई निवासी किसी न किसी प्रकार के चर्म–कैन्सर से ग्रसित हो जाते हैं। इसी वजह से सभी आस्ट्रेलियाई नागरिक कई प्रकार के चर्म–रोग प्रतिरोधक लोशन, क्रीम व तेलों का उपयोग अपनी त्वचा सुरक्षा के लिए, धूप में निकलने के पूर्व, नियमित रूप से करने लगे हैं। इसका ज्वलंत उदाहरण है– वहाँ के क्रिकेट खिलाड़ी जो अपने–अपने चेहरों पर सफेद पट्टीनुमा रंग पोते खेल के मैदान में उतरते हैं।

ओजोन में कमी का मुख्य कारण है 'क्लोरीन गैस'। लेकिन सौभाग्यवश क्लोरीन भारी गैस होने के कारण समतापमंडल की ऊँचाइयों तक नहीं पहुँच पाती है, जहाँ ओजोन परत विद्यमान है। घरेलू व सामूहिक रसायनों से उत्पन्न क्लोरीन गैस निचले वायुमंडल में विघटित हो वर्षा में बह जाती है। लेकिन कई ऐसे स्थाई और हल्के रसायन भी हैं, जो वाष्पशील स्वभाव के होते हैं व विघटित होने पर क्लोरीन निर्माण करते हैं, जिन्हें 'ओजोन डिप्लीटिंग सबस्टेन्सेस' (ओ.डी.एस.) कहा जाता है। क्लोरो फ्लोरो कार्बन (सी.एफ.सी.), कार्बन टेट्रा क्लोराइड (सी.टी.सी.), मिथाइल क्लोरोफार्म और हाइड्रो क्लोरो फ्लोरो कार्बन (एच.सी.एफ.सी.), आदि कुछ ऐसे ओ.डी.एस. हैं, जिनमें क्लोरीन होती है। फिर ब्रोमीन युक्त ओ.डी.एस. भी होते हैं, जैसे मिथाइल ब्रोमाइड, हाइड्रो ब्रोमाफ्लोरो कार्बन (एच.बी.एफ.सी.)। रेफ्रिजरेटर, ऐयर कन्डिशनर, अग्निशामक, ड्राइक्लीनिंग, इलैक्ट्रानिक उपकरणों की सफाई, कृषीय धूमकों (फ्यूमिगेन्ट), प्लास्टिक फोम/डिब्बों, आदि का निर्माण व उन्हें क्रियाशील बनाए रखने के लिए उपयोग किए गए एरोसोल नोदक (प्रपेलन्ट), विलायक (साल्वेन्ट) और रैफिजरेन्ट्स इन गैसों के कारण हैं।

वैज्ञानिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि ओ.डी.एस. निचले वायुमंडल में दशकों तक दृष्टिगोचर सूर्य रोशनी से अप्रभावित, पानी में लगभग अघुलनशील व आक्सिडेशन प्रतिरोधक क्षमता सहित, शांत रह कर कायम रहते हैं। लेकिन 18 किलोमीटर से अधिक ऊँचाई पर जब 99 प्रतिशत हवा उनके नीचे रह जाती है, तब इन ओ.डी.एसो. के स्थायित्व में परिर्वतन नजर आने लगता है। इस ऊँचाई पर सौर–स्पेक्ट्रम के तीव्र परौंगनी विकिरण प्रभाव में इनका विघटन क्लोरीन परमाणुओं व अन्य अवशिष्टों में होने लगता है। इस प्रकार ओजोन–परत के भीतर क्लोरीन बनने पर एक एकल क्लोरीन परमाणु ओजोन के एक अणु से संयुक्त होने के प्रयास फलस्वरूप एक श्रृंखला अभिक्रिया (चेन रिएक्शन) गतिमान हो जाती है। परिणाम स्वरूप एक क्लोरीन परमाणु लगभग 100,000 ओजोन अणुओं को तोड़ कर वहां से हटा देता है। ऐसा होने का मूल कारण है कि इस श्रृंखला अभिक्रिया के अन्त में क्लोरीन गैस लगातार बनती रहती है

और ओजोन परत भी घटती रहती है। इसीलिए छोटी मात्रा में भी सी.एफ.सी. सांद्रण रोकना एक महत्वपूर्ण विषय बन चुका है।

इन ओ.डी.एसो. के अलावा 'ग्रीन हाउस गैस' स्तर में लगातार होती वृद्धि का प्रभाव ओजोन मात्रा को घटाता है। ग्रीन हाउस गैस के लिए उत्तरदायी स्रोत हैं– जल वाष्प, ऊर्जा प्राप्ति के लिए जीवाश्म ईंधन व लकड़ी के दहन से कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2) का उत्सर्जन, पशु/मानव विष्ठा व जैव सड़ाव से मीथेन उत्सर्जन रासायनिक उर्वरकों के उपयोग व प्रत्येक दहन क्रिया से नाइट्रस ऑक्साइड (NO_2) निर्माण और हाइड्रोकार्बन व नाइट्रोजन के ऑक्साइड के प्रभाव में क्षोभ मंडल के भीतर गैस निर्माण।

लेकिन यह भी एक वास्तविकता है कि यदि वायुमंडल में प्राकृतिक रूप से ग्रीन हाउस गैस विद्यमान न होतीं, तो पृथ्वी का वर्तमान तापमान 33^0 सेन्टिग्रेड कम होता। इसलिए पृथ्वी में जीवों के रहने लायक तापमान को बनाए रखने में, इन गैसों की उपस्थिति (एक स्तर तक) आवश्यक है।

दरअसल, वायुमंडल एक ग्रीन हाउस के समान कार्य करता है और पृथ्वी को ऊष्मा–रोधी कवच प्रदान करता है। यह ग्रीन हाउस प्रक्रिया इस प्रकार कार्य करती है– सूर्य द्वारा आपतित विकिरण से प्राप्त सूक्ष्म तरंग दैर्ध्य का एक तिहाई भाग परावर्तित हो जाता है और बचे भाग का अवशोषण वायुमंडल, समुद्र, बर्फ, भूमि व जन्तु–वनस्पति समूह कर लेते हैं। फिर भूसतह द्वारा कुछ ताप वायुमंडल में संवेद्य उष्मा (सेन्सिबल हीट) और वाष्पीय–वाष्पोत्सर्जन रूप में निष्कासित होता है। इसके अलावा भूसतह द्वारा तरंगदैर्ध्य विकिरण का ऊर्जा परावर्तन भी होता है, जिसका कुछ भाग वायुमंडलीय खिड़की को पार कर बाहर निकल जाता है एवं थोड़ा भाग वायुमंडल में समा जाता है। (चित्र–2)

इस प्रकार ऊर्जा सांद्रण व लम्बी तरंग दैर्ध्य वाली इनफ्रा रेड विकिरण उत्सर्जन के मध्य का संतुलन भी कई कारणों से बदल सकता है जैसे– सूर्य ऊर्जा विकिरण आउटपुट में परिवर्तन, पृथ्वी परिक्रमा–पथ में सूक्ष्म परिवर्तन व ग्रीनहाउस प्रभाव। इनमें उत्तरजीविता के लिए ग्रीन हाउस प्रभाव सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसको नियंत्रित स्तर पर बनाए रखने की क्षमता मानव के हाथ में है। सूक्ष्म तरंग दैर्ध्य विकिरण तो वायुमंडल को पार कर सकता है, पर लम्बी

चित्र–2 : ऊर्जा संतुलन (टाटा इनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट)
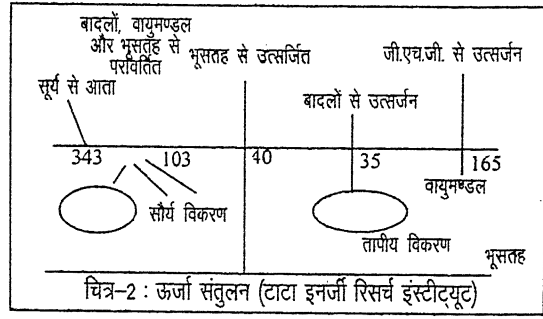
तरंग दैर्ध्य विकिरण का कुछ भाग वायुमंडल के ऊपरी ठंडे भाग में उपस्थित 'ट्रेस गैसों' द्वारा अवशोषित हो जाता है। इन्हीं ट्रेस गैसों को 'ग्रीन हाउस गैस' नाम दिया गया है।

विश्व में औद्योगिक क्रान्ति आरंभ होने के पश्चात् से मानव गतिविधियों के फलस्वरूप प्राकृतिक रूप में विद्यमान ग्रीन हाउस गैस सांद्रण वायुमंडल में बढ़ने के साथ–साथ कई नए क्लोरोफ्लोरोकार्बनों का समावेश होने लगा है– विकसित देशों में अधिक व विकासशील देशों में कम मात्रा में। इन गैसों के बनने में वृद्धि के फलस्वरूप ग्रीन हाउस प्रभाव मुखर हो पृथ्वी के तापमान में वृद्धि करने लगा है। वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार इन गैसों के प्रभाव में वर्ष 2100 तक पृथ्वी के तापमान में $1–3.5^0$ सेन्टिग्रेड वृद्धि होने की संभवना है। इस तापमान वृद्धि के फलस्वरूप कई अन्य परिवर्तन होने लगेंगे– वृष्टि की मात्रा व पैटर्न में परिवर्तन, वनस्पति फैलाव व मृदा नमी में अंतर, ट्रापिकल चक्रवात तूफानों की तीव्रता में वृद्धि, ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ गलने व तापीय विस्तारण द्वारा समुद्री सतह की ऊँचाई में वृद्धि आदि से वर्तमान परिस्थितिकीय संतुलन अस्तव्यस्त हो जाएगा।

समुद्री सतह की ऊँचाई बढ़ने पर समुद्रतटीय निचले इलाके पानी में डूब जायँगे। पिछले वर्षों में समुद्री पानी की ऊँचाई में 10–25 सेन्टिमीटर वृद्धि मापी गई है और इस विषय में निर्मित प्रक्षेपणों से ज्ञात होता है कि आगामी 100 वर्षों में, अर्थात् वर्ष 2100 पहुचने तक, इसमें 46 सेन्टीमीटर तक वृद्धि की संभावना है।

समुद्री पानी की सतह में 1 मीटर वृद्धि होने पर बांगलादेश का 30,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पानी में डूब जायेगा, तो दूसरी ओर भारत के समुद्रतटीय इलाकों में रहने वाले 71 लाख नागरिक विस्थापितों की श्रेणी में आ जायँगे।

तापमान वृद्धि के कारण पानी भंडार में कमी व नई बीमारियों का उद्भव होने लगेगा और कृषि उत्पादन भी प्रभावित होगा। फिर जो जीव बदलते हुए पर्यावरण के साथ ताल–मेल बैठाते हुए शीघ्रता से समयानुकूल करने में असमर्थ होंगे, वे विलुप्त हो जायेंगे। इस क्रिया में वनस्पतियाँ सबसे अधिक प्रभावित होंगी, क्योंकि उनकी स्थानान्तरण क्षमता (अन्यों की अपेक्षा) सबसे कम समझी जाती है– 4 से 200 किलो मीटर प्रति शताब्दी। यही कारण हैं कि ग्रीन हाउस गैस नियंत्रण को वर्तमान में इतना महत्व दिया जा रहा है।

उल्लिखित चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संसार में जीवनदायिनी की भूमिका निभाने वाली ओजोन परत का विनाश मुख्यतः मानव जनित कारणों से हो रहा है। बीसवीं सदी में मानव ने औद्योगिक क्षेत्र में असाधारण सफलता अर्जित की है, जिसका मुख्य आधार रहा है– अधिक से अधिक ऊर्जा उत्पादन कर मानव के निजी लाभ के लिए उपयोग करना। औद्योगिकीकरण की इस दौड़ में, मानव इसके हानिकारक प्रभावों की अनदेखी करता रहा लेकिन 1960 के दशक से पर्यावरण सुरक्षा/संतुलन बनाए रखने की चिन्ता विश्व के सभी देशों में जागृति होने लगी और पर्यावरण प्रदूषण रोक–थाम के विषय में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर गम्भीरता से विचार विमर्श किया जाने लगा है। पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम भी उठाये गए हैं, उदाहरण के लिए–

1. विकसित देशों में 1.1.1996 से सी.एफ.सी. उत्पादन निषेध कानून व उनके स्थान पर वैकल्पिक रसायनों का अनिवार्य उपयोग, जो महँगे होने के बावजूद पर्यावरण अनुकूल होते हैं। भारत, चीन आदि को इसमें वर्ष 2006 तक छूट दी गई है। अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञों का मानना है कि भारत मे सी.एफ.सी. का वर्तमान उत्पादन ओजोन परत को प्रभावित नहीं करेगा।

1990 के दशक में लगभग 20 मिलियन टन सी.एफ.सी. प्रतिवर्ष वायुमंडल में उत्सर्जित की जाती थी। लेकिन इस रोक के कारण वर्तमान में इसका स्तर 1 प्रतिशत दर से कम हो रहा है। यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है क्योंकि 1980 के दशक में सी.एफ.सी. का वायुमंडल में उत्सर्जित होने का स्तर 5 प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़ रहा था।

2. जी.एच.जी. व अन्य विषैली गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में आयोजित क्योटो–सम्मेलन (दिसम्बर 1998) की विज्ञप्ति के अनुसार भारत सहित 150 अन्य देश वचनबद्ध हैं कि सभी राष्ट्र वर्ष 2012 तक इन गैसों का उत्सर्जन 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत कम करने का प्रयास करेंगे।

अब चूँकि भारत में सभी प्रकार की ऊर्जा आवश्यकताओं की आपूर्ति का प्रमुख आधार कोयला है, इसलिए उल्लिखित लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए भारत सरकार ने नए निर्देश जारी कर दिए हैं, जिसके अनुसार देश के सभी बिजली संयंत्रों को वर्ष 2001 से धुलाई किया 34 प्रतिशत राख युक्त कोयला उपयोग करना अनिवार्य होगा। वाहन प्रदूषण में कमी लाने के लिए भारत में 'कम सल्फर युक्त (25 प्रतिशत) डीजल' उत्पादन 1.10.1999 से आरंभ कर दिया गया है और अब देश भर में जनवरी 2000 से कम सल्फर युक्त डीजल और फरवरी 2000 से लेड विहीन (अनलेडेड) तेल उपयोग के लिए वितरित किया जाने लगा है।

इसके अलावा, सी.एफ.सी. व ओ.डी.एस., प्रजनन को नियंत्रित रखने के लिए भारत सरकार ने अगस्त 2000 में गजट विज्ञप्ति द्वारा 'ओजोन डिप्लीटिंग नियम–2000' को लागू कर दिया है। इसके अंतर्गत सभी उत्पादनों में सी.एफ.सी. उपयोग को वर्ष 2003 से निषेध करार क़र दिया गया है और ओ.डी.एस. उत्पादनों को नियंत्रित कर धीरे–धीरे समाप्त करने का प्रवधान बनाया गया है।

ओज़ोन परत को सुरक्षित बनाए रखने में इस प्रकार के नियम मील का पत्थर साबित हो सकते हैं, बशर्ते विश्व के सभी देश इनका दृढ़ता से पालन करें।

–छवि निकुंज, बाँस बंगलो कम्पाउन्ड
चौथी क्रासिंग, राँची रोड
पुरूलिया, पश्चिम बंगाल–723001

कोलेस्ट्रॉल एवं रेशे युक्त खाद्य पदार्थ

✍ डॉ. सियाराम विश्वकर्मा [1] एवं डॉ0 गिरीश पाण्डेय [2]

आज के इस बदलते हुए परिवेश में मानव जीवन शैली में जबरदस्त बदलाव आया है। भौतिक आपाधापी में मानव जीवन समस्याग्रस्त एवं स्वास्थ्य दुखमय होता जा रहा है। 'हेल्थ इज वेल्थ' (स्वास्थ्य ही धन है)। वैसे यह कहावत तभी चरितार्थ होती है जब हम अपनी सेहत को बनाकर रखें। खान–पान का मानव स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव पड़ता है। अमेरिका के नेशनल हार्ट लंग एण्ड ब्लड इंस्टिट्यूट (एन.एच.एल.बी.आई.) के अनुसार यदि हम खान–पान पर विशेष ध्यान रखें तो रक्त में उपस्थित कोलेस्ट्रॉल का स्तर एक प्रतिशत कम हो सकता है। आज आम जनता की बात तो दूर, बहुत शिक्षित लोग भी कोलेस्ट्रॉल के सम्बन्ध में अत्यधिक जानकारी नहीं रखते।

हृदय एक महत्वपूर्ण अंग है जिसके अनवरत सिकुड़ने व फैलने से हमेशा शरीर में रक्त संचार होता है। हृदय को जीवित रहने व धड़कने के लिए ग्लूकोज व ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जो रक्त के माध्यम से मिलती है। कोलेस्ट्रॉल तथा रक्त से उत्पन्न अन्य पदार्थ जब रक्त वाहिनी नलिकाओं की भीतरी दीवारों पर अधिक जम जाते हैं तो रक्त का प्रवाह वाधित होने लगता है जिससे हृदय को मिलने वाली ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम हो जाती है। फलस्वरूप सीने का दर्द (एंजाइना पेन) होने लगता है। नेशनल कोलेस्ट्रॉल एजूकेशन प्रोग्राम के अनुसार 20 से 39 वर्ष के हर पाँच व्यक्ति में से एक व्यक्ति का कोलेस्ट्रॉल स्तर अधिक हो सकता है। यदि यही उम्र 40 से 59 वर्ष के बीच हो तो दो व्यक्तियों में से एक का कोलेस्ट्रॉल स्तर अधिक हो सकता है। यदि उम्र 60 वर्ष से अधिक है तब 60 प्रतिशत उम्मीद है कि आपके कोलेस्ट्रॉल का स्तर अधिक है।

वैसे कोलेस्ट्रॉल को स्वास्थ्य के लिए भयावह नहीं समझना चाहिए क्योंकि यह शरीर के लिए आवश्यक है। इससे कुछ विशेष तरह की कोशिका झिल्ली व बाइल एसिड (पित्त अम्ल) का निर्माण होता है। यह हारमोन का एक रासायनिक घटक भी है जैसे प्रोजेस्टोरिन, टेस्टीस्टेरेन और एस्ट्रोजेन। संतुलित मात्रा में कोलेस्ट्रॉल स्वास्थ्य के लिए अच्छा है लेकिन इसकी अधिकता हार्ट अटैक या अन्य हृदय रोगों के लिए खतरनाक है। खान–पान में ध्यान देकर कोलेस्ट्रॉल स्तर को सुरक्षित रखा जा सकता है। अतः कोलेस्ट्रॉल के बारे में जान लें कि शरीर में कोलेस्ट्राल की कितनी मात्रा संतुलित है और कितनी अधिक।

कोलेस्ट्रॉल को मिलीग्राम प्रति डेसीलीटर में मापा जाता है। यदि जाँच के उपरान्त आपके रक्त में कोलेस्ट्रॉल 200 मिग्रा0 प्रति डेसीलीटर से कम है तो यह संतुलित मात्रा में है। यदि 139 व 200 मिग्रा प्रति डेसीलीटर के बीच है तो यह सीमा क्रांतिक स्तर की है। इससे थोड़ा कम या थोड़ा अधिक कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को घटा बढ़ा सकता है। यदि कोलेस्ट्रॉल 240 मिग्रा/डेसीलीटर से अधिक है तो यह अधिकता आपको हृदय रोग से पीड़ित कर सकती है। यदि कोलेस्ट्रॉल 200 से 239 के बीच है तो हृदय की माँसपेशियों को मजबूत करने वाला भोजन कीजिए। ऐसी अवस्था में दो बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए–

1. कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन, हरी शाक भाजी, फल एवं घुलनशील रेशे युक्त पदार्थ, चोकर सहित अनाज खायें।
2. अधिक चिकनाई युक्त तली भुनी चीजें, घी, मलाई व मांसाहारी भोजन सीमित मात्रा में करें। हो सके तो अपनी जबान पर नियंत्रण रखें।

सेहत के लिए आवश्यक है रेशेदार खाद्य पदार्थ

रेशेदार भोजन सेहत के लिए जरूरी है क्योंकि रेशेदार अनाज कोलेस्ट्रॉल के स्तर की अधिकता को कम करने में सहायक होते हैं। पिछले एक दशक से रेशेयुक्त खाद्य पदार्थ का खान–पान विशेषतया पश्चिमी देशों में तेजी से बढ़ा है। रेशेदार खाद्य पदार्थ के खान–पान में प्रचलन ने लोगों को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बना दिया है। 1960 में अंग्रेज चिकित्सक डॉ0 डेलिस बार्किट ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि अफ्रीका के अंदरूनी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों

को आँत का कैंसर कम होता है। इसकी वजह उनका संतुलित खान–पान व रेशे युक्त खाद्य पदार्थ की भरपूर मात्रा है। आज का अध्ययन भी बताता है कि भोजन में रेशे की उपस्थिति स्वास्थ्य पर अच्छा असर डालती है। इन रेशे युक्त भोजन में सेलूलोज घुलनशील पाचक रेशे उपस्थित होते हैं जो शरीर के बिल्डिंग मेटेरियल को मजबूत करते हैं एवं ये त्याज्य पदार्थों के उत्सर्जन में काफी सहायक होते हैं।

आश्चर्य की बात तो यह है कि सौ वर्ष पूर्व तक ऐसी कोई समस्या नहीं आयी क्योंकि लोग प्राकृतिक भोजन के रूप में साबुत अनाज को प्रमुखता देते थे। वह अनाज शरीर के लिए आवश्यक रेशों के साथ–साथ पोषक तत्वों की भी पूर्ति करता था। इससे मानव का पाचन तंत्र तो सही रहता ही था, साथ ही साथ उनमें तमाम बीमारियों के प्रति प्रतिरोधिता शक्ति आ जाती थी।

रेशे उन सभी प्राकृतिक खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं जिनकी उत्पत्ति पौधों से हुई है। रेशे मुख्यतः दो तरह के होते हैं– घुलनशील व अघुलनशील। अघुलनशील रेशे पानी में नहीं घुलते हैं और भारी होने के कारण बाहर निकल जाते हैं। इसके विपरीत घुलनशील रेशे पानी में घुलकर शरीर में पहले से रह रहे अन्य तत्वों के साथ घुल मिल जाते हैं। रेशेदार खाद्य पदार्थों को ढूँढ़ना कोई खास मुश्किल नहीं है। कच्चे फल, सब्जी, मेवा, साबुत अनाज, जौ, जई, चोकर, दालें व बीन्स में रेशे की पर्याप्त मात्रा पायी जाती है। रेशेदार खाद्य पदार्थ निम्न तरह से लाभकारी होते हैं–

1. कोलेस्ट्रॉल के स्तर को घटाते हैं जिससे हृदय के रोगी लाभान्वित हो सकते हैं।
2. रेशे युक्त खाद्य पदार्थ स्थूलता से परेशान लोगों के लिए रामबाण का काम करते है।
3. ये पदार्थ कम कैलोरी के होने के बावजूद तृप्ति एवं शान्ति का एहसास दिलाते हैं।
4. रेशेदार भोजन के सेवन से अधिक खाने की प्रवृत्ति पर रोक लगती है।
5. रेशेदार भोजन, मधुमेह रोग, जोड़ों के दर्द में भी लाभदायक होते हैं क्योंकि भोजन में मौजूद रेशे शर्करा को सोखने में समय लेते हैं जिसके खाने के तुरन्त बाद रक्त में शर्करा बढ़ने की गुंजाइश कम रहती है जिससे शरीर में भी शर्करा की मात्रा बढने नहीं पाती है।
6. उदर विकार, पीलिया और डायरिया के मामले में भी रेशेदार भोजन लाभ पहुँचाते हैं।

अतएव पर्याप्त रेशे वाले भोजन को प्राथमिकता देना स्वास्थ्य के साथ–साथ बीमारियों को कम करना है। अतः आप अपने शरीर में कोलेस्ट्रॉल स्तर को संतुलित रखकर अपनी सेहत की सुरक्षा कर सकते हैं।

—1.सहायक प्राध्यापक (अनुवंशकीय एवं पादप प्रजनन)
2. प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कुमारगंज, फैजाबाद, (उ.प्र.)

अन्तराल

कम्प्यूटर चिप्स पर रिसर्च करते हुए, वह अपनी प्रयोगशाला में मशगूल हो गया। रिसर्च पेपर तैयार कर वह अपना इन्वेशन पेटेण्ट करवा पाया, तब तक उसकी पत्नी ने उसे पहचानने से इंकार कर दिया।

- रवीन्द खरे
द्वारा–युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया
मार्केट हृदय स्थल, तुलाराम चौक
जबलपुर (म.प्र.) 482002

जन्म दिन पर विशेष लेख

निकोलाई ऐन्चीकोव

प्रो0 देवेन्द्र कुमार राय

आजकल जन–सामान्य में यह धारणा प्रचलित है कि दिल की बीमारियों, जैसे– 'हार्ट–अटैक' से बचने के लिए भोजन में "कोलेस्ट्रॉल" की मात्रा सीमित होनी चाहिए। परन्तु इस जानकारी का सर्वप्रथम पता लगाने वाले व्यक्ति का नाम चिकित्सा क्षेत्र के कुछ गिने चुने विशेषज्ञों को ही ज्ञात है। उस व्यक्ति का नाम था निकोलाई ऐन्चीकोव (Nikolai Anchikov) जिनका जन्म 3 नवम्बर 1885 ई. को रूस के सेन्ट पीटर्सबर्ग शहर के एक रईस परिवार में हुआ था। वे रूस की रक्षा–सेनाओं की चिकित्सा–सेवा में " लेफ्टीनेन्ट जनरल" के सर्वोच्च पद पर रहे और बाद में 80 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए।

हृदय को रक्त पहुँचाने वाली धमनियों में अवरोध उत्पन्न होने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के इस कारण की जानकारी मिश्र देश के प्राचीन राजाओं के सुरक्षित शवों (ममी) में भी पाई गई है। सर्वप्रथम, प्रसिद्ध अंग्रेज चिकित्सक कॉलेब पैरी ने यह दिखाया कि हृत्शूल या 'एन्जाइना पेक्टोरिस' की बीमारी हृदय को रक्त पहुँचाने वाली धमनियों में अवरोध आने से उत्पन्न होती है। उस समय के वैज्ञानिकों ने पैरी की खोज पर विशेष ध्यान नहीं दिया। आगे चलकर वैज्ञानिकों ने देखा कि यह अवरोध धमनियों में कठोरता (आर्टीरियोस्कलरॉसिस) आ जाने से होती है; परन्तु यह कठोरता क्यों आती है इस विषय में तीन धारणाएँ प्रचलित थीं। पहली यह कि यह कोई रोग नहीं वरन् आयु के साथ होने वाली एक स्वाभाविक प्रक्रिया मात्र है। दूसरी यह कि, यह बीमारी धमनी की उपापचयन प्रक्रिया की गड़बड़ी से उत्पन्न होती है; इसके समर्थक थे प्रसिद्ध रोगविज्ञानी रूडोल्फ बिरचो। तीसरी धारणा के अनुसार धमनियों में रक्त के थक्के जम जाते हैं जो धीरे'धीरे कठोर गुत्थियों में बदल कर धमनी को कठोर बना देते हैं। इस विचारधारा के समर्थक थे रोग–विज्ञानी कार्ल रोकिटान्स्की (Carl Rokitanski)। सभी विचारक अपने–अपने विचारों पर इतने आश्वस्त थे कि किसी ने प्रयोगों द्वारा किसी जानवर के शरीर में धमनी–कठोरता उत्पन्न करने का कोई प्रयास नहीं किया। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी कोई सहमति नहीं थी कि यह बीमारी धमनियों की किस सतह से आरंभ होती है।

सर्वप्रथम सन् 1904 ई. में एफ. मार्चेन्ड नामक वैज्ञानिक ने यह दिखाया कि धमनियों में रक्त–प्रवाह के अवरोध का मुख्य कारण धमनी–कठोरता ही है। इसका आरंभ धमनी की भीतरी सतह से होता है। सन् 1910 में ए. विन्दौस (A.Windaus) ने दिखाया कि रोग से प्रभावित धमनी के घावों (lesions) में सामान्य स्वस्थ धमनी की अपेक्षा लगभग 6 गुना अधिक मुक्त कोलेस्ट्राल पाया जाता है। यदि इस कोलेस्ट्रॉल को एस्टर के रूप में मापा जाय तो यह अनुपात लगभग 20 गुना हो जाता है। इस प्रकार विन्दौस ने सर्वप्रथम धमनी कठोरता और कोलेस्ट्रॉल के संबन्ध की जानकारी प्राप्त की।

ऐन्चीकोव के पूर्वज तातारी मंगोल थे, जिन्होंने सन् 1301 ई. में ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। ऐन्चीकोव के परदादा को रूस के जार ने सन् 1746 में सरदार की पदवी दी थी और उन्नीसवीं सदी में उनके अनेक वंशज जार की सेना में उच्च पदों पर रहे। ऐन्चीकोव के पिता सेन्ट पीटर्सबर्ग की प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य, सीनेटर तथा शिक्षा–मंत्री रहे। उनकी माता फ्रांस में बसे रूसी प्रवासियों के कुल की एक अति भद्र महिला थीं। ऐन्चीकोव ने 1903 में अपने स्कूल से स्वर्ण–पदक के साथ अंतिम परीक्षा पास की और रूस के सबसे पुराने प्रतिष्ठित चिकित्सा विज्ञान संस्थान में प्रवेश लिया जिसे "सेन्ट पीटर्सबर्ग की चिकित्सकीय राजकीय सैनिक अकादमी" के नाम से जाना जाता था। 1909 में चिकित्सा की स्नातक परीक्षा पास करके उन्होंने वहीं पर रोग–विज्ञान विभाग में शोध–कार्य आरंभ किया। 1912 ई. में उन्होंने पी.एच.डी. की उपाधि अर्जित की। उसी वर्ष उन्होंने अपने एक सहयोगी चालाटोव (Chalatov) के साथ यह पता लगाया कि धमनी–कठोरता के रोग में मुर्गी के अंडे के पीले भाग का महत्वपूर्ण योगदान है। इस शोध के लिए उनको एक फेलोशिप प्रदान की गई थी। एन्चीकोव ने प्रसिद्ध जर्मन रोग–विज्ञानी लुडविग एशकोफ की प्रयोगशाला में कार्य करना प्रारंभ किया। उन्हीं दिनों प्रथम विश्व–युद्ध आरंभ हो

गया। चूँकि वे रूसी नागरिक थे अतः उनके सामने जेल का खतरा मँडराने लगा। एशकोफ की सहायता से वे स्विट्ज़रलैंड होते हुए सेन्ट पीटर्सबर्ग पहुँचने में सफल हुए।

सन् 1914 में उनकी नियुक्ति सेन्ट पीटर्सबर्ग की चिकित्सकीय सैनिक अकादमी में हो गई और 1916 में वे रूसी सेना के चिकित्सा कोर में शामिल हुए। सन् 1917 में उन्होंने बोल्शेविक पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर ली और मृत्युपर्यन्त निष्ठावान कम्यूनिष्ट बने रहे। सन् 1920 में उन्हें सैनिक अकादमी के सामान्य रोग–विज्ञान विभाग में निदेशक के पद पर नियुक्त किया गया जहाँ वे अपने जीवन के अंतिम दिनों तक कार्यरत रहे। उनकी मृत्यु 'मायोकार्डियल इन्फार्क्सन' के कारण हुई। एन्चीकोव ने अनेक संसर्गज रोगों, घाव भरने की प्रक्रिया तथा 'रेटिकुलो एण्डोथीलियल सिस्टम' (शरीर के जालीदार अन्तस्छद तंत्रों) पर प्रशंसनीय कार्य किया। सन् 1939 में उन्हें रूस की विज्ञान–अकादमी का सदस्य चुना गया। वे रूस के सर्वश्रेष्ठ रोग–विज्ञानी माने जाने लगे। उनका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शोधकार्य यकृत एवं प्लीहा की पतली नलिकाओं में पाई जाने वाली विशिष्ट कोशिकाओं पर था। उल्लेखनीय है कि इन कोशिकाओं के कार्य के विषय में अभी भी कुछ अधिक जानकारी नहीं मिल पाई है। 1945 में ऐन्चीकोव को रूसी सेना की चिकित्सा कोर में लेफ्टीनेन्ट जनरल का पद दिया गया जो उस सेवा का सर्वोच्च पद था। ऐन्चीकोव को उनके कोलेस्ट्राल संबंधी महत्वपूर्ण शोध–कार्य के लिए रूस के बाहर अपेक्षित सम्मान नहीं मिला। इसका प्रमुख कारण उनकी संकोची प्रकृति थी जो अनजान लोगों से घुलने–मिलने में बाधक बनती थी। एक कारण यह भी था कि उनके इस शोधकार्य का मूल्यांकन भी 1956–58 के दौरान ही हो पाया जब वे लगभग 70 वर्ष के हो चुके थे।

कोलेस्ट्रॉल संबंधी शोध की ओर ऐन्चीकोब का ध्यान उस समय आकृष्ट हुआ जब वे 1908 में सेन्ट पीटर्सबर्ग के चिकित्सा संस्थान में अध्ययन कर रहे थे। उस समय एक डॉक्टर जिनका नाम ए.आइ.इग्नाटोवस्की था, ने एक अनूठा प्रयोग किया। उन्होंने कुछ खरगोशों को दूध और अंडे की जर्दी मिला कर खिलाना शुरू किया। कुछ हफ्तों बाद उन्होंने इन खरगोशों की महाधमनी (Aorta) का परीक्षण किया और देखा कि इसमें वैसी ही चकत्तियाँ उभर आई हैं जैसी धमनी–कठोरता के रोगियों की धमनी में पाई जाती हैं। इस प्रकार उस डॉक्टर को मनुष्यों की धमनियों में कठोरता उत्पन्न करने वाली चकत्तियाँ जानवरों में उत्पन्न करने में सफलता मिली। अपने प्रयोग के निष्कर्ष की व्याख्या में डॉ0 इग्नाटोवस्की ने कहा कि चकित्तयाँ दूध और अंडे की ज़र्दी में उपस्थित प्रोटीन के कारण उत्पन्न होती हैं। उन्होंने अपने शोधकार्य को प्रकाशित भी किया परन्तु इसे आगे नहीं बढ़ाया।

ऐन्चीकोव ने उक्त प्रयोग के महत्व को समझा और अपने विभागीय सहयोगी एन.डब्ल्यू. स्टुके को प्रयोग दुहराने को कहा। स्टुके ने खरगोशों के तीन समूह बनाए और तीनों को तीन भिन्न–भिन्न प्रकार के आहारों पर रखा। उन्होंने एक समूह के खरगोशों को मांसपेशियों से निकाले गए द्रव भाग के आहार पर और दूसरे समूह को अंडों की सफेदी वाले भाग के आहार पर रखा, जब कि तीसरे समूह को अंडों की जर्दी वाले आहार पर रखा। कुछ सप्ताह बाद सभी खरगोशों की महाधमनियों की जाँच की गई तो यह पाया गया कि केवल तीसरे समूह के खरगोशों की धमनियों में कठोरता उत्पन्न करने वाली चकत्तियाँ उत्पन्न हुई थीं। इससे सिद्ध हो गया कि इन चकत्तियों का निर्माण अंडों की ज़र्दी में पाए जाने वाले किसी पदार्थ से ही हुआ है, प्रोटीन से नहीं। स्टुके के परिणाम सन् 1910 में प्रकाशित हुए। ऐन्चीकोव को इस निष्कर्ष से प्रसन्नता तो हुई पर संतोष नहीं हुआ। उन्होंने एक अन्य शोधार्थी, एस. चालाटोव को, खरगोशों को अंडों की ज़र्दी खिलाकर चकत्तियाँ उत्पन्न करने तथा उन चकत्तियों की रासायनिक जाँच करने का सुझाव दिया। चालाटोव ने देखा कि इन चकत्तियों पर वसा जैसी लिपिड की बूँदों की बहुतायत थी। इन बूँदों में द्वि–अपवर्तन का गुण था और ध्रुवित प्रकाश में देखने पर इनमें सुन्दर रंग दिखाई दे रहे थे। इन खरगोशों के यकृतों में भी इसी प्रकार के पदार्थ भरे पाए गए।

वैसे तो ऐन्चीकोव और उनके सहयोगियों को ज्ञात था कि इस प्रकार के गुण कोलेस्ट्रॉल में भी पाए जाते हैं, पर वे इस विषय में ठोस प्रमाण चाहते थे। इसका कारण यह था कि अंडों की ज़र्दी में एक अन्य रसायन–फास्फोलिपिड भी पाया जाता है जिसमें उक्त गुण होते हैं। यह भी हो सकता था कि ये लिपिड बूँदें महाधमनी की दीवार (भित्ति) या लीवर के खराब हो जाने से बन रही हों। इन संभावनाओं को दूर करने के लिए ऐन्चीकोब और चालाटोव ने अपने खरगोशों को शुद्ध कोलेस्ट्रॉल का आहार खिलाया। जाँच से ज्ञात हुआ कि इन सभी खरगोशों में धमनी कठोरता उत्पादक चकत्तियाँ बनी पाई गईं। इस शोध का प्रकाशन 1913 में

हुआ जिससे यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि धमनी कठोरता का मुख्य कारण कोलेस्ट्रॉल ही है।

सन् 1924 में ऐन्चीकोव ने यह जानने के लिए प्रयोग किया कि, क्या कोलेस्ट्रॉल ही धमनी कठोरता का एकमात्र कारण है। उन्होंने देखा कि खरगोशों को अधिक कोलेस्ट्रॉल युक्त आहार देने पर न तो उनमें धमनी कठोरता उत्पन्न होती है न ही उनके रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ती है। उन्होंने पाया कि धमनी कठोरता उत्पन्न होने के लिए रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा का एक सीमा से बहुत अधिक बढ़ना आवश्यक होता हैं। साथ ही, मानव रोगियों में उच्च रक्त चाप तथा धमनियों की आंतरिक सतह में सूजन भी धमनी कठोरता के सहकारी कारण हो सकते हैं। परन्तु, कोलेस्ट्रॉल की भूमिका, इस रोग के लिए महत्वपूर्ण होती है, इस तथ्य को ऐन्चीकोव ने बार–बार दोहराया।

अधिकांश चिकित्साशास्त्रियों ने इस महत्वपूर्ण शोध पर कई दशकों तक विशेष ध्यान नहीं दिया। आज भी बहुत से लोग अंडों तथा कोलेस्ट्रॉलयुक्त अन्य खाद्य पदार्थे को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नहीं मानते हैं। इसका एक मुख्य आधार यह माना जाता रहा है कि चूहों तथा कुत्तों में कोलेस्ट्रॉल बहुल आहार से धमनी कठोरता की उत्पत्ति नहीं हो पायी थी, इन्हें चाहे जितना भी कोलेस्ट्रॉल बहुल भोजन क्यों न दिया जाय, इनकी धमनियाँ साफ बनी रहती हैं। पहले तो यह सोचा गया कि ये मांसाहारी एवं शाकाहारी, दोनों हैं, अतः कोलेस्ट्रॉल खिलाने से इनमें रोग नहीं होता है; परन्तु सन् 1946 में स्टाइनर तथा केन्डाल ने कुत्तों के भोजन में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा बढ़ा कर धमनी कठोरता उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की। चूहों के मामले में अब भी सफलता नहीं मिली है।

ऐन्चीकोव के इस महत्वपूर्ण शोध की गुमनामी का (विशेषतः अमेरिका और यूरोप में) एक कारण यह भी था कि अधिकांश चिकित्सकों ने धमनी कठोरता की समस्या पर ध्यान ही नहीं दिया हालाँकि सन् 1916 में सी.एच. बेली और 1935 में टिमोथी लियरी ने भी ऐन्चीकोव के परिणामों की पुष्टि कर दी थी। फिर भी, प्रसिद्ध अमेरिकी चिकित्सक सोमा वाइस और नोबेल पुरस्कार विजेता जार्ज मिनोट ने सन् 1933 में कोलेस्ट्रॉल की रोगजनक क्षमता को अत्यल्प कहा। ऐन्चीकोव के प्रकाशन रूसी भाषा में थे, इससे भी उनका व्यापक प्रचार–प्रसार नहीं हुआ। इस शोधकार्य का एकमात्र विवरण ई.वी. काउड्री की पुस्तक : धमनी कठोरता (आरटीरियास्कलेरॉसिस) में उपलब्ध हुआ जो सन् 1933 में छपी थी। पर, जब रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा का मापन सर्वत्र होने लगा तब इसकी प्रचुरता वाले खाद्य पदार्थों से परहेज की सलाह दी जाने लगी।

ऐन्चीकोव के शोधकार्य पर विशेष ध्यान, बीसवीं सदी के छठे दशक के आरंभ में आकृष्ट हुआ। सन् 1950 में अमेरिकी वैज्ञानिक पत्रिका 'साइन्स' में जॉन गोफ़मैन तथा सहयोगियों का एक लेख प्रकाशित हुआ जो इस दृष्टि से अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ। इन लोगों ने ऐन्चीकोव के प्रयोग को दोहराया और उसके निष्कर्षों की पुष्टि की।

सन् 1952 में लारेन्स किन्सेल और उनके सहयोगियों ने यह पता लगाया कि शाकाहारी मनुष्यों एवं जानवरों से प्राप्त होने वाली वसा (चर्बी) से परहेज रखने वालों के रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा कम होती है। ई.एच. एहरेन्स और उनके सहयोगियों ने भी इस निष्कर्ष की पुष्टि की और यह दिखाया कि वनस्पति–वसाओं का, कोलेस्ट्रॉल को कम करने वाला प्रभाव उनकी असंपृक्तता के कारण होता है।

सन् 1958 में अमेरिकी "हार्ट असोशिएशन" की अधिकृत पत्रिका "सर्कुलेशन" में विलियम डॉक ने एक संपादकीय लिखा। वे उस समय स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में चिकित्सा विज्ञान स्कूल के रोग–विज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने इस लेख में हृदय रोग के शोधकर्ताओं को, ऐन्चीकोव के शोध कार्यों की उपेक्षा के लिए कड़ी फटकार लगाई थी। उन्होंने इस शोधकार्य को हार्वे द्वारा रक्त संचार की खोज तथा लेवाजिए द्वारा श्वांस प्रक्रिया में ऑक्सीजन और कार्बन–डाईऑक्साइड के आदान प्रदान की खोज जैसा ही महत्वपूर्ण कहा। इस संपादकीय लेख का वैज्ञानिकों पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे धमनी कठोरता, कोलेस्ट्रॉल मापन तथा अन्य सम्बद्ध बातों पर विशेष ध्यान देने लगे।

–भौतिक विभाग विज्ञान संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वारणसी–211005

पाण्डुलिपियों में विज्ञान

✍ डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

मुद्रण कला की शुरुआत के पूर्व हस्तलिखित पोथियों का ही प्रचलन था। हिन्दी में ऐसी हस्तलिपियों के पूर्व संस्कृत ग्रंथों की हस्तलिपियाँ प्रचलन में थीं। अतः हिन्दी में उनके अनुवाद तथा स्वतंत्र रूप से हिन्दी में लिखे गये ग्रन्थों की जानकारी आवश्यक है।

यह विदित है कि नागरी प्रचारिणी सभा काशी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, सादूल रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद, प्रयाग संग्रहालय, इंडिया आफिस लाइब्रेरी लन्दन, एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता में पाण्डुलिपियों के भंडार हैं किन्तु इनमें से हिन्दी में विज्ञान विषयक पाण्डुलिपियों की ओर अभी तक किसी का ध्यान नहीं गया। हिन्दी में विज्ञान लेखन के प्रसंग में यह थाती महत्वपूर्ण साधन बन सकती है।

हमने विविध भण्डारों में उपलब्ध पाण्डुलिपियों की सूचियों का अवगाहन करके लगभग 300 विज्ञान विषयक हस्तलिपियों की विवरणिका तैयार की है। इनमें आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, पशु चिकित्सा, कामशास्त्र के अतिरिक्त कुछ अन्य विषय यथा रत्नपरीक्षा, धनुर्विद्या, पाकशास्त्र आदि से सम्बन्धित पाण्डुलिपियाँ हैं। ये पाण्डुलिपियाँ मूल रूप में सन् 1636 से सन् 1900 के बीच की हैं और इनकी प्रतिलिपियाँ सन् 1705 से लेकर सन् 1940 तक की हैं।

हिन्दी में लिखित ये पाण्डुलिपियाँ पद्य या फिर पद्य–गद्य तथा गद्य शैली में हैं। यह आश्चर्यजनक है कि गणित, ज्योतिष, कामशास्त्र जैसे गूढ़ विषयों का पद्यबद्ध सांगोपांग वर्णन हुआ है। यह पद्य निश्चित रूप से ब्रजभाषा, राजस्थानी, अवधी में है और प्रारम्भिक गद्य ब्रजभाषा में है। फलतः ये पाण्डुलिपियाँ न केवल विज्ञान विषयक जानकारी की उत्तम स्रोत हैं अपितु भाषा के विकास को समझने में भी सहायक हैं।

स्पष्ट है कि ये पाण्डुलिपियाँ मुगल काल से लेकर ब्रिटिश काल तक की हैं। इन 300 वर्षों में विज्ञान के बारे में जो उन्नति हुई और वैज्ञानिक साहित्य का जिस तरह सृजन तथा प्रचार हुआ उसकी ये वास्तविक दर्पण हैं। संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित, कामशास्त्र आदि विषयों में प्राचीन काल से ग्रन्थ उपलब्ध रहे हैं किन्तु संस्कृत के घटते प्रभाव एवं जनसामान्य की समझ में न आने से इस ज्ञान को उन तक पहुँचाने के लिए हिन्दी का पल्लवन हुआ। यह तत्कालीन आवश्यकताओं को पूरा करने वाला तो था ही, किन्तु किन्हीं किन्हीं विषयों में हमें सर्वथा नूतन जानकारी प्रदान करता है– उदाहरणार्थ पक्षी मंजरी में दस्तूर शिकार, चिड़ियों के रोग, बाजनामा; शालिहोत्र में हाथी–घोड़ों के रोगों के वर्णन, धनुर्विद्या तथा पाकशास्त्र, बाग लगाने की विधि, अफीम खाने वालों की दशा, मेघमाला एवं कामशास्त्र का विस्तृत विवरण; ज्योतिष में फलित, सामुद्रिक, रमल का प्रचार, बहीखाता, यूनानी चिकित्सा (तिब्ब)।

जिन प्रमुख संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद इन पाण्डुलिपियों में प्राप्त हुए हैं वे हैं – लीलावती (सं. 1716), शिल्पशास्त्र, योगवाशिष्ट, पराशर जातक (1868), लघुजातक–भाषा वराहमिहिर (1812), भावप्रकाश (सं. 1912), शार्ङ्धर का अनुवाद, गजशास्त्र (सं.1728), सुश्रुत (सं.1921), कोकमंजरी (सं.1607) तथा अर्क प्रकाश।

ये सारी पाण्डुलिपियाँ देखने को मिल पावें, इसमें सन्देह है। किन्तु इनमें से जो भी महत्वपूर्ण प्रतिलिपियाँ हैं उनके संरक्षण, पुनर्मुद्रण की नितान्त आवश्यकता है। विज्ञान परिषद् प्रयाग इस कार्य को अपने हाथ में लेने के लिए उत्सुक है।

–प्रधानमंत्री,
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद–211002

रंगों की दुनिया

✍ डॉ. चन्द्रशेखर पाण्डेय

पृथ्वी के जन्म से लेकर आजतक सूर्य ही उसके लिए सब कुछ है। जन्म देकर इसे ठुकराया नहीं सूर्य ने । वह करोड़ों वर्षों से स्वयं से दूर भेजकर आज भी उसका पोषण करता आया है अपनी जीवनदायी किरणों के प्रकाश से। यह प्रकाश जो हमें रंगहीन या श्वेत लगता है, वास्तव में अनेक रंगों के प्रकाश का मिश्रण है। बचपन से ही हम देखते आये हैं कि सूर्य की किरणों को काँच के प्रिज्म से भेजने पर वह सतरंगी आभा देता है। ठीक ऐसा ही होता है पानी की बूँदों से सूर्य के प्रकाश का विच्छेदन होकर इन्द्रधनुषी रंगों का दर्शन। इसमें मुख्यतः सात रंग होते हैं। विज्ञान की भाषा में हम कहेंगे कि सूर्य के प्रकाश में विभिन्न आवृत्तियों वाले अनेक रंगों के प्रकाश की किरणें होती हैं जो प्रिज्म के आरपार जाने में अलग–अलग कोणों में मुड़ जाती हैं और रंगहीन प्रकाश मुख्य सात रंगों की छटा वाले स्पेक्ट्रम में विच्छेदित हो जाता है। इस स्पेक्ट्रम के एक छोर में है लाल रंग तथा दूसरे छोर में है बैगनी रंग और बीच में आते हैं क्रमशः नारंगी, पीला, हरा, गहरा नीला और नीला। लालरंग की आवृत्ति सबसे कम होती है और बैगनी रंग की सबसे अधिक। हमारे धर्मग्रंथों में सूर्य के रथ के सात घोड़ों की कल्पना की गई है, संभवतः यह इसी सतरंगी प्रकाश का प्रतीक है।

यदि स्पेक्ट्रम के सातों रंगों को एक साथ मिलाकर देखा जाए तो श्वेत रंगहीन प्रकाश दृष्टिगोचर होगा। यह सभी लोगों का अनुभव है कि श्वेत वस्त्रों को धोकर उन्हें हल्के नीले रंग की नील में डुबा दें तो अधिक श्वेत दिखाई देने लगते हैं। इसका कारण है कि नीले रंग के साथ मिलकर श्वेत वस्त्रों का हल्का पीलापन, श्वेत रंग का आभास देने लगता है। रंगों के इस जोड़े को पूरक (complementary) जोड़ा कहा जाता है। यदि पूरक रंगों को उचित मात्रा में मिला दें तो वे एक दूसरे को निष्प्रभावित कर देते हैं तथा श्वेत रंग या रंगहीनता का आभास होने लगता है। लाल, नीला तथा हरा तीन प्राथमिक रंग हैं। इन्हें अलग–अलग अनुपात में मिलाकर कोई भी मध्यस्थ रंग बनाया जा सकता है।

आखिर रंगहीन वस्तुओं में क्या गुण है कि वह हमें विशेष रंग का आभास देता हैं? उदाहरण के रूप में यदि किसी वस्तु के ऊपर श्वेत प्रकाश पड़ता है और वह हमें लाल रंग की दिखाई देती है, तो उसके माने यह होंगे कि वह अधिक आवृत्ति वाली अधिकांश किरणों को आत्मसात् कर लेती है। परिणाम यह होता हे कि वस्तु जिन शेष किरणों की हमारी आँख को उपलब्ध कराती है, वह कम आवृत्ति वाले लाल रंग की किरणें होती हैं और वस्तु हमें लाल दिखाई देती है। इस आधार पर श्वेत दिखने वाला कागज, चूने से पुती दीवारें या हिम प्रायः सभी रंगों की किरणों का अस्सी प्रतिशत तक परावर्तित कर देते हैं। दूसरी ओर कोई वस्तु काली इसलिए दिखाई देती है कि उसमें सभी रंगों को समान रूप से नब्बे प्रतिशत तक सोख लेने का गुण होता है।

अब उन वस्तुओं पर दृष्टि डालें जो पारदर्शक हैं और जिनके आरपार जाने वाला प्रकाश हमें रंगीन दिखाई देता है। उदाहरण के लिए एक रंगीन काँच को लीजिए जिसके आरपार जाने वाला प्रकाश नीले रंग का दिखाई देता है। यहाँ पर हमें यह समझना चाहिए कि इस काँच के माध्यम से नीले रंग की किरणें तो बे रोकटोक चली जाती हैं परन्तु अन्य रंग की किरणों को यह रोक लेता है। ऐसे पारदर्शक पदार्थ फिल्टर के रूप में काम करते हैं मानो अनेक रंगों के मिश्रण यानी श्वेत प्रकाश को छान दिया गया हो। इनका उपयोग फोटोग्राफी तथा अनेक प्रकाशीय उपकरणों में किया जाता है। नाटक या नृत्य की पृष्ठभूमि में भावात्मक परिवर्तन लाने में रंगीन प्रकाश का प्रचुर उपयोग होता है।

जहाँ हम श्वेत प्रकाश की बात करते हैं हमारा इशारा होता है सूर्य के प्रकाश की ओर। इसे हम प्राकृतिक प्रकाश कहते हैं। कोई रंगीन पदार्थ सूर्य के प्रकाश में जैसा दिखाई देता है, उसे ही उसका वास्तविक रंग माना जाता है। आप साड़ियों की दुकान में जाते हैं। एक बढ़िया रंगीन साड़ी का असली रंग कैसा है इसे जानने के लिए उसे सूर्य के प्रकाश में देखने का आग्रह करते हैं।

रंगों का बोध केवल मनुष्यों को ही नहीं होता। जीव जगत के अनेक अन्य प्राणियों को भी इनका आभास होता है।

चटकीले तेज रंगों को बंदरों की अनेक जातियाँ, कई पक्षी, मछलियाँ, सरीसृप (Reptiles) तथा कीड़े भी पहचान सकते हैं। पके हुए रंगीन फल केवल अपनी मिठास या गंध से ही बंदरों तथा पक्षियों को आकर्षित नहीं करते, इसमें रंगों की भी विशेष भूमिका है। इधर उन्हें मधुर फल खाने को मिलते हैं और बदले में पेड़ों की वंशवृद्धि के लिए बीजों का विकीरण हो जाता है। प्रकृति की सूझ–बूझ भी देखिए कि बीज जब तक परिपक्व नहीं होते, फल प्रायः हरे रंग के होते हैं और पत्तों के रंग में छिपे रहते हैं। न उनका रंग ही आकर्षक होता है न स्वाद! फूलों का रंग तितलियों, मधुमक्खियों व अन्य कीट–पतंगों को आकर्षित करता है तथा फूलों में परागण होता है जो पौधों की वंश वृद्धि का मूलक है।

रंगीन तितलियाँ भी प्रकृति की विचित्रता हैं। इनके मनोहर रंग व डिजाइनों का सम्बन्ध इनकी सुरक्षा से है। तितलियों के पंखों की गहरी पृष्ठभूमि में तेज पीले, नारंगी या लाल रंग के धब्बे शत्रुओं को इस बात की चेतावनी देते हैं कि वह खाने योग्य नहीं । उष्ण प्रदेशों की तितलियों के पंखों ने ऐसे डिजाइनों का रूप ले लिया है जो न खाने योग्य वनस्पतियों से मिलता जुलता है या फिर यह रंग पुष्ठभूमि की मिट्टी पत्तियों या वृक्षों की छाल की तरह दिखाई देते हैं। गिरगिट से कौन परिचित नहीं? अपना रंग बदलने की इसकी दक्षता का सम्बन्ध वातावरण के ताप तथा वाह्य उद्दीपन से होता है। इसका विधान भी बडा विचित्र हैं। गिरगिट के शरीर में रंगीन पदार्थों की लचीली पर्तें होती हैं जिन्हें यह त्वचा की ओर धकेल सकता है और उसका रंग बदल जाता है।

हमारे रंग बिरंगें मित्रों में सबसे बड़ा वर्ग पक्षियों का है। श्वेत से काले तक तथा स्पेक्ट्रम के सभी रंगों से सुसज्जित पक्षी प्रकृति में पाये जाते हैं। कुछ पक्षी इतने सुन्दर हैं कि सुन्दरता ही इनके लिए अभिशाप बन गई है। पिछले सौ वर्षों में पक्षियों की अस्सी प्रजातियाँ मनुष्य के अमानवीय व्यवहार का शिकार हो कर नष्ट हो चुकी है। रंगों के नामकरण में भी पक्षी बसे हुए हैं। तोते का विशिष्ट हरा रंग (Parrot green), मोर का नीला रंग (Peacock blue), कैनरी पक्षी का पीला रंग (Canary yellow) इत्यादि सुपरिचित उदाहरण हैं। रंगों के कई नाम सुपरिचित वस्तुओं के रंगों के आधार पर किये जाते हैं, जैसे आसमानी नीला, नील की भँति नीला (Indigo), पत्तियों की भाँति हरा (Leaf green), धान की भाँति धानी , जामुन की भाँति जामुनी, मिट्टी की भाँति मटमैला इत्यादि।

प्रकृति की गोद में रहने वाला आदि मानव इसके रंगों से आकर्षित हुआ। जब उसने इन्हें चित्रित किया तो उसे रंगों की आवश्यकता हुई। उसने अनेक प्रयोग किये और पाया कि मिट्टी और खनिजों के रंगों में वनस्पति से उपलब्ध रंगों से अधिक स्थायित्व है। इसलिए गुफाओं तथा प्राचीन भवनों के भित्तिचित्रों में खनिज रंगों का प्रयोग हुआ। ताँबा, लोहा, मैंगनीज, निकिल, कोबल्ट इत्यादि सुपरिचित धातुएँ ऐसी हैं, जिनके लवण तथा खनिज रंगीन होते हैं।

वानस्पतिक मूल के रंगों में सबसे विशिष्ट स्थान नील का रहा है। नील के पौधे भारत और जावा में होते हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारत से लगभग 90 लाख किलोग्राम नील का निर्यात होता था तथा इससे अनेक अन्य रंगों का निर्माण होता था। इसके बाद ही जर्मनी में संश्लेषित रंगों का विकास हुआ और नील की खेती लुप्तप्राय हो गई। यही हाल कई अन्य वानस्पतिक रंगों का भी हुआ। एक समय था जब अप्राकृतिक रंगों की खोज रसायनज्ञों का प्रिय विषय हुआ करता था। जर्मनी इसमें अग्रणी देश था।

रासायनिक रंगों का आधार कोलतार तथा बाद में पेट्रोलियम से प्राप्त रसायन रहे हैं। इन रंगों की विविधता तथा गुण अपरिमित हैं। कुछ सूती वस्त्रों को रंगते हैं तो कुछ ऊनी वस्त्रों को। रेशम, चमड़ा, नाइलोन, पॉलीएलीएस्टर, एक्रिलिक सभी के लिए रंग बने हैं। रासायनिक आधार पर इनमें विभिन्नता होती है। रंग कोई भी हो वह तभी अच्छा है जब वह पक्का (fast colour) हो यानी धोने से तथा प्रकाश में रहने सें फीका न पड़े। यह स्थायित्व रंगों के अणुओं की विशेष रचना पर निर्भर करता है क्योंकि इसी के द्वारा वह रंगाई जाने वाली वस्तु से बंधन बनाता है। जितना ही बंधन मजबूत होगा उतना ही रंग पक्का होगा। रंगाई केवल वस्त्रों तक ही सीमित नहीं है। अब तो सिर के बालों को भी अनेक रंगों से रँगा जाता है। कथकली के नर्तक अपने चेहरे को गहरे रंगों से रंगते हैं। इसमें उनकी भाव–भंगिमा और भी मूर्त हो उठती है।

लकड़ी, सीमेन्ट तथा धातुओं की सतह को रंगने वाले पदार्थों को पेन्ट कहते हैं। पेन्ट अघुलनशील रंगीन पदार्थ का किसी सूखने वाले द्रव में बनाया हुआ मिश्रण है। इसमें कई पदार्थ भी मिलाये जाते हैं। सूखने पर इन सबकी एक पतली पर्त सतह पर बन जाती है। यह केवल न सुन्दरता बढ़ाती है, वरन् धातुओं को जंग

लगने से तथा लकड़ी को कीड़ों से सुरक्षा प्रदान करती है।

रंग केवल सुन्दर लगने की भूमिका ही नहीं निभाते, प्राणीजगत से इनके और भी अनेक गूढ सम्बन्ध हैं। हम देख चुके हैं कि रंगीन फल, फूलों तथा उन पर विचरने वाले कीड़ों और पक्षियों का पारस्परिक सम्बन्ध दोनों के लिए लाभदायी है। पत्तियों का हरा रंग क्लोरोफिल प्रकाश संश्लेषण द्वारा सूर्य की किरणों की ऊर्जा को अनेक उपयोगी पदार्थों में बदल देता है। इसे यदि पृथ्वी की सबसे चमत्कारी क्रिया कहें तों अतिशयोक्ति नहीं होगी। मनुष्य की त्वचा का रंग मेलनिन अंदरूनी अवयवों को सूर्य की पराबैंगनी किरणों से बचाता है।

रंग हमारे लिए निरापद हों यह बात नहीं। रंगाई उद्योगों से निकला हुआ अवशिष्ट रंग आज हमारे जल स्रोतों को प्रदूषित कर रहा है। बालों तथा वस्त्रों को रंगने वाले अनेक रंग अब विवाद के घेरे में आ गये हैं। इनसे कैंसर सदृश्य अनेक रोगों का सम्बन्ध जोड़ा गया है। अनेक पाश्चात्य देशों ने कुछ चुने हुए रंगों से रंगे जाने वाले वस्त्रों के आयात पर रोक लगा दी है। यह रंग अधिकतर संश्लेषित रंग है। इसलिए एक बार फिर लोगों का ध्यान वानस्पतिक रंगों की ओर गया है।

लाल, नीला तथा हरा तीन प्राथमिक रंग हैं, जिन्हें अलग–अलग अनुपात में मिलाकर कोई भी मध्यस्थ रंग बनााया जा सकता है। टेलीविजन के परदे पर लाल, नीले तथा हरे रंग में अलग–अलग चित्र बनते हैं। जब आँख इस मिश्रित चित्र को देखती हैं तो उसे वस्तु के वास्तविक रंगों के चित्र का आभास होता है। रंगीन फोटोग्राफी भी कुछ इसी प्रकार काम करती है। इस फिल्म में तीन पर्तें होती हैं जो लाल, नीले तथा हरे प्रकाश के अलग अलग चित्र उतारती हैं। मिश्रित चित्र वास्तविक रंगों की छटा देती हैं।

सचमुच रंग की महिमा अपार है और इसके अनेक रूप हैं।

–इमेरिटस प्रोफेसर, रसायनविभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला–171005

(पृष्ठ 12 का शेष भाग)

किया है। ये युक्तियां सांकेतिक प्राकृतिक बोलियों में बोलने वाले खिलौने से लेकर व्यापक मूलपाठ और वाक् प्रणाली तक हो सकती हैं। सी–डैक, पुणे ने एक 'जिस्ट कार्ड' भी विकसित किया है जिसकी सहायता से आप कम्प्यूटर पर विभिन्न भाषाओं में काम कर सकते हैं।

8. इलेक्ट्रॉनिक मेल (ई–मेल)/सीधी बातचीत

ई–मेल संचार का एक चहेता साधन बन गया है। प्रत्येक दिन लाखों लोग विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक इलेक्ट्रॉनिक मेल का आदान प्रदान करते हैं। प्रेषक के कम्प्यूटर पर संदेश तैयार किये जाते हैं और टेलीफोन लाइनों के जरिए कम्प्यूटर 'कुंजी पटल' पर बटन दबाकर, उसे प्राप्त करने वाले व्यक्ति के कम्प्यूटर तक भेज दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति/संस्था की एक विशिष्ट ई–मेल पहचान होती है। सूचना प्रदान करने और उसका उपयोग करने वालों के लिए यह एक ऐसा माध्यम प्रदान करता है जिसमें वितरण लागत घटकर शून्य हो जाती है।

कम्प्यूटर संगोष्ठियों तथा आन–लाइन बातचीत के अतिरिक्त सांख्य माध्यम विचार–विमर्श संचार चैनल की सुविधा भी उपलब्ध कराता है। आन–लाइन बातचीत से अलग अलग महाद्वीपों में बैठे हुए समान रुचि वाले व्यक्तियों के बीच आपस में संचार की सुविधा प्राप्त होती है। आन–लाइन बातचीत का अवसर प्रदान करने वाली किसी विशिष्ट साइट को खोल करके कोई भी व्यक्ति –कुंजी पटल– अथवा माउस की सहायता से अपने संदेश, प्रश्न, उत्तर, अवलोकन, विचार आदि टाइप करके उसी समय विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के लोगों के साथ बातचीत करना प्रारंभ कर सकता है। यह बातचीत कम्प्यूटर मानीटर की स्क्रीन पर दिखाई देती है। दो से अधिक व्यक्ति इस बातचीत में भाग ले सकते हैं, इस प्रकार यह बातचीत संगोष्ठी का रूप ले लेती है। आन–लाइन वैज्ञानिक विचार विमर्श के आयोजन की दृष्टि से इसमें अपार संभावनाएं हैं। इसके साथ ही सांख्य संचार के अन्य बहुत से तरीके आगे सामने आ रहे हैं।

–वैज्ञानिक
राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्
नई दिल्ली.

('एनसीएसटीसी कम्यूनिकेशन्स्' से साभार)

मंगल में मंगल ही मंगल

✍ सौरभ चक्रवर्ती

पृथ्वी से आकाश में दिखने वाला लाल रंग का 'तारा' जो वास्तव में ग्रह है– मंगल ग्रह हजारों सालों से मानव को आकर्षित और रोमांचित करता रहा है। इस ग्रह पर जीवन के होने–न–होने की एक दिलचस्प दास्तान रही है। वैसे तो कई वर्षों से मंगल ग्रह पर जीवन की तलाश वैज्ञानिक कर रहे हैं। 1924 में जब मंगल ग्रह पृथ्वी से निकटतम् दूरी पर था, तब अमरीकी रेडियो स्टेशनों ने मंगल ग्रह से आने वाली आवाजों को सुनने का प्रथम प्रयास किया था लेकिन कोई सफलता हाथ नहीं लगी।

1996 में अंटार्कटिका में मंगल ग्रह का एक चट्टानी टुकड़ा प्राप्त हुआ जो 1.7 करोड़ वर्ष पहले यहाँ गिरा था और इन टुकड़ों पर सूक्ष्म जीवों के जीवाश्म मौजूद पाये गये। इसी के आधार पर 'नासा' ने मंगल पर जीवन के प्रमाणों की खोज को गति प्रदान की। रोबोटों के जरिये अन्तरिक्ष अन्वेषण का एक कार्यक्रम जिनमें पाथ फाइण्डर यान द्वारा मंगल पर उतारी गयी रोबोट गाड़ी सोजोर्नट ने 134 मीटर की अपनी यात्रा में अनेक महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध करायी। मंगल पर करोड़ों वर्ष पहले पानी मौजूद था इसके प्रमाण वैज्ञानिकों को वहाँ पानी द्वारा काटे गये गहरे खड्ड और जलमार्ग से मिला जो हजारों वर्षों से दस हजार मिसीसिपी नदियों जितने प्रवाह बल के बाद ही निर्मित हो सकते है। मार्स आर्बिटर कैमरे ने एक ऐसे जलमार्ग का पीछा किया जिसकी लम्बाई लगभग पाँच सौ मील बताई गयी है। इसे वैज्ञानिकों ने वेनेडि वेलिस नाम दिया।

सम्भव है 2005 में एक अकेला भारी भरकम बूस्टर राकेट जिसकी क्षमता अपोलो युग के सैटर्न राकेट की होगी फ्लोरिडा स्थित केप कैनवरल से छोड़ा जाएगा। इस योजना 'द मार्स डायरेक्ट प्लान' के तहत हर दूसरे साल दो बूस्टर राकेट छोड़े जाएंगे।

मंगल पर आदमी भेजने की बात न सिर्फ वैज्ञानिकों को उत्सुक करती है बल्कि साधारण मानव को भी रोमांचित करती है। सौर मण्डल के अन्य ग्रहों के बारे में हम जितना अधिक जानने की कोशिश करेंगे उतना ही हम पृथ्वी को भी समझ पायेंगे। दरअसल कई मामलो में मंगल ग्रह पृथ्वी जैसा ही दिखता है। सामान्य आकार, दिन की लम्बाई, मंगल के उत्तरी ध्रुव का बर्फ से आवृत होना जो कि जमे हुई पानी का रूप है एवं यही स्थिति दक्षिणी ध्रुव की भी है। इसमें कुछ जमी हुई शुष्क बर्फ कार्बन डाईऑक्साइड की मौजूदगी को प्रमाणित करता है। यहाँ के वायुमण्डल में नाइट्रोजन, कार्बन डाईऑक्साइड, आक्सीजन तो मौजूद है लेकिन मंगल की हवा पृथ्वी की अपेक्षा 100 गुना ज्यादा पतली है। ऐसी हवा में सूर्य की पराबैंगनी किरणों से बचना कठिन है। 4,220 मील व्यास के मंगल ग्रह में ऋतुएं पृथ्वी की तरह प्रतीत होती हैं लेकिन उनका समय यहाँ से दुगना होता है क्योंकि मंगल (पृथ्वी के) 687 दिनों में सूर्य की परिक्रमा पूरी करता है।

मार्स ग्लोबल सर्वेयर के चित्रों से अनुमान लगाया जा रहा है कि यह जलविहीन नहीं था क्योंकि यहाँ पर्याप्त मात्रा में द्रव जल मौजूद था। पृथ्वी के वायुमण्डल में जितनी जलवाष्प मौजूद है उसका 1000 वाँ भाग ही मंगल के वायुमण्डल में है, इसलिए यदि यहाँ जल मौजूद था तो किसी न किसी रूप में जीवन भी यहाँ पनपा और विकसित हुआ हो। वैज्ञानिक इस बात को ही प्रमाणित करना चाहता है कि मंगल ग्रह पर जीवन था। प्राचीन जीवन के जीवाश्म प्रमाणों के लिए मंगल की उजाड़ ऊसर जमीन पर लम्बी दूरियाँ तय करनी होगी। जहाँ तक मंगल ग्रह पर आदमी भेजने का प्रश्न है वह इसलिए आवश्यक है क्योंकि मंगल के वायुमण्डल में जंग लगने वाले कारक हाइड्रोपराक्साइड जैसा तत्व है जिसके चलते यहाँ ऊपरी सतह में कोई कार्बनिक पदार्थ नहीं है। ऐसी स्थिति में जमीन को गहराई तक खोदना होगा तथा बहुत सावधानीपूर्वक चट्टानों की परतों से जीवाश्म निकालने होंगे और यह काम रोबोट के माध्यम से करवाना कठिन है। मंगल ग्रह की गुत्थी मानवीय बुद्धि द्वारा सुलझाना आवश्यक है क्योंकि मानव ने जैसे चन्द्रमा पर उतर कर अपने निजी अनुभव को प्राप्त किया था उसी प्रकार मंगल ग्रह पर भी ऐसा ही करना आवश्यक है। चर्चा है कि नासा 2007 तक मंगल पर

(शेष भाग पृष्ठ 30 पर)

बादल कैसे बनते हैं?

डॉ. विजय कुमार उपाध्याय

आज से लगभग पाँच शताब्दी पूर्व संसार के महान वैज्ञानिक लियोनार्डो द विंसी (1452–1519) ने लिखा है कि हवा नदी के जल के समान प्रवाहित होती रहती है तथा अपने साथ बादलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। हवा के साथ–साथ प्रवाहित होने वाले इन बादलों के मुख्य स्रोत सागर एवं महासागर हैं। समुद्रों से हवा बादलों को उठाकर वर्षा, तुषार एवं ओले के रूप में धरती के विभिन्न भागों में वितरित करती रहती है। इस जल–चक्र में मुख्य तीन चरण हैं। पहले चरण में समुद्र या अन्य जलाशयों का जल वाष्प बन कर वायुमंडल में पहुँचता है। दूसरे चरण में वायुमंडल इस जलवाष्प को बादलों के रूप में इधर–उधर फैलाकर वर्षा करता है। तीसरे चरण में वर्षा द्वारा भू–सतह पर आने वाला यह जल नदियों से चल कर पुनः समुद्रों या अन्य बड़े–बड़े जलाशयों में पहुँच जाता है।

समुद्रों या अन्य जलाशयों का पानी वायुमंडल में कैसे पहुँचता है ?

हम जानते हैं कि किसी पदार्थ को द्रव से गैस में परिवर्तित होने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु समुद्रों या अन्य जलाशयों से जल को वाष्प बनने हेतु गर्म करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। गतिशील अणुओं की गतिज ऊर्जा का कुछ अंश उस समय स्थैतिक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है जब कोई द्रव गैस बन जाता है। यह ऊर्जा गैस में गुप्त ताप के रूप में जमा हो जाती है। यह गुप्त ताप वस्तुतः स्थैतिक ऊर्जा का एक रूप है। जब गैस पुनः द्रव में परिवर्तित होती है या संघनित होती है तो यह गुप्त ताप मुक्त होता है। जल के वाष्पीभवन के दौरान भी गैस के कुछ अणु द्रव सतह पर वापस लौटते रहते हैं। यदि द्रव सतह को छोड़ने वाले अणुओं की संख्या द्रव सतह पर लौटनेवाले अणुओं की संख्या से अधिक होती है तो वाष्पीभवन होता है अन्यथा नहीं। वाष्पीभवन के लिए ऊर्जा आवश्यक है। रोजाना के अनुभव में हम पाते हैं कि यदि हमारा शरीर भीगा हो तो हवा में जाने पर हमें अधिक ठंडक महसूस होती है। परन्तु यदि हमारा शरीर सूखा हो तो हवा में जाने पर उतनी ठंडक महसूस नहीं होती। इसके पीछे कारण यह है कि भीगे शरीर में जल की बूँदें सटी रहती हैं जो हवा के संपर्क में आने पर वाष्प बन जाती हैं। इसी वाष्पीभवन के दौरान ये बूँदें हमारे शरीर की उष्मा को लेती हैं जिसके कारण हमें ठंडक महसूस होती है।

जब जल का वाष्पीभवन होता है तो वाष्प के अणु वायुमंडल में एक दाब पैदा करते हैं। यह दाब वायुमंडलीय दाब का एक अंश बन जाता है क्योंकि जलवाष्प अब वायुमंडल की गैसों में ही शामिल एक गैस है। प्रति इकाई आयतन में जलवाष्प के अणुओं की संख्या जितनी अधिक होती है, उनके द्वारा निर्मित वाष्पदाब उतना ही अधिक होता है। जब यह वाष्पदाब जल के उस आन्तरिक दाब के बराबर हो जाता है, जो जल स्तर के अणुओं को वाष्प के रूप में निकालता है, तो वाष्पीभवन बन्द हो जाता है। जिस वाष्प दाब पर यह बन्द होता है उसे संतृप्त वाष्पदाब कहा जाता है, क्योंकि इस स्थिति में हवा संतृप्त हो जाती है तथा वह अब और अधिक जल वाष्प को ग्रहण नहीं कर सकती। संतृप्त वाष्पदाब ठंडे जल की तुलना में गर्म जल के लिए अधिक होता है। यही कारण है कि गर्म जल की सतह के ऊपर वाष्पीभवन अधिक होता है। वायुमंडल का तापमान भी वाष्पीभवन को नियंत्रित करता है। गर्म हवा ठंडी हवा की तुलना में अधिक जलवाष्प ग्रहण कर सकती है, अतः गर्म हवा में वाष्पीभवन अधिक होता है।

वाष्पीभवन के नियंत्रण में वायु की गति की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भू–सतह पर हवा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती है। इस प्रकार किसी शुष्क स्थान से जहाँ कम आर्द्रता है, हवा स्थानान्तरित होकर वैसे स्थान की हवा को अपने स्थान से विस्थापित कर देती है जहाँ आर्द्रता अधिक है। इस प्रकार वाष्पीभवन की क्रिया निरन्तर चलती रहती है। प्रायः पृथ्वी के विषुवतीय क्षेत्र का तापमान अधिक होने के कारण वहाँ वाष्पदाब अधिक रहता है, जबकि ऊँचे अक्षांश वाले क्षेत्रों में यह कम होता है।

बादल का निर्माण

एक स्थिति ऐसी आती है जब वायुमंडल में उपस्थित

जलवाष्प संघनित होकर द्रव की बूँदों में परिवर्तित होने लगता है तथा बादल का निर्माण करता है। जलवाष्प का संघनन तब होता है जब सापेक्ष आर्द्रता शत प्रतिशत हो जाती है। वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प के वाष्पदाब तथा संतृप्त वाष्पदाब के अनुपात को सापेक्ष आर्द्रता कहा जाता है अर्थात् वायुमंडल में उपस्थित जलवाष्प की वास्तविक मात्रा तथा उसी स्थिति में वायुमंडल द्वारा जलवाष्प ग्रहण करने की अधिकतम क्षमता के अनुपात को सापेक्ष आर्द्रता कहा जाता है।

जलवाष्प को संघनित होकर बादल निर्माण करने हेतु ठोस आधार की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे ठोस आधार वायुमंडल में उपस्थित धूल कण प्रदान करते हैं। ये धूल कण बादल कणों के निर्माण हेतु संघनन–नाभिक कहे जाते हैं। यदि हवा में धूल कण मौजूद नहीं रहें तो शत–प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पहुँचने पर भी बादल कणों का निर्माण नहीं होगा। ऐसी स्थिति में सापेक्ष आर्द्रता 400 प्रतिशत से अधिक होने पर ही बादल कणों का निर्माण होगा। कभी–कभी हवा में अधिक अशुद्धि वर्तमान रहने पर 100 प्रतिशत से कम आर्द्रता में भी जलवाष्प का संघनन होने लगता है जिससे कुहासे का निर्माण होता है।

धूल कण के अलावा भी कई अन्य प्रकार की अशुद्धियाँ संघनन नाभिक का काम करती हैं। समुद्र की सतह पर वाष्पीभवन के कारण कभी–कभी कुछ लवण कण भी वायुमंडल में पहुँच जाते हैं। ये लवण कण भी संघनन नाभिक का काम करते हैं। इसके अलावा हवा में पहुँचने वाले अनेक प्रकार के धुएँ के कण तथा राख के कण भी बादल निर्माण हेतु संघनन नाभिक का काम करते हैं। लवण कण तथा धुएँ के कण, धूल कणों की तुलना में अच्छे संघनन नाभिक का काम करते है क्योंकि 100 प्रतिशत से कम सापेक्ष आर्द्रता रहने पर भी इन कणों पर संघनन होने लगता है। जिस तापमान पर हवा संतृप्त हो जाती है उस तापमान को हिमांक (Dew point) कहा जाता है। इसी तापमान पर जलवाष्प का संघनन होता है जिसके फलस्वरूप बादल का निर्माण होता है।

वायुमंडल में जलवाष्प के संघनन का मुख्य कारण तापमान का कम होना है। किसी वस्तु के तापमान में कमी तब आती है जब उस वस्तु से ऊर्जा का स्थानान्तरण उसके चारों ओर के वातावरण में संचालन, संवाहन तथा विकिरण द्वारा होता है। अधिकांश संघनन ऊपर उठती हुई हवा के कारण होता है।

जल के हिमांक तापमान में भी दाब के अनुसार परिवर्तन होता है। अभी तक के अनेक मौसम वैज्ञानिकों द्वारा किए गये अध्ययनों से पता चला है कि प्रति किलोमीटर बढ़ती ऊँचाई के साथ हिमांक में 1.7 डिग्री सेंटीग्रेड की कमी आती है। इस प्रकार यह गणना आसानी से की जा सकती है कि भू–सतह की हवा कितनी ऊँचाई तक उठेगी जिससे उसमें उपस्थित जलवाष्प का संघनन प्रारम्भ हो जायेगा तथा बादल का निर्माण होने लगेगा।

यदि हवा संतृप्त होने के बाद भी ऊपर उठती रहे तो इसके तापमान में गिरावट की दर 10 डिग्री सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटर से कम होगी। अध्ययनों से पता चला है कि बढ़ती ऊँचाई के साथ संतृप्त हवा के तापमान में गिरावट की दर 6 डिग्री सेंटीग्रेड प्रति किलोमीटर है।

–प्राध्यापक, भूगर्भ इंजीनियरी कॉलेज
भागलपुर–813210

(पृष्ठ 28 का शेष भाग)

आदमी उतारने का प्रयास कर रहा है। फिलहाल आदमी भेजने से पहले रोबोटनुमा यानों की एक श्रृंखला मंगल पर भेजी जा रही है जो तरह–तरह के आंकड़े और सूचनायें प्राप्त कर मंगल की मानवीय यात्रा को सफल बनाने में मददगार साबित होगी।

वहीं दूसरी ओर वैज्ञानिक मंगल ग्रह को आबाद करने के एक दिवास्वप्न और रोमांचक विज्ञान कथा में फँसा है। वैसे यह एक बेहद खर्चीली प्रक्रिया है और इसे प्राप्त करने में करीब 350 से 400 वर्ष लग जायेंगे। कुछ लोग इस योजना को मूर्त रूप देने के लिए प्रयासरत हैं।

मंगल ग्रह से सम्बन्धित विभिन्न तरह की खोजों में लगे वैज्ञानिकों को अभी और सफलता प्राप्त करनी है क्योंकि मनुष्य एक जिज्ञासु, कौतूहल भरा प्राणी है अतः मानव कभी भी किसी भी परिस्थिति से पीछे नहीं हट सकता। हालाकि इस कार्य में अनेक कठिनाइयाँ सामने आने वाली हैं लेकिन जिस प्रकार से चन्द्रमा के बारे में कई विशेष जानकारियाँ प्राप्त हुई उसी प्रकार आने वाले वर्षों में मंगल ग्रह के बारे में विशेष जानकारियाँ मानव जाति को जल्द ही प्राप्त होंगी। जरूरत है तो मात्र परिश्रम, लगन एवं धैर्य की।

–33/77, खालिस पुर
वाराणसी, उत्तर प्रदेश

पुस्तक-समीक्षा

संचार माध्यमों के लिए विज्ञान कथा
सम्पादक : डा. राजीव रंजन उपाध्याय तथा डॉ. अरविन्द मिश्र
प्रकाशक : भारतीय विज्ञान कथा लेखक समिति, फैजाबाद
संस्करण : 2000, पृष्ठ संख्या : 100

विज्ञान कथाओं के लेखन हेतु प्रोत्साहित करने के लिए 19–22 फरवरी को सारनाथ में एक कार्य शिविर का आयोजन किया गया जो इस दृष्टि से अद्वितीय था कि राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, नई दिल्ली ने इसके लिए आर्थिक सहयोग दिया जिसका भरपूर लाभ उठाया गया विज्ञान कथा लेखकों को ढूँढ निकालने में। इसमें मुद्रण, श्रव्य, दृश्य के साथ ही समीक्षा, रिपोर्ताज, निबन्ध का एक पृथक वर्ग भी प्रविधानित था। स्रोत विद्वानों के निर्देशन में 30 प्रतिभागियों ने रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इन रचनाओं का संशोधित रूप इस संग्रह में उपलब्ध है।

इस संग्रह में विज्ञान कथा के स्वरूप और संभावना, विज्ञान कथा लेखन का विहंगावलोकन, हिन्दी साहित्य में विज्ञान कथा, दृश्य–श्रव्य माध्यमों के लिए विज्ञान कथाएं जैसे निबंध हैं। इसके अतिरिक्त नव रचित विज्ञान कथाएँ हैं जिन्हें रिपोर्ताज, नाटक जैसी शैलियों में भी दिया गया है।

पुस्तक के अन्त में प्रतिभागियों के नाम भी दिये गये हैं। यह अपनी तरह की पहली पुस्तक है जो किसी कार्यशिविर की गतिविधि का पूरा पूरा विवरण प्रस्तुत करती है। हिन्दी में विज्ञान कथा लेखन की दिशा में यह शुभ संकेत है। डॉ0 अरविन्द मिश्र बधाई के पात्र हैं जिन्होंने अपने दायित्व को भली–भाँति निभाया है क्योंकि वे विज्ञान कथा लेखकों के मार्गदर्शक हैं।

–डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

लखनऊ में जैव-प्रौद्योगिकी पर संगोष्ठी

गत 12 व 13 सितम्बर 2000 को राजभाषा स्वर्ण जयंती वर्ष पर औद्योगिक विष विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ (वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद्) द्वारा जैव–प्रौद्योगिकी पर आयोजित द्विदिवसीय संगोष्ठी "पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य" सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गई। इस अवसर पर 104 पृष्ठों की आकर्षक कवर वाली एक स्मारिका का भी प्रकाशन किया गया, जिसमें संगोष्ठी के लिए देश के विभिन्न स्थानों से भेजे गए शोध पत्रों/शोध–निबंधों के सारांश सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और साहित्य भी है यथा आर.ए. माशेलकर, मंजु शर्मा, एन.के. गांगुली, आर.एस. परोदा, सी. एम. गुप्ता, पी. पुष्पांगदन, सुशील कुमार, पी.के सेठ जैसे अंतराष्ट्रीय ख्याति के वैज्ञानिकों के संदेश, नवाबी और लखनऊ, विज्ञान की नगरी लखनऊ जैसे आलेख और साथ में, सी.डी.आर.आई., आई.टी. आर.सी., एन.बी.आर.आई., सिमैप, सी.एम.आर.आई के विषय में भी जानकारी दी हुई है।

संगोष्ठी 5 सत्रों में विभक्त थी–

1. जैव–प्रौद्योगिकी : पर्यावरण प्रदूषण निवारण में योगदान (12 शोधपत्र)
2. स्वास्थ्य एवं रोग नियंत्रण में जैव–प्रौद्योगिकी की भूमिका (11 शोधपत्र)
3. खाद्यान्न उत्पादन एवं प्रसंस्करण में जैव–प्रौद्योगिकी (13 शोधपत्र)
4. प्राकृतिक जैव–संपदा के विकास में जैव–प्रौद्योगिकी (9 शोधपत्र)
5. विविध (15 शोधपत्र)

इसके अतिरिक्त पोस्टर प्रस्तुतिकरण (30) भी थे।

इस संगोष्ठी में लखनऊ सहित पुणे, चण्डीगढ़, रुड़की, इलाहाबाद, नागालैण्ड, जोधपुर, लुधियाना, गोवा, वाराणसी, नागपुर, धनबाद, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों ने शोध पत्र भेजे। पोस्टर भी वैसे तो अधिकतर लखनऊ के लोगों के ही थे किन्तु शाहजहाँपुर, कलकत्ता, पन्तनगर, वाराणसी और बरेली से भी लोगों ने पोस्टर भेजे।

विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र (जिन्हें पिछले दिनों दिल्ली की दो संस्थाओं ने सम्मानित किया है) ने न केवल तकनीकी सत्र–4 की अध्यक्षता की वरन् अपना विशेष व्याख्यान "पर्यावरण मित्र जैव–प्रौद्योगिकी : वर्मीकल्चर" भी प्रस्तुत किया।

उद्घाटन से लेकर समापन तक सभी कार्यक्रम प्राप्त सूचना के अनुसार हर दृष्टि से बहुत ही अच्छे रहे। कुल मिलाकर संगोष्ठी अत्यंत सफल रही। इसके लिए संगोष्ठी के संयोजक डॉ0 जयराज बिहारी और उनके सहयोगियों के अतिरिक्त संरक्षकगण, कार्यकारिणी के सदस्य और संगोष्ठी से जुड़े सभी व्यक्ति बधाई के पात्र हैं।

–प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

परिषद् का पृष्ठ

1. 'त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण' आरम्भ

10 अक्टूबर 2000 को विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में त्रैमासिक विज्ञान पत्रकारिता प्रशिक्षण का उद्घाटन जूट अनुसंधान संस्थान मुम्बई के पूर्वनिदेशक डॉ0 एस.एन. पाण्डेय ने किया। विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधान मंत्री तथा पठ्यक्रम संयोजक डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने प्रशिक्षण के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ0 दिनेश मणि, डॉ0 सुप्रभात मुकर्जी, श्री विजय चितौरी, डॉ0 अशोक कुमार गुप्ता, तथा डॉ0 भुवनेश्वर सिंह गहलौत ने भी अपने विचार व्यक्त किये। राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, भारत सरकार के समर्थन से आयोजित इस प्रशिक्षण में 36 प्रशिक्षार्थी भाग ले रहे हैं।

2. राष्ट्रीय कार्यशाला " इंजीनियरी शब्दावली और भारतीय भाषाएँ" सम्पन्न

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली तथा विज्ञान परिषद् प्रयाग के संयुक्त तत्वावधान में 16 और 17 अक्टूबर 2000 को एक राष्ट्रीय कार्यशाला विज्ञान परिषद् प्रयाग के सभागार में आयोजित की गई। कार्यशाला का विषय था 'इंजीनियरी शब्दावली और भारतीय भाषाएँ"।

इस कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के प्रधानमंत्री पं. सुधाकर पाण्डेय ने हिन्दी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों के निर्माण में विज्ञान परिषद् प्रयाग तथा नागरी प्रचारिणी सभा के ऐतिहासिक योगदान का उल्लेख किया तथा बाबू श्याम सुन्दर दास और माधवराव सप्रे की विशेष चर्चा की। राष्ट्रभाषा के माध्यम से तकनीकी विषयों के पठन–पाठन को सुगम बनाने के लिए वर्तमान में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा किए जा रहे कार्यों की सराहना करते हुए उन्होंने कार्यशाला की सफलता के लिए अपनी शुभकामना व्यक्त की।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के अध्यक्ष डॉ0 राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में आयोग द्वारा तैयार सभी शब्दावलियों को आयोग की वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिया गया है जिससे कोई भी अपनी आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग कर सकता है।

कार्यक्रम का आरम्भ डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी "प्रभामाल" द्वारा प्रस्तुत सरस्वती वंदना से हुआ। तत्पश्चात् विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री तथा कार्यशाला संयोजक डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने अतिथियों एवं विशेषज्ञों का स्वागत किया और विज्ञान परिषद् प्रयाग की गतिविधियों की चर्चा करते हुए वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण में इसके योगदान का उल्लेख किया। कार्यशाला निदेशक डॉ0 एस.सी.एल. शर्मा ने कार्यशाला के उद्देश्यों के बारे में बताया। डॉ0 पूर्णचन्द्र गुप्त ने धन्यवाद ज्ञापित किया तथा कार्यक्रम का संचालन श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव ने किया।

दो दिनों तक पाँच सत्रों में चली इस कार्यशाला में नई दिल्ली, रुड़की, शिमला, उत्तर काशी, जबलपुर, भोपाल, भुवनेश्वर, सुल्तानपुर, वाराणसी, गोरखपुर से आए तथा स्थानीय लगभग 50 विशेषज्ञों तथा सहभागियों ने इंजीनियरी शब्दावली के प्रयोग तथा प्रचार प्रसार के बारे में महत्वपूर्ण एवं सार्थक चर्चा की।

इस कार्यशाला में 11 विशेषज्ञों ने अपने आंमत्रित व्याख्यान प्रस्तुत किये। इनमें श्री विश्वम्भर प्रसाद "गुप्तबंधु", नई दिल्ली, डॉ0 विमलेश वर्मा, नई दिल्ली, डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, इलाहाबाद, प्रो. वी. के. बिन्दल, इलाहाबाद, डॉ0 सतीश सक्सेना, नई दिल्ली, श्री प्रेमानन्द चंदोला, नई दिल्ली, प्रो. खैरा, भोपाल, तथा प्रो. कुलश्रेष्ठ प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त कई सहभागियों की ओर से भी अनेक महत्वपूर्ण सुझाव आयोग को दिये गये।

कार्यशाला की समाप्ति पर आयोग के अध्यक्ष डॉ0 राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव ने सभी विशेषज्ञों एवं सहभागियों को प्रमाण पत्र वितरित किये। कार्यशाला के सफल आयोजन में विज्ञान परिषद् प्रयाग परिवार का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

–देवव्रत द्विवेदी

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1- रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।

2- रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।

3- अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।

4- रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।

5- नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।

6- हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।

7- पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :-
भीतरी पूरा पृष्ठ 1000रु०, आधा पृष्ठ 500रु०, चौथाई पृष्ठ 250रु०,
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु०, आवरण चतुर्थ 4000रु०

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं. (0532) 460001
ई-मेल vigyan1@nde.vsnl.net.in

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

'लोक कला माध्यमों के लिये विज्ञान लेखन' कार्यशाला का उद्‌घाटन करते हुए श्री नवीन प्रकाश, आई.ए.एस., निदेशक, उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद.

कार्यशाला के समापन समारोह को संबोधित करते हुए श्री उदय शंकर तिवारी, निदेशक, इलाहाबाद संग्रहालय

Design by CYBER GRPHIX ALLD. Ph : (0532) 402089, 650409
Printed by GRAPHIC OFFSET ALLD. Ph: (0532) 465016, 465274

ISSN : 0373-1200

दिसम्बर 2000

कौंसिल ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

मूल्य 7.00 रुपये
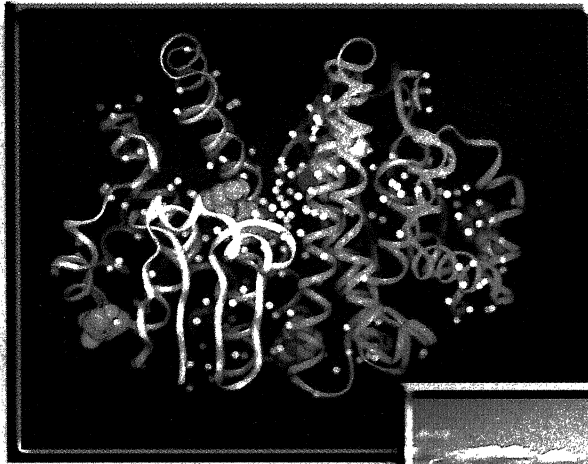
अवजल प्रबन्धन

ऊतक संवर्धन

बैक्टीरिया

कैसे निर्मित होते हैं मरुस्थल ?

विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 86 अंक 9
दिसम्बर 2000

मूल्य

आजीवन व्यक्तिगत : 750 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,500 रुपये
त्रिवार्षिक : 210 रुपये
वार्षिक : 75 रुपये
यह प्रति : 7 रुपये

सभापति

डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक एवं प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक

ग्राफिक आफसेट
186/5 टैगोर टाउन, इलाहाबाद
फोन : 465016, 465274

कम्प्यूटर कम्पोजिंग

विजय कुमार शर्मा

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-211002
फोन : 460001 ई-मेल : vigyan1@nde.vsnl.net.in

विषय सूची

सूचना-प्रौद्योगिकी

आँकड़ों की सुरक्षा: गोपनीयता तथा सत्यनिष्ठा

✍ सुधीर शर्मा एवं प्रदीप यादव

किसी भी दुर्घटना या घटना द्वारा या किसी अधिकृत या अनधिकृत बाहरी या आंतरिक व्यक्ति द्वारा कंप्यूटर में संगृहीत आँकड़ों को अनधिकृत रूप से बदलने, दर्शाने या प्रेषित करने से बचाव ही आँकड़ों की सुरक्षा है।

आँकड़ों की गोपनीयता का अर्थ है किसी भी प्रतिष्ठान, व्यक्ति या व्यक्तिसमूह का वह अधिकार जिसके अंतर्गत वह प्रतिष्ठान, व्यक्ति या व्यक्ति समूह यह निर्णय कर सके कि उसे कहाँ, कब और कैसे तथा कितनी सूचना अपने संगृहीत आँकड़ों के विषय में दूसरों को प्रदान करनी है तथा सूचना पाने के अधिकारी व्यक्ति बाहरी हैं या आंतरिक।

संगृहीत आँकड़ों की शुद्धता और सत्यनिष्ठा अति महत्वपूर्ण है क्योंकि अगर संगृहीत आँकड़े अशुद्ध हैं और उनकी सत्यनिष्ठा पर प्रश्नचिन्ह हो तो उन अशुद्ध तथा असत्य आँकड़ों को संग्रह करना, अद्यतन (अपडेट) करना, संसाधित करना और उनके परिणामों पर विश्वास करना मूर्खता ही है।

आँकड़ों की सुरक्षा की मूलभूत बातें :

1- आँकड़े सुरक्षित होने चाहिए- यानी चोरी, आग या अन्य प्रकार की दुर्घटनाओं के प्रति।

2- आँकड़े पुनः निर्माण योग्य होने चाहिए- क्योंकि चाहे जितने भी पूर्वोपाय किए जाएं दुर्घटनाएं कभी न कभी हो ही जाती हैं।

3- आँकड़े पुनः परीक्षण योग्य होने चाहिए- बहुत से प्रकरणों में केवल इसीलिए बहुत बड़े अपराध संभव हुए क्योंकि उन कंप्यूटर प्रणालियों की पुनः जाँच संभावनाएं शून्य थीं।

4- आँकड़े छेड़े न जा सकने योग्य हों- कंप्यूटर प्रणाली में आँकड़ों का संग्रह इस प्रकार हो कि कोई भी आंतरिक या वाह्य अधिकृत अनधिकृत कंप्यूटर प्रोग्राम बिना उचित आज्ञा के संगृहीत आँकड़ों में कोई भी फेर-बदल न कर सके।

यद्यपि-

- कोई भी प्रणाली पूर्णतया न छेड़े जा सकने योग्य नहीं फिर भी प्रणाली को नियंत्रित करने की प्रक्रिया को असंभव की हद तक कठिन बनाया जाना चाहिए।
- आँकड़ों के प्रयोगकर्ताओं की पहचान हो सके। हर प्रयोगकर्ता की कार्य शुरू करने से पहले और कार्य समाप्त करने के बाद पहचान करनी संभव होनी चाहिए।
- प्रणाली द्वारा सुनिश्चित हो सके कि उसके प्रयोगकर्ता अधिकृत हैं।
- प्रयोगकर्ताओं के कार्यकलापों का मॉनीटर न हो सके। अगर प्रयोगकर्ताओं को यह पता हो कि उनके द्वारा किए गए कार्यों का मॉनीटरन संभव है तो ऐसी स्थिति में उनके द्वारा किसी भी प्रकार के अनधिकृत अथवा गलत जाँच करने की संभावनाएं काफी कम हो जाती हैं।

अनधिकृत अतिक्रमण से आँकड़ों की सुरक्षा ही आज की मुख्य समस्या है तथा यही समस्या किसी भी कंप्यूटर प्रणाली के परिकल्पन की मुख्य

बात होती है क्योंकि किसी भी प्रणाली की सत्यनिष्ठा ही उसकी सफलता और विश्वसनीयता की नींव होती है।

आँकड़ों की सुरक्षा को मुख्यतया दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है :

आंतरिकः इसका संबंध फाइल अभिगम (ऐक्सेस) तथा मशीन फार्म से होता है तथा

वाह्यः इसका संबंध कंप्यूटर प्रोग्राम से संबंधित कार्यालय की कार्य प्रणाली से है।

आंतरिक सुरक्षा

कंप्यूटर में संगृहीत आँकड़ों की सुरक्षा का सबसे महत्वपूर्ण तरीका है गूढ लेखन (टेक्स्ट इनक्रिप्शन)। इसमें साइफर प्रयोग होता है जिसमें सादे टेक्स्ट को अपठनीय तथा अबोधगम्य टेक्स्ट (अनइन्टेलीजेन्टेबल टेक्स्ट) को साइफर टेक्स्ट में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस प्रणाली में यह जरूरी होता है कि इस प्रणाली को उल्टा भी किया जा सके यानि साइफर टेक्स्ट को फिर से सादे टेक्स्ट में बदला जा सके।

क्रम बदलना अथवा परिवर्तन करना

गूढ़ लेखन का एक तरीका क्रम बदलना अथवा स्थान परिवर्तन करना होता है जिसमें सादे टेक्स्ट के अक्षरों को क्रमचयन के आधार पर पुनः क्रमित किया जाता है, क्योंकि इस प्रणाली में अक्षरों की आवृत्ति बदलती नहीं केवल अक्षर बदलते हैं जिससे सादे टेक्स्ट न पढ़े जा सकने वाले टेक्स्ट में बदल जाते हैं। इसका तोड़ गूढ़ विश्लेषक (क्रिप्टोनेलेटिक) प्रणाली के अक्षरों के परिवर्तन आधार का पता करना होता है।

प्रतिस्थापन

दूसरे तरीके को प्रतिस्थापन कहते हैं। इसमें अक्षरों को वास्तव में एक दूसरे प्रतीक (Symbol) द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है। इसमें ये प्रतीक स्थान द्वारा भी संचालित किए जाते हैं अर्थात् किसी एक निश्चित स्थान पर यदि अक्षर को एक्स (X) द्वारा बदला गया है तो किसी और स्थान पर उसी अक्षर को वाई (Y) द्वारा भी बदला जा सकता है।

बहुग्राफिक्स :

यह प्रणाली सबसे महत्वपूर्ण और बहुफलदायक है। इसमें अक्षरों के समूह को मैप (Map) करने के बाद उन्हें दूसरे शब्दों के समूह में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। यह प्रणाली प्रतिस्थापन साइफर की ही देन है। इस प्रणाली को सांख्यिकीय तकनीक द्वारा तोड़ा नहीं जा सकता। इसको तोड़ने के लिए अत्यंत जटिल गणित की आवश्यकता होती है।

विषाणु (वाइरस) :

आँकड़ों की सुरक्षा व्यवस्था पर सबसे बड़ा प्रश्नचिन्ह है विषाणु या वाइरस। वाइरस एक ऐसा प्रोग्राम है जो स्वयं ही अपनी प्रतियाँ बनाता है तथा मौका मिलते ही आतिथेय (Host) प्रोग्राम में अपना घर बना लेता है और जैसे ही पूर्वनिर्धारित परिस्थितियाँ आती हैं अपने आतिथेय प्रोग्राम पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर देता है। वाइरस के मुख्य प्रकार हैं- टाइम बम- जो कि कंप्यूटर घड़ी के आधार पर ही आक्रमण करता है; ट्रोजन हॉर्स- इस प्रकार के वाइरस ट्रोजन हॉर्स की तरह किसी आतिथेय क्रमादेश में छुपे रहते हैं तथा मौका मिलने पर कंप्यूटर पर आक्रमण कर देते हैं। प्रायः ये विषाणु EXE. COM. OUR. फाइलों को नष्ट करते हैं लेकिन आजकल कुछ नए विषाणु ऐसे आए हैं जो कि ASCII फॉरमेट फाइल और टेक्स्ट TXT फाइलों को भी नष्ट करते हैं। आज लगभग 2000 से अधिक विषाणु प्रचलित हैं। पर सबसे बड़ी समस्या है कि दिन-ब-दिन नए-नए विषाणु बढ़ते ही जा रहे हैं।

बचने के उपायः

डिस्क की .EXE, .COM, और .OUR फाइलों को राइट प्रोटेक्ट (Write Protect) करना तथा साथ ही डिस्क के बूट सेक्टर (Boot Sector) को भी राइट प्रोटेक्ट करना। इस प्रकार विषाणु इन फाइलों तथा बूट सेक्टर में प्रवेश नहीं कर पाते तथा आँकड़े और कंप्यूटर प्रणाली सुरक्षित रहती है। इस कार्य का सबसे ज्यादा प्रचलित सॉफ्टवेयर है VSAFE

दूसरा उपाय यह है कि जब कंप्यूटर शुरू किया जाये तभी उसे किसी भी वाइरस के हमले के बारे में पता चलना चाहिए। इसके लिए स्कैनर सॉफ्टवेयर का प्रयोग किया जाता है, जो दो पद्धतियों पर कार्य करता है। पहली तकनीक है जाँच योग (check sum) तकनीक जिसमें प्रारम्भ में ही हर फाइल के बाइटों की संख्या नोट कर ली जाती है तथा जब भी कंप्यूटर शुरू होता है तो जाँच योग प्रोग्राम फिर से पुराने आँकड़ों का मिलान करता है। जरा भी गड़बड़ होने पर यह प्रोग्राम प्रयोगकर्ता को चेतावनी दे देता है। दूसरी तकनीक है कि चिह्नक तकनीक (Signature Technique)। इस तकनीक में स्कैनर प्रोग्राम में लगभग उन सभी संभव विषाणुओं के आधारों के चिह्नक होते हैं। ये स्कैनर प्रोग्राम हर फाइल में इन चिह्नकों को ढूँढते हैं तथा किसी भी सिगनेचर के मिलने पर प्रयोगकर्ता को चेतावनी देते हैं कि उसकी कंप्यूटर प्रणाली संक्रमित है।

एक बार यह पता चलने पर कि कंप्यूटर प्रणाली में विषाणु का आक्रमण हो चुका है, अगला कदम होता है प्रणाली में से उस वाइरस को समाप्त करना। इस कार्य के लिए वैक्सीन का प्रयोग करना होता है। आज के प्रचलित वैक्सीन हैं-

- अनटचेबल (Untouchable)
- स्मार्ट डॉग (Smart dog)
- नैश शॉट (Nash shot)
- एम सेव (M sav)
- यू टी स्कैन (UT scan)

शुरू में वाइरस इसलिए बनाए गए थे कि उनकी चोरी बचाई जा सके लेकिन अभी यही वाइरस आज के कंप्यूटर आँकड़ों की सुरक्षा पर सबसे बड़े प्रश्न चिन्ह हैं।

यंत्र सामग्री ताला :

यंत्र सामग्री ताला कंप्यूटर आँकड़ों की सुरक्षा में नवीनतम तकनीक है। इस तकनीक में किसी भी पैरलल पोर्ट या सीरियल पोर्ट पर एक EPROM को लगा करके एक कूट शब्द को भर देते हैं। इस EPROM तथा संबंधित CIRCUITRY को ही हार्डवेयर लॉक कहा जाता है। जैसे ही कंप्यूटर शुरू किया जाता है एक सॉफ्टवेयर रूटीन लो लेवल प्रोटोकोल द्वारा निर्धारित पोर्ट पर जा कर कूट शब्द को ढूँढ़ता है और अगर निर्धारित पोर्ट पर वह हार्डवेयर न हो जिसमें कूट शब्द भरा हो तो कंप्यूटर का साफ्टवेयर आगे कार्य नहीं करता है। इस पद्धति से किसी भी कंप्यूटर को तभी इस्तेमाल किया जा सकता है जब उसके पोर्ट पर हार्डवेयर लगा हुआ हो। आम तौर पर ऐसी धारणा है कि हार्डवेयर लॉक्स का तोड़ जल्दी से नहीं बनाया जा सकता है क्योंकि इसके लिए कंप्यूटर विज्ञान के अत्यंत गहरे ज्ञान की आवश्यकता होती है।

सिक्युरिटी डिस्क :

यंत्र सामग्री ताले की मूल पद्धति पर ही सिक्युरिटी डिस्क की कार्य-प्रणाली निर्भर है। यह काफी सस्ती और कारगर होती है। इस पद्धति में एप्राम (EPROM) के स्थान पर फ्लॉपी डिस्क में संग्रहण होता है। जैसे ही कंप्यूटर का विशेष सॉफ्टवेयर शुरू किया जाता है सबसे पहले सॉफ्टवेयर का एक रूटीन पूर्वनिर्धारित फ्लापी डिस्क ड्राइव में

पड़ी फ्लापी डिस्क पर एप्राम ढूँढ़ता है तथा अगर वह कूट संदेश साफ्टवेयर रूटीन को निर्धारित स्थान पर नहीं मिलता तो सॉफ्टवेयर आगे कार्य नहीं करता तथा कंप्यूटर भी काम करना बंद कर देता है।

ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार की सिक्युरिटी डिस्क की प्रतिडिस्क नहीं बनाई जा सकती है। सिक्युरिटी डिस्क की कापी न की जा सके इसके लिए कई तकनीकों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें प्रमुख हैं :-

सेक्टरों को यादृच्छिक नंबर देना, सेक्टर के साइज बदल देना तथा जिन सेक्टरों में कूट संदेश या एप्राम भरा हो उनमें BAD SECTORS की अस्थाई पताका लगा देना। हालांकि ऐसा पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता है कि इन सिक्युरिटी डिस्क की कॉपी नहीं बनाई जा सकती है, लेकिन अगर यह कार्य असंभव नहीं तो अति जटिल अवश्य है।इन सिक्युरिटी डिस्क की कॉपी बनाने के लिए अत्यंत गहरे ज्ञान की जरूरत होती है जो आमतौर पर हजारों में केवल एक के पास होता है।

पारण शब्द (पास वर्ड) :

चूँकि पारण शब्द सुरक्षा के लिहाज से क्रांतिक होते हैं। इसलिए इस (पारण शब्द बनाने तथा प्रयोग करने में) विषय में नीचे दी गई प्रणाली की सिफारिश की जाती है:

- छोटे पारण शब्द का प्रयोग न करें-जैसे आपके नाम के आद्यक्षर (Initials)
- सामान्य (अनलंकृत) पारण शब्दों से बचें-संभव हो तो वाक्यों का प्रयोग करें।
- पारण शब्दों को स्मरण कर लें- कभी भी पारण शब्दों को लिखित रूप में सुरक्षित या असुरक्षित स्थानों पर न छोड़ें।
- पारण शब्दों को अक्सर बदल लिया करें-कभी भी किसी पारण शब्द को तीन माह से ज्यादा प्रयोग में न लाएँ।
- उन सभी पत्रों तथा कागज़ों को नष्ट कर दें जिनमें पास वर्ड (पारण शब्द) लिखा गया हो- अक्सर देखने में आया है कि रद्दी कागज़ों की टोकरी से शत्रु को महत्वपूर्ण सूचनाएँ सहज ही उपलब्ध हो जाती हैं।
- प्रयोगकर्ताओं को पारण शब्द का आविष्कार करने दें- इस विधि से कार्यकर्ता अपने कूट शब्द स्वयं याद कर सकेंगे तथा उन्हें किसी कागज़ पर लिखने की आवश्यकता नहीं होगी, जिससे दुर्घटनाएँ कम होंगी।

आँकड़ों की गोपनीयता :

जिन स्थानों पर बहुत बड़े कंप्यूटर आँकड़े संगृहीत तथा कार्यरत होते हैं वहाँ पर उस प्रणाली का प्रयोग करने वाले कर्मचारी भी बहुत होते हैं। ऐसे में संगृहीत आँकड़ों की सुरक्षा पदानुक्रम के आधार पर की जाती है। ऐसी प्रणाली में मास्टर डाटा बेस डाटा ऐडमिनिस्ट्रेटर के अधीन रहता है जो यह निर्धारण करता है कि किस-किस सीमा तक आंतरिक कर्मचारियों तथा किस सीमा तक वाह्य उपयोगकर्ता को मास्टर डाटाबेस में उसे छूट देनी है।

यूनिक्स (UNIX) जैसे ऑपरेटिंग सिस्टम में LAN (लोकल एरिया नेटवर्क) का प्रावधान होता है जिसमें संगृहीत आँकड़ों तथा कंप्यूटर प्रणाली की सुरक्षा हेतु बहुस्तरीय पारण शब्द होते हैं, जिनसे यह निर्धारित किया जा सकता है कि आँकड़े भरने वाले कर्मचारियों को किस सीमा तक आँकड़ों को भरने, संशोधन करने तथा मिटाने की छूट होगी। यही पद्धति आँकडों के प्रयोगकर्ताओं के लिए भी होती है। यूनिक्स ऑपरेटिंग सिस्टम में जब लान (LAN) पर कार्य होता है तो सुरक्षा का पूरा उत्तरदायित्व डाटा ऐडमिनिस्ट्रेटर का ही है। आंतरिक कर्मचारी तथा बाहरी प्रयोगकर्ता डाटा

ऐडमिनिस्ट्रेटर की इजाजत के बिना न तो आँकड़ों में संशोधन कर सकते हैं और न ही वांछित कंप्यूटर प्रणाली से निकाल सकते हैं। यह कार्य डाटा ऐडमिनिस्ट्रेटर बहुस्तरीय पारण शब्द का प्रयोग करके करता है।

अगर कंप्यूटर प्रणाली में संगृहीत आँकड़े सुरक्षित न हों तो ज्ञान के अकूत भंडार, विज्ञान तथा खोज के नए आयाम, सुरक्षा संबंधी आँकड़े तथा वित्तीय आँकड़े अवांछित तत्वों को सहज ही उपलब्ध होंगे और फिर अवांछित तत्व इन आँकड़ों से कितना विध्वंस कर सकते हैं, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

बृहत सुरक्षा की प्रायः जालक्रम तंत्र प्रणालियों में ही आवश्यकता होती है जहाँ पर बहुत से प्रयोगकर्ता आँकड़ों का प्रयोग करते हैं। ऐसे में उनके कार्यकलापों को सीमाबद्ध करने हेतु बहुस्तरीय पारण शब्दों का सहारा डाटा ऐडमिनिस्ट्रेटर को लेना पड़ता है।

इसी प्रकार के आँकड़ों की गोपनीयता की LAN में भी जरूरत होती है जहाँ पर बहुत से कंप्यूटर एक-दूसरे से जुड़े होते हैं तथा उनमें जालक्रम प्रक्रिया सामग्री का प्रयोग होता है। इसके परिणामस्वरूप एक ही सूचना को बहुत से उपयोगकर्ता एक ही समय में अलग-अलग कंप्यूटरों पर प्रयोग कर सकते हैं।

जब तक कि संपूर्ण प्रणाली की सुरक्षा की कोई व्यवस्था न हो तब तक प्रयोगकर्ताओं को फाइलों तक पहुँचाने, उन्हें छेड़ने, उनमें संशोधन करने अथवा मिटाने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। इस प्रकार की आजादी अगर अति संवेदनशील आंकड़ों वाली संग्रह प्रणाली में विभिन्न प्रयोगकर्ताओं के पास होगी तो उसका दुरुपयोग निश्चित होगा ही। सुरक्षा की विभिन्न प्रणालियाँ सुरक्षा तालिका में दी गई हैं।

लॉग-इन सुरक्षा :

लॉग-इन सुरक्षा अनधिकृत प्रयोगकर्ताओं को कंप्यूटर प्रणाली में संगृहीत आँकड़ों तक पहुँचने से रोकती है। जैसे ही कोई प्रयोगकर्ता नेट वर्क प्रणाली पर कार्य शुरू करता है कंप्यूटर सुरक्षा प्रणाली उससे उसका पारण शब्द टंकित करने को कहता है। अतिरिक्त सुरक्षा हेतु टंकित किया गया पारण मॉनीटर पर अंकित नहीं होता है। अगर टंकित किया गया पारण शब्द अवैध हो तो प्रयोगकर्ता को प्रयोग की अनुमति नहीं मिलती है तथा 'पहुँच मंजूर नहीं' का संदेश कंप्यूटर पटल पर अंकित हो जाता है।

पहुँच-सीमा (स्तर) सुरक्षा :

किसी भी नेटवर्क प्रणाली के हर प्रयोगकर्ता की रूपरेखा तैयार कर ली जाती है तथा उसी के आधार पर उसकी पहुँच सीमा स्तर का भी निर्धारण कर लिया जाता है। इसके अनुसार उसके अधिकार, आँकड़ों को भरना या न भरना तथा संशोधन या संशोधन और मिटाना या भाग देखना या भाग छापना मात्र होता है। इसी आधार पर उसकी पहुँच सीमा निर्धारित की जाती है।

एक से लेकर आठ तक की पहुँच सीमा स्तर का निर्धारण किया जा सकता है। सीमा स्तर एक का अर्थ है सबसे कम सीमा स्तर और आठ का अर्थ है आँकड़ों तक सबसे अधिक पहुँच तथा छूट। अधिकतर आठवें स्तर की पहुँच सीमा स्तर केवल डाटा-ऐडमिनिस्ट्रेटर के पास ही सुरक्षित रहती है।

आँकड़ों की गूढ़लेखन (इनक्रिप्शन) द्वारा सुरक्षा :

आँकड़ों का गूढ़लेखन तीसरे स्तर की सुरक्षा मानी जाती है। इस पद्धति में आँकड़ों का कोडन कर दिया जाता है। ये आँकड़ें तब तक नहीं पढ़े जा सकते जब तक उनका कूटवाचन न किया जाए। जैसे ही फाइल सिस्टम को प्रोटेक्ट (PROTECT - एक सॉफ्टवेयर) द्वारा चलाया जाता है फाइल स्वयमेव ही गूढ़लिखित हो जाती है। Protect सॉफ्टवेयर अलग-अलग डाटाबेस तथा इन्डेक्स फाइलों को कार्यानुसार समूह बनाने की स्वतंत्रता

सुरक्षा तालिका

सुरक्षा तथा गोपनीयता का प्रकार	परिभाषा	परिणाम
लॉग-इन (LOG-IN)	प्रयोगकर्ता का नाम तथा पारण शब्द	सिर्फ वही प्रयोगकर्ता, जिसके पास वैध पारण शब्द हों, कंप्यूटर प्रणाली का प्रयोग कर सकते हैं ।
पहुँच स्तर	बहु स्तरों में किसी भी एक या एक से अधिक स्तरों तक	प्रयोगकर्ता के आँकड़ों को देखने, बदलने या बढ़ानें और आँकड़े संगृहीत करने के अधिकार को सीमा बद्ध करता है ।
आँकड़ों का गूढ़लेखन (इनक्रिप्शन)	प्रयोगकर्ता एवं फाइल समूह	डाटाबेस से आँकडों को गूढ़-लिखित कर दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप जिस प्रयोगकर्ता के पास इसे साइफर करने का कोड हो वही उस फाइल का प्रयोग कर सके । यह पद्धति सबसे कारगर सुरक्षा पद्धति मानी जाती है तथा इसको तोड़ने के लिए, गणित की अत्यंत जटिल गणनाएं करनी होती हैं जोकि लगभग अजनबी के लिए असंभव होती है।
सुरक्षा फ्लॉपी	प्रयोगकर्ता को कार्य के समय 'ए' या 'बी' ड्राइव में सुरक्षा फ्लॉपी डालने को कहा जाता है	अगर प्रयोगकर्ता के पास सही सुरक्षा फ्लॉपी न हो तो वह साफ्टवेयर पर कार्य नहीं कर सकता । नोट - सुरक्षा फ्लॉपी की प्रतियाँ नहीं बनाई जा सकती हैं ।
हार्डवेयर लॉक (Hardware Lock)	प्रयोग के लिए एक सुरक्षा यंत्र	यह हार्डवेयर किसी भी पूर्वनिर्धारित सॉफ्टवेयर या सॉफ्टवेयर समूह को सुरक्षा प्रदान करता है । प्रयोग के समय इस सुरक्षा यंत्र का कंप्यूटर सिस्टम के पूर्व निर्धारित पैरलल या सीरियल पोर्ट पर जुड़ा होना अनिवार्य होता है । नोट : यह सुरक्षा यंत्र अक्सर एम एस-डॉस इनवाइरमेंट में या स्टैंड एलोन कंप्यूटर पर ही प्रयुक्त होता है ।
ऐटरिब (ATTRIB)	एम एस डॉस द्वारा निर्धारित मूल सुरक्षा प्रणाली	इस प्रणाली में सुरक्षा के लिए फाइलों या फाइलों के समूहों की विशेषताएँ बदली जाती है जिससे इसके प्रयोग सीमाबद्ध हो जाते हैं। ऐटरिब के अन्तर्गत सुरक्षाएँ नीचे दी गई हैं: S= System इसके अन्तर्गत फाइलें मिटाई नहीं जा सकती हैं तथा फाइलों को प्रणाली के प्रयोग के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। H= Hide इस विशेषता के अन्तर्गत फाइलें छुप जाती हैं तथा उन्हें स्क्रीन पर नहीं पढ़ा जा सकता है। R= Read only इस विशेषता के अन्तर्गत फाइलों को सिर्फ पढ़ा जा सकता है, उनमें संशोधन नहीं किया जा सकता है।

प्रदान करता है तथा एक ही गूढ़लेखन कुंजी प्रदान करता है (एक कूट शब्द जो कि फाइल को इनक्रिप्ट करता है)। इसलिए किसी भी संमूह की फाइलों को वही लोग प्रयोग में ला सकते हैं जिनके पास उस समूह विशेष की गूढ़लेखन कुंजी हो। प्रयोगकर्ता अपने समूह के बाहर की फाइलों को न तो प्रयोग कर सकते हैं और न ही उनका विगूढ़न (decryption) कर सकते हैं।

आँकड़ों की सत्यनिष्ठा (विश्वसनीयता) :

किसी भी कंप्यूटर प्रणाली की विश्वसनीयता को नष्ट करने के प्रयोग कभी भी किये जा सकते हैं, पर यह भी सत्य है कि कंप्यूटर प्रणाली पर किये जाने वाले इस घातक हमले को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। इस विषय में केवल रोकथाम या फिर शीघ्र पता लगाने का उतना ही महत्व है जितना कि मानव की बीमारी के शीघ्र निदान और रोकथाम में होता है। वैसे तो सीधे ही विश्वसनीयता के खिलाफ हमले वाली समस्या का कोई सीधा हल नहीं है, पर इस दिशा में कुछ तकनीकें औरों से बेहतर साबित हुई हैं जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

वाह्य मान्यीकरण

- यह आँकड़ों को खोने की कीमत का निर्धारण करती है कि हमें उन्हें सुरक्षा प्रदान करने में कितना व्यय करना चाहिए।
- संगृहीत आँकड़ों की सुरक्षा करते समय उनके मूल्य के विषय में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए- प्रयोगकर्ताओं तथा डिजाइन इंजीनियरों के लिए केवल इतना जानना ही काफी नहीं कि आँकड़ों को खोना बुरा है बल्कि यह जानना भी जरूरी है कि कितना बुरा है।

बुरे या खराब आँकड़ों को कंप्यूटर में संग्रह करने से पूर्व आँकड़ों को सही करने के पूरे पूरे प्रयत्न कर लेने चाहिए क्योंकि आँकड़ा प्रविष्टि (कंप्यूटर में आँकड़े भरने) में बुराई अक्सर नीचे दिये गए किन्हीं भी कारणों से होती है:

या तो उस स्रोत प्रलेख से, जिनमें आँकड़ों की व्याख्या की गई, गलती होती है या फिर

प्रायः आँकड़ों को कंप्यूटर में संग्रह करते समय कर्मचारी गलत आँकड़ा प्रविष्ट कर देते हैं।

आंतरिक मान्यीकरण :

कंप्यूटर में आंकडों को भरने के बाद उन्हें 'मास्टर डाटा बेस' में अद्यतन करने से पहले यह सुनिश्चित करना अति महत्वपूर्ण है कि प्रविष्ट किया गया आँकड़ा पूर्णतया त्रुटिरहित है। रिकार्ड को सत्यापित करने का एक तरीका है उसे योजनाबद्ध तरीके से नीचे दिये गए जाँच बिंदुओं की कसौटी पर एक-एक करके परख लिया जाय।

- अगर संख्यांक क्षेत्र है तो- कोई ऐसी जाँच करें जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि क्षेत्र में पूर्णांक ही है।
- अगर संख्यांक क्षेत्र है तो- तो यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि क्षेत्र में भरी हुई संख्या सामान्य यानी किसी भी पूर्व निर्धारित सीमा से बहुत कम या बहुत ज्यादा न हो।
- एक सामान्य जाँच भी कर लेनी चाहिए- कभी-कभी पुरानी संख्याओं तथा आँकड़ों से नए आँकड़ों का मिलान कर देख लेना चाहिए तथा किसी भी असामान्य संख्या को पुनः जाँच लेना चाहिए।

आँकड़ों का सत्यापन :

आँकड़ों का सत्यापन ही उनके प्रतिलिपिकरण या अनुलेखन की सही जाँच है। पर सत्यापन में यह कमजोरी है कि प्रतिलिपिकरण या अनुलेखन की अनेक गल्तियाँ, जो कई बार हों, पकड़ में आने से बच जाती हैं।

(शेष भाग पृष्ठ 14 पर)

प्रदूषण-नियंत्रण

सीवेज (घरेलू अवजल) एवं उसका प्रबन्धन

✍ डॉ0 सिद्धनाथ उपाध्याय

सीवेज कस्बों, नगरों एवं महानगरों से निकला अवजल है। यह सामान्यतया पूर्णतः घरेलू स्रोतों से उत्पन्न होता है परन्तु कभी-कभी कुछ छोटी औद्योगिक इकाइयाँ भी अपना अवजल इसमें मिला देती हैं। कभी-कभी इसमें कृषि कार्यों से निकला अवजल भी मिला हो सकता है।

घरेलू अवजल मानव अपशिष्ट (मल व मूत्र) तथा रसोईघर, स्नानगृह, वस्त्रों के धोने आदि से निकले पदार्थों से युक्त होता है। ताजा सीवेज भूरे रंग का गँदला द्रव होता है जिसकी गंध कुछ कुछ मिट्टी जैसी होती है। इसमें तैरते हुए बड़े टुकड़े (मानव मल के टुकड़े, पुराने कपड़ों के टुकड़े, प्लास्टिक, फलों एवं सब्जियों के छिलके आदि), छोटे लम्बित ठोस (मल के छोटे टुकड़े, अन्न के टुकड़े, सब्जियों के टुकड़े, कागज आदि), कोलायडी टुकड़े तथा घुले प्रदूषक होते हैं। ये देखने में आपत्तिजनक एवं रोगाणुओं की उपस्थिति के कारण अत्यन्त हानिकर पदार्थ होते हैं। गर्म जलवायु में सीवेज शीघ्र ही अपनी घुलित ऑक्सीजन खो बैठता है तथा 'सेप्टिक' व दुर्गन्धयुक्त (हाइड्रोजन सल्फाइड के कारण) हो जाता है।

सीवेज में 99-9 प्रतिशत जल एवं 0-1 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते हैं। इन ठोस पदार्थों का प्रतिशत कार्बनिक एवं 30 प्रतिशत अकार्बनिक रूप में होता है। कार्बनिक पदार्थों में 65 प्रतिशत प्रोटीन, 25 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा 19 प्रतिशत वसा होती है एवं अकार्बनिक पदार्थों में बालू, राख, धातुएँ, लवण आदि होते हैं। प्रोटीन व कार्बोहाइड्रेट जीवाणुओं के लिए उत्तम भोजन का कार्य करते हैं। इन्ही जिवाणुओं का विलक्षण पेटूपन अवजल संशोधन में हमारी मदद करता है। इनके साथ ही मल एवं मूत्र दोनों में आँत में पाये जाने वाले जीवाणु भी लाखों की संख्या में होते हैं। इनमें से अधिकांश अहानिकारक हैं, कुछ लाभदायक हैं, तथा कुछ रोगकारक होते हैं। घर से निकला अवजल डिटरजेन्ट, साबुन, वसा, ग्रीज, कीटनाशक,

तालिका 1 : मानव–मल एवं मूत्र की संरचना

पदार्थ/मात्रा	मल	मूत्र
मात्रा (नम) प्रति व्यक्ति/दिन	135–270 ग्रा.	1.0–1.3 कि.ग्रा.
मात्रा (शुष्क) ग्रा. प्रति व्यक्ति/दिन	35–70	50–70
	प्रतिशत (%) संरचना	
जल	66–80	93–96
कार्बनिक पदार्थ	88–97	65–85
नाइट्रोजन	5.0–7.0	15–19
फास्फोरस (P_2O_5)	3.0–5.4	2.5–5.0
पोटैशियम (K_2O)	1.0–2.5	3.0–4.5
कार्बन	44–55	11–17
कैल्शियम (CaO)	4.5	4.5–6.0

भोजन, दूध, दही, अन्न आदि से युक्त होता है।

सीवेज में विद्यमान पदार्थों एवं रसायनों की संख्या इतनी अधिक है कि रासायनिक नाम के आधार पर उनका वर्गीकरण दुष्कर है अतएव पर्यावरण अभियांत्रिक विशेष प्राचलों के द्वारा सीवेज के गुध-धर्म का निर्धारण करते हैं।

सीवेज का गुण-धर्म निर्धारण :

सीवेज एवं अन्य अपशिष्टों का शोधंन ऑँक्सीजन की आपूर्ति सुनिश्चित कर जीवाणुओं की सहायता से की जाती है ताकि वे अपशिष्ट को भोजन के रूप में प्रयोग कर सकें। यह प्रक्रिया मोटे तौर पर निम्नलिखित प्रकार से होती है-

अवशिष्ट+ऑक्सीजन $\xrightarrow{\text{जीवाणु}}$ शोधित अवशिष्ट + नये जीवाणु

अनेक प्रकार के पदार्थों की उपस्थिति के कारण सीवेज का गुण-धर्म निर्धारण पूर्णरूपेण संभव नहीं है। चूंकि जीवाणुओं द्वारा प्रदूषकों के ऑक्सीकरण के लिए प्रयोग में लाई गयी घुलित ऑक्सीजन की मात्रा को निकालना आसान है अतएव कार्बनिक प्रदूषकों की मात्रा को आमतौर पर उनके ऑक्सीकरण के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा के रूप में निरूपित करते हैं।

1- सैद्धांतिक ऑक्सीजन आवश्यकता(सै.आ.)

सैद्धान्तिक रूप से किसी अपशिष्ट को पूर्ण रूपेण कार्बन डाईऑक्साइड व जल में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा को कहते हैं। चूँकि अवजल की प्रकृति इतनी जटिल है कि सैद्धान्तिक ऑक्सीजन को ज्ञात करना संभव नहीं है, अतएव व्यवहार में

2- रासायनिक ऑक्सीजन आवश्क्ता (सी.ओ.डी.)

से काम चलाया जाता है। इसे अपशिष्ट के ऑक्सीकरण के लिए आवश्यक पोटैशियम डाइक्रोमेट की मात्रा के रूप में निकाला जाता है। इस पद्धति से लगभग 95 प्रतिशत पदार्थों का ऑक्सीकरण हो जाता है तथा वांछित परिणाम लगभग 3 घंटे में प्राप्त हो जाता है। परन्तु ये पदार्थ जीवाणुओं द्वारा ऑक्सीकृत हो जायेंगे तथा किस गति से उनका ऑक्सीकरण होगा, इसका पता नहीं चल पाता है।

3- जैव-रासायनिक ऑक्सीजन आवश्यकता:

इसके बारे में सूचना देती है। बी.ओ.डी. ऑक्सीजन की वह मात्रा है जिसकी सहायता से जीवाणु अवशिष्ट का ऑक्सीकरण करते हैं। इस प्रकार जीवाणुओं द्वारा विखण्डित हो सकने वाले प्रदूषकों की मात्रा का मापन इसके द्वारा संभव है। बी.ओ.डी. को विशेष उपकरण (बी.ओ.डी. इनक्युबेटर) की सहायता से 25°C तापमान 5 दिनों में प्राप्त किया जाता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सै.आ. आवश्यकता>सी.ओ.डी.> बी.ओ.डी.। सामान्यतया सीवेज के लिए सी.ओ.डी., बी.ओ.डी. की लगथग 1-5 गुनी होती है।

सीवेज की सान्द्रता :

सीवेज में अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा जितनी ही ज्यादा होगी उसकी सांद्रता उतनी ही अधिक होगी। सीवेज की सान्द्रता बी.ओ.डी. अथवा सी.ओ.डी. में प्रकट की जाती है।

तालिका 2 : सीवेज की सांद्रता

सांद्रता का स्तर	बी.ओ.डी.	सी.ओ.डी.
निर्बल	<200	<400
मध्यम	350	700
प्रबल	500	1000
अतिप्रबल	>750	>1500

किसी स्थान के सीवेज की प्रबलता उस स्थान में जल की खपत पर सीधे निर्भर करती है। वाराणसी में सीवेज की बी.ओ.डी. 150-200 मि.ग्रा./लीटर के लगभग है अतएव यह निर्बल सीवेज है। सीवेज में बी.ओ.डी. के अलावा निलम्बित ठोस (400 मि.ग्रा./लीटर), घुलित ठोस (1060 मि.ग्रा./लीटर), क्लोराइड (30 मि.ग्रा./लीटर) भी होते हैं। सीवेज की प्रबलता को स्पष्ट करने में प्रति व्यक्ति बी.ओ.डी. की उत्पादकता का उपयोग होता है। यह एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में बदलती रहती है। प्रति व्यक्ति मानव मल-मूत्र की मात्रा लगभग एकसमान ही होती है, परन्तु स्थान भिन्नता के चलते गुण-धर्म में कुछ भिन्नता हो सकती है। इस भिन्नता का कारण कूड़ा-कचरे (स्लज) की मात्रा एवं संरचना का भिन्न होना है। कुछ राष्ट्रों में प्रति कारक बी.ओ.डी. निम्नलिखित प्रकार से है-

तालिका 3

विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति बी.ओ.डी. अधिभार

देश	बी.ओ.डी. अधिभार, ग्रा0
जाम्बिया	36
केनिया	23
दक्षिण पूर्वी अफ्रीका	43
भारत	30–45
ग्रामीण फ्रांस	24–34
ब्रिटेन	50–59
अमेरिका	45–78

मोटे तौर पर गर्म जलवायु के देशों के लिए 40 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन की मात्रा स्वीकार्य है। मानव की विभिन्न दैनिक क्रियाओं द्वारा औसत बी.ओ.डी. की मात्रा तालिका 4 में दी गई है।

सीवेज का उपचार क्यों?

सीवेज का उपचार निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है-

1- सीवेज में उपस्थित मानव-मल से निकले रोगाणुओं के विनाश तथा छुतही बीमारीयों के प्रसार को कम करने हेतु

2- नदी, तालाब, झीलों व भूगर्भीय जल स्रोतों के प्रदूषण को रोकने हेतु

तालिका 4

गर्म देशों में (वयस्क) मनुष्य की विभिन्न दैनिक क्रियाओं द्वारा उत्पन्न बी.ओ.डी. का योगदान (ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रतिदिन)

स्नान	5
बर्तन धोना	5
कचरे का निस्तारण	4
वस्त्र धोना	5
शौचालय–मल	11
मूत्र	10
कुल योग	40

भारत जैसे गर्म जलवायु के देशों में दोनों कारण अन्योन्याश्रित हैं क्योंकि प्रदूषण एवं संदूषण अपने आप में ही अवांछनीय हैं अतएव पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के दृष्टिकोण से भी अवजल संशोधन की आवश्यकता है न कि मानव स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से। इन सबके बावजूद भारत जैसे गर्म जलवायु के देशों में धन के अभाव के चलते पर्यावरण का सुधार गौण हो जाता है और जन-स्वास्थ्य तथा सफाई की व्यवस्था प्रमुख हो जाती है।

सीवेज प्रबन्धन

सीवेज संशोधन प्रणाली के तीन प्रमुख अंग है :- 1- सीवेज का एकत्रीकरण, 2- उपचार एवं, 3- पुनः उपयोग।

सीवेज का एकत्रीकरण एक सुविचारित एवं सुव्यवस्थित सीवरेज प्रणाली द्वारा ही संभव है।

सीवरेज की व्यवस्था करना एक खर्चीली प्रक्रिया है।

एक आदर्श परिष्करण परितन्त्र निम्नलिखित आवश्यकताओं को पूरा करने वाला होना चाहिए-

स्वास्थ्य : रोगाणुओं के प्रसार एवं रोगों पर नियंत्रण

पुनःउपयोग : संशोधित सीवेज का कृषि कार्य अथवा मत्स्य पालन हेतु उपयोग।

पारिस्थितिकी : संशोधन के पश्चात् अगर सीवेज को नदी अथवा अन्य जल-स्रोतों में बहाया जाना हो तो संशोधन का स्तर इतना उत्तम होना चाहिए कि सीवेज मिलाने के उपरान्त नदी की स्वतः शोधन क्षमता में कोई कमी नहीं आवे।

सांस्कृतिक पक्षः सीवेज का एकत्रीकरण, उसका परिष्कार एवं उसका पुनः उपयोग सभी स्थानीय सांस्कृतिक, सामाजिक भावनाओं के अनुरूप होने चाहिए।

परिचालनः संयंत्र का परिचालन आसान होना चाहिए तथा यथासंभव कर्मी स्थानीय होने चाहिए। उन्हें कम से कम प्रशिक्षण की आवश्यकता होनी चाहिए।

लागत :निर्माण-लागत एवं परिचालन तथा रख-रखाव का खर्च स्थानीय निकाय की भुगतान क्षमता से अधिक नहीं होना चाहिए।

कोई भी प्रौद्योगिकी उपर्युक्त मुद्दों पर पूरी खरी नहीं उतरती है अतएव सबसे उत्तम, कम खर्चीली, सुगम प्रौद्योगिकी को चुना जाता है। सीवेज उपचार (ट्रीटमेण्ट) के लिए प्रौद्योगिकी का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है-

1- सीवेज की मात्रा व गुण-धर्म
2- संशोधित सीवेज का गुण-धर्म एवं उसका संभावित उपयोग
3- निर्माण लागत – भूमि, नियोजन एवं अभिकल्पन, ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट, सीवेज का एकत्र करना, सीवेज प्रणाली (पुरानी की पुनः स्थापना)
4- धन की उपलब्धता
5- परिचालन एवं रख-रखाव की लागत-कर्मचारियों का वेतन, ऊर्जा, (बिजली, ईंधन) रसायन, उपकरण।

सीवेज ट्रीटमेण्ट प्लाण्ट हेतु स्थान का चुनाव

सीवेरेज प्रणाली का सम्पूर्ण अभिकल्पन (Design) गुरुत्वाकर्षण (Gravity) द्वारा प्रवाह पर आधारित होना चाहिए। पंपों को यथासंभव कम से कम प्रयोग में लाया जाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखने पर बिजली पर संयंत्र की निर्भरता कम होती है तथा रख-रखाव एवं परिचालन के खर्च की भी बचत होती है।

ट्रीटमेण्ट प्लांट के लिए स्थान का चुनाव निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है-

1- यथासंभव पंम्पिंग से बचा जाय
2- प्लांट आबादी से कम से कम 500 मीटर दूर हो ताकि स्थानीय निवासियों को दुर्गन्ध आदि से असुविधा न हो।
3- भूमि के ढलान व प्लांट की संरचना ऐसी होनी चाहिए कि सीवेज अपने आप संयंत्र की एक इकाई से दूसरी में चला जाये।
4- भूमि जलभराव से मुक्त होनी चाहिए।
5- भविष्य में क्षमता वृद्धि व विस्तार के लिए उचित मात्रा में भूमि उपलब्ध होनी चाहिए।

📖 रसायन अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विभाग
प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

जैव-प्रौद्योगिकी

ऊतक संवर्धन

डॉ0 अरुण आर्य

यदि हमें पेड़-पौधों की उन्नत किस्मों की उत्पादन करना है तो हमारे पास 3 विधियाँ हैं :-

1- संकरण विधि द्वारा पादप उत्पत्ति

2- ऊतक संवर्धन (टिशू कल्चर) द्वारा पादप उत्पत्ति

3- आनुंशिक अभियांत्रिकी (जेनेटिक इन्जीनियरिंग) द्वारा पादप उत्पत्ति

संकरण विधि द्वारा गेंहू एवं धान की अनेक किस्में विकसित की गई हैं। गेहूं में नोरिन जीन्स का समावेश करके हमारे कृषि वैज्ञानिकों ने 60-70 की दशक में हरित क्रांति ला दी।

ऊतक संर्वधन अथवा टिशू कल्चर विधि में पौधों की कोशिकाओं को पौधों से बाहर रख कर उनकी वृद्धि की जाती है। इस विधि में जड़ों में आगे का भाग, फूलों एवं फलों के बिना पके हुए भाग, अथवा परागकणों का उपयोग किया जाता है।

प्रो० अतुल मेहता, पूर्व अध्यक्ष वनस्पति विज्ञान विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय बडोदरा का विश्वास है कि ऊतक संवर्धन एवं आनुवांशिक अभियांत्रिकी तकनीक द्वारा वह दिन दूर नहीं जब कारखानों से कृषिजन्य उत्पादनों एवं ऐसे कृषि उत्पादों का बाजार में प्रमुखता से व्यापार होगा। आपके अनुसार टोमैटो सॉस की फैक्टरी के आस-पास टमाटरों की खेती का कोई अता-पता नहीं होगा।

यदि आपको एक ही प्रकार के बहुत अधिक पौधों का उत्पादन थोड़े समय में करना हो, यदि उपज बढानी हो, उन्हें वायरस आदि से बचाना हो, अथवा एक ही पौधे में दो विभिन्न गुणों को पैदा क़रना हो, ऑर्किड के पौधों के अनेक गुणों को एक में ही समाहित करना हो तो ऊतक संर्वधन विधि का प्रयोग किया जा राकता है। प्रसिद्ध जर्मन वनस्पतिविद जी. हैबरलैण्ड ने 1902 में पादपों की कोशिकाओं को बाहर उगाने का प्रयास किया, लेकिन वह असफल रहे। उन्होंने मीजोफिल नामक कोशिकाओं को पत्ती से बाहर निकालकर उनमें प्रयोग किये। ये कोशिकायें शीघ्र विभाजन की क्षमता रखती थीं। अमेरिकी वैज्ञानिक स्टीवार्ड ने 1958 में प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि पादप कोशिका में यह क्षमता है कि वह एक संपूर्ण पौधे को जन्म दे सकती है। इसी सिद्धान्त को 'टोटीपोटेन्सी' कहा जाता है। वृद्धि हारमोन काइनेटिन एवं जिब्रेलिन के प्रयोग से ऊतक संवर्धन विधि में तेजी से प्रगति हुयी। संवर्धन माध्यम में सूक्ष्म मात्रिक तत्वों के साथ नारियल के पानी (Cocount milk) का प्रयोग किया जाता है।

इस विधि से प्राप्त पौधे आनुवांशिक रूप से एकसमान होते हैं। इस विधि से कम समय में ही सैकड़ों पौधे बनाये जा सकते हैं। यह तकनीक बगीचों एवं वानिकी हेतु पौधे बनाने में अधिक उपयोगी सिद्ध हो रही है। अब परखनली में पौधे उगाना एक आम बात हो गई है। सफेदा (यूकेलिप्टस), चन्दन, टीक अथवा सागौन, ताड़ की अनेक किस्में एवं नींबू को इस विधि से बहुत सरलता से उगाया गया है।

तकनीक

इस विधि में तने के ऊपरी भाग को काट

लिया जाता है। पत्ती या तने के इस लगभग 1 से. मी. टुकड़े को 'एक्स प्लांट' कहा जाता है। एक्स प्लांट को 0.1 प्रतिशत पारे के क्लोराइड ($HgCl_2$) घोल में 8 मिनट तक रखते हैं। फिर इन्हें स्वच्छ जल में 6 बार साफ करते हैं।

इस एक्स प्लांट को जब पोषक माध्यम में रखते हैं तो जड़ें एवं कलियाँ निकल आती हैं। इनसे बाद में नये पौधे बनने लगते हैं। एक्स प्लांट 'कैलस' (पैरनकाइमा ऊतक) का निर्माण करता है जो कि बाद में भ्रूण का निर्माण करता है, जिनसे नये पौधों की वृद्धि होती है। तम्बाकू एवं गाजर की जड़ से प्राप्त कैम्बियन ऊतक की कोशिकाओं को व्हाइट, गाउथर्ट एवं नाबकोर्ट ने 1939 में उगाने में सफलता प्राप्त की और इसे 'कैलस' कहा। इसी वर्ष अन्य वैज्ञानिकों ने सम्पूर्ण गाजर का पौधा बनाने में सफलता प्राप्त की।

पोषक माध्यम में दो प्रकार के घटक होते हैं-

1- सूक्ष्म : जैसे जिंक, कॉपर, आयरन, लौह, विटामिन एवं ग्लाइसिन नामक एमीनो एसिड।

2- स्थूलः जैसे अमोनियम, पोटैशियम सल्फेट, पोटेशियम फॉस्फेट एवं सुगर-सुक्रोज आदि।

इसके अलावा ऑक्सिन एवं कोइनेटिन का थोड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाता है। ऑक्सिन और काइनेटिन का अनुपात ही निर्धारित करता है कि कैलस जड़ बनायेगा अथवा पत्ती। कैलस में उपस्थित कुछ कोशिकायें भ्रूण में बदल जाती हैं। ऊतक संवर्धन विधि द्वारा केसर (क्रोकस सेटाइवस) जैसे महत्वपूर्ण पौधों की किस्में तैयार करने में मदद मिली है। डॉ० जी.ए. रविशंकर ने मैसूर में इस विधि की खोज की।

सेरीकल्चर अथवा शहतूत की खेती रेशम के कीड़ों को पालने के लिए की जाती है। ऐसे अनेक क्षेत्रों का पता लगा है जहाँ शहतूत हो सकता है। सूखे एवं नमक वाली जमीनों में भी शहतूत उगाने के प्रयास हो रहे हैं। ज्यादा मात्रा में शहतूत की पौध हेतु ऊतक संवर्धन उपयोगी हो सकता है। इस विधि द्वारा जीवेतर प्रतिबल से निपटा जा सकता है। इस विधि द्वारा इलाइट पौधों का ऊपरी तना काट कर ऊतक संवर्धन किया जाता रहा है। प्रोटोप्लास्ट के संलयन (फ्यूजन) द्वारा सोमेटिक हाइब्रिड्स का निर्माण हो रहा है। प्रोटोप्लाज्म को मिसोफिल ऊतक से अलग कर के ओ (KO) में वृद्धि हेतु रखा गया है। पराग-कणों से भी हैपलायड पादपों को बनाया जा रहा है। इनमें क्रोमोसम की संख्या 2n की जगह उसकी आधी n होती है।

टेस्टट्यूब-जंगल

अरावली की नंगी पहाड़ियों को हरा-भरा करना हो, राजस्थान के मरुस्थलों में वृक्ष लगाने हों या असम में अथवा मध्यप्रदेश में टीक उगाना हो तो इस विधि का उपयोग किया जा सकता है।

ढोक (एनॉगेसिस पेन्डुला) एवं चाल (एनॉगेसिस लेटीफोलिया), जो कि इस क्षेत्र से समाप्त हो गये थे, पुनः उनके 2-8 लाख पौधे इस क्षेत्र में लगाये गये हैं। यूकेलिप्टस एवं पापुलस के पौधों का उत्पादन इस विधि द्वारा हो रहा है। बीज के द्वारा उत्पन्न पौधों की अपेक्षा इस विधि से उत्पन्न वृक्षों में 40 प्रतिशत अधिक लकड़ी उत्पन्न होती है। गोल पहाड़ी हरियाणा के 'टिशू कल्चर पाइलट प्लांट' ने यूकैलिप्टस टेरेटिकॉरनिस (नीलगिरि) और पापुलस डेलटॉयड्स (पापुलर) के 8-5 लाख पौधे तैयार किये हैं, जो विभिन्न वनों में लगाने हेतु भेजे गये हैं।

इस प्रकार के पौधे वातानुकूलित प्रयोग शलाओं में बनाये जाते हैं। फिर इन्हें कठारीभवन के लिये पॉलीथीन की थैलियों में रखा जाता है ।

जोधपुर (राजस्थान) में प्रो. एच. सी. आर्या अपने सहयोगियों प्रो. उमाकान्त एवं डॉ०

शेखावत के साथ थार रन के वृक्षों पर शोध कर रहे हैं। उनके द्वारा आँवला, बोर, किजड़ों एवं गोराडिओ बावल को इस विधि से उगाया गया है। बोर, बिली एवं गूगल तथा आँवला के पौधों का उत्पादन अधिक संख्या में किया जा रहा है।

दवाओं के क्षेत्र में :

डायोसजेनिन और निकोटीन का उत्पादन टिशू कल्चर विधि से सम्भव है। ट्यूमरनिरोधी पदार्थ, एमीनो एसिड, प्रोटीन, प्रतिजैविक, स्टीरायड, रंग वाले पदार्थ, विटामिन टिशू कल्चर से बनाये जा सकते हैं। इस विधि से कम समय में अधिक उपज देने वाले अच्छे पौधे प्राप्त किये जाते हैं जोकि बाद में प्रयोग में आते हैं। पादप कोशिकाओं के प्रयोग से लागत भी कम हो जाती है।

कृषि के क्षेत्र में :

कृषि के क्षेत्र में धान एवं गेहूँ जैसी प्रमुख कृषि की फसलों में 'सुपर पौधों' की खोज अभी बाकी है। ये सभी पौधे वातावरण से नाइट्रोजन ग्रहण करेंगे और दाल वाली फसलों की भाँति जैव-खाद बनायेंगे। उनके द्वारा जरूरत की नाइट्रोजन न केवल पूरी होगी बल्कि वैम फूग जैसे जीवाणुओं के द्वारा जड़ों में प्रवेश से फॉस्फोरस और जिंक जैसे तत्वों की बाहर से कोई खुराक नहीं देनी होगी। इस प्रकार से उत्पन्न पौधे बीमारियों से मुक्त होंगे, सूखे एवं सर्दी से प्रभावित नहीं होंगे और अधिक उपज देंगे।

वैज्ञानिकों द्वारा नित नई खोजों से ऐसे संकेत मिल रहे हैं कि अब दूसरी 'हरित-क्रान्ति' दूर नहीं।

🕮 रीडर वनस्पति विज्ञान
महाराजा सयजीराव विश्वविद्यालय
बडोदरा–390002

(पृष्ठ 7 का शेष भाग)

संख्याओं के सन्दर्भ में नियंत्रण योग (control totals), जोकि स्रोत प्रलेख (Source document) में दिए गए हों, मशीन द्वारा गणना किए गए परिणामों से जाँच लेने चाहिए, जिससे कि सही प्रतिलिपिकरण की शुद्धता की जाँच हो सके।

निष्कर्ष :

यह बात तर्कसंगत होगी कि कोई भी कंप्यूटर प्रणाली पूर्णतया सुरक्षित नहीं मानी जा सकती है। केवल इस बात का प्रयास किया जा सकता है ताकि प्रणाली को तोड़ने का कार्य इतना दुष्कर और खर्चीला हो कि अनधिकृत व्यक्ति इस प्रकार की कुचेष्टा न कर सके।

अगर हम यह मानें कि प्रणाली की सुरक्षा एक ऐसी कड़ी है जिसमें प्रवेश के कई बिंदु हैं तो इसलिए किसी आँकड़ा प्रणाली की सुरक्षा की परिकल्पना करते समय सभी प्रवेश बिंदुओं की इष्टतम सुरक्षा का ध्यान रखा जाए। सुरक्षा गोपनीयता तथा विश्वासनीयता आपस में जटिल समस्याएँ हैं और समस्याओं का समाधान भी जटिल हैं। अगर हम किसी प्रणाली की विश्वासनीयता की पूर्व चेतावनी दे सकें तो हम यह पूर्व चेतावनी भी दे पाएँगे कि प्रणाली की सुरक्षा प्रणाली भी असफल हो रही है। बड़े आँकडों की प्रणाली में सबसे बड़ी कमी यह है कि एक समय में बहुत से प्रयोगकर्ता प्रणाली का प्रयोग करते हैं जिससे कि सुरक्षा संबंधी समस्या में और बढ़ोत्तरी हो जाती है।

🕮 तकनीकी अधिकारी 'बी', तकनीकी अधिकारी 'ए'
योजना प्रबोधन एवं मूल्यांकन विभाग
केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की

विश्व के क्षुद्रतम् आदिम प्राणी – बैक्टीरिया

✍ डॉ0 ओम प्रभात अग्रवाल

अनगिनत किस्म की वनस्पतियों, कीड़े मकोड़ों और जीव-जन्तुओं से जगमगाते इस विश्व का जिसकी धरती को कभी डायनासोर जैसे सैकड़ों टन भार वाले दानवाकार जन्तु रौंदते थे और जो आज भी महाकाय गोरिल्लों, ओरंगउटानों और हाथियों से पददलित है, क्षुद्रतम् जीव है- बैक्टेरियम (बहुवचन-बैक्टीरिया)-इतना छोटा कि सारा शरीर केवल मात्र एक कोशिका में सिमटा रहता हो और इसीलिए सूक्ष्मदर्शी के बिना देखा ही न जा सकता हो और कभी तो उससे भी नहीं। इतना सरल कि प्रजनन की प्रक्रिया मात्र एक शरीर के दो बराबर भागों में विभाजित होने से सम्पूर्ण हो जाय। या कहें कि इतना नीरस कि जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ भी पहुँच जाने वाले कवियों को भी उसके लगभग अंतहीन जीवन में काम के बाणों का प्रभाव कहीं भी परिलक्षित न हो। फिर भी सर्वव्यापी। रवि की रश्मियाँ पहुँच सकें या न पहुँच सकें- बैक्टीरिया का प्रवेश हर स्थान पर है- सागरों की तलहटी में, पर्वतों की कंदराओं में, मरुस्थल की तपती बालुका राशि के नीचे या ऐसे किसी भी स्थान पर जहाँ जीवन की कल्पना भी न की जा सकती हो। इतने सहनशील कि भयंकर अम्लीय माध्यम को सह लें, ग्लेशियरों के शून्य से भी नीचे के ताप में भी उफ तक न करें और ऑक्सीजन की कमी तो क्या-पूर्ण अनुपस्थिति में भी योगियों की भाँति तटस्थ बने रहें। पानी खारा हो या मीठा, प्रकाश हो या न हो, स्थान साफ-सुथरा हो या अतिशय गंदा, भूमि की ऊपरी सतह हो या मीलों नीचे की- वे अपना संसार बसा लेते हैं। जल की एक छोटी सी बूँद में भी पाँच करोड़ बैक्टीरिया बसे रह सकते हैं। और शायद इसीलिए प्रकृति ने उन्हें वरदान दिया है लगभग अनन्त जीवन का, जैविक इकाई होने के गौरव का, असंख्य किस्मों में बँटे होने पर भी शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का। निश्चित रूप से मानव को उनसे बहुत कुछ सीखना होगा।

विश्व प्राणि जगत के इस प्राचीनतम् आदिम सदस्य की धरा पर उपस्थिति आज भी निरर्थक नहीं है। यदि कृषि उद्योग अथवा औषधि के क्षेत्र में उनकी उपयोगिता पर हम एक दृष्टि डालें तो दाँतों तले उँगली दबा लेंगे।

कृषि के क्षेत्र में

कृषि को ही लें। किण्वन और सड़न बैक्टीरिया के ही कारनामे हैं। इनसे जहाँ बैक्टीरिया को अपना खाद्य मिलता है, वहीं मिट्टी को पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। हरी खाद या कम्पोस्ट खाद बैक्टीरिया की ही कृपा से प्राप्त होती है। यह ठीक है कि खाने पीने के पदार्थों एवं जीवधारियों के शवों और वनस्पतियों के सड़ने से दुर्गन्ध भी उत्पन्न होती है परन्तु यह भी सत्य है कि बैक्टीरिया यदि यह न करते तो यह पृथ्वी मृत शरीरों तथा सूखी अनुपयोगी वनस्पतियों से अब तक पट चुकी होती, जहाँ नई संततियों के लिए स्थान ही दुर्लभ होता। इसीलिए उन्हें प्रकृति के सफाई सैनिक कहा गया है।

सुरसा के मुँह की भाँति नित्य बढ़ती जाती संसार की विशाल जनसंख्या की उदरपूर्ति के लिए विश्व भर में लगभग एक हजार कारखाने कृत्रिम खाद के उत्पादन में लगे हुए हैं ताकि फसल दर फसल देते जाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति में कमी न आने पाये। मुख्य समस्या मिट्टी में

नाइट्रोजन की आवश्यक मात्रा बनाये रखने की होती है। इस दिशा में भी बैक्टीरिया मानवों की सहायता में सबसे आगे हैं।

वे शवों और वनस्पतियों को सड़ा कर पहले तो ये बैक्टीरिया एमीनो अम्लों का उत्पादन करते हैं और फिर मिट्टी में ही उपलब्ध बैसीलस रैमोसस और बैसीलस वल्गैरिस जैसे अन्य बैक्टीरिया इन अम्लों को अमोनिया गैस में परिवर्तित कर देते हैं। मिट्टी में ही उपलब्ध नाइट्रोसोमोनस बैक्टीरिया इस गैस को नाइट्राइट में बदल देते हैं और अंत में नाइट्रोबैक्टर बैक्टीरिया इनसे नाइट्रेट यौगिकों का विरचन करते हैं जो वनस्पतियों द्वारा पृथ्वी से नाइट्रोजन के शोषण का सर्वथा उपयुक्त माध्यम है।

वायुमंडल का दो तिहाई से भी अधिक भाग नाइट्रोजन से ही निर्मित होता है और कुछ बैक्टीरिया इस नाइट्रोजन को सीधे ही पेड़-पौधों तक पहुँचाने में सक्षम हैं। ऐसे ही एजोटोबैक्टर बैक्टीरिया मिट्टी में तथा राइजोबियम बैक्टीरिया चना, मटर, सेम आदि की जड़ों में पाई जाने वाली ग्रंथिकाओं में उपस्थित होते हैं। 80 के दशक में ऐसे ही बैक्टीरिया चीन में चावल के पौधों की कुछ किस्मों की जड़ों में भी उपस्थित पाये गये।

उद्योगों में

आधुनिक सभ्यता का विस्तृत ढाँचा विशाल उद्योग के सहारे टिका हुआ है। परन्तु इस उद्योग-साम्राज्य का एक बहुत बड़ा भाग खड़ा ही नहीं हो सकता था यदि मानव के ये आदिम दोस्त साथ न देते। कहना न होगा कि एन्जाइम उद्योग का मूलाधार ही बैक्टीरिया हैं। उदाहरणार्थ सबटिलिसिन, सेलुलेज एवं एमाइलेज एन्जाइमों को ही ले। ये सभी बैसीलस वर्ग के बैक्टीरिया द्वारा स्रावित होते हैं और फिर भाँति-भाँति के उद्योगों में प्रयुक्त होते हैं। आजकल कान्टैक्ट लेंसों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। शायद आपको ज्ञात हो कि इन लेन्सों को साफ करने के लिए बाजार में एक घोल मिलता है जो काफी मँहगा होता है। यह घोल सबटिलिसिनो या दूसरे शब्दों में क्षारकीय सेरीन प्रोटिएसों से ही बना होता है। इसी प्रकार, सेल्यूलेजों या एमाइलेजों द्वारा क्रमशः सेल्यूलोज एवं स्टार्च के जल अपघटन द्वारा अंततः डेक्सट्रोज प्राप्त किया जाता है। सबटिलिसिनों का उपयोग जिलेटिन एवं कोलाजेन के संसाधन में भी होता हे। जिलेटिन की उपयोगिता आइसक्रीम उद्योग में सर्वविदित है जबकि कोलाजेन का महत्व नकली दाँतों के बनाने में होता है।

कुछ अन्य एन्जाइमों के उपयोग भी महत्वपूर्ण हैं। जैसे शीतल पेयों में मिलाये जाने वाले अधिक फ्रक्टोज की मात्रा वाले कार्न सिरप या कि स्टार्च एवं माल्टोज सिरपों के उत्पादन में। लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया का इस्तेमाल डेयरी उद्योग में भिन्न-भिन्न स्वाद वाले चीज़ और मक्खन के उत्पादन में किया जाता है। चीनी मिलों से उपोत्पाद के रूप में प्राप्त मोलैसेस (शीरा) के किण्वन से बनने वाले एल्कोहल से सिरका तैयार करने में ऐसीटिक एसिड बैक्टीरिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। चाय एवं तम्बाकू की पत्तियों तथा कॉफी एवं कोकोआ में इच्छित गंध व स्वाद पैदा करने में भी बैक्टीरिया की सहायता ली जाती है।

चमड़ा कमाने में भी इन क्षुद्र प्राणियों की महती भूमिका होती है। इनकी सहायता से चमड़े से बालों आदि को साफ करना या उसमें से वसा को पूरी तरह से निकाल देना अत्यंत सरल हो जाता है। इसके लिए बैक्टीरिया की किण्वन क्षमता उत्तरदायी होती है। इसी क्षमता का उपयोग ब्यूटिल एल्कोहॉल एवं ऐसीटोन के उत्पादन में भी किया जाता है। ब्यूटिल एल्कोहॉल का उपयोग शराब, औषधि एवं रंजकों के उत्पादन में किया जाता है जबकि ऐसीटोन का विस्फोटकों, रेजिन तथा फोटोग्राफी की फिल्मों के उत्पादन में। स्वयं लैक्टिक अम्ल भी चीनी के बैक्टीरियाई किण्वन से प्राप्त किया जाता है और खाद्य पदार्थों की डिब्बाबंदी एवं प्लास्टिकों के उत्पादन में प्रयुक्त होता है।

औषधि उद्योग भी क्षुद्र आदिम प्राणियों का ऋणी है। अनेकों एंटीबायोटिक औषधियों जैसे पॉलीमिक्सिन, ग्रैमिसिडिन, सबटिलिन, बैसीट्रेसिन, टाइरोसिडिन आदि के जन्मदाता बैक्टीरिया ही हैं। स्ट्रेप्टोमाइसिन, ऑरोमाइसिन, टेरामाइसिन एवं आइवरमेसिटिन आदि भी उच्चतर कोटि के ऐक्टिनोमाइसिटिज बैक्टीरिया से प्राप्त किये जाते हैं।

कुछ वैक्सीनों का निर्माण भी बैक्टीरिया से ही किया जाता हे। कहना न होगा कि वैक्सीन मृत या शक्तिहीन कर दिये गये, रोग-उत्पादी बैक्टीरिया के घोल को कहते हैं जो शरीर में पहुँच कर उस रोग के प्रति शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा देते हैं। लुई पास्तुर ने ऐसी पहली वैक्सीन बैसीलस ऐन्थ्रेसिस से सन् 1881 में तैयार की थी। बैसीलस सबटिलिस बैक्टीरिया से स्रवित कुछ चक्रीय लिपोप्रोटीन अनेकों रोग उत्पादक फफूदियों तथा यीस्ट को नष्ट करने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।

बैक्टीरिया एशरेशिया कोलाई से विटामिन बी. काम्प्लेक्स के कई घटक एवं विटामिन के प्राप्त किये जाते हैं। ऐसीटिक एसिड बैक्टीरिया से विटामिन 'सी' के उत्पादन की विधि भी ज्ञात है। जीन इंजीनियरी द्वारा परिवर्धित एशरेशिया कोलाई से अब मधुमेह की औषधि इन्सुलिन बहुत बड़े पैमाने पर प्राप्त की जा रही है। यह पहले से अधिक प्रभावकारी भी है। बीटा लेक्टानेज का उत्पादन भी इसी प्रकार किया जा रहा है।

ऐसे बैक्टीरिया भी हैं जो प्लास्टिक का उत्पादन कर सकते हैं, यद्यपि यह प्लास्टिक बहुत मँहगा पड़ता है। परन्तु अभी कुछ समय पूर्व अमरीका की विश्वविख्यात बायोतकनीकी कंपनी -मोनसान्टो- ने दावा किया कि उसके वैज्ञानिकों ने इसके चार जीनों को कुछ विशेष पौधों में आरोपित कर उन्हें ही अत्यंत सस्ते प्लास्टिक के उत्पादन के योग्य बना दिया है। मज़ा यह कि ऐसा प्लास्टिक आसानी से मिट्टी में क्षयशील और इस प्रकार प्रदूषक छवि से सर्वथा मुक्त होगा।

जीन इंजीनियरी का कमाल

जीन इंजीनियरी की सहायता से वैज्ञानिकों द्वारा बहुत से नये बैक्टीरिया भी तैयार किऐ जा कर मानव सेवा के लिए तैयार बैठे हैं यद्यपि यह सत्य है कि ऐसे मानवनिर्मित बैक्टीरिया का प्रयोग औद्योगिक स्तर पर अभी प्रारम्भ नहीं किया गया है क्योंकि डर है कि कहीं वे एक समस्या के निदान के साथ दूसरी नई समस्या खड़ी न कर दें। ऐसा पहला बैक्टीरिया अमेरिका में आनंद चक्रवर्ती द्वारा तैयार किया गया था जो पेट्रोलियम तेलों को ही क्षुधा-पूर्ति का साधन बनाता है। दुर्घटनाग्रस्त जलयानों अथवा सागर के गर्भ में छिपे तेल के कुओं से सागर-वक्ष पर मीलों दूर तक फैल जाने वाली तैलीय चादर समुद्री जीवों के लिए कितनी घातक हो सकती है- इसका अंदाजा लोगों को कुवैत युद्ध के समय लग सका जब उन्होंने इसके दुष्प्रभावों को अपनी आँखों से दूरदर्शन के स्क्रीन पर देखा। यह चादर सामान्य जहाजरानी के लिए भी समस्या पैदा करती है। कल्पना कीजिए कि यदि इस चादर में आग लग जाय तो अथाह जल वाला समुद्र किस प्रकार आग का लिहाफ ओढ़ लेगा। इस समस्या से निपटने में आनंद चक्रवर्ती के तेल-बैक्टीरिया की भूमिका निर्विवाद है और कुवैत युद्ध के बाद भी सागर की सतह को फिर से स्वच्छ करने में अंततः इन्हीं की सहायता लेनी पड़ी थी। ऐसे ही कुछ अन्य बैक्टीरियाओं की भी सर्जना की गई है। जो डी.डी.टी. व पी.सी.बी. आदि कीटनाशकों का भक्षण कर पर्यावरण को पुनः स्वच्छ कर देने की क्षमता रखते हैं।

लगभग 40 वर्ष पूर्व एक ऐसे बैक्टीरिया का पता अत्यंत नाटकीय ढंग से चला जिस पर रेडियो-विकिरण का भी कोई प्रभाव नहीं होता। वे गामा किरणों की उस मात्रा से तीन हजार गुनी अधिक मात्रा में भी हँसते खेलते रहते हैं जो मनुष्य को मौत की नींद सुलाने के लिए पर्याप्त होती है। ये बैक्टीरिया, डाइनोकोक्कस रेडियोड्यूरान,

ऐसे खाद्य के डिब्बे में आराम फरमाते पकड़े गये जिसे विकिरण उद्भासन द्वारा बैक्टीरियाओं से पूर्णतः सुरक्षित मान लिया गया था। इस अद्भुत क्षमता के लिए उत्तरदायी जीनों को अब पहचान लिया गया है और भविष्य में उनका उपयोग जीन और वनस्पतियों को भी विकिरण के विरुद्ध सुरक्षा कवच प्रदान करने में किया जा सकता है।

अमित्र बैक्टीरिया

बैक्टीरिया समाज अति विशाल है और इसीलिए यह आशा तो नहीं की जा सकती कि उनकी समस्त प्रजातियाँ मानव-मित्र ही होंगी। निश्चित रूप से उनमें कुछ मानव के शत्रु सिद्ध हो सकते हैं। कई प्रकार के साधारण या गंभीर रोगों का कारण बैक्टीरिया ही हैं। कॉन एवं कॉच ने जब सर्वप्रथम बीमारियों का रोगाणु सिद्धान्त प्रतिपादित किया तो उसकी जड़ में ऐसे बैक्टीरिया ही थे। हैजा, गर्दनतोड़ बुखार, सूजाक, डिप्थीरिया, न्यूमोनिया, तपेदिक, मियादी बुखार, प्लेग एवं ऐन्थ्रैक्स आदि ऐसे ही हानिकारक बैक्टीरियाओं की करतूत हैं। खाद्य विषाक्तता भी बैक्टीरिया का ही कारनामा होता है। इन आपराधिक क्रियाकलापों की धार अति तीक्ष्ण इसलिए भी होती है कि प्रत्येक ऐसा बैक्टीरिया, रक्तबीज की भांति, 24 घंटों में अपने 281 खरब जाति भाइयों को उत्पन्न कर सकता है। फिर दूध तो शीघ्रता से खट्टा होकर फटेगा ही या फिर कुछ घंटो में दही बन जायेगा, रोग अति तीव्र गति से अपने शिकार को मृत्यु के मुख में ढकेलेगा अथवा खाद्य पदार्थों को शीघ्र सड़ा देगा। बैसीलस पॉलीमिक्सा एवं बैसीलस मैकेरान्स चीज को सड़ा देते हैं तथा बैसीलस सीरियस क्रीम को। कुछ तो पास्तुरीकृत दूध तक को नहीं छोड़ते यदि उसे प्रशीतक में न रखा जाय। कभी-कभी आप पायेंगे कि यदि डबल रोटी को दो भागों में तोड़ा जाय तो उन भागों को अलग करते समय एक चिपचिपे और रस्सी की तरह बटे हुये तार के दर्शन होते हैं। यह डबल रोटी खाने योग्य नहीं होती और इसके लिये बैसीलस सबटिलिस उत्तरदायी होते हैं। कुछ बैक्टीरिया जिनकी चर्चा की जा चुकी है, यदि वनस्पति जगत की नाइट्रोजन आवश्यकता की पूर्ति में सहायक होते हैं तो कुछ अन्य उलटी रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध नाइट्रोजन को वनस्पति जगत की पहुँच से दूर कर देते हैं। और इस प्रकार भूमि की उर्वरा शक्ति क्षीण कर देते हैं।

> प्रसिद्ध विज्ञान पत्रिका 'नेचर' के अक्टूबर 2000 के एक अंक में प्रकाशित एक सूचना के अनुसार अमेरिकी वैज्ञानिकों के एक दल ने 25 करोड़ वर्ष पुराना एक जीवित बैक्टीरिया प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। उस समय नमकयुक्त जल की एक बूँद में जीवन-यापन कर रहा यह क्षुद्र जीव अंततः एक क्रिस्टल में कैद हो कर मिट्टी और पत्थर आदि की 1850 फीट परत के नीचे दब गया था जहाँ से उसका उद्धार अब संभव हो सका है। इसकी जेनेटिक सीक्वेंसिंग भी ली गई है और उसे बैसीलस वर्ग का सदस्य निर्धारित किया गया है। यह अब तक पाया गया सर्वाधिक आयु का बैक्टीरिया है।

कुछ बैक्टीरिया दुश्मनी भले निभाते हों किन्तु अधिकतर मानव के मित्र ही सिद्ध होते हैं। बैक्टीरिया प्रकृति के अजूबे हैं। उनमें से कुछ जिन्हें आर्केबैक्टीरिया कहते हैं सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक जीवित हैं और उन्हें सत्य ही 'जीवित जीवाश्म' (लिविंग फॉसिल्स) की उपाधि दी गई है।

कुछ नये बैक्टीरिया अभी भी प्रकाश में आ रहे हैं। लगभग 12-13 वर्ष पूर्व समाचार आया था कि इंगलैण्ड के विश्वप्रसिद्ध भूमिगत रेल पथ के निर्माण में पृथ्वी की गहराइयों में अनंत काल से सुस्त पड़े कुछ ऐसे बैक्टीरिया जीवित हो गये थे जो अब लोहा-लक्कड़ चबा रहे हैं। कुछ भी हो-आने वाले समय में मानव जाति निश्चित रूप से इन आदिम क्षुद्रजीवों के नये-नये उपयोग ढूँढ निकालेगी।

📖 श्री वेंकटेश भवन
445—बी देव कालोनी, रोहतक
हरियाणा—124001

सोलर फोटो वोल्टेयिकी एवं उनके उपयोग

डॉ0 राज नारायण पटैरिया
डॉ0 के.एम. जैन

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व में ऊर्जा की कमी ज्वलंत समस्या है। ऊर्जा के परम्परागत स्रोत जैसे लकड़ी, कोयला, खनिज तेल आदि का तीव्र गति से दोहन इस समस्या को अधिक जटिल बना देता है, जिससे कि ऊर्जा के गैर पारम्परिक स्रोत (सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा एवं बायो ऊर्जा) की उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जाती है। सवाल यह उठता है कि सूर्य से ऊर्जा कैसे मिलती है? सूर्य अभी भी गर्म गोला है जिसका व्यास 1.39×10^6 किलोमीटर तथा पृथ्वी का व्यास 1.27×10^4 कि. मी. है। इन दोनों के बीच की दूरी 1.56×10^8 कि.मी. है। सूर्य पृथ्वी पर 32 मिनट का कोण बनाता है जो बहुत थोड़ा है और यही कारण है कि सूर्य से सीधे पृथ्वी पर पड़ने वाली किरणें समान्तर होती हैं। सूर्य के केन्द्र में तापमान कई हजार डिग्री है तथा हाइड्रोजन की मात्रा सबसे अधिक है। यहाँ पर हाइड्रोजन के नाभिक (nuclei) जब आपस में टकराते हैं तो भारी हाइड्रोजन बनती है तथा पॉजीट्रान तथा न्यूटॉन भी बनते हैं इस प्रकार एक लम्बी रासायनिक प्रक्रिया सूर्य के केन्द्र में चलती रहती है जिसमें हाइड्रोजन जलता रहता है तथा ऊर्जा पैदा होती रहती है जो कि आकाश मण्डल से पृथ्वी पर पहुँचती है। सूर्य से मिलने वाली ऊर्जा हमें हजारों सालों से प्राप्त हो रही है लेकिन इसकी मात्रा कम-ज्यादा नही हुई। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य के केन्द्र में होने वाली रासायनिक प्रक्रिया हजारों वर्षों से सामान्य रूप से हो रही है और आने वाले हजारों वर्षों तक यह ऊर्जा पृथ्वी को प्राप्त होती रहेगी।

जब सूर्य में लगातार हाइड्रोजन जलती रहती है तब तापमान बढ़ना चाहिए और ज्यादा ऊर्जा बाहर निकलनी चाहिए, लेकिन ऐसा होता नहीं है क्योंकि इस प्रक्रिया में गुरुत्वाकर्षण शक्ति अंकुश लगाती है। जब तापमान बढ़ेगा तो दाब भी बढ़ेगा और सूर्य की सतह फैलने लगेगी जिससे बाहरी सतह ठंडी होगी। इस प्रक्रिया में ज्यादा ऊर्जा का बनना रुक जाता है और सूर्य की सतह से मिलने वाली ऊर्जा कम नहीं होती है।

सौर सतह से पृथ्वी पर मिलने वाली ऊर्जा हमें मुख्य रूप से तीन रूपों में मिलती है। ये तीन रूप सूर्य की सतह से निकलने वाले विकिरणों के ऊपर निर्भर करते हैं। ये तीन विकिरण हैं पराबैगनी, प्रकाश तथा तापीय। इन तीनों के अतिरिक्त और भी विकिरण सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचते हैं जैसे एक्स विकिरण आदि लेकिन उनकी मात्रा बहुत ही कम होती है। हमारे देश का क्षेत्रफल 3.297×10^6 वर्ग किलोमीटर है। अगर देश में सौर ऊर्जा का औसत 5 किलोवाट प्रति वर्ग मीटर प्रतिदिन माना जाये और साल में औसतन 300 दिन सौर ऊर्जा उपलब्ध हो तो देश के ऊपर पड़ने वाले ऊर्जा का मान 5×10^{15} किलोवाट घंटा प्रतिवर्ष होगा। यह ऊर्जा इतनी ज्यादा है कि इसका हम अनुमान भी नहीं लगा सकते। सारे देश में उपयोग में लाई जाने वाली ऊर्जा से यह ऊर्जा कई गुना ज्यादा है। अगर इस ऊर्जा का एक प्रतिशत भी उपयोग किया जाये तो इसकी मात्रा 5×10^{13} किलोवाट घंटा प्रतिवर्ष होगी।

सौर ऊर्जा की उपयोगिता :

अगर ऊर्जा स्रोत की उपलब्धता एवं उसके प्रदूषण प्रभावों के साथ किसी वैकल्पिक ऊर्जा की व्यवस्था का अध्ययन किया जाये तो सौर ऊर्जा ही सबसे उपयुक्त साबित होती है। सौर ऊर्जा का प्रयोग घरेलू ऊर्जा खपत एवं विद्युत आपूर्ति के लिए किया जा सकता है। घरेलू ऊर्जा के लिए

इसका प्रयोग सोलर कुकर एवं सौर ऊर्जा द्वारा पानी गरम करना, सौर ऊर्जाचालित पम्प, रेडियो, टी.वी. एवं घरेलू प्रकाश व्यवस्था के रूप में है। सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित करने के लिए सौर सेल एक मुख्य साधन है। सौर सेल के लिए पदार्थों का चयन, निर्माण, परिवर्तन, कार्य क्षमता एवं प्रयोग पर विश्व स्तर पर शोध कार्य हो रहे हैं। औद्योगिक स्तर पर सौर सेल द्वारा विद्युत उत्पादन में अभी कुछ कठिनाइयाँ हैं- जैसे कि अभी कुल आने वाली सौर ऊर्जा का केवल 12-18 प्रतिशत भाग ही विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित होना संभव है। सौर सेल से ऊर्जा प्राप्त करना अभी महँगा पड़ता है जो अभी लगभग 120 रुपये प्रतिवाट है। इसके अतिरिक्त सौर ऊर्जा संग्रहण की समस्या है। फिर भी सौर सेल द्वारा कृत्रिम उपग्रहों को लम्बें समय तक विद्युत आपूर्ति करना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिससे सौर सेल अन्तर्राष्ट्रीय शोध एवं विकास के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्र बने हुए हैं। सौर ऊर्जा का स्रोत नाभिकीय संलयन की क्रिया है जो कि उच्च ताप एवं दाब पर ही संभव है जिसके लिए उपयुक्त वातावरण उपस्थित है। सूर्य ऊर्जा पर नाभिकीय संलयन की क्रिया में प्रति सेकण्ड 6×10^{11} किलोग्राम हाइड्रोजन हीलियम में परिवर्तित हो जाती है, जिससे कि कुल द्रव्यमान में लगभग 4×10^{4} किलोग्राम की क्षति हो जाती है जिससे आइन्सटीन के विख्यात द्रव्यमान ऊर्जा संबंध से 4×10^{24} जूल ऊर्जा प्राप्त होती है। यह ऊर्जा सामान्यतया विद्युतचुम्बकीय विकिरण द्वारा उत्सर्जित हो जाती है जिसका उपयोग समस्त विश्व का जन्तु एवं वनस्पति जगत कर रहा है।

सोलर सेल संयंत्र का कार्यसिद्धांत :

सोलर सेल के कार्य की प्रक्रिया काफी आसान है। जब सूर्य का प्रकाश सौर सेल की सतह पर पड़ता है तो सौर सेल के अन्दर इलेक्ट्रान और होल (इलेक्ट्रान की अनुपस्थिति से उत्पन्न होने वाली खाली जगह) के युग्म उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि सूर्य के प्रकाश से इलेक्ट्रान ऊर्जा ग्रहण करके अणु से अलग हो जाते हैं, जैसा कि आम तौर पर होता है। एन-टाइप सिलिकान और पी-टाइप सिलिकॉन की सतहों को मिलाने पर संधि में एक विद्युत क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है जो इलेक्ट्रान तथा होल को इस प्रकार अलग-अलग रखता है कि पी-टाइप की ओर से इलेक्ट्रॉन एन-टाइप सिलिकॉन की ओर प्रवाहित होते हैं और एन- टाइप की ओर से होल पी-टाइप की ओर प्रवाहित होते हैं। इस प्रकार ये आवेशित कण सौर सेल से जुड़े परिपथ में प्रवाहित होकर विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। एक सौर सेल से प्राप्त विद्युत में वोल्टेज एवं ऐम्पियर की मात्रा सीमित होती है इसलिए सौर सेलों को काफी मात्रा में समानान्तर तथा श्रेणीक्रम में इस प्रकार जोड़ते हैं कि वांछित वोल्टता एवं ऐम्पियर की विद्युत प्राप्त हो जाये।
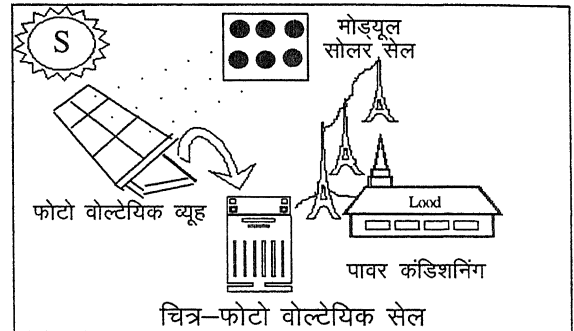
चित्र–फोटो वोल्टेयिक सेल

सोलर फोटोवोल्टेयिक सेल के द्वारा उत्पन्न विद्युत धारा सौर किरणों की तीव्रता की सीधी समानुपाती होती है। फोटोवोल्टेयिक सेल से प्राप्त धारा दिष्ट धारा होती है, जिसे कि आवश्यकतानुसार प्रत्यावर्ती धारा में बदला जा सकता है। सोलर सेल के मुख्य भागों में सोलर सेल, मोड्यूल फोटोवोल्टेयिक व्यूह पॉवर कंडिशनिंग एवं लोड हैं। सोलर सेल के निर्माण में सिलिकॉन, गैलियम, गैलियम आर्सेनाइड, इन्डियम आर्सेनाइड, कैडमियम आर्सेनाइड इत्यादि अर्धचालकों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक पैनल में 36 सेल होते है, जिनसे करीब 25 वाट शक्ति प्राप्त होती है।

सौर ऊर्जा की संभावनायें :

प्रदूषणमुक्त ऊर्जा प्राप्ति का बड़ा ही नायाब तरीका है सौर सेल, परन्तु इसकी मुख्य समस्यायें हैं अधिक लागत तथा कम दक्षता। आजकल व्यापारिक स्तर पर 8 से 12 प्रतिशत दक्षता वाले सौर सेल उपलब्ध हैं। दक्षता कम होने से इन पर

पड़ने वाली सौर ऊर्जा का काफी भाग व्यर्थ चला जाता है जो सेल को गर्म कर देता है। गर्म होने से इनकी धूप को विद्युत में बदलने की दक्षता में काफी कमी आती है। सौर सेलों को गर्म होने से बचाने के लिए या तो दिन में इनके उपयोग को सीमित कर रुक-रुक कर किया जावे ताकि इन्हें ठंडा होने के लिए पर्याप्त समय मिल सके अथवा किसी अन्य तरीके से दक्षता बढ़ाई जाये। परावर्तनरोधी परत (Antireflection coating) से दक्षता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। साथ ही सिलिकॉन के स्थान पर अन्य उपयुक्त फोटोवोल्टीय पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है।

सौर सेलों में बृहद स्तर पर विद्युत उत्पादन में भूमि की उपलब्धता एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या है। 10 किलोवाट घंटा विद्युत उत्पादन के लिए लगभग 2×10^7 एकड़ भूमि की आवश्यकता होती है। अतः सौर शक्ति स्टेशन के निर्माण में कृषि के लिए अयोग्य भूमि का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा घरों की छतें उपयोग में लायी जाती हैं।

अमेरिका के आर्थर डी लीट्स कारपोरेशन के डॉ० पी.ई. ग्लोजर ने एक ऐसे 5000 मेगावाट सौर पावर स्टेशन की संकल्पना की है जो उपग्रह पर आधारित होगा। इसकी दक्षता 15 प्रतिशत तथा सौर सेल श्रृंखला का आकार 22 वर्ग किलोमीटर होगा। इससे लगातार 24 घंटे ऊर्जा प्राप्त होगी तथा उत्पन्न ऊर्जा अत्यन्त लघु तरंग लम्बाइयों पर पृथ्वी की ओर एक एरियल द्वारा भेजी जा सकेगी।

सौर सेल से लाभ :

आज समृद्धि मापने का तरीका "ऊर्जा खपत की दर" है। इस दृष्टि से सौर ऊर्जा भारत के लिए एक वरदान है। हमारे यहाँ अधिकांश क्षेत्र साल भर धूप से चमकते रहते हैं, इसलिए निश्चित ही सौर ऊर्जा के रूप में हमारे यहाँ समृद्धि के भंडार छिपे हुए हैं। इसको ध्यान में रखते हुए हमारे देश की केन्द्रीय सरकार के अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग ने सौर ऊर्जा के दोहन का बीड़ा उठाया है। इस विभाग द्वारा चलाई जा रही महत्वाकांक्षी "ऊर्जा ग्राम" योजना का सही क्रियान्वयन गाँवों की काया पलट करना है। 25 वाट क्षमता वाले सौर सेल की स्थापना में करीब 20,000 रु० खर्च आता है।

हमारे यहाँ सौर सेलों का उपयोग गाँवों के लिए प्रकाश व्यवस्था, सिंचाई के लिए सौर पम्प, दूरस्थ एवं अलग-थलग पड़े इलाकों के लिए टी. वी. रिले केन्द्र एवं प्रकाश व्यवस्था के लिए, रेलवे सिग्नलिंग एवं अंतरिक्ष इत्यादि में होने लगा है। इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों, गणकों, टी.वी. संचार एवं परिवहन आदि में सौर पैनलों ने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है।

सोलर सेल का रख-रखाव एवं मरम्मतः

उत्तम दक्षता प्राप्त करने के लिए किसी भी सेल में नीचे दिये गये गुण होना चाहिए :-

1- सेल से होने वाली परावर्तनिक हानि कम से कम हो।

2- सौर स्पेक्ट्रम के फोटॉन का पूर्ण शोषण सेल द्वारा होना चाहिए।

3- शोषित फोटॉन की अधिक से अधिक ऊर्जा का उपयोग इलेक्ट्रॉन-होल जोड़े बनाने में किया जाना चाहिए।

4- इलेक्ट्रॉन-होल जोड़ों को अधिक इकट्ठा होना चाहिए।

5- पदार्थों में अंदरूनी असमानता होनी चाहिए ताकि इलेक्ट्रॉन तथा होल उस समय तक अलग-अलग रह सकें जब तक उन्हें चलाने के लिए मजबूर न किया जावे।

जहाँ तक सोलर सेल के रख-रखाव एवं मरम्मत का प्रश्न है तो इसमें इस प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है क्योंकि इसमें घूमने वाले हिस्से नहीं होते हैं। केवल बैटरी के रख-रखाव पर ध्यान देना पड़ता है एवं पैनल पर धूल इत्यादि के कणों को साफ करना होता है।

-प्रवक्ता म.गा.चि.ग्रा.वि.वि.चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

-भौतिक विभाग,उत्कृष्टता एवं उच्च शिक्षा केंद्र भोपाल

भू-विज्ञान

कैसे निर्मित होते हैं मरुस्थल

डॉ0 विजय कुमार उपाध्याय

धरती के उन भागों को मरुस्थल कहा जाता है जहाँ का तापमान या तो बहुत अधिक रहता हो या बहुत कम। यहाँ पेड़-पौधों की संख्या तथा जीव-जन्तुओं की आबादी नगण्य रहती है। ऐसे क्षेत्रों में जल का अभाव रहता है तथा वायुमण्डलीय आर्द्रता नगण्य रहती है। आज पृथ्वी का लगभग 5 प्रतिशत भाग मरुस्थलों से ढका हुआ है।

मरुस्थल कई प्रकार के होते हैं। प्रथम श्रेणी के मरुस्थल पृथ्वी के ध्रुवीय क्षेत्रों में पाये जाते हैं। ऐंटार्कटिका तथा ग्रीनलैण्ड के मरुस्थल इसी श्रेणी में आते हैं। ये क्षेत्र बर्फ तथा तुषार से ढँके रहते हैं। ये क्षेत्र सच्चे अर्थ में मरुस्थल हैं, क्योंकि मरुस्थल की दो विशेषतायें यहाँ पायी जाती हैं- वर्षा की कमी तथा वनस्पतियों एवं जन्तुओं का अभाव। इन क्षेत्रों में साल भर में 250 मिलीमीटर से भी कम वर्षा होती है।

दूसरे प्रकार के मरुस्थल में सालाना वर्षा 250 मिलीमीटर से अधिक होती है फिर भी वे शुष्क तथा जीवन विहीन होते हैं। इन्हें भौम्य अथवा इडैफिक मरुस्थल कहा जाता है। यहाँ भू-सतह पर छिद्रदार ज्वालामुखीय शैल मौजूद रहते हैं जिनसे पानी तेजी से रिस कर धरती के भीतर प्रवेश कर जाता है। ऐसे क्षेत्रों में धरती की सतह पर पानी की काफी कमी पायी जाती है। ऐसे मरुस्थलों के उदाहरण हैं- आइसलैंड के कुछ भाग तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिमी भाग में स्थित कोलोरैडो का पठार।

तीसरी श्रेणी के मरुस्थल मौसमी कारणों से विकसित होते हैं। संसार में ऐसे रेगिस्तानों की संख्या सबसे अधिक है। ऐसे रेगिस्तान सामान्यतः पृथ्वी पर दो बड़े उपोष्ण कटिबंधों पर स्थित हैं जहाँ वर्षा बहुत होती है। ऐसे रेगिस्तान मौसम के परिवर्तित होने से बनते हैं। ऐसे मरुस्थल के उदाहरण हैं अफ्रीका का सहारा मरुस्थल तथा भारत का थार मरुस्थल। इन क्षेत्रों में की गयी पुरातात्विक खुदाइ से इस बात के प्रमाण मिले हैं कि ये क्षेत्र अतीत में किसी समय हरे-भरे थे तथा यहाँ नदियाँ बहा करती थीं।

मौसम वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथ्वी की घूर्णन गति के कारण तथा सौर ऊर्जा द्वारा पृथ्वी के तपने के कारण सदा से ही पृथ्वी पर अक्षांशीय मौसम क्षेत्र किसी न किसी रूप में मौजूद रहते आये हैं जिस तरह की स्थिति आज है। पृथ्वी पर दो रेगिस्तानी पट्टियाँ पायी जाती हैं- एक 30 डिग्री उत्तरी अक्षांश के आस-पास तथा दूसरी 30 डिग्री दक्षिणी अक्षांश के आस-पास। परन्तु संसार के अनेक रेगिस्तान उच्च्य अक्षांशीय क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं अर्थात् ये रेगिस्तान उपर्युक्त प्रधान शुष्क पट्टियों (30 डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा 30 डिग्री दक्षिणी अक्षांश) के उत्तर या दक्षिण में स्थित हैं। ऐसे रेगिस्तानों में शामिल हैं- उत्तरी अमेरिका के रेगिस्तान, अर्जेन्टीना, पैंटागोनियाई रेगिस्तान, तकला मकान एवं गोबी मरुस्थल।

मरुस्थलीय पट्टियों का निर्माण वायुमंडलीय गति के कारण होता है। वायुमंडलीय गति को उत्पन्न करने वाले घटक हैं-

1- पृथ्वी पर पड़ने वाला सौर विकिरण तथा

2- पृथ्वी का घूर्णन। सामान्य तौर पर पृथ्वी का विषुवतीय क्षेत्र ध्रुवीय क्षेत्र की तुलना में अधिक सौर विकिरण ग्रहण करता है। इस कारण ताप का

स्थानान्तरण विषुवतीय क्षेत्र से ध्रुवीय क्षेत्र की ओर होता है। इसके फलस्वरूप वायु में गति तथा प्रवाह शुरू हो जाता है। पृथ्वी का घूर्णन अक्षांशीय वायु क्षेत्रीकरण को उत्पन्न करता है। जैसे विषुवतीय क्षेत्र में व्यापारिक वायु या पूर्वी वायु तथा मध्य अक्षांशों पर पश्चिमी वायु। विषुवतीय क्षेत्र में सौर विकिरण द्वारा हवा पहले गर्म होती है, फिर हल्की होकर ऊपर उठती है तथा ऊपर उठने के क्रम में धीरे-धीरे ठंडी होकर संकुचित होती है। यह संकुचित हवा 30 डिग्री उत्तरी अक्षांश तथा 30 डिग्री दक्षिणी अक्षांश पर पृथ्वी तल की ओर नीचे उतरती है। इसके कारण उच्च दाब की दो उपोष्ण कटिबंधीय वायु पट्टियाँ बन जाती हैं। यह अवरोही वायु ही पूर्वी व्यापारिक वायु को उत्पन्न करती है। यह व्यापारिक वायु विषुवत रेखा की ओर प्रवाहित होती है। यह वायु आर्द्रता से मुक्त होती है। इस कारणवश इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है जिसके फलस्वरूप कई मरुस्थल उपर्युक्त उच्च दाब वाले वायु पट्टियों के क्षेत्र में पाये जाते हैं। गर्म एवं शुष्क व्यापारिक वायु उत्तरी गोलार्द्ध में सहारा, मध्य पूर्व के रेगिस्तान, दक्षिण एशिया के रेगिस्तान तथा उत्तरी अमेरिका के रेगिस्तान से होकर गुजरती है। इसी प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिणी अमेरिका के अटाकामा तथा पेरुवियन रेगिस्तान, दक्षिण अफ्रीका के नामिब तथा कालाहारी मरुस्थल तथा आस्ट्रेलियाई मरुस्थल भी उच्च दाब वाले व्यापारिक वायु के प्रवाह क्षेत्र में पड़ते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ व्यापारिक वायु समुद्र से स्थल की ओर चलती है वहाँ रेगिस्तान का निर्माण असम्भव है जैसे अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के पूर्वी समुद्रतटीय क्षेत्र।

उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों के मरुस्थल पहाड़ों की उपस्थिति के कारण अथवा अनुपस्थिति के कारण बनते हैं। ऐसे क्षेत्रों में हल्की तथा आर्द्रतापूर्ण गर्म वायु किसी पर्वत श्रृंखला से अवरुद्ध होने के बदले उसे पार कर जाती है तथा घनीभूत होकर पर्वत के ऊपर ही बरस जाती है। यह वायु जब पर्वत को पार कर दूसरी ओर पहुँचती है तो यह आर्द्रतारहित हो जाती है तथा पहाड़ की दूसरी ओर के समतल क्षेत्र में वर्षा नहीं कराती। इस प्रकार यह क्षेत्र मरुस्थल बन जाता है। मध्य एशिया के गोबी तथा तकला मकान नामक रेगिस्तान इसी प्रकार के हैं।

प्राध्यापक,
भू–गर्भ इंजीनियरी कालेज
भागलपुर–813210

विज्ञान शिक्षण मातृभाषा में हो

प्रख्यात खगोलशास्त्री डॉ० जयंत विष्णु नार्लीकर के अनुसार देश में विज्ञान शिक्षण 'रटंत पद्धति' का शिकार हो गया है। बच्चे यह जानने की कोशिश नहीं करते कि कोई भी वस्तु वैसी ही क्यों होती है जैसी वह है। देश को वैज्ञानिक महाशक्ति बनाने के लिए बच्चों को विज्ञान की शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। कोई भी व्यक्ति अपनी मातृभाषा में ही सबसे तीव्र गति से सोच सकता है और अपने विचारों की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति कर सकता है। यद्यपि वैज्ञानिक अवधारणा को व्यक्त करने के लिए पूरे देश में एक ही पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग भी आवश्यक है।

शाकाहार और मांसाहार

✍ डॉ0 चन्द्रकांत वर्मा

भोजन मानव की प्रथम आवश्यकता है। इसके बगैर मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। साधारणतः शरीर की वृद्धि और विकास के लिए हम जिन वस्तुओं को खाने में प्रयोग करते हैं वही भोजन हैं। भोजन करने का उद्देश्य केवल क्षुधा की पूर्ति करना ही नहीं है वरन् शरीर को पूर्णतः स्वस्थ, सबल एवं निरोग रखना भी है।

भोजन दो प्रकार के होते हैं- शाकाहार एवं मांसाहार। इन दोनों प्रकार के भोजनों में शाकाहार भोजन विशुद्ध प्राकृतिक और मांसाहार को अप्राकृतिक भोजन कहा जाता हे।

जहाँ मांसाहार से काम, क्रोध, आलस्य, प्रमाद, जड़ता, तमस और नींद आदि तामसी अवगुणों की वृद्धि होती है, वहीं पर शुद्ध शाकाहारी भोजन से शरीर की स्फूर्ति, मन की पवित्रता, मन की प्रसन्नता, शरीर की शक्ति और दीर्घ आयु प्राप्त होते हैं। मन, बुद्धि और विवेक शुद्ध होते हैं। आत्मा में सुख और शान्ति आती है। भोजन का प्रभाव मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा पर पड़ता है और वास्तव में जब तक ये तीनों विकाररहित न हों तब तक किसी को पूरी तरह स्वस्थ नहीं कहा जा सकता है। इसीलिए आवश्यक है कि अपने आहार को सात्विक रखा जाय जिससे मन, आत्मा और शरीर को शुद्ध रखा जा सके।

यदि मांस मनुष्य का प्रकृतिसम्मत भोजन होता तो निश्चित रूप से शरीर की रचना उसी के अनुसार होती और मांस छोड़कर उसकी अभिरुचि अन्नों और वनस्पतियों के प्रति बिल्कुल ही नहीं होती लेकिन ऐसा नहीं है। आज से हजारों वर्ष पूर्व शेर , चीते और भेड़िये आदि जिस प्रकार का मांस खाते थे, ठीक उसी प्रकार आज भी खाते हैं। मांस उनका प्राकृतिक भोजन है, इसके बिना वे जीवित नहीं रह सकते हैं। शेर को यदि मांस न देकर अन्न और वनस्पति खाने को दिया जाय तो वह एक-दो दिन भी जीवित नहीं रह सकता है। जिसे जिस प्रकार के भोजन की आवश्यकता होती है उसी के अनुरूप उसके शरीर की रचना होती है। लेकिन मनुष्य में ऐसी बात नहीं है। वह दोनों प्रकार के भोजन का आदी है।

अनेक लोग मांस के स्वाद की दुहाई देते हैं। यदि मांस में फलों का जैसा स्वाद होता तो मनुष्य विविध प्रकार के मसाले डालकर उसे स्वादिष्ट बनाने का प्रयत्न नहीं करता और न प्राकृतिक स्वरूपों को छिपाने के लिए उसे विविध रूपों में बदलता। डॉ० हेग ने अनेक प्रकार के मांसों का प्रयोग एवं विश्लेषण करके लिखा है कि- " विभिन्न प्रकार के मांसों में प्रति पौंड 6 ग्रेन तक यूरिक एसिड पाया जाता है जो मनुष्य के शरीर में तरह-तरह की बीमारियाँ उत्पन्न करता है। यह एक प्रकार का विष है। और जब यह रक्त में मिलता है तो दिल की जलन, जिगर की खराबी, टी.बी., सांस रोग, खून की कमी, गठिया, हिस्टीरिया, सुस्ती, निमोनिया आदि सैकड़ों रोग पैदा हो जाते हैं।"

डॉ० वाचमैन और बर्नस्टीन का विचार है कि "मांसाहारी लोगों का पेशाब प्रायः तेजाब युक्त होता है। इसलिए रक्त में तेजाब और क्षार का अनुपात ठीक रखने के लिए हड्डियों में से क्षार निकल कर रक्त में मिलता है। इसके विपरीत

शाकाहारियों का पेशाब क्षार युक्त होता है इसलिए उनकी हड्डियों का क्षार रक्त में नहीं जाता और हड्डियाँ मजबूत रहती हैं। इसलिए जिन लोगों की हड्डियाँ कमजोर हों उनको अधिकतर फल, सब्जियों और दूध का सेवन करना चाहिए तथा मांस खाना छोड़ देना चाहिए।" बड़े-बड़े पहलवान जो साँड और घोड़ों को भी पछाड़ सकते हैं, मांस भक्षण के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले यूरिक एसिड के कारण प्रायः बड़ी आयु में गठिया रोग के शिकार हो जाते हैं। चिकित्सकों का कहना है कि यह दूषित पदार्थ जगह-जगह जोड़ों में जम जाता है जिससे रक्त की गति में रुकावट पैदा होती है जिसके कारण बुढ़ापा जल्दी आता है। रूस के प्रसिद्ध शरीरशास्त्री डॉ० मेचनीकॉफ ने बहुत वर्षों पूर्व घोषित किया था कि दही और मट्ठा दीर्घ जीवन प्रदान करने वाले सर्वोत्तम पदार्थ हैं। ये जोड़ों में एकत्रित यूरिक एसिड को घुलाकर बाहर निकाल देते हैं, जिससे शरीर के भीतर रक्त की धारा निर्बाध रूप से प्रवाहित होने लगती है और यही स्वास्थ्य के स्थिर रहने का मुख्य साधन है। मांस भक्षण से शरीर में यूरिक एसिड का परिमाण बढ़ता है जो स्वास्थ्य के लिए घातक है। अन्य कई विद्वानों ने मांस भक्षण को स्नायविक पीड़ा का कारण बतलाया है। इससे पीलिया, सूजन, निमोनिया आदि रोगों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। यदि कोई मनुष्य केवल मांस पर ही अपना जीवन निर्वाह करता है तो निःसन्देह उसके शरीर में बहुत अधिक विकृति आ जाएगी, पर जो लोग केवल वानस्पतिक आहार करते हैं, वे मांसाहारियों की अपेक्षा सदैव अधिक निरोग रहते हैं। इसके अतिरिक्त मांस भक्षण के कारण क्षय रोग और भगंदर जैसे कष्टदायक रोग होते हैं। भगंदर रोग मनुष्य के प्राण लेकर ही दम लेता है। इस रोग के जगतप्रसिद्ध विशेषज्ञ डॉ० वेल ने बहुत ही पहले बतलाया था कि संसार में प्रतिवर्ष ढाई करोड़ और अकेले इगलैण्ड में तीस हजार व्यक्ति भगंदर रोग के कारण मर जाते हैं। इसका एक मात्र कारण मांसाहार की अधिकता है।

मांसाहार के अनेक पक्षपाती उसे विशेष शारीरिक शक्ति देने वाला पदार्थ बतलाते हैं पर यह भी कोरा भ्रम है। मांस भक्षण से खूँखारपना और क्रूरता की प्रवृति अवश्य बढ़ती है, पर शक्ति और श्रम करने की दृष्टि से मांसाहारी कभी शाकाहारी का मुकाबला नहीं कर सकते हैं। उदाहरणार्थ हाथी, घोड़ा, बैल, भैंस का मुकाबला शेर, चीता, भेड़िया जैसे जानवरों से करके देखा जा सकता है।

अर्थशास्त्री मांस भक्षण को खाद्य समस्या के समाधान के रूप में भी प्रस्तुत करते हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि जितनी भूमि की हरियाली खिलाकर पशु पाला जाता है, उतनी भूमि में मांस से कई गुना और कहीं सस्ता एवं अधिक उपयुक्त स्वास्थ्यवर्धक और ज्यादा खाद्य दूध के रूप में दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त पशुधन के नष्ट होने के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन में भी बहुत कमी हो गई है। पशुओं के गोबर तथा मूत्र से जितनी खाद मिल सकती है उतना मूल्य उनके मांस के विक्रय से नहीं मिल सकता है।

अमेरिकी वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान के क्रम में यह पाया है कि एक ग्राम मांस में विद्यमान विषाक्त पदार्थों को नष्ट करने के लिए 50 हजार जीवाणुओं की जरूरत होती है। एक अण्डा पचाने के लिए 2 करोड़ से अधिक जीवाणुओं की शक्ति खर्च होती है। हुंजा कबीले जब तक शाकाहारी थे तब तक उनमें कोई प्राणघातक रोग नहीं था लेकिन जबसे मांसाहारी हो गये हैं उनमें कई तरह के प्राणघातक रोग उत्पन्न होने लगे हैं। डॉ० राल्फ विचर ने अपने अनुसंधान के क्रम में यह पाया है कि हड्डी की "आस्टियोपोरोसिस" नामक बीमारी अधिकांशः मांस खाने वाले लोगों को ही होती है।

मध्य चिली में ताँबे के कारखानों में काम करने वाले श्रमिक पूर्णतः शाकाहारी हैं। ये लोग बलिष्ठ एवं कठोर परिश्रमी होते हैं। इनकी तुलना में मांसाहारी श्रमिक कम बलिष्ठ एवं जल्दी थकते

हैं। स्पान्सि जाति के मनुष्य शाकाहारी हैं जो शक्ति, कठोर परिश्रम एवं सहनशीलता के लिए विश्वविख्यात हैं।

आहारविज्ञानी प्रो. हचर्ड ने कहा है कि– ''पशु खाद्य जिसका दुरुपयोग बहुत तरह से दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा है, कोई खाद्य पदार्थ नहीं है, अपितु एक भयंकर विष है। नित्य खाते रहने से यह धीमा जहर व्यक्ति को मृत्यु के मुख में शीघ्र ले जाता है।'' डॉ० ओ. जेड. होमिश का कहना है कि '' यह निश्चित ही आश्चर्य की बात है कि पेट में किसी पशु के शव का टुकड़ा रखकर मनुष्य का शव भक्षण करने वाले पॉलिनेशियन की चर्चा करते हुए भय से सिहर उठते हैं।'' प्रख्यात मनःशास्त्री प्रो. शिराफिएम लिखती हैं कि ''मांसभक्षी भी उसी प्रकार की सडांध से भरा रहता है जैसे कि कोई कब्रगाह।''

मानव सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है इस लिए एक सभ्य सुसंस्कृत मानव को चाहिए कि मांसाहार का सेवन न करे। साथ ही साथ यह मानवता के विरुद्ध भी है। जबतक मनुष्य में इन गुणों का सर्वथा अभाव है मनुष्य योनि में उत्पन्न होने पर भी मनुष्य नहीं कहा जा सकता है। मनुष्य में दया, क्षमा, करुणा, संवेदना, सौहार्द्र एवं सहानुभूति जैसे गुण होने चाहिये। जीवों पर दया मनुष्य की शोभा है, न कि मुर्दा पशुओं का मांस खाने में। हत्या, चोरी, डकैती, बलात्कार, व्यभिचार आदि अपराध करने वालों में अधिकतर मांस-भोजी ही होते हैं। मांसभोजी के रक्त में इतनी ऊष्मा रहती है कि एक नगण्य सा कारण आने पर भी वह बारूद की तरह भड़क उठता है। आज विश्व युद्ध उकसाने वाले राष्ट्रों में अधिकतर मांस-भोजी राष्ट्र का ही नाम लिया जाता है।

शाकाहार मनुष्य का पूर्ण भोजन है। इसमें शरीर के उचित पोषण एवं विकास के लिए सारे अवयव रहते हैं। पूर्ण आहार के लिए प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज-लवण और विटामिन, की आवश्यकता होती है जो शाकाहारी भोजन में पाये जाते हैं।

डॉ० केलमुड ने कहा है ''बच्चों को मांस की आदत डालना उन्हें आलसी, दुर्बल और झगड़ालू बनाने की शुरुआत है''। एक बार अमेरिका के कारनेल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डॉ० एम. मैकके ने कहा था कि ''यदि मनुष्य शाक, भाजी फल आदि पर ही रहना प्रारम्भ करे तो उसकी आयु 250 वर्ष तक हो सकती है। यदि पर्याप्त संयम भी रखा जाय तो यह आयु और भी बढ़ाई जा सकती है''। भोजन मनुष्य के शरीर वृद्धि से संबंध रखता है। पुष्टिकारक आहार समताओं की वृद्धि करता है और तत्वहीन आहार उनका ह्रास करता है। मनुष्य संसार में सबल, शक्तिवान और योग्य बनकर जीने के लिए है न कि रोग, शोक, दुःख दुरितों का बन्दी बनकर। सुखी, शान्त और सन्तुष्ट जीवन बिताने के लिए मनुष्य को अपने खान-पान में हमेशा सावधान रहने की जरूरत है। स्वाद, स्वभाव अथवा अनुकरण से प्रेरित होकर अपने खान-पान को अयुक्त बना लेने का अर्थ है अपने शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सुख समुन्नति में आग लगा लेना या अपने जीवन को नरक में धकेलना।

📖 व्याख्याता, मानव विभाग
के.आर.एस.एम. वनांचल कालेज
गिरीडीह, बिहार

नोबेल पुरस्कार : 2000

स्वीडन की रायल एकेडमी आफ सांइसेज की नोबेल पुरस्कार समिति के अनुसार वर्ष 2000 के नोबेल पुरस्कार विजेता इस प्रकार हैं-

भौतिकी :	जोरेस अल्फेरोव	रूस
	हर्बर्ट क्रोमर	अमेरिका
	जैक किल्बी	अमेरिका
रसायन :	ऐलन हीगर	अमेरिका
	ऐलन मैकडायरमिड	अमेरिका
	हिडेकी शीराकावा	जापान
चिकित्सा :	पॉल ग्रीनगार्ड	अमेरिका
	एरिक कैन्डेल	अमेरिका
	ऐर्विड कार्ल्सन	अमेरिका

सरस्वती नदी: भारतीय संस्कृति का स्वर्णिम इतिहास

✍ डॉ0 पुनीत बिसारिया

सरस्वती को भारत की सबसे प्राचीन एवं पवित्र नदियों में से एक माना जाता है। इसने भारत की सभ्यता के जन्म लेने, विकसित होने तथा पतनोन्मुखी होने (वर्तमान सन्दर्भ) का पूरा परिदृश्य अपनी डबडबाती आँखों से देखा है। हम भारतवासियों ने भी अपनी इस महान एवं शुभदायिनी नदी को पूरा सम्मान प्रदान किया है। प्राचीन काल के वेद, पुराण आदि इसके साक्षी हैं। इस नदी को वैदिक एवं पौराणिक समय के भारत की जीवन रेखा माना जाता है। ऋग्वेद में, जिसे विश्व के प्राचीनतम प्राप्त ग्रंथ की संज्ञा दी जाती है, आज विलुप्तप्राय हो चुकी इस नदी के अनेक उद्धरण मिलते हैं। इसके सभी मण्डलों में लगभग 75 मंत्र ऐसे हैं, जिनमें सरस्वती नदी का उल्लेख आया है। ऋग्वेद में इसे 'माताओं में सर्वश्रेष्ठ','देवियों में सर्वश्रेष्ठ' तथा 'बुद्धि एवं ज्ञान की देवी' के रूप में वर्णित किया गया है। षष्ठ मण्डल के इकसठवें मंत्र में माँ सरस्वती की शक्तिमत्ता की विवेचना अत्यन्त सुष्ठु रूप में की गई है-

> इयम् सुषमेभिविसाखा इवर्युजत् सानु
> गिरिनाम् ताविषे भिरुमिभः
>
> पर्वताग्नि मावसे सुवृक्तिभिः सरस्वतिमा
> विवासिमा घीतिभिः।

अर्थात् हे देवी सरस्वती! तुम्हारा शक्तिवान जल वेग पर्वतों को उसी प्रकार चकनाचूर कर देता है, जिस प्रकार कोई व्यक्ति कमल के फूलों को तोड़ता है। आओ, हम सब प्रार्थना एवं मंत्रों से उनको आमंत्रित करें।

मनुस्मृति में भारतवर्ष की उत्पत्ति के सन्दर्भ में एक श्लोक में सरस्वती नदी का उल्लेख आया है-

> सरस्वती दृशाद्वत्वर देवानाध्योर्यदन्तरम्,
>
> तम् देव निर्मितम् देशम् ब्रह्मावर्त प्रकाश्यते।

अर्थात् सरस्वती एवं दृशाद्वती नदी के बीच ईश्वर ने भूमि निर्मित की तथा इस स्थान को उसने ब्रह्मावर्त का नाम दिया।

महाभारत में सरस्वती के तट पर स्थित तीर्थस्थलों का विस्तृत वर्णन आया है। इसमें यह भी उल्लेख आता है कि कुरुक्षेत्र युद्ध के समय बलराम जी ने सरस्वती तट पर स्थित तीर्थों में भ्रमण किया था। इस प्रसंग में सरस्वती के कुछ स्थानों से अन्तर्ध्यान हो जाने की चर्चा आई है-

> ततो विनाशने गच्छेन नियतो अशनाः
> गच्छति अन्तर हितायतर मरुप्रस्थे,
>
> सरस्वती कामशोभदे, शिवोभिदे नागाभिदे
> च दृश्यते।

अर्थात् तीर्थों का भ्रमण करते हुए बलराम जी विनाशन नामक स्थान पर पहुँचे, जहाँ सरस्वती मरुस्थल में अन्तर्ध्यान हो जाती है तथा तत्पश्चात् यह पुनः कामशोभिद, शिवोभिद् एवं नागोभिद् स्थानों पर दिखने लगती है।

इससे ज्ञात होता है कि महाभारत काल के दौरान सरस्वती नदी का बहाव अत्यन्त क्षीण हो गया था, जिससे कुछ स्थानों पर यह विलुप्त होने लगी थी, परन्तु इसका भूमिगत जल सूखा नहीं था, अतः पृथ्वी के अन्दर हो रहे विभिन्न भूगर्भीय

दबावों के कारण यह कुछ स्थानों पर पुनः दिखने लगी थी।

सरस्वती नदी को पुराण साहित्य में भी अनेक स्थान पर उद्धृत किया गया है। वामन पुराण में ऋषि मार्कण्डेय द्वारा सरस्वती नदी को प्लाक्ष (पीपल) के वृक्ष से आविर्भूत होते हुए देखने का उल्लेख आया है। ऋषि ने उन्हें अवतरित होते हुए देखकर उनकी वन्दना की थी। तत्पश्चात् यह नदी पश्चिम दिशा में द्वैतवन की ओर प्रस्थान कर जाती है। एक अन्य स्थान पर इसे दधीचि पुत्र पिप्पलाद ऋषि के आश्रम से निकली हुई बताया गया है।

महाभारत एवं पुराण काल में सरस्वती नदी की विसर्पी पट्टी (Meander belt) अनेक 'सर' में विभक्त हो गई, जिनके नाम ब्रहमसर, ज्योतिसर, स्थानेसर, कालेश्वरसर इत्यादि हैं। अनेक सरों द्वारा संयुग्मित होने के कारण ही सम्भवतः इसे सरस्वती (सरः+वती) का अभिधान दिया गया होगा।

सरस्वती नदी का प्राचीन साहित्य में प्रचुर उल्लेख होने के बावजूद 1883 ई. तक विश्व इस महानतम् नदी से अनभिज्ञ था। इसी वर्ष में सर्वप्रथम कनिंघम ने इसकी खोज की, परन्तु इस नदी के विषय में ठोस तथ्य 1921 ई. में मोहनजोदड़ो की खुदाई के बाद ही ज्ञात हो सके। वर्तमान में सरस्वती नदी के विषय में वैज्ञानिकों ने जो अवधारणा प्रस्तुत की है, उसके अनुसार सरस्वती का उद्गम शिवालिक पठार के सिरमौर क्षेत्र में है, जहाँ से निकल कर यह पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, बहावलपुर (सिंध, पकिस्तान) आदि से गुजरते हुए गुजरात स्थित रन के कच्छ से होकर समुद्र में मिल जाती है। इसके उद्गम का समय लगभग 10,000 ई. पूर्व का है, जो अन्तिम प्लीस्टोसीन युग हुआ था। इस युग से पूर्व हिमालय में स्थित समुद्र का जल जमा हुआ था, जिसके कारण वहाँ यत्र-तत्र अनेक ग्लेशियर बन गए थे। वातावरण में धीरे-धीरे उष्णता आने के कारण ये ग्लेशियर पिघलना शुरू हुए, जिसके परिणामस्वरूप जलस्तर अचानक बढ़ जाने के कारण भयानक बाढ़ आ गई और पर्वतों के निकट स्थित मैदानी क्षेत्र जलमग्न हो गए, जिनसे सात नदियों की उत्पत्ति हुई। यह विज्ञानसम्मत तथ्य ऋग्वेद में इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम प्रसंग में आता है। इसके अनुसार वृत्रासुर ने अपने तपोबल से भूगोल के समस्त जल को हिम में परिवर्तित कर दिया, जिससे ब्रह्माण्ड में त्राहि-त्राहि मच गई। तब इन्द्र ने जो जलवृष्टि करते हैं, दधीचि की सहायता (अस्थियों का वज्र बनाकर) लेकर उसका संहार किया और जल को निर्मुक्त किया। यह घटना लगभग 8000 ई.पू. घटी थी, तब मनुष्य भी पृथ्वी पर विद्यमान था। इस बाढ़ के साथ नदियों के माध्यम से अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का पांशु (Silt) पंजाब, राजस्थान एवं गुजरात के मैदानों के ऊपर जम गया, जिससे यह क्षेत्र आज भी अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्र माना जाता है। इसी क्षेत्र में आर्यों की वैदिक सभ्यता ने जन्म लिया। 6000 से 3000 ई.पू. को सर्वप्रथम कृषि से अवगत कराया तथा सुव्यवस्थित जीवन शैली का पाठ पढ़ाया। इस प्रकार वैदिक सभ्यता के तन्तु सरस्वती नदी के साथ गहन रूप से जुड़े हुए हैं। प्राचीन काल के ऋषियों-मुनियों के अधिकांश आश्रम सरस्वती तट पर ही थे। इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि इस नदी ने मानव सभ्यता के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चूँकि सिन्धु सभ्यता का समय (3100-1900 ई.पू.) इसके तत्काल बाद का है, अतः इससे पता चलता है कि सिन्धु निवासियों की जीवन शैली पर 'वैदिक सरस्वती सभ्यता' का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। सिन्धु सभ्यता के हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो जैसे अतिविकसित महानगर अचानक नहीं विकसित हो गए होंगे, बल्कि सरस्वती सभ्यता के निवासियों ने आरंभ में इन्हें विकसित किया होगा तथा उनका सर्वोत्कृष्ट एवं पूर्णतम रूप हमें हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो में मिलता है। कुछ वैज्ञानिक अब यह सुझाव भी देने लगे हैं कि समूची सिन्धु सभ्यता एवं इससे पूर्व की सभ्यता को 'वैदिक सरस्वती सभ्यता' नाम दे देना

चाहिए, जो तर्कसंगत प्रतीत होता है।

सरस्वती नदी अपने प्रारंभ के एक सहस्र वर्षों तक अपने पूर्ण स्वर्णिम काल में थी। उस समय यह एक विशालकाय नदी थी और यमुना, सतलज जैसी आज की बड़ी नदियाँ इसकी सहायक नदियाँ थीं। यही कारण था कि वैदिक समाज में इस नदी की बड़ी प्रतिष्ठा थी। कालान्तर में मनु के समय में भारत का उत्तर-पश्चिमी हिस्सा सरस्वती, दृशाद्वती तथा अन्य नदियों में बाढ़ आ जाने के कारण जलप्लावित होकर डूब गया। यह महाप्रलय की चिरप्रचलित वैदिक अवधारणा तथा मनु के एकमात्र मनुष्य के रूप में जीवित बचने के प्रसंग की पुष्टि करता है। यह जलप्लावन वस्तुतः वैदिक सभ्यता के ह्रास का प्रमुख कारण बना। इसके पश्चात् भारतीय सभ्यता सरस्वती के तटों से खिसक कर गंगा नदी के मैदानों में विकसित होने लगी। महाभारत काल में सरस्वती एक छोटी सी नदी के रूप में रह गई। ऐसा पृथ्वी के अन्दर हुए विभिन्न प्रकार के विवर्तनिक परिवर्तनों के कारण हुआ, जिससे पृथ्वी के अन्दर की विभिन्न प्लेटें इधर-उधर खिसकीं और पृथ्वी सतह पर दरारें आ जाने के कारण सरस्वती का जल भूमि में समाने लगा। इसके परिणामस्वरूप सरस्वती का कुछ जल इसकी सहायक नदियों यमुना एवं सतलज ने भी गृहीत कर लिया तथा उसी समय अचानक अकाल आ जाने से यह नदी और भी सूख गई। इस प्रकार द्वापर युग के समाप्त होने तथा कलियुग के आरम्भ होने के सन्धि काल की भी सरस्वती नदी मूक गवाह अवश्य रही होगी। शनैः शनैः इसका बहाव उथला होता गया और कालान्तर में लगभग 2000 ई.पू. में यह विलुप्तप्राय हो गई। आज सरस्वती नदी कुरुक्षेत्र में एक छोटे से नाले के रूप में विद्यमान है। इसके शुष्क पथ चिन्ह हरियाणा से लेकर सिन्ध पाकिस्तान एवं अफ़गानिस्तान तक प्राप्त होते हैं। आज यह नदी राजस्थान में हाकड़ा, सिन्ध में नारा एवं घग्घर के नामों से जानी जाती है।

सरस्वती नदी के पथचिन्ह को, जो इधर-उधर बिखरे हुए है, यदि जोड़ कर इस नदी का वास्तविक पथरेख पुनर्सृजित कर लिया जाए, तो यह नदी आज राजस्थान तथा गुजरात में अनुर्वर इलाकों के हरा-भरा करने में समर्थ सिद्ध हो सकती है और वह राजस्थान, जहाँ कभी विशाल समुद्र की लहरें हिलोरें लिया करती थीं, वहाँ फिर से समृद्धि की गंगा (क्षमा करें सरस्वती) बहाई जा सकती है।

📖 बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान
53, विश्वविद्यालय मार्ग संस्थान
लखनऊ–26007

इंटरनेट व्यवस्था में सुरक्षा की गारंटी बहुत ही टेढ़ी खीर हो गई है। सूचना के इस महातंत्र के विस्तार का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रति दो से चार सेकेंड के बीच एक नई बेबसाइट आ रही है। इस समय 12 करोड़ लोग 'आन लाइन' हैं। इनमें से सात करोड़ तो केवल अमेरिका में ही हैं। सूचना तंत्र के इस महा जाल में अभी तक 30 हैकरों ने धोखाधड़ी के जरिये बैंकों से 10 मिलियन डालर हड़प लिए हैं। अमेरिकी इंटरनेट सिस्टम पर हैकरों के अभी तक 38000 आक्रमण हो चुके हैं। केवल चार प्रतिशत मामलों में ही लोगों को पता चल पाया है कि वे हैक किए जा रहे हैं।

पुस्तक समीक्षा

गणित की रोचक बातें : लेखक वीरेन्द्र कुमार
प्रकाशक : ज्ञानगंगा, 205 सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली–110006
प्रथम संस्करण : 2000, पृष्ठ संख्या 143
मूल्य : 125.00 रुपये

हिन्दी में गणित के इतिहास तथा महान गणितज्ञों पर अनेक प्रामाणिक पुस्तकें उपलब्ध हैं किन्तु गणित विषयक रोचक बातों पर अभी तक कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। लेखक ने 'गणित की रोचक बातें' लिखकर इसी कमी को पूरा करने का प्रयास किया है। उनका यह प्रयास सचमुच सराहनीय है। इससे सामान्य जनों में भी गणित के प्रति रुचि जागृत होगी।

प्रायः गणित को नीरस एवं कठिन विषय माना जाता है किन्तु सूचना-प्रौद्योगिकी के इस युग में गणित की सम्यक जानकारी आवश्यक है। यह ठीक है कि गणित के नियम और सूत्र उबाऊ हैं किन्तु यदि उन्हें तर्क और बुद्धि के आधार पर प्रस्तुत किया जाय तो वे अति सरल एवं आनन्ददायक लगने लगेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल 15 अध्याय हैं जिनमें प्रथम तथा अन्तिम अध्याय सर्वाधिक सूचनाप्रद एवं रोचक हैं। प्रथम अध्याय का शीर्षक 'प्रकृति और गणित' है। इसके अन्तर्गत प्रकृति में बिन्दु, सरल रेखा, वृत्त जैसी आकृतियों के पाये जाने का सचित्र सोदाहरण उल्लेख मिलता है। ईश्वर की बनाई गई प्रत्येक वस्तु, चाहे वह वनस्पति हो या फिर प्राणी सभी में सममिति के दर्शन होते हैं। मनुष्य, गाय, तितली, फूल, पत्ती सभी में सममिति पाई जाती है। यहाँ तक कि विकास के क्रम में भी जीव की समरूपता बनी रहती है। प्रकृति में न केवल ज्यामितीय रूपों के दर्शन होते हैं आपितु निश्चित कालगतियों के भी दर्शन होते हैं-चाहे हृदयगति हो, या चन्द्रमा का उदय होना हो, या पृथ्वी द्वारा सूर्य का चक्कर लगाना हो। लेखक ने यहाँ तक सिद्ध किया है कि प्रकृति में विभिन्न संख्याएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं-जैसे एक पृथ्वी, एक सूरज, या दो (जोड़ों) के रूप में नर-मादा, प्रकाश- अंधकार, जीव-निर्जीव, तीन के रूप में तीन काल (भूत, वर्तमान, भविष्य), चार विमाएँ, पाँच तत्व, छः पैर का प्राणी (षडपद), सप्तर्षिमंडल, अष्टभुजी आक्टोपस, शरीर के नौ मार्ग, दस दिशाएँ। अन्त में प्लेटो तथा क्रोनकर के कथन उद्धृत हैं- ईश्वर एक ज्यामितिवेत्ता तथा अंकगणितज्ञ है। यह पहला अध्याय गणित के प्रति सर्वाधिक रुचि जगाने वाला है। फिर तो संख्या बुद्धि तथा परिकलन, संख्या शब्द, संख्याओं का शब्द एवं वर्ण संकेतों द्वारा निरूपण शीर्षक अगले तीन अध्याय हमारे प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त छोटी से लेकर बहुत बड़ी संख्या यथा संख, महा संख, क्षोभ, महाक्षोभ या प्रहेलिका का उल्लेख करने वाले हैं। साहित्य में शून्य, एक , दो से लेकर 16 तक की संख्याओं से विविध वस्तुओं या भावों का द्योतन होता रहा है। यथा 0 से अनन्त, ख, शून्य, अम्बर, 1 से चन्द्रमा, पृथ्वी, पितामह, 2 से कर, नेत्र, पक्ष आदि, 9 से अंक, ग्रह, द्वार, पदार्थ, 15 से तिथि, पक्ष, 16 से कला रूप आदि। आर्यभट् ने अक्षरांक पद्धति से बड़ी बड़ी संख्याएँ दर्शित कीं। यथा क=1, ख=2, त=16, य=30, ह=100 । अ=1, इ=10, उ=10,000 आदि। वैदिक ऋषि कूट भाषा का प्रयोग राज को छिपाने के लिए नहीं अपितु सरलता की दृष्टि से किया करते थे।

हमारे देश में दार्शनिक पद्धति तथा शून्य का जिस तरह आविष्कार हुआ उसका रोचक सचित्र विवरण अध्याय 5 में हुआ है। अध्याय 6 में द्विआधारीय एवं अन्य संख्या प्रणालियों का उल्लेख है। अध्याय 7 में शून्य और अनन्त के विषय में महावीर का कथन उद्धृत है- यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा करें तो, या शून्य से भाग दें, तो फल शून्य होगा। किन्तु ब्रहमगुप्त ने स्पष्ट किया कि किसी संख्या में शून्य से भाग देने पर 'तच्छेद' प्राप्त होता है जिसे भास्कराचार्य ने 'खहर' कहा है। यही अनन्त (infinity) है। खहर राशि में कुछ भी जोड़ने या घटाने से उसमें कोई विकार नही आता। ईशोपनिषद का मंत्र इसी का द्योतक

है- ओम् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णं उदच्यते- जिसके अधार पर ईश्वर के पूर्णत्व को सिद्ध किया जाता है। लेखक ने बताया है कि ग्यार्ग कांतोर ने पहली बार अनन्त की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की और उन्होंने अनन्तों का नया अंकगणित तैयार कर दिया है।

अध्याय 8 तथा 9 में प्राकृतिक संख्याओं की अनेकानेक विशिष्टताओं का उल्लेख हुआ है। क्रोनकर का विश्वास था कि समस्त गणित अन्ततोगत्वा अंकगणित पर आधृत है, अंकगणित संख्याओं पर और संख्याओं का मूलाधार प्राकृतिक संख्याएँ (1,2,3,4,5,....) हैं। प्राकृतिक संख्याओं का मूलाधार इकाई यानी 1 है। 1 को 1 में जोड़ने से अगली पूर्णसंख्या मिलती है। इसी तरह आगे की सारी संख्याएँ प्राप्त की जाती हैं। क्रोनेकर पाई (π) को वृत्त की परिधि तथा व्यास का अनुपात न मान कर प्राकृतिक संख्याओं से निर्मित

$$\pi = 1 - \frac{1}{3} + \frac{1}{5} - \frac{1}{7} + \frac{1}{9} \ldots\ldots\ldots\ldots$$

श्रेणी मानते हैं।

साथ ही परिपूर्ण, स्वयंभू, विभाजन, अभाज्य, रुढ आदि अनेक प्रकार की संख्याओं के उदाहरण एवं गुण भी दिये गये हैं। अगले अध्याय में विभाज्यता परीक्षण है- यानी बड़ी संख्या को देखकर ही यह बता पाना कि वह परीक्षण बहुत ही लाभकारी हे।

अध्याय 12 में माया वर्ग एवं माया कृतियों का वर्णन है। प्रायः व्यापारी लोग अपने आसन के पीछे खड़ी-पड़ी लकीरों से बने वर्गों में कुछ अंक लिखे रहते हैं जो मंगल सूचक होते है। 3 क्रम वाले मायावर्ग में 9 खाने, 4 खाने वाले में 16, पाँच वाले में 25 खाने होंगे। 3 वाले माया वर्ग में 1 से लेकर 9 की संख्याओं को ऊपर नीचे, बाएँ-दायें जिधर से भी जोड़ा जाये तो योग 15 आता है। इनसे केवल एक ही वर्ग बनता है। 4 क्रम वाले में 16 तक की संख्या के 880 प्रकार के मायावर्ग बन सकते हैं। 5 क्रम वाले मायावर्गों की संख्या अज्ञात है। प्रचीनतन्त्र शास्त्र में मायावर्गों को 'यन्त्र' कहा गया है। यह मायावर्ग गणित 'भद्रगणित' भी कहलाता है। भारतीय गणितज्ञ रामानुजन ने बचपन में मायावर्ग तैयार करने की विधियाँ खोजी थी। माया कृतियों में माया त्रिभुज, मायावृत्त, माया नक्षत्र आदि कृतियों के चित्र भी दिए गये हैं।

अध्याय 13 में कुछ रोचक गणितीय आरेखों के अन्तर्गत सरल रेखा, वृत्त, परवलय, दीर्घवृत्त, अतिपरवलय, चक्रज, द्विपाश के दृष्टान्त हैं। वस्तुतः यह रेखागणित या ज्यामिति से सम्बद्ध अध्याय है और शायद सबसे अधिक कठिन अध्याय है। अगले अध्याय में चर्चित गणितीय प्रमेयों में से यही द्विपद प्रमेय के सन्दर्भ में आचार्य पिंगल तथा हलायुध के योगदान की चर्चा है। सामान्यतः जिसे पाइथागोरस प्रमेय कहते हैं वह हमारे देश में ऋग्वेद काल से यज्ञवेदियों के निर्माण के सिलसिले प्रयुक्त होता था। शतपथ ब्राह्मण में शुल्ब सूत्र भी इसी का प्रतिपादन है। फर्मा का प्रमेय भी विस्तार से वर्णित है - घातांक यदि 2 से बड़ा हो तो य, र, क, के लिए ($2^{स}+र^{स}=क^{स}$) पूर्णांक हल प्राप्त नहीं किये जा सकते।

अन्तिम अध्याय में विदेशी वैज्ञानिकों तथा गणितज्ञों के कुछ रोचक संस्मरण दिये हैं। रामानुजन का केवल एक संस्मरण है। अच्छा होता यदि कुछ अन्य भारतीय गणितज्ञों के ऐसे ही संस्मरण दिये जाते।

इस पुस्तक को आद्यान्त पढ़ जाने से यह प्रतीत होने लगता है कि गणित तो रोचक विषय हे जो सृष्टि के कण कण में व्याप्त है और फिर उसे विस्तार से अध्ययन करने का मन होने लगता है। वस्तुतः पुस्तक लेखन का यही उद्देश्य है।

यदि पुस्तक के अन्त में कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या कर दी जाती और उनके अंग्रेजी पर्याय दे दिये जाते तो और अच्छा होता। पुस्तक में पहले अध्याय में क्रिस्टल के लिए बारम्बार कैलास शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसके स्थान पर केलास होना चाहिये था।

पुस्तक आकर्षक, पठनीय एवं संग्रहणीय है।

📖 डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

परिषद् का पृष्ठ

1- परिषद् की अन्तरंग समिति की बैठक

विज्ञान परिषद् प्रयाग की अंतरंग समिति की एक बैठक 4 नवंबर 2000 को परिषद् की सभापति डॉ० श्रीमती मंजु शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर परिषद् की विभिन्न गतिविधियों एवं भावी योजनाओं पर विचार-विमर्श किया गया। इस अवसर पर डॉ० हनुमान प्रसाद तिवारी, डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० एम.डी. तिवारी, डॉ० पूर्णचंद्र गुप्त, डॉ० जे.एस. चौहान, डॉ. जी. एल. तिवारी, डॉ० ईश्वर चन्द्र शुक्ल, श्री प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव, डॉ० अशोक कुमार गुप्ता तथा श्री हरिमोहन मालवीय उपस्थित थे।

2- राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी भारत का वार्षिक अधिवेशन:

3 नवम्बर 2000 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक सीनेट सभागार में केन्द्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्री डॉ० मुरली मनोहर जोशी ने राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी भारत के 70 वें वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए कहा कि भारत को एक समर्थ एवं सशक्त राष्ट्र के रूप में विश्व मंच पर मान्यता दिलाने में भारतीय वैज्ञानिकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में आज जो शोधकार्य हो रहे हैं उनके लाभ को जन-जन तक पहुँचा कर देश की एक अरब जनता को स्वस्थ, शिक्षित एवं समृद्ध बनाने की दिशा में प्रयास किये जाने चाहिये।

इस अवसर पर डॉ० मुरली मनोहर जोशी को राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की मानद फेलोशिप प्रदान की गई तथा अकादमी के पूर्व अध्यक्ष डॉ० उमाशंकर श्रीवास्तव को उनकी सेवाओं के लिए सहस्राब्दी सम्मान प्रदान किया गया।

चार दिन तक चले इस अधिवेशन का मुख्य विषय था 'नये युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की दिशाएं'। इस अवसर पर देश के अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने अपने शोध-पत्र एवं व्याख्यान प्रस्तुत किये जिनमें डॉ० एस.ई. हसनैन, डॉ० अनुपम वर्मा, डॉ० अशोक सेन, प्रो० अखिलेश कुमार त्यागी, प्रो० एस.के. सोपोरी, प्रो० वी. प्रकाश, प्रो० के एस. वाल्दिया, प्रो० एम.जी.के मेनन, प्रो० एस.के. जोशी, डॉ० श्रीमती मंजु शर्मा आदि प्रमुख थे।

3- जवाहर लाल नेहरू स्मृति व्याख्यान

13 नवम्बर 2000 की शाम इलाहाबाद के जवाहर लाल नेहरू नक्षत्रशाला के मुक्तांगन में इस वर्ष का जवाहर लाल नेहरू स्मृति व्याख्यान भारत सरकार के प्रधान वैज्ञानिक सलाहकार तथा प्रख्यात वैज्ञानिक, भारतरत्न डॉ० ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने दिया। हजारों श्रोताओं से भरे हुए प्रांगण में डॉ० कलाम ने जवाहर लाल नेहरू के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता एवं एक स्वप्नद्रष्टा बताया जिसने स्वतंत्रता आंदोलन में देश का नेतृत्व किया और आजादी मिलने के बाद देश के नवनिर्माण की आधार शिला रखी तथा भारत में एक वैज्ञानिक तेवर उत्पन्न किया।

उन्होंने कहा कि वर्ष 2020 तक भारत को एक महाशक्ति के रूप में मान्यता दिलाने तथा 2008 तक विकसित देशों की श्रेणी में लाने के लिए भारत के प्रत्येक नागरिक को कठिन परिश्रम एवं लगनपूर्वक कार्य करना होगा। नई सदी ज्ञान की सदी है। भारत को ज्ञान-आधारित समाज के निर्माण के लिए अपनी बौद्धिक संपदा का संरक्षण एवं भरपूर उपयोग करना होगा, अर्थव्यवस्था, सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्यान्न आदि क्षेत्रों में आत्मनिर्भर बनना होगा तथा अपनी शक्ति एवं क्षमताओं का प्रसार करना होगा क्योंकि आज की एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था में केवल शक्तिशाली देश को ही उचित सम्मान प्राप्त होता है।

–देवव्रत द्विवेदी

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1- रचनायें टंकित रूप में अथवा सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।

2- रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।

3- अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफ़ाफ़ा अवश्य भेजें।

4- रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।

5- नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।

6- हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।

7- पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :-
भीतरी पूरा पृष्ठ 1000रु०, आधा पृष्ठ 500रु०, चौथाई पृष्ठ 250रु०,
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु०, आवरण चतुर्थ 4000रु०

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं. (0532) 460001
ई-मेल vigyan1@nde.vsnl.net.in

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्बई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

'इंजीनियरी शब्दावली और भारतीय भाषाएं' कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए पं० सुधाकर पाण्डेय, प्रधानमंत्री नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

अध्यक्षीय भाषण करते हुए डॉ० राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली

Printed at GRAPHIC OFFSET ALLD. Ph: (0532) 465016, 465274